॥ श्रीः ॥

श्रीयुत भिषग्वर शार्ङ्गधरविरचिता

# शार्ङ्गधरसंहिता.

( चिकित्साग्रन्थ. )

वैद्यरत्न पं. रामप्रसाद राजवैद्य पटियालाकृत

भाषाटीकासहिता ।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,

बम्बई.

सवत १९९१, शके १८५६



मुद्रक और प्रकाशक-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.





आयुर्वेद-ऋग् यजुः साम और अथर्व इन चारों वेदोंका सारभूत प्रधा उपवेद है। कोई इसको ऋग्वेदका प्रधान अङ्ग मानते हैं। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है-"ऋग्यजुस्सामाथर्वाख्यान् दृष्ट्वा वेदान् प्रजापतिः। विचिन्त्य तेषामर्थं चैवायुर्वेदं चकार सः॥" इति। अर्थात् ब्रह्माने ऋग्, यजुः, साम और अथर्व इन चारों वेदोंके अर्थोंको विचारकर आयुर्वेदका प्रचार किया। चरणव्यूह तो आयुर्वेदको ऋग्वेदका अङ्ग मानते हैं और धन्वन्तरिजी अथर्ववेदका। आत्रेय भगवान् लिखते हैं-"चतुर्णा ऋक्सामयजुरथर्ववेदानाम् आत्मनोऽस्यायुर्वेदस्याथर्ववेदे विशेषेणोक्तिः।" अर्थात् चारों वेदोंके आत्मभूत आयुर्वेदको अथर्ववेदमें विशेषरूपसे कथन किया है। परन्तु औषध-विज्ञान,क्रमसे चिकित्सा ऋग्वेदमें विशेष है और यन्त्र-शस्त्र-विधान अथर्वमे विशेषरूपसे पाया जाता है। इसी लिये आत्रेयजीने कहा है कि-" नहि आयुर्वेदस्याभूतोत्पत्तिरुपलभ्यते. अन्यत्रावबोधोपदेशाभ्याम् " अर्थात् यह कहीं पता नहीं लगता कि आयुर्वेद कब और किसने बनाया। केवल इतना ही मिलता है कि ब्रह्मा को स्मरण हुआ, तब चारों वेदोंके सारभूत आयुर्वेदको ब्रह्माने उपदेश किया

इस अनादि आयुर्वेदके आधारपर महान् विज्ञानसे भरी हुई ब्रह्म आदि देवताओंने, धन्वतरि आदि अवतारोंने और आत्रेय आदि महर्षियोंने उत्तम उत्तम आयुर्वेदकी संहितायें बनाईं। इनके सुश्रुत आदि और अग्निवेशादि शिष्योंकी बनाई हुई सुश्रुत चरक आदि अब भी आयुर्वेदकी प्रधान संहिताएं उत्तम टीका टिप्पणियों सहित छपी हुई मिलती हैं। इन्हीं आर्षग्रंथोंके आधारपर श्रीशार्ङ्गधर आचार्यने आर्षयोगोंको इकट्ठे करके यह शार्ङ्गधरसंहिता नामक चिकित्सा ग्रंथ बनाया जो इस समय दो संस्कृत टीका सहित छपा हुआ मिलता है। परन्तु संस्कृत टीकासे केवल संस्कृतके विद्वानोंको ही लाभ हो सकता है। जो आयुर्वेदके प्रेमी संस्कृतके विद्वान् नहीं हैं उनके लिये हिन्दी भाषामें इस उत्तम ग्रन्थका अनुवाद होना आवश्यक था। इस कारण ग्रन्थके स

भाव बतलानेवाली यह हिन्दी भाषामें भावप्रकाशिका टीका लिखी गई है। इससे ग्रन्थका मर्म सर्व साधारणकी समझमें आ सकता है। इस ग्रन्थके तीन खण्ड हैं। पहले खण्डमें परिभाषा आदि सात अध्याय हैं। दूसरे खण्डमें स्वरस और क्वाथ आदि ओषधियोंमें योग, उनके गुण, गुटिका, स्नेह, धातु, रसादि बारह अध्यायोंमें वर्णन किये हैं। तीसरे खण्डमें स्नेहपानादि पञ्चकर्मकी व्यवस्थाएँ, रक्तस्रावण और नेत्र निर्माणप्रकारादि व्यवस्थाएं १३ अध्यायोमें कथन की हैं। इस प्रकार इस संहिताके ३२ अध्याय हैं।

इस संहिताका लघुत्रयीमें जितना बड़ा मान है सो किसीमे छिपा नहीं। अब यह मुद्रित होकर सर्वसाधारणके सम्मुख आरहा है। यदि इसके भाषानुवादमे मेरी मानुषी या तुच्छ बुद्धिके कारण कोई त्रुटि रह गई हो तो भद्रपुरुष उसका सुधार करनेके लिये अपनी अनुमतिसहित मुझे सूचना देंगे। जिससे दूसरी बारके मुद्रणमें सुधार दिया जावेगा।

| | |
|---|---|
| पटियाला<br>२० मार्च–१९२८. | विनीत–<br>रामप्रसाद. |

नोट–इसकी भाषाटीका–मथुरानगर निवासी पाठक ज्ञातीय श्रीकन्हैयालाल मथुरा पुत्राऽऽयुर्वेदोद्धार संपादक पंडित दत्तराम चतुर्वेदीने की थी.इस वक्त पटियालानिवासी वैद्यरत्न प० रामप्रसादजीने परिष्कृत की है.



# शार्ङ्गधरसंहिताकी विषयानुक्रमणिका ।



इति प्रथमः खण्डः ।

तृतीयोऽध्यायः ।



चतुर्थोऽध्यायः ।



पंचमोऽध्यायः ।



षष्ठोऽध्यायः ।

## सप्तमोऽध्यायः ।

अष्टमोऽध्यायः ।



नवमोऽध्यायः ।



तैलसाधनप्रकार ।

मध्यमखंडः समाप्तः ।

## तृतीयः खण्डः ।

### प्रथमोऽध्यायः ।

## द्वितीयोऽध्यायः ।



## तृतीयोऽध्यायः ।

## चतुर्थोऽध्यायः ।



## पंचमोऽध्यायः ।

## षष्ठोऽध्यायः।



## सप्तमोऽध्यायः।

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|



## अष्टमोऽध्यायः ।



## नवमोऽध्यायः ।



## दशमोऽध्यायः ।

## एकादशोऽध्यायः।

इत्यनुक्रमणिका सम्पूर्णा ।

॥ श्रीसाम्बशिवाय नमः ॥

# शार्ङ्गधरसंहिता ।

## भावप्रकाशिका-भाषाटीकासमेता ।



प्रणम्य देवदेवेशं दुःखत्रयविनाशकम् ।
शार्ङ्गधरसंहितायां नाम्ना भावप्रकाशिका ॥ १ ॥
टिप्पणीसहिता व्याख्या बालानां हितमिच्छता ।
वैद्यरामप्रसादेन क्रियते विशदा शुभा ॥ २ ॥

अर्थ-सनातन कालसे ऋषि महर्षि आचार्य आदिकोंका यह नियम चला आया है कि जब वे किसी ग्रन्थको निर्माण करने लगते हैं तब आदिमें ग्रन्थकी निर्विघ्न समाप्तिके लिये मङ्गलाचरण अवश्य करते हैं । उनके शिष्य भी ऐसा ही करें इसलिये ग्रन्थके आदिमें वह मङ्गल लिख देते हैं । और ऐसाही शिष्टाचार भी है । वह मङ्गलाचरण-आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक और वस्तुनिर्देशात्मक भेदसे तीन प्रकारका होता है । यहांपर श्रीशार्ङ्गधरजी आचार्य आशीर्वादात्मक मङ्गलाचरण करते हैं, जैसे-

**श्रियं स दद्याद् भवतां पुरारिर्यदङ्गतेजःप्रसरे भवानी ।**
**विराजते निर्मलचन्द्रिकायां महौषधीव ज्वलिता हिमाद्रौ ॥१॥**

टिप्पणी-१ यदङ्गतेजःप्रसरे-इस पदके कहनेसे यह दिखाया कि श्रीशिवका विभूति विभूषित अंग होनेपर भी अति शुभ्रताके कारण पर्वतकी उपमा देना युक्त ही है । और उस सुन्दर स्वरूपमें खचित श्रीभगवतीजीको ओषधिस्वरूप करके कहा यह शार्ङ्गधर आचार्यकी बुद्धिमानी सराहने योग्य है । प्रायः वैद्योंको पर्वत और ओषधीसे ही कार्य रहता है अतएव इस शार्ङ्गधरसंहितामें शिव पार्वतीकी पर्वत और ओषधीरूप उपमा देना अपना अभीष्ट दिखलाया। कोई कहते हैं कि, इस अर्द्धांगी स्वरूपके वर्णनमें वात, पित्त और कफ तीनोंका आधिपत्य वर्णन किया है,जैसे पित्त उष्ण होता है उसी प्रकार श्रीशिवका तेज उष्ण सो पित्ताधिप हुआ और श्रीपार्वतीजीकी चन्द्रिका शीतल है।सो श्लेष्माधिप हुई तथा सर्पभूषणसे वाताधिपत्य सूचित किया । जैसे ये तीनों गुण सदैव शिवमें स्थित रहते हैं उसी प्रकार इस शार्ङ्गधर ग्रन्थमें वात, पित्त, कफकी समता जाननी । और जैसे हिमालयमें ओषधी प्रकाशित हैं उसी प्रकार इस ग्रन्थमें भी ओषधियोंका वर्णन है । यद्यपि यह ग्रन्थकी भी उपमा कही परन्तु मुख्य उपमा पर्वत और शिवकी ही यथार्थ है । २ 'निर्मलचन्द्रिकायते' इति पाठान्तरम् ।

अर्थ—हिमालय पर्वतमें अत्यन्त देदीप्यमान संजीवनी आदि दिव्य महौषधी जैसे निर्मल चन्द्रमाकी चाँदनीमें शोभाको प्राप्त होती है उसी प्रकार जिनके तेजसमूहमें श्रीपार्वतीजी विराजमान हैं ऐसे श्रीशिवजी आपको कल्याण अथवा लक्ष्मी देनेवाले हो ॥ १ ॥

अब कहते हैं कि यह ग्रन्थ सम्पूर्ण प्राणिजनोंके उपकारार्थ हो इस प्रकार विचारकर इस ग्रन्थका सम्बन्ध कहना चाहिये, क्योंकि सम्बन्धके कहनेसे श्रोता और वक्ताकी प्रवृत्ति होती है, इसी कारण शाङ्गधर आचार्य भी प्रथम सम्बन्धको कहते हैं—

**प्रसिद्धयोगा मुनिभिः प्रयुक्ताश्चिकित्सकैर्ये बहुशोऽनुभूताः ॥**
**विधीयते शाङ्गधरेण तेषां सुसंग्रहः सज्जनरञ्जनाय ॥ २ ॥**

अर्थ—चरक सुश्रुतादि मुनीश्वरोंके कहे हुए और प्राचीन सद्वैद्योंने वारंवार नाम रूप योजनादिक करके अनुभव किये हुए जो विख्यात योग उनका संग्रह सज्जनोंके मनोरञ्जनार्थ शाङ्गधर नामक मैं करता हूँ। तात्पर्य यह है कि चरक सुश्रुतादि मुनीश्वरोंके प्रयोग जहाँ तहाँसे लेकर प्रकारान्तरसे उन्हींको शुद्ध करके मैं लिखता हूँ, इसके कहनेसे ग्रन्थकी उत्तमता दिखाई और त्रिकालदर्शीको मुनि कहते हैं उनके कहे प्रयोग मेरे इस ग्रन्थमें हैं इस वाक्यके कहनेसे ग्रन्थकी प्रामाणिकता दिखाई। एवं वैद्योंके अनुभव किये हुए योग इसमें कहे हैं, इससे इस ग्रन्थकी अन्य सर्व ग्रन्थोंसे उत्कृष्टता दिखाई है अर्थात् सर्व आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें यह सर्वोत्तम है ॥ २ ॥

अब प्रथम रोगकी परीक्षा करे इत्यादि शाङ्गधर भी कहते हैं—

**हेत्वादिरूपाकृतिसात्म्यजातिभेदैः समीक्ष्यातुरसर्वरोगान् ।**
**चिकित्सितं कर्षणबृंहणाख्यं कुर्वीत वैद्यो विधिवत् सुयोगैः ॥ ३ ॥**

अर्थ—प्रथम वैद्य हेतु आदिरूप आकृति सात्म्य जाति इन भेदोंसे रोगीके सम्पूर्ण

---

१ सिद्धिः श्रोतृप्रवक्तॄणां सम्बंधकथनाद्यतः। तस्मात् सर्वेषु शास्त्रेषु सम्बन्धः पूर्वमुच्यते॥
२ रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम् । ततः कर्मभिषक् पश्चाद् ज्ञानपूर्वं समाचरेत्॥
३ जिससे रोग हो उसका नाम हेतु है उसीको निदान कहते है, जैसे मृत्तिकाभक्षणसे पीलिया होता है। ४ रोग होनेके प्रथम जंभाई आना, अङ्गोंका टूटना, अरुचि इत्यादिक लक्षण होते है उसका नाम आदिरूप है और उसको पूर्वरूप कहते हैं। ५ रोगोंके तृषा, मूर्छा, भ्रम, दाह, निद्रानाश इत्यादि लक्षण प्रकट होते हैं उस अवस्थाका नाम आकृति है उसीको रूप कहते है। ६ औषध विहार इनका रोगीके प्रकृत्यनुसार सुखकारी प्रयोग हो उसका नाम सात्म्य और उसीको उपशय कहते है। ७ जिन कारणोंसे वाताद्यन्यतमदोष दूषित हो ऊर्ध्वाधस्तिर्यक् यथेष्ट विचरनेसे जो रोगोंकी उत्पत्ति हो उस कारण तथा उस दुष्टदोष तथा उसका विचरना इन सबके वास्तविक होनेसे जो आनुपूर्विक ज्ञान हो उसको जाति अथवा सम्प्राप्ति कहते है।

रोगोंको जान फिर यथाशास्त्र उत्तम प्रकारके प्रयोगोंसे कर्षण और बृंहणरूप विविध चिकित्सा यथाक्रम करे। अन्यथा दोष लगता है जैसे वाग्भट लिखते हैं–( कि जो विना दोषोंके जाने वैद्य चिकित्साकर्मको करता है वह उस कर्मकी सिद्धिको तथा सुख और सद्गतिको नहीं प्राप्त होता )

अथवा हेतु आदिमे जिनके ऐसे जो रूपादिक तिन्होंसे प्रथम रोगपरीक्षा करके फिर चिकित्सा करे। जैसे वाग्भटमे लिखा है कि दर्शन स्पर्शन प्रश्न और निदान पूर्वरूप-रूप-उपशय तथा संप्राप्ति इनसे रोगियोंके रोगकी परीक्षा करे। तहां हेत्वादिक पांच तो कहे; अब रूपादित्रयको कहते हैं. तहां रूपके कहनेसे देहकी स्थूलता कृशता, बल, वर्ण और विकार आदिकी परीक्षा देखनेसे करे तथा "आसमंतात् कृतिः करणम्"। जिससे सर्वत्र कर्म किया जाय ऐसी त्वगिन्द्रियसे शीत, उष्ण, मृदु, कठोर आदिकी परीक्षा करे। और सात्म्यके कहनेसे हितकारी पदार्थ जानना अर्थात् आपको कौनसी वस्तु हित है इस वाक्यके प्रश्न करनेको कहा अथवा सात्म्य करके कोई अभिलापका ग्रहण करते हैं अर्थात् जिस रोगीको जिस खाने पीने आदि आहार, विहारकी इच्छा हो उस इच्छाद्वारा ही वैद्य रोगीके देहस्थित दोषोंके क्षीणवृद्धिका ज्ञान करे।

इस प्रकार दर्शनादित्रयपरीक्षा कही और जातिके कहनेसे शेष इन्द्रियोंकी परीक्षा जाननी, क्योंकि सुश्रुतमें रोगकी परीक्षा छः प्रकारकी कही है, जैसे पांच श्रोत्रादि इन्द्रियोंसे और छठी प्रश्नसे। तहां दर्शनादि तीन परीक्षा कह आये हैं; अब शेष श्रोत्रादिकोंकी परीक्षा कहते हैं। तहां कर्णेन्द्रियद्वारा प्रनष्टशल्य स्थानीय रुधिर निकलनेके शब्दकी परीक्षा करे। जिह्वा इन्द्रियद्वारा प्रमेहादि रोगोंमे रसकी परीक्षा करे और घ्राणेन्द्रिय करके अरिष्ट लिङ्गादि व्रणोंके गन्धकी परीक्षा करे इस प्रकार हेत्वादिकोंकी व्याख्या कही तहां प्रथम अर्थ ठीक है दूसरा अर्थ जो त्रिविध और षड्विधपरीक्षापरत्व कहा है सो कल्पित है तथापि उत्तम है। "समीक्ष्य" इस पदके धरनेसे अज्ञानकी निवृत्ति कही ( अर्थात् बहुतसे रोग यथार्थ देखे नही गये तथा ठीक २ कहनेमे नही आये और ठीक २ विचारमें नहीं आये, अथवा जो ठीक पूछनेमे नही आये ऐसे रोग वैद्यको मोहित करते हैं ) अत एव वारंवार परीक्षाद्वारा

१ शरीरमें बढ़े हुए वातादि दोषोंको ओषधि करके घटानेको कर्षणचिकित्सा कहते है।
२ अतिक्षीण दोषोंके पुष्ट करनेको बृंहणचिकित्सा कहते हैं।
३ यस्तु दोषमविज्ञाय कर्माण्यारभते भिषक्। न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥
४ दर्शनस्पर्शनप्रश्नैः परीक्षेताथ रोगिणम्। रोगं निदानप्राग्रूपलक्षणोपशयादिभिः॥
५ पञ्चभिः श्रोत्रादिभिः प्रश्नेन चेति तत्र श्रोत्रेन्द्रियविज्ञेया विशेषा रोगेषु प्रनष्टशल्यविज्ञानीयादिषु वक्ष्यन्ते। सफेनं रक्तमीरयन्ननिलः सशब्दो निर्गच्छतीत्येवमादयः। रसनेन्द्रियाविज्ञेयाः प्रमेहादिषु रसविशेषाः। घ्राणेन्द्रियविज्ञेया अरिष्टलिङ्गादिषु व्रणानां च गन्धविशेषाः।
६ मिथ्यादृष्टा विकारा हि दुराख्यातास्तथैव च। तथा दुःपरिदृष्टाश्च मोहयेयुश्चिकित्सकम्॥

रोगनिश्चय करना चाहिये। रोगनाशक कर्म, व्याधिप्रतीकार, धातुसात्म्यार्थक्रिया ये चिकित्साके पर्यायवाचक शब्द हैं, जैसे लिखा है (उत्तम भिषगादिचतुष्टयोंका विकृतधातुके समान करनेके अर्थ जो प्रवृत्ति है उसको चिकित्सा कहते हैं ) इस कर्षण बृंहण चिकित्सा करके दोषोंको घटावे और बढ़ावे जैसे लिखा है कि ( दोषोंकी विषमताको रोग कहते हैं और दोषोंकी समानताको आरोग्य कहते हैं ) "सुयोगैः" इस पदसे यह सूचना करी कि सुंदर द्रव्योंके प्रयोगोंसे अर्थात् शीघ्र आरोग्यकर्ता औषधों करके वैद्य रोगीकी चिकित्सा करे ॥ ३ ॥

औषधियोंके प्रभाव।

**दिव्यौषधीनां बहवः प्रभेदा वृन्दारकाणामिव विस्फुरन्ति।**
**ज्ञात्वेति संदेहमपास्य धीरैः संभावनीया विविधप्रभावाः ॥४॥**

अर्थ—जैसे देवताओंके अपरिमित भेद और उत्कृष्ट प्रभाव प्रगट है उसी प्रकार दिव्यौषधियोंके अनेक भेद और अपरिमित शक्ति प्रगट होती है। इस प्रकार जान गम्भीरबुद्धिवाले वैद्य अपने चित्तसे सन्देहको दूर कर आदरपूर्वक औषधोंको विविधप्रभाववती माने। इस कहनेका यह तात्पर्य है कि मणि, मन्त्र और औषधियोंके प्रभाव अचिन्त्य हैं। जो बाहरके और आत्माके भावोंको हिताहित कर्ता है उसका नाम धीर है, धीर शब्दका ग्रहण इस जगह निश्चयार्थ ज्ञानके वास्ते है ॥ ४ ॥

अब प्रयोजन कहते हैं, क्योंकि×सर्वशास्त्रोंका और कर्मका जबतक प्रयोजन नहीं हो तबतक कोई ग्रहण नहीं करे अत एव उस प्रयोजनको कहते हैं—

**स्वाभाविकागन्तुककायिकान्तरा रोगा भवेयुः किल कर्मदोषजाः।**
**तच्छेदनार्थं दुरितापहारिणः श्रेयोमयान् योगवरान्नियोजयेत् ॥५॥**

अर्थ—स्वाभाविक[3], आगन्तुक[4], कायिक[5] और आन्तरिक[6] ऐसे चार प्रकारके कर्मज और दोषज रोग उत्पन्न होते हैं, उनके शांतिके अर्थ दुःखसे छुडानेवाले और पुण्यरूप ऐसे जो उत्तम योग हैं उनकी योजना करनी चाहिये ॥ ५ ॥

योगवरान् इस पदके धरनेसे यह दिखाया कि समस्त आर्ष ग्रन्थोंके उत्तम २ प्रयोग

---

१ चतुर्णां भिषगादीनां शस्तानां धातुवैकृते। प्रवृत्तिधातुसाम्यार्था चिकित्सेत्यभिधीयते॥

२ रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता।

× सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित्। यावत् प्रयोजनं नोक्तं तावत् तत् केन गृह्यते ॥

३ स्वभावकरके होनेवाले जो क्षुधा, तृषा, जरा, निद्रा आदि उनको स्वाभाविक व्याधि कहते हैं। ४ जो अभिघातनिमित्त करके रोग होते हैं ( जैसे सर्पका काटना, शस्त्र आदिका लगना) उनको आगन्तुक कहते हैं। ५ शरीरमें वातादिदोषविषमताकरके उत्पन्न हुए ज्वर, रक्तपित्त, कासादिक रोग उनको कायिक कहते हैं। ६ मनोविकार करके उत्पन्न हुए जो मद, मूर्च्छा, संन्यास, ग्रह, भूतोन्मादादिक रोग उनको आंतरिक ( मानस ) कहते हैं।

शार्ङ्गधरने संग्रह करके इस अपने ग्रन्थमें रक्खे हैं। अब कहते हैं रोग तीन प्रकारके हैं जैसे ग्रन्थांतरमें लिखा है कि ( एक तो कर्मके कोपसे, दूसरे दोषोंके कोपसे, तीसरे कर्म और दोषोंके कोपसे कायिक और मानसिक रोग प्राणियोंके देहमें होते हैं ) अब इन तीनोंके पृथक् २ लक्षण कहते हैं तहां परद्रव्य ( धरोहर आदि ) और ऋण इनके न देनेसे, गुरुस्त्रीके गमनसे, ब्राह्मण आदिके मारनेसे जो प्रगट होते हैं उनको कर्मज रोग कहते हैं; ये ओषधि करके वैद्यसे अच्छे नहीं होते किन्तु दान दया आदिकरके, ब्राह्मण गौकी सेवा करनेसे, गुरुकी आज्ञा पालन करनेसे तथा इनके साथ नम्रता रखनेसे, जप और तप इत्यादि करनेसे, पूर्वजन्मके सञ्चित कर्मसे उत्पन्न व्याधिका शमन होता है। अब दोषज व्याधिके लक्षण कहते हैं( कि वातादि दोष अपने कारणसे कुपित हो आपसमें मिलकर इतस्ततश्चलायमान हो जो विकारोंको प्रकट करते हैं उनको दोषजरोग कहते हैं ये औषध करनेसे दूर होते हैं ) अब कर्मदोषोद्भव विकारोंको कहते हैं ( कि दानादिक कर्म और ओषधि इन दोनोंके करनेसे जो रोग कथंचित् कर्म और दोषोंके क्षीण होनेसे कुछ २ शांत हों उनको कर्म दोषज विकार कहते हैं ) अब प्रत्यक्षादि प्रमाणसिद्ध प्रयोगोंके कहनेसे और संक्षेप करनेसे इस ग्रन्थका माहात्म्य कहते हैं—

**प्रयोगानागमात्सिद्धान्प्रत्यक्षादनुमानतः।**
**सर्वलोकहितार्थाय वक्ष्याम्यनतिविस्तरात् ॥ ६ ॥**

अर्थ—समस्त लोकके हितार्थ इस ग्रन्थमें प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम (शास्त्र) से सिद्ध प्रयोगोंको संक्षेपसे वर्णन करते हैं। आगमादिकोंके लक्षण जेज्जटादि आचार्योंने कहे हैं उनको सबके जाननेके अर्थ मैं इस जगह लिखता हूं ( तहां आगम कहिये वेद अथवा आप्तपुरुषोंका वाक्य है जैसे लिखा है कि जो सिद्ध प्रमाणों करके सिद्ध हो और इस लोक तथा परलोकमें हितकारी हो वह आप्तोंका आगम शास्त्र है और जो सत्य अर्थके जाननेवाले हैं उनको आप्त कहते हैं ) अब आगमसिद्ध जो सुननेमें आता है उसको कहते हैं ( जैसे लिखा है कि इस प्रयोगके प्रभावसे हजारवर्ष जीवे और वृद्धा स्त्री भी इसके सेवन करनेसे सोलह वर्षकी अवस्थावालीसी होय ) यह आगमसिद्धि कही। अब कहते हैं

१ कर्मप्रकोपेन कदाचिदेके दोषप्रकोपेन भवन्ति चान्ये। तथा परे प्राणिषु कर्मदोषप्रकोपजाः कायमनोविकाराः॥ २ दुष्टामयाः परकलत्रधनर्णहारगुर्वङ्गनागमनविप्रवधादिभिर्वा। दुष्कर्मभिस्तनुभृतामिह कर्मजास्ते नोपक्रमेण भिषजामुपयान्ति सिद्धिम् ॥ ३ दानैर्दयादिभिरपि द्विजदेवतागोसंसेवनप्रणतिभिश्च जपैस्तपोभिः। इत्युक्तपुण्यनिचयैरपचीयमानाः। प्राक्कर्मजा यदि रुजः प्रशमं प्रयान्ति॥ ४ स्वहेतुदुष्टैरनिलादिदोषैरवप्लुतैः स्वेषु मुहुश्चलद्भिः। भवन्ति ये प्राणभृतां विकारास्ते दोषजा भेषजसिद्धिसाध्याः ॥ ५ दानादिभिः कर्मभिरौषधैश्च कर्मक्षये दोषपरिक्षये च। सिद्ध्यन्ति ये यत्नवतां कथंचित् ते कर्मदोषप्रभवा विकाराः ॥ ६ सिद्धं सिद्धैः प्रमाणैस्तु हितं चात्र परत्र च। आगमः शास्त्रमाप्तानामाप्ताः सत्यार्थवेदिनः ॥ ७ जीवेद्वर्षसहस्राणि योगस्यास्य प्रभावतः॥ वृद्धा च शतवर्षीया भवेत् षोडशवार्षिकी ॥

कि जो कुछ अर्थका साक्षात्कारी ज्ञान है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं जैसे लिखा है कि ( मन इन्द्रियगत भ्रांतिरहित जो वस्तु है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं और जिसमें इन्द्रियोंका यथार्थ ज्ञान न हो उसको भ्रम कहते हैं ) जैसे वमन विरेचनादि योग प्रत्यक्षफल दिखलानेवाले है तथा जिस वस्तुका अव्यभिचारी लक्षणाकरके पीछेसे ज्ञान हो उसको अनुमान कहते हैं । जैसे पाडुरोग मिट्टी खानेसे होता है और वमन मक्खीके खानेसे होती है ऐसा अनुमान किया जाता है उसी प्रकार त्वचाके फटने और राध ( रुधिर ) निकलनेसे व्रण पक गया ऐसा अनुमान किया जाता है । प्रत्यक्ष, अनुमान और आगमन ये तीन प्रमाण आयुर्वेदमें माने जाते हैं। अब कदाचित् कोई प्रश्न करे कि यह ग्रन्थ तुम किस हेतुसे करते हो ? तहां कहते हैं कि "सर्वलोकहितार्थाय" अर्थात् सर्वलोकके हितके अर्थ कहता हूं । तहा लोक दो प्रकारका है एक स्थावर ( वृक्षादि ) और दूसरा जङ्गम ( पशुपक्षी मनुष्यादि ) । इन दोनों प्रकारके लोकोंमे यहांपर इस मनुष्यदेहका लोकशब्द करके ग्रहण है ॥

कदाचित् कोई कहे कि आप जो शार्ङ्गधर ग्रन्थमें लिखते हो उसका अन्य प्राचीन ग्रन्थद्वारा ही ज्ञान हो सकता है फिर इस पिष्टपेषण ग्रन्थसे क्या फलसिद्धि होगी ? तहां कहते हैं कि "अनतिविस्तरात्" अर्थात् विस्ताररहित इस ग्रन्थको मैं कहता हूं, अन्य आर्ष ग्रन्थ बहुत प्रपञ्चयुक्त हैं पूर्वपक्ष समाधानादि करके चित्तको उद्विग्न करते हैं इस कारण मैने यह उक्तदोषरहित संक्षेपसे कहा है अतएव यह ग्रन्थ उत्तम है॥ ६ ॥

अथ अनुक्रमणिका ।

**प्रथमं परिभाषा स्याद् भैषज्याख्यानकं तथा ।**
**नाडीपरीक्षादिविधिस्ततो दीपनपाचनम् ॥ ७ ॥**
**ततः कलादिकाख्यानमाहारादिगतिस्तथा ।**
**रोगाणां गणना चैव पूर्वखण्डोऽयमीरितः ॥ ८ ॥**

अर्थ-अब तीनों खण्डोकी अनुक्रमणिका कहते हैं-तहां परिभाषासे आदि ले रोगगणना पर्यंत सात अध्यायो करके यह पूर्वखण्ड आचार्यने कहा है । जैसे प्रथमाध्यायमे परिभाषाकथन, दूसरे अध्यायमें औषधाख्यान अर्थात् औषधभक्षणादि विधि और तथाके कहनेसे द्रव्य, रस, गुण, वीर्य, विपाकादिकोका कथन है, तीसरे अध्यायमें नाडीपरीक्षाविधि और आदिशब्दसे दूत स्वप्नादिकोंका कथन है, चतुर्थ अध्यायमें दीपनपाचनादि लक्षण और अनुलोमन विरेचन वमन लेखन स्तम्भनादिका कथन है, पञ्चमाध्यायमें कलादिकोंका कथन तथा सृष्टिक्रम शारीरादिकोंका कथन है, छठे अध्यायमें आहारादिकोकी गति और गर्भोत्पत्ति कुमारपोषणोक्ति प्रकृतिलक्षणका कथन है, सप्तमाध्यायमें रोग ( ज्वरादिकोकी ) गणना कथन इस प्रकार अध्यायोंकरके प्रथम खण्ड कहा है ।

---

१ मनोऽक्षिगतमभ्रान्तं वस्तु प्रत्यक्षमुच्यते।इन्द्रियाणामसंज्ञानं वस्तुतत्त्वं भ्रमः स्मृतः ॥

मध्यखण्डाकी अनुक्रमणीका ।

**स्वरसः क्वाथफाण्टौ च हिमः कल्कश्च चूर्णकम् ।**
**तथैव गुटिकालेहौ स्नेहः सन्धानमेव च ।**
**धातुशुद्धी रसाश्चैव खण्डोऽयं मध्यमः स्मृतः ॥ ९ ॥**

अर्थ-१ ले अध्यायमें स्वरस और पुटपाकविधि कही है । २ रे अध्यायमें काढे और प्रमथ्यादि तथा उष्णोदक, क्षीरपाक, अन्नक्रिया इनकी विधि कही है । ३ रे अध्यायमें फाण्ट और मन्थ इनकी विधि कही है । ४ थे अध्यायमें हिमविधिका कथन । ५ वें अध्यायमे कल्ककथन । ६ वें अध्यायमें चूर्णोंका कथन । ७ वें अध्यायमें गुटिकाओंका कथन । ८ वें अध्यायमें अवलेहोंका कथन । ९ वे अध्यायमें घृत और तेलका कथन । १० वें अध्यायमें मद्यभेदकथन । ११ वें अध्यायमें स्वर्णादिक धातु और उपधातु इनका शोधन मारण कथन । १२ वें अध्यायमें रस उपरस इनका शोधन मारण और सिद्धरस इनका कथन किया है । इस प्रकार बारह अध्यायों करके मध्यम खण्ड कहा है ॥ ९ ॥

उत्तरखण्डकी अनुक्रमणिका ।

**स्नेहपानं स्वेदविधिर्वमनं च विरेचनम् । ततस्तु स्नेहवस्तिः स्यात्ततश्चापि निरूहणम् ॥ १० ॥ ततश्चाप्युत्तरो वस्तिस्ततो नस्यविधिर्मतः । धूमपानविधिश्चैव गण्डूषादिविधिस्तथा ॥ ११ ॥ लेपादीनां विधिः ख्यातस्तथा शोणितविस्रुतिः । नेत्रकर्मप्रकारश्च खण्डः स्यादुत्तरस्त्वयम् ॥ १२ ॥**

अर्थ-१ ले अध्यायमें स्नेहपान[१]विधि । २ रे अध्यायमे स्वेद[२]विधि । ३रे अध्यायमें वमनविधि । ४ थे अध्यायमें विरेचनविधि । ५ वें अध्यायमे स्नेह[३]वस्तिकथन । ६ वें अध्यायमे निरूहण[४]विधि । ७ वें अध्यायमें उत्तर[५]वास्तिकथन । ८ वें अध्यायमें नस्य[६]विधि । ९ वें अध्यायमें धूमपान[७]विधि तथा व्रणधूपन और ग्रहधूपन जानना । १० वें अध्यायमें गण्डूषादि[८]विधि और कवलप्रतिसारण कथन । ११ वें अध्यायमें लेपादि[९]कोंकी और मस्तकमें तेल डालना तथा कर्णपूरणकी विधि जाननी । १२ वें

१ घृत और तेलपीनेके प्रयोगको स्नेहपान कहते है । २ देहमेंसे पसीने निकालनेकी विधिको स्वेदविधि कहते है । ३ गुदादिकोंमें तेलकी पिचकारी मारनेके प्रयोगको स्नेहवस्ति कहते हैं । ४ काढे तथा दूध इत्यादिकरके पिचकारी मारनेके प्रयोगको निरूहण वस्ति कहते हैं । ५ उत्तरवस्ति लिंगभगादिमें पिचकारी मारनेके प्रयोगको कहते हैं । ६ नाकमें औषध डालनेके प्रयोगको नस्यविधि कहते हैं । ७ चिलम हुक्का अथवा बीडीमें औषधकरके जो धुआं पीते है उसको धूमपान कहते है । ८ काढेमे अथवा रसादिकोंके कुल्ले करनेके प्रयोगको गंडूषविधि कहते है । ९ लेपादिक करनेके प्रयोगको लेपविधि कहते हैं ।

अध्यायमें रुधिर निकालनेकी विधि । १३ वें अध्यायमें नेत्रकर्मप्रकार इस प्रकार तेरह अध्यायोंकरके उत्तरखण्ड कहा है ॥ १०–१२ ॥

अब संहिताकी निरुक्तिपूर्वक श्लोकसंख्या कहते हैं–

**द्वात्रिंशत्सम्मिताध्यायैर्युक्तेयं संहिता स्मृता ।**
**षड्विंशतिशतान्यत्र श्लोकानां गणितानि च ॥ १३ ॥**

अर्थ–शार्ङ्गधरसंहिता ३२ अध्याय करके युक्त है और इसमें २६०० छब्बीससौ श्लोकोंकी संख्या कही है । पदोंके समूहसे वाक्य, वाक्योंके समूहसे प्रकरण और प्रकरणके समूहसे अध्याय होता है ॥ १३ ॥

औषधोंके मानकी परिभाषा ।

**न मानेन विना युक्तिर्द्रव्याणां जायते क्वचित् ।**
**अतः प्रयोगकार्यार्थं मानमत्रोच्यते मया ॥ १४ ॥**

अर्थ–मान ( परिमाण ) के विना औषधोंकी युक्ति (कर्त्तव्यविधि)कही नहीं होती है,अत एव औषध बनानेके लिये मान[1] ( तोल ) विधि इस संहितामें कहता हूं । यह तोलनेका प्रमाण है और भक्षणकी मात्राका प्रमाण आगे प्रत्येक प्रयोगमें कहेंगे१४॥

त्रसरेणुका परिमाण ।

**त्रसरेणुर्बुधैः प्रोक्तस्त्रिंशता परमाणुभिः ।**
**त्रसरेणुस्तु पर्यायनाम्ना वंशी निगद्यते ॥ १५ ॥**

अर्थ–तीस परमाणुका १ त्रसरेणु होता है और वंशी शब्द उसी त्रसरेणुका पर्यायवाचक शब्द है, परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं वह स्वभावसे अथवा अणुभावकरके जाने जाते हैं, नेत्रों करके नहीं प्रतीत होते ॥ १५ ॥

परमाणुके लक्षण ।

**जालान्तरगते भानौ यत् सूक्ष्मं दृश्यते रजः ।**
**तस्य त्रिंशत्तमो भागः परमाणुः स उच्यते ॥ १६ ॥**

अर्थ–जाली झरोखोंमें सूर्यकी किरण पडनेसे उन किरणोंमें जो धूलके बहुत बारीक कण उडते दीखते हैं उस एक एक कण ( रज ) का जो तीसवाँ भाग है उसको परमाणु कहते हैं । कोई इसको आगे वंशीके लक्षणको कहता है,जैसे-"जालान्तरगतैः सूर्यकरैर्वंशी विलोक्यते " अर्थात् जाली झरोखोंमें जो सूर्यकी किरणोंमें रज उडती है उसको वंशी कहते हैं ॥ १६ ॥

मरीचि आदिका परिमाण ।

**षड्वंशीभिर्मरीचिः स्यात् ताभिः षड्भिस्तु राजिका ।**

---

१ गुंजा, मासे, तोले, पौसेरा, अधसेरा इत्यादिक जानना ।

**तिसृभी राजिकाभिश्च सर्षपः प्रोच्यते बुधैः।**
**यवोऽष्टसर्षपैः प्रोक्तो गुञ्जा स्यात् तच्चतुष्टयम्॥ १७॥**

अर्थ-६ वंशकी १ मरीचि होती है, छः मरीचियोंकी १ राई, ३ राईकी १ सफेद सरसों होती है, ८ सफेद सरसोंका १ यव होता है और ४ यव (जौ) की १ गुञ्जा (रत्ती, घूंघची) होती है॥ १७॥

मासेका परिमाण।

**षड्भिस्तु रक्तिकाभि स्यान्मापको हेमधान्यकौ।**

अर्थ-६ रत्तीका १ मासा होता है, उसको हेम और धान्यक भी कहते हैं, (कोई सात रत्तीका, कोई पांच रत्तीका और कोई दश रत्तीका मासा होता है ऐसा कहते हैं)॥

शाण और कोलका परिमाण।

**माषैश्चतुर्भिः शाणः स्याद्धरणः स निगद्यते॥ १८॥**
**टङ्कः स एव कथितस्तद्द्वयं कोल उच्यते।**
**क्षुद्रको वटकश्चैव द्रङ्क्षणः स निगद्यते॥ १९॥**

अर्थ-४मासेका शाण होता है उसको धरण और टंक भी कहते है। (जहां जहां मासा आवे वहां २ छः रत्तीका मासा जानना) २ शाणका कोल होता है, उसको क्षुद्रक, वटक और द्रंक्षण भी कहते हैं, (कोल नाम बेरका है, उसके बराबर होनेसे इस तोलकी कोलसंज्ञा रक्खी है)॥ १८॥ १९॥

कर्षका परिमाण।

**कोलद्वयं च कर्षः स्यात् स प्रोक्तः पाणिमानिका। अक्षः पिचुः पाणितलं किंचित्पाणिश्च तिन्दुकम्॥ २०॥ बिडालपदकं चैव तथा षोडशिका मता। करमध्यं हंसपदं सुवर्णकवलग्रहम्। उदुम्बरं च पर्यायैः कर्ष एव निगद्यते॥ २१॥**

अर्थ-दो कोलका १ कर्ष होता है उसको पाणिमानिका, अक्ष, पिचु, पाणितल, किंचित्पाणि, तिन्दुक, बिडालपदक, षोडशिका, करमध्य, हंसपदक, सुवर्ण, कवलग्रह और उदुंबर भी कहते हैं, अर्थात् ये १३ नाम भी उसी कर्षके हैं। (अक्ष नाम बहेडेका है उसके बराबर होनेसे इस कर्षको अक्ष भी कहते हैं, तेंदूके फल समान होनेसे तिन्दुक संज्ञा है, हथेलीभरकी पाणितल संज्ञा है, तीन उंगली करके ग्राह्य है अत एव इसकी षोडशिका संज्ञा है और बिडालपदक संज्ञा है, सोलह मासेका होता है; इस कारण इसकी षोडशिका संज्ञा है और गूलरके समान होनेसे इस कर्षकी

उदुम्बर संज्ञा आचार्योंने की है, इसी प्रकार जिनती संज्ञाएं इस परिभाषमें हैं वे सब सार्थक हैं ) व्यवहारमें १ कर्षका १ तोला होता है ॥ २० ॥ २१ ॥

अर्द्धपल और पलका परिमाण।

**स्यात् कर्षाभ्यामर्द्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा।शुक्तिभ्यां च पलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रं चतुर्थिका॥प्रकुञ्चः षोडशी बिल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते॥२२॥**

अर्थ-२कर्षका एक अर्धपल, उसीको शुक्ति ( शीप ) और अष्टमिका कहते है। २ शुक्तिका १ पल होता है, उस ( पल ) के मुष्टि, आम्र, चतुर्थिका, प्रकुंच, षोडशी और बिल्व ये भी पर्यायवाचक नाम हैं ॥ २२ ॥

प्रसृतिसे आदि ले मानिकापर्यंतकी संज्ञा।

**पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतश्च निगद्यते। प्रसृतिभ्यामञ्जलिः स्यात् कुडवोऽर्धशरावकः॥२३॥ अष्टमानं च स ज्ञेयः कुडवाभ्यां च मानिका।शरावोऽष्टपलं तद्वज्ज्ञेयमत्र विचक्षणैः॥२४॥**

अर्थ-दो पलकी प्रसृति होती है. फैली हुई उंगलियोवाली हथेलीको प्रसृति और उसको प्रसृत भी कहते हैं। दो प्रसृतिकी १ अंजली ( पस्सा ) होता है, उसीको कुडव ( पावसेर ) अर्द्धशरावक और अष्टमान भी कहते हैं। दो कुडवकी १ मानिका होती है, उसको शराव, अष्टपल भी कहते हैं। एक शरावके १२८ टंक होते है ॥२३॥२४॥

प्रस्थ और आढकका परिमाण।

**शरावाभ्यां भवेत् प्रस्थश्चतुष्प्रस्थैस्तथाऽऽढकम्। भाजनं कंसपात्रं च चतुःषष्टिपलं च तत् ॥ २५ ॥**

अर्थ-दो शरावका १ प्रस्थ ( सेर ) होता है, चार प्रस्थका १ आढक होता है, उसको भाजन और कंसपात्र भी कहते हैं, यह ६४ पलका होता है ॥ २५ ॥

द्रोणसे लेकर द्रोणीपर्यंतका परिमाण।

**चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशो नल्वणोऽर्मणः। उन्मानश्च घटो राशिर्द्रोणपर्यायसंज्ञकाः ॥ २६ ॥ द्रोणाभ्यां शूर्पकुम्भौ च चतुःषष्टिः शरावकाः। शूर्पाभ्यां च भवेद्द्रोणी वाहो गोणी च सा स्मृता ॥ २७ ॥**

अर्थ-चार आढकका१द्रोण होताहै,उसको कलश, नल्वण,अर्मण, उन्मान, घट और राशिभी कहते हैं। दो द्रोणका शूर्प होता है,उसको कुम्भ भी कहते हैं। उस शूर्पके ६४ शराव होते हैं। एवं दो शूर्पकी १ द्रोणी होती है,उसको वाह और गोणी कहते हैं।

खारीका परिमाण।

**द्रोणीचतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः।**
**चतुःसहस्रपलिका षण्णवत्यधिका च सा॥ २८॥**

अर्थ-चार द्रोणीकी १ खारी होती है, उसके ४०९६ पल होते हैं॥ २८॥

भार और तुलाका परिमाण।

**पलानां द्विसहस्रं च भार एकः प्रकीर्तितः।**
**तुला पलशतं ज्ञेया सर्वत्रैवैष निश्चयः॥ २९॥**

अर्थ-२००० पलका १ भार होता है और १०० पलकी १ तुला होती है, यह केवल मगध देशमें ही नहीं, किंतु सर्व देशमें यही तोलका निश्चय जानना॥ २९॥

अब सबमानोंके ज्ञापनार्थ एक श्लोक करके मान कहते हैं-

**माषटङ्काक्षबिल्वानि कुडवः प्रस्थमाढकम्।**
**राशिर्गोणी खारिकेति यथोत्तरचतुर्गुणा॥ ३०॥**

अर्थ-माससे लेकर खारीपर्यंत एकसे दूसरी तोल चौगुनी जाननी, जैसे४मासेका १ शाण, ४ शाणका एक कर्ष, ४ कर्षका एक बिल्व, ४ बिल्वकी एक अंजली, ४ अंजलीका एक प्रस्थ, ४ प्रस्थका एक आढक, ४ आढककी एक राशि, ४ राशिकी एक गोणी, ४ गोणीकी एक खारी इस प्रकार एकसे दूसरी चौगुनी जाननी॥३०॥

अब गीली सूखी और दूध आदि पतली वस्तुओंका तोल कहते हैं-

**गुञ्जादिमानमारभ्य यावत् स्यात् कुडवस्थितिः।**
**द्रवार्द्रशुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम्॥ ३१॥**
**प्रस्थादिमानमारभ्य द्विगुणं तद् द्रवार्द्रयोः।**
**मानं तथा तुलायास्तु द्विगुणं न क्वचित् स्मृतम्॥ ३२॥**

अर्थ-जल आदि पतले पदार्थ और गीली औषध तथा सूखी औषध ये रत्तीसे लेकर कुडव पर्यंत समान लेवे और जल आदि पतले पदार्थ तथा गीली औषध ये लेनी हो तो प्रस्थसे लेकर तुलापर्यंत इनका तोल सूखी औषधकी अपेक्षा दुगुना लेवे तथा तुलासे ऊपर द्वैगुण्य कही नहीं कहा; अत एव इनका मान सूखी औषधीके समान लेवे इस अभिप्रायको स्नेहपाकमें प्रायः मानते हैं। तत्कालकी लाई हुई

---

१ तुलापलशतं तासां विंशतिर्भार उच्यते। खारी भारद्वयेनैव स्मृता षड्भाजनाधिका॥
२ रक्तिकादिषु मानेषु यावन्न कुडवो भवेत्। शुष्के द्रवार्द्रयोस्तावत् तुल्यं मानं प्रकीर्तितम्॥
३ प्रस्थादिमानमारभ्य द्विगुणं हि द्रवार्द्रयोः।कुडवोऽपि क्वचिद् दृष्टो यथा दंतीघृते मतम्॥

उदुम्बर संज्ञा आचार्योंने की है, इसी प्रकार जिनती संज्ञाएं इस परिभाषमें हैं वे सब सार्थक हैं ) व्यवहारमें १ कर्षका १ तोला होता है ॥ २० ॥ २१ ॥

अर्द्धपल और पलका परिमाण ।

**स्यात् कर्षाभ्यामर्द्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा॥शुक्तिभ्यां च पलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रं चतुर्थिका॥प्रकुञ्चः षोडशी बिल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते॥२२॥**

अर्थ-२कर्षका एक अर्धपल, उसीको शुक्ति ( शीप ) और अष्टमिका कहते हैं । २ शुक्तिका १ पल होता है, उस ( पल ) के मुष्टि, आम्र, चतुर्थिका, प्रकुंच, षोडशी और बिल्व ये भी पर्यायवाचक नाम हैं ॥ २२ ॥

प्रसृतिसे आदि ले मानिकापर्यंतकी संज्ञा ।

**पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतश्च निगद्यते । प्रसृतिभ्यामञ्जलिः स्यात् कुडवोऽर्धशरावकः ॥२३॥ अष्टमानं च स ज्ञेयः कुडवाभ्यां च मानिका॥शरावोऽष्टपलं तद्वज्ज्ञेयमत्र विचक्षणैः ॥२४॥**

अर्थ-दो पलकी प्रसृति होती है. फैली हुई उंगलियोंवाली हथेलीको प्रसृति और उसको प्रसृत भी कहते हैं। दो प्रसृतिकी १ अंजली ( पस्सा ) होता है, उसीको कुडव ( पावसेर ) अर्द्धशरावक और अष्टमान भी कहते हैं । दो कुडवकी १ मानिका होती है, उसको शराव, अष्टपल भी कहते हैं । एक शरावके १२८ टंक होते है ॥२३॥२४॥

प्रस्थ और आढकका परिमाण ।

**शरावाभ्यां भवेत् प्रस्थश्चतुष्प्रस्थैस्तथाऽऽढकम् ।
भाजनं कंसपात्रं च चतुःषष्टिपलं च तत् ॥ २५ ॥**

अर्थ-दो शरावका १ प्रस्थ ( सेर ) होता है, चार प्रस्थका १ आढक होता है, उसको भाजन और कंसपात्र भी कहते हैं, यह ६४ पलका होता है ॥ २५ ॥

द्रोणसे लेकर द्रोणीपर्यंतका परिमाण ।

**चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशो नल्वणोऽर्मणः । उन्मानश्च घटो राशिर्द्रोणपर्यायसंज्ञकाः ॥ २६ ॥ द्रोणाभ्यां शूर्पकुम्भौ च चतुःषष्टिः शरावकाः । शूर्पाभ्यां च भवेद्द्रोणी वाहो गोणी च सा स्मृता ॥ २७ ॥**

अर्थ-चार आढकका १द्रोण होताहै, उसको कलश, नल्वण, अर्मण, उन्मान, घट और राशिभी कहते हैं । दो द्रोणका शूर्प होता है, उसको कुम्भ भी कहते हैं । उस शूर्पके ६४ शराव होते हैं । एवं दो शूर्पकी १ द्रोणी होती है, उसको वाह और गोणी कहते हैं ।

खारीका परिमाण।

**द्रोणीचतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः।**
**चतुःसहस्रपलिका षण्णवत्यधिका च सा॥ २८॥**

अर्थ-चार द्रोणीकी १ खारी होती है, उसके ४०९६ पल होते हैं॥ २८॥

भार और तुलाका परिमाण।

**पलानां द्विसहस्रं च भार एकः प्रकीर्तितः।**[1]
**तुला पलशतं ज्ञेया सर्वत्रैवैष निश्चयः॥ २९॥**

अर्थ-२००० पलका १ भार होता है और १०० पलकी १ तुला होती है, यह केवल मगध देशमे ही नहीं, किंतु सर्व देशमें यही तोलका निश्चय जानना॥ २९॥

अब सबमानोंके ज्ञापनार्थ एक श्लोक करके मान कहते हैं-

**माषटङ्काक्षबिल्वानि कुडवः प्रस्थमाढकम्।**
**राशिर्गोणी खारिकेति यथोत्तरचतुर्गुणा॥ ३०॥**

अर्थ-माससे लेकर खारीपर्यंत एकसे दूसरी तोल चौगुनी जाननी, जैसे४मासेका १ शाण, ४ शाणका एक कर्ष, ४ कर्षका एक बिल्व, ४ बिल्वकी एक अंजली, ४ अंजलीका एक प्रस्थ, ४ प्रस्थका एक आढक, ४ आढककी एक राशि, ४ राशिकी एक गोणी, ४ गोणीकी एक खारी इस प्रकार एकसे दूसरी चौगुनी जाननी॥३०॥

अब गीली सूखी और दूध आदि पतली वस्तुओंका तोल कहते हैं-

**गुञ्जादिमानमारभ्य यावत् स्यात् कुडवस्थितिः।**[2]
**द्रवार्द्रशुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम्॥ ३१॥**
**प्रस्थादिमानमारभ्य द्विगुणं तद् द्रवार्द्रयोः।**[3]
**मानं तथा तुलायास्तु द्विगुणं न क्वचित् स्मृतम्॥ ३२॥**

अर्थ-जल आदि पतले पदार्थ और गीली औषध तथा सूखी औषध ये रत्तीसे लेकर कुडव पर्यंत समान लेवे और जल आदि पतले पदार्थ तथा गीली औषध ये लेनी हों तो प्रस्थसे लेकर तुलापर्यंत इनका तोल सूखी औषधकी अपेक्षा दुगुना लेवे तथा तुलासे ऊपर द्वैगुण्य कहीं नहीं कहा; अत एव इनका मान सूखी औषधीके समान लेवे इस अभिप्रायको स्नेहपाकमें प्रायः मानते हैं। तत्कालकी लाई हुई

---

१ तुलापलशतं तासां विंशतिर्भार उच्यते। खारी भारद्वयेनैव स्मृता षड्भाजनाधिका॥
२ रक्तिकादिषु मानेषु यावन्न कुडवो भवेत्। शुष्के द्रवार्द्रयोस्तावत् तुल्यं मानं प्रकीर्तितम्॥
३ प्रस्थादिमानमारभ्य द्विगुणं हि द्रवार्द्रयोः।कुडवोऽपि क्वचिद् दृष्टो यथा दंतीघृते मतम्।

औषधको गीली कहते हैं । जो धूपमें सुखाय लीनी हो अथवा बहुत दिनकी धरी हुई औषधको शुष्क कहते हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

कुडवपात्र बनानेकी रीति।

**मृद्वृक्षवेणुलोहादेर्भाण्डं यच्चतुरङ्गुलम् ।**
**विस्तीर्णं च तथोक्तं च तन्मानं कुडवं वदेत् ॥ ३३ ॥**

अर्थ-चार अंगुल लम्बा चार अंगुल चौडा तथा चार अंगुल ऊंचा ऐसे माटीके अथवा बांसके अथवा लोह ( सोना-चाँदी-ताँबा-जस्त-राँग-काँसा-शीसा और लोह ) के आदिशब्दसे चामके, अथवा सींग और दाँतके पात्र बनावे उसकी कुडवसंज्ञा है । इसके द्वारा दूध-जल-तेल-घृत नापा जाता है ॥ ३३ ॥

प्रथम औषधोंके नामसे प्रयोगोका नामनिर्देश ।

**यदौषधं तु प्रथमं यस्य योगस्य कथ्यते ।**
**तन्नाम्नैव स योगो हि कथ्यतेऽसौ विनिश्चयः ॥ ३४ ॥**

अर्थ-जिस प्रयोगमें जो प्रथम औषध है उसी औषधके नाम करके इस प्रयोगको जानना, उदाहरण-जैसे क्षुद्रादि,रास्नादि, गुडूच्यादि क्वाथ इनमें प्रथम कटेरी, रास्ना और गिलोय है इसी कारण क्षुद्रादि काढा, रास्नादि काढा और गुडूच्यादि काढा कहा जाता है, इसी प्रकार चन्दनादि तैल, कूष्माण्डपाक, हिग्वष्टकचूर्ण आदिमें भी जानना चाहिये ॥ ३४ ॥ इति मागधपरिभाषा ।

अथ कलिंगपरिभाषा ।

**स्थितिर्नास्त्येव मात्रायाः कालमग्निं वयो बलम् ॥**
**प्रकृतिं दोषदेशौ च दृष्ट्वा मात्रां प्रयोजयेत् ॥ ३५ ॥**

अर्थ-अब मात्राकी स्थिति नही है यह कहते हैं, जैसे कि औषधोंके सेवनका प्रमाण निश्चय करके करनेमें नही आता, इसी कारण काल, जठराग्नि, अवस्था, बल, प्रकृति, दोष और देश इनको वैद्य विचार करके अपनी बुद्धिके अनुसार मात्राकी कल्पना करे । तहां कालकरके शीत, गरमी, वर्षा जानना, जठराग्निके रोगीकी मन्द तीक्ष्ण, विषम, सम चतुर्विध अग्नि जानना । अवस्था तीन हैं आदि, मध्य और अन्त । बल तीन प्रकारका है हीन, मध्य और उत्तम । प्रकृति तीन प्रकारकी है हीन, मध्यम और उत्तम । अथवा देश जाति शरीर आदिके भेदसे प्रकृतिके बहुत भेद हैं । दोष तीन प्रकारका है वात, पित्त और कफ । देश भी दो प्रकारका है, एक भूमिदेश और एक देहदेश, तहां भूदेश तीन प्रकारका है जैसे जांगल, अनूप और साधारण उसी प्रकार देह भी जांगलादि भेदोंकरके तीन ही प्रकारका है ॥ ३५ ॥

---

१ शुष्कद्रव्यस्य या मात्रा त्वार्द्रस्य द्विगुणा हि सा । शुष्कस्य गुरुतीक्ष्णत्वात् तस्मादूर्ध्वं प्रयोजयेत् ॥

भक्षणार्थ प्रथम कही हुई कलिंगपरिभाषाको भी दिखलाते हैं-

**यतो मन्दाग्नयो ह्रस्वा हीनसत्त्वा नराः कलौ ।**
**अतस्तु मात्रा तद्योगा प्रोच्यते सुज्ञसंमता ॥ ३६ ॥**

अर्थ-कलियुगके मनुष्य मन्दाग्नि, छोटी देहवाले और तुच्छ बलके होते हैं अतएव उनके उपयोगी तथा वैद्योंको मान्य ऐसी औषधका प्रमाण कहते हैं ॥ ३६ ॥

कलिंगपरिभाषाका तोल ।

**यवो द्वादशभिर्गौरसर्षपैः प्रोच्यते बुधैः । यवद्वयेन गुञ्जा स्यात् त्रिगुञ्जो वल्ल उच्यते ॥ ३७ ॥ माषो गुञ्जाभिरष्टाभिः सप्तभिर्वा भवेत् क्वचित् । स्याच्चतुर्माषकैः शाणः सनिष्कष्टङ्क एव च । गद्याणो माषकैः षड्भिः कर्षः स्याद्दशमाषकः ॥ ३८ ॥ चतुःकर्षैः पलं प्रोक्तं दशशाणमितं बुधैः । चतुःपलैश्च कुडवं प्रस्थाद्याः पूर्ववन्मताः ॥ ३९ ॥**

अर्थ-बारह सफेद सरसोंका १यव (जौ)दो यवकी १ गुञ्जा( रत्ती ), तीन रत्तीका एक वल्ल,( कही दो रत्तीका भी वल्ल होता है ) आठ रत्तीका १ मासा, कही कहीं सात रत्तीका मासा होता है(यह तन्त्रान्तरका मत है, इसको विषकल्पमें लेना चाहिये क्योंकि सर्वत्र अप्रसिद्ध है ) चार मासेका १ शाण होता है उसको निष्क और टंक भी कहते हैं, ६ मासेका एक गद्याणक, दश मासेका एक कर्ष होता है, चार कर्षका एक पल, उस पलके दश शाण होते हैं । चार पलका १ कुडव होता है और प्रस्थादिकोंका तोल मागधपरिभाषाके समान ही जानना परन्तु यह तोल इसीके अनुक्रमसे लेना,मागधपरिभाषाका कर्ष और पलकरके नही लेना चाहिये ॥३७-३९॥

यद्यपि देशान्तरोंमें अनेक मान हैं, तथापि मागध और कलिंगमान ये दो प्रसिद्ध हैं यह कहते हैं-

**कालिङ्गं मागधं चेति द्विविधं मानमुच्यते ।**
**कालिङ्गान्मागधं श्रेष्ठं मानं मानविदो विदुः ॥ ४० ॥**

अर्थ-मान दो प्रकारका है एक कालिंग(अर्थात् उडिया देशमें प्रसिद्ध होनेसे)और दूसरा मागध(मागधदेशमें प्रसिद्ध होनेसे)तहां कालिंग मानसे मागधमान श्रेष्ठ है ऐसे मानके ज्ञाता वैद्य कहते हैं। मागधमान चरकका और कलिंगमान सुश्रुतका है ॥४० ॥

औषधोंका युक्तायुक्तविचार ।

**नवान्येव हि योज्यानि द्रव्याण्यखिलकर्मसु ।**
**विना विडङ्गकृष्णाभ्यां गुडधान्याज्यमाक्षिकैः ॥ ४१ ॥**

अर्थ–दशधा द्रव्यकल्पनादि सम्पूर्ण विषयमें नवीन ओपाधिकी योजना करनी चाहिये परन्तु वायविडंग, पीपर, गुड, अन्न, घृत और सहद ये छः पदार्थ पुराने गुणकारी होते हैं, अतएव ये पुराने लेने चाहिये । घृत भोजनमें तृप्तिके लिये सदा नवीन ( ताजा ) लेना और तिमिरादिकी औषधोंमे पुराना लेना भावप्रकाश ग्रन्थमें लिखा है–"योजयेन्नवमेवाज्यं भोजने तर्पणे श्रमे " इत्यादि, इसी प्रकार शहद भी बृंहण कार्यमें नया लेना और कर्षणमें पुराना लेना । सुश्रुतमें कहा है–"बृंहणाय मधुनवं नातिश्लेष्महरं परम् । मेदःश्लेष्मापहं ग्राहि पुराणमतिलेखनम् ॥" विडंगादिकोंका पुराणत्व १ वर्षके बाद होता है ॥ ४१ ॥

जो औषध सदैव गीली लेनी उनको कहते हैं–

**गुडूची कुटजो वासा कूष्माण्डं च शतावरी ।**
**अश्वगन्धा सहचरी शतपुष्पा प्रसारणी ॥**
**प्रयोक्तव्याः सदैवार्द्रा द्विगुणा नैव कारयेत् ॥ ४२ ॥**

अर्थ–गिलोय, कूडा ( कुरैया ), अडूसा, पेठा, शतावर, असगन्ध, पीयावांसा सौंफ और प्रसारणी ये नौ औषध सर्वकालमें गीली लेनी चाहिये, परन्तु गीली जानके द्विगुणित न लेवे ॥ ४२ ॥

साधारण औषधकी योजना ।

**शुष्कं नवीनं यद् द्रव्यं योज्यं सकलकर्मसु ।**
**आर्द्रं च द्विगुणं युञ्ज्यादेष सर्वत्र निश्चयः ॥ ४३ ॥**

अर्थ–पूर्वोक्तश्लोककी नौ ओषधियोंके बिना इतर औषध सम्पूर्ण कार्यमें सूखी हुई नवीन लेनी चाहिये और गीली होतो दूनी लेनी यह निश्चय सर्वत्र जानना ॥ ४३ ॥

अनुक्तकालादिकोंकी योजना ।

**कालेऽनुक्ते प्रभातं स्यादङ्गेऽनुक्ते जटा भवेत् ।**
**भागेऽनुक्ते तु साम्यं स्यात् पात्रेऽनुक्ते च मृन्मयम् ॥**
**द्रवेऽनुक्ते जलं ग्राह्यं तैलेऽनुक्ते तिलोद्भवम् ॥ ४४ ॥**

अर्थ–जिस प्रयोगमें काल नहीं कहा हो वहांपर प्रातःकाल लेना, जहां औषधका अङ्ग नहीं कहा हो वहाँ औषधकी जड लेनी, जिस प्रयोगमें औषधके भाग न कहे हों उस जगह सब समान भाग लेवे और जिस जगह पात्र न कहा हो, वहाँ मिट्टीका पात्र लेना चाहिये, जहाँ द्रव नहीं हो वहाँ जल लेना चाहिये, जहां तेल नहीं हो वहां तिलीका तेल लेना ॥ ४४ ॥

---

१ सर्वं च क्षीरविषवद्युक्तं भवति भेषजम्।तेषामलाभे गृह्णीयादनतिक्रान्तवत्सरम्॥२ घृतशब्दात् परं पक्वं हीनवीर्यं प्रजायते । तैलपक्वमपक्वं वा चिरस्थायि गुणाधिकम् ॥३ द्रवेऽप्यनुक्ते जलमेव देयं भागेऽप्यनुक्ते समताभिधेया। अंगेऽप्यनुक्ते विहितं तु मूलं कालेऽप्यनुक्ते दिवसस्य पूर्वम् ॥

योगमें पुनरुक्त द्रव्यका मान कहते हैं-

**एकमप्यौषधं योगे यस्मिन् यत् पुनरुच्यते।**
**मानतो द्विगुणं प्रोक्तं तद्द्रव्यं तत्त्वदर्शिभिः॥ ४५॥**

अर्थ-जिस प्रयोगमें एक औषधका नाम पर्याय करके दो वार कहा हो उसे आयुर्वेदरहस्यज्ञाता वैद्य दूना लेवे॥ ४५॥

चूर्णादिकोंमें कौनसा चन्दन लेवे।

**चूर्णस्नेहासवालेहाः प्रायशश्चन्दनान्विताः।**
**कषायलेपयोः प्रायो युज्यते रक्तचन्दनम्॥ ४६॥**

अर्थ-चूर्ण (लवंगादि) घृत तेल (लाक्षादि) आसव (कुमार्यासवादि) लेह (च्यवनप्राशावलेहादि) इनमें प्रायः सफेद् चन्दन लेना और काढे तथा लेप आदिमें प्रायः लाल चंदन लेना चाहिये. प्रायःशब्दसे यह दिखाया कि कहीं (एलादिचूर्णमें भी) लाल चंदन लेवे, क्योंकि व्याधिविहित है और काढे आदिमें सफेद चंदन लेवे॥ ४६॥

अब सिद्ध की हुई औषधोंके काल व्यतीत होनेसे गुणहीनत्व कहते है-

**गुणहीनं भवेद्वर्षादूर्ध्वं तद्रूपमौषधम्।**
**मासद्वयात् तथा चूर्णं हीनवीर्यत्वमाप्नुयात्॥ ४७॥**
**हीनत्वं गुटिकालेहौ लभेते वत्सरात् परम्।**
**हीनाः स्युर्घृततैलाद्याश्चतुर्मासाधिकात् तथा॥ ४८॥**
**ओषध्यो लघुपाकाः स्युर्निर्वीर्या वत्सरात् परम्।**
**पुराणाः स्युर्गुणैर्युक्ता आसवा धातवो रसाः॥ ४९॥**

अर्थ-वनसे लायी हुई औषध एक वर्षके पश्चात् तेज और गुणसे रहित होजाती है, तालीसादि चूर्ण दो महीनेके पश्चात् हीनवीर्य होजाते है अर्थात् कुछ २ गुणोंसे न्यून होजाते हैं सर्वथा वीर्यरहित नही होते, क्योंकि लवणभास्करादिचूर्णोंका प्रमाण अधिक कहा है वह अधिक कालतक सेवनके लिये ही कहा है, अन्यथा यह व्यर्थ होजायगा और विजयादि गुटिका तथा खंडकादि अवलेह आदि बहुत काल रखने से भी अपने गुणको नही त्यागते, परंतु कुछ २ गुणरहित होजाते हैं। और घृत तेल आदि १६ महीनोंके उपरांत गुणहीन होते हैं। कोई (चतुर्मासादिकास्तथा) ऐसा पाठ कहकर अर्थ करते हैं कि, वर्षाकालके चार महीने व्यतीत होनेपर घृततैलादि हीनवीर्य होते है। लघुपाक हुई यह गेहूँ चना आदि औषधी १ वर्षके अनंतर

१ घृते तैले च योगे तु यद् द्रव्यं पुनरुच्यते। तज्ज्ञातव्यमिहार्येण मानतो द्विगुणं भवेत॥ २प्रायःशब्दो विशेषार्थे क्वचिन्न्यूनेऽपि दृश्यते।३घृतमब्दात् परं किंचिद्धीनवीर्यत्वमाप्नुयात्॥ तैलं पक्वमपक्वं वा चिरस्थायि गुणाधिकम्। एतेषु यवगोधूमतिलमाषा नवा हिताः। रूढा पुराणा विरसा न तथा गुणकारिणः॥

निर्वीर्य होती हैं. बहुत कालतक रहनेसे गुड अधिक गुणवान् होता है । एवम् आसव ( कुमार्यासवादि ) सुवर्ण आदि धातुकी भस्म और चन्द्रोदयादि रस वा रसायन ये जितने पुराने हों उतने ही अधिकगुणवाले होते है ॥ ४७-४९ ॥

रोगोंके उक्तानुक्त द्रव्यकथन ।

**व्याधेरयुक्तं यद्द्रव्यं गणोक्तमपि तत् त्यजेत् ।**
**अनुक्तमपि युक्तं यद्युज्यते तत्र तद्बुधैः ॥ ५० ॥**

अर्थ-व्याधिमें चूर्ण कषायादिकोंकी योजना करनेमें जो ओषधि दी जावे उस चूर्ण कषाय आदिमे यदि एक दो ऐसी औषध जो व्याधिके विरुद्ध होय तो गणोक्त भी हो तथापि उस विरुद्ध औषधको वैद्य निकाल डाले और यदि कोई ऐसी औषधी हो कि जो उस व्याधिको हितकारी है परन्तु चूर्ण काढे आदिमे नही कही होय तो उसको वैद्य अपनी बुद्धिसे मिलाय देवे ॥ ५० ॥

द्रव्योंके कालादिसे गुणभेदकथन ।

**आग्नेया विन्ध्यशैलाद्याः सौम्यो हिमगिरिर्मतः ॥ ५१ ॥**
**अतस्तदौषधानि स्युरनुरूपाणि हेतुभिः ।**
**अन्येष्वपि प्ररोहंति वनेषूपवनेषु च ॥ ५२ ॥**

अर्थ-विन्ध्याचल ( आदिशब्दसे मलयाचल, सह्याद्रि, पारियात्र ) आदिकोंकी उत्पन्न होनेवाली औषधी अग्निगुणभूयिष्ठ अर्थात् उष्णवीर्य होती हैं और हिमालय पर्वत आदिकी औषधी शीतवीर्य होती हैं । ये केवल पर्वतमें ही नही, किंतु वन और उपवन ( बगीचा ) आदिमें भी होती हैं अत एव जैसी २ पृथ्वीमें जैसी २ ऋतु ( शरदी, गरमी, चातुर्मास्य ) होती है उसीके अनुसार वीर्यवान् औषधी होती है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

औषध लानेकी विधि ।

**गृह्णीयात् तानि सुमनाः शुचिः प्रातः सुवासरे ।**
**आदित्यसंमुखो मौनी नमस्कृत्य शिवं हृदि ।**
**साधारणं धराद्रव्यं गृह्णीयादुत्तराश्रितम् ॥ ५३ ॥**

अर्थ-औषधी लानेके निमित्त प्रातःकाल स्वस्थ चित्त करके पवित्र होवे और उत्तम दिन ( अर्थात् उत्तम तिथि, नक्षत्र, योग और लग्नमें ) सूर्यके सन्मुख मुख करके तथा सूर्यको प्रणाम कर और हृदयमें श्रीशिव परमात्माका ध्यान कर मौनमें स्थित हो जांगल और अनूपरहित ऐसी साधारण[2] पृथ्वीमें उत्पन्न होनेवाली और उत्तर दिशामें स्थित जो औषधी हैं उनको ग्रहण करे । कोई कहता है कि उत्तराश्रित

[1] हीनं तु स्याद् घृतं पक्वं तैलं वा वत्सरात् परम् । [2] सर्वलक्षणसंपन्ना भूमिः साधारणा स्मृता ।

अर्थात् उत्तराभिमुख होकर औषधको उखाडे, इस जगह 'गृह्णीयात्' यह पद दो बार आनेसे निश्चयार्थ ज्ञापन जानना ॥ ५३ ॥

**वल्मीककुत्सितानूपश्मशानोपरमार्गजा।**
**जन्तुवह्निहिमव्याप्ता नौषधी कार्यसाधिका ॥ ५४ ॥**

अर्थ–सर्प आदिकी बॅबईकी, दुष्ट पृथ्वीकी, जलप्राय स्थानकी, श्मशानकी, ऊपर-(बंजड) पृथ्वीकी, मार्ग (रास्ते) में उत्पन्न होनेवाली एवं जो कीडाकी खायी हुई, अग्निसे जली हुई, सरदीकी मारी हुई ऐसी औषधी कार्यसाधक नहीं होती, अतएव ऐसे स्थानकी और बिगडी औषध नही लानी चाहिये। इस जगह हमारा कथन इतना ही है कि ये सम्पूर्ण औषध लानेकी आज्ञा वैद्यको है, यदि स्वयं वैद्य जावेगा तभी वल्मीकादि स्थानकी और, जंतु, अग्नि, पाले आदिसे दूषित औषधोकी परीक्षा करेगा, नीच जङ्गली मनुष्य यह बात काहेको देखेगा उसको तो कहाँसे मिले ग्राहकको देकर अपने पैसे लेनेसे काम है। दूसरे शुभाशुभ दिन वह क्यों देखने लगेगा अत एव आजकल ओषधी अपना गुण नहीं दिखाती। दूसरे यहाँके वैद्य हकीम और डाक्टरोंसे कोई ओषधीकी परीक्षाके विषयमें कुछ प्रश्न किया जावे तो वे केवल बछियाके बाबा ही निकलेंगे। कारण इसका भी वही है कि इन्होंने कभी परीक्षा न सीखी, न अपनी ऑखोंसे–देखी जो कुछ बाजारमे जङ्गली आदमी दे जाते हैं और जो कुछ उसका नाम बता जाते हैं वही उनके वास्ते ठीक है, फिर औषध विपरीतगुण करे तो कौन आश्चर्य है, अत एव हमारे भारतनिवासी वैद्योंको इस परीक्षामें कटिबद्ध होना चाहिये, कि जिससे यह विद्या सर्वथा अस्त न हो ॥ ५४ ॥

ओषधिके ग्रहण करनेका काल।

**शरद्यखिलकार्यार्थं ग्राह्यं सरसमौषधम्।**
**विरेकवमनार्थं च वसन्तान्ते समाहरेत् ॥ ५५ ॥**

शरद् ऋतु (आश्विन कार्त्तिकके महीने) में सम्पूर्ण औषधी रससे परिपूर्ण होती हैं, अतएव सर्व कार्य करनेके अर्थ इन दोनों महीनोंमें औषध लेकर घर रक्खै तथा विरेक (जुलाब) और वमन (रद्द) के लिये ग्रीष्म[१] ऋतु (ज्येष्ठ आषाढ इन दो महीनों) मे ओषधि लेनी चाहिये। यद्यपि अखिल काय कहनेसे विरेक और वमनका बोध होगया तथापि विशेषता सूचनार्थ पृथक् २ कहा है ॥ ५५ ॥

द्रव्योंके ग्राह्य अङ्ग कहते हैं–

**अतिस्थूलजटा याः स्युस्तासां ग्राह्यास्त्वचो बुधैः।**
**गृह्णीयात् सूक्ष्ममूलानि सकलान्यपि बुद्धिमान् ॥ ५६ ॥**

१ ग्रीष्मे मञ्जरिकाग्रेषु वर्षासु दलचर्मणि। वसन्ते मूलमाश्रित्य वृक्षाणां तु रसस्थितिः ॥

अर्थ–जिन वृक्षोंकी बडी जड हो ( जैसे–बड, नीम, आम आदि ) उनकी छाल लेनी चाहिये और जिन वनस्पतियोंकी छोटी जड हो ( जैसे–कटेरी, धमासा, गोखरू आदि ) उनके सर्व अङ्ग अर्थात् जड–पत्ता–फूल और शाखा सब लेनी चाहिये । कोई कहता है कि बडे वृक्षोके जडकी छाल लेवे और छोटे वनस्पतिकी जडमात्र लेनी चाहिये ॥ ५६ ॥

अब औषधोंका प्रसिद्ध अङ्गहरण कहते हैं–

**न्यग्रोधादेस्त्वचो ग्राह्याः सारं स्याद्बीजकादितः ।**
**तालीसादेश्च पत्राणि फलं स्यात् त्रिफलादितः ॥ ५७ ॥**
**धातक्यादेश्च पुष्पाणि स्नुह्यादेः क्षीरमाहरेत् ॥ ५८ ॥**

इति शार्ङ्गधरे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अर्थ–बड आदि शब्दसे पाखर, आम, जामुन, अम्बाडे आदिकी छाल लेनी, विजयसार आदि शब्दसे खैर, महुआ, बबूर आदिका सार लेना, तालीस आदि शब्दसे पत्रज घीकुवांर पान पत्ते लेने चाहिये, त्रिफला आदि शब्दकरके सुपारी, कंकोल, मैनफल आदिके फल लेने चाहिये । धाय आदि शब्दकरके सेवती, कुमोदनी, कमल आदिके पुष्प लेने चाहिये । थूहर और आदि शब्दकरके आक, दुद्धी, मदार आदिका दूध लेना एवं चकारसे नही कहे गये गोद आदि जानना ।

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतायां शार्ङ्गधरसंहिताया भावप्रकाशिकायां भाषाटीकायां प्रथमखण्डे परिभाषाऽध्यायः प्रथमः ॥ १ ॥

---

# द्वितीयोऽध्यायः २.

**भैषज्यमभ्यवहरेत् प्रभाते प्रायशो बुधः ।**
**कषायांश्च विशेषेण तत्र भेदस्तु दर्शितः ॥ १ ॥**

अर्थ–प्रथमाध्यायमें कह आये हैं कि "भैषज्याख्यानक तथा" अर्थात् इस शार्ङ्गधरके दूसरे अध्यायमें भैषज्य ( औषध ) भक्षणका काल कहेंगे । अत एव उसको कहते है, वैद्य बहुधा प्रातःकालमें रोगीको औषध भक्षण करावे और कषाय ( स्वरस, कल्क, काढा, फांट और हिम ) ये विशेष करके प्रातःकालमे ही देवे " बुधः " इस पदके धरनेसे यह सूचना की, कि औषधके कालको विचारके वैद्य अपनी बुद्धिके अनुसार औषध देवे केवल प्रातःकालका ही नियम नही है ॥ १ ॥

अब अन्य कालोंको वक्ष्यमाण प्रकार करके कहते हैं-

औषधभक्षणके पांच काल।

**ज्ञेयः पञ्चविधः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम्।**
**किंचित्सूर्योदये जाते तथा दिवसभोजने॥**
**सायन्तने भोजने च मुहुश्चापि तथा निशि॥ २॥**

अर्थ-मनुष्योंके औषधभक्षण विषयमें पांच काल हैं। उनको कहते हैं, किंचित् सूर्योदय होनेपर औषध लेना यह प्रथम काल तथा दिनमें भोजनके समय औषधी लेना दूसरा काल तथा सायंकालमे भोजनके समय औषध लेना तृतीयकाल और वारंवार औषधी लेना चतुर्थकाल एवं रात्रिमे औषध लेना वह पंचमकाल, इस प्रकार पांच काल जानना। तहां प्रातःकाल कषायके सेवनमें कहा, दूसरा काल जो भोजनके समयका है वह पांच प्रकारका है, जैसे भोजनके प्रथम लवण और अदरखका सेवन, भोजनमें मिलायके हिंग्वष्टकादि चूर्ण; भोजनके मध्यमें जैसे पानी आदि पीना, भोजनान्तमें जैसे लौंग और हरीतक्यादिका सेवन और एक भोजनके आदि अन्तमें जैसे अम्लपित्त रोगमें धात्री अवलेह भोजनके आदि अन्तमें दिया जाता है। तीसरा काल सायंकाल भोजनका समय है वह तीन प्रकारका है, जैसे कि ग्रासग्रासके पिछाडी और भोजनके अन्तमें, बाकीके काल प्रसिद्ध हैं॥ २॥

प्रथमकाल।

**प्रायः पित्तकफोद्रेके विरेकवमनार्थयोः।**
**लेखनार्थं च भैषज्यं प्रभाते नान्नमाहरेत्॥**
**एवं स्यात् प्रथमः कालो भैषज्यग्रहणं नृणाम्॥ ३॥**

अर्थ-पित्त और कफके कुपित होनेपर पित्तको विरेचन और कफको वमन उसी प्रकार लेखन (दोषोंको पतला करनेके अर्थ) प्रातःकालमें निरन्तर औषध देवे तथा रोगीको प्रातःकाल भोजन न देवे। यदि दोष उत्कृष्ट होय तो अन्य समय भी देना हितकारी लिखा है। इस प्रकार औषध ग्रहणमे मनुष्योंको प्रथम काल जानना॥ ३॥

(वक्तव्य श्लोक ३) विरेचनकी औषधि निरन्न दी जाती है, परन्तु वमनकी औषधि निरन्न नहीं दी जाती यवागू पिलाकर दीजाती है देखो वमनविधि।

द्वितीयकाल।

**भैषज्यं विगुणेऽपाने भोजनाग्रे प्रशस्यते। अरुचौ चित्रभोज्यैश्च मिश्रं रुचिरमाहरेत्॥ ४॥ समानवाते विगुणे मन्देऽग्नावग्निदीपनम्। दद्यात् भोजनमध्ये च भैषज्यं कुशलो भिषक्॥ ५॥ व्यानकोपे च भैषज्यं भोजनांते**

**समाहरेत् । हिक्काक्षेपककम्पेषु पूर्वमन्ते च भोजनात् ॥ ॥६॥ एवं द्वितीयकालश्च प्रोक्तो भैषज्यकर्म्मणि ॥ ७ ॥**

अर्थ-अपान कहिये गुदासंबंधी वायु उसके कुपित होनेपर भोजनके किंचित् पूर्व औषध भक्षण करै । अरुचि होनेपर अनेक प्रकारके अन्न तथा नाना प्रकारकी रुचिकारी वस्तुमें औषध मिलायके भोजन करै । तथा नाभिसम्बन्धी समानवायुके कोप एवं अग्निमांद्य होनेपर अग्निदीपनकर्ता औषध भोजनके मध्यमें सेवन करै । सर्वदेहव्यापी व्यान वायुके कुपित होनेपर भोजनके अंतमे औषध भक्षण करै । तथा हिचकी, आक्षेपक वायु एवं कंपवायु इनके कुपित होनेपर भोजनके प्रथम और अंतमे औषध भक्षण करे इस प्रकार दूसरा काल कहा है ॥ ४-७ ॥

तृतीयकाल ।

**उदाने कुपिते वाते स्वरभङ्गादिकारिणि । ग्रासे ग्रासान्तरे देयं भैषज्यं सान्ध्यभोजने॥८॥प्राणे प्रदुष्टे सान्ध्यस्य भक्ष्यस्यान्ते च दीयते । औषधं प्रायशो धीरैः कालोऽयं स्यात्तृतीयकः ॥९॥**

अर्थ-कंठसम्बन्धी उदान वायुके कुपित स्वरभङ्गादि कण्ठका बैठ जाना वा गूङ्गा हो जाना अथवा ( अन्य कण्ठके रोग ) होनेसे सायंकालके भोजनसे ग्रास ( गस्सा ) के साथ अथवा दो दो ग्रासोंके बीचमें औषध भक्षण करावे तथा हृदयस्थित प्राण वायुके कुपित होनेपर बहुधा सायंकालके भोजनके अंतमें औषध भक्षण करावे, इस प्रकार तीसरा काल जानना । कदाचित् कोई प्रश्न करै कि शार्ङ्गधरने पवनके पांच भेद कहे इसी प्रकार कफ और पित्तके जो पांच २ भेद हैं वे क्यो नही कहे ? तहां कहते हैं कि सब दोष, धातु, मलादिकोंमे वायुकी प्रधानता है और वायु ही अन्य कफादिकोंके प्रकोपका कारण है अत एव इसके प्रकोप करके पित्तकफका प्रकोप होता है ऐसा जानना । जैसे कहा है कि एक[1] दोष कुपित हो सम्पूर्ण दोषोंको कुपित करता है तथा सुश्रुतमें लिखा है कि "अचिंत्यवीर्यवान्" दोषोंका नियन्ता, सर्वरोगसमूहोंका राजा ऐसा यह वायु "स्वंयभू" और "भगवान्" ऐसा कहा अत एव इसको प्रधानत्व होनेसे इसीके भेद कहे हैं अन्य कफादिकोंके नही ॥ ८ ॥ ९ ॥

चतुर्थकाल ।

**मुहुर्मुहुश्च तृट्छर्दिहिक्काश्वासगरेषु च । सान्नं च भेषजं दद्यादिति कालश्चतुर्थकः ॥ १० ॥**

अर्थ-तृषा, वमन, हिचकी, श्वास तथा विषदोष ये रोग होनेसे बारंबार अन्नसहित औषध भक्षण कराना चाहिये । इस श्लोकमें जो चकार है इससे यह सूचना की, कि, तृषादि रोगोंमें अन्नरहित भी औषध दे दे इस प्रकार चतुर्थकाल कहा ॥ १० ॥

---

१ एकदोषस्तु कुपितो दोषानन्यान् प्रकोपयेत् । २ स्वयंभूरेष भगवान् वायुरित्यभिशब्दितः । अचिन्त्यवीर्यो दोषाणां नेता रोगसमूहराट् ।

पंचमकाल ।

**ऊर्ध्वजत्रुविकारेषु लेखने बृंहणे तथा ॥ पाचनं शमनं देयमनन्नं भेषजं निशि॥इति पञ्चमकालःस्यात् प्रोक्तो भैषज्यकर्मणि॥११॥**

अर्थ–जत्रु ( हसली )के ऊपर भागके ( कर्णरोग, नेत्ररोग, मुखरोग तथा नासिक रोग इत्यादि ) रोगोंके विषयमें तथा बढे हुए वातादि दोषोंके घटानेके विषयमें और अति क्षीण दोषोंके बढानेके विषयमें रात्रिके समय पाचनरूप तथा शमनरूप औषध अन्नरहित भक्षण करावे, ( तहां कोई रात्रिके कहनेसे सब रात्रि-भर औषध देवे ऐसा कहते हैं, परन्तु व्यवहारमें तो रात्रिके प्रथम प्रहरमें औषध देना ठीक है ) इस प्रकार पञ्चकाल जानना ॥ ११ ॥

**द्रव्ये रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च ।**
**संवेदनक्रमादेताः पञ्चावस्थाः प्रकीर्त्तिताः ॥ १२ ॥**

अर्थ–द्रव्यमें रस, गुण, वीर्य, विपाक और शक्ति ये पांच अवस्था हैं इनका ज्ञान क्रम करके जानना । तहां मधुरादि भेदसे रस छः प्रकारका है । गुरु मन्दादिके भेदसे गुण २० प्रकारका है । शीत उष्णके भेदसे वीर्य दो प्रकारका है । कोई शीत, उष्ण, रूक्ष, विशदादि भेदकरके अष्टविध वीर्यको मानते हैं । विपाक३प्रकारका है । कोई लघु गुरुके भेदसे विपाक दो ही प्रकारका मानते हैं । और द्रव्योंकी शक्ति अचि-न्त्य है अतएव द्रव्य प्रधान हैं, जैसे किसीने कहा है कि–"विना[1] वीर्यके पाक नहीं, और रसके विना वीर्य नहीं, द्रव्यके विना रस नहीं, अतएव द्रव्यको प्रधानत्व है" द्रव्यके कहनेसे सामान्यतः जल, छाल, सार, गोंद आदि जानना । जैसे लिखा है "जडें[2], छाल, सार, गोंद, नाल, स्वरस, पल्लव, दूध, दूधवाले फल, फूल, भस्म, तेल, कांटे, पत्र, शुंग ( कोमल पत्तेकी कली ), कन्द, प्ररोह और उद्भिज्ज आदि" तथा जंगम[3] पार्थिव[4] सब द्रव्यशब्दकरके ग्रहण किये जाते हैं ॥ १२ ॥

रसका स्वरूप ।

**मधुरोऽम्लः पटुश्चैव कटुतिक्तकषायकाः ।**
**इत्येते षड् रसाः ख्याता नानाद्रव्यसमाश्रिताः ॥ १३ ॥**

अर्थ–मधुर[5], अम्ल[6], क्षार[7], चरपरा[8], कडुआ[9] और कषैला[10] ये छः प्रकारके रस नाना द्रव्यके आश्रय करके रहते हैं ऐसे जानना ॥ १३ ॥

---

१ पाको नास्ति विना वीर्याद् वीर्यं नास्ति विना रसात् । रसो नास्ति विना द्रव्याद् द्रव्यं श्रेष्ठमतः स्मृतम् । २ मूलत्वङ्निर्यासनालस्वरसपल्लवदुग्धफलपुष्पभस्मतैलकण्टक-पत्रशुङ्गकन्दप्ररोहउद्भिदादि तथा जङ्गमपार्थिवादीनि सर्वाणि द्रव्यशब्देनाभिधीयन्ते । ३ मनुष्य पशु आदि । ४ पृथ्वीके पदार्थ सुवर्णादि । ५ मीठा । ६ खट्टा । ७ खारी । ८ तीक्ष्ण मरिच आदि । ९ कडुआ गिलोय आदि । १० कषैला हरड बहेडा आदि ।

रसोंका उत्पत्तिक्रम ।

**धराऽम्बुक्ष्माऽनलजज्वलनाकाशमारुतैः ।**
**वाय्वग्निक्ष्मानिलैर्भूतद्वये रसभवः क्रमात् ॥ १४ ॥**

अर्थ–पृथ्वी और जलसे मधुर ( मीठा ) रस उत्पन्न हुआ है । पृथ्वी और अग्निसे अम्ल ( खट्टा ) रस, जल और अग्निसे क्षार रस, आकाश और वायुसे तीक्ष्ण रस, वायु और अग्निसे तिक्त रस एवं पृथ्वी और वायुसे कषाय ( कषैला ) रस उत्पन्न हुआ है, इस प्रकार दो दो भूतोंकरके एक एक रस उत्पन्न होता है । इस प्रकार छः रसोंकी उत्पत्ति जाननी ॥ १४ ॥

गुणोंके स्वरूप ।

**गुरुः स्निग्धश्च तीक्ष्णश्च रूक्षो लघुरिति क्रमात् ॥ १५ ॥**
**धराम्बुवह्निपवनव्योम्नां प्रायो गुणाः स्मृताः ।**
**एष्वेवान्तर्भवन्त्यन्ये गुणेषु गुणसंचयाः ॥ १६ ॥**

अर्थ–पृथ्वीका भारी गुण, जलका स्निग्ध ( चिकना ) गुण, अग्निका तीक्ष्ण गुण वायुका रूक्ष गुण और आकाशका हलका गुण इस प्रकार पांच गुण क्रम करके पांच महाभूतोंके जानने । तथा इन्ही गुणोंमें दूसरे सांद्र, मृदु, श्लक्ष्ण इत्यादि गुण रहते हैं उनको अनुमानसे जानना, कोई सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण ये तीन ही गुण कहते हैं, इसका विस्तार सुश्रुत ग्रन्थमें देखिये ॥ १५ ॥ १६ ॥

वीर्यका स्वरूप ।

**वीर्यमुष्णं तथा शीतं प्रायशो द्रव्यसंश्रयम् ।**
**तत्सर्वमग्निषोमीयं दृश्यते भुवनत्रये ।**
**अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति वीर्याण्यन्यानि यान्यपि ॥ १७ ॥**

अर्थ–वीर्य बहुधा द्रव्यके आश्रय रहता है, वह दो प्रकारका है, एक शीतल और दूसरा उष्ण इसीसे त्रिलोकीमें वीर्य अग्न्यात्मक और सोमात्मक दीखते हैं तथा इन शीतोष्णवीर्य अंतर्गत अन्यवीर्यके ( स्निग्ध, रूक्ष, विशद, पिच्छिल, मृदु, तीक्ष्ण इत्यादि ) रहते हैं ॥ १७ ॥

विपाकमें स्वरूप ।

**मिष्टः पटुश्च मधुरमम्लोऽम्लं पच्यते रसः ।**
**कषायकटुतिक्तानां पाकः स्यात् प्रायशः कटुः ।**

**मधुराज्जायते श्लेष्मा पित्तमम्लाच्च जायते ।**
**कटुकाज्जायते वायुः कर्माणीति विपाकतः ॥ १८ ॥**

अर्थ-मिष्टरस और क्षाररस इनका मधुर पाक होता है, खट्टे रसका खट्टा पाक होता है । कषैले, चरपरे और कडुए रसोंका पाक बहुधा तीक्ष्ण होता है, अत एव उन तीन पाकों करके जो तीन कर्म होते हैं, उनको कहते हैं-मधुर पाककरके कफ होता है. अम्ल पाककरके पित्त होता है, और तीक्ष्ण पाककरके वायु होता हैं इस प्रकारके तीन दोष उत्पन्न होते हैं ॥ १८ ॥

प्रभावके स्वरूप ।

**प्रभावस्तु यथा धात्री लकुचस्य रसादिभिः । समाऽपि कुरुते दोषत्रितयस्य विनाशनम् । क्वचित्तु केवलं द्रव्यं कर्म कुर्यात्प्रभावतः । ज्वरं हन्ति शिरे बद्धा सहदेवीजटा यथा ॥१९॥**

अर्थ-आँवले रस गुण वीर्य विपाकादि गुण करके लकुचके समान होनेपर भी अपने प्रभावकरके वातादि तीनों दोषोंका नाश करते हैं । इस शक्तिको प्रभाव कहते हैं । कहीं एक ही द्रव्य ऐसा है कि अपने प्रभावसे शीघ्र ही रोगको दूर करता है, जैसे सहदेईकी जडको मस्तकमें बांधनेसे ज्वर दूर होता है इस प्रकार प्रभावका गुण जानना ॥ १९ ॥

रसादिकोंकी उत्कृष्टता ।

**क्वचिद् रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च ।**
**कर्म स्वं स्वं प्रकुर्वन्ति द्रव्यमाश्रित्य ये स्थिताः ॥ २० ॥**

अर्थ-कहीं रस, कहीं गुण, कहीं वीर्य, कहीं विपाक, कही शक्ति ये द्रव्यके आश्रयकरके रहनेसे अपने २ कर्म करते हैं, उन कर्मोंको उदाहरण करके दिखाते हैं प्रथम रसके उदाहरण-जैसे गिलोयका रस कटु और उष्ण होनेपर भी पित्तको शमन करता है, कारण उष्ण और कटु रस होनेसे । गुणका उदाहरण जैसे तीक्ष्ण गुणवाली भी मूली कफकी वृद्धि करती है, कारण इसका यह है कि यह स्निग्ध गुणवाली है । वीर्यका उदाहरण जैसे बडा पञ्चमूल कषैला और कडुवेसा होनेपर भी वादीको शमन करता है, कारण यह उष्णवीर्य है । विपाकका उदाहरण जैसे सोंठ तीक्ष्ण होनेपर भी वायुको शमन करती है कारण यह है कि इसका मधुर पाक है । शक्तिका उदाहरण जो कर्म रस, गुण, वीर्य विपाक करके नहीं होते वे कर्मशक्ति कहिये प्रभावकरके होते हैं, जैसे-खैर कुष्ठका नाश करता है, कारण इसका यह है कि इसकी विलक्षण शक्ति है । इसी कारण औषधोंका प्रभाव अचिंत्य[१] है । कदाचित् कोई प्रश्न करे कि गुण वीर्यमें क्या भेद है, क्योंकि

१ अमीमांस्यान्यचिन्त्यानि प्रसिद्धानि स्वभावतः ॥ आगमेनोपयोज्यानि भेषजानि विचक्षणैः ॥ इति सुश्रुते ।

जो गुण हरडेमें है वही आमलेमें है ? तहां कहते हैं कि आमला शीतलवीर्य है और हरडे उष्णवीर्य हैं अत एव वीर्यका भेद होनेसे दोनों पृथक् २ कहे हैं ॥ २० ॥ इति द्रव्यादिकथनम् ।

वातादिदोषोंका सञ्चय, प्रकोप और उपशम ।

**चयकोपसमा यस्मिन् दोषाणां संभवंति हि ।**
**ऋतुषट्कं तदाख्यातं रवे राशिषु संक्रमात् ॥ २१ ॥**

अर्थ-जिन छः ऋतुओंमें दोषोंकी वृद्धि, प्रकोप और उपशमका सम्भव होता है वे ऋतु सूर्यके बारह राशियोंमें संक्रमण करनेसे होती हैं ॥ २१ ॥

ऋतुओंके नाम ।

**ग्रीष्मो मेषवृषौ प्रोक्तौ प्रावृण्मिथुनकर्कयोः ।**
**सिंहकन्ये स्मृता वर्षास्तुलावृश्चिकयोः शरत् ॥**
**धनुर्ग्राहौ च हेमन्तौ वसंतः कुम्भमीनयोः ॥ २२ ॥**

अर्थ-मेष संक्रांतिसे लेकर वृष संक्रांतिकी समाप्ति पर्यन्त ग्रीष्म ऋतु होती है। इसी प्रकार मिथुन संक्रांतिसे लेकर कर्क संक्रांति पर्यन्त प्रावृट् ऋतु, सिह और कन्याकी संक्रांतिको वर्षा ऋतु, तुला और वृश्चिक संक्रांतिको शरद् ऋतु, धनसंक्रांति और मकरसंक्रांतिको हेमन्त ऋतु, एवं कुम्भकी संक्रांतिसे लेकर मीनकी संक्रांतिके समाप्ति पर्यन्त वसन्त ऋतु कहलाती है। इस प्रकार दो राशियोकरके दो दो महीनोंकी एक ऋतु होती है ऐसे छः ऋतु जानना। ये दोषोंके सञ्चय होनेमें ग्राह्य हैं, अयनविषयमें ग्राह्य नहीं है जैसे सुश्रुत[1]में लिखा है ॥ २२ ॥

ऋतुभेद करके वातादि दोषोंका सञ्चय, कोप और शमन ।

**ग्रीष्मे संचीयते वायुः प्रावृट्काले प्रकुप्यति । वर्षासु चीयते पित्तं शरत्काले प्रकुप्यति । हेमन्ते चीयते श्लेष्मा वसंते च प्रकुप्यति । प्रायेण प्रशमं याति स्वयमेव समीरणः । शरत्काले वसंते च पित्तं प्रावृडृतौ कफः ॥ २३ ॥**

अर्थ-गीष्म ऋतुमें वायुका सञ्चय होकर प्रावृट् कालमें प्रकोप होता है, वर्षा ऋतुमें पित्तका सञ्चय होकर शरद् ऋतुमें प्रकोप होता है एवं हेमन्त ऋतुमें कफका सञ्चय होकर वसन्त ऋतुमे कफ कुपित होता है। वायु शरद् कालमें अपने आप ही शान्त हो जाता है और पित्त वसन्त ऋतुमें स्वयं शान्त होजाता है तथा कफ प्रावृट् कालमे अपने आप शान्त होजाता है ॥ २३ ॥

---

१ इह तु वर्षाशरद्धेमन्तवसन्तग्रीष्मप्रावृषः षडृतवो भवन्ति, दोषोपचयप्रकोपप्रशमनिमित्तम् ।

## दोषसंचयप्रकोपशमनचक्रम्।

| नाम | वात | पित्त | कफ |
|---|---|---|---|
| संचय | ग्रीष्म ऋतु<br>वैशाख—ज्येष्ठ<br>मेष—वृष | वर्षा ऋतु<br>भाद्रपद—आश्विन<br>सिंह-कन्या | हेमन्त ऋतु<br>पौष—माघ<br>धन—मकर |
| कोप | प्रावृट् ऋतु<br>मिथुन—कर्क<br>आषाढ-श्रावण | शरद् ऋतु<br>तुला—वृश्चिक<br>कार्तिक—मार्गशिर | वसन्त ऋतु<br>कुम्भ—मीन<br>फाल्गुन—चैत्र |
| शमन | शरद् ऋतु<br>तुला-वृश्चिक<br>कार्तिक-मार्गशिर | वसन्त ऋतु<br>कुम्भ—मीन<br>फाल्गुन-चैत्र | प्रावृट् ऋतु<br>मिथुन—कर्क<br>आषाढ—श्रावण |

वैद्यकशास्त्रमें तीन दोषोंमें वायुको प्रधानता दी है अतएव ग्रीष्म ऋतुसे आरम्भकर अन्तमें वसन्त ऋतु कही है। गोदावरीके दक्षिणभागमें चार महीने निरंतर वर्षा होती है इसीसे चातुर्मास्यमें प्रावृट् और वर्षा ये दो ऋतु कल्पना की गई। हेमन्त और शिशिर इन दोनों ऋतुओंके गुण दोष समान हें अत एव शिशिरऋतुका परित्याग करके इस जगह हेमंतमात्र धरा है। यह कल्पना त्रिदोषोके संचय प्रकोपके अनुभव करके की है, देव पितृ कार्यमें यह ऋतुकल्पना ग्रहण नहीं करना, उसमें चैत्र वैशाख वसंत ऋतु इत्यादिक जो धर्मशास्त्रमे कही है वही संकल्प कालमें कहनी चाहिये।

यहांपर वातादिकोंके सञ्चय और कोपका कारण सुश्रुतसे लिखते हैं कि–इस ग्रीष्म ऋतुमे औषधि( गेहूं चनाआदि )साररहित, रूक्ष और अत्यन्त हलकी होती है तथा इसी प्रकारके रूक्षादि गुणयुक्त जल होते हैं. ऐसे अन्न जलके सेवन करनेसे सूर्यके तेज करके शोषित हैं देह जिन्होंकी ऐसे मनुष्योंके रूक्ष लघु और विशद-गुणवान् होनेके कारण वायुका सञ्चय होता है। वही वातका सञ्चय प्रावृट् ऋतुमें अत्यन्त जलमें भीगी पृथ्वीमें भीगी हुई देहवाले प्राणियोंके शीत वात वर्षा करके प्रेरित वातजन्य व्याधियोको उत्पन्न करती है।

कदाचित् कोई प्रश्न करे कि शीतगुणवायुका ग्रीष्मऋतुमें क्योंकर सञ्चय होता है? तहां कहते हैं कि सम्पूर्ण वातके गुणोंमें रौक्ष्यगुणकी प्रधानता है अत एव ओषधियोंके अति रूखे होनेसे रूक्ष वायुका ग्रीष्म ऋतुमें भी संचय होता है।

जिनको कफ पित्तके संचय प्रकोपका कारण जानना होय वे बृहन्निघण्टुरत्ना–करके "चर्याचन्द्रोदय"में देख लेवें इस जगह ग्रंथ बढनेके भयसे नही लिखा ॥२३॥

किसी २ पुस्तकमें यह श्लोक अधिक है–

**कार्तिकस्य दिनान्यष्टावाष्टावग्रयणस्य च।**
**यमदंष्ट्रा समाख्याता योऽल्पाहारः स जीवति ॥ २४ ॥**

अर्थ–कार्तिकके अन्तके आठ दिन और मार्गशिरके आदिके आठ दिन "यम-दंष्ट्रासंज्ञक" हैं इनमें थोडा भोजन करनेवाला जीवित रहता है।

कोई प्रश्न करै कि जिस ऋतुमें दोषोंका संचय होता है उसी ऋतुमें कोप क्यों नहीं होता? तहां कहते हैं कि वायुका ग्रीष्म ऋतुमें संचय होता है, पर इसमें ऋतु उष्ण होनेके कारण वातका कोप नहीं होता। कोइ दिन रात्रिमें ही छः ऋतुके धर्म होते हैं ऐसा कहते हैं। जैसे दिनके पूर्वभागमें वसन्तके, मध्याह्नमें ग्रीष्मके, अपरा-ह्णमें प्रावृट्के,प्रदोषमें वर्षाके, अर्धरात्रिमें शरद्के और दोघडीके तडके हेमन्त ऋतुके लक्षण होते हैं ॥ २४ ॥

अब दोषोंके अकालमें भी चयादि निमित्तकारण कहते हैं–

**चयकोपशमा दोषा विहाराहारसेवनैः।**
**समानैर्यान्त्यकालेऽपि विपरीतैर्विपर्ययम् ॥ २५ ॥**

अर्थ–वातादि दोषोंके जो गुण है उन गुणोंके [1]समान हैं गुण जिन्होंके ऐसे आ-हार और विहार इनके सेवन करके वातादि दोषोंका संचय प्रकोप और उपशम[2] होता है और वातादि दोषोके गुणोंके विपरीत[3] गुणकर्ता ऐसे विहार और गुरु स्निग्धादि पदार्थ इनके सेवन करके अकालमें वातादि दोषोंका नाश होता है ॥ २५ ॥

वायुका प्रकोप तथा शमन।

**लघुरूक्षमिताहारादतिशीताच्छ्रमात्तथा।प्रदोषे कामशोकाभ्यां भीचिन्तारात्रिजागरैः। अविघातादपां गाहाज्जीर्णेऽन्ने धातुसं-क्षयात्। वायुः प्रकोपं यात्येभिः प्रत्यनीकैश्च शाम्यति ॥२६॥**

---

१ लघु, रूक्ष, शीतादिपदार्थ वात गुणोंके समान, विदाही, तीक्ष्ण, अम्ल इत्यादि पदार्थ पित्तगुणोंके समान, मधुर, स्निग्ध इत्यादि पदार्थ कफगुणोंके समान है।

२ तात्पर्य यह है कि वातादिकोंके संचयकालमें समानगुणके विहारादिक पदार्थोंके सेवन करनेसे उन वातादिकोंका संचय होता है। एवं प्रकोपकालमें ऐसे पदार्थोंका सेवन करनेसे प्रकोप होता है और उपशमकालमे सेवन करनेसे उन दोषोंका शमन होता है।

३ गुरु स्निग्ध उष्ण इत्यादि पदार्थ वातगुणके विपरीत है। कटु, उष्ण, रूक्ष इत्यादि पदार्थ कफगुणके विरुद्ध है। और अविदाही मधुर शीतल इत्यादि पदार्थ पित्तगुणके विपरीत जानना।

अर्थ—लघु[1] आहार तथा रूक्ष[2] आहार एवं मित[3] आहार इनके सेवनकरके तथा अति शीतकाल, अतिशीत पदार्थोंके सेवन, अत्यन्त परिश्रम करना, प्रदोपकालमें काम[4], धन, पुत्रादिके वियोगजनित दुःख, भय, चिन्ता, रात्रिमें जागरण, शस्त्र, लकडी आदिकी चोट लगना, जलमें अत्यन्त बैठा रहना तथा आहारका पाक होना एवं धातुका क्षीण[5] होना इत्यादिक कारणोंसे वायुका कोप होता है और इतने कहे हुए कारणोंके प्रत्यनीक ( विरुद्ध कहिये उष्ण तथा स्निग्धादि ) पदार्थोंके सेवन करनेसे वायु शान्त होता है ॥ २६ ॥

पित्तकोप और शमन ।

**विदाहिकट्वम्लोष्णभोज्यैरत्युष्णसेवनात् ।**
**मध्याह्ने क्षुत्तृषारोधाज्जीर्यत्यन्नेऽर्धरात्रिके ।**
**पित्तं प्रकोपं यात्येभिः प्रत्यनीकैश्च शाम्यति ॥ २७ ॥**

अर्थ—दाहकारी[6],तीक्ष्ण[7], खट्टे, उष्ण पदार्थोंके सेवन करनेसे, अत्यन्त अग्निके, तापनेसे दो प्रहरके समय भूँख और प्यासके रोकनेसे, अर्द्धरात्रिके समय अन्नके परिपाक होते समय इत्यादि कारणोंकरके पित्तका प्रकोप होता है । इन उक्त कारणोंके विरोधी मधुर, शीतल आदि पदार्थोंके सेवन करनेसे पित्तका शमन होता है ॥ २७ ॥

कफका कोप और शमन ।

**मधुरस्निग्धसीतादिभोज्यैर्दिवसनिद्रया । मंदेऽग्नौ च प्रभाते च भुक्तमात्रे तथा श्रमात् ॥ २८ ॥ श्लेष्मा प्रकोपं यात्येभिः प्रत्यनीकैश्च शाम्यति ॥ २९ ॥**

अर्थ—मधुर[8], स्निग्ध[9], शीतल[10] तथा आदिशब्दसे भारी[11], श्लक्ष्णा[12]दिपदार्थोंके सेवन करनेसे, दिनमें निद्रा लेनेसे, मन्दाग्निमें अधिक भोजन करनेसे, प्रातःकालमें भोजन करनेसे, देहको परिश्रम न देनेसे अर्थात् बैठे रहनेसे इत्यादि कारणोंसे कफका प्रकोप

१ जो पदार्थ खानेसे जल्दी पच जावें उनको लघु जानने, उदाहरण मूंग मोठ आदि । २ चना आदि पदार्थ रूक्ष जानने । ३ जितना अपना आहार है उससे कम खानेको मिताहार कहते हैं । ४ स्त्रीविषयमें इच्छा होनेको काम कहते हैं । ५ धातुक्षयात् स्रुते रक्ते मन्दः संजायतेऽनलः । पवनश्च परं कोपं याति तस्मात् प्रयत्नतः ॥ इत्यादि । ६ जिनके खानेसे दाह होय उनको विदाही कहते हैं । जैसे बांस और करीलकी कोपल । ७ राई मिरच आदि तीक्ष्ण पदार्थ जानने । ८ गुड, खांड, मिश्री आदि मधुर पदार्थ जानने । ९ घी, तेल आदि स्निग्ध पदार्थ जानने । १० केलेकी फली, बरफ आदि शीतल पदार्थ जानने । ११ भैंसका दूध आदि भारी पदार्थ जानने । १२ उडद आदि श्लक्ष्ण पदार्थ जानने ।

होता है तथा इन कारणोंके विरुद्ध कहिये उष्ण तथा रूक्षादि पदार्थोंके सेवन करनेसे कफका शमन होता है ॥ २८ ॥ २९ ॥

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतायां शार्ङ्गधरसंहितायां भावप्रकाशिकाभाषाटीकायां भैषज्याख्यानं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

---

# तृतीयोऽध्यायः ३.



प्रथम लिख आये हैं कि " नाडीपरीक्षादिविधिः " अत एव भैषज्याख्यानके अनन्तर नाडीपरीक्षा लिखते हैं-

### नाडीपरीक्षा ।

**करस्याङ्गुष्ठमूले या धमनी जीवसाक्षिणी ।**
**तच्चेष्टया सुखं दुःखं ज्ञेयं कायस्य पण्डितैः ॥ १ ॥**

अर्थ-जीवकी साक्षिणी[1] ऐसी धमनी नाडी हाथके अंगूठेकी जडमें है, उसकी चेष्टा करके शरीरके सुखदुःखको पीडत[2] जाने ॥ १ ॥

दोषोंके निजस्वरूपकी चेष्टाको कहते हैं-[3]

**नाडी धत्ते मरुत्कोपे जलौकासर्पयोर्गतिम् । कुलिङ्गकाकमडूकगतिं पित्तस्य कोपतः । हंसपारावतगतिं धत्ते श्लेष्मप्रकोपतः ॥ २ ॥**

अर्थ-वादीके कोपसे नाडी जोंक[4] और सर्पकी चालके समान गमन करती है, पित्तके कोपसे नाडी कुलिंग[5] ( घरका चिडा ) कौआ और मेंडक इनकी गतिके समान चलती है एवं कफके कोपसे नाडी हंस[6] और कबूतरकी चालके सदृश चलती है॥२॥

---

१ साक्षीभूत प्राणवायुकी । २ नाडीपरीक्षा किस समय करनी किस समय नही करनी इसको जाननेवाला ।३प्रदर्शयेद्दोषानिजस्वरूपं व्यस्तं समस्तं युगलीकृतं च।मूकस्य मुग्धस्य विमोहितस्य दोषः पदार्थानिव जीवनाडी। सद्यः स्नातस्य भुक्तस्य तथा तैलावगाहिनः । क्षुत्तृषार्त्तस्य सुप्तस्य सम्यङ् नाडी न बुद्ध्यते ॥ ४ जोक और सर्प इनका टेढा—तिरछा गमन है ।५ कुलिंग, कौवा और मेडक इनका उछल २ कर चलना होता है । कोई कुलिंगके जगह " कलापि " ऐसा पाठ कहते हैं, उनके मतमे कलापि कहिये मोर इनकीसी चालके समान नाडी चलती है । ६ हंस और कबूतर इनकी धीरी २ चाल है ।

सन्निपात द्विदोषकी नाडी ।

**लावतित्तिरवर्तीनां गमनं सन्निपाततः ॥ कदाचिन्मन्दगमना कदाचिद्वेगवाहिनी ॥ २ ॥ द्विदोषकोपतो ज्ञेया हन्ति च स्थानविच्युता ॥**

अर्थ–सन्निपातमें नाडी लवा, तीतर और बटेरकीसी चाल चलती है । दो दोषोंके कोपमें नाडी धीरे २ चलकर तत्काल जलदी २ चलने लगती है तथा अपने स्थानसे अन्यत्र निजगतिसे चलती हैं जैसे पित्तके स्थानमें चक्रगतिसे चले तो वातपित्त जानना इत्यादि । वर्तिक पक्षीको कोई गरुड भी कहते हैं ॥ ३ ॥

असाध्यनाडीके लक्षण ।

**स्थित्वा स्थित्वा चलति या सा स्मृता प्राणनाशिनी ॥४॥ अतिक्षीणा च शीता च जीवितं हन्त्यसंशयम् ।**

अर्थ–जो नाडी अपने स्थानको त्याग दे अर्थात् उस स्थानसे आगे पीछे चलने लगे और जो ठहर ठहरके चले इन दोनों प्रकारकी नाडी रोगियोंके प्राणोंको नाश करती है । नाडी अत्यन्त क्षीण होगई हो और अत्यन्त शीतल होगई वह निश्चय प्राणोंको हरण करती है । चकारसे जो नाडी कुटिल और ऊँची नीची चले उस नाडीको भी प्राणहरण करनेवाली जानो ॥ ४ ॥

ज्वरादिके नाडीके लक्षण ।

**ज्वरकोपेन धमनी सोष्णा वेगवती भवेत् ॥ ५ ॥ कामक्रोधाद्वेगवहा क्षीणा चिंताभयप्लुता ॥ मन्दाग्नेः क्षीणधातोश्च नाडी मन्दतरा भवेत् ॥ ६ ॥ असृक्पूर्णा भवेत् कोष्णा गुर्वी सामा गरीयसी ॥**

अर्थ–सामान्यज्वरके कोपमें नाडी गरम और जलदी जलदी चलती है स्त्री आदिकी इच्छा होनेपर उनके न मिलनेसे तथा क्रोधसे नाडी बहुत जलदी चलती है एवं चिन्ता ( सोच–विचार ) और भयसे नाडी क्षीण होती है । कोई " चिंताभयश्रमात्" ऐसा पाठ कहते हैं । तहां श्रम कहिये ग्लानिसे नाडी क्षीण होती है, मंदाग्नि और धातुक्षीणवाले मनुष्योंकी नाडी अत्यन्त मन्द होती है तथा रुधिरके कोपसे अर्थात् रुधिरपूरित नाडी कुछ गरम और भारी होती है । कोई "कोष्णाकी जगह सोष्णा ' ऐसा पाठ कहते हैं । आमयुक्त नाडी अत्यन्त भारी होती है । जठराग्निके

---

१ लवा और तीतर ये पक्षी चपलगतिवाले है । २ नाडीमध्यवहांगुष्ठमूले योऽत्यर्थमुच्छलेत । शनैरूर्ध्वोर्ध्वगमनी कुटिला हन्ति मानवम् ॥ ३ जठरानलदौर्बल्याविपक्वस्तु यो रसः । स आमसञ्ज्ञको देहे सर्वदोषप्रकोपकः ॥ इति । आमं विदग्धं–विष्टब्धकं चेति–

दुर्बल होनेसे जो विना पका हुआ रस शेष रहता है उसकी आमसंज्ञा है । अथवा आम करके इस जगह आमाजीर्ण जानना ॥ ५ ॥ ६ ॥

उत्तमप्रकृतिके लक्षण ।

**लघ्वी वहति दीप्ताग्नेस्तथा वेगवती भवेत् ॥ ७ ॥ सुखितस्य स्थिरा ज्ञेया तथा बलवती मता । चपला क्षुधितस्यापि तृप्तस्य वहति स्थिरा ॥ ८ ॥**

अर्थ—जिस पुरुषकी जठराग्नि प्रदीप्त होती है उसकी नाडी स्थिर और बलवती होती है, भूखे मनुष्यकी नाडी चञ्चल होती है, और भोजन कर चुका हो उसकी नाडी स्थिर होती है । इति नाडीपरीक्षा ॥ ७ ॥ ८ ॥

अब प्रथम लिख आये हैं, कि आदि शब्दसे दूत स्वप्नादिक जानते अतएव दूतके लक्षणोंको कहते हैं—

दूतपरीक्षा ।

**दूताः स्वजातयो व्यङ्गाः पटवो निर्मलाम्बराः । सुखिनोऽश्ववृषारूढाः शुभ्रपुष्पफलैर्युताः ॥ ९ ॥ सुजातयः सुचेष्टाश्च सजीवदिशि संगताः । भिषजं समये प्राप्ता रोगिणः सुखहेतवे ॥ १० ॥**

अर्थ—वैद्यके बुलानेको अथवा प्रश्न करनेके विषयमें दूत कैसा होय सो कहते है— जो बुलानेको जाय वह उस रोगीकी जातिका हो, हाथ पैर आदिसे हीन न हो, सर्व कर्ममें कुशल हो, सफेद वस्त्रोंको धारण करता हो और सुखी तथा उत्तम घोडे और बैलपर बैठा हुआ सफेद पुष्प और रसभरे फल करके युक्त तथा उत्तम कुलका और उत्तम चेष्टाका करनेवाला दूत होना चाहिये । इस श्लोकमें जो चकार है इससे

—कोई " सामा गरीयसी " इस पदका अर्थ यह करते हैं कि आमके साथ जो रहे उसे साम कहते है वे दोष हैं दूष्य दूषितादिक जानने जैसे लिखा है—" आमेन तेन संपृक्ता दोषा दूष्याश्च दूषिताः । सामा इत्युपदिश्यन्ते ये च रोगास्तदुद्भवाः इति । " तहां सामदोषसे सामदूष्यसे और सामदूष्यतासे रसादिधातु दूष्य है मल मूत्र आदि दूषित है ।

१ पाखण्डाश्रमवर्णानां समक्षाः कर्मसिद्धये । त एव विपरीताः स्युर्दूताः कर्मविपन्नये ॥ ॥ २ तैलकर्दमदिग्धांगा रक्तस्रगनुलेपनाः । फलं पक्वमसारं वा गृहीत्वान्यच्च तद्विधम् । वैद्यं य उपसर्पन्ति दूतास्ते चापि गर्हिताः ॥ ३ "छिन्दतस्तृणकाष्ठानि स्पृशतो नासिकास्तनम् । वस्त्रान्तानामिकाकेशनखरोमदशास्पृशः । स्रोतोऽवरोधहृद्गण्डमूर्द्धोरःकुक्षिपाणयः । कपालोपलभस्मास्थितुषांगारकराश्च ये । विलिखन्तो महीं किंचित्काष्ठलोष्ठविभेदिनः ॥

उत्तम दर्शन और उत्तम वेष हो तथा सजीव कहिये नासिकाकी पवन जिधरको वह रही हो उधरको बैठनेवाला, अथवा उस दिशामें आनेवाला। तथा समयपर वैद्यको मिलनेवाला इस प्रकारका दूत वैद्यके घर रोगीके लिये उत्तम तिथि नक्षत्रमें आया हुआ रोगीको कल्याणकारी जानना। कोई "स्वजातयः" इस जगह "सजातयः" ऐसा पाठ कहते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥

दूतके शकुन।

**वैद्याह्वानाय दूतस्य गच्छतो रोगिणः कृते।**
**न शुभं सौम्यशकुनं प्रदीप्तं च सुखावहम् ॥ ११ ॥**

अर्थ-जिस समय दूत वैद्यके बुलानेको जाय उस समय रस्तेमें भेरी मृदंगादिक सौम्य शकुन होय तो रोगीको शुभदायक नहीं होते, अंगार तैल कुलथी इत्यादिक प्रदीप्त (अशुभ) शकुन हों तो शुभदायक हैं, अर्थात् अशुभ शकुन शुभ हैं और शुभ शकुन अशुभ होते हैं ऐसा ज्योतिषशास्त्रमें लिखा है ॥ ११ ॥

वैद्यके शकुन।

**चिकित्सां रोगिणः कर्तुं गच्छतो भिषजः शुभम्।**
**यात्रायां सौम्यशकुनं प्रोक्तं दीप्तं न शोभनम् ॥ १२ ॥**

---

१ नपुंसकाः स्त्रीवहवो नैककार्या असूयकाः। पाशदण्डायुधधराः प्राप्ता वा स्युः परम्पराः। आर्द्रा जीर्णापसव्यैकमलिनोद्धतवाससः। न्यूनाधिकाङ्गा उद्विग्ना विकृता रौद्ररूपिणः ॥ वैद्यं य उपसर्पन्ति दूतास्ते चापि गर्हिताः।

२ यस्यां प्राणमरुद्याति सा नाडी जीवसंयुतेति।

३ याम्यां दिशि प्रांजलयो विषमैकपदे स्थिताः। वैद्यं य उपसर्पंति दूतास्ते चापि गर्हिताः।

४ वैद्यस्य पित्र्ये दैवे वा कार्ये चोत्पातदर्शने। मध्याह्ने चार्धरात्रे वा सन्ध्ययोः कृत्तिकासु च। आर्द्राश्लेषामघामूलपूर्वासु भरणीषु च। चतुर्थ्यां वा नवम्यां वा षष्ठ्यां संधिदिनेषु च। दक्षिणाभिमुखे देशे त्वशुचौ वा हुताशनम्। ज्वलयन्तं पचन्तं वा क्रूरकर्मणि चोद्यते। नग्नं भूमौ शयानं वा वेगोत्सर्गेषु वा शुचिम्। प्रकीर्णकेशमभ्यक्तं स्विन्नं विक्लवमेव च। वैद्यं य उपसर्पंति दूतास्ते चापि गर्हिताः ॥ इति ॥

५ सौम्यशकुन-भेरी, मृदंग, शंख, वीणा, वेदध्वनि, मंगलगीत, पुत्रान्वित स्त्री, बछरा सहित गौ, धुले हुए वस्त्र ये सन्मुख आवे तो उत्तम जानना।

६ प्रदीप्तशकुन-कुलथी, तिल, कपास, तिनका, पाषाण, भस्म, अंगार, तेल, काली सरसों, मुरदा, ढाककी राख इत्यादि उत्तम नही जानने।

७ सद्यो रणे कर्मणि वा प्रवेशं शुभग्रहे नष्टविलोकने च। व्याधौ च नद्युत्तरणे भयार्ते शस्तः प्रयाणाद् विपरीतभावः।

अर्थ-रोगीको औषध करनेको जानेवाले वैद्यको मार्गमें सौम्य शकुन शुभदायक हैं और दीप्त शकुन अच्छे नहीं ॥ १२ ॥

निजप्रकृतिवर्णाभ्यां युक्तः सत्त्वेन संयुतः।
चिकित्स्यो भिषजा रोगी वैद्यभक्तो जितेन्द्रियः ॥ १३ ॥

अर्थ-जिस रोगीकी मलप्रकृति पलटी न हो तथा देहका वर्ण पलटा न हो, और सत्त्व

---

१भृङ्गाराञ्जनवर्द्धमाननकुलाबद्धैकपश्वामिषं शंखक्षीरनृयानपूर्णकलशच्छत्राणि सिद्धार्थकाः। वीणाकेतनमीनपंकजदधिक्षौद्राज्यगोरोचनाः कन्यारत्नसितेक्षुवस्त्रसुमनोविप्राश्वरत्नानि च। २ गमनं दक्षिणे वामात्र शस्तं श्वशृगालयोः।वामं नकुलचाषाणां नो भयं शशसर्पयोः॥भासकौशिकगृध्राणां न प्रशस्तं किलोभयम्। दर्शने च रुतं चापि न गोधाकृकलासयोः॥कुलत्थतिलकार्पासतुषपाषाणभस्मनाम्। पात्रं नेष्टं तथांगारतैलकर्दमपूरितम्॥ प्रसन्नेतरमद्यानां पूर्णं वा रक्तसर्षपैः। शवकाष्ठं पलाशानां शुष्काणां पथि संगमाः। नेष्यन्ति पतितास्थीनि दीनान्धरिपवस्तथा ॥ ३ कोई आचार्य पांच तत्त्वकरके पांचभौतिकी प्रकृति कहते हैं जैसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश तत्वों करके जाननी। कोई २ सत्त्वगुणी रजोगुणी और तमोगुणी तीन प्रकारकी प्रकृति कहते है।इस प्रकार प्रकृतियोंको कहकर अब वर्णको कहते हैं प्रकृति सात प्रकारकी है पृथक् २ दोषोंके मिलापसे और सन्निपातसे,जैसे सुश्रुतमें लिखा है-"शुक्रशोणितसंयोगाद् यो भवेद् दोष उत्कटः। प्रकृतिर्जायते तेन तस्य मे लक्षणं शृणु ॥"वही प्रकृति अन्य उपाधियोंसे भी होती है।जैसे चरकमे लिखा है कि जातिप्रसक्ता, कुलप्रसक्ता,देशानुपातिनी,कालानुपातिनी,वयोऽनुपातिनी और प्रत्यात्मनियता प्रकृति।तहाँ जातिप्रसक्ता प्रकृति जाति २ में पृथक् २ होती है जैसे सुनार,लोहार,दरजी,नाई,कुम्हार आदिमे बोलना चाल चलना आदि।कुलप्रसक्ता प्रकृति जैसे ब्राह्मणोके कुलमें तपःप्रियता क्षत्रियकुलमें शूरवीरता आदि धर्म होते है। देशानुपातिनी प्रकृति जैसे-कर्नाटक, पंजाब, उडिया, आसाम, गुजरातके रहनेवालेके कायिक, वाचिक, मानसिक धर्म पृथक् २ है। कालानुपातिनी प्रकृति जैसे-समय२मे देहादिकोमे दुर्बलता स्थूलता आदि और दोषोका संचय,कोप प्रशमादि पृथक् २ होते है। वयोऽनुपातिनी प्रकृति जैसे-बाल्य अवस्था,यौवन अवस्था और वृद्धावस्थादिकके धर्म पथक् २ होते है। और सातवी प्रत्यात्मनियता प्रकृति है जैसे प्रत्येक मनुष्यके रहती है वे सब प्रकृतियां कायिक,वाचिक और मानसिक स्वभाव विशेषकरके पृथक् २ है।

४ तहां वर्णशब्दकरके प्रभा जानना, उसीको छाया भी कहते हैं। परन्तु कोई आचार्य प्रभा और छायामें भेद मानते हैं, जैसे-

"वर्णप्रभा मिश्रिता या छाया सा परिकीर्तिता। वर्णमाक्रामति च्छाया
प्रभा वर्णप्रकाशिनी। आसन्ना लक्ष्यते छाया प्रभा दूराच्च लक्ष्यते ॥"

इस वर्णमें प्रभा छायाका केवल लक्षणभेद ही नही है किन्तु संख्यामें भी भेद है। जैसे-गौर कृष्ण, श्याम और गौर श्याम ऐसे वर्ण चार प्रकारके हैं। प्रभाके सात भेद है-

गुणी वैद्यका आज्ञाकारी तथा इन्द्रियोंका जीतनेवाला ऐसा रोगी होय तो उसकी वैद्य चिकित्सा करे अर्थात् ओषधि देवे ॥ १३ ॥

तहां दुष्ट स्वप्न।

**स्वप्नेषु नग्नान् मुण्डांश्च रक्तकृष्णाम्बरावृतान्। व्यङ्गांश्च विकृतान् कृष्णान् सपाशान् सायुधानपि ॥ १४ ॥ बध्नतो निघ्नतश्चापि दक्षिणां दिशमाश्रितान्। महिषोष्ट्रखरारूढान् स्त्रीपुंसान् यस्तु पश्यति। स स्वस्थो लभते व्याधिं रोगी यात्येव पञ्चताम् ॥ १५ ॥**

अर्थ-स्वप्नमें नंगे, संन्यासी, अथवा साईं इत्यादि मुंडे हुए,लाल, काले वस्त्रोंको पहने हुए, नाक कान कटे हुए, पागुरे, कुबडे, खंजे, काले हाथोंमे फांस, तलवार, भाला, बरछी इत्यादि धारण किये हुए, बांधते, मारते हुए, दक्षिण दिशामे स्थित भैंसा, ऊंट, गधा इनपर चढे हुए, पुरुष किंवा स्त्रियोंको देखे तो रोगरहित मनुष्य रोगी होवे और रोगी मनुष्य देखे तो मरणको प्राप्त हो ॥ १४ ॥ १५ ॥

**अधो यो निपतत्युच्चाज्जलेऽग्नौ वा विलीयते। श्वापदैर्हन्यते योऽपि मत्स्याद्यैर्गिलितो भवेत् ॥ १६ ॥ यस्य नेत्रे विलीयेते दीपो निर्वाणतां व्रजेत्। तैलं सुरां पिबेत् वापि लोहं[2] वा लभते तिलान् ॥ १७ ॥ पक्वान्नं लभतेऽश्नाति विशेत्[3] कूपरसातलम्। स स्वस्थो लभते व्याधिं रोगी यात्येव पञ्चताम् ॥ १८ ॥**

अर्थ-जो मनुष्य स्वप्नमें अपनेको पर्वत अथवा वृक्ष इत्यादि उच्चस्थानसे गिरता हुआ देखे तथा जलमें डूब जावे, अग्निमें गिर जावे, कुत्तेने काटा हो अथवा अपने कुटुंबके नाश करके पीडित हो, मछली आदि जिसको निगल जावें (आदिशब्दसे मगर, सूंस,फौट आदि निगल जावें) स्वप्नमें नेत्र जाते रहें, जलता दीपक बुझ जावे,

---

—रक्त, पीत, असित, श्याम, हरित, और पांडुर। छायाके पांच भेद हैं-स्निग्ध, विमल, रूक्ष, मलिन और संक्षिप्त। दुःख सहनशीलताको सत्त्व कहते हैं जैसे लिखा है "सत्त्ववान् सहते सर्वं संस्तभ्यात्मानमात्मना। राजसः स्तम्भमानोऽन्यैः सहते नैव तामसः॥" तहां प्रवर और मध्यमके भेदसे सत्त्वके तीन भेद हैं। इन सबके लक्षण यहांपर ग्रन्थ बढनेके भयसे नही लिखे सो ग्रन्थान्तरसे जान लेना। १ आढ्यो रोगी भिषग्वश्यो ज्ञापकः स्वत्ववानपीति। २ लौहम् इति पाठान्तरम्। ३ जननी प्रविशेन्नरः इति पाठान्तरम्।

अर्थ-रोगीको औषध करनेको जानेवाले वैद्यको मार्गमें सौम्य शकुन शुभदायक हैं और दीप्त शकुन अच्छे नहीं ॥ १२ ॥

निजप्रकृतिवर्णाभ्यां युक्तः सत्त्वेन संयुतः ।
चिकित्स्यो भिषजा रोगी वैद्यभक्तो जितेन्द्रियः ॥ १३ ॥

अर्थ-जिस रोगीकी मलप्रकृति पलटी न हो तथा देहका वर्ण पलटा न हो, और सत्त्व

---

१भृङ्गाराञ्जनवर्द्धमाननकुलाबद्धैकपश्वामिषं शंखक्षीरनृयानपूर्णकलशच्छत्राणि सिद्धार्थकाः। वीणाकेतनमीनपंकजदधिक्षौद्राज्यगोरोचनाः कन्यारत्नसितेक्षुवस्त्रसुमनोविप्राश्वरत्नानि च। २ गमनं दक्षिणे वामान्न शस्तं श्वशृगालयोः।वामं नकुलचाषाणां नो भयं शशसर्पयोः॥भासकौशिकगृध्राणां न प्रशस्तं किलोभयम् । दर्शने च रुतं चापि न गोधाकृकलासयोः॥कुलत्थतिलकार्पासतुषपाषाणभस्मनाम् । पात्रं नेष्टं तथांगारतैलकर्दमपूरितम् ॥ प्रसन्नेतरमद्यानां पूर्णं वा रक्तसर्षपैः । शवकाष्ठं पलाशानां शुष्काणां पथि संगमाः । नेष्यन्ति पतितास्थीनि दीनान्धरिपवस्तथा ॥ ३ कोई आचार्य पांच तत्त्वकरके पांचभौतिकी प्रकृति कहते हैं जैसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश तत्वो करके जाननी। कोई २ सत्त्वगुणी रजोगुणी और तमोगुणी तीन प्रकारकी प्रकृति कहते हैं।इस प्रकार प्रकृतियोंको कहकर अब वर्णको कहते हैं प्रकृति सात प्रकारकी है पृथक् २ दोषोंके मिलापसे और सन्निपातसे,जैसे सुश्रुतमें लिखा है-"शुक्रशोणितसंयोगाद् यो भवेद् दोष उत्कटः। प्रकृतिर्जायते तेन तस्य मे लक्षणं शृणु ॥"वही प्रकृति अन्य उपाधियोंसे भी होती है।जैसे चरकमें लिखा है कि जातिप्रसक्ता, कुलप्रसक्ता,देशानुपातिनी,कालानुपातिनी,वयोऽनुपातिनी और प्रत्यात्मनियता प्रकृति।तहाँ जातिप्रसक्ता प्रकृति जाति २ में पृथक् २ होती है जैसे सुनार,लोहार,दरजी,नाई,कुम्हार आदिमे बोलना चाल चलना आदि।कुलप्रसक्ता प्रकृति जैसे ब्राह्मणोके कुलमें तपःप्रियता क्षत्रियकुलमें शूरवीरता आदि धर्म होते हैं। देशानुपातिनी प्रकृति जैसे-कर्नाटक, पंजाब, उडिया, आसाम, गुजरातके रहनेवालेके कायिक, वाचिक, मानसिक धर्म पृथक् २ हैं। कालानुपातिनी प्रकृति जैसे-समय२मे देहादिकोमे दुर्बलता स्थूलता आदि और दोषोंका संचय,कोप प्रशमादि पृथक् २ होते है । वयोऽनुपातिनी प्रकृति जैसे-बाल्य अवस्था,यौवन अवस्था और वृद्धावस्थादिकके धर्म पथक् २ होते है । और सातवी प्रत्यात्मनियता प्रकृति है जैसे प्रत्येक मनुष्यके रहती है वे सब प्रकृतियां कायिक,वाचिक और मानसिक स्वभाव विशेषकरके पृथक् २ है ।

४ तहां वर्णशब्दकरके प्रभा जानना, उसीको छाया भी कहते हैं। परन्तु कोई आचार्य प्रभा और छायामें भेद मानते हैं, जैसे-

"वर्णप्रभा मिश्रिता या छाया सा परिकीर्तिता । वर्णमाक्रामति च्छाया प्रभा वर्णप्रकाशिनी। आसन्ना लक्ष्यते छाया प्रभा दूराच्च लक्ष्यते ॥ "

इस वर्णमें प्रभा छायाका केवल लक्षणभेद ही नही है किन्तु संख्यामे भी भेद है। जैसे-गौर कृष्ण, श्याम और गौर श्याम ऐसे वर्ण चार प्रकारके हैं।प्रभाके सात भेद है-

गुणी वैद्यका आज्ञाकारी तथा इन्द्रियोंका जीतनेवाला ऐसा रोगी होय तो उसकी वैद्य चिकित्सा करे अर्थात् औषधि देवे ॥ १३ ॥

तहां दुष्ट स्वप्न।

**स्वप्नेषु नग्नान् मुण्डांश्च रक्तकृष्णाम्बरावृतान्। व्यङ्गांश्च विकृतान् कृष्णान् सपाशान् सायुधानपि ॥ १४ ॥ बध्नतो निघ्नतश्चापि दक्षिणां दिशमाश्रितान्। महिषोष्ट्रखरारूढान् स्त्रीपुंसान् यस्तु पश्यति। स स्वस्थो लभते व्याधिं रोगी यात्येव पञ्चताम् ॥ १५ ॥**

अर्थ—स्वप्नमें नंगे, संन्यासी, अथवा साई इत्यादि मुंडे हुए,लाल, काले वस्त्रोंको पहने हुए, नाक कान कटे हुए, पागुरे, कुबडे, खंजे, काले हाथोंमें फांस, तलवार, भाला, बरछी इत्यादि धारण किये हुए, बांधते, मारते हुए, दक्षिण दिशामें स्थित भैंसा, ऊंट, गधा इनपर चढे हुए, पुरुष किंवा स्त्रियोंको देखे तो रोगरहित मनुष्य रोगी होवे और रोगी मनुष्य देखे तो मरणको प्राप्त हो ॥ १४ ॥ १५ ॥

**अधो यो निपतत्युच्चाज्जलेऽग्नौ वा विलीयते। श्वापदैर्हन्यते योऽपि मत्स्याद्यैर्गिलितो भवेत् ॥ १६ ॥ यस्य नेत्रे विलीयेते दीपो निर्वाणतां व्रजेत। तैलं सुरां पिबेत् वापि लोहं[२] वा लभते तिलान् ॥१७॥ पक्वान्नं लभतेऽश्नाति विशेत्[३] कूपरसातलम्। स स्वस्थो लभते व्याधिं रोगी यात्येव पञ्चताम्॥१८॥**

अर्थ—जो मनुष्य स्वप्नमें अपनेको पर्वत अथवा वृक्ष इत्यादि उच्चस्थानसे गिरता हुआ देखे तथा जलमें डूब जावे, अग्निमें गिर जावे, कुत्तेने काटा हो अथवा अपने कुटुंबके नाश करके पीडित हो, मछली आदि जिसको निगल जावें (आदिशब्दसे मगर, सूंस,फौट आदि निगल जावें) स्वप्नमें नेत्र जाते रहें, जलता दीपक बुझ जावे,

---

—रक्त, पीत, असित, श्याम, हरित, और पांडुर। छायाके पांच भेद हैं-स्निग्ध, विमल, रूक्ष, मलिन और संक्षिप्त। दुःख सहनशीलताको सत्त्व कहते हैं जैसे लिखा है "सत्त्ववान् सहते सर्वं संस्तभ्यात्मानमात्मना। राजसः स्तभ्भमानोऽन्यैः सहते नैव तामसः॥" तहां प्रवर और मध्यमके भेदसे सत्त्वके तीन भेद हैं। इन सबके लक्षण यहांपर ग्रन्थ बढनेके भयसे नहीं लिखे सो ग्रन्थान्तरसे जान लेना। १ आढ्यो रोगी भिषग्वश्यो ज्ञापकः स्वत्ववानपीति। २ लौहम् इति पाठान्तरम्। ३ जननी प्रविशेन्नरः इति पाठान्तरम्।

तेल, सुरांको पीवे, लोह (सुवर्ण, तांबा, रांगा, शीशा, लोहा आदि ) वा ग्रहणसे कपास, खल, लवण आदिको प्राप्त हो और तिल मिले, एवं पक्वान्न ( पूडी, कचौडी लड्डू ) प्राप्त हो अथवा पक्वान्नका भोजन करे ( तथा माताके उदरमें अथवा माताकी गोदमें माताके साथ शयन करे ) जो कुएँमें अथवा पातालमें प्रवेश करे तो रोगरहित मनुष्य रोगी हो और रोगी मनुष्य मरे ॥ १६–१८ ॥

दुःस्वप्नका परिहार ।

**दुःस्वप्नानेवमादींश्च दृष्ट्वा ब्रूयान्न कस्यचित् । स्नानं कुर्यादुषस्येव दद्याद्धेमतिलानथ ॥ १९ ॥ पठेत् स्तोत्राणि देवानां रात्रौ देवालये वसेत् । कृत्वैवं त्रिदिनं मर्त्यो दुःस्वप्नात् परिमुच्यते ॥ २० ॥**

अर्थ—पूर्वोक्त कहे हुए ( नग्नमुंडितादिक ) खोटे स्वप्नोंको देखकर किसीसे न कहे प्रातःकाल उठ स्नान कर काले तिल और सुवर्णका दान करे और दुष्टस्वप्ननाशक ( विष्णुसहस्रनाम गजेन्द्रमोक्षादि ) देवस्तोत्रोंका पाठ करे । इस प्रकार दिनमें कृत्य कर रात्रिमें देवमंदिरमें रहकर जागरण करे । इस प्रकार तीन दिन करनेसे वह मनुष्य दुष्टस्वप्न ( खोटे सपने ) के दोषसे छूट जाता है ॥ १९ ॥ २० ॥

अथ शुभ स्वप्न ।

**स्वप्नेषु यः सुरान् भूपान् जीवतः सुहृदो द्विजान् ।**
**गोसमिद्धाग्नितीर्थानि पश्येत् सुखमवाप्नुयात् ॥ २१ ॥**

अर्थ—जो मनुष्य स्वप्नमें इन्द्रादिक देवता, राजा महाराजा, जीवते हुए मित्र कुटुम्बके लोग और ब्राह्मण, गौ, देदीप्यमान अग्नि, मथुरा, प्रयागादि तीर्थ इत्यादिकोंको देखे अथवा तीर्थ कहिये गुरु आचार्य आदिको देखे तो सुखको प्राप्त हो ॥ २१ ॥

**तीर्त्वा कलुषनीराणि जित्वा शत्रुगणानपि ।**
**आरुह्य सौधगोशैलकरिवाहान् सुखी भवेत् ॥ २२ ॥**

अर्थ—जो मनुष्य स्वप्नमें कीचके पानियोको ( आदिशब्दसे नदी, नद, समुद्रको ) तरे अर्थात् पार होय तथा शत्रुओको जीतके आवे और सफेद घर, बैल, पर्वत और हाथी, घोडा इनपर आपको चढा हुआ देखे तो उसको सुखकी प्राप्ति हो ॥ २२ ॥

**शुभ्रपुष्पाणि वासांसि मांसमत्स्यफलानि च ।**
**प्राप्यातुरः सुखी भूयात् स्वस्थो धनमवाप्नुयात् ॥ २३ ॥**

१ धान्यादिकोंको पीस सिद्धकी हुई जो सुरा उसको स्वप्नमें पीवे तो अशुभ है और इससे व्यतिरिक्त अर्थात् अन्यप्रकारकी दारू पीवे तो शुभ है, जैसे लिखा है–" रुधिरं पिबति स्वप्ने मद्यं वापि कथंचन । ब्राह्मणो लभते विद्यामितरस्तु धनं लभेत् ॥ "

अर्थ—जो मनुष्य सफेद पुष्प, सफेद वस्त्र, कच्चा मांस, मछली और आम्र आदि फलों-को स्वप्नमें देखे वह रोगी रोगरहित हो और रोगहीन देखे तो उसको धन प्राप्ति हो॥

**अगम्यागमनं लेपो विष्टया रुदितं मृतिम्।**
**आममांसाशनं स्वप्ने धनारोग्याप्तये विदुः॥ २४॥**

अर्थ—जो मनुष्य स्वप्नमे अगम्या स्त्री (रजस्वला, बहिन, बेटी, गुरुपत्नी) आदिसे गमन करे, अथवा अगम्य स्थानमें जाय तथा विष्ठासे अपनी देह लिपी हुई देखे तथा आपको अथवा अन्यको रुदन करता अथवा मरा हुआ देखे तथा कच्चे मांसको भक्षण करता देखे तो रोगयुक्त निरोगी हो और अरोगी मनुष्यको धनप्राप्त होवे २४

**जलौका भ्रमरी सर्पो मक्षिका वापि यं दशेत्।**
**रोगी स भूयादारोग्यी स्वस्थो धनमवाप्नुयात्॥ २५॥**

अर्थ—जिस मनुष्यको सपनेमें जोक, भँवरी, सर्प और मक्खी काटें, वा शब्दसे बरैं, ततैयां मच्छर आदि डसें तो रोगी रोगरहित हो और स्वस्थ मनुष्यको धनकी प्राप्ति होवे॥ २५॥

इति श्रीवैद्यरत्न प० रामप्रसादकृतायां शार्ङ्गधरसंहितायां भावप्रकाशिकायां भाषाटीकायां नाडीपरीक्षादिविधिर्नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

# चतुर्थोऽध्यायः ४.

प्रथम यह लिख आये हैं कि "ततो दीपनपाचनम्" अत एव दीपनपाचनाध्यायको कहते हैं—

दीपनपाचन औषध।

**पचेन्नामं वह्निकृच्च दीपनं तद्यथा निशि।**
**पचत्यामं न वह्निं च कुर्याद्यत्तद्धि पाचनम्॥**
**नागकेशरवद् विद्याच्चित्रो दीपनपाचनः॥ १॥**

अर्थ—जो औषध आमको न पचावे और अग्निको प्रदीप्त करे उसको दीपनसंज्ञक जानना। जैसे सौंफ[1] और जो औषध आम[2]को पचावे और अग्निको प्रदीप्त न करे

१ द्रव्यगुणावल्याम् "शतपुष्पा लघुस्तीक्ष्णा पित्तकृद्दीपनी कटुः" कदाचित् कोई प्रश्न करे कि जब सौंफ दीपनी है फिर आमको क्यों नही पचाती और विना आमके पचे अग्नि कदाचित् दीप्त नही होती ? तहां कहते हैं कि द्रव्योंके प्रभाव अचित्य है यह सुश्रुतमें लिखा है। इन हेतुओंसे विचारनेमे नही आते "नौषधिर्हेतुभिर्विद्वान् न परीक्षेत कथंचन। सहस्राणां च हेतूनां नांबष्ठादिर्विरेचयेत्॥" इत्यादि। २ "जठरानलदौर्बल्यादविपक्कस्तु यो रसः। स आमसंज्ञको ज्ञेयः सर्वदोषप्रकोपनः"

उसको 'पाचन' संज्ञक कहते हैं जैसे नागकेसर[1] और जो अग्निको प्रदीप्त करे और आमको भी पचावे उस औषधको "दीपनपाचन" कहते हैं जैसे चित्रक[2] ॥ १ ॥

संशमन औषध ।

***न शोधयति न द्वेष्टि समान् दोषांस्तथोद्धतान् ।**
**समीकरोति विषमान् शमनं तद् यथाऽमृता ॥ २ ॥**

अर्थ–जो औषध वातादिदोष समान हों उनको बिगाडे नहीं और न शोधन करे तथा बिगडे हुए दोषोंमें मिलाकर समान दशामें प्राप्त करे, तात्पर्य यह है कि जो कुछ इस प्राणीने खाया पीया है उनको विना निकाले अर्थात् न वमन करावे न दस्त करावे किंतु जो दोष हो उसमें मिलकर उसी जगह उसको शमन कर देवे उसको "शमन"संज्ञक कहते हैं । इस जगह दोष शब्द दोषोंमे और उन दोषोंके कार्यमें भी कार्य कारणके उपचारसे लेना चाहिये । उदाहरण–जैसे गिलोय[3] ॥ २ ॥

अनुलोमन औषध ।

**कृत्वा पाकं मलानां यद् भित्त्वा बन्धमधो नयेत् ।**
**तच्चानुलोमनं ज्ञेयं यथा प्रोक्ता हरीतकी ॥ ३ ॥**

अर्थ–जो औषध मल कहिये वातादिदोषोंके पाक अर्थात् कोपको शांत करके परस्पर बद्ध अथवा अबद्धोंको पृथक् २ कर नीचेको गिरावे, अथवा वात मूत्र पुरीषादिकोंका बंध अर्थात् बद्ध कोष्ठको स्वच्छ करके मलादिकोंको अधोभागमें प्राप्त कर गुदाद्वारा निकाले उस औषधको "अनुलोमन" जानना । उदाहरण जैसे हरडे ॥ ३ ॥

स्रंसन औषध ।

**पक्तव्यं यदपक्त्वैव श्लिष्टं कोष्ठे मलादिकम् ।**
**नयत्यधः स्रंसनं तद्यथा स्यात् कृतमालकः ॥ ४ ॥**

अर्थ–पश्चात् पाक होने योग्य जो वातादिके[4] दोष उनके कोष्ठाश्रित होनेसे[5] जो औषध उनको विना ही पाक किये नीचेके भागमे लाकर गुदाके द्वारा निकाले उसको "स्रंसन" संज्ञक औषध कहते हैं । उदाहरण जैसे अमलतासका गदा ॥ ४ ॥

---

१ नागकेशरके "रूक्षमुष्णं" लघ्वामपाचनमिति । २ चित्रकः कटुकः पाके वह्निकृत् पाचनो लघुः । * न शोधयति यद् दोषान् समान् नोदीरयत्यपि । समीकरोति क्रुद्धांश्च तत् संशमनमुच्यते ॥ इति पाठान्तरम् । ३ रसायनी संशमनी दोषाणां ज्वरनाशिनी । गुडूची कटुका लघ्वी तिक्ताग्निदीपनीति च । ४ आदि शब्दकरके मलमूत्रादिक जानने । ५ पाचकस्थानके आश्रय करके कोई कोष्टशब्द करके हृदयादिकोका भी ग्रहण करते है जैसे–स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च । हृदुण्डूकः फुप्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते । "

भेदन औषध।

**मलापिकमबद्धं वा बद्धं वा पिण्डितं मलैः।**
**भित्त्वाऽधः पातयति तद् भेदनं कटुकी यथा॥ ५॥**

अर्थ–जो औषध वातादिदोषोंकरके बँधे हुए अथवा विना बँधे गांठके समान मलमूत्रादिकोंको तोड फोडकर नीचेके भागमे लायके गुदाके द्वारा निकाले उसको "भेदन" संज्ञक कहते हैं। जैसे कुटका॥ ५॥

रेचन औषध।

**विपक्वं यदपक्वं वा मलादि द्रवतां नयेत्।**
**रेचयत्यपि तज्ज्ञेयं रेचनं त्रिवृता यथा॥ ६॥**

अर्थ–जो औषध पेटके अन्नादिकोंका उत्तम पाक होनेपर अथवा कुछ कच्चे रहनेपर उन अन्नादिकोंको तथा वातादिमलोंको पतला करके अधोभागमे लाय गुदाद्वारा दस्त करावे उसको "रेचन" संज्ञक कहते हैं, जैसे निसोथ। रेचक मात्र द्रव्योंमें पृथ्वीतत्त्व और जलतत्त्वके गुरुत्वादि गुण अधिक होनेसे नीचेको जाती है अतएव दस्त कराते हैं। गुरुत्व शब्द करके इस जगह प्रभावविशेष जानना, अन्यथा मत्स्य, मसूर, मिष्टान्नादिकोंको विरेचकत्व आवेगा॥ ६॥

वमन औषध।

**अपक्वपित्तश्लेष्माणौ बलादूर्ध्वं नयेत् तु यत्।**
**वमनं तद्धि विज्ञेयं मदनस्य फलं यथा॥ ७॥**

जो औषध पक्कदशाको नहीं प्राप्त हुए ऐसे पित्त और कफको बलात्कार करके मुखके द्वारा निकाले (रद्द करावे) उसे "वमन" संज्ञक जानना। उदाहरण जैसे मैनफल। संपूर्ण वमनकारी द्रव्योंमें पवन और अग्निके गुण लघुत्वादि अधिक होनेके कारण ऊपरको जाते हैं अतएव रद्द होती है। इस जगह भी लघुत्वादि करके प्रभावविशेष जानना अन्यथा तीतर खील आदिको वमनत्व आवेगा। कोई प्रश्न करे कि कफको वमन और पित्तको विरेचनद्वारा निकाले ऐसा शास्त्रमें लिखा है, फिर इस जगह पित्तको वमन द्वारा निकालना कैसे कहा? तहां कहते हैं कि अपक्क पित्तको वमन द्वारा ही निकालना चाहिये, जैसे लिखा है कि कटु तिक्त और अम्लोंको वमन करके निकाले। देखो दग्धपित्त अम्लताको प्राप्त होता है अतएव अम्लपित्तकी चिकित्सामे प्रथम वमन कराना लिखा है॥ ७॥

---

१ शुष्क और गांठदार। २ मलशब्दसे इस जगह दोषोंका ग्रहण है, आदि शब्दसे रूक्ष दूषितादिकोंका भी ग्रहण है। ३ आदिशब्द करके दूष्य और दूषितादिकोका ग्रहण है। ४ मदनस्य फलं बलादिति पाठान्तरम्।

संशोधन औषध।

**स्थानाद्बहिर्नयेदूर्ध्वमधो वा मलसंचयम् ।**
**देहसंशोधनं तत् स्याद्देवदालीफलं यथा ॥ ८ ॥**

अर्थ—जो औषध स्वस्थानमें संचित मलों (वातादिकों) को ऊपरके भागमें लायकर ( मुख[1] नासिका ) द्वारा बाहर निकाले, अथवा उस संचयको अधोभागमे लायकर ( गुदा लिंग, भग ) द्वारा बाहर निकाले, उसको " संशोधन[2]" जानना। उदाहरण जैसे देवदालीका फल, जिसको वंदाल और घघरवेल भी कहते हैं। देहके कहनेसे फस्त खोलना भी शोधनमें लिया है ॥ ८ ॥

छेदन औषध।

**श्लिष्टान् कफादिकान् दोषानुन्मूलयति यद्बलात् ।**
**छेदनं तद् यवक्षारो मरिचानि शिलाजतु ॥ ९ ॥**

अर्थ—जो औषध परस्पर[3] एकसे एक मिले हुए कफादि दोषोंको अपनी शक्ति करके फोडकर पृथक् २ कर देवे उसको "छेदन" औषध कहते हैं। उदाहरण जैसे जवाखार; काली मिरच और शिलाजीत। " मरिचानि" इस बहुवचनसे लाल मिरच भी छेदनकर्त्ता जाननी। प्रश्न—वातादि क्रम त्यागकर इस जगह श्लोकमें कफादि क्रम क्यों कहा? उत्तर—देहको ऊर्ध्वमूलत्व अधःशाखत्व है इस कारण कफक्रम रक्खा है ॥ ९ ॥

लेखन औषध।

**धातून् मलान् वा देहस्य विशोष्योल्लेखयेच्च यत् ।**
**लेखनं तद्यथा क्षौद्रं नीरमु[4]ष्णं वचा यवा ॥ १० ॥**

अर्थ—जो औषध रसादिधातु और वातादिदोष इनको सुखायके देहसे बाहर निकाल

---

१ मुखसे रद्दके द्वारा और नाकमें नास देनसे वमन और नासके साथ वे दोष निकलते है। २ शोधन बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे दो प्रकारका है।तहां बहिराश्रय जैसे शस्त्रक्षार अग्निप्रलेपादि। और आभ्यंतराश्रय चार प्रकारका है जैसे वमन विरेचन आस्थापन और शोणितावसेचन। कोई शोणितावसेचनकी जगह शिरोविरेचन कहते हैं परन्तु उसे वमनके अन्तर्गत जानना क्योंकि ऊर्ध्वशोधक है। ३ कोई परस्पर गठे हुए ऐसा कहता है, और कोई "श्लिष्ट" का अर्थ अत्यन्त कुपित ऐसा कहता है। और आदि शब्दकरके वात पित्त रुधिर और कृमि इनका भी दोष शब्दकरके ग्रहण है, जैसे सुश्रुतमें लिखा है ' न तद्देहः कफादस्ति न पित्तान्न च मारुतात्। शोणितादपि वा नित्यं देह एतैस्तु धार्यते ॥। और कृमिको दोषत्व गुग्गुलुकल्पमें लिखा है यथा-" पंचादिदोषान् समये " इत्यादि ' यहां पंचदोष करके वात, पित्त, कफ, रुधिर और कृमियोका ग्रहण है । ४ ' नीरं कोष्णं वचा यवाः' इति पाठान्तरम्। अयं पाठः कपोलकल्पनया केनापि लिखितः।

देवे उसको "लेखन" ओषधि कहते हैं। उदाहरण जैसे-सहत, गरम जल, वंच और जौ। मलान् वा इसमें "वा" जो पडा है उससे मनके दोष पृथक् जानना। क्योंकि मनके दोषोंकी चिकित्सा दूसरी है। प्रश्न-मनके दोष कौनसे हैं? उत्तर-" रजस्तमश्च मनसो द्वौ च दोषावुदाहृतौ " इत्यादि, अर्थात् रजोगुण और तमोगुण ये दो मनको बिगाडनेवाले दोष हैं॥ १०॥

ग्राही औषध।

**दीपनं पाचनं यत् स्यादुष्णत्वाद् द्रवशोपकम्।**
**ग्राहि तच्च यथा शुण्ठी जीरकं गजपिप्पली॥ ११॥**

अर्थ-जो औषध अग्नि प्रदीप्त करे और आमादिकोंको पाचन करे तथा उष्णवीर्य होनेसे जलस्वरूप जो कफादि दोष, धातु और मल इनका शोषण करे उसको "ग्राही" कहते हैं। उदाहरण जैसे सोंठ, जीरा और गजपीपल॥ ११॥

स्तंभन औषध।

**रौक्ष्यात् शैत्यात् कपायत्वाल्लघुपाकाच्च यद् भवेत्।**
**वातकृत् स्तम्भनं तत् स्याद् यथा वत्सकटुंटुकौ॥ १२॥**

अर्थ-जो ओषधी रूक्ष गुणकरके, शीतवीर्य करके, कषैले रसकरके युक्त होनेसे एवं पाककरके हलकी होवे; इस प्रकारकी जो ओषधि वह वादीको उत्पन्न करे है। अत एव औषधको "स्तंभन" जाननी। उदाहरण जैसे-कुडा और स्योनाक(टेंटु) १२

रसायन औषध।

**रसायनं च यद् ज्ञेयं यज्जराव्याधिनाशनम्।**
**यथाऽमृता रुदन्ती च गुग्गुलुश्च हरीतकी॥ १३॥**

अर्थ-जो औषध देहकी वृद्धावस्था और ज्वरादि रोगोंका नाश करे उसको रसायन जानना। उदाहरण जैसे-गिलोय, रुदंती (शाकका भेद, पश्चिममें बहुत विख्यात है) गूगल और हरड। प्रश्न-व्याधिके कहनेसे ही वृद्धावस्थाका ग्रहण होगया फिर पृथक् क्यों कही? उत्तर-जराशब्द करके इस जगह स्वाभाविक वृद्धावस्थाका

---

१ प्रश्न-वच संग्राही नही हो सकती क्योंकि अनिलगुणभूयिष्ठ है और अनिल है सो शोषण करता है? उत्तर-संग्राहि ओषधि पक्व और आमग्रहण करनेसे दो प्रकारकी है तहां जो सग्रहणीमे आमको पचायके अग्नि प्रज्वलित कर उसी ग्रहणीमे स्थित द्रवताको सुखायके स्तंभन करे उसे उष्णग्राहक जाननी। और जो औषध अतिसारादिकोमें पक्वमलादिकोको स्तंभन करे उसका संग्रह करे उसे शीतग्राहक जाननी। ये दो अनिलगुणभूयिष्ठ हैं परन्तु फिर भी संग्राहित्वमें दोषता नही आती। २ धीधैर्यात्मादिविज्ञानं मनोदोषौषधं परम्

ग्रहण है, क्योंकि सत्तरवर्षके उपरान्त स्वाभाविक वृद्धावस्था कहलाती है । जो रसादि धातुओंकी अयन अर्थात् पोषणकारी होय उसको 'रसायन' कहते हैं ॥ १३ ॥

वाजीकरण औषध ।

**यस्मात् द्रव्यात् भवेत् स्त्रीषु हर्षो वाजीकरं च तत् ।**
**यथा नागबलाद्यास्तु बीजं च कपिकच्छुजम् ॥ १४ ॥**

अर्थ-जो औषध धातुको बढायकर स्त्रियोंमें हर्षयुक्त शक्तिको करे अर्थात् मैथुन शक्तिको बढावे उसको वाजीकरण जानना । उदाहरण जैसे नागबला ( खरेंटी ) ( आदि शब्दसे जायफल, शतावर, दूध, मिश्री इत्यादिक ) और कौंचके बीज । वाजीकारण दो प्रकारका है-एक वीर्यस्तम्भनकर्ता, दूसरा वीर्यवृद्धिकारी ॥ १४ ॥

धातुवृद्धिकारी औषध ।

**यस्मात् शुक्रस्य वृद्धिः स्यात् शुक्रलं च तदुच्यते ।**
**यथाश्वगन्धा मुशली शर्करा च शतावरी ॥ १५ ॥**

अर्थ-जिस औषधसे धातुकी वृद्धि हो उस औषधको शुक्रल जाननी । उदाहरण जैसे असगन्ध, मुसली, मिश्री, शतावर इत्यादि ॥ १५ ॥

धातुको चैतन्यकर्त्ता तथा वृद्धिकारी औषध ।

**दुग्धं माषाश्च भल्लातफलमज्जाऽऽमलानि च ।**
**प्रवर्तकानि कथ्यन्ते जनकानि च रेतसः ॥ १६ ॥**

अर्थ-शुक्र धातुको चैतन्य करनेवाली तथा उत्पन्नकारी ऐसी औषध दूध, उडद, भिलावेके फलकी गिरी और आमले इत्यादि जानना ॥ १६ ॥

वाजीकरण औषधविशेष ।

**प्रवर्तनं स्त्री[1] शुक्रस्य रेचनं बृहतीफलम् ।**
**जातीफलं स्तंभकं च शोषणी च हरीतकी ॥ १७ ॥**

अर्थ-स्त्री वीर्यकी प्रगट करनेवाली है और बडी कटेरीका फल शुक्रका रेचन-कर्ता है एवं जायफल वीर्यका स्तंभक है और हरड शुक्रको सुखानेवाली है. कोई प्रथम पदका यह अर्थ करते हैं कि कटेरीका फल स्त्रीके वीर्यको प्रवर्तन और रेचन-कर्ता है, पर यह अर्थ श्रेष्ठ नही ॥ १७ ॥

सूक्ष्म औषध ।

**देहस्य सूक्ष्मच्छिद्रेषु विशेद् यत् सूक्ष्ममुच्यते ।**

---

१ स्त्रीस्मरणकीर्तनदर्शनसंभाषणस्पर्शनचुम्बनालिङ्गनादिभिः शुक्रस्य प्रवर्तनम् ( इति भावप्रकाशे )

**तद् यथा सैन्धवं क्षौद्रं निम्बस्तैलं रुबूद्भवम् ॥ १८ ॥**

अर्थ—जो औषध देहके सूक्ष्म छिद्र (रोमकूपों) में प्रवेश करे उसको सूक्ष्म औषध कहते हैं. उदाहरण जैसे सैंधानमक, सहत, नीम और अण्डीका तेल ( अथवा नीमका तेल और अण्डीका तेल ) ॥ १८ ॥

व्यवायी औषध।

**पूर्वं व्याप्याखिलं कायं ततः पाकं च[1] गच्छति।**
**व्यवायि तद् यथा भङ्गा फेनं चाहिसमुद्भवम् ॥ १९ ॥**

अर्थ—जो औषध अपक्व हो, सकल देहमें व्याप्त हो फिर मद्य विषके समान पाकको प्राप्त होय उस औषधको "व्यवायि" जानना। उदाहरण जैसे भाँग और अफीम १९॥

विकाशी औषध।

**सन्धिबन्धांस्तु शिथिलान् यत् करोति विकाशि तत्।**
**विश्लेष्यौजश्च[2] धातुभ्यो यथा क्रमुककोद्रवाः ॥ २० ॥**

अर्थ—जो औषध सर्व अङ्गोंकी सन्धियोंके बन्धनोंको शिथिल करे और रसादि धातुसे उत्पन्न हुआ जो ओज[3] ( अर्थात् सर्व धातुओंका तेज ) उसको धातुओंमेसे शोषण करे उस औषधको "विकाशि" जानना ॥ उदाहरण जैसे—सुपारी और कोदोंधान्य, चकारसे अपक्व ही उक्त कर्मोंको करे ऐसा जानना ॥ २० ॥

मदकारी औषध।

**बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारि तदुच्यते ॥**
**तमोगुणप्रधानं च यथा मद्यं सुरादिकम् ॥ २१ ॥**

अर्थ—जो पदार्थ बुद्धिका लोप करे उसको मदकारी कहते हैं. यह तमोगुणप्रधान है उदाहरण जैसे सुरादिक, मद्य दारू।

बुद्धिशब्द मेधा, धृति, स्मृति, मति और प्रतिपत्ति आदिवाचक है. प्रसङ्गवश इनके लक्षणोंको कहते हैं. ग्रन्थधारणा शक्तिको " मेधा " कहते हैं। सन्तुष्टताको " धृति " कहते हैं. कोई नियमात्मिका बुद्धिको " धृति " कहते हैं। बीती हुई वार्ताके याद रखनेको "स्मरण" कहते हैं. कोई अर्थधारणशक्तिको "स्मरण" कहते

१ ततो भावाय कल्पते इति पाठान्तरम्। पुनर्भावं स विन्दति इति वा पाठान्तरम्।
२ 'विशोष्यौ' इति पाठान्तरम्। ३ रसादीनां शुक्रान्तानां यत् परं तेजस्तत् खल्वोजस्तदेव बलमुच्यते, यतः "देहः सावयवस्तेन व्याप्तो भवति देहिनामिति-"तात्पर्यार्थ यह है कि कोई कहता है कि संधि प्रभृतियोंके शिथिल होनेसे श्रम उत्पन्न होता है और उस कामसे ओज क्षीण होता है जैसे लिखा है-'अभिघातात् क्षयात् कोपाद् ध्यानाच्छोकाच्छ्रमात्क्षुधः। ओजः संक्षीयते ह्येभ्यो धातुग्रहणमिश्रितम् ॥"

हैं । विना जानी वस्तुके ज्ञानको " मति " कहते हैं । कोई २ त्रिकालज्ञानको मति कहते हैं और अर्थावबोधप्राकस्यको "प्रतिपत्ति" कहते हैं । 'सुरादिकम्' इस पदमें आदिशब्दकरके सम्पूर्ण मदकारी वस्तु जाननी । प्रश्न-मद्य तो बुद्धि, स्मृति, वाणी, और चेष्टा कर्ता लिखा है यथा-"बुद्धिः स्मृतिप्रीतिकरः सुखश्च पानान्ननिद्रारतिवर्द्धनश्च । संपाठगीतस्वरवर्द्धनश्च प्रोक्तोऽतिरम्यः प्रथमो मदो हि" ॥ फिर इस जगह मदकारी द्रव्योंको बुद्धिलोपकर्ता कैसे लिखा है ? उत्तर-मदकी चार पानावस्था हैं. तहाँ प्रथम मदपान बुद्ध्यादिकका लोप नही कर्ता है शेष बुद्ध्यादिकके लोपकर्ता हैं अत एव शार्ङ्गधरने लिखा है ) ॥ २१ ॥

प्राणहारक औषध ।

**व्यवायि च विकाशि स्यात् सूक्ष्मं छेदि मदावहम् ।**
**आग्नेयं जीवितहरं योगवाहि स्मृतं विषम् ॥ २२ ॥**

अर्थ-पूर्व कही हुई जो व्यवायि, विकाशि, सूक्ष्म, छेदि, मदकारी और आग्नेय और प्राण हरनेवाला तथा योगवाही ( गरमके सङ्ग अतिगरम और शीतद्रव्यके सङ्ग अतिशीतल हो ) उसे विष कहते हैं । कोई आचार्य लोकमें " योगवाह्यमृतं विषम् " ऐसा भी पाठ कहते हैं । उसका अर्थ यह है कि वह विष योगवाहीक हिये किसी संस्कार विशेष करके जिस २ अनुपानके साथ देवे उसी अनुपानके गुणोंको बढायके अमृतके तुल्य गुण करे ॥ २२ ॥

प्रमाथी औषध ।

**निजवीर्येण यद् द्रव्यं स्रोतोभ्यो दोषसंचयम् ।**
**निरस्यति प्रमाथि स्यात् तद् यथा मरिचं वचा ॥ २३ ॥**

अर्थ--जो द्रव्य अपने शक्तिसे कान, मुख, नासिका आदि छिद्रोंसे तथा अन्य छिद्रोंसे कफादि दोषसञ्चयको और व्याधिसञ्चयको निकाले उसको प्रमाथि कहते हैं । उदाहरण जैसे वच, कालीमिरच तथा लाल मिरच ॥ २३ ॥

अभिष्यन्दि लक्षण ।

**पैच्छिल्याद् गौरवाद् द्रव्यं रुद्ध्वा रसवहाः शिराः ।**
**धत्ते यद् गौरवं तस्मादभिष्यन्दि यथा दधि ॥ २४ ॥**

अर्थ-जो द्रव्य अपने पिच्छिल गुणकरके भारीपनेसे रसवाहिनी २४ शिराओंको रोककर शरीरको भारी करे उस पदार्थको अभिष्यन्दि कहिये स्रोतःस्रावी जानना । उदाहरण-जैसे-दही ॥ २४ ॥

इति वैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतायां शार्ङ्गधरसंहिताया भावप्रकाशिकायां भाषाटीकायां दीपनपाचनादिविधिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

# पञ्चमोऽध्यायः ।

प्रथम यह लिख आये हैं कि ' ततः कलादिकाख्यानम् " अत एव कलादिकोंको कहते हैं–

कलाः सप्ताशयाः सप्त धातवः सप्त तन्मलाः । सप्तोपधातवः सप्त त्वचः सप्त प्रकीर्तिताः ॥ १ ॥ त्रयो दोषा नवशतं स्नायूनां सन्धयस्तथा । दशाधिकं च द्विशतमस्थ्नां च त्रिशतं तथा ॥ २ ॥ सप्तोत्तरं मर्मशतं शिराः सप्तशतं तथा । चतुर्विंशतिराख्याता धमन्यो रसवाहिकाः ॥ ३ ॥ मांसपेश्यः समाख्याता नृणां पञ्चशतं बुधैः । स्त्रीणां च विंशत्यधिका कंडराश्चैव षोडश ॥ ४ ॥ नृदेहे दश रन्ध्राणि नारीदेहे त्रयोदश । एतत् समासतः प्रोक्तं विस्तरेणाधुनोच्यते ॥ ५ ॥

अर्थ–शरीरमें रसादि धातुओंके जो स्थान हैं उनकी मर्यादाभूत ऐसी सात कला हैं । कोष्ठमें सात आशय कहिये स्थान हैं । रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि ( हड्डी), मज्जा और शुक्र ये सप्त धातु हैं तथा उन धातुओंके सात मल हैं । धातुओंके समीप रहनेवाले ऐसे सात उपधातु हैं । शरीरमें सात त्वचा हैं । वात, पित्त और कफ ये तीन दोष हैं । शरीरमें डोरीके समान और वेलके समान ९०० बन्धन हैं. उनको स्नायु कहते हैं । दोसौदश संधि हैं । श्लोकमे जो चकार है इससे संधि दो सौ दशसे अधिक जाननी । शरीरमें आधारभूत और बलकारी ३०० हड्डी हैं । जीवके आधारभूत ऐसे १०७ मर्मस्थान हैं । दोष और धातु तथा जलके बहानेवाली ७०० शिराएँ हैं । चकारसे कुछ अधिक भी हैं ऐसा जानना, रस वहानेवाली २४ ( धमनी ) नाडी हैं, और पुरुषके देहमें मांसपेशी अर्थात् मांसके लंबे २ टुकडे ५०० तथा

---

१ धात्वाशयांतरैस्तस्य यत् क्लेदः स्वधितिष्ठति । देहोष्मणा विपक्वो यः सा कलेत्यभिधीयते ।२ आशयः स्थानानि तानि कोष्ठशब्देनोपलक्षितानि तथाच–स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च।हृदुंडूकः फुप्फुसश्च कोष्ठमित्यभिधीयते ।३बडी बडी जड और बारीक२ अग्रभाग ऐसी शिरा जितने देहमे रोम हैं उतनी हैं जैसे लिखा है–तावन्ति नाड्यो देहे च यावन्त्यो रोमकूट्यः । स्थूलमूलाश्च सूक्ष्माग्राः पत्ररेखाप्रतानवत् । धमनी नाडी शिरा इनके कार्य पृथक् २ है अत एव इनके नाम भी पृथक्२ हैं वास्तविक ये सब एक ही हैं ।५ मांसके टुकडे किसी आचार्योंके मतसे चौकोन हैं जैसे लिखा है " चतुरस्रा भवेत् पेशी ।

स्त्रियोंके २० अधिक हैं कंडरा कहिये बडे स्नायु सोलह हैं । पुरुषोंके देहमें दश रंध्र कहिये छिद्र हैं और स्त्रियोंके तीन छिद्र अधिक हैं, अर्थात् तेरह छिद्र हैं । इस प्रकार कलादिक संक्षेपसे कही अब इन्हींको विस्तार करके कहते हैं ॥ १-५ ॥

कलाओंकी व्यवस्था ।

**मांसासृङ्मेदसां तिस्रो यकृत्प्लीह्नोश्चतुर्थिका ।**
**पञ्चमी च तथान्त्राणां षष्ठी चाग्निधरा मता ॥ ६ ॥**
**रेतोधरा सप्तमी स्यादिति सप्त कलाः स्मृताः ।**

अर्थ-पहली कला मांसको धारण करती है इसलिये उसको मांसधरा कहते हैं । दूसरी कला रुधिरको धारण करती है अतः उसको रक्तधरा कहते हैं । इसी प्रकार मेदके धारण करनेवालीको मेदधरा कहते हैं । यकृत् और प्लीहाकी चौथी कला है जो इन दोनोंके मध्यमे रहती है अत एव उसको कफधरा कहते हैं । अन्त्र कहिये आंतडोको धारण करनेवाली पांचवी कला३को "पुरीषधरा" ऐसे कहते हैं । अग्निको धारण करनेवाली छठी कला४ जो है उसको " पित्तधरा" कहते हैं । और सातवीं कला ❀ शुक्रको धारण करती है अत एव उसको रेतोधरा जाननी, इस प्रकार सात कला जाननी ॥ ६ ॥

**श्लेष्माशयः स्यादुरसि तस्मादामाशयस्त्वधः ॥७॥ ऊर्ध्व-**
**मग्न्याशयो नाभेर्वामभागे५ व्यवस्थितः ॥ तस्योपरि तिलं**
**ज्ञेयं तदधः पवनाशयः ॥८॥ मलाशयस्त्वधस्तस्य वस्ति-**
**र्मूत्राशयः स्मृतः । जीवरक्ताशयमुरो ज्ञेयाः सप्ताशयास्त्वमी**
**॥ ९ ॥ पुरुषेभ्योऽधिकाश्चान्ये नारीणामाशयास्त्रयः ।**
**धरागर्भाशयः प्रोक्तः स्तनौ स्तन्यशयौ मतौ ॥ १० ॥**

---

१ वीस अधिक है उनके स्थान कहते है । दोनो स्तनोंमे पांच २ है और योनिमे चार, गर्भमार्गमे तीन तथा गर्भस्थानमे तीन इस प्रकार बीस जाननी । २ उन सोलहोंके स्थान बताते है कि दोनो पैरोंमे चार, दोनो हाथोमे चार, नाडीमें चार, पीठमे चार इस प्रकार सोलह जाननी । ३ पाचवी कला आंतडोके आधारसे उदरस्थोंमें मलके विभाग करती है अत एव उसको " पुरीपधरा " कहते है । ४ छठी कला खाद्यपेयादिक ऐसे चार प्रकारके आमाशयसे प्रत्युत हुए अन्नको पक्वाशयमे ले जाकर धारण करती है इसीसे उसको "पित्तंधरा" कहते है जैसे लिखा है-"असितं खादितं पीतं लीढं कोष्टगतं नृणाम्। तज्जीर्यति यथाकालं शोषितं पित्ततेजसा । " इति ।

* यथा पयसि सर्पिश्च गुडश्चेक्षुरसे यथा । शरीरेषु तथा शुक्रं नृणां विद्याद्भिषग्वरः । द्व्यङ्गुले दक्षिणे पार्श्वे वस्तिद्वारस्य चाप्यधः । मूत्रस्रोतःपथः शुक्रं पुरुषस्य प्रवर्तते । कृत्स्नदेहाश्रितं शुक्रं प्रसन्नमनसस्तथा । स्त्रीषु व्यायामतश्चापि हर्षात्तत्संप्रवर्तते । ५ वामभागे व्यवस्थितः इत्यत्र मध्यभागे व्यवस्थित इति वा पाठः ।

अर्थ—वक्षस्थलमें कफका आशय कहिये कफका स्थान है, कफस्थानके किंचित् अधो–भागमें आमका स्थान है, नाभिके ऊपर बांई तरफ अग्निका स्थान है, उसी को "ग्रहणी" स्थान कहते हैं। उस अग्निस्थानके ऊपर जो तिल है उसको क्लोम कहते हैं वह पिपासास्थान है अर्थात् प्यास इसी जगहसे उत्पन्न होती है। कोई आचार्य "तस्योपरि जलं ज्ञेयम्" ऐसा पाठ लिखकर अर्थ करते हैं कि उस तिलके ऊपर जल है। जैसे लिखा है–"अग्नेरूर्ध्वं जलं स्थाप्यं तदन्नं च जलोपरि। अग्नेरधः स्वयं वायुः स्थितोऽग्निं धमते शनैः॥वायुना धममानोऽग्निरत्युष्णं कुरुते जलम्। तदन्नमुष्णतोयेन समन्तात् पच्यते पुनः॥" इति। अर्थात् अग्निके ऊपर जल है, उसके ऊपर अन्न है और अग्निके नीचे पवन स्थिर होकर स्वयं अग्निको धमाता है, वह वायुसे धमाई हुई अग्नि ऊपरके जलोंको अत्यन्त गरम करती है तब वह उष्णजल अन्नका अच्छे प्रकार परिपाक करता है। अग्निस्थानके नीचे पवनका स्थान है उस पवनकी समान संज्ञा है फिर उस पवनाशयके नीचे मलाशय अर्थात् मलका स्थान है, इसीको पक्वाशय कहते हैं, यह वामभागमे है। (इसीके एकदेशमे विभाजित मलधारक उंडूक कहलाता है) लोकमें इसको "पोट्टलक" कहते हैं अत एव उंडूकसे पक्वाशय पृथक् है परंतु चरकमे पुरीष अन्त्रशब्दकरके उंडूक कहा। उसके पास ही कुछ नीचे दहनी तरफ चमडेकी थैलीके आकार मूत्राशय है जिसको वस्ति कहते हैं। जीवतुल्य रक्त है कि जिसका स्थान उर है। ऐसे सात आशय कहिये स्थान जानने। पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंके तीन आशय अधिक है, जैसे एक गर्भाशय और दो स्तनाशय अर्थात् स्तनसंबन्धी दूध रहनेके स्थान। तहां गर्भाशय पित्त और पक्वाशयके मध्यमे है ऐसा जानना॥ १०॥

रसादि सात धातुओंका विवरण।

**रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः।**
**जायन्तेऽन्योन्यतः सर्वे पाचिताः पित्ततेजसा॥ ११॥**

अर्थ—रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये सात धातु पित्तके तेजसे पाचित होकर क्रमसे एकसे एक उत्पन्न होते हैं। जैसे रससे रुधिर, रुधिरसे मांस, मांससे मेद, मेदसे हड्डी, हड्डीसे मज्जा, मज्जासे शुक्र धातु उत्पन्न होती है॥

(अब कहते हैं कि, धातुओंके मलका परिणामभी स्थूल और अणुभाग विशेष करके तीन प्रकारका है। उदाहरण जैसे अन्नके पचनेसे विष्ठा मूत्र ये मल होते हैं और सारवस्तु रसधातु प्रगट होती है, वही रस पित्ताग्निकरके पच्यमान होनेसे उसका कफ है सो मल प्रगट होता है, स्थूल भाग रस और सूक्ष्मभाग रुधिर होता है। रक्तके परिपाकसे पित्त मल होता है, स्थूल भाग रक्तका रक्त ही है और सूक्ष्म भाग मांस प्रगट होता है। इसी प्रकार परिपक्व होकर मांसके कानका मल प्रगट होता है

१ "नाभिस्तनान्तरे जन्तोरामाशय उदाहृतः।" जिस स्थानमे आम अर्थात् कच्चा अन्न रहता है उस स्थानको आमाशय कहते हैं। २ अग्न्यधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणाद् ग्रहणी मता। नाभेरुपरि सा ह्यग्निबलोपबृंहिता।

सो जानना । स्थूल भाग मांस और सूक्ष्म भाग मेद और उसका अपनी अग्निसे परिपक्व होनेपर पसीना मल होता है और स्थूल भाग मेद और उसका सूक्ष्म भाग हड्डी होती है, वह हड्डी भी परिपक्व होकर केश रोमादिमलको प्रगट करती है । इसका स्थूलभाग हड्डी है और सूक्ष्म भाग मज्जा कहाती है, उस मज्जाके परिपक्व होनेसे स्थूल भाग मज्जा सूक्ष्म भाग शुक्र होता है और नेत्र पुरीष तथा त्वचा इनमें जो मल आता है वह मज्जा धातुका मल है । वह शुक्र भी अपनी अग्निसे पचकर मलको प्रकट नहीं करता, जैसे हजारवार धमाया हुआ सुवर्ण मैलको नहीं प्रगट करता । इस शुक्रका स्थूल भाग शुक्र है और सूक्ष्म भाग ओज जानना ) ॥ ११ ॥

धातुओंके मल ।

**जिह्वानेत्रकपोलानां जलं पित्तं च रञ्जकम् । कर्णविड्रसनादन्तकक्षामेढ्रादिजं मलम् ॥ १२ ॥ नखा नेत्रमलं वक्त्रस्निग्धत्वं पिटिकास्तथा । जायन्ते सप्तधातूनां मलान्येतान्यनुक्रमात् ॥ १३ ॥**

अर्थ—सात धातुओंके क्रमसे मल होते हैं । जैसे जीभका जल, नेत्रोंका जल और कपोलका जल इनको रसधातुका मल जानना । रञ्जक पित्त ( अर्थात् रसको रँगनेवाले पित्त ) रुधिरका मल है । कानका मैल मांसका मल है । जीभ, दांत, कांख और शिश्न इनका मैल है सो भेद मेदधातुका मैल है । आदि शब्दसे पसीना भी मेदधातुका मल है । परन्तु यह शार्ङ्गधरका मत नहीं है क्योंकि स्वेदको उपधातुओंमें वर्णन किया है । नख ( नाखून ) हड्डीका मल है । 'नखाः' यह जो बहुवचन है इससे ( बाल ) लोम ( रोआं ) इत्यादिक भी हड्डीका मल है । नेत्रोंका मैल मुखकी चिकनाई यह मज्जा धातुका मल है । और मुँहमें मुहाँसोंका होना यह शुक्र धातुका मल है तथा केश ग्रहणसे डाढी मूँछ ये भी शुक्र धातुके मल हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

कोई आचार्य छः धातुओंके छः ही मल मानते हैं । नेत्रमल मुखकी चिकनाई और मुहाँसे इनको मज्जा धातुका मल कहते हैं ॥

अब मनुष्यकी उपधातुओंको कहते हैं—

**स्तन्यं रजश्च नारीणां काले भवति गच्छति ।**
**शुद्धमांसभवः स्नेहः सा वसा परिकीर्तिता ॥ १४ ॥**
**स्वेदो दन्तास्तथा केशास्तथैवौजश्च सप्तमम् ।**
**इति धातुभवा ज्ञेया एते सप्तोपधातवः ॥ १५ ॥**

---

१ जीभ आदिका जो जल है सो कफ सम्बन्धी है अतएव कफ ही रस धातुका मल है ।

२ "किट्टमन्नस्य विण्मूत्रं रसस्य तु कफोऽसृजः । पित्तं मांसस्य तु मलं स्वेषु स्वेदस्तु मेदसः । नखमस्थ्नस्तु लोमाद्या मज्ज्ञः स्नेहोऽक्षिविट्त्वचः । प्रसादकिट्टे धातूनां पाकादेव विवर्धते । शुक्रस्यातिप्रसन्नत्वान्मलाभाव इति स्मृतः ॥ "

अर्थ-स्तनसम्बन्धी दूध रसधातुकी उपधातु है अर्थात् रसधातुसे प्रगट होता है और रज अर्थात् स्त्रियोंके मासिक रुधिर जो गिरता है वह रुधिर धातुका उपधातु ये दोनों उपधातु स्त्रियोंके कालविशेषमे प्रगट होते हैं और नष्ट होते हैं ( उसी प्रकार स्त्रियोंके रोमराजि आदि भी कालकरके प्रगट होते हैं ) और ( कोई आचार्य रस धातुसे ही आर्तवकी उत्पत्ति कहते हैं ) शुद्ध मांससे उत्पन्न हुए स्नेह ( चिकनाई ) को वसा कहते हैं यह मांस धातुका उपधातु है । स्नेह कहिये पसीना यह मेद धातुका उपधातु है, दांत अस्थि अर्थात् हड्डी धातुका उपधातु है । केश मज्जाधातुका उपधातु है । ओज[१] शुक्रधातुका उपधातु है । इस प्रकार सातें धातुसे उत्पन्न सात उपधातु जानने । कोई आचार्य इन उपधातुओंको मलके ही अन्तर्गत मानते हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥

सप्त त्वचा ।

**ज्ञेयाऽवभासिनी पूर्वं सिध्मस्थानं च सा मता । द्वितीया लोहिता ज्ञेया तिलकालकजन्मभूः ॥ १६ ॥ श्वेता तृतीया संख्याता स्थानं चर्मदलस्य च । ताम्रा चतुर्थी विज्ञेया किलासश्वित्रभूमिका ॥१७॥ पञ्चमी वेदिनी ख्याता सर्वकुष्ठोद्भवे- स्ततः॥१८॥स्थूला त्वक्सप्तमी ख्याता विद्रध्यादेः स्थितिश्च सा । इति सप्तत्वचः प्रोक्ता स्थूला व्रीहिद्विमात्रया ॥ १९ ॥**

अर्थ-पहली त्वचाका नाम " अवभासिनी "[३] है सो सिध्म[४]रोगकी जन्मभूमि है । इस श्लोकमें चकार जो है इससे पद्मकंटकादि रोगोंकी भी जन्मभूमि जानना । यह जौके अठारहवें भाग प्रमाण मोटी है । २ दूसरी त्वचाका नाम "लोहिता" है यही तिलको-लक[५]की जन्मभूमि है तथान्यैच्च । व्यंगादिकोंकी भी जाननी और जौके सोलहवें भाग प्रमाण मोटी है । तीसरी त्वचाका नाम " श्वेता " है । यह चर्मदल कुष्ठकी जन्मभूमि है और जौके १२ वें भाग प्रमाण मोटी है. चौथी त्वचाका नाम " ताम्रा " है । यह किलासकुष्ठके होनेकी जगह है और जौके आठवे भाग प्रमाण मोटी है । पांचवीं त्वचाका नाम " वेदनी " है । यह संपूर्ण कुष्ठोंकी जन्मभूमि है । " तत् " इस पदके

---

१ "ओजःसर्वशरीरस्थं स्निग्धं शीतं स्थिरं सितम् । सोमात्मकं शरीरस्य बलपुष्टिकरं मतम् । २ "रसात् स्तन्यं ततो रक्तमसृजःस्नायुकण्डराः। मांसान् वसा त्वचः स्वेदो मेदसः स्नायुसंधयः।अस्थ्नो दंतास्तथा मज्ज्ञःकेशा ओजश्च सप्तमात्।धातुभ्यश्चोपजायन्ते तस्मात्त उपधातवः।३अवभासिनीकी व्युत्पति इस प्रकार है कि " अवभासयति पराजयति भ्राजकाग्निना सर्वान् वर्णानिति तथा पञ्चविधां छायां प्रकाशयतीति" अर्थात् जो भ्राजकाग्निकरके संपूर्ण वर्णोंको करे तथा पांच प्रकारकी छायाको प्रकाशित करे उसे अवभासिनी कहते हैं। ४ सिध्मरोग कुष्ठका भेद है । उसको विभुत वा बनरफ कहते हैं । ५ तिलकालक जिसको तिल कहते है इसे क्षुद्ररोगोमे लिखा है।६चकारसे अजगल्ली आदिकी भी जन्मभूमि तीसरी त्वचा ही है ।

कहनेसे विसर्पादिरोगोंकी भी जन्मभूमि जानना। यह सुटाईमें जौके पांचवें भाग समान मोटी है। छठी त्वचाका नाम " रोहिणी " है। यह ग्रंथि ( गॉठ ) गंडमाल तथा गंडमालाका भेद अपची इनकी जगह है। ग्रंथि आदि कफ मेदप्रधान है अ एव इनके साधर्म्यसे श्लीपद अर्बुदका जन्मस्थान भी यही छठी त्वचा है यह जौ प्रमाण मोटी है। सातवी त्वचाका नाम " स्थूला " है। यह विद्रधिरोग तथा आदि शब्दसे अर्श ( बवासीर ) और भगंदरादिरोगोके होनेकी जगह है। इस प्रकार सा त्वचा कही हैं। ये सातों त्वचा दो जौकी बराबर मोटी हैं–यह प्रमाण पुष्टस्थानों जानना, ललाट और छोटी उँगली आदिमें नहीं क्योंकि लिखा है कि स्फि ( कूला ) और उदर आदिमें ब्रीहिमुखशस्त्रसे अँगूठेके बीज जितना मोटा है उतन चीरा देवे ॥ १६–१९ ॥

वातादि दोषत्रय।

**वायुः पित्तं कफो दोषा धातवश्च मलास्तथा ॥**
**तत्रापि पञ्चधा ख्याताः प्रत्येकं देहधारणात् ॥ २० ॥**

अर्थ–शरीरमे वात, पित्त और कफ ये तीन दोष हैं जो रसादि धातुओंको दूषि करते हैं अत एव उनको दोष कहते हैं और शरीरके धारण करनेसे उनकी धातुसंज्ञ है, वे रसादि धातुओंको मलीन करते हैं अत एव उनकी मल संज्ञा कही है। वे दो शरीर धारकत्व करके एक २ पांच पांच प्रकारके हैं। उदाहरण-जैसे सुश्रुतमे लिख है कि प्रस्पन्दन, उद्वहन, पूरण, विरेचन और धारण लक्षणात्मक वायु पांच प्रकारकी होकर शरीरको धारण करती है। इसी प्रकार राग, पक्ति, ओजस्तेजसात्मक पित्त पांच विभागोंमें बॅटकर अग्निकर्मसे देहका पालन करता है। तथा वृद्धि, सन्धि, श्लेष्मण स्नेहन, रोपण, प्रपूर्णात्मक कफके पांच विभागोंसे विभक्त होकर जल कर्म करके देहक पालन पोषण करता है ॥ २० ॥

वायुका प्राधान्यपूर्वकस्वरूप तथा विवरण।

**पवनस्तेषु बलवान् विभागकरणान्मतः। रजोगुणमयः सूक्ष्मः शीतो रूक्षो लघुश्चलः ॥ २१ ॥ मलाशये चरन् कोष्ठवह्नि-स्थाने तथा हृदि। कण्ठे सर्वाङ्गदेशेषु वायुः पञ्चप्रकारतः ॥ २२ ॥ अपानः स्यात् समानश्च प्राणोदानौ तथैव च। व्यानश्चेति समीरस्य नामान्युक्तान्यनुक्रमात् ॥ २३ ॥**

अर्थ–वात, पित्त, कफ इन तीन दोषोमें वायु बलवान् है। इसको मलादिकोंके पृथक् २ विभाग करनेसे तथा पित्त और कफ इनको जहां इच्छा होय तहां लेजानेकी सामर्थ्य है, अत एव उस ( वायु ) को प्रधानता है। इस वायुमें रजोगुण अधिक है

१ पित्तं पंगु कफः पंगुः पङ्गवो मलधातवः। वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत् ॥

( शीतलस्वभाव होनेसे तथा देहके छिद्रोंमें प्रवेश करनेसे ) बहुत बारीक है, शीतल और रूखी है तथा हलकी चंचल अर्थात् एकस्थानपर स्थित नही रहती । यह पांच स्थानोंमें गमन करती है अत एव पांच प्रकारकी जाननी । उन पांच स्थान और पांच नामोंको अनुक्रमसे कहते हैं । मलाशय अर्थात् पक्काशयमें जो वायु रहता है उसको "अपान" वायु कहते हैं । कोष्ठमें अग्निका स्थान है उसमें जो वायु रहे, उसको "समान" वायु कहते हैं । हृदयमें रहनेवाले वायुको "प्राण" वायु कहते है, कंठमें रहनेवाले वायुको "उदान" वायु कहते हैं । और संपूर्ण देहमें रहनेवाले पवनको " व्यान " वायु कहते हैं । इस प्रकार वायुके पांच स्थान तथा पांच नाम जानना ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

पित्तका विवरण ।

**पित्तमुष्णं द्रवं पीतं नीलं सत्त्वगुणोत्तरम् । कटुतिक्तरसं ज्ञेयं विदग्धं चाम्लतां व्रजेत् ॥ २४ ॥ अग्न्याशये भवेत् पित्त-मग्निरूध्वं तिलोन्मितम् । त्वचि कान्तिकरं ज्ञेयं लेपाभ्यं-गादि पाचकम् ॥ २५ ॥ दृश्यं यकृति यत् पित्तं तादृशं शोणितं नयेत् । यत् पित्तं नेत्रयुगले रूपदर्शनकारि तत् । ॥ २६ ॥ यत् पित्तं हृदये तिष्ठन्मेधाप्रज्ञाकरं च तत् । पाचकं भ्राजकं चैव रञ्जकालोचके तथा ॥ २७ ॥ साधकं चेति पञ्चैव पित्तनामान्यनुक्रमात् ॥**

अर्थ–अब पित्तका वर्णन करते हैं । पित्त गरम और एक पतला पदार्थ है, दूषित पित्तका नीलवर्ण है और निर्मल पित्त पीले रंगका होता है । इस पित्तमें सत्त्वगुण अधिक है तथा निर्दूषित पित्तका स्वाद चरपरा और कडुवा होता है, तथा उष्णादि पदार्थोंके संयोग उसके विदग्ध ( विकृति ) होनेसे खट्टा होजाता है, यह पित्त पांच स्थानोंमे रहता है । उन पांच स्थान और उनके नामोंको क्रम करके कहता हूं । कोठेमें अग्निका स्थान है उस स्थानमे जो पित्त है वह अग्निस्वरूप होकर तिलके बराबर है । वह पित्त उस पित्तके स्थानमें चारें प्रकारके अन्नको पचाता है अत

१ कोई प्रश्न करे कि देहके कहनेसे ही सर्व अंगोका बोध हो गया फिर सर्वांगका पृथक् ग्रहण क्यो किया, तहां कहते हैं अंगग्रहण इस जगह प्रत्यंगादिकोंके निरासार्थ अर्थात प्रत्यंगोंमे वातका कोई स्थान नही। अत एव विशेष स्थानग्रहणार्थ इस जगह सर्वांग देहका ग्रहण किया है । कोई २ पवनके अन्य नाम भी कहते हैं जैसे-" नागः कूर्मोऽथ कृकलो देवदत्तो धनंजयः । " इति । २ "विदग्धाजीर्णसंसृष्टं पुनरम्लरसं भवेत । " ३ स्थूलकायेषु सत्त्वेषु यवमात्रं प्रमाणतः । ह्रस्वमात्रेषु सत्त्वेषु तिलमात्रं प्रमाणतः । कृमिकीटपतंगेषु वालःमात्रं हि तिष्ठति ।" ४ भक्ष्य-भोज्य लेह्य चोष्य ।

एव उसको "पाचक" पित्त कहते हैं, त्वचामें जो पित्त रहता है वह शरीरमें कांति उत्पन्न करता है । चन्दनादिकोंके लेप तैलादिकोंके अभ्यंग आदि शब्द करके स्नानादिक इनको पचाता है । अतः उसको "भ्राजक"पित्त कहते हैं । वह पित्त बाई तरफ प्लीहाके स्थानमे रहकर,जैसे रससे रुधिरको प्रगट करता है उसी प्रकार दहिनी तरफ यकृत्‌के स्थानमें रहकर भी रससे रुधिरको प्रगट करता है, वह दृश्य काहिये दृष्टिगोचर है और उसको "रञ्जक" पित्त कहते है । ( कोई कहता हैं कि यकृत् काहिये कालखण्ड (कलेजे) मे जैसे रुधिर दीखता है उसी प्रकारका प्लीहामे रुधिरको उत्पन्न करता है ) दोनो नेत्रोमे जो पित्त रहता है वह सफेद, नील पीत आदि रूपका दर्शन करता है उसको "आलोचक" पित्त कहते हैं । जो पित्त हृदयमे है वह मेधारूप और प्रज्ञारूप बुद्धिको उत्पन्न करता है ॥ २४-२७ ॥ अतः उसको "साधक" पित्त कहते है, इस प्रकार पित्तके पांच स्थान और पांच नाम क्रम करके जानने ।

कफका विवरण ।

**कफः स्निग्धो गुरुः श्वेतः पिच्छिलः शीतलस्तथा ॥ २८ ॥ तमोगुणाधिकः स्वादुर्विदग्धो लवणो भवेत् । कफश्चामाशये मूर्ध्नि कण्ठे हृदि च सन्धिषु ॥ २९ ॥ तिष्ठन् करोति देहेषु स्थैर्यं सर्वांगपाटवम् । क्लेदनः स्नेहनश्चैव रसनश्चावलम्बनः ॥ ॥ ३० ॥ श्लेष्मकश्चेति नामानि कफस्योक्तान्यनुक्रमात् ॥**

अर्थ-कफ चिकना, भारी, सफेद, पिच्छिल[२] ( चिपाचिपा ) और शीतल है । तथा कफमें तमोगुण अधिक है और मीठा है तथा विकृत ( दूषित ) कफका स्वाद निमकीन होता है । वही कफ पांच स्थानोमें रहकर देहकी स्थिरता और पुष्टताको करता है । अब उन पांच स्थान तथा उन पाचोंके नाम क्रमपूर्वक कहते हैं । आमके स्थानमे जो कफ रहता है, उसको "क्लेदन"कफ कहते है । वह आमाशयमें चार प्रकारके आहारका आधार है,तथा मधुर पिच्छिल और प्रक्लेदित्व होनेपर भी अपनी शक्ति करके संपूर्ण कफके स्थानोंपर उसके कर्म करके उपकार करता है । मस्तकमे रहनेवाले कफको "स्नेहन" कफ कहते हैं । वह तर्पणादि द्वारा इंद्रियोंको अपने अपने कार्यमें सामर्थ्ययुक्त करता है और कंठमें स्थित कफको"रसन" कफ कहते हैं । यह जिह्वाकी जडमें स्थित और कटुतिक्तादि रसोंके ज्ञानका कारण है । हृदयमें रहनेवालेको " अवलंबन " कफ कहते हैं । यह अवलंबनादि कर्मद्वारा हृदयका पोषण करता है ॥ २८-३० ॥ संधियोंमे रहनेवाले कफको " संश्लेषण " कहते हैं । यह संधियोंको यथास्थित करता है। इस प्रकार कफके पांच स्थान और पांच नाम क्रमपूर्वक जानने ॥

---

१ त्वचात्रावभासिनीनामधेया-बाह्यत्वगित्यभिप्रायः । २ मृद्यमानः सन्नंगुलिग्राही अर्थात् ( चेपदार ) ।

स्नायुके कार्य।

**स्नायवो बन्धनं प्रोक्ता देहे मांसास्थिमेदसाम् ॥ ३१ ॥**

अर्थ—स्नायु अर्थात् मांसरज्जु ये मांस हड्डी और मेद इनके बंधन हैं, इनको हिन्दीमें पठे कहते हैं। इन्हीके द्वारा हड्डी, मांस और मेद खिंचे हुए हैं ॥ ३१ ॥

संधिके लक्षण।

**सन्धयश्चाङ्गसन्धानाद् देहे प्रोक्ताः कफान्विताः।**

अर्थ—शरीरमें हाथ पैर आदि अंग जिस जगह एकत्रित हुए हैं उस स्थानको अर्थात् जोडको संधि स्थान कहते हैं।उन संधियोंमें कफके सदृश पदार्थ भरा हुआ है।

आस्थिके कार्य।

**आधारश्च तथा सारः कायेऽस्थीनि बुधा जगुः ॥ ३२ ॥**

अर्थ—देहमें अस्थि (हड्डी) सार ( बलरूप ) और आधार है। वह कपाल, रुचक, वलय, तरुण, नलक ऐसी पांच प्रकारकी हैं ॥ ३२ ॥

मर्मके कार्य।

**मर्माणि जीवाधाराणि प्रायेण मुनयो जगुः।**

अर्थ—देहमें मर्म प्रायः करके आत्माके आधारभूत हैं, ऐसे मुनीश्वरोंने कहा है।

---

१ स्नायु ९०० नौसो प्रतान ( फैलनेवाली ) वृत्त ( गोल) और भीतरसे पोली है इनमेंसे हाथ पैर आदि शाखाओंमें कमलनाल तन्तुके समान फैलनेवाली और गोल महान् ६०० छः सौ स्नायु हैं और कोठेमें २३० दो सौ तीस स्नायु मोटी और छिद्रवाली है। तथा ग्रीवा (नाड) में ७० स्नायु हैं। वे भी मोटी और पोली हैं। इस प्रकार सब मिलाकर ९०० हुई, ये देहके बन्धनरूप है। जैसे लिखा है–"नौर्यथा फलकैस्तीर्णा बन्धनैर्बहुभिर्युता। भारक्षमा भवेदप्सु नृयुक्ता सुसमाहिता। एवमेव शरीरेऽस्मिन् यावन्तः सन्धयः स्मृताः। स्नायुभिर्बहुभिर्बद्धास्तेन भारसहा नराः॥" इति।

२ संधि दो प्रकारकी हैं एक चल दूसरी अचल। तहां ठोडी कमर और हाथ पैरोंकी तथा नाडीकी संधि चलायमान है, बाकीकी सब संधियां अचल हैं। सब संधियां २१० हैं। इनमें जो कफके सदृश पदार्थ भरा है उसका प्रयोजन यह है कि जैसे रथचक्रादि तैलादिक संयोगसे निर्विघ्नतासे फिरते है उसी प्रकार संधि इस पदार्थके योगसे चलन वलन विषयमें समर्थ होती है।

३ मांसनेत्रनिबद्धानि शिराभिः स्नायुभिस्तथा। अस्थीन्यालम्बनं कृत्वा न शीर्यन्ते पतन्ति च ॥ ४ ॥अभ्यन्तरगतैः सारैर्नूनं तिष्ठन्ति भूरुहाः। अस्थिसारैस्तथा देहा ध्रियन्ते देहिनां ध्रुवम्॥ तस्माच्चिरविनष्टेषु त्वङ्मांसेषु शरीरिणाम्। अस्थीनि न विनश्यन्ति साराण्येतानि देहिनाम् ॥

वे मर्म पांच प्रकारके हैं। जैसे-मांसमर्म ११,शिरामर्म ४१, स्नायुमर्म २७, अस्थिमर्म ८ और संधिमर्म २०, इस प्रकार सब मर्म १०७ जानने। ये मर्म सद्यः प्राणहरणकर्त्ता-काला-

शिराओंके कार्य ।

**सन्धिबन्धनकारिण्यो दोषधातुवहाः शिराः ॥ ३३ ॥**

अर्थ-शिरो ( नस ) संधिके बंधन करनेवाली और वातादिदोष तथा रसादि धातु इनके बहानेवाली हैं ॥ ३३ ॥

धमनीके कार्य ।

**धमन्यो रसवाहिन्यो धमन्ति पवनं तनौ ।**

अर्थ-देहमें जो रसवाहिनी नाडी हैं वे पवनको धमन करती हैं अर्थात् धमाती हैं अतएव उनको धमनी कहते हैं ।

पेशीके कार्य ।

**मांसपेश्यो बलाय स्युरवष्टंभाय देहिनाम् ॥ ३४ ॥**

अर्थ-मांसपेशी अर्थात् मांसके टुकडे मनुष्योंके बलके अर्थ और अवष्टंभ कहिये देहके सीधे खड़ा रहनेके अर्थ जाननी ॥ ३४ ॥

---

-न्तरमें प्राणहरणकर्ता, वैशल्यघ्न, वैकल्पकारी और पीडाकारी है । 'सोमसारुततेजांसि रजःसत्त्वतमांसि च । मर्माणि प्रायशः पुंसां भूतात्मा योऽवतिष्ठते । मर्मस्वभिहतो जीवो न जीवति शरीरिणः ।''

१ शिरा स्थूल सूक्ष्म भेदकरके दो प्रकारकी हैं उनका नाभिस्थान मूल है । उसी नाभिस्थानसे ये शिरा ऊपर नीचे और तिरछी फैली हुई है, मूलशिरा ४० हैं उनमें दश वातवाहिनी है, दश पित्तवाहिनी हैं, दश कफवाहिनी और दश रुधिरवाहिनी हैं । इस प्रकार सब चालीस जाननी । उनमें वातवाहिनी जो दश शिरा है उनमेंसे १७५ दूसरी शिरा निकली हैं । इस प्रकार पित्तवाहिनी, कफवाहिनी और रक्तवाहिनी शिरा इन प्रत्येकमेंसे १७५ एक सौ पचहत्तर २ निकली है, इस प्रकार सब मिलनेसे ७०० शिरा होती है ।

२ धमनी नाडियां चौबीस हैं । ये भी नाभिस्थानसे प्रकट होकर दश नीचे गई हैं कि जो वात, मूत्र, मल, शुक्र, आर्तव आदि और अन्न, जल, रस इनको बहाती हैं । और दश ऊर्ध्वगामिनी धमनी है । ये शब्द, रूप, रस, गन्ध, श्वासोच्छ्वास, जम्भाई, क्षुधा, बोलना, हँसना, रुदन करना इत्यादिकोंको-बहाकर देहको धारण करती हैं । तिरछी जाननेवाली ४ धमनी है । इन चारोंमेंसे असंख्यात धमनी उत्पन्न हुई है, इनसे यह देह जालके सदृश परिव्याप्त है । इनके मुख रोमकूपो ( रोआँ ) से बन्धे हुए है और ये रसको सर्वत्र पहुँचाती हैं । पसीनेको बहाती है, तथा उबटना, स्नान और लेपादिक इनके वीर्यको भीतर ले जाती है, इस प्रकारके २४ धमनी है ।

३ शिरास्नाय्वस्थिपर्वाणि सन्धयस्तु शरीरिणाम् । पेशीभिः संभृतान्यत्र बलवन्ति भवन्त्युत ॥ तासां तु स्थानविशेषान्नानास्वरूपत्वं दर्शितम् । तद्यथा-''बहलेपलवस्थूलाणुपृथुवृत्तह्रस्वदीर्घस्थिरमृदुश्लक्ष्णकर्कशा भावाः'' । आसां लक्षणं तु अस्मद्विरचितबृहन्निघंटुरत्नाकरस्य शारीरभागेऽप्यवलोकनीयम् । अत्र-ग्रन्थविस्तरभयान्न लिखितम् ।

कंडराके काय।

**प्रसारणाकुंचनयोरंगानां कंडरा मता।**

अर्थ–कंडरा[1] कहिये बडी स्नायु उसे हाथ पैर आदि अंगोंके प्रसारण (फैलाने) आकुञ्चन (समेटने) के विषयमें समर्थ जाननी।

रंध्रों (छिद्रों) का विवरण।

**नासानयनकर्णानां द्वे द्वे रंध्रे प्रकीर्तिते ॥ ३५ ॥ मेहनापानवक्त्राणामेकैकं रंध्रमुच्यते। दशमं मस्तके चोक्तं रंध्राणीति नृणां विदुः॥३६॥स्त्रीणां त्रीण्यधिकानि स्युः स्तनयोर्गर्भवर्त्मनः।सूक्ष्मच्छिद्राणि चान्यानि मतानि त्वचि जन्मिनाम् ३७**

अर्थ–नाक, नेत्र, कान इनमें दो दो छिद्र हैं, लिंग, गुदा और मुख इनमें एक एक छिद्र है,मस्तकमें एक छिद्र है, कि जिसको ब्रह्मरंध्र कहते हैं। इस प्रकार पुरुषोंके नौ छिद्र खुले हुए हैं और मस्तकमें जो ब्रह्मरंध्र है वह ढका हुआ है ऐसे दश छिद्र हैं। तथा स्तनसंबंधी दो छिद्र और गर्भभागमें एक ऐसे तीन छिद्र पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंके अधिक हैं। तथा इस प्राणीकी त्वचामें अनेक छिद्र हैं परन्तु अत्यन्त बारीक होनेसे नही दीखते, चकारसे, प्राण, जल, रस, रुधिर, मांस, मेद, मूत्र, मल, शुक्र और आर्तवके बहानेवाला अन्य छिद्र और भी हैं ऐसा किसी आचार्यका मत है॥३५-३७॥

अब शरीरकथनके प्रसंगसे अन्य फुप्फुसादिकोंका स्वरूप दिखाते हैं–

**तद्वामे फुप्फुसं प्लीहा दक्षिणांगे यकृन्मतम्। उदानवायोराधारः फुप्फुसं प्रोच्यते बुधैः ॥ ३८ ॥ रक्तवाहिशिरामूलं प्लीहा ख्याता महर्षिभिः। यकृद् रञ्जकपित्तस्य स्थानं रक्तस्य संश्रयम् ॥ ३९ ॥**

अर्थ–हृदयके वामभागमें प्लीहा[2] और फुप्फुस[3] तथा दक्षिण भागमें यकृत् है। उसको

---

१ कंडरा जो १६ हैं उनके प्ररोहके अर्थ जाननी। जैसे हाथ पैरकी कंडराओके नख (नाखून) अग्रप्ररोह हैं इसी प्रकार और भी जानो। सोहल संख्याका जो ग्रहण है सो इस जगह शस्त्रकर्मके निषेधार्थ है। यथा–"जालानि कंडराश्चांगे पृथक् षोडश निर्दिशेत्। षट् कूर्चाः सप्त जीविन्यो मेढ्रजिह्वाशिरोगताः। शस्त्रेण ताः परिहरेच्चतस्रो मांसरज्जवः॥"

२ प्लीहा रक्तसे उत्पन्न है और उसको भाषामे फीहा कहते हैं। फुप्फुस अर्थात् फफडा रुधिरके झागसे प्रगट होकर हृदयनाडिकासे लगा हुआ है, इसीसे श्वासका कार्य होता है, कि जिसके द्वारा सर्व देहकी चेष्टा होती है। (यह वाम भागमें उत्पन्न होकर दोनो तरफ फैला हुआ होता है)

कालखण्ड ( कलेजा ) कहते है । अब इनके कार्य कहते हैं-फुप्फुस ( फेंफडा ) जो है सो उदान अर्थात् कंठस्थवायुका आधार है और प्लीहा है सो रुधिर बहनेवाली शिराओका मूल है, एवं यकृत् है सो रंजक पित्त और रुधिरका स्थान है ॥३८॥३९॥

तिलके लक्षण ।

**जलवाहिशिरामूलं तृष्णाच्छादनकं तिलम् ।**

अर्थ-रुधिरके कीट (कीटी) से प्रगट और दक्षिण भागमें यकृत्के समीप तिल नामका एक स्थान है उसको क्लोम कहते हैं । वह तिल जल बहनेवाली नाडियोंका मूल है अतएव तृष्णा कहिये प्यासको आच्छादन करता है ।

वृक्कके लक्षण ।

**वृक्कौ पुष्टिकरौ प्रोक्तौ जठरस्थस्य मेदसः ॥ ४० ॥**

अर्थ-वृक्क कहिये कुक्षिगोल[1] यह जठर ( पेट ) में रहनेवाले मेदको पुष्ट करते हैं अर्थात् बढाते हैं । जठर शब्दका ग्रहण अन्य स्थानाश्रित मेदके निषेधार्थ है जैसे लिखा है "-स्थूलास्थिषु विशेषेण मज्जा त्वभ्यन्तराश्रिताः । अथेतरेषु सर्वेषु सरक्ते मेद उच्यते' ॥ इति ॥ ४० ॥

वृषणके लक्षण ।

**वीर्यवाहिशिराधारौ वृषणौ पौरुषावहौ ।**

अर्थ-वृषण[2] कहिये आँड ये वीर्यवाही नाडियोंके आधार हैं अत एव पुरुषार्थ अर्थात् पुरुषबलको देते हैं । " बीजवाहि" ऐसा भी पाठान्तर है ।

लिङ्गके लक्षण ।

**गर्भाधानकरं लिङ्गमयनं वीर्यमूत्रयोः ॥ ४१ ॥**

अर्थ-लिंग[3] कहिये शिश्नेन्द्रिय जो वीर्यद्वारा गर्भको प्रकट करती है और वीर्य तथा मूत्र निकलनेका मार्ग है, । जैसे लिखा है, "द्व्यंगुले दक्षिणे पार्श्वे वस्तिद्वारस्य चाप्यधः । मूत्रस्रोतः पथः शुक्रं पुरुषस्य प्रवर्तते ॥" इति । "बीजमूत्रयोः" ऐसा भी पाठान्तर है ॥ ४१ ॥

हृदयके लक्षण ।

**हृदयं चेतनास्थानमोजसश्चाश्रयं मतम् ।**

अर्थ-कमलकी कलीके समान किंचित् विकसित और अधोमुख ऐसा हृदय[4] है ।

---

१ दो कुक्षिगोलक रक्त और मेदके सारांशसे उत्पन्न होते हैं ( इन्हे भाषामें गुरदे कहते हैं ।) २ वृषण मांस, कफ और मेदके सारांशसे उत्पन्न होते हैं । ३ लिंगके साथ वर्तमान हृदयके बन्धन करनेवाले ऐसे चार कंडरा ( बडे २ स्नायु ) है उनके अग्रभागसे यह लिग प्रगट होता है । ४ हृदय रुधिरके सारसे निर्मित है ।

यह चैतन्यका स्थान होकर ओज कहिये सम्पूर्ण धातुओंके तेजोंका सार है। यद्यपि सामान्यता करके सर्व देह ही चेतनाका स्थान है, जैसे चरकमें लिखा है-"चेतनानामधिष्ठानं मनो देहश्च सेन्द्रियः। केशलोमनखाग्रांतमलद्रव्यगुणैर्विना" इति। परन्तु विशेषता करके हृदय ही चेतनाका मुख्य स्थान है। और जैसे दूधमें सार वस्तु घृत है इसी प्रकार सब धातुओंका तेज-स्नेहरूप ओज है अर्थात् तेज रूप है। जैसे सुश्रुतमें लिखा है-" रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत्परं तेजस्तदेव ओजस्तदेव बलमित्युच्यते," कोई आचार्य ओज शब्द करके जीव और रुधिरको ग्रहण करते हैं, कोई निर्विकार कफको ही ओज कहते हैं और किसी २ ग्रन्थमें ओज शब्द करके रसका ग्रहण करते हैं।

शरीरपोषणार्थ व्यापार।

**शिरा धमन्यो नाभिस्थाः सर्वा व्याप्य स्थितास्तनुम् ॥ ४२ ॥**
**पुष्णन्ति चानिशं वायोः संयोगात् सर्वधातुभिः।**

अर्थ-नाभिस्थानमें रहनेवाली शिरा और धमनी सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हो रात्रिदिवस वायुके संयोग करके रसादि सर्व धातुओंको सर्व शरीरमें लेजाकर शरीरका पोषण करती हैं और चकारसे पालन करती हैं। ये तरुण पुरुषोंके शरीरका पोषण ( पुष्ट ) करती हैं और वृद्ध मनुष्यके देहका पालन करती हैं जैसे लिखा है-" स एवान्नरसो वृद्धानां परिपक्वशरीरत्वादप्रीणनो भवति" कोई कहे कि कैसे पोषण करती हैं, जैसे लिखा है कि-"क्रियाणामप्रतीघातममोहं बुद्धिकर्मणा। करोत्यन्यान् गुणांश्चापि स्वाः शिराः पवनश्चरन्" कौनसी वस्तुओंसे पोषण करती हैं, तहां कहते हैं कि सम्पूर्ण रसादि धातुओं करके पोषण करती हैं, इस वाक्यसे सबका सामान्य कर्म कहा। जैसे लिखा है कि-"याभिरिदं शरीरमाराम इव जलहारणीभिः केदार इव कूल्याभिरुपस्निह्यते, अनुगृह्यते चाकुञ्चनप्रसारणादिभिर्विशेषैरिति" कदाचित् कोई प्रश्न करे कि वे शिरा और धमनी नाडी नाभिमे स्थित हो सर्व देहको कैसे पोषण करती हैं? तहां कहते है-"व्याप्नुवन्त्यमितो देहं नाभितः प्रसृताः शिराः। प्रतानाः पद्मिनीकन्दाबिसादीनां यथा जलम्" ॥ ४२ ॥

प्राणवायुका व्यापार।

**नाभिस्थः प्राणपवनः स्पृष्ट्वा हृत्कमलान्तरम् ॥ ४३ ॥**
**कण्ठाद् बहिर्विनिर्याति पातुं विष्णुपदामृतम्।**
**पीत्वा चाम्बरपीयूषं पुनरायाति वेगतः ॥ ४४ ॥**
**प्रीणयन् देहमखिलं जीवं च जठरानलम्।**

अर्थ-नाभिमे स्थित प्राणपवन ( प्राणाश्रितवायु ) हृदयका स्पर्श कर बाह्य

[१] प्राण अग्नि और सोमादिक ये नाभिमें रहते है अत एव यहां 'नाभिस्थःप्राणपवनः' ऐसा कहा।

आकाशसे अमृत ( हवा ) पीनेके वास्ते कंठके बाहर जाता है, वहां अमृतको पीकर फिर उसी वेगसे नासिकाद्वारा अपने स्थानमें आयकर संपूर्ण देह और जीव इनको सन्तुष्ट और जठराग्निको प्रदीप्त करता है । वह प्राणवायु सकलशरीरमें व्यापक होनेसे नाभिमें आवृत जो शिरा हैं उनमें भी स्थित है । अत एव लिखा है-"नाभिस्थाः प्राणिनां प्राणाः प्राणान्नाभिव्यपाश्रिताः । शिराभिरावृता नाभिश्चक्रनाभिरिवारकैः " इति । और भी ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि-" ब्रह्मग्रन्थौ नाभिचक्रं द्वादशारमवस्थितम् । लूतेव तन्तुजालस्थस्तत्र जीवो भ्रमत्ययम् ॥ सुषुम्नया ब्रह्मरन्ध्रमारोहत्यवरोहति । जीवप्राणसमारूढो रज्ज्वा कोल्हाटिको यथा ॥ " इस प्रमाणसे पवनका कारण भी ग्रन्थान्तरोंमें इस प्रकार लिखा है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

" तेषां मुख्यतमः प्राणो नाभिकन्दादधः स्थितः । चरत्यास्ये नासिकायां नाभौ हृदयपङ्कजे। शब्दोच्चारणनिःश्वासश्वासकासादिकारणम् " ।

इत्यादि गुणविशिष्ट प्राणपवन हृदयकमलके आभ्यंतरको स्पर्श करके अर्थात् हृदयकमलको प्रफुल्लित कर कंठको उल्लंघन कर मस्तकमें विष्णुपदामृत ब्रह्मरन्ध्राश्रित अमृत पीनेको प्राप्त होता है-" चक्रं सहस्रपत्रं तु ब्रह्मरन्ध्रे सुधाधरम् । तत्सुधासारधाराभिरभिवर्द्धयते तनुम् ।" भरतोऽपि-" ब्रह्मरन्ध्रे स्थितो जीवः सुधया संप्लुतो यदा । तुष्टो गीतादिकार्याणि सम्प्रकर्षाणि साधयेत् " उस जगह उस ब्रह्मरन्ध्रस्थित अमृतको पीकर जिस वेगसे ऊपर गई उसी वेगसे फिर तत्क्षण लौटकर अपने स्थानपर आकर प्राप्त होती है । वह अपनी जगहपर आकर सकलदेह ( चोटीसे चरणपर्यंत ) को तथा जीव और जठरानल ( पाचकाग्नि ) को पुष्ट करती है ।

यद्यपि देह ग्रहणहीसे जीवानलादिकका ग्रहण होगया, तो भी यह कहना विशेषताद्योतक है अर्थात् सामान्यता करके देहके अंगप्रत्यंग विभाग जानना और

१ऊपर लिखे श्लोकसे प्रत्यक्ष मालूम होता है कि इस प्राणीके देहसे पवन विष्णुपदामृत पीनेको निकलता है और फिर देहके भीतर आ जाता है । परंतु मुख्य इसका तात्पर्य यही है कि भीतरकी पवन देहमे किञ्चिन्मात्र भी रहनेसे विषैले अर्थात और विषरूप होजाती है अतएव वह विषमिश्रित पवन बाहर निकलती है और विष्णुपदनाम आकाशका है उसमें प्राप्त हो स्वच्छ पवनसे मिश्रित होकर अपने विषैले गुणको त्यागती है और आकाशकी नवीन पवनको श्वासद्वारा भीतर लेजाकर रुधिरकी शुद्धि करनेसे देहको और जीवको पालन करती है । इसी लिये एक छोटेसे मकानमें बहुतसे मनुष्योंके बैठनेसे उस मकानकी पवन विषैली होजाती है, परंतु जिस मकानमे चारो तरफसे पवन आनेजानेका संचार अच्छी तरह होवे उसमें यह अवगुणकारी पवन नही ठहर सकती और इसीसे बडे२ मेलोंमें इंग्रेज जो बहुत दिनतक मेलेको ठहरने नही देते उसका मुख्य यही कारण है । इससे जो जो सफाई करनेके बंदोबस्त करते है उन सबका कारण हमारे शास्त्रमें लिखा है परन्तु अब मूर्खानन्द वैद्य और हकीम तथा डाक्टर इन सब बातोंको अंग्रेजोंकी निर्मित बतलाते है । ठीक है, कुएकी मेंढकी कुएकोही समुद्र मानती है ।

जीव तथा अग्नि ये विशेषताकरके जानने, क्योंकि " शरीराद् भिन्नो जीवः " इति श्रुतेः । अर्थात् जीवको शरीरसे भिन्न होनेके कारण पृथक् कहा इस वास्ते दोष नहीं है । " आयुर्वर्णो बलं स्वास्थ्यमुत्साहोपचयप्रभाः । ओजस्तेजोऽग्नयः प्राणाः स्वक्ता देहेऽग्निहेतुकाः । शान्तेऽग्नौ म्रियते युक्ते चिरंजीवत्यनामयम् । रोगी स्याद्विरते मूलमग्निस्तस्मान्निरुच्यते " ॥

आयुके और मरणके लक्षण ।

**शरीरप्राणयोरेवं संयोगादायुरुच्यते ॥ ४५ ॥**
**कालेन तद्वियोगाद्धि पञ्चत्वं कथ्यते बुधैः ।**

अर्थ–एवं पूर्वोक्त श्लोकके अभिप्रायसे शरीर और प्राण इनके संयोगको आयु[1] कहते और काल[2] करके शरीर और प्राण इन दोनोंके वियोग होनेको पंचत्व ( मरण ) कहते हैं ॥ ४५ ॥

वैद्यको क्या कर्तव्य है ।

**न जन्तुः कश्चिदमरः पृथिव्यां जायते क्वचित् ॥ ४६ ॥**
**अतो मृत्युरवार्यः स्यात् किंतु रोगान् निवारयेत् ।**

अर्थ–पृथ्वीमे कोई प्राणी अमर ( मृत्युरहित ) नहीं है, अत एव मृत्युके निवारण करनेमें कोई समर्थ नही है परन्तु वैद्य रोगोका निवारण करे । प्रसंगसे वैद्यके लक्षण " व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः । एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥ " अर्थात् व्याधिके निदानादिद्वारा यथार्थज्ञान करके रोगजन्य पीडाका शमन करना यही वैद्यका वैद्यत्व है किन्तु वैद्य आयुका प्रभु नही है ॥ ४६ ॥

अब साध्य व्याधिका यत्न न करनेसे अवस्थांतर कहते हैं–

**याप्यत्वं याति साध्यश्च याप्यो गच्छत्यसाध्यताम् ॥ ४७ ॥**
**जीवतं हन्त्यसाध्यस्तु नरस्याप्रतिकारिणः ।**

अर्थ–साध्य व्याधिकी चिकित्सा न करनेसे याप्य[3] होती है, याप्यकी चिकित्सा न करनेसे व्याधि असाध्य हो जाती है और असाध्य होनेसे व्याधि प्राणहरण करती है । अत एव व्याधिके उत्पन्न होते ही चिकित्सा करनी चाहिये । जैसे लिखा है–

---

१ भूतात्माके शरीर निधन पर्यंत धर्म, अधर्म, नैमित्तिक सांसारिक सुखदुःखके उपभोग साधनको आयु कहते हैं । २ काल भी स्वयंभू अनादि, मध्य, निधनका कारण है । प्राणियोंके संहार करनेवाला काल कहलाता है, अथवा प्राणियोंको सुखदुःखादिमें नियोजन करता है इसवास्ते उसे काल कहते हैं, अथवा मृत्युके समीप प्राप्त करता है इसवास्ते उसको काल कहा है । ३ चकारसे यह दिखाया कि व्याधि प्रथम ही याप्यत्वको नही प्राप्त होती, किंतु प्रथम कृच्छ्रसाध्य होती है फिर याप्यत्वको प्राप्त होती है ।

" जातमात्रश्चिकित्स्यस्तु नोपेक्ष्योऽल्पतया गदाः । वह्निशत्रुविषैस्तुल्याः स्वल्पोऽपि विकरोत्यसौ॥"याप्य यह असाध्यका भेद है जैसे लिखा है कि–"असाध्यो द्विविधो ज्ञेयो याप्यो यश्चाप्रतिक्रियः "तथा च–" यापनीयं तु जानीयात् क्रियां धारयते तु यः। क्रियायां तु निवृत्तायां सद्य एव विनश्यति " उसी प्रकार साध्य भी दो प्रकारका है, एक सुखसाध्य और दूसरा कृच्छ्रसाध्य । एक दोषसे उत्पन्न, उपद्रवरहित और नवीन इत्यादि लक्षण युक्त व्याधि सुखसाध्य कही गई है और शस्त्रादिसाधन द्वारा चिकित्सा योग्य व्याधिको कृच्छ्रसाध्य कहते हैं ॥ ४७ ॥

**धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः ॥ ४८ ॥**
**अतो रुग्भ्यस्तनुं रक्षेन्नरः कर्मविपाकवित्[1] ।**

अर्थ–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनका साधन (कारण) ऐसा यह देह है अत एव शुभाशुभ कर्मके फलको जाननेवाले मनुष्य रोगोंसे शरीरकी रक्षा करे ॥ ४८ ॥

अब दोषोंकी विषम और सम अवस्थाको कहते हैं–

**धातवस्तन्मला दोषा नाशयन्त्यसमास्तनुम्[2] ॥ ४९ ॥**
**समाः सुखाय विज्ञेया बलायोपचयाय च ।**

अर्थ–रसादि सात धातु और धातुओंके मल तथा वातादि तीन दोष ये न्यूनाधिक होनेसे शरीरका नाश करते हैं और सम ( स्वप्रमाणस्थित ) होनेसे सुख, बल और शरीरकी वृद्धिको देते हैं ॥ ४९ ॥ इति शारीरे कलादिकथनम् ।

प्रथम यह कह आये हैं कि, आदिशब्दसे सृष्टिक्रम कहेंगे सो ही वर्णन करते हैं–

**जगद्योनेरनिच्छस्य चिदानन्दैकरूपिणः ॥ ५० ॥**
**पुंसोऽस्ति प्रकृतिर्नित्या प्रतिच्छायेव भास्वतः ।**

अर्थ--महदादि रूप जो जगत् ( पृथिव्यादिभूत ) आदि कारण होकर इच्छा-

---

१ पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते । अतो दानादिकं कुर्यात् संप्रतीक्ष्य विचक्षणः॥ इति । २ अब ग्रन्थांतरसे दोषादिकोका परिमाण लिखते है–यः प्रसादपरोऽन्नस्य परजीर्णस्य सर्वशः । सरसोऽञ्जलयस्तस्य नव देहेषु देहिनः॥रक्तस्याञ्जलयस्त्वष्टौ शकृतः सप्त सर्वशः । पित्तस्याञ्जलयः पंच षट् कफस्य प्रचक्षते । मूत्रस्य विद्याच्चत्वारो वसायाश्चाञ्जलित्रयम् । द्वावञ्जली मेदसस्तु मज्जा एकाञ्जलिर्मता । शुक्रस्यैकाञ्जलिर्ज्ञेया मस्तिष्कस्योजसस्तथा । चत्वारोऽञ्जलयः स्त्रीणां रजसः प्रकृतिस्थितिः।द्वावञ्जली प्रसूतायाः स्तन्यस्यापि हि योषितः। प्रमाणमेतद्धातूनामदुष्टानामुदाहृतम्॥हीनाः स्वेन प्रमाणेन विविधाश्चापि धातवः। योजयन्ति विकारैस्तु दोषा वृद्धिक्षयप्रदाः॥इति ।" अत एवाह वाग्भटः-"रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता "। ग्रथान्तरेऽपि-"विकृताविकृता देहं घ्नन्ति ते वर्द्धयन्ति च।" तथा च चरकेऽपि "विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते । सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च" इति ।

रहित तथा चिदानन्द ज्ञानमय ऐसा जो पुरुष उसको ईश्वर कहते हैं। उस पुरुषकी नित्य और सूर्यकी छायाके समान प्रकृति है उसको अव्यक्त भी कहते हैं ॥ ५० ॥

प्रकृति कैसे विश्व निर्माण करती है तथा पुरुषका कर्तृत्व कैसे यह कहते हैं—

**अचेतनाऽपि चैतन्ययोगेन परमात्मनः ॥ ५१ ॥**
**अकरोद्विश्वमखिलमनित्यं नाटकाकृति ।**

अर्थ—वह मूलप्रकृति चेतनरहित ( जड ) होकर परमात्माके चैतन्य सम्बन्ध करके अनित्य ऐसे संपूर्ण महदादिरूप विश्वको करती हैं। इस विषयमें दृष्टांत जैसे ऐन्द्रजालिक ( बाजीगर ) यंत्रप्रभावसे झूठे नाटकोंको दिखाता है इस श्लोकका संबंध पूर्व श्लोकके साथ है ॥ ५१ ॥

अब एकसे कार्यका उत्पत्तिक्रम कहते हैं—

**प्रकृतिर्विश्वजननी पूर्वं बुद्धिमजीजनत् ॥५२॥ इच्छामयीं महद्रूपामहङ्कारस्ततोऽभवत् । त्रिविधः सोऽपि संजातो रजःसत्त्वतमोगुणैः ॥ ५३ ॥**

अर्थ—विश्वकी जननी ऐसी जो प्रकृति है वह प्रथम इच्छामयी ( सत्त्व, रज,तमोगुण स्वभावोंसे अनेक प्रकारकी) और महद्रूप (महान् है पर्याय नाम जिसका अथवा स्फटिकमणिके समान ) बुद्धिको उत्पन्न करती भई । उस बुद्धिसे अहंकार उत्पन्न हुआ, वह राजस तामस और सात्त्विक भेदसे तीन प्रकारका है। तहां वैकारिक सत्त्वगुणी तैजस रजोगुणी और भूतादि तमोगुणी जानना ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

त्रिविध अहंकारके कार्य ।

**तस्मात् सत्त्वरजोयुक्तादिन्द्रियाणि दशाभवन् । मनश्च जातं तान्याहुः श्रोत्रत्वङ् नयनं तथा ॥ ५४ ॥ जिह्वाघ्राणत्वचो हस्तपादोपस्थगुदानि च । पञ्च बुद्धीन्द्रियाण्याहुः प्राक्तनानीतराणि च ॥५५॥ कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव कथ्यन्ते सूक्ष्मबुद्धिभिः ।**

अर्थ—राजस अहंकार है सहायक जिसका तथा तमोमात्रकरके अनुविद्ध( मिश्रित) जो सात्त्विक अहंकार है उससे श्रोत्र ( कान ), त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका, वाणी, हाथ, पैर, उपस्थ ( लिंग और भग ) गुदा और मन ये ग्यारह इंद्रियें उत्पन्न हुई । उनमें पहली( कान त्वचा आदि ) ज्ञानेंद्रिय हैं, क्योंकि इनको बुद्धिका आश्रय है, अवशिष्ट

१ " अस्ति ब्रह्म चिदानन्दं स्वयं ज्योतिर्निरञ्जनम् । ईश्वरो लिङ्गमित्युक्तमद्वितीयमजं विभुम् । निर्विकारं निराकारं सर्वेश्वरं मुनीश्वरम् । सर्वशक्ति च सर्वज्ञं तदंशा जीवसंज्ञकाः । अनाद्यविद्यापरिता यथाग्नौ विस्फुलिङ्गकाः ॥ "

( बाकी ) रही जो पांच वे कर्मेंद्रिय हैं, क्योकि इनको कर्मका आश्रय है तथा उभयात्मक(बुद्ध्यात्मक और कर्मात्मक मन है) अथवा राजस अहंकारसे इंद्रिय, सात्त्विकसे इंद्रियोंके देवता और मन ऐसे पृथक्त्व करके उत्पात्तिक्रम जानना । कोई "तस्मात्" इस जगह "तमःसत्त्वरजोयुक्तात्" ऐसा पाठ कहते हैं और व्याख्या करते हैं" तमः-सत्त्वरजोयुक्तसे" इंद्रियें हुई । तात्पर्य यह है कि सांख्यशास्त्रमें इंद्रियोंको अहंकारजन्य कहा है और वैद्यकमें भौतिकी कहा है इतना फरक है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

तन्मात्राओंकी उत्पत्ति ।

**तमःसत्त्वगुणोत्कृष्टादहङ्कारादथाभवत् ॥ ५६ ॥ तन्मात्रपञ्चकं तस्य नामान्युक्तानि सूरिभिः।शब्दतन्मात्रकं स्पर्शतन्मात्रं रूपमात्रकम् ॥ ५७ ॥ रसतन्मात्रकं गन्धतन्मात्रं चेति तद्विदुः ।**

अर्थ-राजस अहंकार है सहायक जिसका तथा सत्त्वमात्रकरके अनुविद्ध ( युक्त ) ऐसा जो तामस अहंकार उससे तन्मात्रा कहिये उसी २ आश्रयपर मुख्यत्वकरके रहनेवाले ऐसे गुण उत्पन्न हुए, उनके पांच नाम-शब्दतन्मात्र,स्पर्शतन्मात्र, रूपतन्मात्र, रसतन्मात्र और गन्धतन्मात्र इस प्रकार जानने । इन तन्मात्राओंको योगी पुरुष ही जान सकते हैं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

तन्मात्रापंचकोंका विशेष।

**शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसगन्धावनुक्रमात् ॥ ५८ ॥
मन्मात्राणां विशेषाः स्युः स्थूलभावमुपागताः ।**

अर्थ-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये क्रम करके तन्मात्रापंचकोंके विशेष जानने । इनका सुख दुःख और मोह इन्हींसे अनुभव होता है । अतएव स्थूलभावको प्राप्त हुए जानने तथा तन्मात्रा पंचकोंका अनुभव सूक्ष्म है इसीसे नहीं होता ॥ ५८ ॥

भूतपंचकोंकी उत्पत्ति ।

**तन्मात्रपंचकात् तस्मात् संजातं भूतपञ्चकम् ॥ ५९ ॥
व्योमानिलानलजलक्षोणीरूपं च तन्मतम् ।**

अर्थ-शब्दादि पञ्चतन्मात्राओसे भूतोंके पंचक उत्पन्न हुए, उनके नाम आकाश[1], पवन[2], अग्नि[3], जल[4], पृथ्वी[5] इस प्रकार जानने ॥ ५९ ॥

---

१ आकाश-आकाशका शब्दमात्रगुण जानना । २ वायु-वायुका मुख्यगुण स्पर्श तथा आनुषंगिक शब्द गुण जानना । ३ तेज-तेजका मुख्य गुण रूप और आनुषंगिक शब्द और स्पर्श ये गुण जानने । ४ उदक-उदकका मुख्यगुण रस और आनुषंगिक शब्द, स्पर्श, रूप ये गुण जानने । ५ पृथ्वी-पृथ्वीका मुख्य गुण गन्ध तथा आनुषंगिक शब्द, स्पर्श, रूप और रस ये गुण जानने ।

इन्द्रियोंके विषय।

**बुद्धीन्द्रियाणां पंचैव शब्दाद्या विषया मताः ॥ ६० ॥ कर्मेन्द्रियाणां विषया भाषादानविहारतः। आनन्दोत्सर्गकौ चैव कथितास्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ६१ ॥**

अर्थ-श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण ये पांच बुद्धीन्द्रिय हैं, इनके शब्द, स्पर्श, रूप, रस,गन्ध ये पांच विषय क्रमपूर्वक जानने। उदाहरण-जैसे कर्णेन्द्रियका शब्द, त्वगिंद्रियका स्पर्श, चक्षुरिंद्रियका रूप, जिह्वा इंद्रियका रस और घ्राण ( नासिका ) इंद्रियका गंध विषय जानना। वाणी, हाथ, पैर, उपस्थ, गुदा ये कर्मेंद्रिय हैं इनके भाषण, आदान, विहार, आनंद, उत्सर्ग ये पञ्च विषय क्रमकरके जानने। उदाहरण-जैसे वाणी इंद्रियका विषय भाषण, हस्तेंद्रियका ग्रहण, पैरोंका विहार, उपस्थका आनंद और गुदाका उत्सर्ग ये विषय जानने ॥ ६० ॥ ६१ ॥

मूलप्रकृतिके पर्यायनाम।

**प्रधानं प्रकृतिः शक्तिर्नित्या चाविकृतिस्तथा।**
**एतानि तस्या नामानि शिवमाश्रित्य या स्थिता ॥ ६२ ॥**

अर्थ-प्रधान, प्रकृति, शक्ति, नित्या और अविकृति ये प्रकृतिके पर्यायशब्द जानने। वह प्रकृति शिवका आश्रय करके ऐसे रहती है, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब सूर्यके आश्रय रहता है। वह सत्त्व, रज, तमरूपा है जैसे सुश्रुतमें लिखा है "सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्त्वरजस्तमोलक्षणमष्टरूपमखिलस्य जगतः संभवे हेतुमव्यक्तं नाम" इति ॥ ६२ ॥

अब चौबीस सत्त्वराशिको पृथक् निकालके कहते हैं।

**महानहंकृतिः पञ्चतन्मात्राणि पृथक् पृथक्।**
**प्रकृतिर्विकृतिश्चैव सप्तैतानि बुधा जगुः ॥ ६३ ॥**

अर्थ-महत्तत्त्व, अहंकार और पंचतन्मात्रा ये सात इंद्रियादिकोंके कारण हैं अर्थात् प्रकृतिरूप और प्रकृतिके कर्मरूप कहिये विकृतिरूप हैं ॥ ६३ ॥

षोडश विकार।

**दशेन्द्रियाणि चित्तं च महाभूतानि पञ्च च।**
**विकाराः षोडश ज्ञेयाः सर्वं व्याप्य जगत् स्थिताः ॥ ६४ ॥**

अर्थ-दश इंद्रिय उभयात्मक मन और पांच महाभूत ये सोलह विकार हैं। ये संपूर्ण जगत्में व्याप्त होकर स्थित है ॥ ६४ ॥

चौबीस तत्त्वराशि।

**एवं चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः सिद्धे वपुर्गृहे। जीवात्मा नियतेर्निघ्नो वसति स्वान्तदूतवान् ॥ ६५ ॥ स देही कथ्यते पाप-**

**पुण्यदुःखसुखादिभिः। व्याप्तो बद्धश्च मनसा कृत्रिमैः कर्मबन्धनैः ॥ ६६ ॥**

अर्थ-अव्यक्त १ महान् २ अहंकार ३ शब्दतन्मात्रा ४ स्पर्शतन्मात्रा ५ रूपतन्मात्रा ६ रसतन्मात्रा ७ गंधतन्मात्रा ८ श्रोत्र ( कान ) ९ त्वक् (त्वचा) १० चक्षु-( नेत्र ) ११ घ्राण( नासिका )१२ रसना ( जीभ ) १३ वाक् ( वाणी ) १४ हाथ १५ पैर १६ उपस्थ ( लिंग और योनि ) १७ पायु ( गुदा ) १८ मन १९ पृथ्वी २० आप् २१ तेज २२ वायु २३और आकाश २४ इस प्रकार चौबीस तत्त्व हुए। इन करके सिद्ध ( निर्मित ) शरीररूप घरमें पच्चीसवां पुरुष सर्वकाल रहता है,उसको जीवात्मा कहते हैं। मन है सो उसका दूत है वह जीवात्मा महदादिकृत सूक्ष्म लिंग शरीरमें रहता है, अतएव उसको देही अथवा कर्मपुरुष भी कहते हैं। अतएव पापपुण्य सुख दुःख इन करके वह युक्त है। तथा मनके साथ, वर्त्तमान ऐसा जो कृत्रिम कर्मबंधन तिस करके बद्ध है।

आदि शब्दसे इच्छा, द्वेष,प्रयत्न, प्राण,अपान, उन्मेष, बुद्धि,मन, संकल्प,विचार, स्मृति, विज्ञान, अध्यवसाय, विषय, उपलब्धि इत्यादिक गुण भी उत्पन्न होते हैं, अर्थात् इनसे बद्ध है।

कदाचित् कोई प्रश्न करे कि विकाररहित जीवात्मा विकार वस्तुओं करके कैसे बद्ध होता है ? तहां कहते हैं कि, जीवात्मा निर्विकार भी है परंतु विकारवान् वस्तुके संयोगसे विकारवान् होजाता है। इसमें दृष्टांत देते हैं-जैसे सायंकालमें आकाश सूर्यकिरणके संयोगसे लाल होजाता है। उसी प्रकार जीव विकारवान् है वास्तवमे आकाशके समान निर्विकार है। कोई आचार्य कहते हैं कि, ये सम्पूर्ण विकार उस लिंग देहमें प्रतिबिंबके सदृश रहते हैं, जैसे तलाव पुष्करिणी आदिके जलमें जलके कांपनेसे समीपस्थित वृक्षादि कंपित दीख पडते हैं ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

जीवके बन्धन।

**कामक्रोधौ लोभमोहावहंकारश्च पञ्चमः।**
**दशेन्द्रियाणि बुद्धिश्च तस्य बन्धाय देहिनः॥**

अर्थ-काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, दश इंद्रिय और बुद्धि ये उस जीवके बन्धन हैं, इनके लक्षण क्रमसे हम अन्य ग्रन्थान्तरोंसे कहते हैं।

काम।

**स्त्रीषु जातो मनुष्याणां स्त्रीणां च पुरुषेषु वा।**
**परस्परकृतः स्नेहः काम इत्यभिधीयते॥**

अर्थ-पुरुषोंके स्त्रियोंमे और स्त्रियोंके पुरुषोंमें परस्पर प्रीति करनेको काम कहते है। परन्तु यह प्रीति उपभोगनिमित्त जाननी।

क्रोध।

य उष्मा हृदयाज्जातः समुत्तिष्ठति वै सकृत्।
परहिंसात्मकः क्लेशः क्रोध इत्यभिधीयते॥

अर्थ–एक वार ही इस प्राणीके हृदयसे गरमी प्रगट होकर परको हिंसात्मक दुःख देनेवाली होती है इससे चित्तको एक प्रकारका क्लेश होता है उस क्लेशको क्रोध कहते हैं।

लोभ।

परार्थं परभागांश्च परसामर्थ्यमेव च।
दृष्ट्वा श्रुत्वा च या तृष्णा जायते लोभ एव सः॥

अर्थ–परधन, परभाग और पराई सामर्थ्यको देखकर और सुनकर इस प्राणीके चित्तमे जो तृष्णा उत्पन्न होती है उसको लोभ कहते हैं।

मोह।

अश्रेयःश्रेयसोर्मध्ये भ्रमणं संशयो भवेत्।
मिथ्याज्ञानं तु तं प्राहुरहिते हितदर्शनम्॥

अर्थ–अश्रेय (अकल्याण) और कल्याण इन दोनोंमें बुद्धिके भ्रमणको संशय कहते हैं। और अहितमें हित देखना उसको मिथ्यज्ञान (मोह) कहते है॥

अहंकार।

अहमित्यभिमानेन यः क्रियासु प्रवर्तते।
कायकारणयुक्तस्तु तदहङ्कारलक्षणम्॥

अर्थ–जो प्राणी कार्य कारण करके युक्त अहं (मैं करता हूं) इस अभिमानके साथ क्रियाओंमें प्रवृत्त होता है उसको अहंकार कहते हैं॥

अब बन्धन अबन्धन व्याधि और आरोग्यके लक्षण कहते है–

आप्नोति बन्धमज्ञानादात्मज्ञानाच्च मुच्यते।
तद्दुःखयोगकृद्व्याधिरारोग्यं तत् सुखावहम्॥ ६७॥

अर्थ–यह पुरुष अज्ञानकरके क्लेशादिक बन्धनको प्राप्त होता है और आत्मज्ञान (धर्माधर्मके विचार) से उस बन्धनसे छूटता है। शरीर और शरीरी इनको जो दुःख देवे उसको व्याधि कहते हैं तथा इनको सुख देवे उसको आरोग्य कहते हैं। दुःख है सो इस प्राणीके स्वभावके प्रतिकूल है और सुख अनुकूल है॥ ६७॥

इति सृष्टिक्रमशारीरं समाप्तम्॥

इति श्रीवैद्यरत्न प० रामप्रसादकृतायां शार्ङ्गधरसंहितायां भावप्रकाशिकायां भाषाटीकायां कलादिकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

# षष्ठोऽध्यायः ६.

प्रथम लिखआये हैं कि, " आहारादिगतिस्तथा " अत एव उसी आहारगति अध्यायको कहते हैं-

आहारकी गति और अवस्था ।

**यात्यामाशयमाहारः पूर्वं प्राणानिलेरितः । माधुर्यं फेनभावं च षड्रसोऽपि लभेत सः ॥ १ ॥ अथ पाचकपित्तेन विदग्धश्चाम्लतां व्रजेत् । ततः समानमरुता ग्रहणीमभिनीयते ॥ २ ॥ ग्रहण्यां पच्यते कोष्ठवह्निना जायते कटु ।**

अर्थ-पांचभौतिक[1] अन्नादिकोंका आहार प्राणवायुकरके[2] प्रेरित हुआ प्रथम आमाशयमें[3] प्राप्त होता है फिर वही छः रसयुक्त भी आहार मधुरभाव[4] और फेन ( झाग ) रूपको प्राप्त होता है, फिर वही आहार उसी आमाशयमे पाचकपित्तके[5] तेजसे विदग्ध होकर अम्ल ( खट्टे ) भावको प्राप्त होता है, पश्चात् उस आमाशयसे समान वायुकरके ग्रहणी ( अग्निस्थान ) में प्राप्त होता है। उस ग्रहणीस्थानमें कोष्ठाग्निकरके उस आहारका पाक होता है । वह पाक कटु ( चरपरा ) होता है । आहारकी प्रथमावस्था मधुर, दूसरी अम्ल और तीसरी अवस्था कटु जाननी ॥ १ ॥ २ ॥

उक्त आहारकी दो अवस्था ।

**रसो भवति संपक्वादपक्वादामसंभवः ॥ ३ ॥**

अर्थ-उस आहारका उत्तम पाक होनेसे रस होता है और कच्चा परिपाक होनेसे उसकी आम होती है ॥ ३ ॥

रस और आमके कार्य ।

**वह्नेर्बलेन माधुर्यं स्निग्धतां याति तद्रसः । पुष्णाति धातूनखिलान् सम्यक्पक्वोऽमृतोपमः ॥ ४ ॥ मन्दवह्निविदग्धश्च**

---

१ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इनके अंशसे प्रकट होता है । अत एव आहारकी पांचभौतिक संज्ञा है जैसे लिखा है-"चतुर्धाषड्रसोपेतोऽनेकविध्यनुपक्रमः।द्विविधोष्टविधो वीर्यैराहारः पांचभौतिकः । " २ हृदि प्राणोऽनिलो मतः । ३ नाभिस्तनांतरे जन्तोराहुरामाशयं बुधाः इति।४ आमाशय कफका स्थान है और कफका मिष्ट रस है अत एव इस स्थानमें छः प्रकारका भी रस मिष्ट हो जाता है। अत एव ग्रन्थान्तरमे लिखा है " भुक्त्वाऽऽदौ कफस्य वृद्धिः "इसी मिष्ट अवस्थाके आहारकी आमाजीर्ण संज्ञा है जैसे लिखा है-"माधुर्यमन्नं सृजतामपूर्वम् । " ५ पाचक पित्त एक पीले रंगका द्रव पदार्थ है । जब वह पूर्वोक्त मधुर आहारमें मिलता है तब उसको खट्टा कर देता है ।

**कटुश्चाम्लो भवेद्रसः ॥ विषभावं व्रजेद्वापि कुर्याद्वा रोगसंकरम् ॥ ५ ॥**

अर्थ–वही पूर्वोक्त रस अग्निके बलकरके मधुरभाव और स्निग्धताको प्राप्त होकर सम्पूर्ण रक्तादि धातुओंको पोषण करता है। अतएव उत्तम प्रकारसे परिपक्व हुआ रस अमृतके तुल्य[1] है और वही रस मन्दाग्निकरके विदग्ध हुआ विषभावको प्राप्त होता है, अर्थात् कटु अम्ल होकर प्राणनाशकारी होता है, कदाचित् अल्प होनेसे मरणात्मक नही होता तो दोषोंके दूषित[2] होनेसे अनेक रुधिरविकार, ज्वर, भगन्दर, कुष्ठादि रोगोंको करता है ॥ ५ ॥

आहारके सारको कहकर निःसारको कहते हैं–

**आहारस्य रसः सारः सारहीनो मलद्रवः। शिराभिस्तज्जलं नीतं वस्तौ मूत्रत्वमाप्नुयात् ॥ ६ ॥ तत्किट्टं च मलं ज्ञेयं तिष्ठत् पक्वाशये च तत्।**

अर्थ–उस आहारके रसको सार कहते हैं और आहारका निस्सार जो पदार्थ है उसको मलद्रव कहते हैं तहां वह द्रव मूत्रवाहिनी शिराद्वारा वस्तिमें जाकर मूत्र हो जाता है और अवशिष्ट रहा हुआ जो किट्ट वह पक्वाशयके एकदेशमें जाकर मल (विष्ठा) हो जाता है ॥ ६ ॥

मलका अधोगमन।

**वलित्रितयमार्गेण यात्यपानेन नोदितम् ॥ ७ ॥ प्रवाहिनी सर्जनी च ग्राहिकेति वलित्रयम्।**

अर्थ–गुदास्थित[3] मल अपानवायु करके अधः–प्रेरित वलित्रितयात्मक गुदाके द्वारा बाहर गिरता है। उन वलियोंके नाम कहते हैं–प्रवाहिनी, सर्जनी और ग्राहिका इस प्रकार शंखावर्त (शंखके ऑटेके समान) तीन वली हैं ॥ ७ ॥

---

१ जैसे अमृत–जीव मधुरादिगुणयुक्त होता है उसी प्रकार उत्तम रस जीवन, धारण, तर्पणादि गुणयुक्त होता है, क्योंकि सौम्यगुणवाला है जैसे सुश्रुततमें लिखा है–"स खलु द्रवानुसारी स्नेहनजीवनतर्पणधारणादिभिर्विशेषैः सौम्योऽवगम्यते।" २ दोषोके दूषित होनेसे रोगोको करता है किन्तु स्नेहदग्धके सदृश आप नही करता अर्थात् घृत या तेलसे जला हुआ मनुष्य घृतसे जला और तैलसे जला कहाता है, परंतु वास्तवमें अग्निहीसे जला हुआ होता है। जैसे लिखा है "रसादिस्थेषु दोषेषु व्याधयः संभवंति ये। तज्जा इत्युपचारेण तान्याहुर्घृतदग्धवत्।" ३ गुदाके अवयवभूत भीतर तीन २ वली एकसे एक ऊपर है, इनका आकार शंखकी नाभिके समान है।

सारभूत रसकी भी कार्यत्वकरके स्थानान्तरप्राप्ति कहते हैं-

**रसस्तु हृदयं याति समानमरुतेरितः ॥ ८ ॥**
**रञ्जितः पाचितस्तत्र पित्तेनायाति रक्तताम् ।**

अर्थ-वह रस समान वायु करके प्रेरित हो अग्निस्थानसे हृदयमें आकर रंजक पित्त करके रोगयुक्त तथा पाचकपित्तमें पाचित हो रुधिररूपको प्राप्त होता है ८

रक्तका प्राधान्य ।

**रक्तं सर्वशरीरस्थं जीवस्याधारमुत्तमम् ॥ ९ ॥**
**स्निग्धं गुरु चलं स्वादु विदग्धं पित्तवद् भवेत् ।**

अर्थ-सर्वशरीरस्थ ( पांचभौतिक[३] ) रुधिर देहमूलत्व होनेसे जीवका उत्तम आधार है । उसके गुण स्निग्ध, गुरु, चञ्चल और स्वादु हैं, वही रुधिर विदग्ध कहिये विकृत होनेसे पित्तके समान कटु ( तीक्ष्ण ) और खट्टा होता है ॥ ९ ॥

रसादिधातुओंकी उपत्पत्तिका क्रम ।

**पाचिताः पित्ततापेन रसाद्या धातवः क्रमात् ॥ १० ॥**
**शुक्रत्वं यान्ति मासेन तथा स्त्रीणां रजो भवेत् ।**

अर्थ-रसादिक सात धातु पित्तताप करके परिपक्व हो क्रम करके एक महीनेमे शुक्र धातुको उत्पन्न करती हैं, उसी क्रमसे एक महीनेमें स्त्रियोंके रज होता है ॥ १० ॥

---

१ रस सकलशरीरगमनशील होनेसे ग्रहणीस्थानसे हृदयमें प्राप्त होता है । जैसे लिखा है-"सर्वदेहानुसारत्वेऽपि तस्य हृयदस्थानं स हृदयाच्चतुर्विंशतिधमनीरनुप्रवेश्योर्ध्वगा दश दश चाधोगामिन्यश्चतस्रस्तिर्यग्गास्ताः कृत्स्नं शरीरमहरहस्तर्पयंति वर्धयन्ति यापयंति चादृष्टहेतुकेन कर्मणा तस्य सरसस्यानुमानाद्गतिरुपलक्षयितव्या ।" २प्रथम कुछ रँगता हुआ क्रमसे अत्यंत लाल होजाता है जैसे लिखा है-"रसःकिलैकाहेनैव संपद्यते द्वितीये कपोतवर्णाभः पित्तस्थानेषु तिष्ठति, तृतीये चतुर्थे वा पद्मवर्णो भवेत्, पंचमेऽहनि षष्ठे वा किंशुकाभः सप्तमेऽहनि संप्राप्ते शक्रगोपकाभ एवं सप्ताहाद् रसो रक्तं भवतीति।"३ " विस्रता द्रवता रागः स्पन्दनं लघुता तथा । भूम्यादीनां गुणा ह्येते दृश्यन्ते शोणिते यतः ॥ " इति ॥ ४ देहस्य रुधिरं मूलं रुधिरेणैव धार्यते । तस्माद् रक्षेद् हि रुधिरं रुधिरं जीवमुच्यते । ५ रसके ग्रहणसे यह दिखाया कि रस ही शुक्रतत्त्वको प्राप्त होता है, इसवास्ते " शुक्रत्वं याति " ऐसा एक वचन कहा । आदि शब्दके ग्रहणसे वही रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा और अस्थिभावको प्राप्त होता है ।

कोई आचार्य कार्य कारणके अभेदोपचारसे रसादि प्रत्येक धातु एक महीनेमे शुक्र होता है ऐसा कहते है । और स्त्रियोंके रज होता है जैसे-" रसादेव रजः स्त्रीणां मासि मासि-

गर्भोत्पत्तिक्रम।

**कामान्मिथुनसंयोगे शुद्धशोणितशुक्रजः ॥ ११ ॥**
**गर्भः संजायते नार्याः स जातो बाल उच्यते।**

अर्थ–मनके संकल्प करके स्त्रीपुरुषोंका रतिसंग होनेसे शुद्ध शोणित (आर्तव) और शुद्ध धातु इनके मिलाप करके स्त्रियोंके गर्भाशयमें गर्भ धारण होता है और जब वह गर्भ प्रकट होता है तब उसको बालक कहते हैं ॥ ११ ॥

पुत्रकन्या होनेमें कारण।

**आधिक्ये रजसः कन्या पुत्रः शुक्राधिके भवेत् ॥ १२ ॥**
**नपुंसकं समत्वेन यथेच्छा पारमेश्वरी।**

अर्थ–गर्भाधानकालमें ऋतुसम्बन्धी रक्तकी अधिकतासे कन्या होती है और शुक्र धातुके अधिक होनेसे पुत्र होता है तथा आर्त्तव और शुक्रधातुके समान होनेसे नपुंसक सन्तान होती है। इसका कारण कर्मके अनुसरणादि परमेश्वरकी इच्छा है ॥१२॥

बालककी मात्राका प्रमाण।

**बालस्य प्रमथे मासि देया भेषजरक्तिका ॥ १३ ॥ अवलेही कृतैकैव क्षीरक्षौद्रसिताघृतैः। वर्द्धयेत्तावदेकैकां यावद् भवति**

---

–त्र्यहं भवेत्। तद्वर्षात द्वादशादूर्ध्वं याति पंचाशतः क्षयम् ॥" उक्त श्लोकमें तथा इस पदके ग्रहणसे यह दिखाया कि स्त्रियोंके भी शुक्र होता है, क्योंकि द्रावणादि प्रयोगमें प्रत्यक्ष देखा जाता है। अन्यथा उनको मैथुनानन्द कैसे प्राप्त होसकता है, तथा लिखा भी है "सौम्यत्वगाश्रयं स्वच्छं स्निग्धं योनिमुखोद्गतम्। स्त्रीणां शुक्रं न गर्भाय भवेद् गर्भाय चार्तवम्॥" अब कहते हैं कि एक मासमे रसका शुक्र होता है, उसका हिसाब इस प्रकार है कि आहारका रस एक ही दिनमे होता है और रक्तादि धातु पांच २ दिनमे होती हैं। विशेष देखना हो तो हमारे बनाये "बृहन्निघण्टुरत्नाकर" में देख लें ॥

१ शुद्ध आर्तवके लक्षण–" शशासृक्प्रतिमं यच्च यद् वा लाक्षारसोपमम्। तदार्तवं प्रशंसन्ति यद् वासो न विरञ्जयेत। त्र्यहं गत्वा प्रवृत्तिं च कुरुते शोणितं स्त्रियः। व्युपद्रवा स्रंसते या गर्भस्तस्या ध्रुवं भवेत्।" २ शुद्धशुक्रके लक्षण–'स्फटिकाभं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगन्धि च। शुक्रमिच्छन्ति केचित्तु तैलक्षौद्रनिभं तथा। वातादिदूषितं पूतिकुणपग्रन्थिरूपिणम्। क्षीणमूत्रपुरीषाभ्यां गन्धशुक्रं तु निष्फलम्।" ३ बालशब्द कन्या, पुरुष और नपुंसक तीनोंका वाचक है ॥४ "यथेच्छा" इस पदके कहनेसे ही यमल (जोडला) होनेकी सूचना की है अर्थात ईश्वरकी इच्छासे दो वा तीन इत्यादिक भी बालक होते है, जैसे लिखा है–" बीजेऽन्तर्वायुना भिन्ने द्वौ जीवौ कुक्षिमागतौ। यमावित्यभिधीयेते धर्मेतरपुर सुरौ।"

**वत्सरः ॥ १४ ॥ मासैर्वृद्धिस्तदूर्ध्वं स्याद् यावत् षोडशवत्सरः । ततः स्थिरा भवेत् तावद् यावद् वर्षाणि सप्ततिः ॥ १५ ॥ ततो बालकवद् मात्रा ह्रासनीया शनैः शनैः ॥ मात्रेयं कल्कचूर्णानां कषायाणां चतुर्गुणा ॥ १६ ॥**

अर्थ–बालकको[1] प्रथम[2] महीनेमें दूध, सहत, खांड और घृत[3] इनमेंसे जो उपयुक्त हो उसीके साथ एक रत्ती सुवर्णादिक औषध[4] डाल अवलेहभूत ( चाटनेके योग्य ) करके देवै । दूसरे महीनेमें दो रत्ती, तीसरे महीनेमें तीन रत्ती, इस प्रकार एक एक रत्तीके हिसाबसे ओषधिकी वृद्धि एक वर्ष करानी चाहिये तो मासेक प्रमाण होय, दूसरे वर्षमें दो मासे[5] तीसरेमें तीन मासे इस प्रमाण औषधिकी वृद्धि सोलह वर्षपर्यन्त करनी चाहिये । सोलह वर्षके उपरांत सत्तर वर्षकी अवस्था पर्यन्त उस औषधके भक्षणमें सोलह मासे ही प्रमाण जानना । फिर सत्तरवर्षके उपरान्त उस मात्राको जैसे बालकको बढाई थी उसी प्रमाण मात्राको घटाता चला आवे । इसका यह कारण है कि बालक और वृद्ध इनकी समान चिकित्सा है । तथा कल्करूप, चूर्णरूप और काढा इनकी मात्रा बालकसे चौगुनी देनी चाहिये ॥ १३–१६ ॥

अञ्जनादि करनेका काल ।

**अञ्जनं च तथा लेपः स्नानमभ्यङ्गकर्म च ।**
**वमनं प्रतिमर्शश्च जन्मप्रभृति शस्यते ॥ १७ ॥**

अर्थ–बालकोंके नेत्रोंमें काजल आदिका लगाना, उबटना कराना, स्नान कराना, तैलादिककी मालिश करना उलटी करना और प्रतिमर्श ( निरूहणवस्ति अर्थात् गुदामे पिचकारी देना ) इत्यादि कर्म बालकके जन्मसे ही हितकारी हैं ॥१७॥

---

१ बालक तीन प्रकारके होते है-एक तो दूध पीनेवाला, दूसरा दूध अन्नका आहारकर्ता और तीसरा केवल अन्नका भोजनकर्ता जानना । इनको क्रमसे दूध, सहत और खांडके साथ ओषधि देनी चाहिये ।२ प्रथम ग्रहण इस जगह बालकके जन्मदिनसे कहा है । ३ घृत गौका लेवे । ४ ओषधि इस जगह सश्रुतोक्त लेनी चाहिये, जैसे लिखा है–"सौवर्णं सुकृतं चूर्णं कुष्ठं मधु घृतं वचा । मत्स्याक्ष्याख्या शंखपुष्पी मधुसर्पिः सकांचनम्।अर्कपुष्पी घृतं क्षौद्रचूर्णितं कनकं वचा । हेमचूर्णानि कैडर्यः श्वेता दूर्वा घृतं मधु । चत्वारोऽभिहिताः प्राश्याः श्लोकार्द्धेषु चतुर्ष्वपि॥" "कुमाराणां वपुर्मेधाबलपुष्टिविवर्द्धनाः" इति।कोई आचार्य प्राचीन विश्वामित्रोक्त मात्रा बालको कहते है, जैसे– विडङ्गफलमात्रं तु जातमात्रस्य भेषजम् । अनेनैव प्रमाणेन मासि मासि प्रवार्धितम् । कोलास्थिमात्रं क्षीरादेर्दद्याद् भैषज्यकोविदः । क्षीरान्नादिः कोलमात्रमन्नाद्युदुम्बरोपमम् इति । " ५ मासा मागधोक्तपरिभाषानुसार छः रत्तीका लेना चाहिये ।

वमनविरेचनादिकर्म ।

**कवलः पञ्चमाद् वर्षादष्टमान्नस्यकर्म च ।**
**विरेकः षोडशाद् वर्षाद् विंशतेश्चैव मैथुनम् ॥ १८ ॥**

अर्थ–पांचवर्षके उपरांत कवल ( गंडूषभेद यानी औषधादि करके कुल्ले करना ) करे ( पांच वर्षके भीतर न करे ) आठवर्ष उपरांत नस्य ( नास ) लेवे, सोलह वर्षके पश्चात् विरेचन ( जुलाब ) देवे, वीसवर्षके पश्चात् मैथुन करना चाहिये ॥ १८ ॥

बाल्यादि दश पदार्थोंका ह्रास ।

**बाल्यं वृद्धिर्वपुर्मेधा त्वग् दृष्टिः शुक्रविक्रमौ ।**
**बुद्धिः कर्मेन्द्रियं चेतो जीवितं दशतो ह्रसेत् ॥ १९ ॥**

अर्थ–जन्म होनेके दश वर्ष पश्चात् बाल्यावस्था नष्ट होती है । वीस वर्षके पश्चात् शरीरका बढना नष्ट होता है । तीस वर्षके पश्चात् शरीर मोटा नहीं होता । इस श्लोकमे "छविर्मेधा" ऐसा भी पाठ है, उस पक्षमें तीस वर्ष पर्यंत कांति रहती है फिर नही रहती । चालीस वर्षके उपरान्त ग्रन्थ पढकर याद रखनेकी शक्ति नहीं रहती । पचास वर्षके पश्चात् शरीरकी त्वचा शिथिल होती है । साठ वर्षके उपरान्त दृष्टिकी तेजी नष्ट होती है अर्थात् दृष्टि मन्द पड जाती है । सत्तर वर्षके उपरान्त वीर्य नही रहता । अस्सी वर्षके पश्चात् पराक्रम नष्ट हो जाता है । नव्वे वर्षके पश्चात् बुद्धि नहीं रहती । सौ वर्षके पश्चात् इस प्राणीकी कर्मेंद्रियोंके चलनवलनादि धर्म जाते रहते हैं । एक सौ दश वर्षके पश्चात् चैतन्य नष्ट होता है और एक सौ वीसवर्षके पश्चात् जीव नष्ट होता है अर्थात् मरता है । इस दश दश वर्षके अनन्तर एक एकका ह्रास ( हानि ) होता है ॥ १९ ॥

वातप्रकृतिके लक्षण ।

**अल्पकेशः कृशो रूक्षो वाचालश्चलमानसः ।**
**आकाशचारी स्वप्नेषु वातप्रकृतिको नरः ॥ २० ॥**

अर्थ–छोटे २ वाल, कृश और रूखा ( तेज राहित ) शरीर, वाचाल( बकवादी ),

---

१इस जगह तीक्ष्ण जुलाब देना वर्जित है,परन्तु मृदु जुलाबका निषेध नही है।जैसे लिखा है–"अग्निक्षारविरेकैस्तु वालवृद्धौ विवर्जयेत्।तत्साध्येषु विकारेषु मृद्वीं कुर्याल्लघुक्रियाम्॥" २ वीसवर्षका ग्रहण पुरुषके प्रति है, स्त्रियोंके प्रति नही है, क्योंकि स्त्रियोंके १६ वर्षकी अवस्थामें समानवीर्यत्व कहा है,यथा-"पंचविंशतिमे वर्षे पुमान् नारी तु षोडशे।समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषक् ॥ " ३ यह १२० वर्षकी मनुष्योंकी परमायु जाननी, यथा–"समा.षष्टिर्द्विघ्ना मनुजकरिणां पञ्च च निशा, हयानां द्वात्रिंशत् खरकरभयोः पंचककृतिः॥विरूपा सत्यायुर्वृषमहिषयोर्द्वादशशुनः स्मृतं छागादीनां दशकसहितं षट् च परमम्"

चञ्चलचित्त, स्वप्नमें आकाशमें गमन करे इत्यादि लक्षण वातप्रकृतिवाले मनुष्यके होते हैं ॥ २० ॥

पित्तप्रकृति मनुष्यके लक्षण ।

**अकाले पलितैर्व्याप्तो धीमान् स्वेदी च रोषणः ।**
**स्वप्नेषु ज्योतिषां द्रष्टा पित्तप्रकृतिको नरः ॥ २१ ॥**

अर्थ–विना समय बाल सफेद हो जावें, बुद्धिमान् हो, अत्यन्त पसीना आता हो, क्रोधी हो और स्वप्नमें नक्षत्र अथवा अग्न्यादिकको देखे, उस पुरुषकी पित्तप्रकृति जाननी चाहिये ॥ २१ ॥

वातप्रकृतिवालेके लक्षण ।

**गम्भीरबुद्धिः स्थूलाङ्गः स्निग्धकेशो महाबलः ।**
**स्वप्ने जलाशयालोकी श्लेष्मप्रकृतिको नरः ॥ २२ ॥**

अर्थ–गंभीर ( संपूर्ण कार्यमें क्षमाशील हो बुद्धि जिसकी ) हो, पुष्ट शरीर, चिकने बाल और जिसके देहमें बहुत बल हो तथा स्वप्नमें जलाशयों ( तालाब सरोवर ) आदिको देखे उस मनुष्यकी कफकी प्रकृति जाननी ॥ २२ ॥

द्विदोषज और त्रिदोषज प्रकृतिके लक्षण ।

**ज्ञातव्या मिश्रचिह्नैश्च द्वित्रिदोषोल्बणा नराः ।**

अर्थ–दो दोषोंके लक्षण मिलनेसे द्विदोषज प्रकृतिमान् जानना और तीन दोषोंके लक्षणोंसे मनुष्य त्रिदोषजन्य प्रकृतिवाला जानना चाहिये ॥

निद्रादिकोंकी उत्पत्ति ।

**तमःकफाभ्यां निद्रा स्यात् मूर्च्छा पित्ततमोभवा २३ ॥**
**रजःपित्तानिलैर्भ्रान्तिस्तन्द्राश्लेष्मतमोऽनिलैः ।**

अर्थ–तमोगुण और कफके संसर्गसे निद्रा आती है, पित्त और तमोगुण करके मूर्च्छा होती है, रजोगुण, पित्त और वायु इन करके भ्रम होता है, कफ, तम और वायु इन करके घटपटादि पदार्थोंका अज्ञान हो, शरीर गुरु ( भारी ) होय, जंभाई और क्लम कहिये परिश्रम विना श्रम ये लक्षण होते हैं इस स्थितिको तन्द्रा कहते है ॥२३

---

१ "क्रोधशोकश्रमकृतःशरीरोष्मा शिरोगतः।पित्तं च केशान् पचति पलितं तेन जायते।" २ रूपादिके अविज्ञानको मूर्च्छा कहते हैं, अर्थात् मोहसंज्ञक अचेतनरूप जाननी । यद्यपि वातादिक तीनों दोषोंके दोषोंसे और रुधिरसे मूर्च्छा होती है,तथापि पित्त प्रधान होनेसे ग्रहण किया है जैसे लिखा है--"वातादिभिः शोणितेन मद्येन च विशेषतः । षट्स्वप्येतासु पित्तं तु प्रभुत्वेनावतिष्ठते ।" ३ " येनायासः श्रमो देहे प्रवृद्धः श्वासवर्जितः । भ्रमः स इति विज्ञेय इन्द्रियार्थप्रबाधकः " ४ " इन्द्रियार्थेष्वसंवित्तिगौरवं जृंभणं क्लमः । निद्रार्तस्यैव यस्येहा तस्य तन्द्रां विनिर्दिशेत् ॥ " दुःख तीन प्रकारका है—आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक ।

ग्लानिके लक्षण।

**ग्लानिरोजःक्षयाद् दुःखादजीर्णाच्च श्रमाद्भवेत् ॥ २४ ॥**

अर्थ–संपूर्ण धातुओंके सारभूत ओजके क्षयसे, दुःखसे, अजीर्णसे और श्रम करके ग्लानि होती है। ग्लानि शब्द क्रमका दूसरा पर्यायवाचक नाम है। अर्थात् हर्षक्षय जानना ॥ २४ ॥

आलस्यके लक्षण।

**यः सामर्थ्येऽप्यनुत्साहस्तदालस्यमुदीर्यते।**

अर्थ–देहमें सामर्थ्य होनेपर भी काम करनेमें उत्साहरहित हो उसको आलस्य कहते हैं ॥

जंभाईके लक्षण।

**चैतन्यशिथिलत्वाद् यः पीत्वैकश्वासमुद्भमेत् ॥ २५ ॥**
**विदीर्णवदनः श्वासं जृम्भा सा कथ्यते बुधैः।**

अर्थ–चैतन्यके शिथिल होनेसे मनुष्य एक श्वासको पी कुछ देर मुखमें रखकर फिर उसको मुख फाडकर बाहर निकाले उसको जंभाई कहते हैं ॥ २५ ॥

छीकके लक्षण।

**उदानप्राणयोरूर्ध्वयोगान्मौलिकफस्रवात् ॥ २६ ॥**
**शब्दः संजायते नस्तः क्षुतं तत् कथ्यते बुधैः।**

अर्थ–उदान ( कण्ठास्थित ) वायु और प्राण ( हृदयस्थ ) वायु इनका ऊपर मस्तकमें संयोग हो उससे ( मस्तकसे ) कफ गिरे, इन दोनोंके संयोग होनेपे जो शब्द होय उसको क्षुत् ( छीक ) कहते हैं ॥ २६ ॥

डकारके लक्षण।

**उदानकोपादाहारसुस्थितत्वाच्च यद्भवेत्।**
**पवनस्योर्ध्वगमनं तमुद्गारं प्रचक्षते ॥ २७ ॥**

अर्थ–उदान ( कंठस्थित ) वायुके कुपित होनेसे तथा अन्नादिकोंके आहारको अपने

---

१ शरीरके परिश्रम करनेको ( दण्ड कसरतको ) परिश्रम कहते हैं–" शरीरायासजननं कर्म व्यायाम उच्यते।" २ ग्लानिके लक्षण तन्त्रान्तरमे इस प्रकार लिखे हैं–"येनायासश्रमो देहे हृदयोद्वेष्टनं क्लमः। नचान्नमभिकांक्षेत ग्लानि तस्य विनिर्दिशेत।" ३ आलस्यके लक्षण–"सुखस्पर्शिप्रसंगित्वं दुःखद्वेषमलोलता। शक्तस्य चाप्यनुत्साहः कर्मण्यालस्यमुच्यते ॥" ४ जृम्भाके लक्षणान्तर–"पीत्वैकमनिलश्वासमुद्वमेद्विवृताननः।यन्मुश्वति च नेत्राम्भः स जृम्भ इति कीर्तित ॥" ५ अन्यत्राप्युक्तम्–"प्राणोदानौ यदा स्यातां मूर्ध्नि श्रोत्रपथि स्थितौ। नस्त. प्रवर्तते शब्दः क्षुतं तदभिनिर्दिशेत् ॥"

स्थानमें जायके सुस्थिर रहनेसे जो वायुका ऊर्ध्वगमन होता है उसको उद्गार ( डकार ) कहते हैं ॥ २७ ॥

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतायां शार्ङ्गधरसंहितायां भावप्रकाशिका-भाषाटीकायां आहारादिगतिकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

# सप्तमोऽध्यायः ७.

प्रथमाध्यायमें यह कह आये हैं कि " रोगाणां गणना चेति" अतएव उन्हीं रोगोकी गणनाको दिखाते हैं-

**रोगाणां गणना पूर्वं मुनिभिया प्रकीर्तिता ।**
**मयाऽत्र प्रोच्यते सैव तद्भेदा बहवो मताः ॥ १ ॥**

अर्थ-स्वरादिकोंकी गणना (संख्या) प्रथम जो मुनीश्वरोंने कही है उसी संख्याको हम इस ग्रन्थमे कहते हैं, क्योंकि उन रोगोंके अनेक भेद मुनीश्वरोंने कहे हैं । तात्पर्य यह है कि इस ग्रन्थमें रोगोंकी गणनामात्र कही है अन्य नहीं । संख्या भी इस ग्रंथमें प्रयोजनके वास्ते कही है, क्योंकि निदानादि पंचक रोगज्ञानके उपाय हैं तिन्होंमे संप्राप्ति जो कही है उसीका भेद संख्या है । जैसे लिखा है-"संख्याविकल्पप्राधान्यबल-कालविशेषतः । सा भिद्यते यथात्रैव वक्ष्यन्तेऽष्टौ ज्वरा इति" ॥ १ ॥

ज्वररोग संख्या ।

**पञ्चविंशतिरुद्दिष्टा ज्वरास्तद्भेद उच्यते ॥२॥ पृथग्दोषैस्तथा द्वन्द्वभेदेन त्रिविधः स्मृतः । एकश्च सन्निपातेन तद्भेदा बहवः स्मृताः ॥ ३ ॥ प्रायशः सन्निपातेन पञ्च स्युर्विषमा ज्वराः । तथाऽऽगन्तुज्वरोऽप्येकस्त्रयोदशविधो मतः ॥४॥ अभिचार-ग्रहावेशशापैरागन्तुकस्त्रिधा । श्रमाद्दाहात् क्षताच्छेदाच्च-तुर्धा घातजो ज्वरः ॥ ५ ॥ कामाद्भीतेः शुचो रोषाद्विषादौ-षधगन्धतः।अभिषङ्गज्वराः षट् स्युरेवं ज्वरविनिश्चयः ॥६॥**

अर्थ-ज्वर पच्चीस प्रकार कहा है । उसके भेद कहते हैं-१ वातज्वर, २ पित्तज्वर

१ शरीरमे कंप, ज्वरका विषमवेग ( कभी अधिक कभी थोडा ), कंठ, होठ, मुख इनका सूखना, निद्राका नाश, छीकका नही आना, देहका रूखापन, मस्तक और अगोंमें पीडा, मुखका विरस होना, मलका न उतरना, शूल, अफरा और जंभाई ये वातज्वरके लक्षण हैं। २ ज्वरका तीक्ष्ण वेग, अतिसार, अल्पनिद्रा, वमन, कंठ, होठ, मुख, नाक इनका पकना-पसीनेका आना, बड़बड़ाना, मुखमें कड़ुआहट, मूर्छा, दाह, उन्मत्तपना, प्यास और विष्टा, मूत्र, नेत्र, देहकी त्वचा इनका पीला होना तथा भ्रम ये लक्षण पित्तज्वरमे होते हैं।

३ कफज्वर[२] ४ वातपित्तज्वर ५ वातकफज्वर[३] ६ पित्तकफज्वर ७ वातादि तीनों दोषों के मिलनेसे एक सन्निपातज्वरके तथा सन्निपातज्वरके भेद अनेक होते हैं, तिनमें प्रायः पांच विषमज्वर हैं-जैसे संतत[६], सतत[७] अन्येद्युः[८], तृतीयक[९], चतुर्थक[१०]।

एक ज्वरसे आगंतुकज्वर। उसके तेरह भेद हैं उनको कहता हूं-अभिचारज्वर[११],

---

१ गीले वस्त्रसे अंगोंको ढकनेके समान देहका होना, ज्वरका मन्दवेग, आलस्य, मुख मीठा, मलमूत्र सफेद हो, देहका जकड़ जाना, अन्नमें अरुचि, देह भारी, शीत लगे, सूखी उलटियोंका आना, रोमांचोंका होना, अतिनिद्रा, नाडियोंका रुकना, थोड़ा दस्त हो, सरेकमा, मुखमें नोनकासा स्वाद, देह थोड़ा गरम, रद्दका होना, लारका गिरना, मुखपाक, तथा नाक और मुखसे कफका स्राव, खासी, नेत्रोंका सफेद रंग तथा देहमें पीडा शीतका लगना, गरमी प्यारी लगे और मंदाग्नि हो, ये कफज्वरके लक्षण हैं। २ प्यास, मूर्च्छा भ्रम, दाह, निद्रानाश, मस्तकपीडा, कंठ मुखका सूखना, वमन, रोमांच, अरुचि, अंधकारदर्शन, जोडोंमें पीडा और जँभाई ये वातपित्तज्वरके लक्षण हैं। ३ देहमें आर्द्रता, सन्धियोंमें पीडा, निद्रा आना, देह भारी, मस्तक भारी, नाकसेपानीका गिरना, खाँसी, पसीने, दाह और ज्वरका मध्यम वेगहो ये वातकफज्वरके लक्षण हैं। ४ कफसे लिहसा मुख तथा मुखमें कडुआहट, तंद्रा, मूर्च्छा, खांसी, अरुचि, प्यास, वारंवार दाह और शीत लगे तथा पसीने आवे कफ पित्तका गिरना, ये पित्तकफज्वरके लक्षण हैं। ५ एकाएक क्षणमें दाह लगे, क्षणमें शीत लगे, हड्डी जोड़ और मस्तकमें दर्द, आँसू भरे, काले और लाल तथा फटे हुएसे नेत्र हो, कानोंमें शब्द और दर्द, कंठमें काँटे पड़ जावे, तन्द्रा, वेहोशी, अनर्थभाषण, खांसी, प्यास, अरुचि, भ्रम, जलीकेमाफिक काली और खरदरी तथा शिथिल जीभ होवे, रुधिर मिला थूके, शिरको इधर उधर पटके, अत्यंत प्यासका लगना, निद्रा जाती रहे, छातीमें पीडा, पसीने आवे, कभी २ बहुत देरमें मलमूत्र थोडे २ उतरे, कंठमें घरघर कफका बोलना, काले लाल चकत्तोंका होना, बहुत धीरे बोलना, कान, नाक, मुख इत्यादि छिद्रोंका पकना, पेट भारी हो, वात पित्त और कफका देरमें पाक, शीत लगना, दिनमें घोर निद्राका आना, रात्रिमें जागना अथवा बिलकुल निद्राका नाश होना, कभी गावे कभी रोवे, कभी नाचे, कभी हँसे और देहकी चेष्टा जाती रहे, ये सब लक्षण सन्निपातज्वरके हैं। बाकी और जो तेरह सन्निपात हैं उनके लक्षण माधवनिदानमें देखो। ६ सात दिन या दश दिन वा बारह दिन जो देहमें एकसा ज्वर रहे उसको संतत ज्वर कहते हैं। ७ दिनरात्रिमें दोचार आवे उसको सततज्वर कहते हैं। ८ दिनरात्रिमें एकसा ज्वर आवे उसको अन्येद्यु (इकतरा) कहते हैं। ९ जो एकदिन बीचमें देकर आवे उस ज्वरके तृतीयक (तिजारी) कहते हैं। १० दो दिन बीचमें देकर जो तीसरे दिन आवे उस ज्वरको चातुर्थिक (चौथिका) जानना। ११ श्येनादिक (शत्रुमारणार्थ शिकरा आदिके) होम करनेसे जो ज्वर उत्पन्न हो अथवा विमंत्र करके सरसोंका हवन करनेसे जो ज्वर उत्पन्न होवे उसको अभिचारज्वर जानना॥

ग्रहावेशज्वर[1] और शापज्वर[2] ये तीन प्रकारके ज्वर आगन्तुक ज्वर हैं । श्रमसे उत्पन्न हुआ ज्वर, अग्न्यादि दाह करके उत्पन्न हुआ, घावसे उत्पन्न, शस्त्रादिके प्रहारसे उत्पन्न, ये चार ज्वर " अभिघात " संज्ञक जानने । तथा मनमें इच्छित स्त्रीके प्राप्त न होनेसे जो ज्वर होता है उसको कामज्वर कहते हैं । और भीति ( डरने ) से जो होय उसे भयज्वर कहते हैं । शोक ( सोच ) से होय सो शोकज्वर, क्रोधसे हो सो क्रोधज्वर, स्थावर कहिये बच्छनागादिक विष तथा जंगम कहिये सर्पादिक विष इनके सेवनसे जो ज्वर होवे उसको विषज्वर कहते हैं । तीव्र ओषधिके गन्धसे जो ज्वर होता है उसको गन्धज्वर कहते हैं, ये छः प्रकारके ज्वर "अभिषंग" संज्ञक हैं । इस प्रकार तेरह प्रकारके आगन्तुकज्वर और पहले बारह ज्वर सब मिलानेसे पच्चीस प्रकारके ज्वर होते हैं ॥ ६ ॥

## अतिसार रोग ।

**पृथक् त्रिदोषैः सर्वैश्च शोकादामाद्भयादपि ॥ ७ ॥**
**अतिसारः सप्तधा स्यात्-**

अर्थ-अतिसार रोग सात प्रकारका है,जैसे-१वात[3]२पित्त[4] ३ कफ[5]४सन्निपात[6]५शोक[7]

---

१ ब्रह्मराक्षसादि संबन्धसे जो ज्वर होवे उसको ग्रहावेश ज्वर कहते हैं। २ ब्राह्मण,गुरु,-सिद्ध और वृद्ध इनके शापसे जो ज्वर हो उसको शापज्वर जानना।३कुल ललाईको लिये, झाग मिला तथा रूखा थोड़ाथोड़ा वारंवार आम मिला हुआ दस्त उतरे और शूल चले तथा मल उतरते समय शब्द होवे तो वातातिसार जानना । ४ पित्तसे पीला,काला,धूसरे रंगका मल उतरे तथा तृष्णा, मूर्च्छा, दाह, गुदा पकजाय ये लक्षण पित्तातिसारके हैं । ५ कफातिसारवाले पुरुषका मल सफेद, गाढ़ा,चिकना,कफमिश्रित, दुर्गंधयुक्त और शीतल उतरे तथा रोमांच खड़े होयँ, ये लक्षण कफातिसारके जानने । ६ सूकरकी चरबी सदृश, अथवा मांसके धोये हुए पानीके सदृश और वातादि त्रिदोषोंके जो लक्षण कहे है उन लक्षण संयुक्त उस त्रिदोषजनित अतिसारको कष्टसाध्य जानना।७ जिस पुरुषके पुत्र,मित्र, स्त्री, धन इनका नाश होजावे वह उसी २ वस्तुका शोच करे । इसीसे क्षुधा मन्द होनेसे ( धातुक्षय होय ) उस प्राणीके वाष्प, नेत्र, नासा, गले आदिसे जो शोकद्वारा जल गिरे सो और ऊष्मा कहिये शोकजन्य देहका तेज ये दोनो वाष्पोष्मा कोठेमें प्राप्त हो अग्निको मंद कर रुधिरको कुपित करें, तब वह रुधिर चिरमिटीके रंगसदृश गुदाके मार्ग होकर मलयुक्त अथवा मलरहित निकले तथा गन्धयुक्त अथवा गन्धरहित दस्त उतरे, इसको शोकातिसार कहते हैं, इसी प्रकार भयातिसार भी जान लेना ।

६ आम और ७ भयसे उत्पन्न होनेवाला, इनके लक्षण नीचे लिखे अनुसार जानने ॥ ७ ॥

संग्रहणी रोग ।

**–ग्रहणी पञ्चधा मता । पृथग्दोषैः सन्निपातात्तथा चामेन पञ्चमी ॥ ८ ॥**

अर्थ–संग्रहणी रोग पांच प्रकारका है, जैसे–१ वातसंग्रहणी, २ पित्तसंग्रहणी, ३ कफसंग्रहणी, ४ त्रिदोषजसंग्रहणी और पाचवीं आमजन्य संग्रहणी, इस प्रकार संग्रहणीके, पांच भेद जानने ॥ ८ ॥

---

१ अन्नके न पचनेसे दोष ( वात पित्त कफ ) स्वमार्गको छोडकर कोठेमें प्राप्त हो कोठेको दूषित कर रक्तादि धातु और पुरीषादि मलको वारंवार गुदाके मार्गसे बाहर निकाले और इसका रंग अनेक प्रकारका हो, तथा शूलयुक्त दस्त उतरे इसको छठा आमातिसार वैद्य कहते हैं।२भयसे होनेवाले अतिसारमें जिस दोषका कोप हो उसी दोषके समान लक्षण होते है । ३ वातग्रहणीवालेके अन्न दुःखसे पचे, अन्नका पाक खट्टा हो, अंगमे कर्कशता ( यह वायुसे त्वचाके चिकनेपनको सोखनेसे होता है), कंठ और मुखका सूखना, भूख, प्यास, न लगे, मन्द दीखे, कानोंमे शब्द हो, पसवाडे, जाव, पेडू और कन्धोंमें पीडा होवे, विषूचिका हो(अर्थात् दोनो द्वारसे कच्चे अन्नकी प्रवृत्ति होवे), हृदय दूखे,देह दुबला हो जाय, जीभका स्वाद जाता रहे,गुदामें कतरनेकीसी पीडा हो, मीठेसे आदि ले सर्व रसोंके खानेकी इच्छा, मनमे ग्लानि, अन्न पचे उपरांत पेटका फूलन, भोजन करनेसे स्वस्थता, पेटमें गोला, हृद्रोग, तापतिल्लीकी शंका, वातके योगसे खाँसी श्वाससे पीडित,बहुत देरमें बडे कष्टसे कभी पतला,कभी गाढा,थोडा शब्द और झाग मिला वारंवार दस्त आवे।४ जिस पुरुषके कटु, अजीर्ण मिरच आदि तीखी दाहकारक(वंश करीलकी कोपल आदि ) खट्टी,खारी ( ओगा आदिका खार) नोन गरम पदार्थसेवन इन कारणोंसे कुपित हुआ जो पित्त सो जठराग्निको बुझा दे और कच्चा ही नीले पीले रंगके पतले मलको निकाले,तथा धूमयुक्त डकार आवे,हृदय और कंठमे दाह होवे,अरुचि और प्यासकरके पीडित होवे यह पित्तकी संग्रहणीके लक्षण हैं । ५ भारी, अत्यन्त चिकने, शीतल आदि पदार्थके खानेसे,अतिभोजनसे तथा भोजन करके सोनेसे कुपित हुआ कफ जठराग्निको शांत करे तब उसका खाया हुआ अन्न कष्टसे पचे,हृदयमे पीडा होय, वमन,अरुचि, मुख कफसे लिसासा तथा मुखका मीठा रहना,खाँसी,कफ थूके, सरेकमा होय, हृदय पानीसे भरे सदृश होय, पेट भारी और जड हो,दुष्ट और मीठी डकार आवे, अग्नि शांत हो, स्त्रीरमणमें अरुचि, पतला,आम कप मिला और भारी ऐसा मल निकले, बल विना शरीर पुष्ट दीखे, आलस्य बहुत आवे यह कफकी संग्रहणीके लक्षण हैं । ६ वातादि तीनों दोषोंके जो लक्षण कहे हैं वे सब जिसमें मिलते हो उनको त्रिदोषकी संग्रहणी जानिये । ७ आमवातसे जो आम-संग्रहणी उत्पन्न होती है उसके ये लक्षण हैं कि कभी आठ–

प्रवाहिका रोग ।

**प्रवाहिका चतुर्धा स्यात् पृथग्दोषैस्तथाऽस्रतः ।**

अर्थ-प्रवाहिका रोग चार प्रकारका है जैसे-१ वातकी प्रवाहिका, २ पित्तकी प्रवाहिका, ३ कफकी प्रवाहिका और ४ रुधिरकी प्रवाहिका । इस प्रकार प्रवाहिका के चार भेद जानने ॥

अजीर्ण रोग ।

**अजीर्णं त्रिविधं प्रोक्तं विष्टब्धं वायुना मतम् ॥९॥ पित्ताद् विदग्धं विज्ञेयं कफेनामं तदुच्यते ॥ विषाजीर्णं रसादेकं-**

अर्थ-अजीर्ण रोग तीन प्रकारका है, जैसे-वायुसे विष्टब्धाजीर्ण, पित्तसे विदग्धाजीर्ण कफसे आमाजीर्ण होता है, अन्नके रससे जो अजीर्ण हो उसको विषाजीर्ण कहते है ॥ ९ ॥

अलसकविशूच्यादि ।

**-दोषैः स्यादलसस्त्रिधा॥१०॥ विषूची त्रिविधा प्रोक्ता दोषैः सा स्यात् पृथक् पृथक् ॥ दण्डकालसकश्चैव एकैव स्याद् विलम्बिका ॥ ११ ॥**

अर्थ-वात पित्त और कफ इन तीन दोषोंसे पृथक् लक्षण करके "अलस" रोग तीन प्रकारका है । यह अजाणसे उत्पन्न होता है । उसी प्रकार विषूचिका ( हैजा ) वातादि भेदोसे पृथक् २ लक्षणो करके तीन प्रकारका है । उसको "मोडी निवाही"

---

-दिनमे, कभी चौदह दिनम अथवा नित्य आम गिरे उसको आमसंग्रहणी कहते हैं ।

१ वातकी प्रवाहिकामे शूल होता है,वातकी प्रवाहिका रूखे पदार्थसे होती है।२पित्तकी प्रवाहिका तीक्ष्ण पदार्थसे होती है उसमे दाह होता है।३कफकी प्रवाहिका चिकने पदार्थसे होती है,उसमे कफ बहुत होता है।४रुधिरकी प्रवाहिका रक्तयुक्त होती है,वह खट्टे पदार्थसे होती है । ५ शूल, अफरा अनेक वातकी पीड़ा, मल और अधोवायुका रुक जाना, देहका जकड़ जाना, मोह और दहमे पीडा होना ये विष्टब्ध-अजीर्णके लक्षण है ।६ विदग्ध अजीर्णमे भ्रम, प्यास और मूर्च्छा ये लक्षण होते है और पित्तके अनेक रोग प्रकट होते है तथा धुएँके साथ खट्टी डकार आवे, पसीना, आंव और दाह हो । ७ कूख और पेटमे अफरा हो, मोह हो, पीडासे पुकारे, पवन चलनेसे रुककर कूखमे और कण्ठादिस्थानोमे फिरे, मल मूत्र और गुदाकी पवन रुके, प्यास बहुत लगे, डकार आवे ये लक्षण जिसमें हो उसको अलसक रोग कहते है । ८ मूर्च्छा, अतिसार, वमन, प्यास, शूल, भ्रम, जांघोमे पीडा, जंभाई, दाह, देहका विवर्ण, कम्प, हृदयमे पीडा तथा मस्तकमे पीडा ये लक्षण हो तो उसको विषूचिका कहते है । इसीको महामारी अथवा हैजा कहते है ।

कहते हैं । "दंडकालसक" और "विलंबिका" ये दो रोग उसी मोर्डीके भेद हैं १०।११

मूलव्याधि ( बवासीर ) ।

**अर्शांसि षड्विधान्याहुर्वातपित्तकफास्रतः ॥ संनिपाताच्च संसर्गात् तेषां भेदो द्विधा स्मृतः ॥ १२ ॥ सहजोत्तरजन्मभ्यां तथा शुष्कार्द्रभेदतः ॥**

अर्थ–अर्श ( बवासीर ) रोग ६ प्रकारका है, जैसे–१ वातार्श २ पित्तार्श ३ कफार्श

---

१ दंडके समान मनुष्योंको नवाय देवे उसको दंडकालसक कहते हैं । यह दंडकालसक विलंबिकाके बहुत कुपित होनेसे होता है, वह वातादि तीन दोष करके व्याप्त रहता है, उनके होनेसे प्राणका नाश शीघ्र ही होता है । २ जिस मनुष्यके भोजन किया हुआ अन्न कफवात-करके दूषित होय, ऊपर नीचे नही आवे अर्थात् वमन विरेचन न होय उनको वैद्यविद्याके जाननेवाले ( जिसकी चिकित्सा नही ऐसा ) विलंबिकारोग कहते हैं ।

३ वाताधिक्यसे गुदाके अंकुर सूखे ( स्रावरहित ) चिमचिम पीडायुक्त, मुरझाये हुए काले, लाल, टेढे, विशद, कर्कश, खरदरे, एकसे न हों । बांके, तीखे, फटे मुखके, कंदूरी, बेर, खजूर, कपासके फलसदृश हों । कोई कदंबके फलसमान हों, कोई सरसोंके सदृश हों, शिर, पसवाडे, कन्धा, कमर, जांघ, पेडू इनमें अधिक पीडा हो, छींक, डकार, दस्तका न होना, हृदय पकडासा मालूम हो, अरुचि, खासी, श्वास, अग्निका विषम होना अर्थात् कभी अन्न पचे, कभी नही पचे, कानोंमे शब्द होय, भ्रम, उस बवासीरकरके पीडित मनुष्यके पत्थरके समान थोडा शब्दयुत और वातकी प्रवाहिकाके लक्षणसंयुक्त शूल, झाग, चिकना लक्षणसंयुक्त हौले २ दस्त होय, उस मनुष्यकी त्वचाका रंग तथा नख, विष्ठा, मूत्र, नेत्र, इनका मुख ये काले हों, गोला, तापतिल्ली ( उदररोग ), अष्ठीला ( वातकी गांठ ) रोगोंके ये उपद्रव जिस बवासीरमें होते है उसको वातार्श कहते है ।

४ मस्सोंका मुख नीला, लाल, पीला और सुफेदी लिये होवे, उन मस्सोंसे महीन धारसे रुधिर चुवाये और रुधिरकी वास आवे, महीन और कोमल शीतल हो ओर उनका आकार तोतेकी जीभ, कलेजा और जोंकके मुखके समान हो और देहमे दाह हो, गुदाका पकना, ज्वर, पसीना, प्यास, मूर्च्छा, अरुचि और मोह ये हों और हाथके स्पर्श करनेसे गरम मलूम होवे और जिसके मलका द्रव नीला, पीला, लाल, गरम, आमसंयुक्त होय, जवके समान बीचमें मोटे हों और जिसकी त्वचा, नख, नेत्रादिक ये पीले हरतालके समान और हलदीके समान हो ये लक्षण पित्ताधिक बवासीरके हैं ।

५ कफकी बवासीरके लक्षण ये हैं-जैसे कि गुदाके मस्से, महामूल ( दूर धातुके प्रति जाननेवाले ), मंद पीडाके करनेवाले, सफेद, लम्बे, मोटे, चिकने, करडे, गोल, भारी, स्थिर, गाढे कफसे लिपटे, मणिके समान स्वच्छ, खुजली बहुत होय और प्यास लगे, करील, कटहर इनके कांटेके समान होय, गायके थनके सदृश होय, पेडूमे अफरा करनेवाले, गुदा, मूत्रस्थान और नाभि इनमें पीडा करनेवाले, श्वास, खांसी, लारका टपकना,—

४ सन्निपातार्श ५ रक्तार्श ६ संसर्गार्श। इस प्रकार छः प्रकारकी बवासीर है, इसको कोई कोई देशवाले मूलव्याधि भी कहते हैं। इस छः प्रकारकी अर्शके दो भेद हैं, एक सहज कहिये साथ उत्पन्न हो, दूसरी उत्तर प्रगटे अर्थात् जन्म होनेके उपरांत मिथ्या आहार विहारादिकरनेसे वातादि दोष कुपित हो उत्पन्न करे। एवं आर्द्र और शुष्क इन भेदोंसे दो प्रकारकी है। आर्द्र कहिये गीली और शुष्क कहिये सूखी। लौकिकमे इनको खूनी और वादी कहा है ॥ १२ ॥

चर्मकील रोग।

**त्रिधैव चर्मकीलानि वातात् पित्तात् कफादपि ॥ १३ ॥**

अर्थ–चर्मकील रोग भी तीन प्रकारका है, जैसे १ वातजचर्मकील, २ पित्तजचर्मकील और ३ कफजचर्मकील इस प्रकार चर्मकीलके तीन भेद कहे हैं ॥ १३ ॥

कृमिरोग।

**एकविंशतिभेदेन कृमयः स्युर्द्विधोच्यते। बाह्यास्तथाभ्यन्तरे च तेषु यूका बहिश्चराः ॥१४॥ लिख्याश्चान्येऽन्तरचराः कफात्ते हृदयादकाः। अन्त्रादा उदरावेष्टाश्चूरवश्च महागुहाः॥१५॥सुगन्धा दर्भकुसुमास्तथा रक्ताश्च मातरः।**

---

—अरुचि, पीनस, इनको करनेवाले, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मस्तकका भारी होना, शीतज्वर, नपुंसकपना, अग्निका मन्द होना, वमन और आम जिनमें बहुत ऐसे अतिसार, संग्रहणी आदि रोगके करनेवाले, वसा ( चर्बी ) और कफ मिला दस्त होवे, प्रवाहिका उत्पन्न करनेवाले और मस्सोंमेंसे रुधिर न निकले, गाढा मल होनेसे भी मस्से न फटे और शरीरका रंग पीला और चिकना हो ये कफकी बवासीरके लक्षण है।

१ जो पूर्व वातादिक तीनो दोषोकी बवासीरोंके लक्षण कहे हैं सो सब लक्षण मिलते हो उसको सन्निपातकी बवासीर जानना और ये ही लक्षण सहज है।

२ गुदाके मस्सोका रंग चिरमिटीके रंगके समान होवे अथवा वटके अंकुरसे हो और पित्त की बवासीरके लक्षण जिसमें मिलते हो, मूँगाके सदृश हों और दस्त कठिन उतरनेसे मस्से दबे तब मस्सोमेसे दुष्ट और गरमागरम रुधिर पड़े और रुधिरके वहुत पडनेसे वर्षाऋतुमे मेढकके समान पीला रंग होजाय, रुधिरके निकलनेसे जो प्रकट त्वचाका कठोरपना, नाडीका शिथिलपना और खट्टी वस्तु तथा शीतका दुःख उनसे पीडित होय, हीनवर्ण, वल, उत्साह, पराक्रमका नाश होय, सम्पूर्ण इंद्रियोका व्याकुल होना, उसका काला, कठिन और रूखा ऐसा मल होय, अपानवायु फुरे नही, यह लक्षण "खूनी" ववासीरके जानने चाहियें। ३कुलपरंपराके देहके साथ उत्पन्न होय उसको संसार्गार्श जानना ॥

४ वातसे सुईके चुभाने जैसी पीडा होय। ५ पित्तसे कठोरता होय। ६ कफसे काला और कुछ लाल तथा चिकनी गांठके समान देहके वर्णके समान वर्ण होवे।

सौरसा लोमविध्वंसा रोमद्वीपा उदुम्बराः ॥ १६ ॥ केशादाश्च तथैवान्ये शकृज्जाता मकेरुकाः । लेलिहाश्च मलूनाश्च सौसुरादाः ककेरुकाः ॥ १७ ॥ तथान्यः कफरक्ताभ्यां संजातः स्नायुकः स्मृतः ।

अर्थ—इक्कीस भेद करके कृमि रोग बाहर और भीतरके भेदसे दो प्रकारका है, तिनमे यूका (जुआं) लीखें, चमजूंआं यह तीन प्रकारकी कृमि देहके बाहर रहती हैं और अठारह प्रकारकी कृमि देहके भीतर रहती हैं । इनको लौकिकमें जन्तु कहते हैं । उनके भेद मैं कहता हूं—१ हृदयादक २ अंत्राद ३ उदरावेष्ट ४ चुरव ( चिनूना जो बालकोंके होते हैं ) ५ महागुह ६ सुगन्ध ७ दर्भकुसुम ये सात प्रकारके कृमि कफसे उत्पन्न होते हैं । १ मातर २ सौरस ३ लोमविध्वंस ४ रोमद्वीप ५ उदुम्बर ६ केशाद ये छः प्रकारकी कृमि रुधिरसे उत्पन्न होते हैं । १ मकेरुक २ लेलिह ३ मलून ४ सौसुराद ५ ककेरुक ये पांच प्रकारकी कृमि मलसे उत्पन्न होती हैं । इस प्रकार अठारह प्रकारकी भीतरकी कृमि और तीन प्रकारकी पूर्वोक्त बाहर कृमि ये सब मिलकर २१ प्रकारके कृमि होते हैं । उसी प्रकार कफ रक्तसे जो उत्पन्न होता है उसको स्नायुक ( नहरुआ अथवा नारू ) कहते हैं ॥ १४–१७ ॥

---

१ देहमें केश और मलीनवस्त्रके आश्रयसे जो कृमि रहती हैं उनको यूका ( जूँ ) कहते हैं । ये यूका तिलके सदृश होकर काली और सफेद होती है,इनके बहुत पांव होते हैं।२जो बहुत ही बारीक होती हैं वे लीख कहाती हैं । ३ चमजूँआं एक जूँआंका ही भेद है, इसके भी बहुत पैर होते हैं । ४ देहमे अठारह प्रकारके कृमि हैं, उनका कोप होनेसे ये सामान्य लक्षण होते है ज्वर, शरीरमे निस्तेजपन, शूल, हृदयमे पीडा, वमन, भ्रम, अन्नका द्वेष और अतिसार । इस प्रकार सामान्य लक्षण जानने । ५ कफसे आमाशयमें प्रगट हुई कृमि जब बढ़ जाती हैं तब चारो तरफ डोलती है, कोई चामके सदृश, कोई गिडोहके आकार, कोई धान्यके अंकुरके समान होती है, कितनी ही छोटी बडी चौडी होती हैं और किसीका वर्ण श्वेत, किसीका ताँबेके समान होता है । उनके सात नाम हैं । इन कृमियोंसे वमनकीसी इच्छा होय, मुखसे पानी गिरे, अन्नका पाक न हो, अरुचि, मूर्छा, वमन, प्यास, अफरा, शरीर कृश रहे, सूजन और पीनस इतने विकार होते हैं । ६ रुधिरकी रहनेवाली नाडीमें रुधिरसे प्रगट कृमि—बारीक, पादरहित, गोल, ताँबेके रंगकी होती है, कोई बहुत बारीक होता है, वे देखनेसे भी नही दीखती, ये कुष्ठको पैदा करते हैं । ७ पक्काशयमे विष्टासे प्रकट कृमि गुदाके मार्ग होकर बाहर निकलती है, जब और ये बढ जाती है तब आमाशयमें प्राप्त होकर डकार और श्वाससे विष्ठाकीसी बास आने लगती है । ये कृमि बडी, छोटी, गोल, मोटी, रंगमे काली, पीली, सफेद, नीली होती है । जब ये मार्गको छोड़ अन्य मार्गमे—जाती हैं तब इतने रोग प्रगट करती-

पांडुरोग ।

## पाण्डुरोगाश्च पञ्च स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा।त्रिदोषमृत्तिकाभिश्च-

अर्थ-पाण्डुरोग पांच प्रकारका है, जैसे-वातपाण्डु[१] २ पित्तपाण्डु[२] ३ कफपाण्डु[३] ४ सँन्निपातपाण्डु ५ मृत्तिका भक्षणमे[४] जो होता है वह मृत्तिका भक्षणका पाण्डु इस प्रकार पांडुरोग पांच प्रकारका है ॥-

कामला, कुम्भकामला और हलीमक रोग ।

## -तथैका कामला स्मृता । स्यात् कुम्भकामला चैका तथैव च हलीसकम् ॥ १८ ॥

अर्थ-कामलारोग एक प्रकारका । यह रोग पांडुरोगकी उपेक्षा करनेसे होता है ।

---

-हैं,दस्तका पतला होना, शूल, अफरा, देहमें कृशता तथा कठोरता, पाण्डुरोग, रोमांच, मंदाग्नि और गुदामें खुजलीका होना ।

१ वातादि दोष कुपित होकर रुधिरको दूषित करके शरीरकी त्वचाको पांडुरवर्ण ( पीली ) करते हैं, उसको पाण्डुरोग ( पीलिया ) कहते हैं।

२ वातके पांडुरोगमें त्वचा,मूत्र,नेत्र इनमें रूखापन और कालापन होता है। तथा कंप, सुई छेदनेकासा चुभका, अफरा, भ्रम, मेद और शूलादिक होते हैं। ३ पित्तपांडुरोगीके ये लक्षण होते हैं-मल, मूत्र और नेत्र पीले हों, दाह,प्यास,ज्वर इनसे पीडित हो,मल पतला हो और उस रोगीके देहकी कांति अत्यन्त पीली होती है।४ मुखसे कफका गिरना,सूजन, तन्द्रा, आलसक, शरीरका भारी होना, त्वचा, मूत्र, नेत्र, मुख इनका सफेद होना इन लक्षणोंसे कफका पांडुरोग जानना। ५ ज्वर, अरुचि, ओकारी, प्यास और क्लम तथा वमन इतने उपद्रवयुक्त त्रिदोषजन्य पांडुरोग होता है। इस पांडुरोगसे रोगीके इंद्रियोंकी अपना अपना विषय ग्रहण करनेकी शक्ति जाती रहती है।

६ मिट्टी खानेका जिस मनुष्यको अभ्यास पड जाय उसके वातादिक दोष कुपित होते है। कपैली मिट्टीसे वात, खारी माटीसे पित्त और मीठी मिट्टीसे कफ कुपित होता है। फिर वही मिट्टी पेटमें जाकर रसादिक धातुओंको रूखा करती है। जब रौक्ष्यगुण प्रगट हो जाय तब जो अन्न खाय सो रूखा होजाता है, फिर वही मिट्टी पेटमें विना पके रसको रसवहनेवाली नसोंमें प्राप्त कर उनके मार्गको रोक देती है। रसके बहनेवाली नसोंका मार्ग जब रुक जाता है तब इन्द्रियोंका बल अर्थात् अपने विषय ग्रहण करनेकी शक्ति नष्ट होजाती है। शरीरकी कांति, तेज और ओज कहिये सब धातुओंका सार ( हृदयमें रहता है सो ) क्षीण होकर पांडुरोग प्रकट होता है। उसमें बल, वर्ण और अग्निका नाश होता है, नेत्र, कपोल, भ्रुकुटी, नाभि और लिंग इनमें सूजन हो, कोठमें कृमि पड़ जॉय तथा रुधिर और कफ मिला दस्त उतरे। सब पांडुरोगोंमें जब पेटमें कृमि पड जाते हैं तब ये (पूर्वोक्त) लक्षण होते है।

यह स्वतन्त्र है और उस कमलाके दो भेद हैं-एक कुम्भकामला और दूसरा हलीमक ॥ १८ ॥

रक्तपित्तरोग ।

**रक्तपित्तं त्रिधा प्रोक्तमूर्ध्वगं कफसंगतम् ।**
**अधोगं मारुताज्ज्ञेयं तद्द्वयेन द्विमार्गगम् ॥ १९ ॥**

अर्थ-रक्तपित्त तीन प्रकारका है-एक ऊर्ध्वगामी, दूसरा अधोगामी और तीसरा वह जो ऊपर और नीचे दोनों मार्गसे हो । इनमे जो ऊर्ध्वगामी अर्थात् जो मुखादि मार्गसे गिरता है वह कफसम्बन्ध करके होता है और जो अधोमार्ग ( गुदादि ) द्वारा गिरे वह वातके सम्बन्धसे होता है, एवं दोनों मार्ग अर्थात् गुदा और मुखसे गिरनेवाला रक्त-पित्त, कफ और वादीके सम्बन्धसे गिरता है । रक्तपित्तके ये तीन भेद जानने ॥ १९ ॥

कासरोग ।

**कासाः पञ्च समुद्दिष्टास्ते त्रयस्तु त्रिभिर्मलैः ।**
**उरःक्षताच्चतुर्थः स्यात् क्षयाद् धातोश्च पञ्चमः ॥ २० ॥**

अथ-कास ( खांसी ) का रोग पांच प्रकारका है-१ वातकास, २ पित्तकास

---

१ वमन, अरुचि, ओकारीका आना, ज्वर, अनायास श्रम इनसे पीडित तथा श्वास, खांसी इनसे जर्जरित और अतिसारयुक्त ऐसा कुंभकामलावाला रोगी मर जाता है । २ पांडुरोगीका वर्ण हरा,काला,पीला होजाय और बल व उत्साह इनका नाश,तंद्रा,मंदाग्नि, महीन ज्वर, स्त्रीसंभोगकी इच्छाका नाश, अंगोका टूटना, दाह, प्यास,अन्नमे अप्रीति और भ्रम ये उपद्रव वातपित्तसे प्रगटे हलीमक रोगके हैं । ३ धूपमे बहुत डोलनेसे, परिश्रम करनेसे, शोकसे, बहुत मार्ग चलनेसे, अतिमैथुन करनेसे, मिर्च आदि तीखी वस्तु खानेसे, अग्निके तापनेसे, जवाखार आदि खारे पदार्थ, नोनको आदिले लवणके पदार्थ,खट्टी,कडवी ऐसी वस्तुके खानेके कोपसे प्राप्त भया जो पित्त सो अपने तीक्ष्ण द्रव पूति इत्यादि गुणोंसे रुधिरको बिगाडता है, तब रुधिर ऊपरके अथवा नीचेके मार्ग अथवा दोनो मार्ग होकर प्रवृत्त हो । ऊपरके मार्ग-नाक, कान, नेत्र, मुख इनके द्वारा निकले और अधोमार्ग कहिये लिंग, गुदा और योनि इनके रास्ते होकर निकले और जब रुधिर अत्यन्त कुपित होय तब दोनो मार्ग और सब रोमांचोसे निकलता है उसको रक्तपित्त कहते हैं । ४ नाक, मुखमें धूर वा धूआँ जानेसे, दंडकसरत, रूक्षान्न इनके नित्य सेवन करनेसे, भोजनके कुपथ्यसे, मल मूत्रके रोकनेसे, इसी प्रकार छिक्का अर्थात आती हुई छीकको रोकनेसे प्राणवायु अत्यन्त दुष्ट होकर और उदान वायुसे मिलकर कफपित्तयुक्त अकस्मात् मुखसे बाहर निकले जिसका शब्द फूटे कांस्यपात्रके समान हो तो उसको विद्वान्लोग कास ( खाँसी ) कहते हैं । ५ हृदय, कनपटी, मस्तक, उदर, पसवाडा इनमे शूल चले, मुँह उतर जाय, बल, स्वर, पराक्रम क्षीण पड जाय, वारंवार खाँसीका उठना, स्वरभेद और सूखी खाँसी उठे यह वातकी खाँसीके लक्षण हैं । ६ पित्तकी खाँसीसे हृदयमें दाह, ज्वर,-

३ कफकास, ४ छातीमें कुठार आदिके प्रहारसे पीडा होकर जो होता है वह उरःक्षतरोग उससे उत्पन्न हुआ कास और धातुक्षयज कास ऐसे कास और ( खांसी ) का रोग पांच प्रकारका है ॥ २० ॥

क्षयरोग।

**क्षयाः पञ्चैव विज्ञेयास्त्रिभिर्दोषैस्त्रयश्च ते।**
**चतुर्थः सन्निपातेन पञ्चमः स्यादुरःक्षतात् ॥ २१ ॥**

अर्थ-क्षयरोग पांच प्रकारका है,जैसे १ वातक्षय,२पित्तक्षय, ३ कफक्षय, ४ सान्नि-

---

-मुखका सूखना इनसे पीडित हो, मुख कडुवा रहै, प्यास लगे, पीले रंगकी कडवी पित्तके प्रभावसे वमन होय, रोमोका पीला वर्ण होजाय और सब देहमे दाह होता है।

१ कफकी खाँसीसे मुख कफसे लिपटा रहे, मथवाय रहे और सब देह कफसे परिपूर्ण रहे, अन्नमें अरुचि, शरीर भारी रहे, कंठमे खुजली और रोगी वारंवार खाँसे। कफकी गांठ थूकनेसे सुख मालूम होवे। २ बहुत स्त्रीसंग करनेसे,भारके उठानेसे,बहुत मार्ग चलनेसे, मल्लयुद्ध ( कुस्ती ) करनेसे, हाथी,घोडा दौडानेसे, मल आदि रोकनेसे, रूक्ष पुरुषका हृदय फूटकर वायु कुपित होकर खाँसीको प्रगट करता है,सो पुरुष प्रथम सूखा खाँसे, पीछे रुधिर मिला थूके,कंठ अत्यन्त दूखे,हृदय फुटे सदृश मालूम हो और तीखी सुई कैसे चमक चले, उसको हृदयका स्पर्श नही सुहावे,दोनो पसवाडोमे पीडा तथा दाह हो,गांठ गांठमें पीडा होय, ज्वर, श्वास, प्यास, स्वरभेद इनसे पीडित हो, खांसीके वेगसे रोगी कबूतरकी तरह घूं घूं शब्द करे, ये लक्षण उरःक्षतकासके है। ३ कुपथ्य और विषमाशनके करनेसे, अतिमैथुनसे, मल मूत्र आदिका वेग धारनेसे, अतिदया करनेसे, अतिशोक करनेसे, अग्नि मन्द हो, अर्थात् अहार थककर वायु कुपित हो अग्निको नष्ट करे, तब तीनो दोष कोपको प्राप्त हो क्षयजन्य देहकी नाशक खांसीको प्रगट करे, तब वह खांसी देहको क्षीण करे, शूल, ज्वर, दाह और मोह ये हो तब यह प्राणका नाश करे, सूखी खांसी रुधिर मांस और शरीरको सुखावे,रुधिर और राध थूके ये सर्व लक्षणयुक्त और चिकित्सा करनेमें अतिकठिन ऐसी इस खांसीको वैद्य क्षयज कहते है। ४ क्षयरोगका पूर्वरूप-श्वास, हाथ, पैरका गलना, कफका थूकना, तालुएका सूखना,मन्दाग्नि, उन्मत्तता, पीनस, खांसी और निद्रा ये लक्षण धातुशोष होनेवालेके होते है। उस मनुष्यके नेत्र सफेद होते है और मांस खाने तथा स्त्रीसङ्ग करनेकी इच्छा होती है। वह सपनेमें कौआ, तोता, सेह, नीलकंठ ( मोर ), गीध, बन्दर, करकेटा इनपर अपनेको बैठा देख, और जलहीन नदीको देखे तथा पवन, धूर और धुआँ इनसे पीडित वृक्ष देखे, ये सब स्वप्न क्षयी रोग होनेके दीखते है, कंधा और पसवाडेमें पीडा, पैरमे जलन और सर्व अंगोमें ज्वर, ये तीन लक्षण क्षयके अवश्य होते है। ५ वादीके प्रभावसे स्वरभेद, कंधा और पसवाड़े इनसे संकोच और पीडा होती है। ६ पित्तसे ज्वर, दाह, अतिसार और मुखसे रुधिरका गिरना। ७ कफके कोपसे मस्तकका भारीपन, अन्नसे द्वेष, खांसी स्वरभेद ये लक्षण होते हैं।

पातिकक्षय[1], पांचवॉ उरःक्षतके होनेसे इस प्राणीके होता है इस भांति क्षयरोगको पांच प्रकारका जानना। इसको क्षयी, राजयक्ष्मा और राजरोग भी कहते है ॥ २१ ॥

शोषरोग ।

**शोषाः स्युः षट्प्रकारेण स्त्रीप्रसंगाच्छुचो व्रणात् ।**
**अध्वश्रमाच्च व्यायामाद् वार्धक्यादपि जायते ॥ २२ ॥**

क्षयरोगका भेद शोष[3]रोग है । उसके कारण—१ अत्यंत स्त्रीप्रसंग करना, २ अति शोक करना, ३ घाव, ४ अत्यन्त रस्ता चलना, ५ बहुत दंड कसरत करना और ६ वृद्धावस्था है । इन छः कारणोसे शोषरोग( जिससे देह सूख जाता है वह रोग ) होता है ॥ २२ ॥

श्वासरोग ।

**श्वासाश्च पञ्च विज्ञेयाः क्षुद्रः स्यात्तमकस्तथा ।**
**ऊर्ध्वश्वासो महाश्वासश्छिन्नश्वासश्च पञ्चमः ॥ २३ ॥**

---

१ वात, पित्त कफ इन तीनोके लक्षणो करके युक्त जो होता है उसको सांनिपातिकक्षय कहते हैं।

२ बहुत तीरंदाजी करनेसे,बहुत भारी वस्तु उठानेसे,बलवान् पुरुषके साथ युद्ध करनेसे, बहुत ऊँचे स्थानसे गिरनेसे, बैल, घोडा, हाथी, ऊँट इत्यादि दौडते हुओको थामनेसे, भारी शत्रुको मारनेवाला, शिला, लकडे, पत्थर, निर्घात ( अस्त्रविशेष ) इनके फेकनेसे, जोरसे वेदादिक शास्त्र पढनेसे अथवा दूर दिशावर शीघ्र चलकर आनेसे,गङ्गा यमुनादिक महानदीको तैरनेवाला, अथवा घोडेके साथ दौड़नेवाला, अकस्मात् केला खानेवाला, जलदी जलदी बहुत नाचनेसे,इसी प्रकार दूसरे मल्लयुद्धादिक क्रूरकर्म करनेसे उर(छाती) फट जाती है। ऐसे पुरुषकी छाती दुखनेसे बलवान् उरःक्षतरूप व्याधि उत्पन्न होती है और रूखा थोडा कुसमय तथा छातीमें चोट लगनेसे, अत्यन्त स्त्रीरमण करनेसे और रूखा थोडा और अनुमानका भोजन करनेवाले पुरुषका हृदय फटेके सदृश मालूम हो अथवा हृदयके दो टूक कर डाले ऐसा मालूम हो और हृदय तथा पसवाडोंमें अत्यन्त पीडा हो, अङ्ग सब सूखने और थरथर कांपने लगे । शक्ति,मांस, वर्ण, रुचि, अग्नि ये सब क्रमसे घटने लगे, ज्वर रहे, व्यथा होय, मनमें सन्ताप हो और दीन होय, अग्नि मंद होनेसे दस्त होने लगे, और वारंवार खांसतेर दुष्ट, काला, अत्यन्त दुर्गंधयुक्त, पीला, गांठके समान बहुत और रुधिर मिला ऐसा कफ गिरे इस प्रकार क्षतरोगी अत्यन्त क्षीण हो, सो केवल क्षतसे ही क्षीण होजाय ऐसा नही किन्तु स्त्रीसेवन करनेसे शुक्र और ओज ( सब धातुओंका तेज) का क्षय होनेसे मनुष्य क्षीण होता है, ये उरःक्षतरोगके लक्षण हैं। ३ रसादि सात धातुके शोषण ( सूखने ) से शरीर क्षीण होता है, इस रोगको शोष कहते हैं।

अर्थ—श्वासरोग पांच प्रकारका है—१ क्षुद्रश्वास[1], २ तमकश्वास[2], ३ ऊर्ध्वश्वास[3], ४ महाश्वास[4] और ५ छिन्नश्वास[5] । इस प्रकार श्वास रोग पांच प्रकारके हैं ॥ २३ ॥

---

१ रूखा पदार्थ खाने और श्रम करनेसे प्रगट हुआ जो श्वास सो पवनको ऊपर ले जाता है । यह क्षुद्रश्वास अत्यन्त दुःखदायक नही और अंगोको कुछ विकार नही करता, जैसे ऊर्ध्वश्वासादिक दुःखदायक हैं ऐसे यह नही है । यह भोजनपानादिकोकी उचित गतिको नही करता, न इंद्रियोंको पीड़ा करता और न कोई रोग प्रगट करता है, अतः यह क्षुद्रश्वास साध्य कहा गया है । २ जिस कालमें शरीरकी पवन उलटी गतिसे नाडियोंके छिद्रमें प्राप्त होकर मस्तक तथा कण्ठका आश्रयकर कफसंयुक्त होता है तब कफसे रुककर अतिवेगपूर्वक कण्ठमें घुरघुर शब्द करता है और मस्तकमे पीनस रोग करता है वह अत्यन्त तीव्रवेगसे हृदयको पीडित करनेवाले श्वासको उत्पन्न करता है । उस श्वासके वेगसे रोगी मूर्च्छित होता है,त्रासको प्राप्त होता है, चेष्टा रहित हो जाता है और खांसीके उठनेसे बड़े मोहको वारंवार प्राप्त होता है, जब कफ छूटे तब दुःख होय और कफ छूटनेके बाद दो घड़ी पर्यन्त सुख पावे, कंठमे खुजली चले बड़े कष्टसे बोले श्वासकी पीडासे नीद न आवे. सोवे तो वायुसे पसवाडोमें पीडा हो, बैठे ही चैन पड़े और गरमीके पदार्थसे सुख हो, नेत्रोमें सूजन हो, ललाटमें पसीना आवे, अत्यन्त पीडा हो, मुख सूखे वारंवार श्वास और वारंवार हाथीपर बैठनेके सदृश सर्व देह चलायमान होवे, यह श्वास मेघके वर्षनेसे, शीतसे, पूर्वकी पवनसे और कफकारक पदार्थोंके सेवन करनेसे बढता है । यह तमक श्वास याप्य है यदि नया प्रगट हुआ हो तो साध्य होता है । ३ बहुत देर पर्यंत ऊँचा श्वास ले, नीचे आवे नही कफसे मुख भर जावे और सब नाडियोंके मार्ग कफसे बन्द हो जायँ कुपितवायुसे पीडित हो, ऊपरको नेत्र कर चञ्चल दृष्टिसे चारो ओर देखे, मूर्च्छा और पीडासे अत्यन्त पीडित होय मुख सूखे तथा बहोश हो । ऊर्ध्वश्वासके लक्षण हैं । ४ जिसका वायु ऊपरको जायके प्राप्त हो ऐसा मनुष्य दुःखित होकर मुखसे शब्दयुक्त श्वासको ऊँचे स्वरसे निकाले अथवा जैसे मतवाला बैल शब्द करे इस प्रकार रात्रि दिन श्वाससे पीडित हो उसका ज्ञान विज्ञान जाता रहे, नेत्र चञ्चल हो और श्वास लेनेमें जिसके नेत्र और मुख फट जायँ, मलमूत्र बन्द हो जाय बोला नही जाय, अथवा बोले तो मन्द बोले, मन खिन्न हो और जिसका श्वास दूरसे सुनाई दे । यह महाश्वास जिस पुरुषको होता है वह तत्काल मरणको प्राप्त होता है । ५ जो पुरुष ठहर ठहरकर जितनी शक्ति हो उतनी शक्तिसे श्वासका त्याग करे अथवा क्लेशको प्राप्त हो, श्वासको नही छोड़े और मर्म कहिये हृदय, वस्ति ( मूत्रस्थान ) और नाडियोंको मानो कोई छेदन करे ऐसी पीडा हो पेटका फुलना, पसीना और मूर्च्छा इनसे पीडित हो. वस्ति ( मूत्रस्थान) में जलन हो, नेत्र चलायमान हों, अथवा नेत्र आंसुओंसे भरे हो, श्वास लेते लेते थक जाय तथा श्वास लेते लेते एक नेत्र लाल हो जाय उद्विग्नचित्त हो, मुख सूखे, देहका वर्ण पलट जाय बकवाद करे,संधिके सब बन्ध शिथिल हो जायँ,इस छिन्नश्वाससे मनुष्य शीघ्र प्राणका त्याग करता है ।

**कथिताः पञ्च हिक्कास्तु तासु क्षुद्रान्नजा तथा।**
**गम्भीरा यमला चैव महती पञ्चमीति च ॥ २४ ॥**

हिक्कारोग।

अर्थ-हिक्का ( हिचकी ) रोग पांच प्रकारका है,जैसे-१क्षुद्रा हिचकी, २ अन्नजा हिचकी, ३ गंभीरा हिचकी, ४ यमला हिचकी और ५ पांचवीं महती हिचकी इस प्रकार हिचकी पांच प्रकारकी हैं ॥ २४ ॥

जठराग्निके विकार।

**चत्वारोऽग्निविकाराः स्युर्विषमो वातसम्भवः।**
**तीक्ष्णः पित्तात् कफान् मन्दो भस्मको वातपित्ततः ॥२५॥**

अर्थ-जठर अर्थात् उदरकी अग्निके चार प्रकारके विकार हैं। जैसे-वादीमे विषमाग्नि होती है, पित्तसे तीक्ष्णाग्नि होती है, कफसे मंदाग्नि होती है और वातपित्तसे भस्माग्नि होती है ॥ २५ ॥

अरोचक राग।

**पञ्चैवारोचका ज्ञेया वातपित्तकफैस्त्रिधा। सन्निपातान्मनस्तापात्-**

---

१ जो हिचकी बहुत देरमें कंठ हृदयकी संधिसे मन्दमन्द चले उसको क्षुद्रानाम हिचकी कहते हैं। २ अन्न और पानीके बहुत सेवन करनेसे वात अकस्मात कुपित हो ऊर्ध्वगामी होकर मनुष्यके अन्नजा हिचकी प्रगट करता है। ३ हिचकी नाभिके पाससे उठ गम्भीर शब्द करे और जिसमें प्यास, ज्वरादि अनेक उपद्रव हो उसको गम्भीरा हिचकी कहते हैं।४ ठहर ठहरके दो दो हिचकी चले,शिर कन्धाको कपावे उसको यमला हिचकी जाननी। ५ जो हिचकी मर्मस्थानमें पीड़ा करती हुई और सर्व गात्रको कँपाती हुई सर्वकाल प्रवृत्त हो उसको महती हिक्का कहते हैं। ६ कभी कभी अन्नका पचन होता है और कभी कभी नही होता, उसको विषमाग्नि जानना। यह वातकी प्रकृतिसे होता है। ७ भोजनके ऊपर भोजन करनेसे सुखपूर्वक अन्नपाक हो जाय तो तीक्ष्णाग्नि जानना। यह पित्तकी प्रकृतिसे होता है।८ थोड़ा भोजन करनेसे भी अन्नका पाक नही होता उसको मन्दाग्नि जानना, यह कफकी प्रकृतिसे होता है।९भूख अत्यन्त प्रबल लगती है इस कारण वारम्वार भोजन करता है तो भी वह अन्न पच जाता है परन्तु उस अन्नके रससे शरीरमें पुष्टता नही आती और शरीर कृश होता है, उसको भस्मकाग्नि जानना।अन्य ग्रन्थोंमें भस्मकाग्निका तीक्ष्णाग्निमें अन्तर्भाव माना है।

अर्थ-अरोचक रोग पांच प्रकारका है-१वातारोचक,२पित्तारोचक,३कफारोचक, ४संनिपातारोचक और ५ मनको दुःख होनेसे जो सन्ताप होता है उससे इस प्रकार उत्पन्न होनेवाला पांच प्रकारका अरोचक ( अरुचि ) रोग जानना ॥

छर्दिरोग ।

**-छर्दयः सप्तधा मताः ॥ २६ ॥ त्रिभिर्दोषैः पृथक् तिस्रः कृमिभिः सन्निपाततः । घृणया च तथा स्त्रीणां गर्भाधानाच्च जायते ॥ २७ ॥**

अर्थ-छर्द्दि ( वमन ) रोग सात प्रकारका है । जैसे-१वातकी छर्दि, २ पित्तकी छर्द्दि, ३ कफकी छर्द्दि, ४कृमियोंके विकारकी छर्दि, ५सांन्निपातकी छर्दि ६अमेध्य और दुर्गन्धयुक्त पदार्थोंके दुर्गंधसे तथा मनके तिरस्कार होनेसे होती है, ७ सातवी छर्दि स्त्रियोंके गर्भ रहनेके पश्चात् होती है । इस प्रकारसे सात प्रकारकी छर्दि जानना ॥ २६ ॥ २७ ॥

---

१ वातकी अरुचिसे दांत खट्टे हो और मुख कषैला होता है।२ पित्तकी अरुचिसे कडुआ, खट्टा, गरम, विरस, दुर्गन्धयुक्त मुख हो जाता है । ३ कफकी अरुचिसे खारा, मीठा, पिच्छिल, भारी, शीतल होता है और मुखबँधासरीखा अर्थात् खाया नही जाय और आंत कफसे लिप्त हो जायँ । ४ सन्निपातकी अरुचिसे अन्नमें अरुचि तथा मुखमे अनेक रस मालूम हो । ५ शोक, भय, अतिलोभ, क्रोध, अहृद्य ( अर्थात् मनको बुरी लगे ऐसी वस्तु ) अपवित्र वास इनसे प्रगट हुई अरुचिमें मुख स्वाभाविक रहे, अर्थात् वातजादिकोंके सदृश कषैला खट्टा आदि नही हो । ६ हृदय और पसवाड़ोमे पीड़ा और मुखशोष होवे, मस्तक और नाभिमें शूल होय, खांसी,स्वरभेद और सुई चुभनेकीसी पीड़ा होय, डकारका शब्द प्रबल हो, वमनमें झाग आवे, ठहर ठहरकर वमन हो तथा थोड़ी हो,वमनका रङ्ग काला हो, पतली और कषैली हो, वमनका वेग बहुत हो पर वमन थोड़ा हो और वेगके प्रभावसे दुःख बहुत हो ये लक्षण वायुकी छर्दिके हैं । मूर्च्छा, प्यास, मुखशोष, मस्तक, तालुआ, नेत्र इनमें सन्ताप अर्थात् ये तपायमान रहे, अन्धेरा आवे, चक्कर आवे, रोगी-पीला, हरा, गरम, कडुआ, धुआँके रङ्गका और दाहयुक्त पित्तको वमन करे, यह पित्तकी छर्दीके लक्षण है । ८ तन्द्रा, मुखमें मिठास, कफका पड़ना, सन्तोष ( अन्नमें अरुचि ) निद्रा, अरुचि, भारीपना इनसे पीड़ित हो, चिकना, गाढा, मीठा,सफेद कफकी वमन करे और जब रद्द करे तब पीड़ा थोडी हो, रोमांच हों, ये कफकी छर्दीके लक्षण है । ९ कामिकी छर्दीमें शूल, खाली रद्द ये विशेष होते है, बहुधा कृमि और हृदय-रोगके लक्षण सदृश इसके लक्षण जानने । १० शूल, अजीर्ण, अरुचि, दाह, प्यास, श्वास, मोह इन लक्षणोंसे प्रबल हुई जो वमन सो सन्निपातसे होती है । रद्द करने-वालेकी वमन खारी, खट्टी, नीली, सद्रुष्ट ( जिसको देशवाले मनुष्य जाडी कहते हैं ) गरम, लाल ऐसी होती है । ११ अमेध्य मांस मछली आदि पदार्थोंके दुर्गन्धसे मनको तिरस्कार आके जो वमन होता है, उसमें जिस दोषका कोप हो उस-

स्वरभेदरोग ।

**स्वरभेदाः षडेव स्युर्वातपित्तकफैस्त्रयः ।**
**मेदसा सन्निपातेन क्षयात् षष्ठः प्रकीर्तितः ॥ २८ ॥**

अर्थ–स्वरभेद[1] ( गलेका बैठ जाना ) रोगके छः प्रकार हैं। जैसे–[2]१ वातका स्वरभेद, २ पित्तका[3] स्वरभेद, ३ कफका[4] स्वरभेद, ४मेद बढनेका स्वरभेद, ५ संनिपातका[6] स्वरभेद और छटा क्षयरोगका स्वरभेद ऐसे स्वरभेदरोग छः प्रकारका जानना ॥ २८ ॥

तृष्णारोग ।

**तृष्णा च षड्विधा प्रोक्ता वातात् पित्तात् कफादपि ।**
**त्रिदोषैरुपसर्गेण क्षयाद् धातोश्च षष्ठिका ॥ २९ ॥**

अर्थ–तृष्णारोग छः प्रकारका है, जैसे–१ वाततृष्णा, २ पित्ततृष्णा, ३ कफतृष्णा,

---

-दोषकी रद्द जाननी। स्त्रियोके गर्भ रहने पश्चात् जो वमन होती है उसके भी लक्षण जानने।

१ बहुत जोरसे बोलनेसे, विषके खानेसे, ऊँचे स्वरसे पाठ करनेसे ( अर्थात् वेदादिपाठ करनेसे ) कण्ठमे लकड़ी ( काष्ठ ) आदिके चोट लगनेसे कोपको प्राप्त हुए जो वात, पित्त, कफ सो कण्ठमें बहनेवाली चार नसे है उनमें वृद्धिको प्राप्त कर स्वरका नाश करे उसको स्वरभेद रोग कहते हैं। २ वातसे स्वरभेद हो तो रोगीके नेत्र, मुख, मूत्र और विष्टा ये काले हो। वह पुरुष टूटा हुआ शब्द बोले, अथवा गधेके स्वरप्रमाण कर्कश बोले। ३ पित्तस्वरभेदवाले मनुष्यके नेत्र, मुख, मूत्र और विष्टा ये पीले होते है और बोलते समय गलेमें शोष होता है। ४ कफके स्वरभेदसे कंठ कफसे रुका रहे, मन्द मंद तथा थोड़ा बोले और दिनमें बहुत बोले। ५ मेदके सम्बन्धसे कफ अथवा मेदसे गला लिप्त हो अथवा मेदसे स्वरके मार्ग रुक जानेसे प्यास बहुत लगे, गलेके भीतर और मन्द बोले। ६ सन्निपातके स्वरभेदमे तीनो दोषोंके लक्षण होते है और यह स्वरभेद असाध्य है ऐसा ऋषि कहते है। ७ क्षयका स्वर भेदवाले पुरुषके बोलते समय मुखसे धुआँसा निकले और वाणी क्षय हो जाय अर्थात् यथार्थ स्वर नही निकले इस स्वरभेदमें जिस समय वाणी हत हो जाय, अर्थात् ओजका क्षय होनेसे बोलनेका सामर्थ्य नही रहै, तब यह असाध्य होता है ओजका क्षय ( नाश ) नही होय तो साध्य है। ८ वातकी तृषा ( प्यास ) में मुख उतर जाय, अथवा दीन होय, कनपटी और मस्तक इन ठिकानोमें नोचनेके समान पीडा होय और जल बहनेवाली नाडियोका मार्ग रुक जाय,मुखका स्वाद जाता रहे और शीतल जलके पीनेसे प्यास बढ़े। ९ पित्तकी तृषामें मूर्च्छा, अन्नमे अरुचि, बडबड, दाह, नेत्रोमें लाली, अत्यन्त शोष,शीतपदार्थकी इच्छा, मुखमे कडुआहट और संताप ये लक्षण होते है। १० अपने कारणसे कुपित कफकरके जठराग्नि आच्छादित होती है तब अग्निकी गरमी अधोगत जलके बहनेवाली नाडियोको सुखाकर कफकी तृष्णाको प्रगट करती है। केवल कफसे तृषाका प्रगट होना असंभव है, केवल कफ बढे हुएका द्रवीभूतधर्म होनेसे प्यासक-

४ त्रिदोषतृष्णा, ५ आगंतुक जो शस्त्रादिकों करके क्षत होनेसे होती है सो उपसर्गज तृष्णा और ६जो धातुक्षयसे होती है सो धातुक्षयजन्य तृष्णा ऐसे छः प्रकारकी तृष्णा (प्यास) रोग है। मनुष्योंको जो वारंवार पानी पीनेकी इच्छा होती है और पानी पीनेसे भी प्यास जाती नही फिर फिर इच्छा होती है उसको तृष्णा कहते हैं ॥ २९ ॥

मूर्च्छारोग ।

**मूर्च्छा चतुर्विधा ज्ञेया वातपित्तकफैः पृथक् ।**
**चतुर्थी संनिपातेन—**

अर्थ—मूर्च्छा चार प्रकारकी है—१ वातकी मूर्च्छा, २ पित्तकी मूर्च्छा, ३ कफकी मूर्च्छा और चौथी सन्निपातकी मूर्च्छा है। इस प्रकार चार प्रकारकी मूर्च्छा जानना।

—र्तृत्व असम्भव है। और वातपित्तकी ही तृषा होती है न कि कफकी भी यह ग्रन्थांतरमें लिखा है। इसीसे चरकाचार्यने कफकी तृष्णा नही कही सुश्रुतने चिकित्सामें भेद होनेसे कही है। हारीतने भी सपित्तकफकी तृषा मानी है, केवल कफकी नही मानी। इस तृषामें निद्रा, भारीपन, मुखमें मिठास ये लक्षण होते है। इस तृषासे पीडित पुरुष अत्यन्त सूख जाता है।

१ वात, पित्त, कफ, इन तीनोंको तृष्णाके समान जिस तृष्णामें लक्षण हो उसको त्रिदोषज तृष्णा कहते हैं। २ हीनस्वर, मोह, मनमें ग्लानि हो, मुख दीन हो जाय, हृदय गला और तालु सूख जाय ये तृष्णाके उपद्रव हैं, कि जो मनुष्यको सुखाय डालते है और व्याधिके कारण शरीर कृश होनेसे यह कष्टसाध्य हो जाता है । वे उपद्रव यह है—ज्वर, मोह, क्षय, खांसी, श्वास, अतिसारादिक। ये रोग जिसके हो उसकी तृष्णा कष्टसाध्य जाननी। ३ रसक्षयसे जो तृष्णा हो उसमे जो लक्षण होते हैं वही सब क्षयजतृष्णामें होते हैं, इससे पीडित पुरुष रातदिन वारंवार पानी पीवे, परन्तु सन्तोष नहीं होता। ४ जो मनुष्य नीले अथवा लाल रंगके आकाशको देखे, पीछे मूर्च्छाको प्राप्त हो और जल्दी बेहोश हो जाय, देहमें कम्प, अंगोंका फुटना, हृदयमें पीडा हो, शरीर कृश हो जाय, शरीरका रंग काला लाल पड जाय,उसको वातकी मूर्च्छा जानना। ५ जिसको आकाश लाल,हरा,पीला दीखे,मूर्च्छा आवे और सावधान होते समय पसीना आवे,प्यास हो, सन्ताप हो, नेत्र लाल पीले हों,मल पतला हो,देहका वर्ण पीला हो, ये लक्षण पित्तकी मूर्च्छाके है। ६ कफकी मूर्च्छामें आकाशको मेघके समान अथवा अन्धकारके समान अथवा बादल इनसे व्याप्त देखकर मूर्च्छागत हो, देरमें सावधान हो, देहपर भारी बोझासा भार मालूम हो अथवा गीला चमडा धारण किया हुआ मालूम हो, मुखसे पानी गिरे, रद्द होगी ऐसा मालूम हो। ७ सन्निपातकी मूर्च्छामें सब दोषोंके लक्षण होते है, इस रोगको दूसरा अपस्मार ( मृगी ) जानना चाहिये, परन्तु अपस्मारोंमें दांतका चबाना, मुखसे झाग गिरना, नेत्रोका हाल और ही प्रकार होजाना इत्यादिक लक्षण नही होते इतनाही भेद है ।

तहां पित्त तमोगुणसे मोह उत्पन्न होता है । संज्ञा और चेष्टाके वहनेवाले छिद्र वातके विकारसे आच्छादित होनेसे, अकस्मात् शरीरमे तमोगुण बढकर सुख दुःखका ज्ञान जाता रहे और मनुष्य लकडकीके समान पृथ्वीपर गिर जावे उसको मूर्च्छा कहते है।

भ्रम, निद्रा, तंद्रा, संन्यासरोग ।

**–तथैकश्च भ्रमः स्मृतः ॥ ३० ॥ निद्रा तंद्रा च संन्यासो ग्लानिश्चैकैकजः स्मृतः ।**

अर्थ–भ्रम,१,निद्रा२,तंद्रा३,संन्यास४और ग्लानि५ये पांच रोग एक एक प्रकारके हैं। इनके क्रमसे लक्षण कहते हैं। रजोगुण पित्त और वायु इनसे भ्रम उत्पन्न होता है, तमोगुण और कफ इन दोनोसे उत्पन्न हो, इंद्रिय और मन इनको मोहित कर बाह्य घटपटादिक पदार्थोंका ज्ञान न रहे, उस अवस्थाको निद्रा कहते हैं । और इंद्रियोंको मोहित कर कुछ सोवे और जागता रहनेपर नेत्र खुले मूँदे रहैं उसको तंद्रा कहते हैं । देह मन इनका व्यापार बंद होकर मरेके समान लकडीसा गिर पडे उसको वाणीसंन्यास कहते हैं । यह एक घोर निद्राकी अवस्था है । ग्लानिके लक्षण इसी खण्डके छठे अध्यायके अन्तमें कह आये हैं सो जानना ॥ ३० ॥

मदरोग ।

**मदाः सप्त समाख्याता वातपित्तकफास्त्रयः ॥ ३१ ॥ त्रिदोषैरसृजो मद्याद् विषादपि च सप्तमः ।**

अर्थ–मदरोग सात प्रकारका है, जैसे–१ वातमद, २ पित्तमद, ३ कफमद, ४ त्रिदोषमद, ५ रुधिर कुपित होनेसे जो होय सो और ६ प्रमाणसे अधिक मद्य पीनेसे होय, सो तथा वच्छनाग आदि विष भक्षण करनेसे होय सो । इस प्रकार ७ प्रकारके मदरोग जानने । सुपारी, कोदों धान्य, धतूरा इत्यादिके भक्षण करनेसे जैसे मतवाला आदमी होजाता है उसी प्रकारका वातादि दोष दुष्ट होकर मनको विभ्रम करते हैं उसको मद कहते हैं । इसमे जिस दोषका अधिक कोप होता है उसी दोषके लक्षण होते हैं । इस रोगवालेको मतवाला कहते हैं ॥ ३१ ॥

मदात्ययरोग ।

**मदात्ययश्चतुर्धा स्यात् वातात् पित्तात् कफादपि ॥ ३२ ॥ त्रिदोषैरपि विज्ञेय एकः परमदस्तथा । पानाजीर्णं तथा चैकं तथैकः पानविभ्रमः ॥ ३३ ॥ पानात्ययस्तथा चैकः–**

अर्थ–मद्यका प्रमाण इस प्रकार लेना कि प्रातःकाल दांतन आदि शरीरकी

---

१ संन्यास रोगका उपाय जलदी होवे तो मनुष्य बचता है नही तो मर जाता है।उसका उपाय यही है कि हाथ पैरोकी उँगलियोको सुईसे छेदन करे, अथवा फस्त खोलकर रुधिर निकाले ।

शुद्धिके कर्मसे निबटकर ८ तोले मद्य पीवे। दुपहरको चिकने पदार्थ घी मिला गेहूंका चून ( मैदा ) आदि तथा मांस इत्यादिकोंके साथ पीवे । तथा रात्रिके आरंभमें चौगुनी पीवे परन्तु जितना अपनी देहको सहन होवे उतना ही पीवे, बढती न होवे । इस प्रकार सेवन करनेसे वह मद्य रसायनरूप होकर आयुष्यकी तथा शरीरकी वृद्धि करता है । तथा बल देता है और अमृतके समान हितकारक होता है। इसमे अन्तर पडनेसे अर्थात् जितनी सेवन करते हैं उससे अधिक सेवन करनेसे बुद्धि भ्रंश होवे, तथा वह मद्य विषके समान होकर दाहादिक उपद्रवके चिह्न करता है, प्राण व्याकुल होते हैं। तथा कही २ प्राणहानि भी होती है, उसको मदात्यय रोग कहते हैं । वह मदात्यय वात, पित्त[2], कफ[3], त्रिदोष[4] इन भेदोसे चार प्रकारका है । परमपद, पानाजीर्ण, पानविभ्रम और पानात्यय ये चार मदात्यय रोगके भेद जानने। यदि मद्य पीने आदिके गुणागुण अधिक जानने हों तो चरक सुश्रुत आदि बृहद्ग्रन्थोंको देखो ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

दाहरोग ।

**-दाहाः सप्त मतास्तथा।रक्तपित्तात् तथा रक्तात् तृष्णायाः पित्ततस्तथा ॥३४॥ धातुक्षयान्मर्मघाताद्रक्तपूर्णोदरादपि ।**

अर्थ-देहमें जो जलन होती है उसको दाह रोग कहते हैं । यह सात प्रकारका है-१रक्तपित्तके[5] कुपित होनेसे होय, २रुधिरके[6] कोपसे होय,३ तृषाके रोकनेसे,४ पित्तके

१ हिचकी, श्वास, मस्तकका कंप होना, पसवाडोंमें पीडा, निद्राका नाश और अत्यंत बकवाद ये लक्षण जिसमें होय उसको वातप्रधान मदात्यय रोग जानना । २ प्यास, दाह, ज्वर, पसीना, मोह, अतिसार, विभ्रम ( कुछ कुछ ज्ञान रहे ) देहका वर्ण हरा हो इन लक्षणोंसे पित्त प्रधान मदात्यय जानना । ३ वमन ( रद्द ) अन्नमें अरुचि, खाली रद्द ( ओकारी ), तन्द्रा, देह गीली, भारी और शीत लगे इन लक्षणोंसे कफ प्रधान मदात्यय जानना । ४ जिसमें त्रिदोषमदात्ययके लक्षण मिलते हो उसको संनिपात प्रधान मदात्यय जानना । ५ जिसमें कुछ लक्षण रक्तके मिलते हों और कुछ पित्तके हो उसको रक्तपित्त दाह कहते है । ६ सर्व देहका रुधिर कुपित होकर अत्यन्त दाह करे और वह रोगी अग्निके समीप रहनेसे जैसा तपता है ऐसा तपे, प्यासयुक्त हो, ताम्रके रंग सदृश देहका रंग हो और नेत्र भी लाल हों तथा मुखसे और देहसे तप्त लोहेपर जल डालनेकीसी गंध आवे और अंगमें मानो किसीने अग्नि लगा दी हो ऐसी वेदना हो तो उसे रुधिरके कोपसे उपजी दाह कहते है । ७ प्यासके रोकनेसे जलरूप धातु क्षीण होकर तेज कहिये पित्तकी गरमीको बढावे, तब वह गरमी देहके बाहर और भीतर दाह करे । इस दाहसे रोगी बेसुध होय और गला, तालु, होठ यह अत्यन्त सूखे और जीभको बाहर काढ दे और कॉपे । ८ पित्तसे जो दाह हो उसमें पित्तज्वरकेसे लक्षण होते हैं । उसपर पित्तज्वरकी चिकित्सा करनी चाहिये।पित्तज्वरमें और पित्तके दाहमें अन्तर है कि पित्तज्वरमे अग्नि और आमाशयका दुष्टपना होता है और पित्तके दाहमे नही होता है और सब लक्षण एक ही है।

कोपसे, ५ रसादि धातुओंके क्षय करके, ६ मर्मस्थलमें चोट लगनेसे जो होय और ७ बडे भारी घोर शस्त्रादिका प्रहार होकर कोठेमें रुधिर जमनेके कारणसे होवे। इस प्रकार दाह रोग सात प्रकारका जानना ॥ ३४ ॥

## उन्मादरोग।

**उन्मादाः षट् समाख्यातास्त्रिभिर्दोषैस्त्रयश्च ते।**
**संनिपाताद् विषाज्ज्ञेयः षष्ठो दुःखेन चेतसः ॥ ३५ ॥**

अर्थ–उन्माद रोग छः प्रकारका है, जैसे–१ वातोन्माद, २ पित्तोन्माद, ३ कफो-

---

१ धातुक्षयसे जो दाह होय उससे रोगी मूर्च्छा, प्यास इनसे युक्त स्वरभंग तथा चेष्टाहीन होता है, इस दाहमें पीडित होकर यदि चिकित्सा न करावे तो वह रोगी मरणको प्राप्त होता है। २ मर्मस्थान (हृदय-शिर-वस्ति)में चोट लगनेसे जो दाह होय सो असाध्य है। ३ शस्त्र कहिये तलवार आदिके लगनेसे प्रकट रुधिरसे कोष्ठ कहिये हृदय भर जावे तब अत्यन्त दुःसह दाह प्रगट होता है। एवं क्षतजदाहसे कोष्ठ शब्दसे यहांपर हृदय आमाशय आदि स्थान जानना। उससे आहार थोडा रह जावे, अनेक प्रकारके शोककर दाह होय और इस दाह करके अभ्यन्तर दाह होय तथा प्यास मूर्च्छा और प्रलाप ( बकवाद ) ये लक्षण होय।

४ रूखा, थोडा और शीतल अन्न, धातुक्षय और उपवास इन कारणोंसे अत्यन्त बढी जो वायु सो चिन्ता शोकादि करके युक्त होकर हृदय ( मन ) को अत्यन्त दुष्टकर बुद्धि और स्मरण इनका शीघ्र नाश करती है, हँसनेके कारण विना हँसे मन्द मुसकान करे, नाचे, विना प्रसंगके गीत गावे और बोले, हाथोंको सर्वत्र चलावे, रोवे और शरीर रूखा तथा कृश और लाल हो जाय और आहारका परिपाक भयेपर जियादह जोर होय,ये वातोन्मादके लक्षण है। ५ अधकच्ची, कडवी,खट्टी, दाह करनेवाली और गरम वस्तुका भोजन करनेसे संचित भया जो पित्त सो तीव्रवेग होकर अजितेन्द्रिय पुरुषके हृदयमें प्रवेश कर पूर्ववत् अति उग्र उन्माद तत्काल उत्पन्न करता है। इस उन्मादसे असहनशील, हाथ पैरोका पटकना, नग्न हो जाय, डरपे, भाजने लगे, देह गरम हो जाय, क्रोध करे, छायामें रहे, शीतल अन्न और शीतल जल इनकी इच्छा, पीला मुख होजाय, यह लक्षण पित्तज उन्मादके है। ६ मन्द भूखमे पेटभर भोजन कर कुछ परिश्रम न करे ऐसे पुरुषके पित्तयुक्त कफ हृदयमें अत्यन्त बढकर बुद्धि, स्मरण और चित्त इनकी शक्तिका नाश करता है और मोहित कर उन्मादरूप विकारको उत्पन्न करता है। उस विकारसे वाणीका व्यापार कहिये बोलना इत्यादि मन्द हो,अरुचिहो,स्त्री प्यारी लगे,एकान्त वास करे, निद्रा अत्यन्त आवे,वमन हो, मुखसे लार वहे, भोजन करनेके पीछे रोगका जोर हो, नख, त्वचा, मूत्र नेत्रादिक सफेद हो, यह लक्षण कफोन्मादके हैं।

न्माद, ४ सान्निपातोन्माद, ५ विषसेवनका उन्माद, ६ धन-बंधु-नाशजन्य मनके दुःख होनेसे होता है, सो शोकज उन्माद वातादिक दोषोंके बढनेसे अपाना २ नित्यका मार्ग छोडकर अन्य मनोवाहिनी नाडियोंमें जाके चित्तमें विभ्रम करती है, इसीसे इस रोगको उन्माद कहते हैं ॥ ३५ ॥

भूतोन्मादकरोग।

**भूतोन्मादा विंशतिः स्युस्ते देवाद्दानवादपि। गन्धर्वात्किन्नराद् यक्षात् पितृभ्यो गुरुशापतः ॥ ३६ ॥ प्रेताच्च गुह्यकाद् वृद्धात् सिद्धाद् भूतात् पिशाचतः।जलाधिदेवतायाश्च नागाच्च ब्रह्मराक्षसात् ॥ ३७॥ राक्षसादपि कूष्माण्डात् कृत्यावेतालयोरपि।**

अर्थ-भूतोन्माद बीस प्रकारका है उनके नाम कहते हैं, जैसे-१ देवग्रह कहिये गणमातृकादिक, २ दानव ( पापबुद्धि असुर ), ३ गन्धर्व ( देवताओंके आगे गान

---

१ जो उन्माद वातादिक तीनों दोषोंके कारण करके होता है वह सन्निपातजन्य उन्माद बहुत भयंकर होता है, उसमें सब दोषोंके लक्षण होते है। इसमे विरुद्ध औषधि विधि वार्जित है, यह उन्माद वैद्योंकरके त्याज्य है। कारण कि यह असाध्य है। २ विषसे प्रगट उन्मादमें नेत्र लाल हों, बल इंद्रिय और शरीरकी कांति नष्ट हो जाय, अति दीन हो जाय, उसके मुख पर कालोंच आजाय और संज्ञा जाती रहे।

३ चोरोंने, राजाके मनुष्योंने, अथवा शत्रुओंने, उसी प्रकार सिंह, व्याघ्र, हाथी आदि किसीने त्रास दिया हो अथवा धन या बन्धुके नाश होनेसे इस पुरुषका अन्तःकरण अत्यन्त दूखे अथवा प्यारी स्त्रीसे संभोग करनेकी इच्छावाले पुरुषके मनमें भयंकर विकार उत्पन्न हो, पुरुष गुप्तबातको भी कहने लगे और अनेक प्रकारका बोले, विपरीत ज्ञान हो, गावे, हँसे और रोवे तथा मूर्ख हो जाय। ये लक्षण शोक उन्मादके है।

४ देवग्रह जो गणमातृकादिक पीडित मनुष्य सदा सन्तोष युक्त रहै देहमें दिव्यपुष्पके समान सुगन्ध, नेत्रोंके पलक लगें नही, सत्य संस्कृतका बोलनेवाला हो, तेजस्वी स्थिरदृष्टि, वरका देनेवाला, तेरा कल्याण हो ऐसा वर देय और ब्राह्मणसे प्रीति रक्खे।

५ पसीनायुक्त देह, ब्राह्मण, गुरु और देव इनमें दोषारोपण करनेवाला टेढ़ी दृष्टिसे देखनेवाला,निर्भय,वेदविरुद्धमार्गका चलनेवाला और बहुत अन्न जलसे भी जिसको संतोष न हो और, दुष्टबुद्धि, ऐसे मनुष्यको दैत्यग्रहसे पीडित जानना।

६ गन्धर्व ग्रहसे पीडित मनुष्य प्रसन्नचित्त,पुलिन और बाग बगीचामें रहनेवाला, अनिन्दित आचारका करनेवाला,गाना,सुगन्ध और पुष्प ये जिसको प्यारे लगें ऐसा होता है। वही पुरुष नाचे, हँसे, सुन्दर बोले, थोडा बोले।

रनेवाले, ४ किन्नर ( उन्हीं गन्धर्वोंका भेद है ), यक्ष, ५ पितर[3] ( अग्निष्वात्तादिक ) गुरुके शाप, ८ प्रेत, ९ गुह्यक, १० वृद्ध, ११ सिद्ध, १२ भूत, १३ पिशाच, १४[6] जला- देवता, १५ नाग, १६ ब्रह्मराक्षस, १७ राक्षस, १८ कूष्मांडराक्षस, १९ कृत्या, २० वेताल स प्रकार वीस भेद देवतादिक ग्रहोंके कहे हैं। तिनमें ग्रहका शरीरमें संचार होकर उस हकीसी चेष्टाके समान मनुष्य चेष्टा करते हैं उसको भूतोन्माद कहते हैं ॥३६॥३७॥

---

१ किन्नर ग्रहसे पीडित मनुष्योंके लक्षण गन्धर्वग्रहके सदृश ही होते है।

२ यक्षपीडित मनुष्योंके नेत्र लाल होते हैं और वह सुन्दर बारीक ऐसे रक्त वस्त्रका धारण करनेवाला, गम्भीर, बुद्धिमान्, जल्दी चलनेवाला, प्रमाणका बोलनेवाला, सहन- शील, तेजस्वी, किसको क्या देऊं ऐसे बोलनेवाला होता है।

३ कुशोंके ऊपर प्रेतोंके ( पितरोंको ) पिंड दे, चित्तमें भ्रांति रहे और उत्तरीय वस्त्र अपसव्य करके तर्पण भी करे, मांस खानेकी इच्छा हो तथा तिल, गुड, खीर इनपर मन चले ( इस कहनेका प्रयोजन यह है कि जिसकी जिस पदार्थपर इच्छा हो उसको उसी पदार्थकी बलि देनेसे उस ग्रहकी शांति होती है ऐसे ही सर्वत्र जानना। यह डल्हनका मत है ) और वह मनुष्य पितरोंकी भक्ति करे। ये लक्षण पितृग्रहपीडित मनुष्यके है ।

४ गुरु कहिये ब्राह्मणादि माता पिता आदि बडोंके अपराध करनेसे जो शाप होता है उससे मनुष्योंको उन्माद उत्पन्न होता है। उसके लक्षण-प्रेत, गुह्यक, वृद्ध, सिद्ध और भूत इनके लक्षणोंके सदृश ही होते हैं।

५ पिशाचजुष्टके लक्षण ये हैं-कि, जो अपने हाथ ऊपरको करे, नंगा हो जाय, तेजरहित बहुर देत पर्यन्त बकनेवाला, जिसके देहमे अपवित्र दुर्गन्ध आवे तथा अतिचञ्चल यानी सब अन्न पानमें इच्छा करनेवाला, खानेको मिले तो बहुत भोजन करे, एकान्त वनान्तरोंमें रहनेवाला, विरुद्ध चेष्टा करनेवाला, रोदनकर्त्ता, डोलनेवाला ऐसा मनुष्य हो जाता है ।

६ जलादि देवता कहिये जलदेवता, अप्सरा आदिक और स्थलदेवता इनके लक्षण अनुमान करके समझ लेना।

७ जो मनुष्य सर्पके समान पृथ्वीमें लोटा करे, अर्थात् छातीके बल चले तथा सर्पके समान अपने ओष्ठप्रान्त ( होठों ) को चाटा करे, सदा क्रोधी रहे, शहद, गुड, दूध और खीरकी इच्छा रहे तो उसे सर्पग्रहग्रस्त जानना।

८ देव, ब्राह्मण, गुरुसे द्वेषकर्त्ता, वेद और वेदके अङ्ग ( शिक्षा, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द, कल्प, निरुक्त ) का पढा भया, शीघ्र पीडाका कर्त्ता, हिंसा करे नही, ये लक्षण ब्रह्मराक्षससेवी मनुष्यके हैं।

९ राक्षसोंसे पीडित जो उन्मादरोगी वह मांस, रुधिर और नानाप्रकारके मद्य इनमें प्रीति रखनेवाला और निर्लज्ज होता है अर्थात् नङ्गा रहनेसे भी लाज नही धरता, निर्दय होता है। शूरता दिखाता है, क्रोधी, बलिष्ठ, रात्रिमें भटकनेवाला और अच्छे कर्मोंसे द्वेष करनेवाला होता है, । इसीके सदृश कूष्मांड, राक्षस, कृत्या और वेताल इन करके पीडित मनुष्योंके लक्षण अनुमानसे जान लेना।

अपस्माररोग ।

**अपस्मारश्चतुर्धा स्यात् समीरात् पित्ततस्तथा ॥ ३८ ॥**
**श्लेष्मणोऽपि तृतीयः स्याच्चतुर्थः संनिपाततः ।**

अर्थ-अपस्मार[1] रोग चार प्रकारका है जैसे-१ वातापस्मार[2], २ पित्तापस्मार[3], ३ कफापस्मार[4] और ४ संनिपातास्मार[5] इस प्रकारसे अपस्मार ( मृगी ) रोगको चार प्रकारका जानना ॥ ३८ ॥

आमवातरोग ।

**चत्वारश्चामवाताः स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ ३९ ॥ चतुर्थः-**
**-सन्निपाताच्च शूलान्यष्टौ बुधा जगुः । पृथग्दोषैस्त्रिधा द्वन्द्व-**

अर्थ-आमवात[6] रोग चार प्रकारका है । जैसे-१ वातामवात[7], २पित्तामवात[8], ३कफामवात[9] ४ संनिपातामवात[10], इन भेदोंसे आमवात रोग चार प्रकारका है ॥ ३९ ॥

---

१ चिंता, शोक, क्रोध, लोभ, मोहादिसे कुपित जो दोष वात, पित्त, कफ सो हृदयमें स्थित जो मनको बहनेवाली नाडी उनमें प्राप्त हो स्मरण ( ज्ञान ) का नाश कर अपस्मार रोगको प्रगट करते है । २ वातके अपस्मारमे रोगी कांपे, दाँतोंको चबावे, मुखसे लार गेरे और श्वास भरे, तथा कर्कश अरुणवर्ण मनुष्योंको देखे अर्थात् कोई नीलवर्णका मनुष्य मेरे पास दौडा आता है ऐसा देखे । ३ पित्तकी मिरगीवालेके झाग, देह नेत्र और मुख ये पीले होते है और वह पीले रुधिरके रंगकीसी सब वस्तु देखे, प्यासयुक्त और गरमीके साथ अग्निसे व्याप्त भया ऐसा सब जगत्को देखे और मेरे पास पीले वर्णका पुरुष दौडा आता है ऐसा देखे । ४ कफकी मृगीवालेके झाग, अंग, मुख और नेत्र सफेद होयँ, देह शीतल होय, देह तथा देहके रोमांच खडे रहे, भारी हो और सब पदार्थ सफेद दीखे और सफेद रंगका पुरुष मेरे सामने दौडा आता है ऐसा देखे । यह अपस्मार ( मिरगी ) रोग देरमें छोडे अर्थात् वातपित्तकी मृगी जलदी रोगीको छोड देती है ।

५ जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हो उसको त्रिदोषज अपस्मार जानना।यह असाध्य है और जो क्षीण पुरुषके होय वह भी असाध्य है तथा जो पुराना पड गया हो वह भी अपस्मार ( मिरगी ) रोग असाध्य है ।

६ अंगोका टूटना, अरुचि, प्यास, आलसक, भारीपना, ज्वर, अन्नका न पचना और देहमे शून्यता हो जाय इस रोगको आमवात कहते हैं ।

७ वातके आमवातमे शूल होता है । ८ पित्तसे जो आमवात होय उसमें दाह और लाल रंग होता है ।

९ कफसंबंधी आमवातमे देहमें आर्द्रता ( गीला ) और भारीपन तथा खुजली चलती है।
१० त्रिदोषसे प्रगट आमवातमें तीनों दोषोके लक्षण होते है, यह कष्टसाध्य है ।

**भेदेन त्रिविधान्यपि ॥४०॥ आमेन सप्तमं प्रोक्तं सन्निपातेन चाष्टमम् ।**

अर्थ–शूलरोग आठ प्रकारका है–वातशूल[1] २ पित्तशूल[2] ३ कफशूल[3] ४ वातपित्त-शूल ५ पित्तकफशूल ६ कफवातशूल ७ आमशूल ८ संनिपातशूल इस प्रकार

---

१ दंड, कसरत, बहुत चलना, अतिमैथुन, अत्यन्त जागना, बहुत शीतल जल पीना, कांगनी, मूँग, अरहर, कोदो और अत्यंत रूखे पदार्थके सेवनसे और अध्यशन ( भोजनके ऊपर भोजन ), लकडी आदिके लगनेसे, कषैला, कडुआ, भीजा अन्न ( जिसमें अंकुर निकस आये हों ) विरुद्ध-क्षीर मछली आदि, सूखामांस, सूखाशाक ( कचरिया आदि ) इनके सेवनसे, मल, मूत्र, शुक्र और अधोवायु इनके वेगको रोकनेसे, शोकसे, उपघातके करनेसे, अत्यन्त हँसनेसे, बहुत बोलनेसे कोपको प्राप्त भई जो वात सो बढकर हृदय, पसवाडे वा पीठ, त्रिकस्थान, मूत्रस्थानमें शूलको करे और भोजन पचनेके पीछे प्रदोषकालमें, वर्षाकालमें, शीत कालमें, इन दिनोंमें शूल अत्यंत कोप करे, वारंवार कोप होय, मल, मूत्रका अवरोध,पीडा और भेद ये लक्षण वातशूलके हैं,तथा स्वेदन और अभ्यंजन, मर्दन इत्यादिकसे और चिकने गरम अन्नसे यह शूल शांत होता है ।

२ यवक्षार आदि खार,मिरच आदि तीक्ष्ण और गरम, विदाहकारक बाँस और करील आदि, तेल, सिबी,खल, कुलथीका यूष,कडुआ, खट्टा,सौवीर ( मद्यविशेष ), सुराविकार ( कांजी इत्यादिक ), क्रोधसे, अग्निके समीप रहनेसे, परिश्रमसे सूर्यकी तीव्र धूपमें डोलुनेसे, अति मैथुन करनेसे,विदाहकारक अन्न आदि इन कारणोंसे पित्त कुपित होकर नाभिस्थानमें शूल, तृषा, मोह, दाह, पीडा, पसीना, मूर्च्छा, भ्रम, शोष इनको करे, दुपहरके समय,मध्यरात्रिमें,अन्नके विदाहकालमें,शरद्कालमें शूल अधिक होय।शीतलकालमें शीतल पदार्थसे और अत्यन्त मधुर ( मीठा ) शीतल अन्नसे यह शूल शांत होय । ३ जलके समीप रहनेवाले पक्षियोका मांस, मछली आदिका मांस,दही, घृत, मक्खन आदि दूधके विकार, मांस, ईखका रस, पिसा अन्न, खिचडी, तिल, पूरी कचौडी आदि और कफकारक पदार्थ खानेसे कफ कुपित होकर आमाशयमें शूलरोगको प्रगट करे, उससे सूखी रद्द, खांसी, ग्लानि, अरुचि, मुखसे लार गिरे, बद्धकोष्ठता, मस्तक भारी हो ये लक्षण होय, भोजन करते समय पीडा होय, सूर्योदयके समय शिशिर ऋतुमें और वसन्तकालमें शूल बहुत होय । ४ दाहज्वर करनेवाला, ऐसा भयङ्कर शूल होय सो वातपित्तका जानना । ५ कूख, हृदय, नाभि और पसवाडे इनमें पित्तकफका शूल होता है । ६ वस्ति ( मूत्रस्थान ) हृदय, कण्ठ, पसवाडे इन ठिकाने शूल होय उसे कफवातका शूल जानना । ७ पेटमें गुडगुडाहट होय, उबकियोंका आना, रद्द, देह भारी, मन्दता, अफरा, मुखसे कफका स्राव इन लक्षणोंसे तथा कफशूल लक्षणोंके समान ऐसे शूलको आमशूल कहते है । ८ जिसमें तीन ( वात,पित्त,कफ ) के लक्षण मिलते हो उसको संनिपातका शूल कहते है,मांस, बल और अग्नि जिसके क्षीण होगये हो ऐसा शूलरोग असाध्य जानना ।

आठ प्रकारका शूल रोग है, इन आठोंमें बहुधा वायु मुख्य शूलकर्ता है ॥ ४० ॥

पारिणामशूलरोग ।

परिणामभवं शूलमष्टधा परिकीर्तितम् ॥४१॥ मलैर्यैः शूल-संख्या स्यात्तैरेव परिणामजे । अन्नद्रवभवं शूलं जरत्पित्तभवं तथा ॥ ४२ ॥ एकैकं गणितं सुज्ञैः-

अर्थ-भोजन पचनेपर जो शूल होय उसको पारिणामशूल कहते हैं, वह उन वातादि दोषों करके परिणामशूल आठ प्रकारका है । अन्नद्रव[1] शूल और जरत्पित्त[2]-शूल ये दो शूल एक एक प्रकारके जानने ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

उदावर्तरोग ।

-उदावर्तास्त्रयोदश । एकः क्षुधानिग्रहजस्तृष्णारोधाद् द्वितीयकः ॥४३॥ निद्राघातात् तृतीयः स्याच्चतुर्थः श्वास-निग्रहात् । छर्दिरोधात् पञ्चमः स्यात् षष्ठः क्षवथुनिग्रहात् ॥ ४४ ॥ जृम्भारोधात् सप्तमः स्यादुद्गारग्रहतोऽष्टमः । नवमः स्यादश्रुरोधाद् दशमः शुक्रवारणात् ॥ ४५ ॥ मूत्ररोधा-न्मलस्यापि रोधाद् वातविनिग्रहात् । उदावर्तास्त्रयश्चैते घोरोपद्रवकारकाः ॥ ४६ ॥

अर्थ-उदावर्त रोग १३ प्रकारका है-जैसे १ क्षुधा[3] २ तृषा[4] ३ निद्रा[5] ४ श्वास[6] ५ वमन[7]

---

१ अन्न पच गया होय अथवा पच रहा हो अथवा अजीर्ण हो अर्थात् सर्वदा जो शूल प्रगट होय वह पथ्यापथ्यके योगसे अथवा भोजन करनेसे नियमसे शांत नही होय उसको अन्नद्रवशूल कहते है, यह शूल त्रिदोषविकृतिसे एक प्रकारका है, परंतु असाध्य नही है क्योंकि इसकी चिकित्सा कही हैं । २ अम्लपित्तसे जो शूल होता है उसको जरत्पित्त शूल कहते हैं । ३ क्षुधा ( भूख ) रोकनेसे तंद्रा, अगोंका टूटना, अरुचि श्रम और दृष्टिका मन्द होना ये रोग प्रगट होंय । ४ प्यासके रोकनेसे कंठ और मुखका सूखना, कानोसे मंद सुनना और हृदयमे पीडा ये लक्षण होंय । ५ आती हुई निद्राको रोकनेसे जंभाई, अंगोका टूटना, नेत्र और मस्तककी अत्यंत जडता होना और तंद्रा होय । ६ जो मनुष्य हार गया हो और वह श्वासको रोके उसके हृदयरोग, मोह और वायगोला इतने रोग होय । ७ जो मनुष्य आती हुई वमनके वेगको रोके उसके अगोमें खुजली चले, देहमें चकत्ते होजाँय, अरुचि, मुखपर झाँईसी पडे, सूजन, पांडुरोग, ज्वर, कुष्ठ, खाली रद्द, विसर्प ये रोग होय

६ छींकें, ७ जंभाई, ८ डकार, ९ नेत्रसंबंधी जल, १० शुक्रधातु. ११ मूत्र, १२ मल और १३ वायु इन तेरह प्रकारके वेगोंके रोकनेसे तेरह प्रकारका उदावर्त उत्पन्न होता है। इनमें मूत्र मल और वायु इन तीनोंके रोकनेसे जो उदावर्त हो वह घोर उपद्रव करता है ॥ ४३–४६ ॥

आनाहरोग।

**आनाहो द्विविधः प्रोक्त एकः पक्काशयोद्भवः।**
**आमाशयोद्भवश्चान्यः प्रत्यानाहः स कथ्यते ॥ ४७ ॥**

अर्थ–आनाह रोग दो प्रकारका है–एक पक्काशयमे होनेसे पेटको फुलाता है दूसरा आमाशयमें होता है जिसको प्रत्यानाह कहते हैं, इस प्रकार दो प्रकारका आनाह रोग अर्थात् अफरा रोग जानना ॥ ४७ ॥

---

१ आती हुई छीकके रोकनेसे मन्या ( कहिये नाडके पिछाडीकी नस ) का स्तंभ कहिये जकड जाना, शिरमें शूलका चलना, अधोमुख टेढा हो जाय, अर्धांगवात और इन्द्रियें दुर्बल होजायँ इतने रोग होते हैं। २ आती हुई जँभाईको रोकनेसे मन्या कहिये नाडके पीछेकी नस और गला इनका स्तंभ और वातजन्य विकार मस्तकमें होता है। उसी प्रकार नेत्ररोग,नासारोग,मुखरोग और कर्णरोग ये तीव्र होते हैं। ३ आती हुई डकारके वेगको रोकनेसे वातजन्य इतने रोग होते है, कंठ और मुख भारीसा मालूम हो, अत्यन्त नोचनेकीसी पीडा हो, अव्यक्त भाषण ( अर्थात् जो समझनेमें न आवे ) हो। ४ आनंदसे अथवा शोकसे प्रगट अश्रुपातोको जो मनुष्य नही त्याग करे उसके इतने रोग प्रगट होते है-मस्तक भारी रहे, नेत्ररोग और पीनस ये प्रबल हो। ५ मैथुन करते समय वीर्य निकलतेको जो मनुष्य रोके, अथवा और प्रकारके शुक्रके वेगको रोके उसके मूत्राशयमें सूजन होय तथा गुदामे और अंडकोशोमें पीडा होय, मूत्र बडे कष्टसे उतरे, शुक्राश्मरी होय, शुक्रका स्राव होय ऐसे अनेक प्रकारके रोग होय।६ मूत्रका वेग रोकनेसे वस्ति ( मूत्राशय ) और शिश्न इंद्रियमें पीडा होय, मूत्र कष्टसे उतरे, मस्तकमें पीडा, पीडासे शरीर सीधा होय नही, पेटमें अफरा होय। ७ मलका वेग रोकनेसे गुडगुडाहट होय, शूल होय, गुदामें कतरनेकीसी पीडा होय, मल उतरे नही, डकार आवें अथवा मल मुखके द्वारा निकले। ८ अधोवायुके रोकनेसे अधोवायु, मल, मूत्र ये बन्द होय,पेट फूल जाय, अनायास श्रम और पेटमें वादीसे पीडा होय तथा अन्य वातकृत ( तोद शूलादिक ) पीडा होय।

९ आम अथवा पुरीष क्रमसे संचित होकर, विगुणवायुसे वारंवार विबद्ध होकर अपने मार्गसे अच्छी तरह प्रवृत्त होय नही इस विकारको आनाह कहते हैं।१०पक्वाशयमें आनाहरोग होनेसे आध्मान, वातरोधादि आलसरोगोक्त लक्षण होते हैं ११आमसे प्रगट आनाहरोगमें प्यास, पीनस, मस्तकमे दाह, आमाशयमें शूल, देहमे भारीपना, हृदयका जकडजाना, शूल,मूर्च्छा, डकार, कमर, पीठ, मल, मूत्र इनका रुकना,शूल, मूर्च्छा और विष्ठा मिली हुई रद्द और श्वास ये लक्षण होते हैं।

उरोग्रह और हृदयरोग।

**उरोग्रहस्तथा चैको हृद्रोगाः पञ्च कीर्तिताः। वातादयस्त्रयः प्रोक्ताश्चतुर्थः संनिपाततः॥ ४८॥ पञ्चमः कृमिसंजातः-**

अर्थ-छातीमें खींचनेके समान पीडा होवे, उसे उरोग्रह[1] कहते हैं उसे एक प्रकारका जानना। तथा हृदयरोग पांच प्रकारका है, जैसे-१ वातहृद्रोग[2] २ पित्तहृद्रोग[3] ३ कफहृद्रोग ४ संनिपातज हृद्रोग तथा ५ कृमिरोगजन्य[3] हृद्रोग इस प्रकार हृद्रोग पांच प्रकारका है॥ ४८॥

उदर रोग।

**-तथाष्टावुदराणि च। वातात् पित्तात् कफात् त्रीणि त्रिदोषेभ्यो जलादपि॥ ४९॥ प्लीह्नः क्षताद् बद्धगुदादष्टमं परिकीर्तितम्।**

अर्थ-उदर[7]रोग आठ प्रकारका है-१वातोदर, २ पित्तोदर, ३ कफोदर, ४त्रिदोषोदर,

---

१ उरोग्रह यह हृद्रोगका एक भेद है।इसका विशेष लक्षण यह है कि रक्त, मांस,प्लीहा और यकृत् इनकी उरोग्रह होते समय ही वृद्धि होती है ऐसा जानना और वातादिदोष कुपित होकर रसधातु दूषित करके हृदयमे जाकर हृदयको पीडा करे। २ वातज हृदय रोगमें हृदय ऐंचने सरीखा, सुईसे टोंचने सरीखा, फोडने सरीखा, दो टुकडा करनेके समान,मथनेके समान, कुल्हाडीसे फाडनेके समान पीडा होती है। ३ पित्तके हृदयरोगमें प्यास, किंचित् दाह, मोह और हृदयसे धुआं निकलतासा मालूम होय, मूर्च्छा, पसीना और मुखका सूखना ये लक्षण होते है। ४ कफके हृदयरोगमें भारीपना, कफका गिरना, अरुचि, हृदय जकड जाय, मंदाग्नि, मुखमे मिठास ये लक्षण होते है।५जिसमें तीनो दोषोंके लक्षण मिलते हों उसे त्रिदोषका हृद्रोग जानना। इसमें कुछ भी अपथ्य होनेसे गांठ उत्पन्न होती है, उस गाँठसे कृमि पैदा होते हैं ऐसा चरकमें लिखा है। ६ तीव्र पीडा करके तथा नोचनेकीसी पीडा करके तथा खुजली करके युक्त ऐसा हृद्रोग कृमिजन्य जानना,उत्क्लेद ( ओकारी आनेके समान मालूम हो ), थूकना, तोंद ( सुई चुभानेकीसी पीडा ), शूल, हृल्लास, अंधेरा आवे, अरुचि, नेत्र काले पड जायॅ और मुखशोष यह लक्षण कृमिज हृदयरोगमे होते है। ७ अफरा, चलनेकी शक्तिका नाश, दुर्बलता, मन्दाग्नि, सूजन, अंगग्लानि, वायुका तथा मलका रुकना, दाह, तन्द्रा ये लक्षण सब उदररोगमे होते हैं। वात आदि भेदसे उदररोगमें आठ प्रकारके लक्षण, जैसे—( १ ) वातोदरमें हाथ, पैर, नाभि और कूख इनमें सूजन होय, संधियोका टूटना तथा कूख, पसवाडे, पेट, कमर इनमें पीडा, सूखी खांसी, अंगोका टूटना, कमरसे नीचेके भागमे भारीपना, मलका संग्रह होना, त्वचा, नख नेत्रादिका काला, लाल होना, पेट अकस्मात् ( निमित्तके विना ) वडा होजाय, छोटी सुई चुभानेकीसी तथा नोचनेकीसी पीडा होय, पेटमे चारो तरफ बारीक काली शिरा ( नाडियो ) से व्याप्त होय,चुटकी मारनेसे फुलीपखालके समान शब्द होय, उदरमे वायु-

५ जलोदर, ६ प्लीहोदर, ७ क्षतोदर, ८ बद्धगुदोदर, इस प्रकार आठ प्रकारके उद-रोग जानने ॥ ४९ ॥

---

-चारों तरफ डोलकर शूल करता तथा गूंजता है। (२) पित्तके उदररोगमें ज्वर, मूर्च्छा, दाह, प्यास, मुखमें कडुआसा, भ्रम, अतिसार, त्वचा, मुख, नेत्र इनमें पीलापना, पेट हरा होय, पीली ताँबेके रंगकी नाडियोंसे उदर व्याप्त हो, पसीना आवे, गरमीसे सब देहमें दाह होय, आंतोंसे धुऑसा निकलता दीखे, हाथके स्पर्श करनेसे नरम मालूम हो, शीघ्र पाक होय, अर्थात् जलोदरत्वको प्राप्त होय और उसमें घोर पीडा होय। (३) कफके उदररोगमें हाथ, पैर आदि अङ्गोंमें शून्यता हो और जकड जाय, सूजन होय, अङ्ग भारी हो जाय, निद्रा आवे, वमन होयगी ऐसा मालूम हो, अरुचि होय खांसी होय, त्वचा, नख, नेत्रादिक सफेद हो, पेट निश्चल, चिकना, सफेद, नाडियोंसे व्याप्त हो, इसकी वृद्धि बहुत कालमें होय, पेट करडा और शीतल मालूम होय, तथा भारी और स्थिर होय। (४) खोटे आचरणवाली स्त्री जिस पुरुषको नख, केश (वाल) मल,मूत्र और आर्तव (रजोदर्शका रुधिर) मिला अन्न पान देय,अथवा जिसका शत्रु विष देवे, अथवा दुष्टांबु (जहर मिलाई मछली तिनका पित्ता आदि औटाहुआ ऐसा जल) और दूषी विष मन्दविष इनके सेवन करनेसे रुधिर और वातादिक दोष शीघ्र कुपित होकर अत्यन्त भयंकर त्रिदोषात्मक उदररोग उत्पन्न करते है। वे शीत-कालमें अथवा पवन चलते समय, अथवा जिस दिन वर्षाका झड लगे उस दिन विशेष करके कोपको प्राप्त होते हैं। और दाह होय, वह रोगी निरन्तर विषके संयोगसे मूर्च्छित होय, देहका पीलावर्ण तथा कृश होय और परिश्रम करनेसे शोष होय, इसी सन्निपातोदरको दूष्योदर भी कहते हैं। (५) जिसने स्नेह घृत तैलादि पान किया हो, अथवा अनुवासन वस्ति की हो, वमन किया हो, अथवा दस्त किये हो, या निरूह वस्ति की हो, ऐसा पुरुष शीतल जल पीवे तब उसकी जल बहनेवाली नसोंके मार्ग तत्काल दुष्ट होते है। वे उदक बहनेवाले स्रोत (मार्ग) स्नेहसे उपलिप्त (चिकने) होनेसे उदररोगको उत्पन्न करते हैं, वह जलोदर होता है, उसमें चिकनापन दीखे, ऊंचा होय, नाभिके पास बहुत ऊंचा होय,चारो ओर तनासा मालूम होय, पानीकी पोट भरीसी होय,जैसे पानीसे भरी पखालमें जल हिलता है उसी प्रकार हिले,गुडगुड शब्द करे, कांपे, इसको जलोदर अर्थात् जलन्धर रोग कहते हैं। (६) विदाही (वंशकरीरादि) अर्थात् दाह करनेवाली और अभिष्यंदि (दध्यादि) अर्थात् स्रोत रोकनेवाले ऐसे अन्न निरन्तर सेवन करनेवाले मनुष्यके अत्यन्त दुष्ट भया जो रुधिर और कफ (छिद्र) बढकर प्लीह (ताप-तिल्ली) को बढाते है। इस उदरको प्लीहोत्थ उदर कहते है। यह बाईं तरफ बढ़ता है इस अवस्थामें रोगी बहुत दुःख पाता है, देहमें मंद ज्वर होय, मंदाग्नि होय तथा कफपि-त्तोदरके लक्षण इसमें मिलते हो, बल क्षीण होय और अत्यन्त पीला वर्ण होजाय। (७) कांटा-धूल आदि अन्नके साथ मिलकर पेटमें चला जाय, अर्थात् पक्वाशयमे विलोम--

गुल्मरोग,

**गुल्मास्त्वष्टौ समाख्याता वातपित्तकफैस्त्रयः ॥९०॥ द्वन्द्वभेदात्त्रयः प्रोक्ताः सप्तमः सन्निपाततः।रक्तस्त्वष्टमकः ख्यातः-**

अर्थ-गुल्म[1] ( गोलेका ) रोग आठ प्रकारका है, जैसे-१ वातगोला, २ पित्तगोला, ३ कफगुल्म, ४ वातपित्तगुल्म, ५ पित्तकफगुल्म, ६ कफवातगुल्म, ७ सांनिपातगुल्म और ८ रक्तगुल्म,इस प्रकार आठ प्रकारका गुल्मरोग जानना ॥ ९० ॥

---

-(टेढातिरछा) चला जाय तब आंतोंको काटे और सीधा जाय तो नही काटे अथवा जम्भाई अति अशन करनेसे अर्थात् रोकनेसे आंत फट जाय। उन फटे आंतोसे गलित पानीके समान स्राव गुदाके मार्ग होकर झरे, नाभिके नीचेका भाग बढे, नोंचनेकीसी तथा भेद ( चीरने ) कीसी पीडासे अत्यन्त व्यथित हो, इस क्षतोदरको ग्रन्थांतरमें परिस्रावि उदर कहते है और कही छिद्रोदर कहते हैं ऐसा यह क्षतोदर है। ( ८ ) जिस पुरुषकी आंत उपलेपी अर्थात् गाढे अन्न ( शाकादिक ) करके अथवा वाल तथा बारीक पत्थरके टुकड़े करके बद्ध होजाय उस पुरुषका दोषयुक्त मल धीरे धीरे आंतडीकी नलीमें होकर जैसे बुहारीसे झारा तृण धूर आदि क्रमसे बैठता है उसी प्रकार यही बढता है। और वह मल बड़े कष्टसे गुदाद्वारा थोडा थोडा निकलता है।जब मलका निकसना बंद होजाय तब मल दोषोकरके गुदासे ऊपर आता है, इससे उदर बढता है, अर्थात् हृदय और नाभिके मध्य अन्नपाकस्थानकी वृद्धि हो इससे इस उदरको बद्धगुदोदर कहते है, अथवा गुदाके ऊपर आंतोंको बद्ध होनेसे बद्धगुद कहते हैं।

१ जो गुल्म कभी नाभि, कभी वस्ति, कभी पसवाड़ेमे चला जाय,तथा लंबा,कभी मोटा गोल अथवा छोटा होय तथा उसमें कभी थोडी कभी बहुत पीडा होय, तोद भेद ( सुई चुभानेकीसी पीडा ) होय, अथवा अनेक प्रकारकी पीडा होय, मलकी और अधोवायुकी अच्छी रीतिसे प्रवृत्ति होय नही, गला और मुख सूखे, शरीरका वर्ण नीला अथवा लाल होय, शीतज्वर, हृदय, कूख, पसवाड़े, कन्धा और मस्तक इनमें पीडा होय। गुल्मरोगके आठ भेद, जैसे-( १ ) जो गोला जीर्ण होनेपर अधिक कोप करे और भोजन करनेके पिछाडी नरम हो जाय, वह गोला वादीसे प्रगट होता है। उसमें रूखा, कषैला, कडुआ, तीखा पदार्थ खानेसे सुख नही होता। ( २ ) ज्वर, प्यास, मुख और अङ्गोंमें ललाई, अन्न पचनेके समय अत्यन्त शूल होय, पसीना आवे, जलन होय, फोडाके समान स्पर्श न सहा जाय, ये पित्तगुल्मके लक्षण है। ( ३ ) देहका गीलापना, शीतज्वर, शरीरकी ग्लानि, सूखी रद्द ( उबाकी ) खांसी, अरुचि, भारीपन, शीतका लगना, थोडी पीडा होय, गुल्म ( गोल ) कठिन होय ऊँचा होय, ये सब कफात्मक गुल्मके लक्षण हैं। ( ४ ) जिस गुल्ममें वात और पित्त इन दोनो दोषोंके लक्षण मिलते हो उसको वातपित्तका गुल्म जानना। ( ५ ) जिस गुल्ममें पित्त और कफ इन दोनो दोषोंके लक्षण मिलते हो उसको कफपित्तका गुल्म जानना। ( ७ ) भारी पीडा करनेवाला, दाह करके व्याप्त, पत्थरके समान कठिन तथा ऊँचा और शीघ्र दाह करके भयंकर, मन, शरीर, अग्नि और बल इनका नाश करनेवाला ऐसे त्रिदोषज ( सन्निपात ) गुल्मको असाध्य जानना। ( ८ ) नई प्रसूता-

मूत्राघातरोग ।

–मूत्राघातास्त्रयोदश ॥ ५१ ॥ वातकुण्डलिका पूर्वं वाताष्ठीला ततः परम् । वातवस्तिस्तृतीयः स्यान्मूत्रातीतश्चतुर्थकः ॥ ५२ ॥ पञ्चमं मूत्रजठरं षष्ठो मूत्रक्षयः स्मृतः । मूत्रोत्सर्गः सप्तमः स्यान्मूत्रग्रन्थिस्तथाष्टमः ॥ ५३ ॥ मूत्रशुक्रं तु नवमं विड्घातो दशमः स्मृतः । मूत्रसादश्चोष्णवातो वस्तिकुण्डलिका तथा ॥ ५४ ॥ त्रयोऽप्येते मूत्रघाताः पृथग्घोराः प्रकीर्तिताः ।

अर्थ–मूत्राघातरोग[1] १३ प्रकारका है । जैसे १ वातकुंडलिका २ वाताष्ठीला ३ वातवस्ति ४ मूत्रातीत ५ मूत्रजठर ६ मूत्रक्षय ७ मूत्रोत्सर्ग ८ मूत्रग्रंथी ९ मूत्रशुक्र

---

–हुई स्त्रीके अपथ्य सेवन करनेसे अथवा अपक्क गर्भपात होनेसे, अथवा ऋतुकालके समय अपथ्य भोजन करनेसे वायु कुपित होकर उस स्त्रीके रुधिर (जो ऋतु समय निकले) को लेकर गुल्म करता है वह गुल्म पीडायुक्त व दाहयुक्त होता है । यह गुल्म बहुत देरमें गोल गोल हिले, अवयव कहिये हाथ पैरके साथ नही हिले, शूलयुक्त होय, गर्भके समान सब लक्षण मिलें ( अर्थात् मुखसे पानी छूटे, मुख पीला पडजाय, स्तनका अग्रभाग काला हो जाय और दोहदादिलक्षण सब मिलें ये लक्षण व्याधिके प्रभावसे होते है । ) यह रक्तजगुल्म स्त्रियोंके होता है दश महीना व्यतीत हो जाय तब इस रक्तगुल्मकी चिकित्सा करनी चाहिये ।

१ मूत्रके वेग रोकनेसे कुपित भये दोषोंसे वातकुण्डलिकादिक तेरह प्रकारके मूत्राघात रोग होते है । जैसे–( १ ) रूखे पदार्थ खानेसे अथवा मल मूत्रादिवेगोंके धारण करनेसे कुपित हुई जो वायु सो वस्ति ( मूत्राशय ) में प्राप्त हो पीडा करे और मूत्रसे मिलकर मूत्रके वेगको विगुण ( उलटा ) करके वहां आप कुण्डलके आकार ( गोलाकार ) मूत्राशयमें विचरे तब मनुष्य उस वातसे पीडित हो मूत्रको वारम्वार थोडा २ पीडाके साथ त्यागता है । इस दारुण व्याधिको वातकुण्डलिका कहते है । ( २ ) वस्ति और गुदा इनमे वह वायु अफरा करे तथा गुदाकी वायुको रोककर चंचल और उन्नत ( ऊंची ) ऐसी अष्ठीला ( पत्थरकी पिण्डीके सदृश ) को प्रगट करे, यह मूत्रके मार्गको रोकनेवाली और भयंकर पीडा करनेवाली है । इसको वाताष्ठीला कहते है । ( ३ ) जो मनुष्य अड ( जिद्द ) से मूत्रबाधाको रोकता है उसके वस्ति ( मूत्राशय ) के मुखको वायु बन्द कर देता है तब उसका मूत्र बन्द हो जाय और वह वायु वस्तिमें और कूखमें पीडा करे । इस व्याधिको वातवस्ति कहते है, यह बडे कष्टसे साध्य होती है । (४) मूत्रको बहुत देर रोकनेसे पीछे वह जल्दी नही उतरे और मूतते समय धीरे धीरे उतरे, इस रोगको मूत्रातीत कहते है । ( ५ ) मूत्रके वेगको रोकनेसे मूत्रवेगधारणजनित और उदावर्तका कारण–

१० विड्घात ११ मूत्रसाद १२ उष्णवात १३ वस्तिकुंडलिका ऐसे तेरह प्रकारके मूत्राघात जानने । तिनमें मूत्रसाद उष्णवात वस्ति ये तीन बडेभारी प्राण संकट करनेवाले हैं । पीडा थोडी होकर मूत्रका रुकना अधिक होवे, उस व्याधिको मूत्राघात कहते हैं । और मूत्रकृच्छ्रमें मूत्रके रुकनेसे या अल्प मूत्र होनेसे अत्यंत पीडा होती है, इससे मूत्राघात और मूत्रकृच्छ्रमें भेद है ॥ ५१-५४ ॥

मूत्रकृच्छ्र ।

## मूत्रकृच्छ्राणि चाष्टौ स्युर्वातपित्तकफास्त्रिधा ॥५५॥ संनि-

---

-भूत ऐसा अपानवायु कुपित होनेसे पेट बहुत फूलजाय और नाभिके नीचे तीव्र वेदना संयुक्त अफरा करे, अधोवस्तिका रोध करनेवाला ऐसे इस रोगको मूत्रजठर कहते है । ( ६ ) रूखा अथवा श्रांत ( थक गया ) देह जिसका ऐसे पुरुषके वस्तिमूत्राशयमें रहे जो पित्त और वायु सो मूत्रका क्षय करे, पीडा तथा दाह होता है उसको मूत्रक्षय कहते है । ( ७ ) प्रवृत्त भया मूत्र वस्तीमें अथवा शिश्न ( लिङ्ग ) मे अथवा शिश्नके अग्रभागमे अटक जाय और बलसे मूत्रको करे भी तो वादीसे वस्तिको फाडकर जो मूत्र निकले वह मन्द मन्द थोडी पीडाके साथ अथवा पीडा रहित रुधिर सहित निकले ऐसी विगुण वायुसे उत्पन्न हुई इस व्याधिको मूत्रोत्सर्ग कहते हैं । ( ८ ) वस्तिके मुखमे गोल स्थिर छोटीसी गांठ अकस्मात् होय, उसमें पथरीके समान पीडा होय इस रोगको मूत्रग्रंथि कहते हैं । ( ९ ) मूत्रबाधाको रोकके जो पुरुष स्त्रीसङ्ग करे उसका वायु शुक्रको उडाय स्थानमें भ्रष्ट करे, तब मूतनेके पहिले अथवा मूतनेके पीछे शुक्र गिरे और उसका वर्ण राख मिले पानीके समान होय, उसको मूत्रशुक्र कहते हैं । ( १० ) रूक्ष और दुर्बल पुरुषके शकृत् ( मल ) जब वायु करके उदावर्तको प्राप्त हो तब वह मल मूत्रके मार्गमें आवे, उस समय मनुष्य मूतने लगे तो बडे कष्टसे मूते और उसके मूत्रमें विष्ठाकीसी दुर्गंध आवे, उसको विड्घात कहते हैं । ( ११ ) पित्त अथवा कफ वा दोनो वायुकरके बिगडे हुए होय तब मनुष्य पीला, लाल, सफेद, गाढा ऐसा कष्टसे मूते और मूतनेके समय दाह होय, जब वह मूत्र पृथ्वीमे सूख जाय तब गोरोचन, शंखका चूर्ण ऐसा वर्ण होय, अथवा सर्व वर्णका होय इस रोगको मूत्रसाद कहते हैं । ( १२ ) व्यायाम, दंड, कसरत, अतिमार्गका चलना और धूपमें डोलना इन कारणोंसे कुपित भया जो पित्त सो वस्तिमें प्राप्त होय वायुसे मिल वस्तिमे अंडकोश और गुदा इनमें दाह करे और हल्दीके समान अथवा कुछ रक्तसे युक्त वा लाल ऐसा मूत्र बारम्बार कष्टसे होय, उसको उष्णवात रोग कहते है । ( १३ ) जलदी जलदी चलनेसे, लंघन करनेसे, परिश्रमसे, लकडी आदिकी चोट लगनेसे, पीडासे, वस्ति अपने स्थानको छोड ऊपर जाय, मोटी होकर गर्भके समान कठिन रहे, उससे शूल,कम्प और दाह ये होंय, मूतकी एक एक बून्द गिरे, यदि वस्ति जोरसे पीडित होय तो बडी धार पडे, वस्तिमें सूजन होय,पेटमें पीडा होय, इस रोगको वस्तिकुंडलिका कहते है ।

**पाताच्चतुर्थं स्याच्छुक्रकृच्छ्रं तु पञ्चमम् । विट्कृच्छ्रं षष्ठमाख्यातं धातुकृच्छ्रं च सप्तमम्॥५६॥अष्टमं चाश्मरीकृच्छ्रं-**

अर्थ—मूत्रकृच्छ्र आठ प्रकारका है। जैसे १ वातमूत्रकृच्छ्र २ पित्तमूत्रकृच्छ्र ३ कफमूत्रकृच्छ्र ४ संनिपातमूत्रकृच्छ्र ५ शुक्रमूत्रकृच्छ्र ६ विण्मूत्रकृच्छ्र ७ धातुकृच्छ्र और ८ अश्मरीकृच्छ्र। इस प्रकार मूत्रकृच्छ्र आठ प्रकारका है। मूत्रकृच्छ्र कहिये वातादि दोष अपने २ कारण करके पृथक् २ अथवा मिलकर कुपित हो मूत्राशयमें प्रवेश कर मूत्रमार्गको पीडित करे। जिस समय यह मनुष्य अत्यन्त क्लेश करके मूते उस रोगको मूत्रकृच्छ्र कहते हैं॥ ५५ ॥ ५६ ॥

### अश्मरीरोग।

**-चतुर्धा चाश्मरी मता। वातात् पित्तात् कफात् शुक्रात्-**

अर्थ—अश्मरी (पथरी) रोग चार प्रकारका है। जैसे १ वाताश्मरी २ पित्ताश्मरी ३ कफाश्मरी और ४ शुक्राश्मरी, इस प्रकार चार प्रकारकी पथरी जाननी। वायु

---

१ वातके मूत्रकृच्छ्र वंक्षण ( जांघ और ऊरु इनकी संधि ) मूत्राशय और इन्द्रियमे पीडा होय और मत्र वारंवार थोडा २ उतरे। २ पत्तिक मूत्रकृच्छ्रमे पीला, कुछ लाल, पीडायुक्त अग्निके समान, वारंवार कष्टसे मूत्र उतरे। ३ कफके मूत्रकृच्छ्रसे लिंग और मूत्राशय मार्गमें पीडा तथा सूजन होय और मूत्र चिकना होय। ४ सन्निपातके मूत्रकृच्छ्रमें सर्व लक्षण होते हैं यह मूत्रकृच्छ्र कष्टसाध्य है। ५ दोषोंके योगमें शुक्र ( वीर्य ) दुष्ट होकर मूत्रमार्गमें गमन करे, तब उस मनुष्यके मूत्राशय और लिंग इनमें शूल होय और मूतते समय मूत्रके सङ्ग वीर्य पतन होय। ६ मल ( विष्टा ) के अवरोध होनेसे वायु विगुण ( उलटा ) होकर अफरा, वात, शूल और मूत्रनाश करे तब मूत्रकृच्छ्र प्रगट होय। ७ मूत्र वहनेवाले स्रोत ( मार्ग ) शल्य ( तीर आदिसे ) विध जाय अथवा पीडित होय तो उस वातसे भयंकर मूत्रकृच्छ्र होता है, इसके लक्षण वातमूत्रकृच्छ्रके समान कहते हैं। ८ पथरीके निदानसे जो मूत्रकृच्छ्र होय उसको पथरीका मूत्रकृच्छ्र कहते हैं। ९ वायुकी पथरीसे रोगी अत्यन्त पीडा करके व्याप्त होय, दांतोंको चबावे, कांपे, लिंगको हाथसे रगडे, नाभिको रगडे और रातदिन दुःखसे रोवे और मूत्र आनेके समय पीडा होनेके कारण अधोवायुका परित्याग करे, मूत्र वारंवार टपक टपकके गिरे, उसकी पथरीका रंग नीला और रूखा होय उसके ऊपर कांटे होय। १० पित्तकी पथरीसे रोगीके वस्तिमे दाह होय और खारसे जैसा दाह होय ऐसी वेदना होय, वस्तिके ऊपर हाथ धरनेसे गरम मालूम होय और भिलावेंकी मीगीके समान होय, लाल, पीली, काली होय। ११ कफकी पथरीसे वस्तिमें नोचनेकीसी पीडा होय, शीतलपन होय और पथरी बडी मुर्गीके अण्डेके समान, स्वच्छ और मद्य ( दारू ) के रंगकीसी अर्थात् कुछ पीलीसी होय। यह कफकी पथरी बहुधा बालकोंके ही होती है। १२ शुक्राश्मरी (शुक्र) वीर्यके रोकनेसे होती है। यह पथरी बडे मनुष्योंके ही होती है। मैथुन करनेके समय अपने स्थानसे वीर्य चलायमान हो गया हो उस समय मैथुन न करे तब शुक्र ( वीर्य ) बाहर नही निकले भीतर ही रहे, तब वायु उस-

कुपित हो वस्तिमें जायके मूत्र, शुक्र, धातु, पित्त, कफ इनको सुखायके उसीके मुखमें क्रम करके पाषाणके गोलेके समान गांठ उत्पन्न करे इस रोगको पथरी कहते हैं । जैसे गौके पित्तमें क्रमसे गोरोचन होता है उसी प्रकार पथरी होती है, इसमें वस्तिका फूलना तथा वस्ति, शिश्न ( लिंग ) और अण्डकोश इनमें पीडा तथा मूत्रकृच्छ्र, अरुचि इत्यादिक उपद्रव होते हैं । जिस पथरीका पाक होकर बालूके समान मूत्रमार्गमें होकर गिरे उसको शर्कराश्मरी कहते हैं ।

प्रमेहरोग ।

**—तथा मेहाश्च विंशतिः॥५७॥ इक्षुमेहः सुरामेहः पिष्टमेहश्च सान्द्रकः । शुक्रमेहोदकाख्यौ च लालामेहश्च सीतकः ॥ ५८ ॥ सिकताह्वः शनैर्मेहो दशैते कफसंभवाः । मंजिष्ठाख्यो हरिद्राभो नीलमेहश्च रक्तकः ॥ ५९ ॥ कृष्णमेहः क्षारमेहः षडेते पित्तसंभवाः । हस्तिमेहो वसामेहो मज्जामेहो मधुप्रभः॥६०॥चत्वारो वातजा मेहा इति मेहाश्च विंशतिः ।**

अर्थ—प्रमेहरोग बीस प्रकारका है, जैसे—१ इक्षुमेह, २ सुरामेह, ३ पिष्टमेह, ४ सान्द्रमेह, ५ शुक्रमेह, ६ उदकमेह, ७ लालामेह ८ शीतमेह ९ सिकतामेह और १० शनैर्मेह

---

—शुक्रको उठाकर सुखा देता है उसीको शुक्रजाअश्मरी कहते है । इस करके अंडकोषोंमें सूजन, बलीमें पीडा और मूत्रकृच्छ्रता होती है । इस शुक्राश्मरीकी आदिमें लिग और अंडकोष,पेड़ू इनमें पीडा होती है,वीर्यके नाश होनेके कारण पथरीकी नाई शर्करा उत्पन्न होती है ।

१ इक्षुप्रमेहसे ईखके रसके समान अत्यन्त मीठा मूत्र होय । २ सुराप्रमेहसे दारूके समान ऊपर निर्मल और नीचे गाढा मूते । ३ पिष्टप्रमेहसे पिसे चावलोंके पानीके समान सफेद और बहुतसा मूते तथा मूतते समय रोमांच हों । ४ सांद्रप्रमेहसे रात्रिमें पात्रमें धरनेसें जैसा मूत्र होवे ऐसा मूत्र होय । ५ शुक्रप्रमेहसे शुक्र ( वीर्य ) के समान अथवा शुक्र मिला होय । ६ उदक प्रमेह करके स्वच्छ, बहुत सफेद, शीतल, बन्धरहित, पानीके समान कुछ गाढा और चिकना मूत्र होता है । ७ लालाप्रमेहसे लारके समान तारयुक्त और चिकना मूत्र होता है । ८ शीतल प्रमेहसे मधुर तथा अत्यन्त शीतल ऐसा वारंवार बहुत मूते । ९ सिकताप्रमेहसे मूत्रके कण और वालूरेतके समान मलके रवा गिरें । १० शनैर्मेहसे धीरे धीरे और मन्द मन्द मूते ।

ये दश प्रमेह कफजन्य हैं अर्थात् कफसे प्रकट होते हैं। १ मंजिष्ठमेह २ हरिद्रामेह ३ नीलमेह ४ रक्तमेह ५ कृष्णमेह और ६ क्षारमेह ये छः प्रमेह पित्तजन्य हैं। १ हस्तिमेह २ वसामेह ३ मज्जामेह ४ मधुमेह। ये चार प्रकारके प्रमेह वातजन्य हैं अर्थात् वातसे प्रगट हैं। इस प्रकार सब मिलाकर बीस प्रकारके प्रमेह जानना॥५७-६०॥

सोमरोग।

**सोमरोगस्तथा चैकः-**

अर्थ-सब देहमें उदक क्षोभित होकर योनिमार्गसे सफेद रंगका गिरता है उसको सोमरोग कहते हैं वह एक ही प्रकारका है।

प्रमेहपिटिका।

**-प्रमेहपिटिका दश ॥६१॥ शराविका कच्छपिका पुत्रिणी विनताऽलजी।मसूरिका सर्षपिका जालिनी च विदारिका। ॥६२॥ विद्रधिश्च दशैताः स्युः पिटिका मेहसंभवाः।**

अर्थ-प्रमेहकी पिटिका (फुन्सी) दश प्रकारकी हैं, जैसे १ शराविका[11], २ कच्छपिका[12], ३ पुत्रिणी[13], ४ विनता[14], ५ अलजी[15], ६ मसूरिका[16], ७ सर्षपिका[17], ८ जालिनी[18], ९ विदारिका[19] और १० विद्रधिका[20]। इस प्रकार दश प्रकारकी पिटिका प्रमेहकी उपेक्षा करनेसे होती हैं। यह सन्धिमें मर्मस्थलमें तथा जिस जगह मांस विशेष होता है उस जगह तथा देहमें मेद दुष्ट होनेसे उत्पन्न होती हैं॥ ६१॥६२॥

---

१ मञ्जिष्ठप्रमेहसे आम दुर्गंध और मँजीठके समान मूते। २ हारिद्रप्रमेहसे तीक्ष्ण, हल्दीके समान और दाहयुक्त मूते। ३ नीलप्रमेहसे नील रंगका अर्थात् पपैया पक्षीके पंखके सदृश मूते। ४ रक्तप्रमेहसे दुर्गन्धयुक्त गरम खारी और रुधिरके समान लाल मूत्र करै। ५ कृष्ण (काले) प्रमेहसे स्याहीके समान काला मूते। ६ क्षारप्रमेहसे खारी जलके समान गन्ध वर्ण रस और स्पर्श ऐसा मूत्र होता है। ७ हस्तिप्रमेहसे मस्तहाथीके समान निरंतर वेगरहित जिसमें तार निकले और ठहरठहरके मूते। ८ वसाप्रमेहसे वसा (चर्बी) युक्त अथवा वसाके समान मूते। ९ मज्जा प्रमेहसे मज्जाके समान अथवा मज्जा मिला वारंवार मूते। १० मधुप्रमेहसे कषैला, मीठा और चिकना ऐसा मूते। ११ शराविका पिटिका ऊपरके भागमें ऊँची और मध्यमें बैठीसी होय, जैसे कि मिट्टीका शराव होता है। १२ कच्छपिका पिटिका कछुआकी पीठके समान कुछ दाहयुक्त होय है। १३ पुत्रिणी पिटिका यह बीचमें बडी फुन्सी होय उसके चारों ओर छोटी छोटी फुन्सियां और होयँ उसको पुत्रिणी कहते है। १४ विनता फुन्सी पीठमें अथवा पेटमें होती है। इसकी पीडा बहुत होय, ठंडी होय तथा बडी और नीले रंगकी होती है। १५ अलजी पिटिका लाल, काली, बारीक फोडों करके व्याप्त और भयंकर होती है। १६ मसूरिका पिटिका मसूरकी दालके समान बडी होती है। १७ सर्षपिका पिटिका सरसोंके समान बडी होती है। १८ जालिनी पिटिका तीव्र दाहकरके संयुक्त और मांसके जालसे व्याप्त होती है। १९ विदारिका पिटिका विदारीकन्दके समान गोल और करडी होती है। २० विद्रधिका पिटिका विद्रधिके लक्षण करके युक्त होती हैं।

मेदरोग ।

## मेदोदोषस्तथा चैकः-

अर्थ-मेदरोग एक प्रकारका है । उसके लक्षण ये हैं कि, कफको उत्पन्न करनेवाला आहार, विहार, स्नेहान्न कहिये घृतपक्व गोधूमपिष्टादि लड्डू, शकरपारे इत्यादिकोंके सेवन करनेसे मेद बढता है । उससे अन्यधातु, अस्थ्यादि शुक्रान्त, उनका पोषण नही होता है किन्तु मेद बढता है, जिससे मनुष्य सर्व कर्ममें अशक्त हो जाता है । और अल्पश्वास, तृषा, मोह, निद्रा, श्वासावरोध, सोतेमें अत्यन्त ठोरना, शरीरमें ग्लानि, छीक, पसीनोंकी दुर्गंधि, अल्पप्राण और अल्पमैथुन इत्यादिक उपद्रव होते हैं । मेद सर्व प्राणीमात्रोंके प्रायः करके रहती है अतएव जिस मनुष्यके मेद रोग होता है उसके पेटकी बहुधा अधिक वृद्धि होती है, और उस मेद करके मार्ग रुद्ध होने पर पवन कोष्ठाग्निमें विशेष करके संचार करने लगता है और अग्निको प्रदीप्त करके आहारको शोषण करलेता है इसीसे भोजन किया हुआ पदार्थ तत्काल जीर्ण हो, फिर दूसरे भोनकी इच्छा होती है । कदाचित् भोजनका समय टल जावे तो घोर विकार प्रमेह, पीडिका, ज्वर, भगंदर, विद्रधि और वातरोग इनमेंसे कोईसा एक रोग होता है । और विशेषकर अग्नि और वायु ये उपद्रवकारी होनेसे मेदोरोगीके शरीरको जलाते हैं । इस विषयमें दृष्टांत है-जैसे वनसम्बन्धी आग्नि वायुकी सहायतासे वनको जलाता है उसी प्रकार जलावे तथा वह मेद अत्यन्त कुपित होनेसे एकाकी वातादिदोषकुपित हो घोर उपद्रव करके मनुष्यको शीघ्र मारते हैं । उस मेदके योगसे शरीर अत्यंत मोटा होनेसे मनुष्यका उदर, स्तन, और कूले ये चलते समय थलर २ हिलते हैं तथा विसर्प, भगंदर, ज्वर, अतिसार, प्रमेह, बवासीर, श्लीपद इत्यादि उपद्रव होते हैं । इस प्रकार मेदरोगके लक्षण जानने ॥ ६१॥६२ ॥

शोथरोग ।

## -शोथरोगा नव स्मृताः ॥६३॥ दोषैः पृथग्द्वयैः सर्वैरभिघाताद्विषादपि ॥

अर्थ-शोथरोग नौ प्रकारका है-१ वात[1]शोथ, २ पित्तशोथ[2], ३ कफ[3]शोथ, ४ वात[4]पित्त-

---

१ वादीसे सूजन चंचल, त्वचा पतली होजाय । कठोर हो, लाल काली, तथा त्वचा शून्य पड जाय, भिन्न भिन्न वेदना होय, अथवा रोमांच और पीडा हो । कदाचित् निमित्तके विना शान्त हो जाय, उस सूजनके दाबनेसे तत्क्षण ऊपरको उठ आवे, दिनमें जोर बहुत करे । २ पित्तकी सूजन नरम २ कुछ दुर्गन्ध युक्त काली पीली और लाल होय । ३ कफकी सूजन भारी स्थिर और पीली होती है । इसके योगसे अन्नद्वेष, लारका गिरना, निद्रा, वमन, मंदाग्नि ये लक्षण होंय, तथा इस सूजनकी उत्पत्ति और नाश बहुत कालमें होय । इसको दवानेसे ऊपरको नही उठे, रात्रिमें इसकी प्रवलता होती है । ४ वात, पित्त, इन दोनोंके लक्षण जब सूजनमें हो उसको वातपित्तकी सूजन जानना ।

शोथ, ५ पित्तकफशोथ, ६ कफवातशोथ, ७ त्रिदोषकी शोथ, ८ अभिघातशोथ और ९ विषशोथ। इस प्रकार शोथ रोग नौ प्रकारका है। इसको लोकमें सूजन कहते हैं। स्वकारणसे वायु कुपित होकर उसी प्रकार दुष्ट हुआ रक्त पित्त और कफ इनको बाहरकी शिराओंमें लायकर फिर वायु उस रक्तपित्त और कफकरके रुद्धगति हो त्वचा और मांस इनके आश्रित जो सूजन है उसको अकस्मात् उत्पन्न करे उस रोगको सूजन कहते हैं ॥ ६३ ॥

### वृद्धिरोग।

**वृद्धयः सप्त गदिता वातात् पित्तात् कफेन च ॥ ६४ ॥**
**रक्तेन मेदसा मूत्रादन्त्रवृद्धिश्च सप्तमी।**

अर्थ–वृषण जिससे बडे होवें उस रोगको वृद्धि कहते हैं। वह रोग सात प्रकारका है, जैसे–१ वातवृद्धि, २ पित्तवृद्धि, ३ कफवृद्धि, ४ रक्तवृद्धि, ५ मेदवृद्धि, ६ मूत्र-

---

१ पित्त और कफ इनके लक्षण जिस सूजनमें मिलते हो उसको पित्तकफकी सूजन जानना। २ कफ और वात इन दोनोंके लक्षण जिस सूजनमें मिलें उसको कफ और वातकी सूजन जानना। ३ सन्निपातके सूजनमें वात पित्त और कफ इन तीनोंके भी लक्षण होते हैं। ४ अभिघातसूजन काष्ठादिककी चोट लगनेसे शस्त्रादिकसे छेदन होनेसे पत्थर आदिसे टूटनेसे, अथवा घावके होनेसे, लकडी आदिके प्रहारसे, शीतल पवन लगनेसे, समुद्रकी पवन लगनेसे, भिलावेका तेल लग जानेसे और कौंचकी फलीका स्पर्श होनेसे जो सूजन होय सो चारों तरफ फैल जाय। उसमें अत्यन्त दाह होय, उसका रंग लाल होय और विशेष करके इसमें पित्तके लक्षण होते है।५विषवाले प्राणियोंके अंगपर चलनेसे अथवा मूतनेसे, अथवा निर्विष ( विषरहितमनुष्यादिक ) प्राणीके दाढ, दांत, नखलगनेसे, अथवा सविष प्राणियोंके विष्ठा,मूत्र,शुक्र इनसे भरा,अथवा मलीन वस्त्र अंगमें लगनेसे,अथवा विषवृक्षकी हवाके लगनेसे,अथवा संयोगविष अंगमें लगनेसे जो सूजन उत्पन्न होय, सो विषज कहलाती है। वह सूजन नरम, चञ्चल, भीतर प्रवेश करनेवाली, जलदी प्रगट होनेवाली दाह और पीडा करनेवाली होती है।६ वातसे भरी मसक जैसी हाथके लगनेसे मालूम होय रूक्ष और विना कारण दुखने लगे उसे वातकी अंडवृद्धि जानना। ७ जिसमें पित्तके लक्षण मिलते हों उस अंडवृद्धिको पित्तकी अंडवृद्धि जानना। इससे अंड पके गूलरके समान होता है तथा दाह, गरमी और पाक होता है।८कफकी अंडवृद्धिमें अंड शीतल, भारी, चिकना तथा ( खुजलीयुक्त ) कठिन और थोडी पीडा युक्त होता है। काले फोडोंसे व्याप्त तथा जिसमें पित्तवृद्धिके लक्षण मिलते हो उस अंडवृद्धिको रक्तज अंडवृद्धि कहते है।१०मेदसे जो अंडवृद्धि होती है वह कफकी वृद्धिके समान मृदु,नरम तथा तालफलके समान अर्थात् पीले रंगकी होय।११मूत्रको रोकनेका जिसको अभ्यास होय उसको मूत्रवृद्धि रोग होय है, वह पुरुष जब चले तब पानीसे भरे पखालके समान डबकडबक–

वृद्धि होय उसके होनेसे भ्रम, ज्वर, पसीना, प्यास और मस्तपना ये लक्षण होंय, हाथ लगानेसे दूखे इसीसे नेत्र लाल होंय उसमें अत्यन्त दाह तथा पाक और ७ अन्त्रवृद्धि । इस प्रकार वृद्धिरोग सात प्रकारका है । वृद्धिरोग अर्थात् वायु अपने स्वकारण करके कुपित हो सूजन और शूलको करती नीचेके भागमें जायकर वंक्षण-द्वारा अंडकोशोंमें जायके वृषणवाहिनी नाडियोंको दूषितकर कफ जैसे वृषणकी गोलाके ऊपरकी त्वचाको बढाय देवे उसको वृद्धिरोग कहते हैं ॥ ६४ ॥

अण्डवृद्धिरोग ।

## अण्डवृद्धिस्तथा चैकः-

अर्थ-अण्डकोशकी वृद्धिको ( पोते छिटकना ) तथा कुरंड कहते हैं । यह एक प्रकारका है । इसके लक्षण बहुधा अन्त्रवृद्धिके समान होते हैं ॥

गण्डमाला, गलगण्ड और अपचीरोग ।

## -तथैका गण्डमालिका॥६५॥गण्डोऽपचीति चैका स्यात्-

अर्थ-गण्डमाला,[2] ( गलगंड[3] ) अपची[4] ये तीन रोग एक एक प्रकारके हैं इनके लक्षण नीचे लिखे हैं सो देखना ॥ ६५ ॥

---

-हिले तथा बजे और उसमें-पीडा थोडी हो, हाथके छूनेसे नरम होय, उसमें मूत्रकृच्छ्र-कीसी पीडा होय, फल और कोश दोनों इधर उधर चलायमान होंय ।

१ वातकोपकारक आहारके सेवनसे,शीतल जलमें प्रवेश करके स्नान करनेसे उपस्थित मूत्रादिकके वेगोंके धारण करनेसे, अप्राप्तवेग ( अर्थात् करनेकी इच्छा न होय उसको बल-पूर्वक करनेसे ) भारी बोझके उठानेसे, अतिमार्गके चलनेसे, अंगोंकी विषम चेष्टा ( अर्थात् टेढा तिरछा अंग करके गमनादिका करना ) बलवान्से वैर करना, कठिन धनुषका ऐंचना इत्यादि ऐसेही और कारणोंसे कुपितभई जो वायु सो छोटी आंतोंके अवयवोंके एक देश-को बिगाडकर अर्थात् उनका संकोच कर अपने रहनेके स्थानसे उसको नीचे लेजाय तब वंक्षण संधिमें स्थित होकर उस स्थानमें गांठके समान सूजनको प्रगट करे उसकी उपेक्षा करनेसे ( अर्थात् औषध न करनेसे ) तथा अंडकोशोंके दाबनेसे जो वायु ( को कों ) शब्द करे, तथा हाथके दाबनेसे वायु ऊपरको चढ जाय और छोडनेसे फिर नीचे उतरकर अंडोंको फुलाय दे यह रोग अंत्रवृद्धि कहलाता है । २ मेद और कफसे प्रगट भया कूख, कंधा, नाडके पिछाडी मन्या नाडीमें, गलेमें और वंक्षण ( जानुमेढ्रसंधि ) इन ठिकानोंमें छोटे बेरके बराबर, बडे बेरके समान,आमलेके समान ऐसी अनेक प्रकारकी गंड होती है, वे बहुत दिनमें हौले हौले पके, उनको गंडमाला कहते है । ३ मन्या नाडी, ठोडी इन ठिकानेपर अंडके बराबर ग्रन्थिरूप सूजन लंबायमान होती है और वह सूजन बडी छोटी भी रहती है, उसको गंड अथवा गलगंड कहते हैं,वह गलगंड रोग गलेमें जो होता है सो वायु और इनके दुष्ट होनेसे होता है और मन्यानाडीमें जो होता है वह मेदके दुष्ट होनेसे होता है । ४ गंडमालाकी गांठ पके नहीं,अथवा पाक होनेसे स्रवे, कोई नष्ट होजाय,दूसरी नवीन उठे, ऐसी पीडा बहुत दिन रहे उसको अपची कहते है ।

ग्रन्थीरोग ।

**–ग्रन्थयो नवधा मताः । त्रिभिर्दोषैस्त्रयो रक्तात् शिराभिर्मेदसो व्रणात् ॥ ६६ ॥ अस्थ्ना मांसेन नवमः–**

अर्थ–ग्रंथिरोग नौ प्रकारका है । जैसे–१ वातग्रंथी, २ पित्तग्रंथी, ३ कफग्रंथी, ४ रक्तग्रंथी, ५ शिराग्रंथी, ६ मेदोग्रंथी, ७ व्रणग्रन्थी, ८ अस्थिग्रंथी और ९ मांसग्रंथी । इस प्रकार ग्रंथिरोग नौ प्रकारका है । वातादिदोष मांस और रक्त ये दुष्ट होकर मेद और शिरा इनको दूषित कर गोल और ऊंची तथा गांठके समान सूजन उत्पन्न करे उसको ग्रंथी अर्थात् गांठ कहते हैं ॥ ६६ ॥

अर्बुदरोग ।

**षड्विधं स्यात्तथाऽर्बुदम् । वातात् पितात् कफाद् रक्तान्मांसादपि च मेदसः ॥ ६७ ॥**

---

१ वादीकी गांठ तनेके समान करडी मालूम हो, छोलनेके समान मालूम हो, सुई चुभनेकीसी पीडा होय, मानो गिरा चाहती है, मथनेकीसी पीडा होय, फोरनेकीसी पीडा होय, काला वर्ण हो, वस्तिके समान चौडी होय और फुटनेसे स्वच्छ रुधिर निकले । २ पित्तकी गांठ आगसे भरेके समान अत्यन्त दाह करे, आतोंसे धुआं निकलतासा मालूम हो, मानो सिंगी लगायके कोई चूसे है, खार लगानेके सदृश पका मालूम हो, अग्निके समान जलतीसी मालूम हो, उस गांठका रंग लाल अथवा पीला होय और फूटनेसे उसमेंसे दुष्ट रुधिर बहुत निकले । ३ कफकी ग्रंथि ( गांठ ) शीतल, प्रकृतिसमान वर्ण ( किंचित् विवर्ण) थोडी पीडा हो, अत्यन्त खुजली चले, पत्थरके समान कठिन, बडी होय और चिरकालमें बढनेवाली होय, फटनेसे सफेद गाढी राध निकले । ४ रक्त दुष्ट होकर उससे जो ग्रंथि उत्पन्न होती है उसको रक्तग्रंथि कहते है इसके लक्षण पित्तग्रंथिके सदृश जानना । ५ निर्बल पुरुष शरीरका परिश्रमकारक कर्म करे तब वायु कुपित होकर शिराके जालको संकुचित कर एकत्र कर और सुखायकर ऊँची गांठ शीघ्र प्रगट करती है । ६ मेदकी ग्रंथि शरीरके बढनेसे बढे और शरीरके क्षीण होनेसे क्षीण होजाय, चिकनी बडी खुजलीयुक्त पीडारहित होय और जब वह फूट जाय तब उसमेंसे तिलकल्कके समान अथवा घृतके समान मेदा निकले । ७ क्षतादिकोंकरके व्रण होकर उससे जो ग्रंथि उत्पन्न होती है उसको व्रणग्रन्थि कहते है । ८ वातादिक दोष कुपित होकर हड्डियोंको दूषित करें तिनसे जो ग्रंथि उत्पन्न होती है उसको अस्थिग्रंथि कहते हैं । ९ मांसके दुष्ट होनेपर उससे जो ग्रंथि उत्पन्न होती है उसको मांसग्रथि कहते हैं और व्रणग्रंथि तथा अस्थिग्रंथियोंसे जिस दोषका कोप हो उसीके लक्षणसे जानलेना ।

अर्थ—अर्बुदरोग छः प्रकारका है, जैसे—१ वातार्बुद, २ पित्तार्बुद, ३ कफार्बुद ४ रक्तार्बुद, ५ मांसार्बुद और ६ मेदकी अर्बुद, ऐसे अर्बुदरोगको छः प्रकारका जानना ६७॥

श्लीपदरोग ।

**श्लीपदं च त्रिधा प्रोक्तं वातात्पित्तात् कफादपि ।**

अर्थ—श्लीपद रोग तीन प्रकारका है—१ वातका श्लीपद, २ पित्तका श्लीपद, ३ कफका श्लीपद, ऐसे तीन प्रकारका जानना ॥

विद्रधिरोग ।

**विद्रधिः षड्विधः ख्यातो वातपित्तकफैस्त्रयः ॥ ६८ ॥**
**रक्तात् क्षतात् त्रिदोषैश्च—**

अर्थ—विद्रधिरोग छः प्रकारका है, जैसे—१ वातकी विद्रधि, २ पित्तकी

---

१ शरीरके किसी भागमे दुष्ट भये जो दोष सो मांस रुधिरको दुष्ट कर गोल, स्थिर, मंदपीडायुक्त पूर्वोक्त ग्रंथियोंसे बडी बडी जिसकी जड होय, बहुतकालमें बढनेवाली तथा पकनेवाली ऐसी मांसकी गांठ उठे उसको वैद्य अर्बुद कहते है।२ इन वातादि तीन दोषोंके अर्बुदोंके लक्षण सर्वदा ग्रंथिके समान होते है । ३ दुष्ट भये जो दोष सो नसोंमें रहा जो रुधिर उसको संकोच कर तथा पीडित कर मांसके गोलेको प्रकट करे । वह यत्किञ्चित पकनेवाला तथा कुछ स्रावयुक्त हो और मांसांकुरसे व्याप्त और शीघ्र बढनेवाला ऐसा होता है, उसमेंसे रुधिर बहाकरे यह रक्तार्बुद असाध्य है । वह रक्तार्बुदपीडित रोगी रक्तक्षयके उपद्रवोंकरके पीडित होता है। इससे उसका वर्ण पीला हो जाता है। ये रक्तार्बुदके लक्षण है । ४ मुक्का आदिके लगनेसे अंगमे पीडा होय, उस पीडासे दुष्ट भया जो मांस सो सूजन उत्पन्न करे । उस सूजनमे पीडा नही होय और वह चिकनी देहके वर्ण होय, पके नही, पत्थरके समान कठिन हले नही ऐसी होती है । जिस मनुष्यका मांस विगड जाय अथवा जो नित्य मांसको खाया करे, उसके यह अर्बुद रोग होता है । यह मांसार्बुद असाध्य कहा गया है । कोई मांसार्बुदका भेद सोरली कहते हैं । ५ जो सूजन प्रथम वंक्षण ( जांघकी संधि ) मे उत्पन्न होकर धीरे धीरे पैरोमें आवै और उसके साथ ज्वर भी होय तो इस रोगको श्लीपद कहते है। यह श्लीपद हाथ, कान, नेत्र, शिश्न, होठ इनमे भी होती है ऐसा किसीका मत है । ६ वातकी श्लीपद काली, रूखी, फटी और जिसमे पीडा होय, विना कारणके दूखे और उसमें ज्वर बहुत होय । ७ पित्तकी श्लीपद पीले रंगकी दाह और ज्वरयुक्त होय तथा नरम होय । ८ कफकी श्लीपदका वर्ण चिकना, सफेद, पीला, भारी और कठिन होता है ।९ अत्यंत बढे तथा अस्थि ( हड्डी ) का आश्रय करके रहनेवाले वातादिदोष त्वचा, रुधिर, मांस और मेद इनको दुष्ट कर धीरेमें भयंकर शोथ उत्पन्न करे, उसकी जड हड्डी पर्यंत पहुँच जाय । उत्पत्तिकालमे अत्यंत पीडाकारक तथा गोल अथवा लम्बा जो शोथ ( सूजन ) होय उसको विद्रधि कहते है । १० जो विद्रधि काली, लाल, विषम कहिये—कदाचित छोटी—मोटी—

विद्रधि, ३ कफकी विद्रधि, ४ रुधिरजन्यविद्रधि, ५ क्षतजन्यविद्रधि और ५ संनिपातकी विद्रधि, इस प्रकार छः भेद विद्रधिके हैं ॥ ६८ ॥

## व्रणरोग ।

—व्रणाः पञ्चदशोदिताः । तेषां चतुर्धा भेदः स्यादागन्तुर्देहजस्तथा ॥ ६९ ॥ शुद्धो दुष्टश्च विज्ञेयस्तत्संख्या कथ्यते पृथक् । वातव्रणः पित्तजश्च कफजो रक्तजो व्रणः ॥ ७० ॥ वातपित्तभवश्चान्यो वातश्लेष्मभवस्तथा । तथा पित्तकफाभ्यां च सन्निपातेन चाष्टमः ॥ ७१ ॥ नवमो वातरक्तेन दशमो रक्तपित्ततः । श्लेष्मरक्तभवश्चान्यो वातपित्तासृगुद्भवः ॥ ७२ ॥ वातश्लेष्मासृगुत्पन्नः पित्तश्लेष्मास्रसंभवः । संनिपातासृगुद्भूत इति पञ्चदश व्रणाः ॥ ७३ ॥

अर्थ—व्रण पंद्रह प्रकारके हैं। उनके चार भेद हैं। जैसे—१ आगंतुकव्रण, २ देहजव्रण,

---

-हो, अत्यन्त वेदना युक्त और उसका प्रगट होना तथा कदाचित पाक नाना प्रकारका होय उसको वातविद्रधि कहते हैं। १ पित्तकी विद्रधि पके गूलरके समान होय अथवा काला वर्ण होय, ज्वर दाह करनेवाली होय उसका प्रगट और पाक शीघ्र होय । २ कफकी विद्रधि मिट्टीके शरावसदृश बड़ी होय, पीला वर्ण, शीतल, चिकनी, अल्प पीडा होय उसकी उत्पत्ति और पाक देहमें होता है । ३ काले फोडोंसे व्याप्त, श्यामवर्ण, दाह, पीडा और ज्वर ये उसमें तीव्र होय तथा पित्तकी विद्रधिके लक्षणकरके युक्त होय, उसको रक्तविद्रधि जानना । ४ लकडी, पत्थर, ढेला, अभिघात ( चोट लगना पिच जाना इत्यादि ) होनेसे, अथवा तलवार, तीर, बरछी इत्यादिके लगनेसे, घाव होजानेसे, अपथ्य करनेवाले पुरुषके कुपित वायु करके विस्तृत ( फैली ) क्षतोष्मा ( घावकी गरमी ) और रुधिरसहित पित्तको कोप कर उस पुरुषके ज्वर, प्यास और दाह होय और उसमें पित्तकी विद्रधिके लक्षण मिलते हो तो इसको क्षतजविद्रधि जानना । इसको ही आगन्तुज विद्रधि कहते हैं। ५ सन्निपातज विद्रधिमें अनेक प्रकारकी पीडा जैसे तोद, दाह, खुजली आदि ( तथा अनेक प्रकारका स्राव ) जैसे पतला, पीला, सफेद स्राव होय, घंटाल कहिये नीचे स्थूल होय और ऊपर पतरी हो अर्थात् अग्रभाग अति ऊँचा होय, छोटी, वडी, कदाचित् पके कदाचित नही पके ऐसी होय । ६ अनेक प्रकारकी धारवाले तथा मुखवाले शस्त्रोंके अनेक ठिकानेपर लगनेसे अनेक प्रकारकी आकृतिवाले व्रण होते हैं उनको आगन्तुकव्रण कहते है । ७ वात, पित्त, कफ ये दोष दुष्ट होकर उनसे व्रण होते हैं उनको देहज व्रण कहते है ।

३ शुद्धव्रण और ४ दुष्टव्रण । इस प्रकार चार प्रकारके व्रण जानने । उनकी संख्या कहते हैं-१ वातव्रण, २ पित्तव्रण, ३ कफव्रण, ४ रक्तव्रण, ५ वातपित्तव्रण, ६ वातकफव्रण, ७ पित्तकफव्रण ८ सन्निपातव्रण, ९ वातरक्तव्रण, १० रक्तपित्तव्रण, ११ कफरक्तव्रण, १२ वातपित्तरक्तजन्यव्रण, १३ वातकफ रुधिरजन्य व्रण, १४ पित्तकफरुधिरजन्यव्रण, १५ संनिपातरुधिरजन्यव्रण । इस प्रकार पन्द्रह प्रकारके व्रण जानने ॥ ६९-७३ ॥

आगंतुक व्रणरोग ।

**सद्योव्रणस्त्वष्टधा स्यादवक्लप्तविलम्बितौ ।**
**छिन्नभिन्नप्रचलिता घृष्टविद्धनिपातिताः ॥ ७४ ॥**

अर्थ-सद्योव्रण ( आगंतुक ) आठ प्रकारका है, जैसे-१अवक्लप्त,२ विलंबित, ३ छिन्न, ४ भिन्न, ५ प्रचलित, ६ घृष्ट, ७ विद्ध और ८ निपतित, इस प्रकार आगंतुकव्रण आठ प्रकारके हैं ॥ ७४ ॥

---

१ जो व्रण जीभके नीचे भागके समान अत्यन्त नरम होय, स्वच्छ,चिकना, थोडी पीडा-युक्त भले प्रकारका होय, दोष रक्तादि स्रावरहित होय उसको शुद्धव्रण जानना । २ जिसमेसे दुर्गन्धयुक्त राध और सडा भया रुधिर बहे, जो ऊपर ऊँचा तथा भीतरसे पोला हो, बहुत दिन रहनेवाला होय उसको दुष्टव्रण कहते हैं । वह शुद्धलिगके विपरीत होता है । ३ वादीसे प्रगट व्रणमे जकडना, तथा हाथके छूनेसे कठिन मालूम होय, उनमेसे थोडा स्राव होय तथा पीडा बहुत होय, सुईके चुभानेकीसी पीडा होय और उसका रंग काला होय । ४ प्यास, मोह, ज्वर, क्लेद, दाह, सडना, चिरासा होय, बास आवे, स्राव हो ये पित्तव्रणके लक्षण हैं । ५ कफका स्राव अत्यन्त गाढा, भारी, चिकना, निश्चल, मन्दपीडा, स्रवने और बहुत कालमें पके । ६ जो रक्तके कोपसे होय वह रक्तव्रण । उसमेसे रुधिर स्रवे । ७ वात और पित्त इसके लक्षण जिस व्रणमें होय उसे वातपित्तव्रण जानना । ८ वायु और कफके लक्षण जिस व्रणमे हो उसे वातकफजव्रण जानना । × इसी प्रकारसे पित्तकफव्रण, संनिपातव्रण और वातरक्तव्रण जानने ।

९ अनेक प्रकारकी धारवाले तथा मुखवाले शस्त्र अनेक ठिकानेपर लगनेसे अनेक प्रकारकी आकृतिवाले व्रण होते है, उनको आगन्तुक व्रण कहते है । वे आठ प्रकारके है, जैसे ( १ ) जिस व्रणके भीतर कतरनीके सदृश पीडा होय, उसको अवक्लप्त व्रण कहते है । ( २ ) जिस व्रणका मांस लटकता है उसको विलंबित कहते है ( ३ ) जो व्रण तिरछा, सरल ( सीधा ) अथवा लम्बा होय, उसको छिन्नव्रण कहते है । ( ४ ) बर्छी, भाला, बाण, तलवारके अग्रभाग, विषाण ( दांत सीग ) इनके आशय ( कोष्ठ ) को वेधकर थोडासा रुधिर स्रवे ( निकले ) उसको भिन्नव्रण कहते है । ( ५ ) जो अंग हाडसहित प्रहार कहिये मुद्गर आदिकी चोट अथवा दबना किवार आदि इनके योगसे पिच जाय तथा मज्जा, रुधिर करके युक्त होय ( घाव न हो ) उनको प्रचलित व्रण कहते है, इसको कोई पिच्चित व्रण भी कहते हैं । ( ६ ) कठिन वस्त्र आदिके घर्षण ( घिसने ) से, चोटके लगनेसे जिस अंगके ऊपरकी त्वचा जाती रहे,तथा आगके समान गरम रुधिर चुवाय उसको घृष्टव्रण कहते है ।

कोष्ठरोग।

**कोष्ठभेदो द्विधा प्रोक्तश्छिन्नान्त्रो निःसृतान्त्रकः।**

अर्थ–कोष्ठभेद दो प्रकारका है, जैसे–१ छिन्नान्त्रक है, २ निःसृतान्त्रक है।

अस्थिभङ्गरोग।

**अस्थिभङ्गोऽष्टधा प्रोक्तो भग्नपृष्ठविदारिते ॥ ७५ ॥ विवर्तितश्च विश्लिष्टस्तिर्यक्क्षिप्तस्त्वधोगतः। ऊर्ध्वगः सन्धिभङ्गश्च–**

अर्थ–अस्थिभङ्ग शब्द करके इस जगह हस्तादिकोंके काण्डका भङ्ग और सन्धि-भङ्ग इन दोनोंका ग्रहण है, वह भग्नरोग आठ प्रकारका है। जैसे–१ भग्नपृष्ठ २ विदारित ३ विवर्तित ४ विश्लिष्ट ५ तिर्यक्क्षिप्त ६ अधोगत ७ ऊर्ध्वग और ८ संधिभङ्ग इस रीतिसे आठ प्रकार जानने। हड्डी टूटने आदिको भग्न कहते हैं ॥ ७५ ॥

वह्निदग्ध रोग।

**–वह्निदग्धश्चतुर्विधः ॥७६॥ प्लुष्टोऽतिदग्धो दुर्दग्धः सम्यग्दग्धश्च कीर्तितः।**

---

–(७) वारीक अग्रभागवाले (सुई आदि) शस्त्रसे आशय विना जो अंग है उनमें वेध होनेसे तुण्डित (कहिये उनमेसे वह शस्त्र न निकला होय) निर्गत (कहिये शस्त्र निकल गया) हो उसको विद्धव्रण कहते है। (८) जिसमें अंग अतिछिन्न तथा अतिभिन्न न भया हो और छिन्नभिन्न इन दोनोके लक्षण जिसमें मिलते हो, तथा व्रण तिरछा बांका होय, उसको निपातितव्रण कहते हैं। इसको क्षतव्रण भी कहते हैं।

१ शस्त्रादिको करके पेटकी आंत टूट गई हो और शस्त्र और आंत ये दोनो भी पेटके भीतर हो उसको छिन्नान्त्रक कहते हैं। २ शस्त्रादिकों करके पेटकी आंत टूटके बाहर निकल आई हो, उसको निःसृतान्त्रक कहते हैं। ३ संधियोके दोनो तरफ हड्डियोके परस्पर घिसनेसे सूजन होती है और रात्रिमें पीडा बहुत होय उसको भग्नपृष्ठ कहते हैं। कोई उसको उत्पिष्ट भी कहते हैं। ४ विश्लिष्ट संधियोंके दोनो तरफकी हड्डियाँ टूटके उनमें बहुत पीडा होय, उसको विदारित कहते हैं। ५ विवर्तित सन्धियोंमें दोनो तरफसे हाड संधिसे पलट जाय, तब अत्यन्त पीडा होय, इस संधिमें हाड दोनो तरफ फिरा करे। ६ विश्लिष्ट संधिमें सूजन और रात्रिमें पीडा होकर सर्वकालमें अत्यन्त पीडा होय। संधि शिथिलमात्र होय, इसमे हाडके हटनेसे बीचमें गढेला हो जाय। ७ हड्डीके तिरछे हटनेसे पीडा बहुत हो और एक हड्डी संधिस्थान छोडकर टेढी होजाय। ८ संधिकी हड्डी एक नीचे को हटनेसे जो पीडा होय और संधिकी विरुद्ध चेष्टा होय इसमें संधिके हाड परस्पर दूर होय नीचेको गमन करे। ९ संधिके ऊपरका हाड संधिसे बाहर होजाय, उसमें पीडा होय, उसको ऊर्ध्वग कहते है। १० संधिकी हड्डी चूर्ण हो जावे, अथवा टूटके दो टुकडे हो, उसको संधिभंग कहते है।

अर्थ-अग्निसे जले हुएको दग्ध कहते हैं। वह रोग चार प्रकारका है, जैसे-१ प्लुष्ट, २ अतिदग्ध, ३ दुर्दग्ध और ४ सम्यग्दग्ध। इस प्रकार अग्निदग्धरोग चार प्रकारका जानना ॥ ७६ ॥

नाडीव्रणरोग ।

**नाड्यः पञ्च समाख्याता वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ ७७ ॥**
**त्रिदोषैरपि शल्येन-**

अर्थ-नाडीव्रण ( नासूर ) पांच प्रकारके हैं। जैसे-१ वातनाडीव्रण, २ पित्तनाडीव्रण, ३ कफनाडीव्रण, ४ त्रिदोषनाडीव्रण और ५ शल्यनाडीव्रण। इस प्रकार नाडीव्रण पांच प्रकारका है ॥ ७७ ॥

भगंदररोग।

**-तथाऽष्टौ स्युर्भगन्दराः। शतपोनस्तु पवनादुष्ट्रग्रीवस्तु पित्ततः ॥७८॥ परिस्रावी कफाज्ज्ञेय ऋजुर्वातकफोद्भवः। परिक्षेपी मरुत्पित्तादर्शोजः कफपित्ततः ॥ ७९ ॥ आगन्तुजातश्चोन्मार्गी शंखावर्तस्त्रिदोषजः।**

---

१ अग्नि करके अंग दग्ध होनेसे जो अंगका वर्ण पलट जाय उसको प्लुष्ट कहते हैं। २ अग्निसे दग्ध होकर रक्त,मांस, शिरा,स्नायु, संधि और हड्डी दीखने लगें और ज्वर,दाह, प्यास, मूर्च्छा इन करके व्याप्त हो उसको अतिदग्ध कहते हैं। ३ अग्निसे दग्ध होनेसे बहुत पीडा होय, अंगमें फोडे हों और वे फोडे जलदी अच्छे न हों उसको दुर्दग्ध कहते हैं। ४ अग्निसे जो अंग दग्ध होय और ताड वृक्षके समान अंग काला हो, उसको सम्यग्दग्ध कहते हैं। ५ जो मनुष्य पके हुए फोडेको कच्चा समझकर उपेक्षा करे किंवा बहुत राध पडे फोडेकी उपेक्षा कर दे तब वह बढी हुई राध पूर्वोक्त त्वङ्मांसादिक स्थानमें जायकर उनको भेदकर बहुत भीतर पहुँच जाय, तब एक मार्गकर उसमे वह राध नाडीके समान बहे, इसीसे इसको नाडीव्रण ( नासूर ) कहते है। ६ बादीसे नाडीव्रणका मुख रूखा तथा छोटा होय और शूल होय, इसमेंसे फेनयुक्त स्राव होय, रात्रिमे अधिक स्राव होय। ७ पित्तके नाडीव्रणमे प्यास, ज्वर और दाह होय। उसमेसे पीले रंगका और बहुत गरम राध स्रवे और दिनमें स्राव अधिक होय। ८ कफज नाडीव्रणमे सफेद, गाढी, चिकनी राध निकले, खुजली चले, रातमे स्राव बहुत होय। ९ जिस नाडीव्रणमे दाह, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, मुखका सूखना और तीनो दोषोके लक्षण होय उसको त्रिदोषकोपजन्य नाडीव्रण जानना। इसे भयंकर प्राणनाश करनेवाली कालरात्रिके समान जानना। १० किसी प्रकारके शल्य ( कंटकादिक ) रक्त मांस राध आदिक स्थानमे पहुँचकर टूट जाय तो नाडीव्रणको उत्पन्न करे, उस नाडीव्रणमे झाग मिला तथा रुधिरयुक्त मथेके समान गरम नित्य राध बहे तथा पीडा होय।

अर्थ-भगंदररोगें आठ प्रकारका है। जैसे-१ वातसे शतपोनक[2], २ पित्तसे उष्ट्रग्रीव[3], ३ कफसे परिस्रावी[4], ४ वातकफसे ऋजु[5], ५ वातपित्तसे परिक्षेपी[6], ६ कफपित्तसे अर्शोज[7], ७ आगंतुज उन्मार्गी[8] और त्रिदोषसे ८ शंखावर्त[9] भगंदर होता है। इस प्रकार आठ प्रकारके भगंदर जानने ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

उपदंशरोग।

**मेढ्रे पञ्चोपदंशाः स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ ८० ॥ संनिपातेन रक्ताच्च-**

अर्थ- लिंगमें उपदंश रोग पांच प्रकारका है। जैसे-वात[10], पित्त[11], कफ[12], संनिपात[13]

---

१ गुदाके समीप दो अंगुल ऊंची पिछाडी एक पिटिका ( फुन्सी ) होय उसमें बहुत पीडा होय और वह पिटिका फूट जाय उसको भगन्दर रोग कहते हैं, यदाह-भोजः- "भगं परिसमन्ताच्च गुदवस्ति तथैव च। भगवद्दारयेद्यस्मात्तस्माज्ज्ञेयो भगन्दरः" इति। २ कषैले और रूखे पदार्थ खानेसे वायु अत्यन्त कुपित होकर गुदास्थान जो पिटिका ( फुन्सी ) करे, उनकी उपेक्षा करनेसे वे फुन्सी पकें और फूट जायँ तब पीडा होय उनमेंसे लाल झाग मिली राध बहे तथा अनेक छिद्र होजायँ। उन छिद्रोंमें होकर मूत्र मल और शुक्र ( रेत ) बहे चालनीकेसे अनेक छिद्र होंय, इसी कारण इन रोगोंको शतपोनक कहते हैं शतपोनक नाम संस्कृतमें चालनीका है। ३ पित्तकारक पदार्थ खानेसे कुपित भया जो पित्त सो गुदामे लाल रङ्गकी पिटिका उत्पन्न करे वह शीघ्र पकजाय और उनमेंसे गरम राध बहे। पिटिका ( फुन्सीयां ) ऊंटकी नाडके समान होंय इसीसे इनको उष्ट्रग्रीव कहते हैं। ४ कफसे प्रगट भये भगन्दरमें खुजली चले, तथा उनमेंसे गाढी राध बहे वह पिटिका कठिन होयं उसमें पीडा थोडी होय और उसका वर्ण सफेद होय, उसको परिस्रावी भगन्दर कहते हैं। ५ जो भगन्दर वात और कफके लक्षणों करके युक्त होय और सीधा बहता हो उसको ऋजुभगन्दर कहते हैं। ६ जो भगन्दर वात और पित्तके लक्षणो करके युक्त हो उसको परिक्षेपी भगन्दर कहते हैं। ७ जो कफ पित्तके लक्षणों करके युक्त हो उसको अर्शोज भगन्दर कहते है। ८ गुदामें कांटे आदिके लगनेसे क्षत ( घाव ) हो और उस घावकी उपेक्षा करनेसे उसमें कृमि पड जायँ वे कृमि उस क्षतको विदारण करे ऐसे जो घाव बढ़कर गुदापर्यन्त पहुँचे तथा कृमि उसमें अनेक मुख करलेंव उसको उन्मार्गी भगन्दर कहते हैं। ९ जिसमे गौके थकने समान अनेक पिटिका होंय, उनका रङ्ग पीला और स्राव अनेक प्रकारके होयं, और व्रण शंखके आंटेके समान गोल होयं उसको शंखावर्त, अथवा शम्बुकावर्त भी कहते है।

१० लिङ्गेन्द्रियके ऊपर काले फोडे उठें, उनमे तोडनेकीसी पीडा होय और स्फुरण हो ये लक्षण वातोपदंशके जानने। ११ पित्तके उपदंश करके पीले रङ्गके फोड़े होते है। उनमेंसे पानी बहुत बहे दाह होय। १२ कफके उपदंश करके सफेद मोटा फोडा होय उसमें खुजली चले, सूजन होय और गाढी राध बहे। १३ जिस उपदंशमें अनेक प्रकारका स्राव और पीडा होय यह त्रिदोषज उपदंश असाध्य है।

और रक्तसे उपजा हुआ। तहां लिगेन्द्रियमें किसी कारणसे हस्तका कठोर स्पर्श होनेसे बडी कामबाधा प्राप्त हो. नख ( नाखून ) दांत इनका अभिघात होनेसे मैथुनके पश्चात् लिग न धोनेसे, दासी आदिके साथ अत्यन्त विषय करनेसे, दीर्घ कठोर केश तथा रोगादि करके दूषित योनि जिसकी हो उस दोषसे, ब्रह्मचारिणी, रजस्वलामें गमनादि तथा वाजीकरणादिकके अनेक उपचार करनेसे इन सब कारणोंसे लिगेन्द्रियमें जो रोग प्रकट होवे उसको उपदंश कहते हैं ॥ ८० ॥

शूकरोग।

मेढ्रे शूकामयास्तथा।चतुर्विंशतिराख्याता लिङ्गार्शो ग्रथितं तथा ॥८१॥ निवृत्तमवमन्थश्च मृदितं शतपोनकः। अष्ठीलिका सर्षपिका त्वक्पाकश्चावपाटिका ॥ ८२ ॥ मांसपाकः स्पर्शहानिर्निरुद्धमणिरुद्धतः। मांसार्बुदं पुष्करिका संमूढपिटिकाऽलजी ॥८३॥ रक्तार्बुदं विद्रधिश्च कुंभिका तिलकालकः। निरुद्धं प्रकाशः प्रोक्तस्तथैव परिवर्तिका॥८४॥

अर्थ–लिगेन्द्रियमें शूकरोग चौवीस प्रकारका होता है। जैसे–१लिंगार्श. २ ग्रथित, ३ निवृत्ति,४ अवमन्थ,५ मृदित,६ शतपोनक,७ अष्ठीलिका. ८ सर्षपिका. ९त्वक्पाक

---

१ रुधिरके उपदंशसे मांसके समान लाल रंगके फोडे होयं। २ जो मन्दबुद्धिवाला पुरुष शास्त्रोक्त क्रमके विना लिङ्गको मोटा किया चाहै तो विषक्रमिका लिङ्गके ऊपर लेपादिक करे, अथवा जलयोग वात्स्यायन ऋषिके कहे उनका साधन करे, उसके लिङ्गपर शूकरोग होता है। शूक नाम जलके मलसे उत्पन्न जलजन्तुका है, उसके सदृश यह रोग होनेसे इसका भी नाम शूक कहा है।

३ लिगार्श शूक रोगमें अर्शके लक्षण जानना। ४ निरन्तर शूक लेप करनेसे लिंगेन्द्रियके ऊपर गांठ पैदा होय उसको ग्रथित कहते है। ५ निवृत्त रोगमें कफका सम्बन्ध ज्यादा रहता है। ६ कफ रक्तसे लिगेन्द्रियके बाह्य प्रदेशमें लंवी २ पिटिका होती है और वह पिटिका फूट फूट भीतर फैलती है उसको अवमन्थ रोग कहते है। ७ वायुके कोपसे लिगमें फुन्सी होय, उससे लिगको पीडा होय, लिग जोरसे टाटा हो आवे, इसको मृदित कहते है। ८ जिस पुरुषके लिगमें वारीक छिद्र हो जायँ वह व्याधि वातशोणितसे प्रगट होती है, इसको शतपोनक कहते है। ९ शूकोंके लेपसे वायु कुपित होकर करडी निहाईके समान पीड़िका होय और कोई छोटी कोई वडी टेढे ऐसे मांसांकुरोंसे व्याप्त होय इनको अष्ठीलिका कहते है। १० दुष्ट जलजन्तुका दुष्टरीतिसे लेप करनेसे कफवात कुपित होकर सफेद सरसोंके समान जो फुन्सी होय इसको सर्षपिका कहते है। ११ वातपित्तसे लिगकी त्वचा पकजाय उसको त्वक्पाक कहते हैं। इसमें ज्वर और दाह होता है।

१० अवपीडिका,११मांसपाक,१२स्पर्शहानि, १३निरुद्धमणि, १४मांसार्बुद १५पुष्क-रिका,१६ संमूढपिटिका, १७अलजी,१८रक्तार्बुद,१९ विद्रधि, २० कुंभिका,२१तिल-कालक, २२ निरुद्ध, २३ प्रकाश और २४ परिवर्तिका । इस प्रकार शूक रोग चौबीस प्रकारका जानना ॥ ८१-८४ ॥

## कुष्ठरोग ।

**कुष्ठान्यष्टादशोक्तानि वातात् कापालिकं भवेत् । पित्तेनोदुम्बरं प्रोक्तं कफान्मण्डलचार्चिके ॥ ८५ ॥ मरुत्पित्ताद्दक्षजिह्वा श्लेष्मवाताद्विपादिका । तथा सिध्मैककुष्ठं च किटिभं चालसं तथा ॥८६॥ कफपित्तात् पुनर्दद्रूः पामा विस्फोटकं तथा । महाकुष्ठं चमदलं पुण्डरीकं शतारुकम् ॥ ८७ ॥ त्रिदोषैः काकणं ज्ञेयं तथान्यच्छ्वित्रसंज्ञितम् । तथा वातेन पित्तेन श्लेष्मणा च त्रिधा भवेत् ॥ ८८ ॥**

---

१ अवपीडिका शूकरोगमें लिंग फटासा मालूम होय । २ जिसकी इन्द्रियका मांस गल-जाय और अनेक प्रकारकी पीडा हो इस व्याधिको मांसपाक कहते हैं । यह व्याधि त्रिदोषज है । ३ शूकका लेप करनेसे रुधिर दूषित होकर त्वचाके स्पर्शज्ञानको नष्ट करे । ४ निरुद्धमणि शूकरोगमें लिंगकी मणिकी चेतना जाती रहती है । ५ मांस दुष्ट होनेसे मांसार्बुद प्रगट होता है । ६ पित्त रक्तसे उत्पन्न भई पिटिका उसके चारों तरफ अनेक छोटी छोटी फुन्सियां होयँ और कमलकी भीतरकी केसरके समान सब फुन्सी होयँ उसको पुष्करिका कहते है । ७ लेप करनेके अनंतर जब लिंगमें खुजली चले तब उसको दोनों हाथोंसे खूब खुजानेसे एक मूढ ( बिना मुखकी ) पिटिका होय, उसको संमूढपिटिका कहते हैं । ८ यह पिटिका प्रमेहपिटिकामें जो अलजी नाम पिटिका कह आये हैं उसके समान लाल काले फोडोंसे व्याप्त होय, तथा उसके लक्षण उस अलजीके समान होते हैं । ९ जिस पुरुषके लिंगेन्द्रियके ऊपर काले, लाल फोडे उत्पन्न हो उसको रक्तार्बुद कहते हैं । १० विद्रधिके लक्षणमें जो सन्निपातविद्रधिके लक्षण कहे है, वेही यहां विद्रधि शूकके लक्षण जानने । ११ रक्तपित्तसे जामुनकी गुठलीके समान काले रंगकी पिटिका होय, उसको कुंभिका कहते है । १२ काले अथवा चित्र विचित्र रंगके विष शूकोंके लेप करनेसे तत्काल सर्वलिंग पक-जाय तथा सब मांस तिलके समान काला होकर गल जाय । इस त्रिदोषोत्पन्न व्याधिको तिलकालक कहते है । १३ निरुद्ध प्रकाश और परिवर्तिक इनके लक्षण ग्रंथांतरमें निदानस्थानमें क्षुद्ररोगोंमें लिखे है उनके समान शिश्नमें रोग होते है ऐसा जानना ।

अर्थ–कुष्ठरोग अठारह प्रकारका है। जैसे–१कापालिक, २ औदुंबर ३ मंडल ४ विचर्चिका,५ऋक्षजिह्वा,६विपादिका,७सिध्मकुष्ठ,८ किटिभ,अलस, १० दद्रु, ११ पामा,

---

१ विरोधि कहिये क्षीरमत्स्यादि, पतले स्नेहयुक्त, भारी ऐसे अन्नपानके सेवन करनेसे, रद्दके वेगको रोकनेसे और मलमूत्रादिवेगोंके रोकनेसे, भोजन करके अत्यन्त व्यायाम(दंड कसरत ) अथवा अतिसंताप करनेसे, सूर्यका ताप सहनेसे,शीत,गरमी, लघन और आहार इनके सेवनोक्त क्रम छोडके सेवन करनेसे, पसीना, श्रम और भय इनसे पीड़ित हो और उसी समय शीतल जल पीवे इस कारणसे अजीर्णपर अन्न भक्षण करनेसे, तथा भोजनके ऊपर भोजन करनेसे, वमन, विरेचन, निरूहण, अनुवासन, नस्यकर्म इन पंचकर्मके करते समय अपथ्य करनेसे, नया अन्न, दही, मछली, खारी, खट्टा, पदार्थके सेवन करनेसे,उडद, पूरी, मिष्टान्न ( लड्डू, खजला, फेनी आदि ) तिल, दूध, गुड इनके खानेसे, अन्नके पचे विना स्त्रीसंग करनेसे, तथा दिनमे सोनेसे, ब्राह्मण, गुरु इनका तिरस्कार करनेसे पापकर्मका आचरण करनेसे, पुरुषोके वातादि तीनो दोष त्वचा, रुधिर, मांस और जल इनको दुष्ट कर कुष्ठरोग ( कोढ ) उत्पन्न करते है। कुष्ठ होनेके वातादिदोष, और त्वचादि दूष्य ये सात ( वात, पित्त, कफ, त्वचा, रक्त, मांस, जल ) पदार्थ अवश्य कारणभूत है। इनसे अठारह प्रकारके कुष्ठ होते हैं इनमें सात महाकुष्ठ और ग्यारह क्षुद्रकुष्ठ है। २ जो चढे काले तथा लाल खोपडाके सदृश, रूखे, कठोर, पतले ऐसे त्वचावाले तथा नोचनेकीसी पीड़ायुक्त होयँ,वे दुश्चिकित्स्य हैं, इसको कापालिक कुष्ठ कहते हैं।३औदुंबरकुष्ठ–यह शूल, दाह, लाल और खुजली इनसे व्याप्त होय, इनमे वाल कपिल वर्णके होयँ तथा ये गूलरफलके समान होते हैं।४मंडलकुष्ठ सफेद,लाल,कठिन,गीला,चिकना जिसका आकार मंडलके सदृश होय तथा,एक दूसरेसे मिला होय,ऐसा यह मंडलकुष्ठ असाध्य है।५ खुजलीयुक्त काले रंगकी जो फुन्सी ( माताके समान ) होय तथा उनमेसे स्राव बहुत होय उसको चर्चिका अथवा विचर्चिका कहते हैं। ६ ऋक्षजिह्व कुष्ठ कठोर अंतविषे लाल होय, बीचमें काला होय, पीडा करे, तथा रीछकी जीभके समान होता है इसको ऋक्षजिह्व कहते है। ७ विपादिकाकुष्ठ जिसमें हाथकी हथेली और पैरके तरवा फटजायँ और पीडा बहुत होय। ८ सिध्मकुष्ठ सफेद, लाल, पतला हो,खुजानेसे भूसीसी उड़े यह विशेष करके छातीमे होता है और घीयाके फूलके आकारका होता है। ९ किटिभकुष्ठ नीलवर्णका हो, व्रणके चटके समान कठोर स्पर्श मालूम होय और रूक्ष हो। १० अलसकुष्ठ-इस कुष्ठमें पीडा बहुत होय और जिसमें पिडिका पित्तीके समान बहुत और लाल होय, इसमें बहुतसे मूर्ख वैद्य पित्तकी शंका करते हैं। ११ दद्रुकुष्ठमें खुजली होय, लाल होय, और फोड़ा होय,छोटी हो और ये ऊँचे उठ आवें, मंडलके आकार गोल उत्पन्न होय इसीसे इसको दद्रुमंडल भी कहते हैं। १२ पामाकुष्ठ-जो पिडिक बहुत होय, और उनमेंसे स्राव होय तथा खुजली चले और दाह होय तो इस कुष्ठको पामा ( खाज ) कहते हैं।

१२ विस्फोटक, १३ महाकुष्ठ, १४ चर्मदल[3], १५ पुंडरीक[4], १६ शतारुक[5], १७ काकण[6] और १८ श्वित्रकुष्ठ[7], इस प्रकार अठारह प्रकारका कुष्ठ जानना। यह वात, पित्त और कफके भेदसे तीनतरहका होता है ॥ ८५-८८ ॥

क्षुद्ररोग-विस्फोटक और मसूरिका रोग।

क्षुद्ररोगाः षष्टिसंख्यास्तेष्वादौ शर्करार्बुदम्। इन्द्रवृद्धा पनसिका विवृत्तान्धालजी तथा ॥ ८९ ॥ वराहदंष्ट्रो वल्मीकं कच्छपी तिलकालकः। गर्दभी रकसा चैव यवप्रख्या विदारिका ॥ ९० ॥ कदरो मसकश्चैव नीलिका जालगर्दभः। इरिवेल्ली जतुमणिर्गुदभ्रंशोऽग्निरोहिणी ॥ ९१ ॥ संनिरुद्धगुदः कोठः कुनखोऽनुशयी तथा। पद्मिनीकंटकश्चिप्यमलसो मुखदूषिका ॥९२॥ कक्षा वृषणकच्छूश्च गन्धः पाषाणगर्दभः। राजिका च तथा व्यङ्गश्चतुर्धा परिकीर्तितः ॥९३॥ वातात् पित्तात् कफाद् रक्तादित्युक्तं व्यङ्गलक्षणम्। विस्फोटाः क्षुद्ररोगेषु तेऽष्टधा परिकीर्तिताः ॥ ९४ ॥ पृथग्दोषैस्त्रयो द्वन्द्वैस्त्रिविधाः सप्तमोऽसृजः। अष्टमः-

१ विस्फोटककुष्ठ-जो फोडे काले वा लाल रंगके होंय और जिनकी त्वचा पतली होय उनको विस्फोटक कुष्ठ कहते हैं। २ जो घर्म(पसीना)से रहित होता है और जिस करके सब अंग मक्खियोंके अङ्गके सदृश होता है और रसादि धातुओंको व्याप्त करता है इसको महाकुष्ठ कहते हैं। कही इसको चर्मकुष्ठ भी कहते है। ३ चर्मदलकुष्ठ-यह लाल हो, शूलयुक्त, खुजलीयुक्त, फोडोंसे व्याप्त होकर फूट जाय, इसमें हाथ लगानेसे सहा न जाय, इसमें त्वचा फट जाती है। ४ पुण्डरीक कुष्ठ-जो कुष्ठ पुण्डरीक(कमल)पत्रके समान सफेद होय और उसका अन्तभाग लाल होय यत्किंचित् ऊंचा निकल आवे और मध्यमें थोडा लाल होता है। ५ शतारुक कुष्ठ-जो लाल होय, श्याम होय, जिसमें जलन होय, शूल हो तथा अनेक फोडे हो उसको शतारुक कुष्ठ कहते हैं। ६ काकण कुष्ठ-जो चिरमिठीके समान लाल अर्थात् बीचमें काला होय और आसपास लाल अथवा बीचमे लाल और आस पास काल होय, किश्चित् पका, तीव्रपीडायुक्त, जिसमें तीनो दोषोंके लक्षण मिलते हो यह कुष्ठ अच्छा नही होता। ७ श्वित्रकुष्ठ-पूर्वोक्त कुष्ठोंके समान है, निदान और चिकित्सा जिसकी ऐसी होती है और उसमें स्राव होता है, और वह श्वित्रकुष्ठ रक्त, मांस और मज्जा इन तीनों धातुओंसे उत्पन्न होता है। यह कुष्ठ वात, पित्त, कफ इनके भेदोंसे तीन प्रकारका होता है। वायुसे रूक्ष और लाल होवे, पित्तसे लाल कमलपत्रके समान होय, उसमें दाह होय, उसके ऊपरके बाल गिर पडें, कफके योगसे वह कोढ सफेद गाढा और भारी होता है, उसमें खुजली चलती है, ऐसे तीन भेदका श्वित्रकुष्ठ जानना।

सन्निपातेन क्षुद्ररुक्षुन्मसूरिका ॥ ९५ ॥ चतुर्दशप्रकारेण त्रिभिर्दोषैस्त्रिधा च सा। द्वन्द्वजा त्रिविधा प्रोक्ता सन्निपातेन सप्तमी ॥९६॥ अष्टमी त्वग्गता ज्ञेया रक्तजा नवमी स्मृता। दशमी मांसजा ख्याता चतस्रोऽन्याश्च दुस्तराः। मेदोऽस्थिमज्जशुक्रस्थाः क्षुद्ररोगा इतीरिताः ॥ ९७ ॥

अर्थ–क्षुद्ररोग साठ प्रकारके हैं। जैसे–१ शर्करार्बुद, २ इन्द्रवृद्धा, ३ पनसिका, ४विवृत्ता, ५अंधालजी, ६वराहदंष्ट्र, ७वल्मीक, ८ कच्छपी, ९ तिलकालक, १०गर्दभी,

---

१ कफ, मेद और वायु ये मांस, शिरा और स्नायु इनमे प्राप्त हो गांठ करते है, । जब वह फूटे तब उसमेंसे सहत, घृत और चर्बीके समान स्राव हो तिसकरके वायु पुनः बढ़कर मांसको सुखाय उसकी बारीक खिचीसी गांठ करे, उसको शर्करा कहते है।शर्करा होनेके अनन्तर नाडियोंसे दुर्गन्धयुक्त क्लेदयुक्त अनेक प्रकारके वर्णका ( घृत मेद और वसा इनके वर्णका ) रुधिर स्रवे, उसको शर्करार्बुद कहते है। २ कमलकर्णिकाके समान बीचमें एक पिडिका होय उसके चारो ओर छोटी २ फुन्सियां हो उसको इन्द्रवृद्धा कहते है यह बात पित्तसे उत्पन्न होती है। ३ कानके भीतर वात पित्त कफसे जो फुन्सी उग्रवेदनासहित प्रगट होय और वह स्थित होय उसको पनसिका कहते हैं। ४ पित्तके योगसे फटे मुखकी अत्यन्त दाहयुक्त,पके गूलरके समान चारों ओर बलपडी हुई जो पिडिका होय उसको विवृत्ता कहते है। ५ कफवातसे प्रगट कठिन, जिसमे मुख न हो तथा ऊंची ऐसी पिडिका होय तथा जिसके चारो ओर मण्डलाकार हो और जिसमें राध थोडी होय उसको अन्धालजी कहते है। ६ शरीरमें गांठके समान कठिन सूजन उत्पन्न होय, उसका आकार सुअरकी ठोढीके सदृश होय, उसमें दाह, खुजली पीडा होय और उसके ऊपरकी त्वचा पक जाय उसको वराहदंष्ट्र, सूकरदंष्ट्र, वराहडाढ भी कहते हैं। ७ कंठ,कंधा, कूख, पैर,हाथ,संधि, गला इन ठिकानों पर तीनों दोषोसे सर्पकी बांबीके समान गांठ होय उसका उपाय न करै तब वह धीरे धीरे बढै, उसमें अनेक मुख होजायँ, उनमेंसे स्राव होय, नोचनेकीसी पीडा होय तथा वह मुखके ऊपर कुछ ऊँची होकर विसर्पके समान फैल जाय। इस रोगको वैद्य बल्मीक कहते है, इसके ऊपर औषधि उपचार नही चले और पुरानी होनेसे विशेष असाध्य जानना। ८ कफवायुसे प्रगट गांठ बन्धी पांच अथवा छः कठिन कछुवाकी पीठके समान ऊंची जो पिड़िका होय उसको कच्छपिका कहते हैं। ९ [illegible] कफके कोपसे काले तिलके समान पीडा रहित त्वचासे मिले ऐसे [illegible] तिलकालक ( तिल ) कहते हैं। १० वात पित्तसे प्रगट एक गोल [illegible] फोडोंसे व्याप्त ऐसा मंडल होय वह बहुत दुखे, उसको गर्दभी [illegible] हैं।

११रकसा[१],१२यवप्रख्या[२], १३ विदारिका[३], १४ कदर[४], १५ मसक[५], १६ नीलिका[६], १७ जालगर्दभ[७], १८ ईरिवेल्लिका[८], १९ जतुमणि[९], २० गुदभ्रंश[१०], २१ अग्निरोहिणी[११], २२ सन्निरुद्धगुद[१२], २३ कोठ[१३], २४ कुनख[१४], २५ अनुशयी[१५], २६ पद्मनीकंटक[१६],

---

१ शरीरमें जो पिटिका (फुन्सी) स्रावरहित होकर खुजलीयुक्त हों उनको रकसा कहते हैं। २ कफवातसे प्रगट जौके समान कठिन, गांठके सदृश मांसमिश्रित जो पिडिका होय उसको यवप्रख्या कहते हैं, तथा इसको अन्त्रालजी भी कहते हैं। ३ विदारीकन्दके समान गोल कांखमे अथवा वंक्षणस्थानमे जो गांठ तांबेके रंगकीसी हो, उसको विदारिका कहते हैं,यह संनिपातसे होती है अर्थात इसमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं। ४ पैरोंमें कंकर छिदनेसे, अथवा कांटे लगनेसे बेरके समान ऊँची गाँठ प्रगट होय उसको कदर अथवा टेक कहते हैं, यह कदररोग हाथोंमें भी होता है, ऐसा भोजका मत है। ५ बादीसे शरीरके ऊपर उडदके समान काली, पीडारहित, स्थिर, कठिन, कुछ ऊँची गांठसी प्रगट होय, उसको मसक, माषमस्सा ऐसे कहते हैं। ६ व्यंगके लक्षण सदृश जो काला मंडल अंगमें होय, अथवा मुखपर होय उसको नीलिका कहते हैं। ७ पित्तसे विसर्पके समान इधर उधरको फैलनेवाली, पतली तथा कुछ पकनेवाली ऐसी सूजन होय,उसमें दाह और ज्वर होय तो उसको जालगर्दभ कहते है। ८ त्रिदोषसे प्रगट मस्तकमें गोल,अत्यन्त पीडा और ज्वर करनेवाली, त्रिदोषके लक्षण संयुक्त ऐसी पिडिका होय उसको ईरिवेल्लि कहते हैं। ९ कफरक्तसे जन्मसे ही प्रगट भई समान, तथा कुछ ऊँचा जिसमें पीडा होय नही, ऐसा गोलमंडलके समान देहमें चिह्न होय उसको लक्ष्म लक्ष्य तथा कोई जतुमणि ऐसे कहते हैं, यह स्त्री पुरुषोको अंग भेद करके शुभाशुभ फलदायक है। १० जिस पुरुषकी देह रूक्ष और अशक्त होय, उस पुरुषके प्रवाहन ( कुथन ) तथा अतिसार हेतु करके गुदा बाहर निकल आवे, अर्थात कांच बाहर निकल आवे, उस रोगको गुदभ्रंश रोग कहते हैं, उस रोगमे धातु क्षय होनेसे वात कुपित होय है। ११ कांखके आसपास मांसके विदारण करनेवाले जो फोडा होते हैं, तिनकरके अंतर्दाह होय तथा ज्वर होय, वह फोडा प्रदीप्त अग्निके समान लाल होय इन फोडोंमें वायु अधिक होनेसे सात दिन, पित्ताधिक्यसे बारह दिन और कफाधिक्यसे ५ पांच दिनमें रोगी मरे यह अग्निरोहिणी नामक त्रिदोषज पिडिका असाध्य है और कठिन है। १२ मल मूत्रादिकोंके वेग रोकनेसे गुदाश्रित अपानवायु कुपित होकर महास्रोत ( गुदा ) का अवरोध करे और वह द्वारको छोटा करे पीछे मार्ग छोटा होनेसे उस पुरुषका मल बडे कष्टसे बाहर निकले, इस भयंकर रोगको संनिरुद्धगुद कहते है। १३ कफ, रक्त, पित्त इनके कोपसे देहमे मोहारकी मक्खीके दंशसे जैसे सूजन आती है ऐसी किंचित् लालरंगकी सूजन आवे, उनमें खुजली बहुत चले, क्षणमे उत्पन्न होती है और क्षणमें चली जाती है उसको कोठ ऐसे कहते है। १४ किसी कठोर पदार्थके अभिघातकरके नख ( नाखून ) दुष्ट होकर रूक्ष काले वर्णके और खरदरे हो उसको कुनख कहते हैं। १५ पैरोंमें, त्वचाके समान वर्ण,यत्किञ्चित् सूजनयुक्त, भीतरसे पकी जो पिडिका होय उसको अनुशयी कहते है। १६ देहमें सफेद रंगका गोल ऐसा मंडल उत्पन्न होता है, उसके ऊपर कांटेके सदृश मांसके अंकुर आते है उनको खुजली बहुत चले उस रोगको पद्मिनीकंटक कहते हैं।

सन्निपातेन क्षुद्ररुक्षुन्मसूरिका ॥ ९५ ॥ चतुर्दशप्रकारेण त्रिभिर्दोषैस्त्रिधा च सा । द्वन्द्वजा त्रिविधा प्रोक्ता सन्निपातेन सप्तमी ॥९६॥ अष्टमी त्वग्गता ज्ञेया रक्तजा नवमी स्मृता । दशमी मांसजा ख्याता चतस्रोऽन्याश्च दुस्तराः । मेदोऽस्थिमज्जशुक्रस्थाः क्षुद्ररोगा इतीरिताः ॥ ९७ ॥

अर्थ-क्षुद्ररोग साठ प्रकारके हैं । जैसे-१ शर्करार्बुद, २ इन्द्रवृद्धा, ३ पनसिका, ४विवृत्ता,५अंधालजी,६वराहदंष्ट्र,७वल्मीक, ८ कच्छपी, ९ तिलकालक, १०गर्दभी,

---

१ कफ, मेद और वायु ये मांस, शिरा और स्नायु इनमें प्राप्त हो गांठ करते है, । जब वह फूटे तब उसमेंसे सहत, घृत और चर्बीके समान स्राव हो तिसकरके वायु पुनः वढ़कर मांसको सुखाय उसकी बारीक खिचीसी गांठ करे, उसको शर्करा कहते है।शर्करा होनेके अनन्तर नाडियोंसे दुर्गन्धयुक्त क्लेदयुक्त अनेक प्रकारके वर्णका ( घृत मेद और वसा इनके वर्णका ) रुधिर स्रवे, उसको शर्करार्बुद कहते हैं । २ कमलकर्णिकाके समान बीचमें एक पिडिका होय उसके चारो ओर छोटी २ फुन्सियां हों उसको इन्द्रवृद्धा कहते हैं यह वात पित्तसे उत्पन्न होती है । ३ कानके भीतर वात पित्त कफसे जो फुन्सी उग्रवेदनासहित प्रगट होय और वह स्थित होय उसको पनसिका कहते हैं । ४ पित्तके योगसे फटे मुखकी अत्यन्त दाहयुक्त,पके गूलरके समान चारो ओर बलपडी हुई जो पिडिका होय उसको विवृत्ता कहते है । ५ कफवातसे प्रगट कठिन, जिसमे मुख न हो तथा ऊंची ऐसी पिडिका होय तथा जिसके चारों ओर मण्डलाकार हो और जिसमें राध थोडी होय उसको अन्धालजी कहते हैं । ६ शरीरमें गांठके समान कठिन सूजन उत्पन्न होय, उसका आकार सुअरकी ठोढीके सदृश होय, उसमें दाह, खुजली पीडा होय और उसके ऊपरकी त्वचा पक जाय उसको वराहदंष्ट्र, सूकरदंष्ट्र, वराहडाढ भी कहते हैं । ७ कंठ,कंधा, कूख, पैर,हाथ,संधि, गला इन ठिकानो पर तीनों दोषोंसे सर्पकी बांबीके समान गांठ होय उसका उपाय न करै तब वह धीरे धीरे बढै, उसमें अनेक मुख होजायँ, उनमेंसे स्राव होय, नोचनेकीसी पीडा होय तथा वह मुखके ऊपर कुछ ऊँची होकर विसर्पके समान फैल जाय । इस रोगको वैद्य बल्मीक कहते हैं, इसके ऊपर औषधि उपचार नही चले और पुरानी होनेसे विशेष असाध्य जानना । ८ कफवायुसे प्रगट गांठ बन्धी पांच अथवा छः कठिन कछुवाकी पीठके समान ऊंची जो पिड़िका होय उसको कच्छपिका कहते हैं । ९ वात, पित्त, कफके कोपसे काले तिलके समान पीडा रहित त्वचासे मिले ऐसे अंगमें दाग होयं, उनको तिलकालक ( तिल ) कहते हैं । १० वात पित्तसे प्रगट एक गोल ऊंची तथा लाल और फोडोंसे व्याप्त ऐसा मंडल होय वह बहुत दुखे, उसको गर्दभी अथवा गर्दभिका ऐसे कहते हैं ।

११रकसा,१२यवप्रख्या, १३ विदारिका, १४ कदर, १५ मसक, १६ नीलिका, १७ जालगर्दभ, १८ ईरिवेल्लिका, १९ जतुमणि, २० गुदभ्रंश, २१ अग्निरोहिणी, २२ सन्निरुद्धगुद, २३ कोठ, २४ कुनख, २५ अनुशयी, २६ पद्मनीकंटक,

---

१ शरीरमें जो पिटिका (फुन्सी) स्रावरहित होकर खुजलीयुक्त हों उनको रकसा कहते है। २ कफवातसे प्रगट जौके समान कठिन, गांठके सदृश मांसमिश्रित जो पिडिका होय उसको यवप्रख्या कहते हैं, तथा इसको अन्त्रालजी भी कहते हैं। ३ विदारीकन्दके समान गोल कांखमें अथवा वंक्षणस्थानमे जो गांठ तांबेके रंगकीसी हो, उसको विदारिका कहते हैं,यह संनिपातसे होती है अर्थात इसमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं। ४ पैरोंमें कंकर छिदनेसे, अथवा कांटे लगनेसे बेरके समान ऊँची गाँठ प्रगट होय उसको कदर अथवा ठेक कहते हैं, यह कदररोग हाथोंमें भी होता है, ऐसा भोजका मत है। ५ वादीसे शरीरके ऊपर उडदके समान काली, पीडारहित, स्थिर, कठिन, कुछ ऊँची गांठसी प्रगट होय, उसको मसक, माषमस्सा ऐसे कहते हैं। ६ व्यंगके लक्षण सदृश जो काला मंडल अंगमें होय, अथवा मुखपर होय उसको नीलिका कहते हैं। ७ पित्तसे विसर्पके समान इधर उधरको फैलनेवाली, पतली तथा कुछ पकनेवाली ऐसी सूजन होय,उसमें दाह और ज्वर होय तो उसको जालगर्दभ कहते हैं। ८ त्रिदोषसे प्रगट मस्तकमें गोल,अत्यन्त पीडा और ज्वर करनेवाली, त्रिदोषके लक्षण संयुक्त ऐसी पिडिका होय उसको ईरिवेल्लि कहते हैं। ९ कफरक्तसे जन्मसे ही प्रगट भई समान, तथा कुछ ऊँचा जिसमें पीडा होय नही, ऐसा गोलमंडलके समान देहमें चिह्न होय उसको लक्ष्म लक्ष्य तथा कोई जतुमणि ऐसे कहते है; यह स्त्री पुरुषोंको अंग भेद करके शुभाशुभ फलदायक है। १० जिस पुरुषकी देह रूक्ष और अशक्त होय, उस पुरुषके प्रवाहन ( कुथन ) तथा अतिसार हेतु करके गुदा बाहर निकल आवे, अर्थात कांच बाहर निकल आवे, उस रोगको गुदभ्रंश रोग कहते हैं, उस रोगमे धातु क्षय होनेसे वात कुपित होय है। ११ कांखके आसपास मांसके विदारण करनेवाले जो फोडा होते हैं, तिनकरके अंतर्दाह होय तथा ज्वर होय, वह फोडा प्रदीप्त अग्निके समान लाल होय इन फोडोंमें वायु अधिक होनेसे सात दिन, पित्ताधिक्यसे बारह दिन और कफाधिक्यसे ५ पांच दिनमें रोगी मरे यह अग्निरोहिणी नामक त्रिदोषज पिडिका असाध्य है और कठिन है। १२ मल मूत्रादिकोंके वेग रोकनेसे गुदाश्रित अपानवायु कुपित होकर महास्रोत ( गुदा ) का अवरोध करे और वह द्वारको छोटा करे पीछे मार्ग छोटा होनेसे उस पुरुषका मल बडे कष्टसे बाहर निकले, इस भयंकर रोगको संनिरुद्धगुद कहते है। १३ कफ, रक्त, पित्त इनके कोपसे देहमें मोहारकी मक्खीके दंशसे जैसे सूजन आती है ऐसी किंचित लालरंगकी सूजन आवे, उनमें खुजली बहुत चले, क्षणमें उत्पन्न होती है और क्षणमें चली जाती है उसको कोठ ऐसे कहते है। १४ किसी कठोर पदार्थके अभिघातकरके नख ( नाखून ) दुष्ट होकर रूक्ष काले वर्णके और खरदरे हो उसको कुनख कहते है। १५ पैरोंमें, त्वचाके समान वर्ण,यत्किञ्चित् सूजनयुक्त, भीतरसे पकी जो पिडिका होय उसको अनुशयी कहते हैं। १६ देहमें सफेद रंगका गोल ऐसा मंडल उत्पन्न होता है. उसके ऊपर कांटेके सदृश मांसके अंकुर आते है उनको खुजली बहुत चले उस रोगको पद्मिनीकंटक कहते है।

२७ चिप्पं¹, २८ अलस², २९ मुखदूषिका³, ३० कक्षा⁴, ३१ वृषणकच्छु⁵, ३२ गंध⁶, ३३ पाषाणगर्दभ⁷, ३४ राजिक⁸ और (१ वात २ पित्त ३ कफ ४ रुधिर इन भेदोंसे चार प्रकारका ) व्यङ्ग⁹। पूर्वोक्त चौतीस और ये चार ऐसे अडतीस प्रकारके क्षुद्ररोग हुए। तथा स्फोट रोगसे देहमें फुन्सी होती हैं अतएव उनका क्षुद्ररोगोंमें संग्रह किया। वह विस्फोट¹⁰ आठ प्रकारका है १-वातविस्फोटक, २ पित्तविस्फोटक ३ कफविस्फोटक, ४ वातपित्तविस्फोटक, ५ कफपित्तविस्फोटक,

---

१ वायु और पित्त नखोंके मांसमे स्थिर होकर दाह और पाकको करे, उस रोगको चिप्प ऐसे कहते हैं। यह अन्य दोषोंसे होय तो इसको कुनख कहते है। २ दुष्ट कीच ( वर्षा आदिके पानी और सडी कीच ) मे डोलनेसे पैरोंकी उंगली गीली रहनेसे उंगलियोंके बीचमें सफेद सफेद चकत्ता होय, उनमें खुजली दाह और गीलापन तथा पीडा होय उसको अलस अर्थात् खारुआ कहते है यह कफ रक्तके दोषसे होता है। ३ कफ वायुके कोपसे सेमरके कांटेके तरुण ( जवान ) पुरुषके मुखके ऊपर जो फुन्सी हो उनको मुखदूषिका अर्थात् मुहांसे कहते हैं इनके होनेसे मुख बुरा होजाता है। ४ बाहु ( भुजा ) की जड कंधा और पसवाडे इन ठिकाने पित्त कुपित होकर काले फोडोंसे व्याप्त तथा वेदनायुक्त जो पीडिका होय उसको कक्षा वा कॅखलाई कहते हैं। ५ जो मनुष्य स्नान करते समय लगे हुए मलको नही धोवे, उस पुरुषका मल अंडकोशमें संचित होय। पीछे वह पसीना आनेसे गीला होय तब अंडकोशमें घोर पीडा होय और खुजानेसे तत्काल फोडे होंय। पीछे वे फोडे स्रवकर आपसमे मिल जाते हैं। कफरक्तसे होनेवाली इस व्याधिको वृषणकच्छु कहते हैं। ६ पित्तके कोपसे त्वचाके भीतर जो एक पिडिका फोडाके समान बडी होय उसको गंधनाम्नि पिटिका कहते है। ७ वातकफसे ठोडीकी संधिमें कठिन मंदपीडा करनेवाली चिकनी ऐसी सूजन होय, उसको पाषाणगर्दभ कहते हैं। ८ कफवायुकरके देहमें सरसोंके सदृश फुन्सी होती हैं उनको राजिका कहते हैं कोई कोद्रव भी कहते हैं। ९ क्रोध और श्रम इनसे कुपित भया वायु सो पित्तसंयुक्त होकर मुखमें प्राप्त होकर एक मंडल उत्पन्न करे वह दूखे नही पतला तथा श्यामवर्णका होय, उसको व्यंग ( झाँई ) ऐसे कहते हैं। १० कडुआ, खट्टा, तीखा ( मरिचादि ), गरम, दाहकारक, रूखा, खारा, अजीर्ण, भोजनके ऊपर भोजन और गरमी, ऋतुदोष कहिये शीतोष्णका अतियोग अथवा ऋतुविपर्यय (ऋतुका पलटना) इन कारणोंसे वातादिदोष कुपित हो त्वचाका आश्रय कर रुधिर, मांस और हड्डी इनको दूषित कर भयंकर विस्फोटक (फोडा) उत्पन्न करे। उसके प्रगट होनेके पूर्व घोर ज्वर होता है। इसके आठतरहके लक्षण हैं, जैसे-( १ ) मस्तकमें पीडा, शूल, देहमें पीडा, ज्वर, प्यास, संधिमें पीडा, फोडोंका वर्ण काला होय ये वातविस्फोटकके लक्षण हैं। ( २ ) ज्वर, दाह, पीडा, स्राव, फोडोंका पकना, प्यास, देह पीला अथवा लाल होय ये पित्तविस्फोटकके लक्षण हैं। ( ३ ) वमन, अरुचि—

६ वातकफविस्फोटक, ७रक्तविस्फोटक, ८ संनिपातविस्फोटक इस प्रकार आठप्रकारका विस्फोटक जानना। देहमें शीतलारोगसे ये फुन्सियाँ होती हैं। इसवास्ते क्षुद्ररोगमें मसूरिका रोगका संग्रह किया है, वह मसूरिका चौदह प्रकारकी हैं, जैसे-१वातमसूरिका २ पित्तमसूरिका, ३ कफमसूरिका, ४ कफपित्तमसूरिका, ५ वातपित्तमसूरिका ६ वात-

---

—जडता तथा फोडा खुजलीयुक्त हो कठिन पीले और उनमें पीडा होय नही और वे बहुत कालमें पकें। यह विस्फोटक कफका जानना ( ४ ) वात पित्तसे विस्फोटकमें तीव्र पीडा होती है। ( ५ ) खुजली, दाह, ज्वर और वमन इन लक्षणोंसे कफपित्तजन्य विस्फोटक जानना। ( ६ ) खुजली, गीलापन, भारीपन इन लक्षणोंसे वात कफका विस्फोटक जानना। ( ७ ) रक्तसे प्रगट भया विस्फोटक तांबेके रंगका गुञ्जा ( चिरमिटी ) के समान लाल। वह रुधिरके दुष्ट होनेसे अथवा पित्तके दुष्ट होनेसे होता है, यह सैकडो अनुभवकारी औषधके करनेसे भी साध्य नही होता। ( ८ ) जो फोडा बीचमें नीचा होय और आसपाससे ऊंचा होय, कठिन और कुछ पका होय तथा जिसके योगसे दाह, अंगमें लाली, प्यास, मोह, वमन, मूर्च्छा, पीडा, ज्वर, प्रलाप, कम्प, तन्द्रा, ये लक्षण होते हैं उसे संनिपातका विस्फोटक जानना, वह असाध्य है।

१ कडुआ, खट्टा, नोनका खारी, विरुद्धभोजन, अध्यशन ( भोजनके ऊपर भोजन ) दुष्ट अन्न निष्पाव ( शिवीबीज उडद मूंग ) आदि शाक, विषैले फूल आदिसे मिला पवन तथा जल, शनैश्चरादि क्रूरग्रहोंका देखना इन सब कारणों करके शरीरमें वातादि दोष कुपित होकर दुष्ट रुधिर मिलकर मसूरके समान देहमें अनेक मरोरी करें उनको मसूरिका ( माता ) ऐसे कहते हैं तिस माता ( शीतला ) के पूर्व ज्वर होय, खुजली चले, देहमें फुटनी होवे, अन्नमें अरुचि भ्रम होय, अंगके ऊपरकी त्वचामें सूजन होय, तथा वर्ण पलट जाय, नेत्र लाल होयँ ये शीतलाके पूर्वरूप होते हैं। २ वातमसूरिकाके फोड़े काले लाल और रूक्ष होते है, उनमें तीव्र पीडा होय, कठिन होय, शीघ्र पके नही इसके योगसे संधि, हाड और पर्वोंमें फोडनेकीसी पीडा होय, खांसी, कम्प, चित्त स्थिर न हो विना परिश्रमके श्रम होय, तालुवा, होठ और जीभ ये सूखने लगें प्यास अरुचि हो ये लक्षण होते हैं। ३ पित्तकी मसूरिकाका मुख लाल, पीला, सफेद होता है उसमें दाह तथा पीडा बहुत होय और यह शीतला शीघ्र पके। इसके योगसे मल पतला होय, अंग टूटे, दाह, प्यास, अरुचि, मुखपाक और नेत्रपाक होय, ज्वर तीव्र हो ये लक्षण होय हैं। ४ कफकी मसूरिकामें मुखके द्वारा कफका स्राव होय, अंगमें आर्द्रता तथा भारीपन, मस्तकमें शूल वमन आनेकीसी इच्छा होकर अरुचि, निद्रा, तन्द्रा आलस्य ये होय और फोडे सफेद चिकने अत्यन्त मोटे होय, इनमें खुजली बहुत चले, पीडा मन्द होय और वे बहुत दिनमें पकें। ५ कफ पित्तसे केशो ( बालो ) के छिद्र समान बारीक और लाल, ऐसी मसूरिका होती हैं इनके होनेसे खाँसी, अरुचि, होय तथा इनके होनेसे ज्वर होय। इनको रोमान्तिक ( कसम्भीमाता ) ऐसे कहते है ६ जिन मसूरिकाओंमें वातपित्तके लक्षण मिलते हो उन्हें वातपित्तकी मसूरिका जाननी।

कफमसूरिका, ७ संनिपातमसूरिका, ८ त्वक्शब्दोक्त जो रसधातु, उससे होनेवाली मसूरिका, ९ रक्तजा, १० मांसजा, ११ मेदोजा, १२ अस्थिजा, १३ मज्जाजन्य तथा १४ शुक्रधातुसे होनेवाली । इनमे अन्तकी चार मसूरिका कष्टसाध्य जाननी । इस प्रकार सब १४ मसूरिका, ८ विस्फोटक और पूर्वोक्त ३८ क्षुद्ररोग सब मिलनेसे ६० प्रकारका क्षुद्ररोग जानना ॥ ८९–९७ ॥

विसर्परोग ।

**विसर्परोगा नवधा वातपित्तकफैस्त्रिधा । त्रिधा च द्वन्द्वभेदेन संनिपातेन सप्तमः ॥ ९८ ॥ अष्टमो वह्निदाहेन नवमश्चाभिघातजः ।**

अर्थ–विसर्परोग नव प्रकारका है, जैसे–१ वातविसर्प, २ पित्तविसर्प, ३ कफविसर्प,

---

१ जिनमें वातकफके लक्षण मिलते हों उनको वातकफकी मसूरिका जाननी । २ त्रिदोषकी मसूरिकाके फोड़े नीले, चिपटे, लम्बे, बीचमें नीचे ऐसे होयँ उनमें पीडा अत्यन्त होय तथा वे बहुत दिनमें पक और उनमेसे दुर्गन्धयुक्त स्राव सर्व दोषोके फोड़े वे बहुत होते हैं । ३ रसगत मसूरिका पानीके बबूलेके सदृश हो इनके फूटनेसे पानी बहे । यह त्वग्गतमसूरिका है कारण इसका यह है कि दोष स्वल्प है । ४ रुधिरगतमसूरिका तांबेके रंगकी और जलदी पकनेवाली होती है उसके ऊपरकी त्वचा पतली होती है यह अत्यन्त दुष्ट होनेसे साध्य नही हो और इसके फूटनेसे इसमें रुधिर निकले । ५ मांसस्थमसूरिका कठिन और चिकनी होती है यह बहुत दिनमें पके तथा इसकी त्वचा पतली होय, अंगोंमें शूल होय, चैन पडे नही, खुजली चले, मूर्च्छा, दाह और प्यास ये लक्षण होते है । ६ मेदोगतमसूरिका मण्डलके आकार अर्थात् गोल होय, नरम, कुछ ऊंची, मोटी तथा काली होती है, इसके होनेसे भयंकर ज्वर, पीडा, इंद्रिय, मनको मोह, चित्तका अस्थिर होना, सन्ताप ये लक्षण होते है । इस मसूरिकासे कोई आदि मनुष्य बचता होगा कारण कि यह अत्यन्त कृच्छ्रसाध्य हैं । ७ अस्थिगत मसूरिका बहुत छोटी, देहके समान रूक्ष, चिपटी, कुछ ऊंची होती है उसे अस्थिगत मसूरिका जाननी । ८ जिस मसूरिकामें अत्यन्त चित्तविभ्रम, पीडा, अस्वस्थता ये होते है, वह मर्मस्थानोंको भेद करके शीघ्र प्राण हरण करे । इसके होनेसे सर्व हड्डिनमें भौराके काटनेके समान पीड़ा होती है । उसे मज्जागत मसूरिका जानना । ९ शुक्रधातुगत मसूरिका पकेके समान चिकनी और अलग अलग होती हैं । इनमें अत्यन्त पीडा होय, इनके होनेसे गीलापन, अस्वस्थता होय, दाह, उन्मादके लक्षण होते हैं रोगी बचे ऐसे इनमेसे कोई लक्षण नही दीखे, इसीसे इनको असाध्य जानना ।

१० खारी, खट्टा, कडुवा गरम आदि पदार्थ सेवन करनेसे वातादिदोषोंका कोप होकर विसर्परोग होता है वह सर्वत्र फैल जाय, इसीसे इसको विसर्प कहते है । इसके ९ प्रकारके लक्षण है, जैसे ( १ ) वादीसे जो विसर्प होय उसके लक्षण वातज्वरके समान होते हैं तथा उसमें सूजन, फरकना, नोचने, तोडनेकीसी पीडा, दर्द और रोमांच खड़े हों तथा वह विसर्प लंबा-

४ वातपित्तविसर्प, ५ कफवातविसर्प, ६ कफपित्तविसर्प, ७सन्निपातविसर्प, ८जठराग्नितापजन्यविसर्प, और ९ अभिघातजविसर्प इस प्रकार नव प्रकारका विसर्परोग जानना।

---

-हो। (२) पित्तके विसर्पकी गति शीघ्र होय अर्थात् वह जलदी फैल जाय तथा पित्तज्वरके लक्षण इसमें मिलते हों तथा अत्यन्त लाल होयँ। ( ३ ) कफ विसर्पमें खुजली बहुत होय तथा चिकनी हो और उसमें कालज्वरकी पीडा होय। (४) वातपित्तसे प्रगट विसर्प ज्वर, वमन, मूर्च्छा, अतिसार, प्यास और हड्फुटन, मंदाग्नि, अन्धकारदर्शन, अन्नद्वेष इन लक्षणकरके संयुक्त होवे, इनके संयोगसे सर्व शरीर अंगारोसे भरासा मालूम होय, जिस जिस ठिकाने वह विसर्प फैले उसी २ ठिकानेपर अग्निरहित अंगारके समान काला, लाल, होकर शीघ्र सूजे, आगसे जलेके समान ऊपर फफोला होय और उस विसर्पकी शीघ्रगति होनेसे जलदी हृदयमें जाकर मर्मानुसारी विसर्प होय। अथवा वह अत्यन्त बलवान् होय अर्थात् अंगोको व्यथा करे, संज्ञा और निद्रा इनका नाश करे, श्वास बढ़ावे तथा हिचकी उत्पन्न करे। ऐसी मनुष्यकी अवस्था अस्वस्थ होनेके कारण, धरती, तेज, आसन इत्यादिकोमें सुख होवे नही, हिलने चलनेसे क्लेश होय, मन तथा देहको क्लेश होनेसे उत्पन्न भई ऐसी दुर्बोध निद्रा ( मरणरूपी निद्रा ) को प्राप्त होय इस रोगको अग्निविसर्प कहते हैं। (५) स्वहेतुसे कुपित भया जो कफ सो पवनकी गतिको रोक कफको भेदकर अथवा बढ़े भये रुधिरको भेदकर त्वचा, नस ( नाड़ी ) और मांस इनमें प्राप्त हो और इनको दुष्ट कर लम्बी, छोटी, गीली, मोटी, खरदरी, लाल गांठोकी माला प्रगट करे। उन गांठोमें पीडा अधिक होय, ज्वर होय, श्वास, खांसी, अतिसार, मुखमें पपड़ी परे, हिचकी, वमन, भ्रम, मोह, वर्णका पलटना, मूर्च्छा, अंगोका टूटना, मंदाग्नि ये लक्षण होते हैं, इस रोगको ग्रन्थि विसर्प कहते हैं। यह कफवातके कुपित होनेसे उत्पन्न होता है, इसको सुश्रुतमें अपची कहते है।(६)कफपित्तके विसर्पमें ज्वर-अंगोका जखडना, निद्रा, तंद्रा, मस्तकशूल, अंगग्लानि, हाथ पैरोका पटकना, बकवाद, अरुचि, भ्रम, मूर्च्छा, मंदाग्नि, हडफूटन, प्यास, इन्द्रियोंका जकडना, आमका गिरना, मुखादिस्रोतो ( छिद्रो ) में कफका लेप इत्यादि लक्षण होते है तथा वह विसर्प आमाशयमें उत्पन्न हो पीछे सर्वत्र फैले, उसमे पीडा थोड़ी होय, सर्वत्र पीली तांबेके रङ्गकी सफेद रङ्गकी पिड़िकाएं हो, तथा वह विसर्प चिकनी स्याहीके समान काली, मलीन, सूजनयुक्त, भारी, गम्भीरपाक (भीतरसे पकी) हो, उनमें घोर दाह हो और वह दवानेसे तत्क्षण गीली होजायँ तथा फट जायँ। वह कीचके समान हो और उसका मांस गल जाय, उसमे शिरा, नाड़ी ( नस ) ये दीखने लगें, उसमें मुर्दाकीसी बास आवे, इस विसर्पको कर्दमविसर्प कहते है। ( ७ ) सन्निपातजन्य विसर्पमें जो वातादिकोंके लक्षण कहे है सो सब होयँ।(८) जठराग्निके बहुत सन्तप्त होनेसे रक्तदूषित होकर जो विसर्प होता है उसको वह्निदाहज विसर्प कहते हैं। इसके लक्षण पित्तविसर्पके समान जानना। (९) बाह्य कारण करके क्षत (घाव) होकर उसमें वायु कुपित होकर वह रुधिरसहित-

**तथैकः श्लेष्मपित्ताभ्यामुदर्दः परिकीर्तितः ॥ ९९ ॥**
**वातपित्तेन चैकस्तु शीतपित्तामयः स्मृतः ।**

अर्थ-शीतलवायुके संपर्क करके कफ और वायु ये दुष्ट होकर पित्तसे मिले भीतर रक्तादि धातुमें और बाहर त्वचामें प्रवेश कर देहमें जैसे मोहारकी मक्खीके काटनेसे ददोडा उत्पन्न होता है उस प्रकार ददोडा उत्पन्न हों, उनमें खुजली, पीडा और दाह ये उपद्रव होवें । कफ पित्तके कोपसे जिसमें खुजली अधिक चले और पीडा न्यून हो इसको उदर्द कहते हैं । वह रोग एक प्रकारका है । वातापित्तके कोप करके जिसमें खुजली थोडी और व्यथा अधिक होवे उसको शीतपित्त[2] ( पित्ती ) कहते हैं । इतना ही इनमें भेद जानना तथा ज्वर, वमन और दाह इत्यादि ये दोनोंके साधारण लक्षण जानने ॥ ९९ ॥

अम्लपित्तरोग ।

**अम्लपित्तं त्रिधा प्रोक्तं वातेन श्लेष्मणा तथा ॥ १०० ॥**
**तृतीयं श्लेष्मवाताभ्याम्-**

अर्थ-अम्ल[3]पित्तरोग तीन प्रकारका है १ वातज अम्लपित्त, २ कफजअम्लपित्त

---

-पित्तको व्रणमें प्राप्त कर विसर्परोग उत्पन्न करे । उसमें कुल्थीके समान श्यामवर्णके फोड़े होते हैं, सूजन, ज्वर और दाह होय, उसका रुधिर काला निकले । ये अभिघातज ( क्षतज ) विसर्पके लक्षण जानने ।

१ वरटी ( ततया ) के काटनेके समान त्वचाके ऊपर चकत्ते होजायँ, उनमें खुजली चले और सुई चुभानेकीसी पीड़ा होय, उसके संयोगसे वमन, सन्ताप और दाह होय, इसको उदर्द कहते हैं ।२ शीतल पवनके लगनेसे कफ, वायु दुष्ट होकर पित्तसे मिल भीतर रक्तादिकोंमें और बाहर त्वचामें विचरे, प्यास, अरुचि, मुखमेंसे पानी गिरना, अंग गलना और भारी होना, नेत्रमें लाली ये शीतपित्त होनेके पूर्व होते हैं । शीतपित्तको लौकिकमें पित्ती कहते है । इसमें खुजली होती है सो कफसे जानना । चोंटनी बादीसे होती है । ओकारी, सन्ताप और दाह पित्तसे होते है ऐसे जानना । ३ विरुद्ध ( क्षीरमत्स्यादि ) और दुष्टान्न, खट्टा, दाहकारक, पित्त बढ़ानेवाला ऐसे अन्नपानके सेवन करनेसे, वर्षादि ऋतुमें जलौषधिगत विदाहादि स्वकारणसे संचित भया पित्त दुष्ट होय, उसको अम्लपित्त कहते है, अन्नका न पचना, परिश्रम करे परिश्रमसा मालूम हो, वमन, कडुवी तथा खट्टी डकार आवे, देह भारी रहे, हृदय और कंठमें दाह होय, अरुचि होय ये लक्षण होनेसे अम्लपित्त जानना । यह वातादि भेदसे तीन तरहका है, जैसे ( १ ) वातयुक्त अम्लपित्तमें कंप, प्रलाप, मूर्च्छा चिमचिमा ( चैंटी काटनेसे प्रगट खुजलीके समान ) देहग्लानि, पेट दूखना, नेत्रोंके आगे अन्धकार दीखे, भ्रांति होना, इन्द्रिय-

और ३ कफवातज इस प्रकार अम्लपित्तके तीनों भेद जानने चाहिये।

वातरोग।

**वातरक्तं तथाऽष्टधा। वाताधिक्येन पित्ताच्च कफाद्दोषत्रयेण च ॥१०१॥ रक्ताधिक्येन दोषाणां द्वन्द्वेन त्रिविधः स्मृतः।**

अर्थ–वातरक्तरोग आठ प्रकार है। जैसे वायुका आधिक्य जिस वातरक्तमें है वह १ वातज २ पित्तजवातरक्त ३कफजवातरक्त ४ त्रिदोषजवातरक्त और ५ रक्तके

---

–मनके मोह, रोमांच खडे हो ये लक्षण होते है। ( २ ) कफयुक्त अम्लपित्तमें कफके ढेला गिरें, शरीरका अत्यन्त जकडना, अरुचि, शीत लगे,अंगग्लानि, वमन, मुख कफसे लिहसा रहे, मंदाग्नि, बलनाश, खुजली और निद्रा ये लक्षण होते है। ( ३ ) वातकफयुक्त अम्लपित्तमें ऊपर कहे हुए दोनोंके लक्षण होते हैं।

१ नोन, खटाई, कडवी, खारी, चिकना, गरम, कच्चा ऐसे भोजनसे, सडे और सूखे, ऐसे जलसंचारी जीवोंके और जलके समीप रहनेवाले जीवोंके मांससे, पिण्याक ( खर ) मूली, कुलथी, उडद, निष्पाव ( सेम ) शाक ( तरकारी ), पलल ( तिलकी चटनी, ) ईख, दही, कांजी, सौवीरमद्य, सुक्त ( सिरका आदि ) छाछ, दारु, आसव ( मद्यविशेष ), विरुद्ध ( जैसे दूध मछली ) अध्यशन ( भोजनके ऊपर भोजन ), क्रोध, दिनमें निद्रा, रातमें जागना इन कारणोंसे विशेष करके सुकुमार पुरुषोंके और मिथ्या आहार विहार करनेवाले पुरुषोंके और जो मोटा होय, तथा सूखा होय ऐसे मनुष्यके वातरक्त रोग होता है। हाथी, घोडा, ऊट इनपर बैठकर जानेसे ( यह वायुके बढनेका और विशेष करके रुधिरके उतरनेका कारण है ) विदाहकारी अन्नके खानेवाले पुरुषके ( इसीसे दग्धरुधिरकी वृद्धि होती है ) गरमागरम अन्नके खानेवाले पुरुषके सब शरीरका रुधिर दुष्ट होकर पगोंमें इकट्ठा होय और वह दुष्ट वायुसे दूषित होकर मिले इस रोगमें वायु प्रबल है, इसीसे इस रोगको वातरक्त कहते हैं। २ वाताधिक वातरक्तमें शूल, अंगोंका फरकना, चाटनेकीसी पीडा ये अधिक होते है, सूजन, रूखापन, नीलापन अथवा श्यामवर्णता, एवं वातरक्तके लक्षणोंकी वृद्धि होय और क्षणभरमें ह्रास ( कम ) हो, धमनी और अंगुलिनकी सन्धिमें संकोच, शरीर जकडबन्ध होय, अत्यन्त पीडा होय, सर्दी बुरी लगे और शीतके सेवन करनेसे दुःख होय, स्तंभ होय, कंप और शून्यता होय, ये लक्षण होते है। ३ पित्ताधिक वातरक्तमें अत्यन्त दाह,इन्द्रिय मनको मोह, पसीना, मूर्च्छा, मस्तपना, प्यास, स्पर्श बुरा मालूम होय, पीडा, लाल रंग, सूजन, छोटे २ पीरे फोडा अत्यन्त गरमी ये लक्षण होते है। ४ कफाधिक वातरक्तमें स्तैमित्य ( गीले कपडेसे आच्छादितके समान ) भारीपना, शून्यता, चिकनापन, शीतलता, खुजली और मन्दपीडा ये लक्षण होते है। ५ तीनों दोषों ( वात, पित्त, कफ ) के वातरक्तमें तीनो दोषोंके लक्षण होते हैं।

आधिक्यसे होनेवाला रक्तज[1] । दोषोंसे प्रगट द्वन्द्वज[2] वातरक्त तीन प्रकारके होते हैं, ऐसे सब मिलाके वातरक्तरोग आठ प्रकारका जानना ॥ १०१ ॥

वातरक्तरोग ।

अशीतिर्वातजा रोगाः कथ्यन्ते मुनिभाषिताः ॥ १०२ ॥ आक्षेपको हनुस्तम्भ ऊरुस्तम्भः शिरोग्रहः । बाह्यायामोऽन्तरायामः पार्श्वशूलः कटिग्रहः ॥ १०३ ॥ दण्डापतानकः खल्ली जिह्वास्तंभस्तथार्दितः । पक्षाघातः क्रौष्टुशीर्षो मन्यास्तम्भश्च पंगुता ॥ १०४ ॥ कलायखञ्जता तूनी प्रतितूनी च खञ्जता । पादहर्षौ गृध्रसी च विश्वाची चावबाहुकः ॥ १०५ ॥ अपतानो व्रणायामो वातकण्ठोऽपतन्त्रकः । अंगभेदोंऽगशोषश्च मिम्मणत्वं च गद्गदः ॥ १०६ ॥ प्रत्यष्ठीलाऽष्ठीलिका च वामनत्वं च कुब्जता । अङ्गपीडांगशूलं च संकोचस्तंभरूक्षताः ॥ १०७ ॥ अङ्गभङ्गोऽङ्गविभ्रंशो विड्ग्रहो बद्धविट्कता । मूकत्वमतिजृम्भा स्यादत्युद्गारान्त्रकूजनम् ॥ १०८ ॥ वातप्रवृत्तिः स्फुरणं शिराणां पूरणं तथा । कंपः कार्श्यं श्यावता च प्रलापः क्षिप्रमूत्रता ॥ १०९ ॥ निद्रानाशः स्वेदनाशो दुर्बलत्वं बलक्षयः । अतिप्रवृत्तिः शुक्रस्य कार्श्यं नाशश्च रेतसः ॥ ११० ॥ अनवस्थितचित्तत्वं काठिन्यं विरसास्यता । कषायवक्त्रताऽऽध्मानं प्रत्याध्मानं च शीतता ॥ १११ ॥ रोमहर्षश्च भीरुत्वं तोदः कंडू रसाज्ञता । शब्दाज्ञता प्रसुप्तिश्च गन्धाज्ञत्वं दृशः क्षयः ॥ ११२ ॥

अर्थ—वादीका रोग ८० प्रकारका ऋषियोंने कहा है उनके नाम कहते हैं १ आक्षेपक[3]

---

१ रक्ताधिक वातरक्तमें सूजन, अत्यन्त पीडा हो और उसमेसे तांबेके रंगका क्लेद बहे। उस सूजनमें चिमचिम वेदना होय, स्निग्ध अथवा रूखे पदार्थसे शान्त न होय, उस सूजनमें खुजली होय और पानी निकले। २ दोषोंके वातरक्तमें दो दोषोंके लक्षण होते हैं, वातपित्त, वातकफ, कफपित्त इन दो दो दोषोंके लक्षण जिसमें हों उसे द्विदोषज जानना। ३ जिस कालमें वायु कुपित होकर सब धमनी नाडीमें जाकर प्राप्त होंय, तब उस जगह वह वारंवार सञ्चार-

२ हनुस्तंभ, ३ ऊरुस्तंभ, ४ शिरोग्रह, ५ बाह्यायाम, ६ अभ्यंतरायाम ७ पार्श्वशूल, ८ कटिग्रह, ९ दंडापतानक, १० खल्ली, ११ जिह्वास्तंभ १२ अर्दित, १३ पक्षाघात,

---

-करके देहको आक्षिप्त करती है अर्थात् हाथीपर बैठनेवाले पुरुषके समान सब देहको चलायमान करती है, उस बारंबार चलनेको आक्षेपरोग कहते हैं।

१ जिह्वाके अतिघर्षण करनेसे, चना आदि सूखी वस्तुको खानेसे, अथवा किसी प्रकारकी चोटके लगनेसे, हनुमूल ( कपोल ) के अर्थात् डाढ़की जडमें रहा जो वायु सो कुपित होकर हनुमूलको नीचे कर मुखको खुला ही रख दे, अथवा मुखको बंद करे, उसको हनुस्तंभ अथवा हनुग्रह कहते है। २ वायु कफ और मेद इनसे मिलकर जांघोमें जाके जांघोको जड करके जकडता है,उस करके जांघे अचेतन होती है,हिलनेका सामर्थ्य नही रहता उसको ऊरुस्तंभ कहते हैं। ३ वायु रुधिरका आश्रय कर मस्तकके धारण करनेवाली नाडियोको रूखी, पीडायुक्त और काली कर दे। यह शिरोग्रह रोग असाध्य है। इसको शिरोग्रह भी कहते हैं। ४ बाहरकी नसोमें जो वात रहती है वह बाह्यायाम अर्थात् पीठको बांकी कर दे, उरःस्थल, जांघो और कमरको मोड दे, ऐसे इस रोगको पंडित असाध्य बाह्यायाम कहते हैं। ५ पैरकी उंगली, घोटूं, हृदय, पेट, उरःस्थल और गला इन ठिकानोमे रहनेवाला वायु वेगवान् होकर वहांके नसोके जाल उसको सुखाकर बाहर निकाल दे, उस मनुष्यके नेत्र स्थिर हो जायं, मेज रहि जाय, पसवाडोमे पीडा होय,मुखसे कफ गिरे और जिस समय मनुष्य धनुषके सदृश नीचेको नम जाय तब वह बली वायु अन्तरायाम रोगको करे, इसको धनुर्वात भी कहते हैं। ६ कोष्ठाशयमें वायु कुपित होकर पसवाडोमें शूल करे उसको पार्श्वशूल कहते हैं। ७ जो वायु कमरको स्तम्भन करे उसको कटिग्रह कहते है। ८ वायु अत्यन्त कफयुक्त होकर सब धमनी नाडियोंमे प्राप्त होकर सब देहको दंड लकडीके समान तिरछा कर दे। यह दंडापतानक रोग कष्टसाध्य है। ९ जो वायु पैर, जंघा, ऊरू और हाथके मूलमे कंपन करे उसको खल्ली ( मलाम्नाय ) रोग कहते हैं। १० वायु वाणीकी बहनेवाली नाडियोंमे प्राप्त होकर जिह्वाका स्तम्भन कर दे, उसको जिह्वास्तंभ रोग कहते है। यह अन्नपान तथा बोलनेके सामर्थ्यका नाश करे। ११ ऊंचे स्वरसे वेदादिका पाठ करनेसे अथवा कठिन पदार्थ सुपारी आदिके खानेसे, बहुत हँसने और बहुत जँभाईके लेनेसे,ऊँच नीच स्थानमें सोनेसे, विषमाशन ( विरुद्ध भोजन ) के करनेसे कोपको प्राप्त हुई जो वायु वह मस्तक, नाक, होठ, ठोढी, ललाट और नेत्र इनकी संधियोमे प्राप्त हो मुखमे पीड़ा करे अर्थात् अर्दित रोगको उत्पन्न करे। उस पुरुषका मुख आधा टेढा हो जाय, उसकी नाड मुड़े नही, मस्तक हिला करे, अच्छी तरह बोला नही जाय, नेत्र भ्रुकुटी, गाल आदिकी विकृति ( पीडा, फरकना, टेढा ) हो जाय और जिस तरफ अर्दित रोग होय उस तरफकी नाड, ठोढी और दांत इनमें पीडा हो। इस व्याधिको अर्दित रोग कहते है। १२ वायु आधे शरीरको पकड सब शरीरकी नसोको सुखाकर

१४ क्रोष्टुशीर्ष, १५ मन्यास्तम्भ[२], १६ पंगु[३], १७ कलायखंज[४], १८ तूनी[५], १९ प्रतितूनी[६], २० खंज[७], २१ पादहर्ष[८], २२ गृध्रसी[९], २३ विश्वाची[१०], २४ अवबाहुक[११], २५ अपतंत्रक[१२],

---

-दहने अंगको अर्ध नारीश्वरके समान कार्य करनेको असामर्थ्य कर दे और संधिके बंधनोको शिथिल कर दे पीछे उस रोगीके सब वा आधे अंग हिले चले नही और उसको देखने स्पर्श करने आदिका थोडा भी ज्ञान नही रहे उसको एकांगरोग अथवा पक्षवध किवा पक्षाघात कहते हैं।

१ वातरक्तसे जानु, घोटूं इन दोनोकी संधिमें अत्यन्त पीडाकारक सूजन हो और स्यारके मस्तकके समान मोटी हो, उसको क्रोष्टुशीर्ष कहते हैं। २ दिनमें सोनेसे, अन्न, स्नान, नीचे ऊँचे स्थानमें सोनेसे, ऊंची वस्तुको विकृतिपूर्वक देखनेसे इन कारणोसे कोपको प्राप्त भई जो वात सो कफयुक्त होकर मन्यानाडीको स्तंभन कर दे। इस रोगको मन्यास्तम्भ कहते हैं ( अर्थात् गर्दन रह जावे )। ३ दोनो जांघोंकी नसोको पकड दोनों पैरोंको स्तभित कर दे, उसको पांगुला कहते है। ४ जो पुरुष चलते समय थरथर कॉपे और खञ्ज अर्थात् एक पैरसे हीन माल्रूम होय। इस रोगमें संधिके बन्धन शिथिल होते हैं, इस रोगको कलायखंज कहते है। ५ पक्वाशय और मूत्राशयमें उठी जो पीडा सो नीचे जायकर प्राप्त हो और गुदा तथा उपस्थ कहिये स्त्रीपुरुषोंके गुह्यस्थान इनमे भेद करे अर्थात् पीडा करे, उसको तूनी रोग कहते हैं। ६ गुदा और उपस्थ इनसे उठी जो पीडा, सो उलटी ऊपर जायकर प्राप्त हो और जोरसे पक्वाशयमें प्राप्त हो और तूनीके समान पीडा करे। उसको प्रतितूनी अथवा प्रतूनी भी कहते है। ७ कमरमे रहा हुआ वात जंघाकी नसोको ग्रहण कर एक पगको स्तंभित कर दे, उसको खञ्ज ( खोडा ) रोग कहते है। ८ जिसके पैर हर्षयुक्त ( पीडायुक्त झनझनाहट ) हों उसको पादहर्ष कहते हैं। यह रोग कफवातके कोपसे होता है। ९ प्रथम करके नीचेका भाग जिसको कूला कहते हैं उसको स्तंभित कर दे, पीछे क्रमसे कमर, पीठ, ऊरू, जानु, जंघा और पग इनको स्तंभित कर दे, अर्थात् ये रहि जायँ,वेदना और तोद कहिये चोटनेकी सी पीडा होय और वारंवार कंप होय, यह गृध्रसीरोग वादीसे होता है,वातकफसे होय तो इसमें तंद्रा और भारीपना और अरुचि ये विशेष होते हैं।१० बाहुक पिछाडीसे लेकर हाथके ऊपर भागपर्यन्त प्रत्येक उंगलियोके नीचे जो मोटी नसें हैं उनको दुष्ट कर हाथसे लेना, देना, पसरना, मुट्ठी मारना इत्यादि कार्योंका नाशकर्ता जो रोग होय उसको विश्वाची रोग कहते हैं। ११ कंधामें रहे जो वायु सो नसोका संकोच करता है,उसको अवबाहुक अथवा अपबाहुक रोग कहते हैं। १२ दृष्टिका स्तंभन होजाय, संज्ञा जाती रहे, गलेमें घुर घुर शब्द होय, वायु जब हृदयको छोडे तब रोगीको होश होय और वायु हृदयको व्याप्त करे तब फिर मोह हो जाय। इस भयंकर रोगको अपतानक कहते हैं। गर्भपातके होनेसे, अथवा अति रक्तस्रावके होनेसे अथवा अभिघात कहिये दण्डादिकोकी चोट लगनेसे जो प्रगट अपतन्त्रक रोग सो असाध्य है।

२६ व्रणायाम, २७ वातकंटक, २८ अपतानक, २९ अंगभेद, ३० अंगशोष, ३१ मिम्मिण, ३२ गद्गद, ३३ प्रत्यष्ठीलिका, ३४ अष्ठीला, ३५ वामनत्व, ३६ कुब्जत्व, ३७ अंगपीडा, ३८ अंगशूल, ३९ संकोच, ४० स्तंभ, ४१ रूक्षता, ४२ अंगभंग, ४३ अंगविभ्रंश, ४४ विड्ग्रह, ४५ बद्धविट्कता, ४६ मूकत्व, ४७ अतिजृंभ, ४८ अत्युद्गार, ४९ अंत्रकूजन ५० वातप्र-

---

१ जो वायु अभिघात करके व्रण उत्पन्न होनेसे उसमें पीडा करता है, उसको व्रणायाम कहते है। २ ऊँची नीची जगहमे पैर पडनेसे, अथवा श्रमके होनेसे वायु कुपित होकर टक्नीमे प्राप्त होकर पीडा करे इस रोगको वातकंटक कहते है। ३ रूक्षादि स्वकारणोंसे कोपको प्राप्त हुई जो वायु सो अपने स्थानको छोड ऊपर जायकर प्राप्त हो और हृदयमे जायकर पीडा करे, मस्तक और कनपटी इनमे पीडा करे और देहको धनुषके समान नवाय देवे और चले तो मूर्च्छित कर दे वह रोगी बडे कष्टसे श्वास लेय, नेत्र मिच जावें, अथवा टेढे हो जायँ, कबूतरके समान गुंजे तथा बेहोश हो, इस रोगको अपतानक कहते है। ४ जो वायु सब अंगोका भेद करता है अर्थात अंगमे टूटना उपजाता है उसको अंगभेद कहते हैं। ५ जो वायु सब अंगोको सुखाय देता है उस रोगको अंगशोष कहते है। ६ कफयुक्त वायु शब्दके बहनेवाली नाडीमे प्राप्त होकर मनुष्योके वचनको क्रियारहित मिम्मिण ऐसा कर दे। मिम्मिण कहिये गिनगिनायकर नाकसे बोलना। ७ जिस वायु करके कण्ठमें स्पष्ट शब्द नही निकले है उसको कल्लरोग कहते हैं। ८ जो वाताष्ठीला अत्यन्त पीडायुक्त हो वात, मूत्र, मलको रोधन करनेवाली और तिरछी प्रगट भई हो उसको प्रत्यष्ठीला कहते हैं। ९ नाभीके नीचे उत्पन्न हो और इधर उधर फिरे, अथवा अचल अष्ठीला गोल, पाषाणके समान कठिन और ऊपरका भाग कुछ लम्बा होय और आडी ऊँची होय और बहिर्मार्ग कहिये अधोवायु, मल, मूत्र इनका अवरोध कहिये रुकना हो ऐसी गांठको अष्ठीला अथवा वाताष्ठीला कहते हैं। १० दुष्ट हुआ वायु गर्भाशयमे जाकर गर्भको विकार करता है, उस करके मनुष्य बौना होता है, इस रोगको वामन रोग कहते हैं। ११ शिरागत वायु दुष्ट होकर पीठ अथवा छातीको कुबडा कर दे उसको कुब्जरोग कहते हैं। १२ जिस वायु करके सब अंगोंको पीडा होती है उस रोगको अंगपीडा कहते हैं। १३ जिस वायु करके सब अंगोमे शूल (चमका) चले उसको अङ्गशूल कहते है। १४ जिस वायु करके सब अंगोका संकोच (सूकडना) होय उसको संकोच कहते हैं। १५ जिस वायु करके सब अंगोका स्तम्भ होवे (सब अङ्ग स्तब्ध होवें) उसको स्तम्ब कहते हैं। १६ जो वायु शरीरको तेजहीन करती है, उसको रूक्ष कहते हैं। १७ जिस वायु करके अंगोंमें पीडा होती है उसको अंगभंग कहते है। १८ जिस वायु करके शरीरका कोई एक अवयव काष्ठ (लकडी) के समान चेतना रहित हो उसको अंगविभ्रंश कहते हैं। १९ जिस वायुकरके मलका अवरोध हो अर्थात् मल साफ नही निकले उसको विड्ग्रह कहते है। २० जिस वायु करके मल पक्वाशयमे संघट्ट (गाढा) हो उसको बद्धविट्क कहते है। २१ कफयुक्त वायु शब्दके वहनेवाली नाडियोमें प्राप्त होकर मनुष्योको वचन क्रिया-रहित कर दे उसको मूक रोग कहते है। २२ वायु दुष्ट होकर जम्भाई बहुत लावे उसको अतिजृम्भ कहते है। २३ आमाशयमे वायु दुष्ट होनेसे बहुत डकार आती हैं उसको अत्युद्गार कहते है। २४ जो वायु पक्वाशयमें रहकर आंतोंमे जाकर शब्द करता है उसको अन्त्रकूजन कहते है। २५ जो वायु गुदाके द्वार बाहर निकले उसको वातप्रवृत्ति कहते हैं।

वृत्ति, ५१ स्फुरण[१], ५२ शिरापूरण[२], ५३ कंपवायु[३], ५४ कार्श्य[४], ५५ श्यावता[५] ५६ प्रलाप[६], ५७ क्षिप्रमूत्रता[७], ५८ निद्रानाश[८], ५९ स्वेदनाश[९], ६० दुर्बलत्व[१०], ६१ बलक्षय[११], ६२ शुक्रातिप्रवृत्ति[१२], ६३ शुक्रकार्श्य[१३], ६४ शुक्रनाश[१४], ६५ अनवस्थिताचित्तत्व[१५], ६६ काठिन्य[१६], ६७ विरसास्यता[१७], ६८ कषायवक्त्रता[१८], ६९ आध्मान[१९], ७० प्रत्याध्मान[२०], ७१ शीतता[२१], ७२ रोमहर्ष[२२], ७३ भीरुत्व[२३], ७४ तोद[२४], ७५ कण्डू[२५], ७६ रसाज्ञता[२६], ७७ शब्दाज्ञता[२७], ७८ प्रसुप्ति[२८]

---

१ जिस वायुकरके अङ्ग फुरफुराता है उसको स्फुरण कहते हैं। २ वायु शिरा ( नाडी ) गत होनेसे शूल,नाडीका संकोच और स्थूलत्व करे और बाह्यायाम आभ्यन्तरायाम खल्ली और कुबडापन इन रोगोंको उत्पन्न करे।इसको शिरापूरण कहते हैं। ३ सब अङ्गोको और मस्तकको कँपावे उस वायुको वेपथु ( कम्प ) वायु कहते हैं।४ जो वायु सब अङ्गोको कृश कर दे उसको कार्श्य कहते हैं।५जिस वायु करके सब शरीर काले वर्णका हो जावे उसको श्याव कहते हैं। ६ अपने हेतुसे कुपित भई जो वात सो असंबद्ध ( अर्थरहित ) वाणी बोले अर्थात बकवाद करे, अथवा बडबड शब्द करे उसको प्रलाप कहते हैं। ७ जिस वायुकरके वारंवार मूते उसको क्षिप्रमूत्ररोग कहते हैं। ८ जिस वायुकरके निद्रा न आवे उसको निद्रानाश कहते हैं। ९ जिस वायुकरके शरीरको स्वेद ( पसीना ) नही आवे उसको स्वेदनाश कहते हैं। १० जिस वायुकरके पुरुषका बल हीन होवे उसको दुर्बलता (दुबलेपना ) कहते हैं। ११ जिस वायु करके शरीरके बलका क्षय होवे उसको बलक्षय कहते हैं। १२ शुक्रस्थानकी वायुका कोप होनेसे वह वायु बहुत शुक्र ( वीर्य ) को जलदी पतन करे उसको शुक्रातिपात कहते हैं। १३ जो वायु शुक्र (वीर्य)धातुको क्षीण कर दे उसको शुक्रकार्श्य कहते हैं। १४जिस वायुकरके शुक्र ( वीर्य ) नाश होवे उसको शुक्रनाश कहते हैं। १५ जिस वायु करके मन इन्द्रियको स्वस्थता नही रहती है उसको अनवस्थितचित्तत्व कहते हैं। १६ जिस वायु करके शरीर कठिन रहता है उसको काठिन्य कहते हैं।१७ जिस वायु करके मुखमें स्वाद नही रहे उसको विरसास्य कहते हैं। १८ जिस वायु करके मुख कषैला होवे उसको कषायवक्त्र कहते है। १९ गुडगुड शब्दयुक्त, अत्यन्तपीडा युक्त ऐसा उदर (पक्वाशय) अत्यन्त फूले अर्थात वादीसे भरकर चमडेकी थैलीके समान हो जाय इस भयंकर रोगको आध्मान कहते हैं,यह वातके रुकनेसे होती है। २० वही पूर्वोक्त आध्मान रोग आमाशयमें उत्पन्न होय तो उसको प्रत्याध्मान कहते है।इसमें पसवाडे और हृदय इनमें पीडा नही होय और वायु कफ करके व्याकुल होता है। २१ जिस वायु करके देह शीतल होय उसको शैत्यरोग कहते है। २२ वायु त्वचागत होनेसे सब शरीर रोमांच खडे हो तो उसको रोमहर्ष कहते है। २३ जिस करके भय उत्पन्न होता है उसको भीरुरोग कहते है। २४ जिस वायु करके शरीरमें सुई चुभानेकीसी पीडा हो उसको तोद कहते है। २५ जिस वायु करके शरीरमे खुजली चले उसको कण्डू कहते हैं। २६ जो मनुष्य भोजन करे उसकी जीभको मधुर ( मीठा ) खट्टा इत्यादि रसोंका ज्ञान न हो उस रोगको रसाज्ञान कहते है। २७ कान इन्द्रियमे वायु कुपित होनेसे शब्दका ज्ञान जाता रहे अर्थात् कोई शब्द करे तो सुननेमे नही आवे उसको शब्दाज्ञान कहते है।२८ जिस वायु करके त्वचामे स्पर्श करनेसे मृदु, कठिन, शीत, उष्ण पदार्थका ज्ञान नही होवे उसको प्रसुप्ति कहते है।

७९ गंधाज्ञत्वं और ८० दृशःक्षय। इस प्रकार वादीके अस्सी भेद जानने ॥१०२-११२॥

पित्तरोग।

**अथ पित्तभवा रोगाश्चत्वारिंशदिहोदिताः॥ धूमोद्गारो विदाहः स्यादुष्णाङ्गत्वं मतिभ्रमः ॥ ११३ ॥ कान्तिहानिः कंठशोषो मुखशोषोऽल्पशुक्रता। तिक्तास्यताऽम्लवक्त्रत्वं स्वेदस्रावोऽङ्गपाकता ॥ ११४ ॥ क्लमो हरितवर्णत्वमतृप्तिः पीतकामता। रक्तस्रावोऽङ्गहरणं लोहगंधास्यता तथा ॥ ११५ ॥ दौर्गन्ध्यं पीतमूत्रत्वमरतिः पीतविङ्कता। पीतावलोकनं पीतनेत्रता पीतदन्तता ॥११६॥ शीतेच्छा पीतनखता तेजोद्वेषोऽल्पनिद्रता। कोपश्च गात्रसादश्च भिन्नविङ्कत्वमन्धता ॥ ११७ ॥ उष्णोच्छ्वासत्वमुष्णत्वं मूत्रस्य च मलस्य च। तमसोऽदर्शनं पीतमण्डलानां न दर्शनम् ॥ ११८ ॥ निःसरत्वं च पित्तस्य चत्वारिंशद् रुजः स्मृताः ॥**

अर्थ-पित्तरोग ४० चालीस प्रकारका है, उसके नाम कहते हैं-१ धूमोद्गार[3] २ विदाह[4], ३ उष्णांगत्व[5], ४ मतिभ्रम[6], ५ कांतिहानि[7], ६ कंठशोष[8], ७ मुखशोष[9], ८ अल्पशुक्रता[10],

---

१ जिस वायु करके घ्राणेन्द्रियका ज्ञान जाता रहे अर्थात् सुगन्ध वा दुर्गन्ध कुछ भी समझमे नही आवे उसको गन्धाज्ञान कहते है । २ जिस वायु करके दृष्टिका नाश होता है अर्थात् कुछ पदार्थ नही दीखता उसको दृशःक्षय ( दृष्टिका नाश ) कहते हैं। ३ डकार आते समय मुखमेसे धुआंसा निकले वह धूमोद्गार रोग पित्तके कुपित होनेसे होता है। ४ जिस पित्तसे शरीरमे बहुत दाह हो उसको विदाह कहते है। ५ जिस पित्तसे सब अङ्ग उष्ण हो उसको उष्णांग कहते है। ६ जिस पित्तकरके बुद्धिकी चेष्टा ठिकानेपर न रहे उसको मतिभ्रम कहते है। ७ जिस पित्त करके शरीरके तेजका नाश होता है उसको कांतिहानि कहते है। ८ जिस पित्तकरके कण्ठका शोष ( सूखना ) होता है उसको कंठशोष कहते है। ९ जिस पित्तकरके मुख सूख जाता है उसको मुखशोष कहते है। १० जिस करके शुक्र ( वीर्य ) थोडा उत्पन्न होवे उसको अल्पवीर्य जानना।

९ तिक्तास्यता[१], १० अम्लवक्त्रत्व[२], ११ स्वेदस्राव[३], १२ अंगपाकता[४], १३ क्रम[५], १४ हरितवर्णत्व[६], १५ अतृप्ति[७], १६ पीतकायता[८], १७ रक्तस्राव[९], १८ अंगहरण[१०], १९ लोहगंधास्यता[११], २० दौर्गंध्य[१२], २१ पीतमूत्रत्व[१३], २२ अरति[१४], २३ पीतविट्कता[१५], २४ पीतावलोकन[१६], २५ पीतनेत्रता[१७], २६ पीतदंतता[१८], २७ शीतेच्छा[१९], २८ पीतनखता[२०], २९ तेजोद्वेष[२१], ३० अल्पनिद्रता[२२], ३१ कोप[२३], ३२ गात्रसाद[२४], ३३ भिन्नविट्कत्व[२५], ३४ अंधता[२६], ३५ उष्णोच्छ्वासत्व[२७],

---

१ जिस पित्तसे मुख कडुवा होता है उसको तिक्तास्य कहते हैं। २ जिस पित्त करके मुख खट्टासा रहे उसको अम्लवक्त्र कहते हैं। ३ जिस पित्तसे देहमें पसीना बहुत आवे उसको स्वेदस्राव कहते हैं। ४ जिस पित्तसे अङ्ग पक जाय उसको अङ्गपाक कहते हैं। ५ जिस पित्तके योगसे शरीरमें ग्लानि उत्पन्न होय उसको क्रम कहते हैं। ६ जिस पित्त करके देहका वर्ण हरा,नीला होजावे उसको हरितवर्ण कहते हैं। ७ जिस पित्तके योगसे कितना भी अच्छा भोजन पान किया हो तो भी भोजनपानकी इच्छा निवृत्ति नही होती है उसको अतृप्ति कहते हैं। ८ जिसमें सब शरीरका वर्ण पीला दीखे उसको पीतकाय कहते हैं। ९ जिस पित्तसे स्रोतो ( छिद्रो ) मेंसे अर्थात् मुख, नाक आदिसे रुधिरका स्राव होवे उसको रक्तस्राव कहते है। १० जिस पित्तके अङ्ग फट जाय उसको अङ्गहरण कहते हैं। ११ जिस पित्तसे मुखमेंसे अग्निमें तपाए लोहके गन्धके सदृश गन्ध आवे उसको लोहगंधास्य कहते हैं। १२ जिस पित्तके सब अङ्गोंसे बुरा गंध आवे उसको दौर्गन्ध कहते हैं। १३ जिस पित्त करके मूत्रका वर्ण पीला होवे उसको पीतमूत्रत्व कहते हैं। १४ जिस पित्त करके मनकी कभी पदार्थमें प्रीति नही रहती है उसको अरति कहते हैं। १५ जिस पित्त करके मल ( विष्ठा ) का वर्ण पीला होवे उसको पीतविट्क कहते है। १६ जिस पित्त करके पुरुष सब पदार्थोंको पीला वर्ण देखे उसको पीतावलोकन कहते हैं। १७ जिस पित्त करके नेत्र पीले वर्णके रहें उसको पीतनेत्र कहते हैं। १८ जिस पित्तसे दांत पीले वर्णके होवें उसको पीतदंत कहते हैं। १९ जिस पित्तसे पुरुषके शीतलजलादिकी इच्छा रहे उसको शीतेच्छा कहते हैं। २० जिस पित्तसे पुरुषके नख पीले हों उसको पीतनख कहते हैं। २१ जिस पित्तसे पुरुषसे सूर्यादिकोका तेज नही देखा जाय उसको तेजोद्वेष कहते हैं। २२ जिस पित्तसे पुरुषको निद्रा थोड़ी आवे उसको अल्पनिद्रता कहते हैं। २३ जिस पित्त करके पुरुषको हर किसी भी पदार्थपर सदा क्रोध आवे उसको कोप कहते हैं। २४ जिस पित्तसे शरीरके संधिभाग दूखें उसको गात्रसाद कहते हैं। २५ जिस पित्तसे पुरुषका मल ( विष्ठा ) पतला होवे उसको भिन्नविट्क कहते है। २६ जिस पित्तसे दृष्टिसे कुछ देखनेमें नही आवे उसको अन्ध कहते हैं। २७ जिस नासिकाके द्वारा गरम २ पवन निकले उसको उष्णोच्छ्वास कहते है।

३६ उष्णमूत्रत्व[1], ३७ उष्णमलत्व[2], ३८ तमोदर्शन[3], ३९ पीतमंडलदर्शन[4] और ४० निःसरत्व[5]। इस प्रकार चालीस प्रकारका पित्तरोग जानना ॥ ११३-११८ ॥

### कफरोग ।

**कफस्य विंशतिः प्रोक्ता रोगास्तन्द्रातिऽनिद्रता ॥ ११९ ॥ गौरवं मुखमाधुर्यं मुखलेपः प्रसेकता । श्वेतावलोकनं श्वेतविक्त्वं श्वेतमूत्रता ॥१२०॥ श्वेताङ्गवर्णता शैत्यमुष्णेच्छा तिक्तकामिता ॥ मलाधिक्यं च शुक्रस्य बाहुल्यं बहुमूत्रता ॥१२१॥ आलस्यं मन्दबुद्धित्वं तृप्तिर्घर्घरवाक्यता ॥ अचैतन्यं च गदिता विंशतिः श्लेष्मजा गदाः ॥ १२२ ॥**

अर्थ–कफरोग वीस प्रकारका है,जैसे–१तन्द्रा[6],२अति[7]निद्रा, ३ गौरव[8],४मुखमीठा[9] रहना, ५ मुखलेप[10], ६ प्रसेकता[11], ७ श्वेतदेखना[12], ८ श्वेतविष्ठाका उतरना[13], ९ श्वेतमूत्र[14] होना,१०देहका[15] वर्ण सफेद होना,११शैत्य[16],१२उष्णेछा[17],१३तिक्त कामिता[18], १४ मला[19]-

---

१ जिस पित्तसे पुरुषका मूत्र गरम उतरे उसको उष्णमूत्र कहते हैं। २ जिस पित्तसे मल ( विष्ठा ) गरम उतरे उसको उष्णमल कहते हैं। ३ जिससे नेत्रके सामने अन्धेरासा दीखे उसको तमोदर्शन कहते हैं। ४ जिस पित्तसे देहके ऊपर पीले वर्णके चकत्ते देखनेमें आवे उसको पीतमंडलदर्शन कहते हैं। ५ जो पित्त मुख तथा नासिकके द्वारा गिरे उसको निःसर कहते है।

६ जिस कफसे नेत्र भारी होते हैं उसको तन्द्रा कहते हैं। ७ जिस कफसे बहुत निद्रा आवे उसको अतिनिद्रा कहते हैं। ८ जिस कफसे सब शरीरमें जडता हो उसको गौरव कहते है। ९ जिस कफसे मुखमें निरन्तर मीठासा स्वाद आता रहे उसको मुखमाधुर्य कहते है। १० जिस कफसे मुख कफ करके लिपटा रहे उसको मुखलेप कहते हैं। ११ जिस कफसे मुखमेसे लार गिरा करे उसको प्रसेक कहते हैं। १२ जिस कफसे सब पदार्थ सफेद दीखे उसको श्वेतावलोकन कहते हैं। १३ जिस कफसे मल ( विष्ठा ) सफेद उतरे उसको श्वेतविट्क कहते हैं। १४ जिस कफ करके मूत्र सफेद उतरे उसको श्वेतमूत्र कहते हैं। १५ जिस कफसे सब अङ्गोका वर्ण सफेद हो जाय उसको श्वेताङ्गवर्ण कहते हैं। १६ जिस कफसे शर्दी बहुत होवे उसको शैत्य कहते है। १७ जिस कफ करके उष्ण सूर्य अग्नि आदिके तापनेकी इच्छा होवे उसको उष्णेच्छा कहते है। १८ जिस कफ करके तिक्त पदार्थ (मिरच) आदिके खानेकी इच्छा चले उसको तिक्तकामिता कहते है। १९ जिस कफके योगमें मल ( विष्ठा ) बहुत उतरे उसको मलाधिक्य कहते है।

धिक्य, १५ शुक्रबाहुल्य[1], १६ बहुमूत्रता[2], १७ आलस्य[3], १८ मन्द[4]बुद्धि, १९ तृप्ति[5], २० घर्घरवाक्यता[6], २१ अचैतन्य[7] । इस प्रकार कफके वीस रोग जानने । परन्तु यहां संख्या करनेपर २१ होते हैं, सो शैत्य और उष्णेच्छा एक माननेसे संख्या ठीक हो जाती है ॥ ११९–१२२ ॥

### रक्तरोग ।

**रक्तस्य च दश प्रोक्ता व्याधयस्तस्य गौरवम् । रक्तमण्डलता रक्तनेत्रत्वं रक्तमूत्रता ॥ १२३ ॥ रक्तष्ठीवनता रक्तपिटिकानां च दर्शनम् । उष्णत्वं पूतिगन्धित्वं पीडा पाकश्च जायते ॥ १२४ ॥**

अर्थ–रुधिरसे उत्पन्न होनेवाले १० रोग हैं, जैसे–१ गौरव[8], २ रक्तमण्डलता[9], ३ रक्तनेत्रत्व[10], ४ रक्तमूत्रता[11], ५ रक्तष्ठीवता[12], ६ रक्तपिटिकादर्शन[13], ७ उष्णत्व[14], ८ पूतिगंधित्व[15] ९ पीडा[16] और १० पाक[17] ऐसे दश प्रकारके हैं ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

### ओष्ठरोग ।

**चतुःसप्ततिसंख्याका मुखरोगास्तथोदिताः । तेष्वोष्ठरोगा गणिता एकादशमिता बुधैः ॥ १२५ ॥ वातपित्तकफैस्त्रेधा त्रिदोषैरसृजस्तथा।क्षतमांसार्बुदं चैव खण्डौष्ठश्च जलार्बुदम् १२६**

---

१ जिस कफ करके शुक्र ( वीर्य ) बहुत होवे तथा उतरे उसको शुक्रबाहुल्य कहते हैं । २ जिस कफ करके मूत्र बहुत उतरे उसको बहुमूत्र कहते हैं । ३ जिस कफसे मनुष्य भारी रहे, कोई काम करनेमे उत्सुकता नही रहे उसको आलस्य कहते है । ४ जिस करके बुद्धि मन्द होवे उसको मन्दबुद्धि कहते है । ५ जिस करके खाने पीनेमे इच्छा न चले उसको तृप्ति कहते हैं । ६ जिस कफसे बोलते समय कण्ठसे घरड घरड आवाज निकले उसको घर्घर्वाक्य कहते हैं । ७ जिस कफसे मनुष्य चैतन्यमे मन्द होय उसको अचैतन्य कहते है ।

८ जिस रक्तसे अंग जड होता है उसको रक्तगौरव कहते है । ९ जिस रक्तसे शरीरके ऊपर लालवर्णके चकत्ते उठे उसको रक्तमण्डल कहते है । १० जिस रक्तसे नेत्र लालवर्णके हो उसको रक्तनेत्र कहते है । ११ जिस रक्तसे लालवर्णका मूत्र मूते उसको रक्तमूत्र कहते है । १२ जिस रक्तसे लालवर्णका थूके उसको रक्तष्ठीवन कहते है । १३ जिस रक्तसे लालवर्णके फोडे ( फुन्सी ) अंगपर दीखे उसको रक्तपिटिकादर्शन कहते है । १४ जिस रक्तसे शरीरमे गरमी मालूम हो उसको उष्णत्व कहते हैं । १५ जिस रक्तसे शरीरमेंसे दुर्गन्ध आवे उसको पूतिगन्ध कहते है । १६ शरीरमें रक्त करके जो पीडा होती है उसको रक्तपीडा कहते है । १७ शरीरमें जो रुधिर पकता है उसको रक्तपाक कहते है ।

**मेदोऽर्बुदं चार्बुदं च रोगा एकादशौष्ठजाः।**

अर्थ-मुखके रोग चौहत्तर हैं, उनमें ओष्ठरोग ग्यारह प्रकारके हैं, जैसे-१वातज, २ पित्तज, ३ कफज, ४ संनिपातज, ५ रक्तज, ६ क्षतज, ७ मांसार्बुद, ८ खंडौष्ठ, ९ जलार्बुद, १० मेदोर्बुद ११ अर्बुद। ये ओष्ठके ग्यारह रोग हैं ॥ १२६ ॥

दन्तरोग।

**दन्तरोगा दशाख्याता दालनः कृमिदन्तकः ॥ १२७ ॥**
**दन्तहर्षः करालश्च दन्तचालश्च शर्करा।**
**अधिदन्तः श्यावदंतो दन्तभेदः कपालिका ॥ १२८ ॥**

अर्थ-दांतके १० रोग हैं, उनको कहते हैं-१ दालन, २ कृमिदन्त, ३ दंतहर्ष,

---

१ वादीके कोपसे होठ कर्कश, खरदरे, कठोर, काले होते है उनमे तीव्र पीडा हो और दो टुकडोंके समान होजाते हैं तथा होठकी त्वचा किंचित फट जाती है। २ पित्तसे होठ चारों ओरसे फुन्सियोंसे व्याप्त हो, उनमे पीडा होय तथा पक जावे और पीलेसे दीखे। ३ कफसे होठ त्वचाके समान वर्णवाले फुन्सियोसे व्याप्त होय, कुछ दूखे तथा मलाईके समान चिकने और शीतल तथा भारी हों। ४ सन्निपातसे होठ कभी काले, कभी पीले, उसी प्रकार कभी सफेद तथा अनेक प्रकारकी फुन्सियोसे व्याप्त हो। ५ रक्तसे होठोंमें खजूर फलके वर्णकी फुन्सियां हो, उनमेंसे रुधिर गिरे, तथा होठ रुधिरके समान लाल होय। ६ अभिघातसे ( चोट लगनेसे ) होठ सर्वत्र चिर जाय, पीडा होय, उनमें गॉठ होजाय तथा खुजली चलते समय पीव बहे। ७ मांस दुष्ट होनेसे होठ जड(भारी)मोटे होते हैं, मांसपिडके समान ऊंचे होय। इस रोगवाले मनुष्यके दोनो होठोंमे अथवा होठोंके प्रांतभागमें कीडे पड जाते हैं। ८ होठोके एक भागमें चीरा जावे और उनमेंसे स्राव होय तो उसको खंडौष्ठ कहते है। ९ मांसके भाग बढके होठ ऊँचे और मोटे होकर उनमेसे पानी स्रवे उसको जलार्बुद कहते हैं। १० मेदसे होठ घृतके झागसमान खुजलीसंयुक्त तथा भारी हों तथा उनसे स्फटिकके समान निर्मल स्राव बहुत होय, इसमे भया हुआ व्रण नही भरता है तथा उसमे मृदुता नही रहती है। ११ वातादिक दोष कुपित होनेसे होठोमें ग्रंथि उत्पन्न होती है, उसको अर्बुद कहते हैं।

१२ जिसके दॉतोंमे फोडनेकीसी पीडा होय, उसको दालनरोग कहते है, यह रोग वादीसे होता है। १३ वादीके योगसे दाँतोंमे काले छिद्र पड जायँ तथा हिलने लगें उनसे स्राव होय, शोथयुक्त पीडा होनेवाले और कारण विना दूखनेवाले ऐसे दांत होय, उसको कृमिदंतरोग कहते है। यहां दांतोमे काले छिद्र पडनेका यह कारण है कि दुष्टरुधिरसे कृमि (कीडा) पैदा होकर दांतोंमे छिद्र करते हैं। १४ शीतल, रूक्ष, खटाई इत्यादि पदार्थ और पवन इनके लगनेको जो दांत नही सह सके उसको दंतहर्ष कहते है। यह रोग पित्तवायुके कोपसे होता है, यह रोग वातज होनेपर भी उष्ण ( गरमी ) को नही सह सके, यह व्याधिका स्वभाव है।

४ कराल[1], ५ दंतचाल[2], ६दंतशर्करा[3],७अधिदंत[4], ८ श्यावदंत[5], ९ दंतभेद[6] और१०कपालिक[7] । इस प्रकार भेद जानने ॥ १२७ ॥ १२८ ॥

### दन्तमूल रोग ।

**तथा त्रयोदशमिता दंतमूलामयाः स्मृताः । शीतादोपकुशौ द्वौ तु दंतविद्रधिपुप्पुटौ ॥ १२९ ॥ अधिमांसो विदर्भश्च महासौषिरसौषिरौ।तथैव गतयः पञ्च वातात् पित्तात् कफादपि ॥१३०॥ संनिपातगतिश्चान्या रक्तनाडी च पञ्चमी ।**

अर्थ–अब दंतमूलके रोगोंको कहते हैं । तहां दांतकी जडके रोग तेरह हैं, जैसे–१ शीताद[8], २ उपकुश[9], ३ दंतविद्रधि[10], ४ पुप्पुट[11], ५ अधिमांस[12], ६ विदर्भ[13]

---

१ वादी धीरे धीरे मसूढेका आश्रय लेकर दांतोको टेढे तिरछे करे उसको करालरोग कहते है । यह रोग साध्य नही होता।२ वादीके योगसे तिस२ अभिवातादिक करके हनुसंधि ( टोढी ) में चोट लगनेसे दांत चलायमान हो जायँ, उसको दंतचाल अथवा हनुमोक्ष कहते हैं । ३ दातोंका मल पित्तवायुके प्रभावसे सूखकर रेतके समान खरदरा स्पर्श मालूम होय, उस रोगको दंतशर्करा कहते हैं ।४ वादीके योगसे दांतके ऊपर दूसरा दांत ऊगे उस समय पीडा होय, जब वह दांत ऊग आवे तब पीडा शांत होय, उसको अधिदंत अथवा खल्लीवर्द्धन कहते हैं।५ जो दांत रुधिरसे मिले पित्तसे जलेके समान सब काले होजाँय उसको श्यावदंत कहते है । ६ जिस व्याधि करके मुख टेढा होकर दांत टूटने लगें उसको दंतभेद कहते हैं ।यह व्याधि कफ करके होती है, इस दंतभंगकारी दोषके प्रभावसे मुख भी ठेढा होता है । ७ कपाल कहिये मट्टीके घडा आदिके जैसे टूक होते है ऐसे दांत मलकरके सहित होजाँय उसको कपालिका ऐसे कहते है । यह रोग दांतोका सदा नाश करता है ।

८ जिसके मसूढेमेंसे अकस्मात् रुधिर वहे और दांतोंका मांस दुर्गंधयुक्त, काला, पीबसहित तथा नरम होकर गिरे और दांतका मसूढा पकनेसे दूसरे मसूढेको पकावे, इस कफरुधिरसे प्रगट व्याधिको शीताद नाम कहते हैं । ९ जिसके मसूढेमें दाह होकर पाक हो और दांत हिलने लगें, मसूढोंमें घिसनेसे रुधिर मंद पीडाके साथ निकले,रुधिर निकलनेके पिछाडी फिर मसूढे फूलआवे और मुखमें वास आवे । इस पित्तरक्तकृत विकारको उपकुश कहते है। १०वातादिक दोष और रक्त कुपित होकर दांतोंके मसूढोके भीतर और वाहर सूजन करे और रुधिरसे मिली राध गिरावे, पीडा और दाह होय इसको दंतविद्रधि कहते हैं । ११ जिसके दो अथवा तीन दातोकी जडमें महान् सूजन होय, उसको दंतपुप्पुट रोग कहते है । यह व्याधि कफरक्तसे होती है । १२ जिसके पीछेकी डाढके नीचे अर्थात मसूढेमें वहुत सूजन होय और घोर पीडा होय तथा लार वहुत वहे, उसको अधिमांसक कहते है । यह कफके कोपसे होता है । १३ मसूढे रगड़नेसे सूजन वहुत होय और दांत हिलने लगें उसको विदर्भ कहते है । यह रोग चोटके लगनेसे होता है ।

७ महासौषिर, ८ सौषिर, ९ वातनाडी, १० पित्तनाडी, ११ कफनाडी, १२ सन्निपातनाडी और १३ रक्तनाडी, ऐसे तेरह प्रकारके दंतमूलरोग हैं ॥ १२९ ॥ १३० ॥

## जिह्वारोग ।

**तथा जिह्वामयाः षट् स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा॥१३१॥अल्लसश्च चतुर्थः स्यादधिजिह्वश्च पञ्चमः।षष्ठश्चैवोपजिह्वः स्यात्-**

अर्थ-जीभके रोग छः प्रकारके हैं, उनके नाम-१ वातज, २ पित्तज, ३ कफज, ४ अल्लस, ५ अधिजिह्व और ६ उपजिह्व। इस प्रकार जिह्वाके रोग छःप्रकारके हैं ॥ १३१ ॥

## तालुरोग ।

**-तथाऽष्टौ तालुजा गदाः॥१३२॥अर्बुदं तालुपिटिका कच्छपी मांससंहतिः।गलशुंडी तालुशोषस्तालुपाकश्च पुप्पुटः ॥१३३॥**

---

१ जिस त्रिदोष व्याधिसे मसूढेके समीपसे दांत हले और तालुओंमें छिद्र पड जाँय, दांत और होठ भी फट जायँ, उसको महासौषिर रोग कहते है। यह रोग मनुष्यको सात दिनमे मार डालता है। २ कफरुधिरसे दांतोंकी जडमें सूजन होय, उसमें पीडा और स्राव होय, उसको सौषिररोग कहते हैं। ३ दन्तमूलमें व्रण होनेसे उसके बीच नली होजाती है। उस नलीमें दुर्गन्धयुक्त राध वहने लगे उसको नाडी कहते है। जिसमें वात दुष्ट होनेसे शूलादिक होते है उसको वातनाडी कहते हैं। ४ उस पूर्वोक्त नाडीकी नलीमें दाहादिक पित्तके लक्षण होनेसे पित्तनाडी जानना। ५ जिस नाडीमेंसे गाढी और सफेद राध वहे उसमें खुजली और जडपना इत्यादि कफके लक्षण हो उसको कफनाडी कहते है। ६ जो नाडी तीनो दोषोंके लक्षणोंसे युक्त होती है उसको सन्निपातनाडी कहते हैं। ७ जिस नाडीमेसे लाल वर्णकी और दाहयुक्त राध वहे और उसमें पित्तके दाहादिक लक्षण हो उसको रक्तनाडी कहते हैं।

८ वादीसे जीभ फटीसी, प्रसुप्त ( अर्थात् रसका ज्ञान जाता रहे ) और पर्वतीय वृक्षके पत्रसमान काँटेयुक्त खरदरी हो। ९ पित्तसे जीभ पीली हो, उसमें दाह होय, तथा लम्बे लम्बे ताँबेके समान काँटे होय, इस रोगको लौकिकमें जाली अथवा जोडी कहते है। १० कफसे जीभ मोटी भारी होती है और उसमें सेमरकेसे काँटेके समान मांसके अंकुर होते है। ११ जीभके नीचे कफ रुधिरसे प्रगट ऐसी भयंकर सूजन होय उसको अल्लस कहते हैं। उसके बढनेसे स्तम्भ होय तथा जीभके मूलमे सूजन होय, यह रोग असाध्य है। १२ कफरक्तके विकारसे जीभके ऊपर जीभके अग्रभागके समान अंकुर आवें उसको अधिजिह्व कहते है। १३ कफरुधिरसे जिह्वाग्रके समान जैसा जीभका आगेका भाग होता है ऐसी सूजन जीभको नीची दवायकर उत्पन्न होय उसके योगसे लार वहुत वहे और उसमे खुजली तथा दाह होय, इस रोगको वैद्य उपजिह्व कहते हैं।

अर्थ—तालुएके रोग आठ प्रकारके हैं, जैसे—१ अर्बुद, २ तालुपिटिका, ३ कच्छपी, ४ मांससंहति, ५ गलशुण्डी, ६ तालुशोष, ७ तालुपाक और ८ पुप्पुट।

गलरोग।

गलरोगास्तथा ख्याता अष्टादशमिता बुधैः। वातरोहिणिका पूर्वा द्वितीया पित्तरोहिणी ॥१३४॥ कफरोहिणिका प्रोक्ता त्रिदोषैरपि रोहिणी। मेदोरोहिणिका वृन्दो गलौघो गलविद्रधिः ॥ १३५ ॥ स्वरहा तुण्डिकेरी च शतघ्नी तालुकोऽर्बुदम्। गिलायुर्वलयश्चापि वाताद् गण्डः कफात् तथा ॥ १३६ ॥ मेदोगण्डस्तथैव स्यादित्यष्टादश कण्ठजाः।

अर्थ—कंठरोग अठारह प्रकारके है, जैसे—१ वातरोहिणी, २ पित्तरोहिणी, ३ कफरोहिणी, ४ संनिपातरोहिणी, ५ मेदोरोहिणी, ६ वृन्द, ७ गलौघ,

---

१ रुधिरसे तालुएमें कमलकी कर्णिकाके समान सूजन होय और उसमे पीडा थोडी होय उसको अर्बुद कहते है। २ रुधिरसे तालुएमें लाल स्तब्ध ( लटर ऐसी सूजन होय ) उसमे पीडा और ज्वर होय उसको तालुपिटिका अथवा अध्रुव कहते हैं। ३ कफसे तालुएमे कछुआकी पीठके समान ऊंची सूजन होय उसमें पीडा थोडी होय वह शीघ्र बढे नही, उसको कच्छपी कहते हैं। कफ करके तालुएमें दुष्ट मांस होकरके जो सूजन होय और वह दूखे नही उसको मांससंहति कहते है। ५ कफरुधिरसे तालुए के मूलमे फूली वस्तीके समान सूजन होय, इसके प्रभावसे प्यास, खांसी, श्वास ये होते है। इस रोगको गलशुण्डी कहते हैं। ६ वादीसे तालु अत्यन्त सूखकर फट जाय तथा भयंकर श्वास होय, उसको तालुशोष कहते है। ७ पित्त कुपित होकर तालुएमे अत्यन्त भयंकर पाक ( पकी फुन्सी) उत्पन्न करे उसको तालुपाक कहते है। ८ मेदयुक्त कफ करके तालुएमें पीडारहित और स्थिर तथा बेरके समान सूजन होय उसको पुप्पुट वा तालुपुप्पुट कहते हैं।

९ जीभके चारो ओर अत्यन्त वेदनायुक्त जो मांसांकुर उत्पन्न होंय उनसे कंठका अवरोध होय है तथा कंपविनाम ( कंठ नवे ), स्तंभ आदि वातके विकार होते है इसको वातरोहिणी कहते है। १० पित्तसे प्रगट हुई रोहिणी शीघ्र ही बढे तथा पके, उसके योगसे तीव्र ज्वर होय। ११ जो रोहिणी कण्ठके मार्गको रोध ( रोक ) करे तथा हौले हौले पके तथा जिसके अंकुर कठिन होय, उसे कफजन्यरोहिणी जाननी। १२ त्रिदोषसे उत्पन्न हुई रोहिणी गंभीरपाकिनी होती है। तिस करके गला रुक जाता है, ज्वरयुक्त हो उसमें राध बहुत हो जिसमे ओषधिका प्रभाव नही चले और तीन दोषोंके लक्षणोसे युक्त हो वह तत्काल प्राणोंको हरण करे। १३ मेद दुष्ट होनेसे गलेमे फुन्सी उत्पन्न होती है उसको मेदोरोहिणी कहते है। १४ गलेमे ऊंची गोल तीव्रदाह तथा सूजन होय उसको वृन्द कहते है, यह वृन्द रक्तपित्तके कोपसे होता है। इसमें वायुका सम्बन्ध होनेसे चोटनेकीसी पीडा होय। १५ रक्तयुक्त कफसे गलेमें भारी सूजन होय, उसके योगसे कण्ठमें अन्न जलका अवरोध ( रुकावट ) होय तथा वायुका संचार होय नही, इसको गलौघ कहते है।

८ मलविद्रधि, ९ स्वरहा, १० तुंडिकेरी, ११ शतघ्नी, १२ तालुका, १३ अर्बुद, १४ गिलायु, १५ वलय, १६ वातगंड, १७ कफगंड, १८ मेदोगंड इस प्रकार अठारह प्रकारके कंठरोग हैं ॥ १३२–१३६ ॥

मुखान्तर्गतरोग।

**मुखान्तःसंश्रया रोगा ह्यष्टौ ख्याता महर्षिभिः ॥ १३७ ॥ मुखपाको भवेद् वातात् पित्तात् तद्वत् कफादपि। रक्ताच्च संनिपाताच्च पूत्यास्योर्ध्वगुदावपि ॥ १३८ ॥ अर्बुदं चेति मुखजाश्चतुःसप्ततिरामयाः।**

अर्थ–मुखके भीतरके रोग आठ प्रकारके हैं। जैसे-१ वातमुखपाक २ पित्तमुखपाक ३ कफमुखपाक ४ रक्तमुखपाक ५ संनिपातमुखपाक ६ दुर्गंधास्य ७ ऊर्ध्वगुद और ८ अर्बुद। इस प्रकार मुखपाक रोग आठ प्रकारका है ॥ १३७ ॥ १३८ ॥

कर्णरोग।

**कर्णरोगाः समाख्याता अष्टादशमिता बुधैः ॥ १३९ ॥**

---

१ जो सूजन, सब गलेमें व्याप्त होवे तथा जिसमें सर्वप्रकारकी पीडा हो उसको मलविद्रधि कहते हैं। २ वायुका मार्ग कफसे लिप्त होनेसे वारंवार नेत्रोंके आगे अन्धकार आकर जो पुरुष श्वासको छोडे, अथवा मूर्च्छा आकर श्वास निकले, जिसका स्वर भिन्न होय, कण्ठ सूखे और विमुक्त कहिये कण्ठ स्वाधीन नहीं अर्थात् थोडा भी अन्न खाया हो तथापि कण्ठके नीचे न उतरे, इस वातजरोगको स्वरहा (स्वरघ्न) कहते हैं। ३ वादीके योगसे मुखमें सब छाले हो जायँ और चिनमिनावे, मुख, जिह्वा, गला, होठ, मसूढे, दांत और तालु इन सबमें व्याप्त होता है। इस रोगको मुखपाक (मुखआना) अथवा सर्वसर कहते हैं। ४ पित्तसे मुखमें लाल तथा पीले छाले होय और दाह होवे। ५ कफसे मुखमें मन्द पीडा और त्वचाके समान वर्ण जिनका ऐसे छाले सर्वत्र होय। ६ रक्तके कोपसे मुखमें लाल फोडे होते है। उनके लक्षण पित्तके सदृश होय उसको रक्तज मुखपाक कहते है। ७ मुखमें जो फोडे होते है उनमें वात, पित्त और कफ इन तीनोंके लक्षण मिलनेसे उन्हें संनिपातज मुखपाक कहते हैं। ८ मुखमें फोडेकीसी दुर्गन्ध आवे उसको पूत्यास्य अर्थात् दुर्गन्धमुख कहते है। ९ मुखमें जो फोडे होते है उसके फटनेसे उनका आकार गुदाके सदृश होवे उसको ऊर्ध्वगुद कहते है। १० सनिपातके योगसे मुखमें गोल आकारवाली ग्रंथि उत्पन्न होती है उसको अर्बुद कहते है।

वातात् पित्तात् कफाद् रक्तात् संनिपाताच्च विद्रधिः । शोथोऽर्बुदं पूतिकर्णः कर्णार्शः कर्णहल्लिका ॥१४०॥ बाधिर्यं तंत्रिका कंडूः शष्कुली कृमिकर्णकः । कर्णनादः प्रतीनाह इत्यष्टादश कर्णजाः ॥ १४१ ॥

अर्थ–कर्णरोग १८ प्रकारके हैं, जैसे–१ वात, २ पित्त, ३ कफ, ४ रक्त,५संनिपात, ६ विद्रधि, ७ शोथ, ८ अर्बुद, ९ पूतिकर्ण,१० कर्णार्श, ११ कर्णहल्लिका १२ बाधिर्य,१३ तन्त्रिका, १४ कंडू, १५शष्कुली, १६कृमिकर्णक, १७कर्णनाद और१८ प्रतीनाह । इस प्रकार कानके रोग अठारह प्रकारके जानने ॥१३९–१४१ ॥

---

१ कर्ण रोगके १८ तरहके लक्षण हैं,जैसे-( १ ) वादीसे कानमें शब्द होय, पीडा होय, कानका मैल सूख जाय, पतला स्राव होय, सुनाई नही देवे अर्थात् बहरा हो जाय । ( २ ) पित्तसे कानमें सूजन होय, कान लाल हो,दाह हो, चिरासा हो जाय, तथा किञ्चित् पीला दुर्गन्धयुक्त स्राव होय । ( ३ ) कफके प्रभावसे विरुद्ध सुनना, खुजली चले, कठिन सूजन होय । सफेद और चिकना ऐसा स्राव होय ।(४) पित्तके लक्षणोंमें रक्तज कर्ण रोग जानना। ( ५ ) संनिपातसे सब लक्षण होय, स्राव होय वा जौनसा दोष अधिक होय वैसे ही दोषानुसार कर्णका स्राव होय । ( ६ ) कानमें खुजानेसे व्रण हो जाय, अथवा चोट लगनेसे कानमे व्रण होकर विद्रधि होय, उसी प्रकार वातादि दोषोंकरके दूसरे प्रकारकी विद्रधि होय जब वह फूटे तब उससे लाल पीला रुधिर बहे, नोचनेकीसी पीडा होय, धुआँसा निकलता मालूम होवे, चूसनेकीसी पीडा होवे । ( ७ ) सुकुमार स्त्री अथवा बालक कानकी लौरको एक साथ बहुत बढावे तो कानकी लौरमें सूजन होकर फूल जावे और पूर्ण हो उसको कर्णशोथ कहते है । ( ८ ) त्रिदोषके कोपसे कानमे गोलाकार मासकी फुन्सी उत्पन्न होवे उसको कर्णार्बुद कहते हैं । ( ९ ) कानमेंसे राध निकले दुर्गन्ध आवे उसको कर्णपूति कहते है । ( १० ) वातादिक दोष कुपित होनेसे कानमें मांसके अंकुर उत्पन्न होते है, उनमे शूल, कण्डू, दाह ये उपद्रव होते है उसको कर्णार्श कहते हैं । (११) पतंग, कनखजूरा, गिजाई आदिके कानमे घुसनेसे बेचैनी होय, जीव व्याकुल होय और कानमें पीडा होय तथा कानमे नोचनेकीसी पीडा होय, वह कीडा कानमें फडके और फिरे, उस समय कानमे घोर पीडा होय और जब वह बन्द होय तब पीडा बन्द होय इसको कर्णहल्लिका कहते है । ( १२ ) जिस समय केवल वायु अथवा कफयुक्त वायु शब्द वहनेवाली नाडियोमे स्थित होजाय तब उस पुरुषको शब्द सुनाई नही देता अर्थात् बहरा होजाता है, उसको बाधिर्य कहते है । ( १३ ) पित्तादि दोषो करके युक्त वायुसे कानोंमें वेणु ( वंशी ) का शब्द सुनाई देता है, उसको तन्त्रिका अथवा कर्णक्ष्वेड कहते हैं । ( १४ ) कफसे मिला हुआ वायु कानोमे खुजली उत्पन्न करता है उसको कर्णकण्डू कहते है । ( १५ ) मस्तकमें पाषाण, लकडी आदिका अभिघात होनेसे अथवा पानीमे गोता मारनेसे अथवा कानमे विद्रधि पकनेसे वायु कुपित होकर कानमेसे राध बहे, उसको कर्णशष्कुलि अथवा कर्णस्राव कहते है ।–

**कर्णपालीसमुद्भूता रोगाः सप्त इहोदिताः। उत्पातः पालिशोषश्च विदारी दुःखवर्धनः॥१४२॥ परिपोटश्च लेही च पिप्पली चेति संस्मृताः।**

अर्थ—कर्णपालीके रोग सात प्रकारके हैं, जैसे—१ उत्पात, २ पालिशोष, ३ विदारी, ४ दुःखवर्धन, ५ परिपोट, ६ लेही और ७ पिप्पली॥ १४२॥

कर्णमूलरोग।

**कर्णमूलामयाः पञ्च वातात् पित्तात् कफादपि॥ १४३॥ संनिपाताच्च रक्ताच्च—**

अर्थ—कर्णमूलरोगको वात, पित्त, कफ, सन्निपात और रक्त इन भेदोसे पांच प्रकारका जानना॥ १४३॥

---

—(१६) जिस समय कानमें कृमि पड जायँ, अथवा मक्खी अण्डा धरे, तब कृमिके लक्षण होते है। इसको कृमिकर्ण कहते हैं। (१७) वायु कानके छिद्रमें स्थित होनेसे अनेक प्रकारके स्वर, तथा भेरी, मृदंग और शंख इनके सदृश शब्द सुनाई देवे, इस रोगको कर्णनाद कहते हैं। (१८) जिस समय कानका मैल पतला होकर मुखमें और नाकमें उतरता है उसको प्रतीनाह रोग कहते हैं, इसमें आधा मस्तक दूखता है।

१ कानमें भारी आभरण (गहना) पहननेसे, चोटके लगनेसे अथवा कानको खींचनेसे रक्तपित्त कुपित होकर कानकी पालिमें हरा, नीला, अथवा लाल सूजन होय, उसमें दाह होवे, पीडा होवे और रक्त बहे, इस रोगको उत्पात कहते हैं। २ वायुके कोपसे कानकी पाली सुख जाय उसको पालिशोष कहते हैं। ३ कानकी लौर फटकर उसमें खुजली चले उसको विदारी कहते है। ४ दुष्टरीति करके कानको छेदने तथा बढानेसे खुजली, दाह, पीडायुक्त सूजन होय, वह पक जाय, उसको दुःखवर्धन कहते हैं। ५ सुकुमार स्त्री अथवा बालकोंके कानोंमे अलंकार (गहने) पहनानेके लिये प्रथम छिद्र करके कई दिन उनमें गहने नही पहने फिर किसी कालमें गहने पहननेका समय आवे तब ये छिद्र मोटे होनेके वास्ते कानमें सीक आदि डालकर बढानेको चाहे, तब उससे काले वर्णकी वा लाल वर्णकी सूजन उत्पन्न होवे, उसमें पीडा होवे, वह वादीसे होती है, उसको परिपोट कहते हैं। ६ कफ, रक्त, कृमिसे उत्पन्न भई तथा सवत्र विचरनेवाली जो सूजन कानकी पालीमें होय वह कानकी पालीको खाय जाय अर्थात् उसका मांस झरने लगे, उसको परिलेही ऐसे कहते है। ७ कानको बलपूर्वक पाली (लौर) में वायु कुपित होकर कफको संग लेकर कठिन तथा मन्द पीडा युक्त सूजनको प्रगट करे, उसमें खुजली चले, इस कफवातजन्य विकारको पिप्पली अथवा उन्मन्थक कहते हैं।

८ कानके नीचे मूलकी जगहपर गांठके आकार सूजन उत्पन्न हो, उसमें जिस दोषका

-तथा नासाभवा गदाः । अष्टादशैव संख्याताःप्रतिश्याया-स्तु तेष्वपि ॥ १४४ ॥ वातात् पित्तात् कफाद् रक्तात् सन्निपातेन पंचमः । आपीनसः पूतिनासो नासार्शो भ्रंशथुः क्षवः ॥ १४५ ॥ नासानाहः पूतिरक्तमर्बुदं दुष्टपीनसम् । नासाशोषो घ्राणपाकः पुटस्रावश्च दीपकः ॥ १४६ ॥

अर्थ-नासारोग कहिये नाकमे होनेवाले रोग अठारह हैं, जैसे-१वातप्रतिश्याय, २ पित्तप्रतिश्याय, ३ कफप्रत्तिश्याय, ४ रक्तप्रतिश्याय, ५ संनिपातप्रतिश्याय, ६ आपीनस, ७ पूतिनास, ८ नासार्श, ९ भ्रंशथु, १० क्षव, ११ नासानाह,

---

-कोप हुआ हो उसके लक्षण होते हैं। जैसे वायुका कोप होनेसे पीडा होती है, पित्तका कोप होनेसे दाह होता है, कफका कोप होनेसे खुजली होती है, सन्निपातसे तीनों लक्षण होते है और रक्तसे दाह होता है, इस प्रकारसे पांच कर्णमूल रोग जानने।

१ जिसके नाकका मार्ग रुक जाय, आच्छादित होय और उसमेसे पतला पानी निकले, गला, तालु, होठ ये सूख जायँ और कनपटी दूखे, गला बैठ जाय, ये वातके प्रतिश्याय (पीनस)के लक्षण जानने ।२जिसकी नाकसे दाह और पीला स्राव निकले,वह मनुष्य पीला और कृश हो जाय, उसका देह गरम रहे, नाकसे अग्निके समान धुआ निकले ये पित्तके पीनसके लक्षण हैं। ३ नाकसे सफेद पीला बहुत कफ गिरे, उसकी देह सफेद होजाय, नेत्रोंके ऊपर सूजन होय और मस्तक भारी रहे तथा गला, तालु तथा होठ और शिरमे खुजली विशेष चले, ये कफके लक्षण हैं। ४ रुधिरकी पीनसमें नाकसे रुधिर गिरे, नेत्र लाल होय, उरःक्षतकी पीडाके सदृश पीडा होय,श्वास अथवा मुखमे वास आवे,दुर्गंधिका ज्ञान नही होय,ये रक्तके पीनसके लक्षण है। ५ जिसके नाकमें वात, पित्त, कफके पीनसके लक्षण होय, तथा वह पीनस वारंवार होकर पककर अथवा विना पके नष्ट होजाय, उसको सन्निपातका पीनस कहते है। यह विदेह आचार्यके मतसे साध्य है। ६ जिसके नाक रुक जाय, वात शोणित कफसे नाक भीतरमे सूखासा रहे, गीला रहे,धूआंसा निकले, जिसके नाकमें सुगन्ध, दुर्गंध मालूम न हो उसके पीनस प्रगट भई जाननी। इस वातजन्य विकारको आपीनस कहते है। ७ गले और तालुएमे दुष्ट भया रक्तादिदोष करके वायुमिश्रित होकर नाक और मुखके मार्गसे दुर्गंधि निकले, इस रोगको पूतिनास वा पूतिनस्य कहते है। ८ वात, पित्त, कफ ये दूषित होकर त्वचा, मांस और मेद इनको दूषित करते है, उसके नाकमे मांसके अंकुर उत्पन्न होते है उसको नासार्श कहते है। ९ सूर्यकी गरमी करके मस्तक तप्त होनेसे पूर्व सञ्चित हुआ विदग्ध, गाढा, खारी ऐसा कफ नाकसे गिरे, उस व्याधिको भ्रंशथुरोग कहते है। १० नासिकाश्रित मर्म ( शृंगाटक मर्म ) के विषे वायु दुष्ट होकर कफसहित भारी शब्दको नासिकाके बाहर निकाले, इसको क्षव ( छींक ) कहते है। ११ वायुसहित कफ श्वासके मार्गको बन्द करे, तब नाकका स्वर अच्छी रीतिसे नही चले, इसको नासानाह कहते है।

१२ पूतिरक्त, १३ अर्बुद, १४ दुष्टपीनस, १५ नासाशोष, १६ घ्राणपाक, १७ पुटस्राव और १८ दीप्तक ऐसे ये अठारह नासिकाके रोग हैं ॥ १४६ ॥

शिरोरोग।

**तथा दश शिरोरोगा वातेनार्धावभेदकः। शिरस्तापश्च वातेन पित्तात् पीडा तृतीयिका ॥ १४७ ॥ चतुर्थी कफजा पीडा रक्तजा संनिपातजा। सूर्यावर्तात् शिरःपाकात् कृमिभिः शङ्खकेन च ॥ १४८ ॥**

अर्थ—मस्तकरोग दश प्रकारका है, जैसे-१ अर्धावभेदक २ वातजशिरोभितापं ३ पित्तज-

---

१ जो दुष्ट होनेसे अथवा कपालमे चोट लगनेसे नाकमेसे राध और रुधिर बहे, इसको पूतिरक्त अथवा पूयरक्त कहते हैं। २ वातादि दोष कुपित होनेसे नाकमें ऊंची गांठ उत्पन्न होती है। उसको नासार्बुद कहते हैं। ३ वारंवार जिसकी नाक झडा करे और सूख जाय नाकसे अच्छी तरह श्वास नही आवे, नाक रुक जाय और फिर खुल जाय। श्वास लेनेमें वास आवे तथा उस रोगीको सुगन्ध दुर्गन्धका ज्ञान न रहे। ऐसे लक्षण होनेसे इसको दुष्टप्रतिश्याय वा दुष्ट पीनस कहते है। यह कष्टसाध्य है। ४ वायुसे नासिकाका द्वार अत्यन्त तप्त होकर सूख जाय तव मनुष्य बडे कष्टसे ऊपर नीचेको श्वास लेय, उस रोगको नासाशोष कहते है। ५ जिसकी नाकमें पित्त दूषित होकर फुन्सी प्रगट करे और नाक भीतरसे पकजाय उसको व्रणपाक कहते है। ६ नाकसे गाढा, पीला अथवा सफेद, पतला दोष (कफ) स्रवे, उसको पुटस्राव कहते है। ७ नाक अत्यन्त दाहयुक्त होनेसे उसमें वायु धुआंके सदृश विचरे और नाक प्रदीप्त अर्थात् गर्म होवे उसको दीप्तक कहते है।

८ रूखे अन्नसे, अत्यन्त भोजन, अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन) पूर्वदिशाकी पवन सेवन करनेसे, बर्फसे, मैथुनसे, मलमूत्रादिका वेग धारण करनेसे, परिश्रम और दण्ड कसरत करनेसे इन कारणोसे कुपित भई जो केवल वात अथवा कफयुक्त वायु सो आधे मस्तकको ग्रहण कर मन्यानाडी, भ्रुकुटी, कनपटी, कान, नेत्र, ललाट ये सब एक ओरसे आधे दूखे, कुल्हाडीसे घाव करनेकीसी, अथवा अरणिके (आंच लगानेके काष्ठके) मथनेकीसी पीडा होय उसको अर्धावभेदक अर्थात् आधाशीशी कहते हैं यह रोग जब वहुत बढ जाता है तब एक ओरके कानसे बहरापन हो जाता है, अथवा एक ओरकी आंख मारी जाती है। जिस ओरकी पीडा होय उधर ये उपद्रव होते है। ९ जिसका मस्तक अकस्मात् दूखे और रात्रिमे विशेष दूखे, बांधनेसे अथवा सेकनेसे शांति होय, उसको वातजशिरस्ताप कहते है। जिसका मस्तक अङ्गारसे तपायेके समान गरम होवे और नाकमें दाह होय, शीतल पदार्थसे किवा रात्रिमें शांत हो उस मस्तकशूलको पित्तका जानना।

शिरोभिताप, ४ रक्तजशिरोभितापं, ५ रक्तजशिरोभितापं, ६ सन्निपातजाशिरोभिताप, ७ सूर्यावर्त, ८ शिरःपाकं, ९ कृमिज और १० शंखकं। ऐसे मस्तकके दश रोग हैं ॥ १४७ ॥ १४८ ॥

कपालरोग ।

**तथा कपालरोगाः स्युर्नव तेषूपशीर्षकम् । अरूंषिका विद्रधिश्च दारुणं पिटिकार्बुदम् ॥ १४९ ॥ इन्द्रलुप्तं च खालित्यं पलितं चेति ते नव ।**

अर्थ—कपालके रोग नव प्रकारके हैं—१ उपशीर्षक २ अरूंषिका ३ विद्रधि ४ दारुण ५ पिटिका ६ अर्बुद ७ इन्द्रलुप्त ८ खालित्य और ९ पलित। ऐसे नव प्रकारके कपालके रोग हैं ॥ १४९ ॥

---

१ जिसका मस्तक भीतरसे कफ करके लिप्त ( लिहासासा ) होवे, भारी, बँधासा और शीतल होवे तथा नेत्र सुजाकर मुखको सुजा देवें, इस मस्तक रोगको कफके कोपका जानना। २ रक्तजन्य मस्तकरोगमें पित्तकृत मस्तकरोगके सब लक्षण होते है तथा मस्तकका स्पर्श सहा नही जाता यह विशेष होता है। ३ त्रिदोषसे उत्पन्न मस्तकरोगमें वात, पित्त, कफ इन तीनोंके लक्षण होते हैं। ४ सूर्यके उदय होनेसे धीरे २ मस्तक दूखनेका आरम्भ होय और जैसे जैसे सूर्य बढे वैसे वैसे वह शूल नेत्र और भ्रकुटी ( भौंह ) में दो प्रहर दिन बढेतक बढता जाय और सूर्यके साथ बढकर फिर जैसे सूर्य अस्त होय वैसे २ पीडा मन्द होती जाय, शीतल और गरम उपचार करनेसे मनुष्यको सुख होय, इस सन्निपातिक विकारको सूर्यावर्त कहते हैं। ५ मस्तकके रुधिर, वसा, कफ और वायु इनके क्षय होनेसे अत्यन्त भयंकर मस्तकशूल होता है, छींक बहुत आवें, मस्तक गरम होवे तथा उसमें स्वेदन, वमन, धूमपान, नस्य और रुधिर निकालना ये कर्म करनेसे यह मस्तकशूल बढता है। इसको शिरःपाक अथवा क्षयजशिरोरोग कहते है। ६ जिसके मस्तकमें टांकीके तोडनेकीसी पीडा होवे, तथा कृमि भीतरसे मस्तक खाकर पोला कर देवें तथा भीतरसे मस्तक फडके तथा नाकमें रुधिर, राध और कीडे पडे। यह कृमिज शिरोरोग बडा भयङ्कर है। ७ दुष्ट हुए जो पित्त, रक्त और वायु सो बढकर नेत्रोंमें भयङ्कर सूजन उत्पन्न करे, इससे घोर पीडा और घोर दाह होय तथा नेत्र लाल बहुत हों। यह विषके वेगके समान बढकर गलेमें जाकर गलेको रोक दे। इस शङ्खके रोगसे रोगीके तीन दिनमें प्राणोंका नाश होवे, इन तीन दिनमें कुशल वैद्यकी औषध पहुँचनेसे रोगी बचे परन्तु प्रथम निश्चय कर चिकित्सा करनी चाहिये।

८ कपालरोगके लक्षण नव तरहके है, जैसे ( १ ) वातादिक दोष कुपित होनेसे मस्तकके समीप माथेके ऊपरके भागपर सूजन उत्पन्न होती है उसको उपशीर्षक कहते है। ( २ ) रुधिर, कफ और कृमिके कोपसे माथेमें बहुत फुन्सी होजायँ उनमेंसे चेप विशेष निकले और क्लेदयुक्त होय, इन फुन्सियोको अथवा व्रणोंको अरुंषिका कहते है। ( ३ ) वातादिक दोषोसे माथेमें गांठ होकर पके और फूटे, उसमें शूल दाह ये होंय उसको विद्रधि कहते है। ( ४ ) कफ वायुके कोपके केशोंकी जमीन-

वर्त्मरोग।

तथा नेत्रभवाः ख्याताश्चतुर्नवतिरामयाः ॥ १५० ॥ तेषु वर्त्मगदाः प्रोक्ताश्चतुर्विंशतिसञ्ज्ञिताः। कृच्छ्रोन्मीलःपक्ष्मशातः कफोत्क्लिष्टश्च लोहितः ॥ १५१ ॥ अरुङ्निमेषः कथितो रक्तोत्क्लिष्टः कुकूणकः। पक्ष्मार्शः पक्ष्मरोधश्च पित्तोत्क्लिष्टश्च पोथकी ॥१५२॥ श्लिष्टवर्त्मा च बहलः पक्ष्मोत्सङ्गस्तथार्बुदम्। कुम्भिका सिकतावर्त्मा लगणोऽञ्जननामिका ॥१५३॥ कर्दमः श्याववर्त्मादि बिसवर्त्म तथालजी। उत्क्लिष्टवर्त्मेति गदाः प्रोक्ता वर्त्मसमुद्भवाः ॥ १५४ ॥

अर्थ—नेत्रके रोग९४हैं, उनमें पलकोंके रोग२४हैं,जैसे—१कृच्छ्रोन्मील, २पक्ष्मशात,

---

—अति कठिन होकर खुजावे, खरदरी होय तथा बारीक फुन्सी होकर पके उसको दारुण कहते हैं। कफवातके कोपसे यह रोग होता है,इसका कारण यह है कि विना पित्तसे पाक नही होय। (५) त्रिदोषके कोपसे मस्तकमें गोल फुन्सी होती है उससे शूल दाह आदि पीडा होवे उसको पिटिका कहते हैं। (६) माथेमें वातादि दोष कुपित होकर रुधिर और मांसको दूषित कर मोटी और गोल ऐसी गाँठ उत्पन्न करे, उसमें पीडा थोडी होवे उसकी जड नीचे रहती है, यह गांठ बहुत देरमें बढती और बहुत देरमें पकती है उसको अर्बुद ऐसे कहते हैं। (७) पित्त वादीके साथ कुपित होकर रोमकूपोंमें अर्थात् बालोंके छिद्रोंमें प्राप्त हो, तब मस्तक अथवा अन्यस्थानके बाल झड़ने लगें पीछे कफ और रुधिर रोमकूप कहिये बालोंके प्रगट होनेके स्थानको रोक दे इससे फिर बाल नही ऊगे। इस रोगको इन्द्रलुप्त अर्थात् चांई रोग कहते है, यह रोग स्त्रियोंके नही होता कारण यह कि उनका रुधिर महीनेके महीने शुद्ध होता है और निकलता रहता है इसीसे वह रोमकूपोंको नही रोकता। (८) इन्द्रलुप्त सदृश ही खालित्यरोगके लक्षण हैं। तहां इन्द्रलुप्त रोग मूंछ डाढीमें होता है और खालित्य रोग शिरमे होता है। (९) क्रोध, शोक और श्रमके करनेसे शरीरमें उत्पन्न भई जो उष्मा (गरमी) और पित्त सो मस्तकमें जायकर बालोंको पकाय दे अर्थात् सफेद कर दे वह पलित रोग होता है।

१ वातादि दोष जब कोएके मार्गको संकुचित करें तब मनुष्य नेत्रको उघाडकर नहीं देख सके। उस रोगको कुञ्चन अथवा कृच्छ्रोन्मील कहते हैं। २ पलकोकी जड़में रहनेवाला पित्त कुपित होकर नेत्रोंके बाल जिनको बरुनी अथवा वांफणी कहते है उनका नाश करे, नेत्रोमे खुजली चले और दाह होय, उसको पक्ष्मशात कहते हैं।

३ कफोत्क्लिष्ट, ४ लोहित, ५ अरुड्ङ्निमेष, ६ रक्तोत्क्लिष्ट, ७ कुकूणक, ८ पक्ष्मार्श, ९ पक्ष्मरोध, १० पित्तोत्क्लिष्ट, ११ पोथकी, १२ श्लिष्टवर्त्म, १३ बहल, १४ पक्ष्मोत्संग, १५ अर्बुद, १६ कुंभिका, १७ सिकतावर्त्म, १८ अलगर्ण, १९ अंजननामिका, २० कर्दम,

---

१ कोएमे अल्पपीडा तथा बाहेरसे सूजा हुआ अत्यंत कीचडसे व्याप्त हो उसको कफोत्क्लिष्ट वा प्रक्लिन्नवर्त्म कहते है। २ रुधिरके संवन्धसे नेत्रके कोएके भीतरके भागमे लाल तथा नरम अंकुर बढे उसको शोणितार्श वा लोहित कहते है। इसको जैसे जैसे काटे तैसे तैसे बढता है, इस रक्तज व्याधिको विदेहाचार्य असाध्य मानते है। ३ वर्त्माश्रित (कोएमे आस्थित) जो वायु सो निमेष ( कहिये पलकके उघाडने मूँदनेवाली ) नसमें प्रविष्ट होकर वारंवार पलकोंको चलायमान करे उसको अरुड्ङ्निमेष (नेत्रका मिचकाना) कहते है। यह रोग सन्निपातज है। ४ नेत्रके कोएमें लम्बे खरदरे कठिन दुःखदायक ऐसे मांसांकुर होते है उसको शुष्कार्श अथवा रक्तोत्क्लिष्ट कहते है। ५ दूधके विकारसे छोटे वालकोंके नेत्रमे खुजली दाह और वारंवार स्राव होता है। उसको कुकुणक कहते है। ६ ककडीके वीजके बराबर, मन्दपीडायुक्त, पृथक् ऐसी फुन्सी कोएमें उठे उसको पक्ष्मार्श कहते है वह सन्निपातात्मक है ऐसा निमि और विदेह आचार्यका मत है। ७ जिसके नेत्रके कोयोंमे सूजनसे नेत्रके बराबर सूजन आय जावे उससे उस मनुष्यको कुछ नही दीखे। इस रोगको पक्ष्मरोध वा वर्त्मबन्ध कहते है। ८ वादीसे चलायमान कोएके वाल नेत्रमे प्रवेश करें और वे वारंवार नेत्रसे रगडे जायँ इसीसे नेत्रके काले वा सफेद भागमे सूजन होय, वह केश ( वाल ) जडसे टूट जावे. अतएव इस व्याधिको पक्ष्मकोप, उपपक्ष्म, अथवा पित्तोत्क्लिष्ट भी कहते है। ९ कोयोंमें लाल सरसोंके समान रुधिरस्रावयुक्त, खुजलीयुक्त, भारी तथा पीडासंयुक्त ऐसी फुन्सी होय उसको पोथकी कहते है। १० नेत्रके वर्त्म धोनेसे अथवा नही धोनेसे वारंवार चिपक जावे, कोए पककर राधसे नही चिकटें तो इस रोगको श्लिष्टवर्त्म कहते है। ११ नेत्रका कोया त्वचाके समान वर्ण तथा कठिन फुन्सीसे प्राप्त होय, उस रोगको वहलवर्त्मरोग कहते है। १२ नेत्रके ढकनेवाली वाफणी अर्थात् कोएमें फुन्सी होय और उसका मुख भीतर होय वह लाल वडी तथा खुजली संयुक्त होय, उसको पक्ष्मोत्संग पिटिका कहते है, यह त्रिदोषजन्य है। १३ नेत्रके कोएके भीतर गोल, मन्द वेदनायुक्त, कुछ लाल, जलदी बढनेवाली ऐसी जो गाँठ होय उसको अर्बुद कहते है, यह संनिपातज है। १४ पलकोंके समीप कुम्भिकाके वीजके समान फुन्सी होय वह पककर फूटजाय और फूटकर वहे उसको कुंभिका कहते है, कोई आचार्य कहते है कि कच्छदेशमे (दाडिम अनार)के वीजके आकार कुम्भिका होती है। १५ कोएमे जो पिडिका कठिन और वडी होकर सर्वत्र छोटी फुन्सियोसे व्याप्त होय उसको वर्त्मशर्कर, अथवा सिकतावर्त्म कहते है। १६ नेत्रके कोएमें वेरके समान वडी कठिन खुजली संयुक्त चिकनी गाँठ होय उसको अलगण कहते है यह रोग कफजन्य है, इसमें पीडा और पकना नही होता। १७ दाह तोद ( चोटनी संयुक्त ) लाल, नरम, छोटी मंद पीडा करनेवाली ऐसी फुन्सी नेत्रके कोएमे होय उसको अंजना कहते है, यह सन्निपातज है। १८ क्लिष्टवर्त्मरोग ( जो पूर्व कहा ) फिर पित्तयुक्त रुधिरको दहन करे–

२१ श्यावर्वर्त्म, २२ बिसवर्त्म, २३ अलंजी और २४ उत्क्लिष्टवर्त्म; इस प्रकार चौबीस प्रकारके पलकोंके रोग हैं ॥ १५०–१५४ ॥

नेत्रसन्धिगतरोग ।

**नेत्रसन्धिसमुद्भूता नव रोगाः प्रकीर्तिताः । जलस्रावः कफस्रावो रक्तस्रावश्च पर्वणी ॥ १५५ ॥ पूयस्रावः कृमिग्रंथिरुपनाहस्तथालजी । पूयालस इति प्रोक्ता रोगा नयनसंधिजाः ॥ १५६ ॥**

अर्थ–नेत्रोंकी संधिके रोग नौ हैं । जैसे–१ जलस्राव[5], २ कफस्राव[6], ३ रक्तस्राव[7], ४ पर्वणी[8], ५ पूयस्राव[9], ६ कृमिग्रंथि[10], उपनाह[11], ८ अलंजी[12] और ९ पूयालस[13] । इस प्रकार नेत्रके ९ रोग हैं ॥ १५५ ॥ १५६ ॥

---

–तब वह दही दूध माखनके समान गीला होजाय अत एव इस व्याधिको वर्त्मकर्दम कहते है ।

१ जिसके नेत्रके कोएके बाहर अथवा भीतर काली सूजन तथा पीडा होय उसको श्याववर्त्म कहते हैं, यह वाताधिक त्रिदोषजन्य है । २ तीनों दोष कुपित होकर नेत्रके कोयोंको सुजाय देवे, तथा उनमें छिद्र होजाय, उन कोयोंमेंसे कमलतंतुके समान भीतरसे पानी झरे, इस रोगको बिसवर्त्म कहते हैं । ३ नेत्रकी सफेद काली संधियोंमें तांबेके समान बडी फुन्सी उठे उसको अलजी कहते हैं । ४ जिसके नेत्रके पलक पृथक् पृथक् होय तथा जिसके पलक नीचे और खुले नही ऐसे नेत्रके कोए मिले नही उसको उत्क्लिष्टवर्त्म कहते है । इसको ही शालाक्यसिद्धांतवाला वातहतवर्त्म कहता है ।

५ जिसकी सन्धिमें पित्तसे पीला गरम जल वहे उसको जलस्राव कहते हैं । ६ जिसमेंसे सफेद, गाढी और चिकनी राध वहे उसको कफस्राव कहते है । ७ जिस विकारमेंसे विशेष गरम रुधिर वहे उसको रक्तस्राव कहते है । ८ नेत्रकी सफेद काली सधियोमें तांबेके समान छोटी गोल जो फुन्सी होवे और वह फुन्सी दाह होकर पके उसको पर्वणी कहते है । ९ नेत्रकी संधिमें सूजन होकर पके तथा उसमें राध वहे, उसको पूयस्राव कहते हैं । यह रोग संनिपातात्मक है । १० जिसके नेत्रके शुक्लभागकी संधिमें और पलकोंकी संधिमें उत्पन्न हुई अनेक प्रकारकी कृमि खुजली और गांठ उत्पन्न करे और नेत्रकी पलक और सफेदी भागके संधिमें प्राप्त होकर नेत्रके भीतरके भागको दूषित करे, भीतर फिरे, उसको कृमिग्रंथी कहते हैं । ११ नेत्रकी संधिमें बडी गांठ होवे, वह थोडी पके, उसमें खुजली बहुत नही हो उसको उपनाह कहते है । १२ नेत्रकी सफेद काली संधियोंमें तांबेके समान बडी फुन्सी उठे उसको अलजी कहते हैं । १३ नेत्रकी संधिमें सूजन होवे और पककर फूट जाय, उसमेंसे दुर्गंधि आवे और राध वहे तथा तोद (सुई छेदनेकीसी पीडा) होय, उसको पूयालस कहते है ।

### नेत्रके सफेदववूलेके रोग ।

**तथा शुक्लगता रोगा बुधैः प्रोक्तास्त्रयोदश । शिरोत्पातः शिराहर्षः शिराजालं च शुक्तिकः ॥१५७॥ शुक्लार्म चाधिमांसार्म प्रस्तार्यर्म च पिष्टकः । शिराजपिटिका चैव कफग्रन्थितकोऽर्जुनः ॥ १५८ ॥ स्नाय्वर्म चाधिमांसः स्यादिति शुक्लगता गदाः ।**

अर्थ—नेत्रके सफेद भागके ऊपर तेरह रोग होते हैं. जैसे—१ शिरोत्पात. २ शिराहर्ष, ३ शिराजाल, ४ शुक्तिक, ५ शुक्लार्म, ६ अधिमांसार्म, ७ प्रस्तार्यर्म, ८ पिष्टक, ९ शिराजपिटिका. १० कफग्रन्थितक, ११ अर्जुन, १२ स्नाय्वर्म, १३ अधिमांस, इस प्रकार नेत्रके सफेद भागमें होनेवाले १३ रोग जानने ॥ १५७ ॥ १५८ ॥

---

१ जिसके नेत्रकी नस पीडासहित अथवा पीडारहित तांबेके समान लाल रंगकी हो जाय और वह वरावर अधिकाधिक ( जियादहसे जियादह ) लाल होजाय, इस रोगको शिरोत्पात ( सवलवायु ) कहते है । यह रोग रक्तजन्य है । २ अज्ञान करके शिरोत्पात ( सवल वायु ) सवकी उपेक्षा करनेसे शिराहर्षरोग होता है अर्थात् इलाज न करनेसे शिराहर्ष रोग होता है, उसमे नेत्रोसे लाल स्वच्छ ऐसे आंसू गिरे और उस रोगीको नेत्रसे कुछ दिखलाई न देवे । ३ नेत्रके सफद भागमें शिरा ( नस ) का समूह जालीके समान होय और वह कठिन तथा रुधिरके समान लाल होवे, इसको शिराजाल कहते है । ४ नेत्रके सफेद भागमें श्याम वर्ण मांसतुल्य सीपीके समान जो विन्दु होय उसको शुक्तिक कहते है । ५ नेत्रके शुक्ल भागमें सफेद मृदु मांस वहुत दिनमे वढे, उसको शुक्लार्म कहते है । ६ नेत्रमें जो मांस विस्तीर्ण, स्थूल, कलेजाके समान ( कुछ लाल काला ) दीखे उसको अधिमांसार्म कहते है । ७ नेत्रोके सफेद भागमें पतला, विस्तीर्ण तथा लाल, ऐसा मांस वढे, उसको प्रस्तार्यर्मरोग कहते है । ८ कफ वायुके कोपसे शुक्र भागमें पिष्ट ( पिसा ) सो जो मांस वढे उसको पिष्टक कहते है, वह मलसे मिले अर्श ( ववासीर ) के समान होता है । ९ नेत्रके शुक्लभागमें शिरा ( नसों ) से व्याप्त सफेद फुन्सी होय, उसको शिराजपिटिका कहते है । वह कृष्णदुभागके समीप होती है । १० नेत्रके सफेद [illegible] कांसेके समान कठिन अथवा पानीके विन्दुके समान कुछ [illegible] गांठ हे[illegible] अथवा वलस कहते है । ११ शुक्लभागमें खरगोश[illegible] नेत्रमें उत्पन्न होय उसको अर्जुन कहते हैं । १२ नेत्रमे [illegible] मांस वढे उसको स्नाय्वर्म कहते है । १३ नेत्रके [illegible] वर्णका और मृदु ऐसा मांस वढता है उसको

नेत्रके काले बबूलेके रोग ।

**तथा कृष्णसमुद्भूताः पञ्च रोगाः प्रकीर्तिताः ॥ १५९ ॥ शुद्धशुक्रं शिराशुक्रं क्षतशुक्रं तथाजकः । शिरासङ्गश्च सर्वेऽपि प्रोक्ताः कृष्णगता गदाः ॥ १६० ॥**

अर्थ–नेत्रके काले भागमें होनेवाले रोग ५ हैं । जैसे–१ शुद्धशुक्र, २ शिराशुक्र ३ क्षतशुक्र, ४ अजक, ५ शिरासंग । इस प्रकार पांच भेद जानने ॥१५९॥१६०॥

काचबिंदुरोग ।

**काचं तु षड्विधं ज्ञेयं वातात् पित्तात् कफादपि । सन्निपाताच्च रक्ताच्च षष्ठं संसर्गसम्भवम् ॥ १६१ ॥**

अर्थ–वातादिदोष कुपित हो दृष्टिके पटलमें प्राप्त हो काचरोगको करते हैं, वह छः प्रकारका है, जैसे–१ वातज, २ पित्तज, ३ कफज, ४ सन्निपातज, ५ रक्तज, ६ संसर्गज, ऐसे मोतियाबिन्दु छः प्रकारके हैं ॥ १६१ ॥

---

१ नेत्रके काले भागमें अभिष्यन्दसे रोग उत्पन्न होवे, पीठापुष्प, शङ्ख, चन्द्र, कुन्दपुष्प इनके समान सफेद, आकाशके समान पतला जो व्रणरहित शुक्र कहिये फूला होय उसको शुद्धशुक्र कहते हैं, यह सुखसाध्य है । २ जिस शुक्रके बीचका मांस गिर जाय इससे शुक्रके स्थानमें गढला होजाय अथवा उसके विपरीत शिरावृत ( अर्थात् उसके चारों ओर मांस होय ) चञ्चल कहिये एक ठिकाने न रहे, शिराओं करके व्याप्त हो, नारीक हो गया हो दृष्टिका नाश करनेवाला हो, पटल कहिये परदोंके भीतर भया हो, चारों ओरसे लाल हो और बीचमें सफेद और बहुत दिनका शुक्र ( फूला ) हो इसको शिराशुक्र कहते है, यह असाध्य है । ३ नेत्रके काले भागमें शुक्र कहिये फूलासा होजाय और भीतरसे गढासा होय उसमें सुईके छेदके समान छिद्र पडा हुआ देखनेमें आवे, तथा नेत्रोंमेंसे अतिगरम और बहुतसा स्राव होवे, इस रोगको क्षतशुक्र कहते हैं । इसमें पीडा बहुत होती है । ४ काले भागमें बकरीकी शुष्क विष्टाके समान, दूखनेवाला लाल हो और गाढा, कुछ कालेसे आसू वहे उसको अजक कहते है । ५ नेत्रके कृष्ण भागमें वातादि दोषोंके योगसे चारों ओर सफेद शुक्र ( फूला ) फैला जावे उसे सन्निपातजन्य शिरासंग अथवा अक्षिपाकात्यय रोग जानना ।

६ दृष्टिके सर्व पटलोंके भीतर कालिकास्थिके समीप पहले पडदेमें तथा दूसरे पडदेमें तथा वातादि दोष प्राप्त होकर मनुष्य नेत्रके आगे अनेकप्रकारके स्वरूप देखे उसको तिमिर कहते है । फिर वहा तिमिर कुछ दिन रोगदशाको प्राप्त होता है उसको ( मोतियाबिन्दु ) कहते हैं । इसके आठ प्रकारके लक्षण है, जैसे–(१) वादीके काच(मोतियाबिंदु) में रोगीको मलीन,कुछ लाल तिरछी और भ्रमती ऐसी वस्तु दीखे इसे वातजकाचबिंदु जानना । (२) जिस मोतियाबिन्दसे रोगीको सूर्य खद्योत ( पटबीजना ) , इन्द्रधनुष, बिजली और नाचनेवाले मोर तथा सर्व वस्तु नीली दीखें, वह पित्तजकाचबिन्दु कहाता है ।–

नेत्रके सफेदवचूलेके रोग ।

**तथा शुक्लगता रोगा बुधैः प्रोक्तास्त्रयोदश । शिरोत्पातः शिराहर्षः शिराजालं च शुक्तिकः ॥१५७॥ शुक्लार्म चाधिमांसार्म प्रस्तार्यर्म च पिष्टकः । शिराजपिटिका चैव कफग्रन्थितकोऽर्जुनः ॥ १५८ ॥ स्नाय्वर्म चाधिमांसः स्यादिति शुक्लगता गदाः ।**

अर्थ—नेत्रके सफेद भागके ऊपर तेरह रोग होते हैं, जैसे—१ शिरोत्पात, २ शिराहर्ष, ३ शिराजाल, ४ शुक्तिक, ५ शुक्लार्म, ६ अधिमांसार्म, ७ प्रस्तार्यर्म, ८ पिष्टक, ९ शिराजपिटिका, १० कफग्रन्थितक, ११ अर्जुन, १२ स्नाय्वर्म, १३ अधिमांस, इस प्रकार नेत्रके सफेद भागमे होनेवाले १३ रोग जानने ॥ १५७ ॥ १५८ ॥

---

१ जिसके नेत्रकी नस पीडासहित अथवा पीडारहित तांबेके समान लाल रंगकी हो जाय और वह बराबर अधिकाधिक ( जियादहसे जियादह ) लाल होजाय, इस रोगको शिरोत्पात ( सबलवायु ) कहते हैं । यह रोग रक्तजन्य है । २ अज्ञान करके शिरोत्पात ( सबल वायु ) सबकी उपेक्षा करनेसे शिराहर्षरोग होता है अर्थात् इलाज न करनेसे शिराहर्ष रोग होता है, उसमें नेत्रोंसे लाल स्वच्छ ऐसे आंसू गिरे और उस रोगीको नेत्रसे कुछ दिखलाई न देवे । ३ नेत्रके सफद भागमे शिरा ( नस ) का समूह जालीके समान होय और वह कठिन तथा रुधिरके समान लाल होवे, इसको शिराजाल कहते है । ४ नेत्रके सफेद भागमें श्याम वर्ण मांसतुल्य सीपीके समान जो बिन्दु होय उसको शुक्तिक कहते है । ५ नेत्रके शुक्ल भागमे सफेद मृदु मांस वहुत दिनमें बढे, उसको शुक्लार्म कहते है । ६ नेत्रमें जो मांस विस्तीर्ण, स्थूल, कलेजाके समान ( कुछ लाल काला ) दीखे उसको अधिमांसार्म कहते है । ७ नेत्रोंके सफेद भागमें पतला, विस्तीर्ण तथा लाल, ऐसा मांस बढे, उसको प्रस्तार्यर्मरोग कहते है । ८ कफ वायुके कोपसे शुक्ल भागमें पिष्ट ( पिसा ) सो जो मांस बढे उसको पिष्टक कहते है, वह मलसे मिले अर्श ( ववासीर ) के समान होता है । ९ नेत्रके शुक्लभागमें शिरा ( नसों ) से व्याप्त सफेद फुन्सी होय, उसको शिराजपिटिका कहते हैं । वह कृष्णडुभागके समीप होती है । १० नेत्रके सफेद भागमें कांसेके समान कठिन अथवा पानीके बिन्दुके समान कुछ ऊंची जो गांठ होय उसको कफग्रंथितक अथवा वलस कहते है । ११ शुक्लभागमें खरगोशके रुधिरके समान जो बिन्दु ( बूंद ) नेत्रमें उत्पन्न होय उसको अर्जुन कहते हैं । १२ नेत्रमें जो कठिन तथा फलनेवाला स्राव रहित मांस बढे उसको स्नाय्वर्म कहते हैं । १३ नेत्रके सफेद भागमें लाल कमलके सदृश लाल वर्णका और मृदु ऐसा मांस बढता है उसको अधिमांस अथवा रक्तार्म कहते है ।

नेत्रके काले बबूलेके रोग।

**तथा कृष्णसमुद्भूताः पञ्च रोगाः प्रकीर्तिताः ॥ १५९ ॥**
**शुद्धशुक्रं शिराशुक्रं क्षतशुक्रं तथाजकः। शिरासङ्गश्च सर्वेऽपि प्रोक्ताः कृष्णगता गदाः ॥ १६० ॥**

अर्थ-नेत्रके काले भागमें होनेवाले रोग ५ हैं। जैसे-१ शुद्धशुक्र. २ शिराशुक्र ३ क्षतशुक्र. ४ अजक. ५. शिरासंग। इस प्रकार पांच भेद जानने ॥१५९॥१६०॥

काचबिंदुरोग।

**काचं तु षड्विधं ज्ञेयं वातात् पित्तात् कफादपि।**
**सन्निपाताच्च रक्ताच्च षष्ठं संसर्गसम्भवम् ॥ १६१ ॥**

अर्थ-वातादिदोष कुपित हो दृष्टिके पटलमें प्राप्त हो काचरोगको करते हैं, वह छः प्रकारका है. जैसे-१ वातज. २ पित्तज. ३ कफज, ४ सन्निपातज. ५ रक्तज, ६ संसर्गज. ऐसे मोतियाबिन्दु छः प्रकारके हैं ॥ १६१ ॥

---

१ नेत्रके काले भागमें अभिष्यन्दसे रोग तुमडीकी पीठापुष्प, शङ्ख, चन्द्र, कुन्दपुष्प इनके समान सफेद, आकाशके समान पतला जो व्रणरहित शुक्र कहिये फूला होय उसको शुद्धशुक्र कहते हैं, यह सुखसाध्य है। २ जिस शुक्रके बीजका मांस गिर जाय इसीसे शुक्रके स्थानमें गढेला होजाय अथवा उसके विपरीत पिशिताकृत (अर्थात उसके चारों ओर मांस होय) चञ्चल कहिये एक ठिकाने न रहै. शिराओं करके व्याप्त हो. चारोंक हो गया हो दृष्टिका नाश करनेवाला हो, पटल कहिये परदोंके भीतर भया हो. चारों ओरसे लाल हो और बीचमें सफेद और बहुत दिनका शुक्र (फूला) हो इसको शिराशुक्र कहते हैं, यह असाध्य है। ३ नेत्रके काले भागमें शुक्र कहिये फूलासा होजाय और भीतरसे गढासा होय उसमें सुईके छेदके समान छिद्र पडा हुआ देखनेमें आवै; तथा नेत्रोंमेंसे अतिगरम और बहुतसा स्राव होवे, इस रोगको क्षतशुक्र कहते हैं। इसमें पीडा बहुत होती है। ४ काले भागमें बकरीकी शुष्क विष्ठाके समान, दुखनेवाला लाल हो और गाढा, कुछ कालेसे आसू वह उसको अजक कहते हैं। ५ नेत्रके कृष्ण भागमें वातादि दोषोंके योगसे चारों ओर सफेद शुक्र (फूला) फैला जावे उसे सन्निपातजन्य शिरासंग अथवा अक्षिपाकात्यय रोग जानना।

६ दृष्टिके सर्व पटलोंके भीतर कालिकास्थिके समीप पहले पडदेमें तथा दूसरे पडदेमें तथा वातादि दोष प्राप्त होकर मनुष्य नेत्रके आगे अनेकप्रकारके स्वरूप देखे उसको तिमिर कहते हैं। फिर वहां तिमिर कुछ दिन रोगदशाको प्राप्त होता है उसको (मोतियाबिन्दु) कहते है। इसके आठ प्रकारके लक्षण है,जैसे-(१) वादीके काच(मोतियाबिंदु) में रोगीको मलीन,कुछ लाल तिरछी और भ्रमती ऐसी वस्तु दीखे इसे वातजकाचबिंदु जानना। (२) जिस मोतियाबिन्दसे रोगीको सूर्य खद्योत (पटबीजना), इन्द्रधनुष, बिजली और नाचनेवाले मोर तथा सर्व वस्तु नीली दीखे, वह पित्तजकाचबिन्दु कहाता है।-

तिमिररोग ।

**तिमिराणि षडेव स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ।**
**संसर्गेण च रक्तेन षष्ठं स्यात् संनिपाततः ॥ १६२ ॥**

अर्थ-नेत्रके पटल ( पडदे ) वातादि दोष दुष्ट हो तिमिररोगको प्रगट करते हैं । इससे मनुष्य नानावर्ण और विपरीत स्वरूप देखता है । उन दोषोंके लक्षण दृष्टिके पहिले पटलमें वातादि दोष जाननेसे । इस प्राणीको रूपवान् पदार्थ धुँधरे २ से दीखें तथा वातादि दोषोंके समान उन पदार्थोंके वर्ण दीखें, अर्थात् वादीसे काजलके समान, पित्तसे नीले रंगके, कफसे सफेद रंगके, रुधिरसे लालरंगके और सन्निपातसे अनेक वर्णके दीखते हैं । ऐसे लक्षण सर्व पटलोंमें जानने । दूसरे पडदोंसे वातादि दोष जानेसे दृष्टि विह्वल होती है । अर्थात् नेत्रके सामने मच्छर, मूली, बाल, मंडल, जाली, पताका, किरण, कुंडल, बादल ये सब अँधेरेके समूह और जालसे दीखते हैं।दूरका पदार्थ समीप और समीपका पदार्थ दूर है ऐसा मालूम होवे, बडे यत्नसे भी सुई पिरोनेमें न आवे इत्यादि । नेत्रके तीसरे पडदेमें दोष पहुँचनेसे ऊपरके पदार्थ कपडेसे मढे हुएसे दीखे और नीचेके बिलकुल नहीं दीखे । नाक और कानके विना मुख दीखें इत्यादि । वह तिमिर वात, पित्त, कफ, संसर्ग, रक्त और सान्निपात इनसे प्रगट छः प्रकारका है । इनके लक्षण मोतियाबिंदु जो छःप्रकारके प्रथम लिख आये हैं उन्हींके समान जानना ॥ १६२ ॥

लिंगनाशरोग ।

**लिङ्गनाशः सप्तधा स्याद् वातात् पित्तात् कफेन च ।**
**त्रिदोषैरुपसर्गेण संसर्गेणासृजा तथा ॥ १६३ ॥**

अर्थ-तिमिररोग नेत्रके चतुर्थ पटल ( पर्दे )मे पहुँचनेसे संपूर्ण दृष्टिका व्याप्त कर न दीखने समान करता है उसको लिंगनाश कहते हैं । वह लिंगनाश-१वातजन्य

---

-( ३ ) चिकनी और सफेद तथा पानीमें कर निकालनेके समान और भारी ऐसा रूप कफज काचरोगसे दीखे । ( ४ ) अनेक प्रकारके विपरीत ( अर्थात् एकके अनेक दो अथवा अनेक प्रकारके रूप ) दीखें । हीन अङ्गके अथवा अधिक अङ्गके रूप दीखें और ज्योतिःस्वरूपसे सब पदार्थ दीखें, इस काचबिंदुको संनिपातज जानना । ( ५ ) रक्तज काचबिंदुरोगमें लाल और अनेक प्रकारका तथा अन्धकार किञ्चित् सफेद काली और पीली ऐसी वस्तु दीखे । ( ६ ) रक्तके तेजसे मिश्रित हुए पित्तसे संसर्गजकाचबिन्दु होता है । इसके योगसे रोगीको दिशा आकाश और सूर्य ये पीले दीखें सर्वत्र सूर्य ऊगेसे दीखे तथा वृक्ष भी तेजस्वरूपसे दीखे, इसको परिम्लायी रोग भी कहते है । परिम्लायी पित्तको नील कहते है , इस रोगको कोई आचार्य रक्तपित्तसे होता है ऐसा कहते है ।

१ वातके लिङ्गनाशमें दृष्टिके ऊपर मोटा कांचके समान लाल मण्डल होता है, वह चञ्चल और खरदरा होता है ।

२ पित्तजन्य, ३ कफजन्य, ४ त्रिदोषजन्य, ५ उपसर्गजन्य, ६ संसर्गज और ७ रक्तसे इन सात कारणोंसे सात प्रकारका है ॥ १६३ ॥

दृष्टिरोग।

अष्टधा दृष्टिरोगाः स्युस्तेषु पित्तविदग्धकम्। अम्लपित्तविदग्धं च तथैवोष्णविदग्धकम् ॥१६४॥ नकुलान्ध्यं धूमरान्ध्यं गव्यान्ध्यं ह्रस्वदृष्टिकः। गम्भीरदृष्टिरित्येते रोगा दृष्टिगताः स्मृताः ॥१६५॥

अर्थ–दृष्टिमण्डलमें जो रोग होते हैं उनको दृष्टिरोग कहते हैं। वे–१ पित्तविदग्ध, २ अम्लपित्तविदग्ध, ३ उष्णविदग्ध, ४ नकुलान्ध्य, ५ धूमरान्ध्य, ६ गव्यान्ध्य, ७ ह्रस्वदृष्टि और ८ गम्भीर दृष्टि ऐसे आठ प्रकारके हैं ॥ १६४ ॥ १६५ ॥

---

१ पित्तसे दृष्टिमण्डल किंचित् नीला तथा कांचके समान पीला होय। २ कफसे सफेद, चिकना, कुन्दपुष्पके समान और चन्द्रमाके समान सफेद होय, उसके नाश करनेवाले कमलपत्रके ऊपर पानीके बूंदोंके समान दृष्टि निकली सफेद बूंद रुकीसी दिखाई दे। ३ त्रिदोषजन्य लिङ्गनाशमें तरह तरहके मण्डल होय तथा सब दोषोंके लक्षण दीखे। ४ उपसर्गजन्य अर्थात् अभिघातज लिङ्गनाश दो प्रकारका है एक निमित्तजन्य और दूसरा अनिमित्तजन्य। तिनमें शिरोऽभिताप करके ( विषवाले फलके मिले पवनका मस्तकमें स्पर्श होनेसे ) होय उसको निमित्तजन्य कहते हैं, इसमें रक्ताभिष्यन्दके लक्षण होते हैं। देव, ऋषि, गन्धर्व, महासर्प और सूर्य इनके सम्मुख दृष्टिको लगाकर ( टकटकी लगाकर ) देखनेसे जिस मनुष्यकी दृष्टि नष्ट होय उसको अनिमित्तज लिङ्गनाश कहते हैं। इस रोगमें नेत्र स्वच्छ दीखते हैं और दृष्टि वैडूर्यमणिके समान स्वच्छ कांतियुक्त श्यामवर्ण होय। ५ संसर्गज लिङ्गनाशमें पित्त दुष्ट हुए रुधिरसे दूषित होनेसे दृष्टिका मण्डल लाल और पीला हो जाता है। ६ रुधिरके दृष्टिमण्डल मूंगाके समान अथवा लाल कमलके समान लाल होवे।

७ दृष्टि–कोण रोगके आठ प्रकारके लक्षण हैं जैसे–( १ ) पित्त दुष्ट होकर बढनेसे जिस मनुष्यकी दृष्टि पीली होय तथा उसके रोगसे उस मनुष्यको सर्व पदार्थ पीले रंगके दीखें, उस दृष्टिको पित्तविदग्ध कहते हैं। ( २ ) अम्लपित्त करके मनुष्यको रद्द करनेके समय दृष्टिके अभिघात होनेसे सर्व पदार्थ सफेद रंगके दीखने लग जाते हैं उस दृष्टिरोगको अम्लपित्तविदग्ध कहते हैं। ( ३ ) तीसरे पटलमें दोष ( पित्त ) जाननेसे दिनमें रोगीको नहीं दीखे, रात्रिमें शीतलताके कारण पित्त कम होनेसे दीखे, उसको उष्णविदग्ध अथवा दिवांध रोग कहते हैं। (४) जिस पुरुषकी दृष्टि दोषोंसे व्याप्त होकर नौलेकी दृष्टिके समान चमके वह पुरुष दिनमें अनेक प्रकारके रूप देखे, इस विकारको नकुलांध्य कहते हैं। ( ५ ) शोक, ज्वर, परिश्रम और मस्तकताप इन कारणोंसे पित्त कुपित होकर जिसकी दृष्टिमें विकार होय, उससे उस मनुष्यको सर्व पदार्थ धूआके रंगसे दीखें। इस रोगको धूमरांध्य, धूमदर्शी अथवा शोकविदग्ध–दृष्टि कहते हैं।–

तिमिररोग ।

**तिमिराणि षडेव स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ।**
**संसर्गेण च रक्तेन षष्ठं स्यात् संनिपाततः ॥ १६२ ॥**

अर्थ-नेत्रके पटल ( पडदे ) वातादि दोष दुष्ट हो तिमिररोगको प्रगट करते हैं। इससे मनुष्य नानावर्ण और विपरीत स्वरूप देखता है। उन दोषोंके लक्षण दृष्टिके पहिले पटलमें वातादि दोष जाननेसे। इस प्राणीको रूपवान् पदार्थ धुँधरे २ से दीखे तथा वातादि दोषोंके समान उन पदार्थोंके वर्ण दीखे, अर्थात् वादीसे काजलके समान, पित्तसे नीले रंगके, कफसे सफेद रंगके, रुधिरसे लालरंगके और सन्निपातसे अनेक वर्णके दीखते हैं। ऐसे लक्षण सर्व पटलोंमे जानने। दूसरे पडदोंमे वातादि दोष जानेसे दृष्टि विह्वल होती है। अर्थात् नेत्रके सामने मच्छर, मूली, बाल, मंडल, जाली, पताका, किरण, कुंडल, बादल ये सब अँधेरेके समूह और जालसे दीखते हैं। दूरका पदार्थ समीप और समीपका पदार्थ दूर है ऐसा मालूम होवे, बडे यत्नसे भी सुई पिरोनेमे न आवे इत्यादि। नेत्रके तीसरे पडदेमे दोष पहुँचनेसे ऊपरके पदार्थ कपडेसे मढे हुएसे दीखे और नीचेके बिलकुल नही दीखे। नाक और कानके विना मुख दीखें इत्यादि। वह तिमिर वात, पित्त, कफ, संसर्ग, रक्त और सान्निपात इनसे प्रगट छः प्रकारका है। इनके लक्षण मोतियाबिंदु जो छःप्रकारके प्रथम लिख आये हैं उन्हीके समान जानना ॥ १६२ ॥

लिंगनाशरोग ।

**लिङ्गनाशः सप्तधा स्याद् वातात् पित्तात् कफेन च ।**
**त्रिदोषैरुपसर्गेण संसर्गेणासृजा तथा ॥ १६३ ॥**

अर्थ-तिमिररोग नेत्रके चतुर्थ पटल ( पर्दे )में पहुँचनेसे संपूर्ण दृष्टिका व्याप्त कर न दीखने समान करता है उसको लिंगनाश कहते हैं। वह लिंगनाश-१वातजन्य

-( ३ ) चिकनी और सफेद तथा पानीमें कर निकालनेके समान और भारी ऐसा रूप कफज काचरोगसे दीखे। ( ४ ) अनेक प्रकारके विपरीत ( अर्थात् एकके अनेक दो अथवा अनेक प्रकारके रूप ) दीखें। हीन अङ्गके अथवा अधिक अङ्गके रूप दीखें और ज्योतिःस्वरूपसे सब पदार्थ दीखें, इस काचबिंदुको संनिपातज जानना। ( ५ ) रक्तज काचबिंदुरोगमें लाल और अनेक प्रकारका तथा अन्धकार किञ्चित् सफेद काली और पीली ऐसी वस्तु दीखे। ( ६ ) रक्तके तेजसे मिश्रित हुए पित्तसे संसर्गजकाचबिन्दु होता है। इसके योगसे रोगीको दिशा आकाश और सूर्य ये पीले दीखें सर्वत्र सूर्य ऊगेसे दीखे तथा वृक्ष भी तेजस्वरूपसे दीखें, इसको परिम्लायी रोग भी कहते है। परिम्लायी पित्तको नील कहते हैं, इस रोगको कोई आचार्य रक्तपित्तसे होता है ऐसा कहते है।

१ वातके लिङ्गनाशमें दृष्टिके ऊपर मोटा कांचके समान लाल मण्डल होता है, वह चञ्चल और खरदरा होता है।

२ पित्तजन्य, ३ कफजन्य ४ त्रिदोषजन्य ५ उपसर्गजन्य, ६ संसर्गसे और ७ रक्तसे इन सात कारणोंसे सात प्रकारका है ॥ १६३ ॥

### दृष्टिरोग।

अष्टधा दृष्टिरोगाः स्युस्तेषु पित्तविदग्धकम् । अम्लपित्तविदग्धं च तथैवोष्णविदग्धकम् ॥१६४॥ नकुलान्ध्यं धूमरान्ध्यं रात्र्यान्ध्यं ह्रस्वदृष्टिकः । गम्भीरदृष्टिरित्येते रोगा दृष्टिगताः स्मृताः ॥१६५॥

अर्थ–दृष्टिमण्डलमें जो रोग होते हैं उनको दृष्टिरोग कहते हैं। वे–१ पित्तविदग्ध, २ अम्लपित्तविदग्ध, ३ उष्णविदग्ध, ४ नकुलान्ध्य, ५ धूमरान्ध्य, ६ रात्र्यान्ध्य, ७ ह्रस्वदृष्टि और ८ गम्भीर दृष्टि ऐसे आठ प्रकारके हैं ॥ १६४ ॥ १६५ ॥

तिमिररोग ।

**तिमिराणि षडेव स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ।**
**संसर्गेण च रक्तेन षष्ठं स्यात् संनिपाततः ॥ १६२ ॥**

अर्थ–नेत्रके पटल ( पडदे ) वातादि दोष दुष्ट हो तिमिररोगको प्रगट करते हैं । इससे मनुष्य नानावर्ण और विपरीत स्वरूप देखता है । उन दोषोके लक्षण दृष्टिके पहिले पटलमें वातादि दोष जाननेसे । इस प्राणीको रूपवान् पदार्थ धुँधरे २ से दीखें तथा वातादि दोषोके समान उन पदार्थोंके वर्ण दीखे, अर्थात् वादीसे काजलके समान, पित्तसे नीले रंगके, कफसे सफेद रंगके, रुधिरसे लालरंगके और सन्निपातसे अनेक वर्णके दीखते हैं । ऐसे लक्षण सर्व पटलोंमें जानने । दूसरे पडदोंसे वातादि दोष जानेसे.दृष्टि विह्वल होती है । अर्थात् नेत्रके सामने मच्छर, मूली, बाल, मंडल, जाली, पताका, किरण, कुंडल, बादल ये सब अँधेरेके समूह और जालसे दीखते हैं।दूरका पदार्थ समीप और समीपका पदार्थ दूर है ऐसा मालूम होवे, बडे यत्नसे भी सुई पिरोनेमें न आवे इत्यादि । नेत्रके तीसरे पडदेमे दोप पहुँचनेसे ऊपरके पदार्थ कपडेसे मढे हुएसे दीखे और नीचेके बिलकुल नही दीखें । नाक और कानके विना मुख दीखें इत्यादि । वह तिमिर वात, पित्त, कफ, संसर्ग, रक्त और सान्निपात इनसे प्रगट छः प्रकारका है । इनके लक्षण मोतियाबिंदु जो छःप्रकारके प्रथम लिख आये हैं उन्हीके समान जानना ॥ १६२ ॥

लिंगनाशरोग ।

**लिङ्गनाशः सप्तधा स्याद् वातात् पित्तात् कफेन च ।**
**त्रिदोषैरुपसर्गेण संसर्गेणासृजा तथा ॥ १६३ ॥**

अर्थ–तिमिररोग नेत्रके चतुर्थ पटल ( पर्दे )में पहुँचनेसे संपूर्ण दृष्टिका व्याप्त कर न दीखने समान करता है उसको लिंगनाश कहते हैं । वह लिंगनाश–१वातजन्य

–( ३ ) चिकनी और सफेद तथा पानीमे कर निकालनेके समान और भारी ऐसा रूप कफज काचरोगसे दीखे । (४) अनेक प्रकारके विपरीत ( अर्थात् एकके अनेक दो अथवा अनेक प्रकारके रूप ) दीखें । हीन अङ्गके अथवा अधिक अङ्गके रूप दीखें और ज्योतिःस्वरूपसे सब पदार्थ दीखें, इस काचबिंदुको संनिपातज जानना । ( ५ ) रक्तज काचबिंदुरोगमें लाल और अनेक प्रकारका तथा अन्धकार किञ्चित् सफेद काली और पीली ऐसी वस्तु दीखे । ( ६ ) रक्तके तेजसे मिश्रित हुए पित्तसे संसर्गजकाचबिन्दु होता है । इसके योगसे रोगीको दिशा आकाश और सूर्य ये पीले दीखे सर्वत्र सूर्य ऊगेसे दीखे तथा वृक्ष भी तेजस्वरूपसे दीखे, इसको परिम्लायी रोग भी कहते है । परिम्लायी पित्तको नील कहते है , इस रोगको कोई आचार्य रक्तपित्तसे होता है ऐसा कहते हैं ।

१ वातके लिङ्गनाशमें दृष्टिके ऊपर मोटा कांचके समान लाल मण्डल होता है, वह चञ्चल और खरदरा होता है ।

सर्वाक्षिरोग ।

सर्वाक्षिरोगाश्चाष्टौ स्युस्तेषु वातविपर्ययः । अल्पशोथो-ऽन्यतोवातस्तथा पाकात्ययः स्मृतः ॥ १६७ ॥ शुष्काक्षि-पाकश्च तथा शोफोऽम्ल्युषित एव च । हताधिमन्थ इत्येते रोगाः सर्वाक्षिसंभवाः ॥ १६८ ॥

अर्थ–संपूर्ण नेत्रमें व्याप्त जो रोग होते हैं उनको सर्वाक्षिरोग कहते हैं। वे आठ प्रकारके हैं, जैसे–१ वातविपर्यय, २ अल्पशोथ, ३ अन्यतोवात, ४ पाकात्यय ५ शुष्काक्षिपाक, ६ शोफ, ७ अम्ल्युषित और ८ हताधिमंथ । इस प्रकार सर्वाक्षिरोग आठ हैं । ये सब नेत्ररोग मिलानेसे ९४ होते हैं ॥ १६७ ॥ १६८ ॥

पंढरोग ।

पुंस्त्वदोपाश्च पञ्चव प्रोक्तास्तत्रेर्ष्यकः स्मृतः ।
आसेक्यश्चैव कुम्भीकः सुगन्धिः पण्ढसंज्ञकः ॥ १७२ ॥

---

१ वायु क्रमसे कभी भ्रुकुटीमें प्राप्त हो और कभी कभी नेत्रोंमें प्राप्त होकर अनेक प्रकारकी तीव्र पीडा करे उसको वातविपर्यय कहते हैं। २ नेत्रोंमें सूजन आकर पक जाय, उनमें आंसू वहें और पके गूलरके समान लाल होय ये अल्पशोथके लक्षण हैं। यह अल्पशोथ त्रिदोपज है। ३ घाटी ( घार ), कान, मस्तक, ठोडी, मन्यानाडी इनमें अथवा इतर ठिकाने स्थित जो वायु भ्रुकुटी ( भोंह ) वा नेत्रोंमें तोद भेदादि पीडा करे, उस रोगको अन्यतोवात कहते हैं, अर्थात अन्य स्थानोंमें स्थित होकर अन्य स्थानोंमें पीडा करे, इसीसे इसको अन्यतोवात कहते हैं। ४ वातादि दोषोंकरके नेत्रके काले भागपर छूर होके सब नेत्र सफेद हो जावे और तीव्र वेदना होय उसको पाकात्यय कहते हैं । ५ नेत्र खुले नहीं अर्थात संकुचित होजायँ, जिनकी वाफणी कठिन और रूक्ष होय, जिसके नेत्रोंमें दाह विशेष होय, यथार्थ दीखे नहीं, खोलनेमें बहुत दुःख होय उसको शुष्काक्षिपाकरोग कहते हैं। यह रोग रक्तसहित वादीसे होता है। ६ नेत्रोंमें सूजन आकर पक जायँ, उनमें आँसू वहें और पके गूलरके समान लाल होय, ये लक्षण शोथसहित नेत्ररोगके हैं, यह व्याधि त्रिदोपजन्य है। मध्यमें कुछ नीलवर्ण और आसपास लाल भरा हो ऐसे सर्वनेत्र पक जायँ और उनमें पीले रङ्गकी फुन्सी होय, उनमें दाह होकर सूजन होय तथा नेत्रोंसे पानी झरे। यह अम्ल ( खटाई ) के खानेसे होता है। इसको आध्युपित कहते है। ८ वातज अधिमन्थकी उपेक्षा करनेसे वह नेत्रोंको सुखाय देवे, उस मनुष्यके नेत्रोंमें तोद ( सुई चुभानेकीसी पीडा ) दाहादि भारी पीडा होय, यह हताधिमन्थनामक नेत्ररोग असाध्य है। इसको दृष्टयुत्क्षेपण, दृष्टिनिर्गम तथा सकलाक्षिशोप ऐसे कहते हैं इस रोगसे नेत्र सूखे कमलसे होजाते हैं।

अभिष्यन्दरोग ।

**अभिष्यन्दाश्च चत्वारो रक्ताद् दोषैस्त्रिभिस्तथा ॥**

अर्थ-संपूर्ण नेत्ररोगोंके कारणभूत ऐसे अभिष्यंद रोग चार हैं-१रक्ताभिष्यंद २ वाताभिष्यंद, ३ पित्ताभिष्यंद और ४ कफाभिष्यंद ।

अधिमन्थरोग ।

**चत्वारश्चाधिमन्थाः स्युर्वातपित्तकफास्रतः ॥ १६६ ॥**

अर्थ-उस अभिष्यंद रोगकी उपेक्षा करनेसे उससे वात, पित्त, कफ और रक्त इन चार कारणोंसे चार प्रकारके अधिमन्थ रोग उत्पन्न हों.उनके निस्तोद ( चपका) स्तंभ इत्यादि पूर्वोक्त अभिष्यंदोंके लक्षण होते हैं, वे कलासे गिरते हुए प्रतीत हों, नेत्रोंमें कोई धस गया ऐसा मालम हो, आधा मस्तक बहुत दूखे ये इसके विशेष लक्षण हैं । अधिमन्य वातज होनेसे वातके लक्षण शूलादिक, पित्तज होनेसे पित्तके लक्षण दाहादिक और कफज होनेसे कफके लक्षण खुजली आदि होते हैं । इस अधिमन्थमें अंजनादिक मिथ्या उपचार करनेसे दृष्टि नष्ट होती है । वह इस प्रकार है जैसे कफाधिमन्थ मिथ्योपचारसे कुपित होनेसे सात दिनमें, रक्ताधिमन्थ पांच दिनमें, वाताधिमंथ छः दिनमें और पित्ताधिमंथ तत्काल दृष्टिनाश करता है ॥१६६॥

---

-( ६ ) जो दोष ( कफ ) तीनों पटलोंमें रहे वह नक्तांध्य ( रतौंधी) को उत्पन्न करे वह पुरुष दिनमे सूर्यके तेजसे कफ कम होनेसे देखे, रात्रिको नही देखे उसको रात्र्यांध्य वा नक्तांध्य कहते है । ( ७ ) दृष्टिके मध्यगत पित्त दुष्ट होनेसे मनुष्यको दिनमें बड़े पदार्थ छोटे दीखें और रात्रिमें अच्छे दीखे उसको ह्रस्वदृष्टि कहते है । ( ८ ) जो दृष्टि वायुसे विकृत होकर भीतरसे संकुचित होवे तथा उसमे पीडा होवे उसको गंभीरदृष्टि कहते हैं ।

१ रक्ताभिष्यंदमें नेत्रोंसे लाल पानी गिरे, नेत्र लाल होंय, और नेत्रोके ओर पास रेखासी लाल दीखे और जो पित्ताभिष्यन्दके लक्षण कहे हैं वे सब लक्षण इसमें होय । २ वादीसे नेत्र दूखने आये हों उनमें सुई चुभनेकीसी पीडा होय, नेत्रोंका स्तम्भन ( ठहर जाना ), रोमांच, नेत्रोंमें रेत गिरने समान खटके तथा रूक्ष होय, मस्तकमें पीडा हो, नेत्रोसे पानी गिरे परन्तु नेत्र सूखेसे रहें और नेत्रोंसे जो पानी गिरे वह शीतल होय । ३ पित्तसे नेत्र दूखने आनेसे उनमें बहुत दाह हो, नेत्र पक जायँ उनमें शीतल पदार्थ लगानेकी इच्छा हो, नेत्रोंसे धुआं निकले अथवा नेत्रोंमे धुआं जानेकीसी पीडा होय तथा नेत्रोसे अश्रु ( आँसू ) बहुत पडें और गरम पानी निकले, आंख पीलीसी मालूम पडे । ४ कफसे नेत्र दूखने आये हों उसको गरम वस्तु नेत्रोंमे लगानेसे आराम मालूम ( अर्थात नेत्रोमे सेक अच्छा मालूम ) हो तथा नेत्र भारी होय, सूजन होय, खुजली चले । कीचडसे नेत्र दूषित हों और शीतल हों, उनमेंसे स्राव होय सो गाढा और बहुत होय ।

### सर्वाक्षिरोग।

सर्वाक्षिरोगाश्चाष्टौ स्युस्तेषु वातविपर्ययः। अल्पशोथो-ऽन्यतोवातस्तथा पाकात्ययः स्मृतः॥ १६७॥ शुष्काक्षि-पाकश्च तथा शोफोऽध्युषित एव च। हताधिमंथ इत्येते रोगाः सर्वाक्षिसंभवाः॥ १६८॥

अर्थ-संपूर्ण नेत्रमें व्याप्त जो रोग होते हैं उनको सर्वाक्षिरोग कहते हैं। ये आठ प्रकारके हैं, जैसे-१ वातविपर्यय, २ अल्पशोथ, ३ अन्यतोवात, ४ पाकात्यय, ५ शुष्काक्षिपाक, ६ शोफ, ७ अध्युषित और ८ हताधिमंथ। इस प्रकार सर्वाक्षिरोग आठ हैं। ये सब नेत्ररोग मिलानेसे ९४ होते हैं॥ १६७॥ १६८॥

### षंढरोग।

पुंस्त्वदोषाश्च पञ्चैव प्रोक्तास्तत्रेर्ष्यकः स्मृतः।
आसेक्यश्चैव कुम्भीकः सुगन्धिः षण्ढसंज्ञकः॥ १७१॥

---

१ वायु क्रमसे कभी भ्रुकुटीमें प्राप्त हो और कभी कभी नेत्रोंमें प्राप्त होकर अनेक प्रकारकी तीव्र पीडा करे उसको वातविपर्यय कहते हैं। २ नेत्रोंमें सूजन आकर पक जाय, उनमें आसू वहें और पके गूलरके समान लाल होय, ये अल्पशोथके लक्षण हैं। यह अल्पशोथ त्रिदोषज है। ३ घाटी ( धार ), कान, मस्तक, ठोडी, मन्यानाडी इनमें अथवा इतर ठिकाने स्थित जो वायु भ्रुकुटी ( भौंह ) वा नेत्रोंमें तोद भेदादि पीडा करे, उस रोगको अन्यतोवात कहते हैं, अर्थात् अन्य स्थानोंमें स्थित होकर अन्य स्थानोंमें पीडा करे, इसीसे इसको अन्यतोवात कहते हैं। ४ वातादि दोषोंकरके नेत्रके काले भागपर छर होके सब नेत्र सफेद हो जावे और तीव्र वेदना होय उसको पाकात्यय कहते हैं। ५ नेत्र खुले नही अर्थात संकुचित होजायँ, जिनकी बाफणी कठिन और रूक्ष होय, जिसके नेत्रोंमें दाह विशेष होय, यथार्थ दीखे नही, खोलनेमें बहुत दुःख होय उसको शुष्काक्षिपाकरोग कहते हैं। यह रोग रक्तसहित वादीसे होता है। ६ नेत्रोंमें सूजन आकर पक जायँ, उनमें आँसू वहें और पके गूलरके समान लाल होय, ये लक्षण शोथसहित नेत्ररोगके हे, यह व्याधि त्रिदोषजन्य है। मध्यमें कुछ नीलवर्ण और आसपास लाल भरा हो ऐसे सर्वनेत्र पक जायँ और उनमे पीले रङ्गकी फुन्सी होय, उनमें दाह होकर सूजन होय तथा नेत्रोंसे पानी झरे। यह अम्ल ( खटाई ) के खानेसे होता है। इसको आध्युषित कहते हैं। ८ वातज अधिमन्थकी उपेक्षा करनेसे वह नेत्रोंको सुखाय देवे, उस मनुष्यके नेत्रोंमें तोद ( सुई चुभानेकीसी पीडा ) दाहादि भारी पीडा होय, यह हताधिमन्थनामक नेत्ररोग असाध्य है। इसको दृष्ट्युत्क्षेपण, दृष्टिनिर्गम तथा सकलाक्षिशोष ऐसे कहते हैं इस रोगसे नेत्र सूखे कमलसे होजाते हैं।

अर्थ–पुंस्त्वदोष कहिये वीर्यक्षीणताके कारण मनुष्यको नपुंसकत्व प्राप्त होता है, उसे–१ईर्ष्यक, २ आसेक्य, ३ कुंभिक, ४ सुगंधि और ५ षंढ ऐसे पांच प्रकारका जानना ॥ १६९ ॥

शुक्ररोग ।

शुक्रदोषास्तथाऽष्टौ स्युर्वातात् पित्तात् कफेन च ।
कुणपं चास्रपित्ताभ्यां पूयाभं श्लेष्मपित्ततः ॥ १७० ॥
क्षीणं च वातपित्ताभ्यां ग्रन्थिलं श्लेष्मवाततः ।
मलाभं संनिपाताच्च शुक्रदोषा इतीरिताः ॥ १७१ ॥

अर्थ–१वातजन्य, २पित्तजन्य ३ कफजन्य. ४ रक्तपित्तजन्यकुणपसंज्ञक, ५ कफपित्त-

---

१ जो मनुष्य दूसरेको मैथुन करते देख आप मैथुन करे उसको ईर्ष्यक नपुंसक कहते हैं. इसका दूसरा पर्यायवाचक नाम दृग्योनि है। २ मातापिताके अति अल्परजवीर्यसे जो गर्भ रहे वह आसेक्यनामक नपुंसक होता है। वह अन्य पुरुषसे अपने मुखमें मैथुन कराकर उसके वीर्यको खा जाय, तब उसको चैतन्यता ( अर्थात् लिङ्ग सतर ) होवे तब स्त्रीसे मैथुन करे, इसका दूसरा नाम मुखयोनि है। ३ जो पुरुष पहले अपनी गुदा भंजन करावे जब उसको चैतन्यता प्राप्त हो तब स्त्रीके विषे पुरुषके समान प्रवृत्त होय उसको कुम्भिक नपुंसक कहते हैं. इसका गुदायोनि यह पर्याय शब्द है। इस कुम्भिक नपुंसककी उत्पत्ति ऐसे होती है कि ऋतुकालमें अल्परजस्क स्त्रीसे श्लेष्मरेतवाले पुरुषके संभोग करनेसे उस स्त्रीका कामदेव शांत न हो इस कारण उस स्त्रीका मन अन्य पुरुषसे सम्भोग करनेकी इच्छा करे तब उसके कुम्भिकनामक नपुंसक होता है। कोई आचार्य कुम्भिक नपुंसकका लक्षण ऐसा कहते है कि जो पुरुष लौंडेबाजी करते हैं, वे पहले स्त्रीके पीछे बैठकर पशुके समान शिथिल लिङ्गसे ही उसकी गुदा भञ्जन करें। इस प्रकार करनेसे जब चैतन्यता प्राप्त हो तब मैथुन करें। उसको कुम्भिकनामक नपुंसक कहते हैं। ४ जो पुरुष दुष्ट योनिमें उत्पन्न होय उसको योनि तथा लिंगके सूंघनसे चैतन्यता प्राप्त होय उसको सुगंधि वा सौगंधिक तथा नासायोनि कहते हैं। ५ जो पुरुष ऋतुकालमें मोहसे स्त्रीके सदृश प्रवृत्त होवे अर्थात् आप नीचेसे सीधा होकर ऊपर स्त्रीको चढायकर मैथुन करे उससे जो गर्भ रहे वह पुरुष स्त्रीकीसी चेष्टा करे और स्त्रीके आकार होय स्त्रीकी चेष्टा करे। अर्थात् ( स्त्रीके समान नीचे सोकर अन्य पुरुषसे अपने लिङ्गके ऊपर वीर्य पतन करावे )।

६ वादीसे शुक्र झागवाला, सूखा. कुछ गाढा और थोडा तथा क्षीण हो यह गर्भके अर्थका नही है। ७ पित्तसे दूषित शुक्र नीला पीला अत्यन्त गरम होता है, उससे बुरी वास आवे और जब निकले तब लिङ्गमें दाह होय। ८ कफसे शुक्र ( वीर्य ) शुक्रवहा नाडियोंके मार्ग रुकनेसे अत्यन्त गाढा हो जाता है। ९ कुणप शुक्र दोषमें शुक्रकी गन्ध मुर्दाके सदृश आवे

जन्य पूयाभ, ६ वातपित्तजन्य क्षीण, ७ कफवातजन्यग्रन्थिल, ८ संनिपातजन्यमलाभ ऐसे पुरुषोंके आठ शुक्रधातुके दोष हैं ॥ १७० ॥ १७१ ॥

स्त्रियोंके आर्तवदोष।

अथ स्त्रीरोगनामानि प्रोच्यन्ते पूर्वशास्त्रतः।
अष्टावार्तवदोषाः स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ १७२ ॥
पूयाभं कुणपं ग्रन्थिः क्षीणं मलसमं तथा।

अर्थ-स्त्रियोंका आर्तव कहिये ऋतुसमयका जो रुधिर बहता है उसको रज कहते हैं। उसके दोष आठ प्रकारके है. जैसे-१ वातज, २ पित्तज, ३ कफज, ४ पूयाभ, ५ कुणप, ६ ग्रंथि, ७ क्षीण और ८ मलसम। इस प्रकार आर्तवदोष आठ प्रकारके हैं ॥ १७२ ॥

प्रदररोग।

तथा च रक्तप्रदरं चतुर्विधमुदाहृतम् ॥ १७३ ॥
वातपित्तकफैस्त्रेधा चतुर्थं संनिपाततः।

अर्थ-रक्तप्रदरके-१ वातजन्य, २ पित्तजन्य ३ कफजन्य और ४ संनिपातजन्य इस प्रकार चार भेद हैं ॥ १७३ ॥

---

१ पित्त कफसे दूषित शुक्रमें राधकीसी वास आवे। २ पित्तवादीसे शुक्र क्षीण होजाता है। ३ कफवादीसे शुक्र गांठदार होता है। ४ संनिपातसे दूषित हुए शुक्रमें सब दोषोंके लक्षण होते है और पीडा होय तथा उसमें मूत्र और विष्टाकीसी वास आवे।

५ आर्तव अर्थात् स्त्रियोंके यौवनमें महीनेके महीने जो योनिके द्वारा रज निकलता है सो आठ प्रकारके दोष वात, पित्त, कफ, रक्त, द्वंद्व और संनिपात इन करके दुष्ट होनेसे गर्भधारणके अयोग्य होता है। उन उन दोषोंके अनुसार शुक्र दोषोंके लक्षण जान लेना।

६ विरुद्ध मद्यसेवन, अजीर्ण, गर्भपात, अतिमैथुन, अत्यन्त भोजन, अत्यन्त बोझेका उठाना तथा दिनमें सोना इत्यादिक सर्व कारणों करके स्त्रियोंका रज दुष्ट होकर जो प्रवाह वहे उसको प्रदर कहते हैं। उसके पूर्वरूप ये है-अंगोंका टूटना, पीडा, दुर्बलता ग्लानि, मूर्च्छा, प्यास, दाह, प्रलाप, देहमें पिलास, नेत्रोंमें तन्द्रा और वातजन्य रोग इत्यादि उपद्रव होते है। ७ वातसे प्रदर रूक्ष, लाल, झागसंयुक्त मास और सफेद पानीके समान थोडा वहे, उसमे वादीकी आक्षेपकादि पीडा होती है। ८ पित्तसे किंचित पीला, नीला, काला, लाल, गरम, ऐसा प्रदर वहे उसमें दाह चिमचिमादि पीडा होय तथा उसका वेग अत्यन्त होय। ९ कफसे आमरस ( कच्चा रस ) संयुक्त, चिकना, किंचित पीला, मांसके धुले जलके समान स्राव होय, इसको श्वेतप्रदर अथवा सोमरोग कहते है। १० जो प्रदर शहद, घृत, हरिताल और मजा इनके रंगके समान तथा मुर्दाकीसी दुर्गंधियुक्त होय इसको त्रिदोषज प्रदर जानना, यह असाध्य है अर्थात् इसकी वैद्य चिकित्सा न करे।

## योनिरोग ।

**विंशतिर्योनिरोगाः स्युर्वातात् पित्तात् कफादपि ॥ १७४ ॥**
**संनिपाताच्च रक्ताच्च लोहितक्षयतस्तथा ।**
**शुष्का च वामिनी चैव षण्ढी चान्तर्मुखी तथा ॥ १७५ ॥**
**सूचीमुखी विप्लुता च जातघ्नी च परिप्लुता ।**
**उपप्लुता प्राक्चरणा महायोनिश्च कर्णिका ॥ १७६ ॥**
**स्यान्नन्दा चातिचरणा योनिरोगा इतीरिताः ।**

अर्थ-१ वातला, २ पित्तला, ३ श्लेष्मला, ४ सन्निपातजा, ५ रक्तजा, ६ लोहितक्षया, ७ शुष्का, ८ वामिनी, ९ षण्ढी, १० अंतर्मुखी, ११ सूचीमुखी, १२ विप्लुता, १३ पुत्रघ्नी, १४परिप्लुता, १५ उपप्लुता, १६प्राक्चरणा, १७ महायोनि, १८ कर्णिका, १९ नन्दा और २० अतिचरणा । ऐसे वीस प्रकारके योनिरोग हैं ॥ १७४-१७६ ॥

---

१ योनिरोगके लक्षण जैसे-( १ ) जो योनि कठोर स्तब्ध होकर शूलतोदयुक्त होव उसको वातला कहते है । ( २ ) जो योनि दाह, पाक, ज्वर, आदि पित्तके लक्षणोंसे युक्त होय और उसमेंसे नीला, पीला, काला आर्तव ( रज ) निकले उसको पित्तला कहते हैं । ( ३ ) जो योनि बहुत शीतल और सेमरके गोंदके समान चिकनी होय तथा उसमे खुजली चले उसको श्लेष्मला कहते है । ( ४ ) जिस योनिमे वात, पित्त, कफ इन तीनोके लक्षण मिलें उसको सन्निपातजा कहते है । ( ५ ) जो योनि स्थानभ्रष्ट होय, वह बडे कष्टसे बालकको प्रसूत करे उसको रक्तजा वा प्रस्रंसिनी कहते है, जिस योनिका अंग बाहर निकल आवे और इसे विमर्दित करनेसे प्रसव योग नही होता है । ( ६ ) जिस योनिसे दाहयुक्त रुधिर वहे उसको लोहितक्षया कहते है । ( ७ ) जिस योनिका आर्तव नष्ट हो उसको शुष्का अथवा वंध्या कहते है । ( ८ ) जिसमेसे रजोयुक्त शुक्रवायु बराबर वहे उसको वामिनी कहते है । ( ९ ) जो योनि आर्तवसे रहित होती है उस स्त्रीके स्तन नही होते । और मैथुनके समय जिस योनिका खरदरा स्पर्श मालूम होय उसको षण्ढी कहते है । ( १० ) बडे लिंगवाले पुरुषको तरुण स्त्रीके साथ मैथुन करनेसे उस स्त्रीके योनिके बाहर दोनों तरफ अण्डकोशके समान मांसकी दो गाँठ उत्पन्न हों उस योनिको अन्तर्मुखी कहते हैं । ( ११ ) जिस योनिका छिद्र सुईके अग्रभागके समान सूक्ष्म होता है उसको सूचीमुखी कहते है ( १२) जिस योनिमें निरन्तर पीडा हो उसको विप्लुता कहते हैं । ( १३ ) जिस योनिमें रुधिरक्षय होनेसे गर्भ न रहे उसको जातघ्नी वा पुत्रघ्नी कहते है । (१४) जिसके मैथुन करनेमें अत्यन्त पीडा होय उसको परिप्लुता कहते है । ( १५ ) जिस योनिसे झागसे मिला आर्तव ( रज ) ऊपरके भागमें बड़े कष्टसे उतरे उसको उपप्लुता कहते है । ( १६ ) जो योनि थोडे मैथुनसे लिङ्गसे पहले स्रवे उसको प्राक्चरणा कहते है । उसमें गर्भ धारण नही होता है । ( १७) जिस योनिका मुख निरन्तर फटा रहे उसको महायोनि,-

चतुर्विधं योनिकन्दं वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ १७७ ॥
चतुर्थं संनिपातेन–

योनिकन्दरोग ।

अर्थ–योनिकन्दके रोग–वातज, २ पित्तज, कफज और ४ सन्निपातज ऐसे योनिकन्दरोग चार प्रकारके है ॥ १७७ ॥

गर्भके रोग ।

–तथाऽष्टौ गर्भजा गदाः । उपविष्टकगर्भः स्यात् तथा नागोदरः स्मृतः ॥ १७८ ॥ मक्कल्लो मूढगर्भश्च विष्टम्भो गूढगर्भकः ॥ जरायुदोषो गर्भस्य पातश्चाष्टमकः स्मृतः ॥ १७९ ॥

अर्थ–गर्भसंबन्धी रोग आठ प्रकारके है, जैसे–१उपविष्टकगर्भ, २ नागोदर, ३ मक्कल्ल, ४ मूढगर्भ, ५ विष्टम्भ, ६ गूढगर्भ, ७ जरायुदोष और ८ गर्भपात । ऐसे आठ प्रकारके गर्भपात रोग है ॥ १७८ ॥ १७९ ॥

---

–वा विवृता कहते है । (१८) जिसमें कफ रुधिर करके कर्णिका ( कमलके भीतर जो होता है ऐसा मांसकन्द ) हो उसको कर्णिका कहते है । (१९) जो योनि अतिमैथुनसे भी सन्तोषको प्राप्त नही होवे उसको नन्दा कहते है । (२०) जो योनि बहुवार मैथुन करनेसे पुरुषके पीछे द्रवे ( छुटे ) उसको अतिचरणा योनि कहते है । यह कफजनित रोग है ।

१ दिनमें सोनेसे, अतिक्रोध, अतिशयपरिश्रम, अत्यन्त मैथुन करनेसे और योनिमें नख-आदिसे क्षत पडनेसे, वातादिक दोष कुपित होनेसे योनिमें सतराके आकारका राधसे मिला ऐसा मांसका गोला होता है उसको योनिकन्द कहते है । २ वादीसे योनिकन्द रूक्ष, विवर्ण और तना हुआ ऐसा होता है । ३ पित्तसे योनिकन्द लाल, दाह और ज्वर इन करके युक्त होता है । ४ कफसे योनिकन्द नीला और कण्डूयुक्त होता है । ५ सन्निपातज योनिकन्द वात, पित्त, कफ इनके लक्षणोंसे युक्त होता है ।

६ गर्भरोगमें आठ प्रकारके लक्षण, जैसे–(१) स्त्रीका गर्भ रहनेसे पश्चात् विदाही और तीक्ष्ण पदार्थ खानेमें देहमें गरमी बढती है, उससे योनिके द्वारा रक्तस्राव होता है । रक्तस्राव होनेसे गर्भ बढता नही और पेटमें किञ्चित् हले उसको उपविष्टकगर्भ कहते हैं । (२) शुक्र धातु और आर्तव इनका संयोग होते समय वायु उस गर्भका आकार सर्पके सदृश करे उसको नागोदर कहते है । यह गर्भ निर्बल होकर पडता है अथवा पेटमें ही नष्ट होजाता है । (३) माताके मानसिक तथा आगन्तुक दुःखके प्रसूत होनेके प्रथम वायु कुपित होकर कूखमें शूल उत्पन्न करके गर्भको मार दे इसको गर्भमक्कल्ल कहते है । और प्रसूतिके अनन्तर वायु कुपित होकर योनिसे रुधिर जाल आदि जो गिरते हैं उनको रोककर ऊपर जाके हृदय, वस्ति, मस्तक और कूखमें शूल उत्पन्न करे इसको प्रसूतिमक्कल्ल कहते हैं । यह योनिके संकोच-और घोर ऊर्ध्व श्वासको-

स्तनरोग।

**पञ्चैव स्तनरोगाः स्युर्वातात् पित्तात् कफादपि । संनि-तात् क्षतात् चैव तथा स्तन्योद्भवा गदाः ॥ १८० ॥ बालरोगेषु गदिताः–**

अर्थ–स्तनरोग[1]–वातजन्य[2], ६ पित्तजन्य[3], २ कफजन्य[4], सन्निपातजन्य और ५ क्षतजन्य[6]। ऐसे पांच स्त्रियोंके दूधसंबंधी रोग बालरोगप्रकरणमें कहे हैं ॥ १८० ॥

---

–उत्पन्न करके प्रसूत भई स्त्रीको मार देता है। (४) मूढ ( कुंठित गति ) वायु गर्भको मूढ ( टेढा ) कर देता है और योनि तथा पेटमे शूल उत्पन्न करे, मूत्रोत्सर्ग ( धीरे धीरे पीडासहित मूत निकला ) करे। इसको मूढगर्भ कहते है। इस मूढगर्भकी आठ प्रकारकी गति होती है । विगुण वायुसे गर्भ विपरीत ( टेढा ) होकर अनेक प्रकार करके योनिके द्वारमें आयकर अड जाता है। जैसे–कोई गर्भ मस्तकसे योनिके द्वारको बन्द कर देता है, कोई पेटसे योनिके मार्गको रोक देय, कोई शरीरके विपरीतपनसे योनिके मार्गको रोक देय, कोई एक हाथसे योनिके मार्गको रोक दे, कोई दोनो हाथोंको बाहर निकालकर योनिके द्वारको रोक दे, कोई गर्भ तिर्छा होकर योनिके मार्गको रोक दे, कोई गर्भ मन्यानाडीके मुडनेसे नीचेको मुख होय वह योनिके द्वारको रोक दे और कोई गर्भ पार्श्वभंग ( पसवाडे भंग ) होनेसे योनिके द्वारको रोक देय इस प्रकारसे मूढगर्भकी आठ गति जाननी। ( ५ ) जो स्त्री गर्भिणी होनेसे पश्चात् अकालमें भोजन करे और रूक्षादि पदार्थ खावे उसके गर्भको वायु कुपित होकर सुखाय देय है, उस करके उस स्त्रीकी कूख बड़ी नही दीखती, वह वायुसे पीडित होकर उतनेका उतना ही रहे बढे नही इसको विष्टंभगर्भ कहते हैं। ( ६ ) गर्भ रहकर बढे नही और कुछ कालसे पेटमे ही जीर्ण होजाय उसको गूढगर्भ कहते हैं। ( ७ ) गर्भशय्यामें गर्भके वेष्टनके अर्थ जरायु ( झिल्ली ) रहती है, उसके दोषसे गर्भको विकार होता है उसको जरायुदोष कहते हैं । ( ८ ) अभिघात ( चोट ) विषमाशन ( विषमभोजन ) पीडनादिक इन कारणोंसे जैसे पका हुआ फल वृक्षसे चोट लगनेसे क्षणभरमें गिर जाता है, उसी प्रकार गर्भ अभिघातादि कारणोंसे गिरता है, चौथे मासपर्यंत गर्भ पतली अवस्थामें होनेसे जो स्रावे उसे स्रव कहते हैं और पांचवे छठे महीने पर्यंत शरीर बनने ऊपर जो गर्भ निकले उसे गर्भपात कहते हैं।

१ वातादि दोष गर्भिणी अथवा प्रसूता स्त्रीके सदुग्ध अथवा अदुग्ध स्तनोंमें प्राप्त हो मांसरक्तको दुष्ट करके स्तनरोग उत्पन्न करे। २ वादीसे होनेवाले स्तनरोगमें शूल, तोद आदि पीडा होती है।३ पित्तसे ज्वर, दाह आदिक होते है। ४ कफसे थोडी पीडा और खुजली होती है। ५ संनिपातज स्तनरोगमें तीनो दोषोके लक्षण होते है। ६ अभिघात ( चोट ) आदिके लगनेसे स्तनमे सूजन उत्पन्न होती है। उसमें व्रण पड जावे सब वातादिकोके लक्षण होते हैं, उसको क्षतज स्तनरोग कहते है।

स्त्रीरोग ।

-स्त्रीदोषाश्च त्रयः स्मृताः । अदक्षपुरुषोत्पन्नः सपत्नीविहितस्तथा ॥ १८१ ॥ दैवाज्जातस्तृतीयस्तु-

अर्थ-स्त्रियोंको दुःख उत्पन्न करनेवाले तीन दोष हैं. जैसे-१ अदक्षपुरुषोत्पन्न, २ सपत्नीविहित, ३ दैविक इस प्रकार स्त्रियोंमें तीन दोष हैं ॥ १८१ ॥

प्रसूतिरोग ।

-तथा च सूतिकागदाः । ज्वरादयश्चिकित्स्यास्ते यथादोषं यथाबलम् ॥ १८२ ॥

अर्थ-बालक होनेके पश्चात् ज्वरादिरोग उत्पन्न होते हैं उनको प्रसूतिके रोग कहते हैं. उन रोगोंकी दोषानुसार बलाबल विचारकर चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १८२ ॥

बालरोग ।

द्वाविंशतिर्बालरोगास्तेषु क्षीरभवास्त्रयः । वातात् पित्तात् कफाच्चैव दन्तोद्भेदश्चतुर्थकः ॥ १८३ ॥ दन्तघातो दन्तशब्दोऽकालदन्तोऽहिपूतनम् । मुखपाको मुखस्रावो गुदपाकोपशीर्षके ॥ १८४ ॥ पार्श्वारुणस्तालुकण्ठो विच्छिन्नं पारिगर्भिकः । दौर्बल्यं गात्रशोषश्च शय्यामूत्रं कुकूणकः ॥ १८५ ॥ रोदनं चाजगल्ली स्यादिति द्वाविंशतिः स्मृताः ।-

अर्थ-बालकोंके जो रोग होते हैं उनको बालरोग कहते हैं । वे रोग २२ बाईस हैं । उनमें स्त्रीके स्तनसम्बन्धी दूध दुष्ट होनेसे उत्पन्न होनेवाले-

---

१ जो पुरुष स्त्रीके कामदेवकी शांति करनेमें समर्थ नहीं हो और मूर्ख होय तथा व्यवहारको न जाने ऐसा पति होनेसे जो सन्ताप होता है उस करके जो रोग होय उसको अदक्षपुरुषोत्पन्न स्त्रीरोग कहते हैं। २ जिस स्त्रीके सपत्नी ( सौत ) होवे उसको अपने पतिकी प्रीति दूसरी स्त्रीके ऊपर होनेके दुःखसे जो रोग होता है उसको सपत्नीविहित स्त्रीरोग कहते है। ३ अपने पतिका मरण होनेसे उसके साथ सती होनेकी इच्छा जो करे, उसकी इच्छा निष्फल होनेसे शोकादिक करके जो रोग होता है उसको दैविक स्त्रीरोग कहते हैं। ४ जिस स्त्रीके बालक प्रगट होचुका हो ऐसी स्त्रीके मिथ्या उपचार करनेसे दोषजनक अन्नपानके सेवन करनेसे, कोपके करनेसे अथवा अजीर्णपर भोजनादिक करनेसे प्रसूतिरोग होता है। उसमें ज्वर, अतिसार, सूजन, शूल, अफरा और बलक्षय तथा कफवातजन्य रोगमें उत्पन्न होनवाले तन्द्रा,अन्नद्वेष और मुखसे पानीका गिरना आदि विकार, अशक्तता, मन्दाग्नि ये होते हैं । इन सब ज्वरादिकोंको प्रसूतिरोग कहते हैं, इन सबमें एक रोग प्रधान होता है और बाकीके उपद्रव कहलाते हैं ।

१ वातजन्य, २ पित्तजन्य और ३ कफजन्य ऐसे तीन प्रकारके हैं । ४ दंतोद्भेद, ५ दंतघात, ६ दंतशब्द, ७ अकालदन्त, ८ अहिपूतनरोग, ९ मुखपाक, १० मुखस्राव, ११ गुदपाक, १२ उपशीर्षक, १३ पार्श्वारुण, १४ तालुकण्ठ, १५ विच्छिन्न, १६ पारिगर्भिक, १७ दौर्बल्य, १८ गात्रशोष,

---

१ जो बालक वातदूषित दूधको पीता है उसको वातके रोग होते हैं उसका शब्द क्षीण हो जाय, शरीर कृश होय और मलमूत्र तथा अधोवायु नहीं उतरे । २ जो बालक पित्तदूषित दूधको पीवे उसके पसीना आवे, मल पतला होजाय, कामला रोग होय, तथा पित्तके और भी रोग होयँ ( प्यासका लगना, सर्वांगमें दाह आदि अनेक रोग होय ) । ३ जो बालक कफदूषित दूधको पीवे उसके मुखसे लार बहुत गिरे तथा कफसे रोग होयँ, ( निद्रा आवे अंग भारी हो, सूजन होय, वमन होय, खुजली चले )। ४ बालकोंके प्रथम दाँत उत्पन्न होते समय ज्वर, अतिसार, खाँसी, मस्तकमें पीडा, वमन, अशक्तता इत्यादि उपद्रव होते है। उस रोगको दंतोद्भेद कहते हैं। ५ सातवे वा आठवे वर्षमें बालकके दाँत गिरते हैं उस समय जो ज्वरादि उपद्रव होते हैं उस रोगको दंतघात कहते हैं। ६ निद्रामें जो बालक दाँतसे दाँत घिसके बजाता है उसको दन्तशब्द कहते है। ७ जिस बालकके दाँत जिस कालमें गिरते है उसके प्रथम ही गिरें उसको अकालदन्त कहते हैं। ८ बालकके मलमूत्र करनेके बाद गुदाके न धोनेसे अथवा पसीना आनेसे तथा धोनेके अनन्तर रुधिर कफसे खुजली उत्पन्न होय तदनंतर खुजानेसे शीघ्र फोडा उत्पन्न होय और उससे स्राव होय, पीछे ये सब मिलकर इस भयंकर व्याधिको प्रगट करें इसको अहिपूतन कहते है। यह रोग ग्रंथान्तरमें क्षुद्ररोगोंमें कहा गया है परन्तु यह रोग बालकोंके होता है अतएव इसको बालरोगोंमें कहा है। यह रोग माताके दुष्ट दूधके पीनेसे बालकके होता है। ९ बालकका मुख पक जावे उसको मुखपाक कहते है । १० बालकके मुखमेंसे लार बहे उसको मुखस्राव कहते हैं। ११ बालकका गुदा पके उसको गुदपाक कहते हैं। १२ बालकके कपालमें व्रण होवे, उससे ज्वर आदि होता है, उसको उपशीर्षक कहते है। १३ बालकके भीतर त्रिदोषसे महापद्म विसर्परोग होता है, वह दो प्रकारका है-१ शीर्षज, २ वस्तिज। जो शङ्खभागसे लेकर हृदयतक बडे वेगसे दुःख देता है उसको शीर्षज कहते है, उसमें मुख तालुए बाह्यप्रदेशमें लालकमलके सदृश लाल होते हैं और हृदयसे गुदातक वेगसे दुःख देता हैं इसको वस्तिज कहते है उसमे वस्ति और गुदा लाल कमलके समान लाल होय इसीको पार्श्वारुण कहते है। १४ बालकके तालुएमें जो मांस होता है, उससे कफ कुपित होनेसे तालु कांटेके समान खरदरा होवे उसको तालुकंटक कहते है । १५ बालकके तालुएमें घाव पडनेसे उसको स्तनपान करनेमें कष्ट होवे, पतला मल निकले, प्यास बहुत लगे, नेत्र और कंठ इनमे विकार होवे, मन्यानाडी धरे नही दूधको रद्द करदे, उसको विच्छिन्नरोग कहते है। १६ बालकके गर्भिणी माताका दूध पीनेसे खांसी, मंदाग्नि, वमन, तंद्रा, अरुचि, कृशता और भ्रम ये होयँ और उसकी पेटकी वृद्धि होय, इस रोगको पारिगर्भिक अथवा परिभव ऐसे कहते है, इस रोगमें अग्निदीपनकर्ता औषध बालकको देना चाहिये। १७ जिस दोषकरके देह दुर्बल ( बलरहित ) होवे उसको दौर्बल्य कहते हैं । १८ जिस दोषसे बालकके अङ्ग सूख जाते हैं उसको गात्रशोष कहते है।

१९शय्यामूत्र,२०कुकूणक,२१रोदन और २२ गजगल्ली ऐसे सब बाईस रोग है१८५

तथा बालग्रहाः ख्याता द्वादशैव मुनीश्वरैः ॥१८६॥ स्कन्द-
ग्रहो विशाखः स्यात् स्वग्रहश्च पितृग्रहः। नैगमेयग्रहस्तद्व-
च्छकुनिः शीतपूतना ॥ १८७ ॥ मुखमण्डनिका तद्वत् पूतना
चान्धपूतना। रेवती चैव संख्याता तथा स्याच्छुष्करेवती।

अर्थ—बालग्रहे १२ बारह प्रकारके है,जैसे-१ स्कंदग्रह, २ विशाखग्रह, ३ स्वग्रह,

---

१ बालक वातादिक दोषोंसे शय्यामें ही मूत्र दे उसे ज्ञान नही रहे उसको शय्यामूत्र कहते है। २ कुकूणक यह रोग बालकोंकि दूधके दोषसे होता है। इस रोगसे बालकके नेत्र खुजावे और पानी बहे। नेत्रोंमे कीचड आनेसे वह ललाट, नेत्र और नाकको रगडे, धूपके सामने न देखा जाय और इसके नेत्र खुले नही। इसको लोकिकमें कोथस्राव कहते है, यह रोग बालकोंके ही होता है। ३ बालक थोडा वा बहुत रोने लगे तब युक्ति करके रोगके अनुसारसे बडा अथवा छोटा रोग जानना उसको रोदन कहते है। ४ बाल-कके कफवातसे चिकनीत्वचाके वर्णवाली, गाठसी बँधी, पीडारहित, तथा मूँगा सदृश जो पिडिका होय उसको अजगल्लिका कहते है।

५ स्कन्दादिक बारह ग्रहोसे गृहीत बालकके ये सामान्य लक्षण होते है। जैसे कभी क्षणभरमें बालक विह्वल हो जाय, कभी क्षणभरमें डरे, रोवे, नख और दांतोसे अपने शरीर और माताको खसोटे, ऊपरको देखे, दांतोको चबावे, किलकारी मारे, जंभाई लेय, भौहको तिर्छी धरे, दांतोंसे होठोंको खाय और वारंवार मुखसे झाग डाले। वह अत्यन्त क्षीण होय, रात्रिमें सोवे नही, देहमें सूजन होय, मल पतला होय और स्वर बैठ जाय। उसके देहमेंसे रुधिर मांसकी वास आवे, जितना पहिले खाता हो उतना नही खाय, ये सामान्य ग्रहव्याप्त बालकके लक्षण हैं। ६ बालकके एक नेत्रसे पानी गिरे और अंगमें स्राव (पसीना) बहे, एक ओरका अंग फडके तथा थरथर काँपे, वह बालक आधी दृष्टिसे देखे, मुख टेढा होजाय, रुधिरकीसी दुर्गंध आवे,वह बालक दाँतोको चबावे, अंग शिथिल होजाय, स्तनको नही पीवे और थोडा रोवे। ये स्कन्दग्रह लगे बालकके लक्षण है। ७ विशाखग्रह करके पीडित बालकके ज्वर, ऊर्ध्वदृष्टि आदिक लक्षण होते हैं। ८ बालक बेसुधि होय, मुखसे झाग डाले, जब होश हो तब रोवे, उसके देहमें राधसे मिले रुधिरकी दुर्गंधि आवे, इन लक्षणोंकरके स्वग्रहगृहीत बालक जानना। इस स्वग्रहको स्कन्दापस्मार भी कहते हैं।

४ पितृग्रह[1], ५ नैगमेय[2], ६ शकुनि[3], ७ शीतपूतना[4], ८ मुखमण्डनिका[5], ९ पूतना[6], १० अन्धपूतना, ११ रेवती और १२ शुष्करेवती ऐसे बारह बालग्रह जानने॥ १८६ ॥ १८७॥

अनुक्त रोगोंका संग्रह ।

**तथा चरणभेदास्तु वातरक्तादिकाश्च ये ॥ १८८ ॥ द्विचत्वारिंशदुक्तास्ते रोगेष्वेव मुनीश्वरैः । द्विषष्टिर्दोषभेदाः स्युः सन्निपातादिकाश्च ये । तेपि रोगेषु गणिताः पृथक् प्रोक्ता न ते क्वचित् ॥ १८९ ॥**

अर्थ-वातरक्त, पाद, सुप्तिपाद, स्तंभ, पाक तथा फूटन इत्यादि पैरोंके रोग किसी आचार्यने बयालीस प्रकारके कहे हैं। उसी प्रकार सन्निपातादिक जो बासठ प्रकारके वातादिदोषोंके भेद कहे हैं, वे ऋषियोंने कहीं भी पृथक् नही कहे किन्तु उनकी गणना अनुक्रमसे पादरोगोंमें तथा वातव्याधिमें ही की है ॥ १८८ ॥ १८९ ॥

पंचकर्मोंके मिथ्यादि योगसे होनेवाले रोग ।

**हीनमिथ्यातियोगानां भेदैः पञ्चदशोदिताः ॥ पञ्च कर्मभवा रोगा रोगेष्वेव प्रकीर्तिताः ॥ १९० ॥**

अर्थ- १ वमन[10], २ विरेचन[11], ३ निरूहणवस्ति[12], ४ अनुवासनवस्ति[13] और ५ नस्य[14] ये पांच

---

१ पितृग्रहसे पीडित बालकके ज्वर, पसीना, दाह आदि उपद्रव होते हैं । २ वमन, कंप, कंठ, मुखका सूखना, मूर्च्छा, दुर्गन्धि, ऊपरको देखे, दांतोंको चबावे इन लक्षणोंसे नैगमेय ग्रहकी बाधा जाननी । ३ शकुनिग्रहसे पीडित बालकके अंग शिथिल होय, भयसे चकित हो, उसके अङ्गोंमे पक्षीके अङ्गके समान वास आवे, घाव हों उनमेसे लस बहे, सब अङ्गोंमें फोडा उत्पन्न होय और वह पके तथा दाह होय । ४ शीतपूतनाग्रहकी पीडासे बालकके मुखकी कांति क्षीण हो जाय, उसके नेत्ररोग होय, देहमें दुर्गन्धि आवे, वमन होय और दस्त होंय । ५ मुखमंडनिकाग्रहकी पीडासे बालकके मुखकी कांति सुन्दर होय और देहकी कांति सुन्दर होय, शिरासे बंधा देह होजाय, उसके देहमें मूत्रकीसी दुर्गन्धी आवे, यह बालक बहुत भक्षण करे । ६ पूतनाग्रहकी पीडासे बालकको दस्त, ज्वर, प्यास होय, टेढी दृष्टिसे देखे, रोवे, सोवे नही, व्याकुल होय, शिथिल होजाय ये लक्षण होते है । ७ अन्धपूतनाग्रहकी पीडासे बालकके वमन होय, ज्वर, प्यास, चर्बीकीसी दुर्गन्ध, बहुत रोना, दूध पीवे नही, अतिसार ये लक्षण होते हैं । ८ रेवतीग्रहसे पीडित बालकके अंगमें घाव और फोड़े होय उनमेसे रुधिर बहे, उनमेसे कीचकीसी वास आवे, दस्त होय, अंगमें दाह होय । ९ शुष्करेवतीग्रहसे पीडित बालकके ज्वर, शूल, अजीर्ण, मस्तकमें पीडा, मुख और हृदय इनका शोष ये लक्षण होते है ।

१० औषधादिको करके रद्द करानेके प्रयोगको वमन कहते है । ११ औषधादिको करके दस्त करानेके प्रयोगको विरेचन कहते हैं । १२ स्नेहादि औषधसे गुदामें पिचकारी मारनेके प्रयोगको निरूहणवस्ति कहते है । १३ अनुवासनवस्ति भी निरूहण वस्तिके सदृश ही होती है । १४ नाकमें औषध डालनेके प्रयोगको नस्य कहते हैं ।

कर्म उत्तरखण्डमें कहे हैं। इन पांचकर्मोंमें जिसका हीनयोग, मिथ्यायोग किंवा अतियोग होवे तो ये कर्म इन तीन कारणोंसे तीन प्रकारके रोग उत्पन्न करते हैं। ऐसे पांचोंके मिलानेसे पंद्रह होते हैं, उनका अंतर्भाव उक्त रोगोंमें ही जानना॥१९०॥

स्नेहादिकोंसे होनेवाले रोग।

**स्नेहस्वेदो तथा धूमो गण्डूषोऽञ्जनतर्पणं।**
**अष्टादशैतज्जाः पीडास्ताश्च रोगेषु लक्षिताः॥ १९१॥**

अर्थ-१ स्नेहपान २ स्वेदविधि ३ धूमपान ४ गंडूष ५ अंजन ६ तर्पण इन छहोंमेंसे प्रत्येकके हीनयोग, मिथ्यायोग और अतियोग इन तीन भेद करके अठारह भेद होते हैं और उनसे जो होनेवाले रोग है वे भी सब उक्त रोगोंमें संगृहीत किये है॥ १९१॥

शीतादिकोंसे होनेवाले रोग।

**शीतोपद्रव एकः स्यादेकश्चोष्णोपतापकः।**
**शल्योपद्रव एकश्च क्षाराच्चैकः स्मृतस्तथा॥ १९२॥**

अर्थ-(१) अत्यन्त सरदीके योग करके मनुष्यको ठंडकका उपद्रव होवे, (२) अत्यन्त गरमीसे मनुष्यको उष्णताका उपद्रव होवे. (३) शल्य कहिये नख, केश, कांटा, खोपरा, हाड, सींग इत्यादिक पदार्थ एक साथ पेटमें जानेसे जो रोग होवे, और ४ तीक्ष्णक्षारादिकसे पेटमें अथवा बाह्यस्पर्श करके जो उपद्रव होवे, इस प्रकार ये चारप्रकारके उपद्रव वैद्यको जानने चाहिये॥ १९२॥

विषरोग।

**स्थावरं जङ्गमं चैव कृत्रिमं च त्रिधा विषम्। तेषां च काक-कूटाद्यैर्नवधा स्थावरं विषम्॥ १९३॥ जङ्गमं बहुधा प्रोक्तं तत्र लूता भुजङ्गमाः। वृश्चिका मूषकाः कीटा प्रत्येकं ते चतुर्विधाः॥१९४॥ दंष्ट्राविषनखविषवालशृङ्गास्थिभिस्तथा। मूत्रात् पुरीषात् शुक्राच्च दृष्टेर्निःश्वासतस्तथा॥ १९५॥**

---

१ कहे हुए प्रमाणका उपयोग करनेको हीनयोग कहते हैं। २ प्रमाणसे रहित उपयोग करनेको मिथ्यायोग कहते हैं। ३ अधिक प्रमाणसे उपयोग करनेको अतियोग कहते है।

४ स्नेहपान तेल घृत आदि स्निग्ध पदार्थ पीनेके प्रयोगको स्नेहपान कहते हैं। ५ अङ्गको पसीना लानेके प्रयोगको स्वेदविधि कहते है। ६ गुडगुडी हुक्का आदिमें औषध डालके पीनेके प्रयोगको धूमपान कहते हैं। ७ कषाय और रसादिकोंसे कुरले करनेके प्रयोगको गंडूषविधि कहते है। ८ नेत्रमें औषध डालनेके प्रयोगको अंजनविधि कहते है। ९ औषधादि करके धातुओंकी वृद्धि करनेके विषयक जो प्रयोग करते हैं उसको तर्पण कहते है, अथवा नेत्रकी तृप्ति करनेके प्रयोगको तर्पण कहते है॥

**लालायाः स्पर्शतस्तद्वत तथा शङ्काविषं मतम् ।**
**कृत्रिमं द्विविधं प्रोक्तं गरदूषीविभेदतः ॥ १९६ ॥**

अर्थ-स्थावर जंगम और कृत्रिम ऐसे तीन प्रकारके विष हैं, उनमें स्थावर विष कालकूट बच्छनागादि विषोंका भेद करके नौ प्रकारके हैं । जंगम विष बहुत प्रकारके हैं जैसे-लूता, सर्प, बिच्छू, कीडा इनके वात, पित्त, कफ और संनिपात भेदसे एक एकके चार २ भेद हैं । जिन ठिकानोंपर विष है उनका ठिकाना जातिभेदसे पृथक् २ हैं, जैसे-डाढ, नख, केश, सींग, हाड, मूत्र, मल, शुक्र, धातु, दृष्टि, श्वास, लार, स्पर्श इत्यादि । मनमें विषकी शंका आकर उससे वायु कुपित हो सम्पूर्ण देहको सुजाय देवे तथा ज्वरादिक उपद्रव होवें उसको शंकाविष कहते हैं । यह और दूषीविष ( पदार्थके संयोगसे प्रगट ) इस भेद करके कृत्रिम विष दो प्रकारके हैं । दूषीविष कहिये विष कुछ काल करके शरीरमें जीर्ण होकर छिपकर रहे तथा विषका अल्पवीर्य हो इसीसे प्राणनाश नही करे, परन्तु ज्वरादिक उपद्रव करे तथा देश, काल, अन्न और दिवानिद्रा इन करके दूषित होनेसे रसादि सप्त धातुओंको दूषित करते हैं । इसीसे इसको दूषीविष कहते हैं । इस प्रकार कृत्रिम विष दो प्रकारका जानना ॥ १९३-१९६ ॥

विषके भेद ।

**सप्तधातुविषं ज्ञेयं तथा सप्तोपधातुजम् ।**
**तथैवोपविषेभ्यश्च जातं सप्तविधं ततः ॥ १९७ ॥**

अर्थ-सुवर्णादिक सप्तधातुओंकी शुद्धिके विना की, हुई भस्म भक्षण करनेसे तथा हरितालादिक सात उपधातुओकी अशुद्ध भस्म आक आदि और अशुद्ध उपविष इनके भक्षण करनेसे ये विषके समान पीडा करते हैं अतएव इनकी विषसंज्ञा है ॥ १९७ ॥

अन्यविषके भेद ।

**दुष्टनीरविषं चैकं तथैकं दिग्धजं विषम् ।**

अर्थ-जिस पानीमें कीचड, काई, पत्ते, तिनका, लूतादिक जन्तुके मल, मूत्र तथा मछली और मेंढक मर गये हों तो इन कारणोंसे पानी खराब होजावे उस पानीको दुष्टनीर कहते हैं । उसमे स्नान करे अथवा पीवे तो उससे विषके समान पीडा उत्पन्न होवे । शस्त्रादिकमें विषका लेप कर प्रहार करनेसे घाव होजावे और वह जलदी अच्छा नहीं हो एवं विषके समान ज्वरादिक उपद्रव हो उसको विषदग्धशस्त्रज जानना ।

उपद्रव ।

**कपिकच्छुभवा कण्डूर्दुष्टनीरभवा तथा ॥ १९८ ॥**
**तथा सूरणकण्डूश्च शोथो भल्लातजस्तथा ।**

अर्थ-कौंछ (किंवाछ) की फलीके रुआँ लगनेसे दुष्ट जल और जमीकन्द (सूरण) इन तीनोंका देहमें स्पर्श होनेसे अंगमें अत्यंत खुजली चलती है तथा देहमें दाह होता है। एवं भिलावेके तेलका स्पर्श होनेसे अंगमें सूजन होय और खुजली चले, इस प्रकार चार चार प्रकारके उपद्रव जानना॥ १९८॥

आगंतुकभेद।

मदश्चतुर्विधश्चान्यः पूगभङ्गाक्षकोद्रवैः॥ १९९॥
चतुर्विधोऽन्यो द्रव्याणां फलत्वं मूलपत्रजः।

अर्थ-सुपारी, भाग, बहेडेकी फलके भीतरकी मींगी, कोदो धान्य ये चार पदार्थ भक्षण करनेसे इनसे चार प्रकारके मद उत्पन्न होते हैं, सो मदात्यय रोगमें कहा है उसे जानना और औषधी, वनस्पति इनके फल, छाल, मूल और पत्ते इन चारोंके भक्षण करनेसे चार प्रकारके मद उत्पन्न होते है॥ १९९॥

इति प्रसिद्धा गणिता ये किलोपद्रवा भुवि।
असंख्याश्चापरे धातुमूलजीवादिसंभवाः॥ २००॥

इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण निर्मितायां संहितायां प्रथमखण्डे रोगगणनानाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

अर्थ-ऐसे प्रसिद्ध रोगरूप उपद्रव इनकी संख्या निश्चय करके शार्ङ्गधराचार्यने कही है, इसके सिवाय दूसरे स्वर्णादि धातु, हरतालादिक उपधातु, अनेक प्रकारकी वनस्पति, ओषधि और जीवादिकसे उपद्रव होते हैं, वे उपद्रव असंख्य हैं उनकी संख्या नहीं होती। वह अनुमान करके जाननी॥ २००॥

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृत-शार्ङ्गधरसंहिताया भावप्रकाशिका-भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः परिपूर्णतामगात्॥ ७॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां प्रथमं खण्डं सम्पूर्णम्।

---

॥ श्रीः ॥

# शार्ङ्गधरसंहिता।

## भाषाटीकासमेता.

## द्वितीयखण्डे प्रथमोऽध्यायः १.

पाँच काढे।

**अथातः स्वरसः कल्कः क्वाथश्च हिमफाण्टकौ।**
**ज्ञेयाः कषायाः पञ्चैते लघवः स्युर्यथोत्तरम् ॥ १ ॥**

अर्थ–१ स्वरस २ कल्क ३ क्वाथ ४ हिम ५ फांट इन पांचोंको कषाय कहते हैं, यह एककी अपेक्षा दूसरा हलका है। जैसे स्वरसकी अपेक्षा कल्क हलका है, कल्ककी अपेक्षा क्वाथ हलका है, क्वाथकी अपेक्षा हिम और हिमकी अपेक्षा फांट हलका है। रोगगणनाके पश्चात् कषायादिकोंका कथन ठीक है अत एव "अथातः" ऐसा पद श्लोकमें कहा है ॥ १ ॥

स्वरस।

**अहतात् तत्क्षणात् कृष्टाद् द्रव्यात् क्षुण्णात् समुद्धरेत्।**
**वस्त्रनिष्पीडितो यः स रसः स्वरस उच्यते ॥ २ ॥**

अर्थ–कीडा, अग्नि, पवन, जल इत्यादिक करके जो बिगडी न हो ऐसी वनस्पतिको लायके उसको उसी समय कूट कपडेमें डालके निचोड लेवे। उस निचोडे हुए रसको स्वरस अथवा अंगरस[1] कहते हैं ॥ २ ॥

स्वरसकी दूसरी विधि।

**कुडवं चूर्णितं द्रव्यं क्षिप्तं चेद्द्विगुणे जले।**
**अहोरात्रं स्थितं तस्माद् भवेद् वा रस उत्तमः ॥ ३ ॥**

अर्थ–एक कुडव[2] सूखी औषधका चूर्ण करे। फिर उस औषधसे दूना जल किसी घडे आदि पात्रमें भरके उस औषधको भिगो देवे। इस प्रकार एक दिन और एक रात भीगने दे दूसरे दिन औषधोको मसलकर उस पानीको कपडेसे छान लेवे, इसको भी स्वरस कहते हैं ॥ ३ ॥

---

१ वनस्पति आदिके अवयवके रसको अंगरस अथवा स्वरस कहते है।

२ तोलेके विषयमें मागध परिभाषाके मतानुसार व्यावहारिक १६ तोले कहते है।

स्वरसकी तीसरी विधि।

**आदाय शुष्कद्रव्यं वा स्वरसानामसंभवे। जलेऽष्टगुणितं साध्यं पादशेषं च गृह्यते ॥४॥ स्वरसस्य गुरुत्वाच्च पलमर्धं प्रयोजयेत्। निःशोषितं चाग्निसिद्धं पलमात्रं रसं पिबेत् ॥५॥**

अर्थ–यदि गीली वनस्पति न मिले तो सूखी वनस्पतिको लाकर उसमें आठगुना पानी डाल दे और काढा करे। जब जलते २ चौथा हिस्सा जल शेष रहे तब उतारके पानी छान ले, यह स्वरसका तीसरा प्रकार है। स्वरस भारी है अतएव दो तोले सेवन करे और जिस औषधिको रात्रिमें भिगोयके प्रातःकाल काढा किया हो वह ४ तोलेके प्रमाण सेवन करे। औषध भक्षणमें कलिंगपरिभाषाका मान लेना चाहिये ॥ ४ ॥ ५ ॥

स्वरसमें औषध डालनेका प्रमाण।

**मधु श्वेतां गुडं क्षारान् जीरकं लवणं तथा।**
**घृतं तैलं च चूर्णादीन् कोलमात्रान् रसे क्षिपेत् ॥ ६ ॥**

अर्थ–सहत, खांड, गुड, जवाखार, जीरा, सेधानिमक, घृत, तेल तथा चूर्णादि ये स्वरसमें डालने हो तो कोले प्रमाण डाले ॥ ६ ॥

अमृतादिस्वरस प्रमेहपर।

**अमृताया रसः क्षौद्रयुक्तः सर्वप्रमेहजित्।**
**हरिद्राचूर्णयुक्तो वा रसो धात्र्याः समाक्षिकः ॥ ७ ॥**

अर्थ–गिलोयका स्वरस सहत मिलायके पीवे तो सर्व प्रमेह दूर होवें. अथवा आमलेके स्वरसमें हल्दीका चूर्ण और सहत मिलायके पीवे तो सर्व प्रमेह नष्ट होवें ॥ ७ ॥

वासकादिस्वरस रक्तपित्तादिकोंपर।

**वासकस्वरसः पेयो मधुना रक्तपित्तजित्। ज्वरकासक्षयहरः कामलाश्लेष्मपित्तहा ॥ ८ ॥ त्रिफलाया रसः क्षौद्रयुक्तो दार्वी रसोऽथ वा ॥ निम्बस्य वा गुडूच्या वा पीतो जयति कामलाम् ॥ ९ ॥**

अर्थ–अडूसेके स्वरसमें सहत मिलायके पीवे तो ज्वर, खांसी और क्षयरोगको दूर करे। एवं त्रिफला, दारुहल्दी, नीमकी छाल और गिलोय इनमेंसे किसी एकके स्वरसमें सहत मिलाय पीवे तो कामलारोग दूर होवे ॥ ८ ॥ ९ ॥

---

१ दो तोले भक्षणमें कलिंगपरिभाषाका मानहै। उस मानसे तोलेके व्यावहारिक मासे आठ होते है। यह मान रोगीका बलाबल देखके देना चाहिये यह तात्पर्य है।

२ अडूसेका स्वरस अर्धपल और सहत दो टंकप्रमाण मिलायके सेवन करे तो रक्तपित्तका नाश होवे।

तुलसी और द्रोणपुष्पी इनका स्वरस विषमज्वरपर।

पीतो मरिचचूर्णेन तुलसीपत्रजो रसः।
द्रोणपुष्पीरसो वाऽपि निहन्ति विषमज्वरान्॥ १० ॥

अर्थ-तुलसीके पत्तोंका स्वरस अथवा द्रोणपुष्पी[1] ( गोमा रूखडी ) के पत्तोंका स्वरस। इन दोनोंमेंसे किसी एकको ले उसमें काली मिरचका चूरा डालके पीवे तो विषमज्वर दूर होवे ॥ १० ॥

जम्ब्वाम्रार्द्रकस्वरस रक्तातिसारपर।

जम्ब्वाम्रामलकीनां च पल्लवोत्थो रसो जयेत्।
मध्वाज्यक्षीरसंयुक्तो रक्तातीसारमुल्बणम् ॥ ११ ॥

अर्थ-जामुन, आम, आमले इनके पत्तोंका स्वरस निकाल सहत, घी और दूध मिलायकर पीवे तो घोर रक्तातिसारको दूर करे ॥ ११ ॥

स्थूलबब्बुल्यादिस्वरस सब आतिसारोपर।

स्थूलबब्बूलिकापत्ररसः पानाद् व्यपोहति।
सर्वातिसारान् श्योनाककुटजत्वग्रसोऽथवा ॥ १२ ॥

अर्थ-कांटेरहित बडे बबूलके पत्तोंका स्वरस पीनेसे सर्व प्रकारके अतिसार रोग दूर होवें अथवा टेंसूकी छालका स्वरस अथवा कूडाके छालका स्वरस इनमेंसे किसी एकको पीवे तो सर्वप्रकारके अतिसाररोग दूर हों ॥ १२ ॥

आर्द्रकका स्वरस वृषणवात और श्वासपर।

आर्द्रकस्वरसः क्षौद्रयुक्तो वृषणवातनुत।
श्वासकासारुचीर्हन्ति प्रतिश्यायं व्यपोहति ॥ १३ ॥

अर्थ-अदरखके रसमें सहत मिलायके पीवे तो अण्डकोशोंकी बादीको दूर करे तथा श्वास खांसी अरुचि और जुकामको दूर करे ॥ १३ ॥

बिजौरेका स्वरस पार्श्वादि शूलोपर।

बीजपूररसः पानान्मधुक्षारयुतो जयेत्।
पार्श्वहृद्वस्तिशूलानि कोष्ठवायुं च दारुणम् ॥ १४ ॥

अर्थ-बिजौरेके फलको अथवा जडका स्वरस सहत और जवाखार मिलायके पीवे तो कुक्षि,हृदयशूल,वस्तिशूल तथा दारुण ऐसा कोठेका वायु इन सबको दूर करे ॥१४॥

---

१ द्रोणपुष्पी एक जातिकी रूखडी है इसका वृक्ष हाथ डेट हाथसे ऊँचा नही होता और इसकी डण्डीमे फूलके गुच्छे २ से होते हैं। मध्यदेशमे ( दिल्ली, आगरा, मथुराके प्रान्तोमें ) इसको गूमा कहते हैं।

शतावरका स्वरस पित्तशूलपर तथा
घीगुवारका स्वरस तिल्लीपर ।

शतावर्याश्च मधुना पित्तशूलहरो रसः ।
निशाचूर्णयुतः कन्यारसः प्लीहाऽपचीहरः ॥ १५ ॥

अर्थ-शतावरीके स्वरसमें सहत मिलायके पीवे तो पित्तशूल दूर होय तथा घीकुवारका रस हल्दी मिलायके पीवे तो प्लीहा (तिल्ली) का रोग और गण्डमालाका भेद जो अपची है उसको दूर करे ॥ १५ ॥

अलंबुषारस गंडमालापर ।

अलम्बुषायाः स्वरसः पीतो द्विपलमात्रया ।
अपचीगण्डमालानां कामलायाश्च नाशनः ॥ १६ ॥

अर्थ-गोरखमुंडीका स्वरस दो पल पीवे तो अपची रोग, गण्डमाला और कामला रोग दूर होवे ॥ १६ ॥

शशमुंडरस सूर्यावर्त्तादिकोंपर ।

रसो मुण्ड्याः सकोष्णो वा मरिचैरवधूलितः ।
जयेत् सप्तदिनाभ्यासात् सूर्यावर्तार्धभेदकौ ॥ १७ ॥

अर्थ-गोरखमुंडीके स्वरसको कुछ थोडा गरम कर काली मिरचका चूर्ण मिलाय पीवे तो सूर्यावर्त्त और अर्धावभेद (आधाशीशी) इनको दूर करे ॥ १७ ॥

ब्रह्म्यादिका रस उन्मादरोगपर ।

ब्राह्मीकूष्माण्डषड्ग्रन्थाशङ्खिनीस्वरसाः पृथक् ।
मधुकुष्ठयुता पीताः सर्वोन्मादापहारिणः ॥ १८ ॥

अर्थ-ब्राह्मी, पेठा, वच और शंखाहुली इनके स्वरस पृथक् २ निकालके किसी एकको सहत मिलायके पीवे तो संपूर्ण उन्मादके रोग दूर होवें ॥ १८ ॥

---

१ पेटमें बाँई तरफ रोग होता है उसको कोई फीहा और कोई प्लीहा तिल्ली कहते है ।
२ भक्षणविषयमें कलिगपरिभाषाके मानानुसार दो पलके व्यावहारिक छः तोले और आठ मासे होते हैं । ३ सूर्यावर्त कहिये जैसे २ सूर्य चढे तैसे २ मस्तकमें दर्द बढे और जैसे २ अस्त होय तैसे २ पीडा शांति हो उसको सूर्यावर्त्तरोग कहते है ।
४ ब्राह्मी रूखण्डी गंगा यमुनाके किनारे बहुत होती है, इसकी दो जाति हैं । एक ब्राह्मी और दूसरी मंडूकपर्णी । यह प्रसर जातिकी रूखण्डी है । ५ शंखाहुलीको शंखपुष्पी भी कहते है । इसमें सफेद रंगके परम सुन्दर पुष्प होते है । यह प्रसर जातिकी रूखण्डी है ॥

कूष्माण्डकरस मदरोगपर ।

**कूष्माण्डकस्य स्वरसो गुडेन सह योजितः ।**
**दुष्टकोद्रवसंजातं मदं पानाद् व्यपोहति ॥ १९ ॥**

अर्थ-पेठेके रसमें गुड मिलायके सेवन करे तो दुष्ट कोदों धान्यसे उत्पन्न मदको दूर करे ॥ १९ ॥

गांगेरूका स्वरस व्रणरोगपर ।

**खड्गादिच्छिन्नगात्रस्य तत्कालं पूरितो व्रणः ।**
**गाङ्गेरुकीमूलरसैर्जायते गतवेदनः ॥ २० ॥**

अर्थ-तलवार आदि शस्त्रका घाव देहमें होनेसे उसी समय उस घावमें गांगेरुकी-की जडके स्वरसको भर देवे तो मनुष्य पीडारहित होवे ॥ २० ॥

पुटपाक कहनेका कारण ।

**पुटपाकस्य कल्कस्य स्वरसो गृह्यते यतः ।**
**अतस्तु पुटपाकानां युक्तिरत्रोच्यते मया ॥ २१ ॥**

अर्थ-पुटपाक और कल्क इन दोनोंका ही स्वरस लिया जाता है अतएव पुटपाकको युक्ति कहते हैं ॥ २१ ॥

**पुटपाकस्य मात्रेयं लेपस्याङ्गारवर्णता । लेपं च द्व्यङ्गुलं स्थूलं कुर्याद् वाऽङ्गुलमात्रकम् ॥ २२ ॥ काश्मरीवटजाम्बवाम्रपत्रैर्वेष्टनमुत्तमम् । पलमात्रं रसो ग्राह्यः कर्षमात्रं मधु क्षिपेत् ॥ २३ ॥ कल्कचूर्णद्रवाद्यास्तु देयाः स्वरसवद् बुधैः ।**

अर्थ-गीली वनस्पतिको कूट पीस गोला बनावे, उसको कॅमारी बड अथवा जामुनके पत्तोंसे लपेट उसपर दो अंगुल मोटा अथवा अंगुष्ठ प्रमाण मिट्टीका लेप करे । फिर उस गोलेके नीचे उपले चुनके उसके बीचमें उस गोलेको रखके आंच जलावे । जब गोलेकी मिट्टी लाल होजावे तब उसको निकाल मिट्टी और पत्ते ऊपरके दूर कर उसका रस निचोड लेवे । यदि वह वनस्पति कठोर होवे तो उसके पानीमे अथवा जो द्रव द्रव्य कहे हैं उनमें पीसके इसी प्रकार गीले आदिकी कृति करके रस काढ लेना चाहिये, इसके लेनेकी मात्रा एक पलकी जाननी । यदि उस रसमे सहत डालना होवे तो अर्द्धपल डाले । कल्क चूर्ण दूध आदिशब्दसे जो द्रवद्रव्योंका मान जैसा स्वरसमे डालना लिखा है उसी प्रकार इस जगह डालना चाहिये ॥ २२ ॥ २३ ॥

---

१ गांगेरुकीको भाषामें गंगेरन कहते है, यह क्षुपजातिकी ओषधि है गुण दोष बलाचक्षुमें लिखे हैं ।

कुटजपुटपाक सर्वातिसारोंपर।

तत्कालाकृष्टकुटजत्वचं तण्डुलवारिणा ॥ २४ ॥ पिष्टां चतुष्पलमितां जम्बूपल्लववेष्टिताम्। सूत्रेण बद्धां गोधूमपिष्टेन परिवेष्टिताम् ॥ २५ ॥ लिप्तां च घनपङ्केन गोमयैर्वह्निना दहेत्। अङ्गारवर्णां च मृदं दृष्ट्वा वह्नेः समुद्धरेत् ॥२६॥ ततो रसं गृहीत्वा च शतं क्षौद्रयुतं पिबेत्। जयेत्सर्वानतीसारान् दुस्तरान् सुचिरोत्थितान् ॥२७॥

अर्थ—तत्कालकी लाई हुई कुडेकी छाल ४ पल ले उसको उसी समय चावलोंके धोवनके जलमें पीसके गोला बनावे। फिर उसको जामुनके पत्तोंसे लपेट सूतसे बांध देवे, उसके ऊपर गेहूंके चूनको सानके लपेट देवे और उसके ऊपर गाढी २ मिट्टीका लेप करे। फिर उसको आरने उपलोंमें रखके फूंक देवे। जब गोलेकी मिट्टी आगके वगसे लाल होवे तब निकाल ले, उसकी मिट्टी और पत्ते आदि दूर कर किसी स्वच्छ कपडे आदिमें दबायके रस निचोड लेवे। जब यह रस शीतल हो जावे तब सहत मिलायके पीवे तो बहुत कालका दुर्घट अतिसाररोग दूर होवे ॥२४-२७॥

चावलोंके धोनेकी विधि।

कण्डितं तण्डुलपलं जलेऽष्टगुणिते क्षिपेत्।
भावयित्वा जलं ग्राह्यं देयं सर्वत्र कर्मसु ॥ २८ ॥

अर्थ—एक पल बीने और फटके हुए चावलोंमें आठगुना अर्थात् ८ पल जल मिलाय हाथोंसे मसलके चावलोंको धोवे, फिर यह चावलोंका धुला हुआ पानी सब कार्यमें लेना चाहिये ॥ २८ ॥

अरलुपुटपाक।

अरलुत्वक्कृतश्चैव पुटपाकोऽग्निदीपनः।
मधुमोचरसाभ्यां च युक्तः सर्वातिसारजित् ॥ २९ ॥

अर्थ—टेंटूकी गीली छालको लायके उसी समय कूटके गोला बनावे। फिर पूर्वोक्त विधि जो पुटपाककी कही है उसके अनुसार पुटपाक सिद्ध करे। फिर रस निकाल उसमें सहत और मोचरसका चूर्ण डालके पीवे तो सर्व प्रकारके अतिसार रोग दूर हों ॥ २९ ॥

न्यग्रोधादि पुटपाक।

न्यग्रोधादेश्च कल्केन पूरयेद्गौरतित्तिरैः। निरन्त्रमुदरं सम्यक् पुटपाकेन तत् पचेत् ॥ ३० ॥ तत्कल्कस्य रसः क्षौद्रयुक्तः सर्वातिसारनुत्।

अर्थ–१ वड २ गूलर ३ पापरी ४ जलवेतं ५ पीपर इनकी छालका चूर्ण करके पानीसे पीस कल्क करके उसको सफेद तीतरके पेटमें भरके पूर्वोक्त पुटपाककी विधिसे उसका पुटपाक कर लेवे । फिर अग्निसे निकाल पत्ते मिट्टी आदिको दूर कर उस तीतर पक्षीके पेटसे कल्कको निकालके रस निचोड उसमें मिलायके पीवे तो सब आतिसार नष्ट होवें ॥ ३० ॥

दाडिमादिपुटपाक ।

**पुटपाकेन विपचेत् सुपक्वं दाडिमीफलम् ॥ ३१ ॥**
**तद्रसो मधुसंयुक्तः सर्वातीसारनाशनः ।**

अर्थ–पके हुए अनारको पुटपाककी विधिसे अग्नि देवे । फिर रक्तवर्ण होनेपर अग्निसे निकाल पत्ते मिट्टी आदिको दूर कर उस अनारको निकाल दाबकर रस निकाल लेवे । उसमें सहत मिलायके पीवे तो संपूर्ण अतिसार रोग दूर होवें ॥ ३१ ॥

बीजपूरादिपुटपाक ।

**बीजपूराम्रजम्बूनां पल्लवानि जटाः पृथक् ॥ ३२ ॥ विपचेत् पुटपाकेन क्षौद्रयुक्तश्च तद्रसः। छर्दिं निवारयेद् घोरां सर्व-दोषसमुद्भवाम् ॥ ३३ ॥**

अर्थ–बिजौरा, आम और जामुन इनके गीले पत्ते और जड लायके उसी समय कूट पीस गोला बनाय पूर्वोक्त रीतिसे अग्नि देवे । फिर उस गोलेको बाहर निकाल दाबके रस निकाल लेवे । उस रसमे सहत मिलायके पीवे तो सर्व दोषजन्य दुर्घट ओकारीका रोग दूर हो ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

**पिष्टानां वृषपत्राणां पुटपाकरसो हिमः ।**
**मधुयुक्तो जयेद् रक्तपित्तकासज्वरक्षयान् ॥ ३४ ॥**

अर्थ–अडूसाके गीले पत्तोंको उसी समय कूट गोला बनावे । फिर पूर्वोक्त विधिसे अग्नि देकर उसमेसे रस निकाल लेवे । उसमें सहत मिलायके पीवे तो रक्तपित्त, श्वास, ज्वर और क्षयरोग दूर होवें ॥ ३४ ॥

कंटकारीपुटपाक ।

**पाचेत् क्षुद्रां सपञ्चाङ्गां पुटपाकेन तद्रसः ।**
**पिप्पलीचूर्णसंयुक्तः कासश्वासकफापहः ॥ ३५ ॥**

---

१ पापरी यह एक जातिका वड़ा भारी वृक्ष होता है । इसके छोटे २ पत्ते होते हैं उनको दादपर घिसनेसे दादको दूर करते हैं । २ जलवेतस जलमें होनेवाले वेतको कहते हैं । ३ उस तीतरके पेटकी आँतड़ी आदि निकालकर साफ कर ले फिर उसमें कल्कको भरे ॥

अर्थ–छोटी कटेरीके संपूर्ण वृक्षको फलसहित लाकर उसी समय कूटके गोला बनावे। फिर पुटपाककी विधिसे पकाय रस निकाल उस रसमें पीपलका चूर्ण मिलाय कर पीवे तो श्वास खांसी और कफ ये दूर हों ॥ ३५ ॥

विभीतकपुटपाक।

विभीतकफलं किंचिद् घृतेनाभ्यज्य लेपयेत्। गोधूमपिष्टेनाङ्गारैर्विपचेत् पुटपाकवत् ॥३६॥ ततः पक्वं समुद्धृत्य त्वचं तस्य मुखे क्षिपेत्। कासश्वासप्रतिश्यायस्वरभङ्गान् जयेत्ततः ॥ ३७ ॥

अर्थ–बहेडेके फलमें घी चुपडके उसपर गेहूंके चूनका लेप कर पुटपाककी विधिसे अंगारोंपर भूने, फिर उसके टुकडे करके मुखमें रक्खे तो श्वास, कास, खांसी, जुकाम और स्वरभंग इन सब रोगोंको शीघ्र दूर करे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

शुंठीपुटपाक आमातिसारपर।

चूर्णं किंचिद् घृताभ्यक्तं शुण्ठ्या एरण्डजैर्दलैः। वेष्टितं पुटपाकेन विपचेद्मन्दवह्निना ॥ ३८ ॥ तत उद्धृत्य तच्चूर्णं ग्राह्यं प्रातः सितान्वितम्। तेन यान्ति शमं पीडा आमातीसारसम्भवाः ॥ ३९ ॥

अर्थ–सोंठके चूर्णमें थोडा घी मिलाय गोला करे फिर उसको अंडीके पत्तोंसे लपेट गोलेको सूतसे लपेट ऊपर मिट्टीका लेप करे। फिर उसको पुटपाककी विधिसे पक्व करे पीछे उस गोलेको आगसे निकाल उस सोंठके चूर्णको खांडके साथ नित्य प्रातःकाल खाय तो आमातिसारसे उत्पन्न हुई जो पीडा सो सब दूर होवे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

दूसरा शुंठीपुटपाक आमवातपर।

शुण्ठीकल्कं विनिक्षिप्य रसैरेरण्डमूलजैः। विपचेत् पुटपाकेन तद्रसः क्षौद्रसंयुतः ॥ ४० ॥ आमवातसमुद्भूतां पीडां जयति दुस्तराम्।

अर्थ–अंडकी[3] जडके रसमें सोंठके चूर्णको सानके गोला बनावे, उसको पुटपाककी विधिसे पकायके रस निकाल लेवे। उसमें सहत मिलायके पीवे तो आमवायुसे होनेवाली घोर पीडा दूर होवे ॥ ४० ॥

---

१ मनुष्यके दम चढनेको अर्थात् दमेके रोगको श्वास रोग कहते हैं। २ गीली अथवा सूखी खांसीको कास कहते हैं। ३ अण्डके कहनेसे सूरती अण्ड लेना, उसके अभावमें दूसरा लेना।

सूरणपुटपाक बवासीरपर ।

**सौरणं कन्दमादाय पुटपाकेन पाचयेत् ॥ ४१ ॥**
**सतैललवणस्तस्य रसश्चार्शोविकारनुत् ।**

अर्थ-सूरन ( जमीकन्द ) को कूटके गोला बनावे फिर पुटकी विधिसे पक्क करके रस निचोड लेवे । उसमें तिलका तेल और सेंधानमक डालके पीवे तो बवासीरका विकार दूर होवे ॥ ४१ ॥

मृगशृंगपुटपाक हृदयशूलपर

**शरावसंपुटे दग्धं शृङ्गं हरिणजं पिबेत् ।**
**गव्येन सर्पिषा पिष्टं हृच्छूलं नश्यति ध्रुवम् ॥ ४२ ॥**

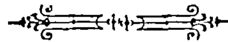
इति शार्ङ्गधरे द्वितीयखण्डे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अर्थ-मिट्टीके शरावेमें हिरणके सीगके टुकडे रखके उसको दूसरे शरावेसे ढक कर उपलोंमें रखके फूँक देवे । फिर इस भस्मको गौके घीमें मिलायके चाटे तो हृदयका शूल दूर होवे ॥ ४२ ॥

इति वैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतायां शार्ङ्गधरसंहितायाः भावप्रकाशिकायां भाषाटीकायां द्वितीयखण्डे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

---

# अथ द्वितीयोऽध्यायः २.



काढे करनेका विधि ।

**पानीयं षोडशगुणं क्षुण्णे द्रव्यपले क्षिपेत् । मृत्पात्रे क्काथयेद् ग्राह्यमष्टमांशावशेषितम् ॥१॥ तज्जलं पाययेद् धीमान् कोष्णं मृद्वग्निसाधितम् । शृतः क्काथः कषायश्च निर्यूहः स निगद्यते ॥ २ ॥ आहाररसपाके च संजाते द्विपलोन्मितम् । वृद्धवैद्योपदेशेन पिबेत् क्वाथं सुपाचितम् ॥ ३ ॥**

अर्थ-एक पल औषधको जो कूट कर १६ पल पानीम डालके हल्की अग्निसे औटावे । जब दो पल पानी शेष रहे तब उतारके छान ले, इसको कुछ २ गरम २ पीवे तथा रोगीको भले प्रकार अन्नपचन होनेके पश्चात् वृद्ध वैद्यको पूछ करके काढा देवे । १ शृत २ क्काथ ३ कषाय और निर्यूह ये काढेके पर्यायवाचक नाम हैं ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

काढेमें खांड और सहत डालनेका प्रमाण।

काथे क्षिपेत् सितामंशैश्चतुर्थाष्टमषोडशैः।
वातपित्तकफातंके विपरीतं मधु स्मृतम् ॥ ४ ॥

अर्थ-काढेमें खांड डालनी होवे तो वातरोगमें काढेमें काढेकी चौथाई, पित्तरोग होवे तो आठवां हिस्सा और कफरोग होवे तो काढेका सोलहवां भाग डाले। तथा पित्तरोग होय तो काढेका सोलहवां हिस्सा, वातरोग होय तो आठवां हिस्सा और कफरोग होवे तो चतुर्थांश सहत डाले ॥ ४ ॥

काढेमें जीरा आदि करडे और दूध आदि पतले पदार्थ मिलानेका प्रमाण।

जीरकं गुग्गुलुं क्षारं लवणं च शिलाजतु।
हिंगु त्रिकटुकं चैव क्वाथे शाणोन्मितं क्षिपेत् ॥ ५ ॥
क्षीरं घृतं गुडं तैलं मूत्रं चान्यद्रवं तथा।
कल्कं चूर्णादिकं क्वाथे निक्षिपेत् कर्षसंमितम् ॥ ६ ॥

अर्थ-जीरा, गूगल, जवाखार, सैंधानमक, शिलाजीत, हींग त्रिकुटा ये पदार्थ काढेमें डालने हों तो शाणप्रमाण डाले। और दूध, घी, गुड, तेल, मूत्र तथा अन्य दूसरे पतले पदार्थ कल्क चूर्णादिक एक एक कर्ष ( २ तोले ) डाले ॥ ५. ॥ ६ ॥

काढेके पात्रको ढकनेका निषेध।

अपिधानमुखे पात्रे जलं दुर्जरतां व्रजेत् ॥
तस्मादावरणं त्यक्त्वा क्वाथादीनां विनिश्चयः ॥ ७ ॥

अर्थ-काढा होते समय उस पात्रको ढके नहीं क्योंकि काढेके पात्रको ढकनेसे काढा भारी होजाता है। इस कारण काढा करते समय उसके मुखपर ढकना न देवे यह नियम सर्वत्र है ॥ ७ ॥

गुडूच्यादिकाढा सर्वज्वरपर।

गुडूचीधान्यकारिष्टरक्तचन्दनपद्मकैः। गुडूच्यादिगण-क्वाथः सर्वज्वरहरः स्मृतः ॥ ८ ॥ दीपनो दाहहृल्लास-तृष्णाछर्द्यरुचीर्जयेत्।

अर्थ-१ गिलोय, २ धनिया ३ नीमकी छाल ४ पद्माख और ५ रक्तचन्दन इन पांच औषधोका काढा करके पीवे तो जठराग्निको दीपन करके सर्व ज्वरोको दूर करे। उसी प्रकार वमन और अरुचि इन सर्व रोगोको दूर करे इसे गुडूच्यादि क्वाथ कहते है ॥ ८ ॥

नागरादि वा शुण्ठ्यादिकाढा सर्वज्वरपर।

नागरं देवकाष्ठं च धान्याकं बृहतीद्वयम् ॥

**दद्यात् पाचनकं पूर्वं ज्वरितानां ज्वरापहम् ॥ ९ ॥**

अर्थ-१ सोंठ २ देवदारु ३ धनिया ४ कटेरी और ५ बडी कटेरी ( भटकटैया ) इन पांच औषधोंको छदाम २ भर ले काढा कर प्रथम ज्वरके पचानेको यह पाचन काढा देवे तो ज्वर दूर हो ॥ ९ ॥

क्षुद्रादिक्काथ ।

**क्षुद्रा किराततिक्तं च शुण्ठी छिन्ना च पौष्करम् ॥ १० ॥**
**कषाय एषां शमयेत् पीतश्चाष्टविधं ज्वरम् ॥**

अर्थ-१ कटेरी २ चिरायता ३ कुटकी ४ सोंठ ५ गिलोय और ६ अंडकी जड इन छः औषधोंका काढा करके पीवे तो आठ प्रकारके ज्वर दूर हों ॥ १० ॥

गुडूच्यादिक्काथ ।

**गुडूचीपिप्पलीमूलनागरैः पाचनं स्मृतम् ॥ ११ ॥**
**दद्याद् वातज्वरे पूर्णलिंगे सप्तमवासरे ॥**

अर्थ-१ गिलोय २ पीपरामूल और ३ सोंठ इन तीन औषधोंका काढा वातज्वर पूर्णलिंग होनेपर सातवें दिनके पश्चात् पाचन देवे तो वातज्वर नष्ट होवे ॥ ११ ॥

शालपर्ण्यादिकाढा वातज्वरपर ।

**शालिपर्णी बला रास्ना गुडूची सारिवा तथा ॥ १२ ॥**
**आसां क्वाथं पिबेत् कोष्णं तीव्रवातज्वरच्छिदम् ॥**

अर्थ-१ काश्मरी २ सरवन ३ रास्ना ४ त्रायमाण और ५ गिलोय इन पांच औषधोंका काढा थोडा गरम पीवे तो तीव्र वातज्वर दूर होय ॥ १२ ॥

काश्मर्यादिक्काथ वातज्वरपर ।

**काश्मरीसारिवारास्नात्रायमाणामृताभवः ॥ १३ ॥**
**कषायः सगुडः पीतो वातज्वरविनाशनः ॥**

अर्थ-१ शालपर्णी २ खरेटी ३ रास्ना ४ गिलोय और ५ सरिवन इन पांच औषधोंका काढा कर गुड मिलायके पीवे तो वातज्वर दूर हो ॥ १३ ॥

कट्फलादिपाचन पित्तज्वरपर ।

**कट्फलेन्द्रयवाम्बष्ठातिक्तामुस्तैः शृतं जलम् ॥ १४ ॥**
**पाचनं दशमेऽह्नि स्यात् तीव्रे पित्तज्वरे नृणाम् ।**

अर्थ-१ कायफल २ इंद्रजौ ३ पाढ ४ कुटकी और ५ नागरमोथा इन पांच औषधोंका काढा तीव्र पित्तज्वरके दश दिन जानेपर यह पाचन देवे तो पित्तज्वर दूर होवे ॥ १४ ॥

पर्पटादिकाढा पित्तज्वरपर।

पर्पटो वासकस्तिक्ता किरातो धन्वयासकः ॥ १५ ॥
प्रियङ्गुश्च कृतः क्वाथ एषां शर्करया युतः।
पिपासादाहपित्तास्रयुक्तं पित्तज्वरं जयेत् ॥ १६ ॥

अर्थ-१ पित्तपापडा २ अडूसा ३ कुटकी ४ चिरायता ५ धमासा और ६ फूल-प्रियंगु इनका काढा करके खांड मिलायके पीवे तो प्यास दाह और रक्तपित्त इनसे युक्त पित्तज्वर दूर होवे ॥ १५ ॥ १६ ॥

द्राक्षादिकाढा पित्तज्वरपर।

द्राक्षा हरीतकी मुस्तं कटुका कृतमालकः।
पर्पटश्च कृतः क्वाथ एषां पित्तज्वरापहः ॥ १७ ॥
तृण्मूर्छादाहपित्तासृक्शमनो भेदनः स्मृतः।

अर्थ-१ दाख, २ छोटी हरड, ३ नागरमोथा, ४ कुटकी, ५ किरवारेका गूदा और ६ पित्तपापडा इन छः औषधोंका काढा पित्तज्वरको दूर करे तथा तृषा, मूर्छा, दाह, रक्तपित्त इनको शान्त करे एवं भेदक ( बँधे हुए मलको तोडनेवाला ) है ॥ १७ ॥

बीजपूरादिपाचन कफज्वरपर।

बीजपूरशिवापथ्यानागरग्रन्थिकैः शृतम् ॥ १८ ॥
सक्षारं पाचनं श्लेष्मज्वरे द्वादशवासरे।

अर्थ-१ बिजोरेकी जड २ छोटी हरड ३ सोंठ ४ पीपरामूल इन चार औषधोंका काढा करके उसमें जवाखार मिलाय बारह दिनके पश्चात् कफज्वरपर पाचन देवे तो कफज्वर दूर होय ॥ १८ ॥

भूनिम्बादिकाथ कफज्वरपर।

भूनिम्बनिम्बपिप्पल्यः शठी शुण्ठी शतावरी ॥ १९ ॥
गुडूची बृहती चेति क्वाथो हन्यात् कफज्वरम्।

अर्थ-१ चिरायता २ नीमकी छाल ३ पीपर ४ कचूर ५ सोंठ ६ सतावर ७ गिलोय और ८ कटेरी इन आठ औषधोंका काढा करके पीवे तो कफज्वरको दूर करे ॥ १९ ॥

पटोलादिकाढा कफज्वरपर।

पटोलत्रिफलातिक्ताशठीवासामृताभवः ॥ २० ॥
क्वाथो मधुयुतः पीतो हन्यात् कफकृतं ज्वरम्।

अर्थ-१ पटोलपत्र २ हरड ३ बहेडा ४ आमला ५ कुटकी ६ कचूर ७ अडूसा और ८ गिलोय इन औषधोंका काढा सहत मिलायके पीवे तो कफज्वरको नष्ट करे ॥ २० ॥

पर्पटादिकाढा वातपित्तज्वरपर ।

पर्पटाब्दामृताविश्वकिरातैः साधितं जलम् ॥ २१ ॥
पञ्चभद्रमिदं ज्ञेयं वातपित्तज्वरापहम् ।

अर्थ-१ पित्तपापडा २ नागरमोथा ३ गिलोय ४ सोंठ और ५ चिरायता इन पांच औषधोंका काढा करके पीवे तो वातपित्तज्वर दूर होवे ॥ २१ ॥

लघुक्षुद्रादिकाढा वातकफज्वरपर ।

क्षुद्राशुण्ठीगुडूचीनां कषायः पौष्करस्य च ॥ २२ ॥
कफवाताधिके पेयो ज्वरे वापि त्रिदोषजे ।
कासश्वासारुचिकरे पार्श्वशूलविधायिनि ॥ २३ ॥

अर्थ-१ कटेरी २ सोंठ ३ गिलोय और ४ अंडकी जड इन चार औषधोंका काढा पीनेसे ज्वरमें कफ वायु प्रबल हो उसको हरे और श्वास, खांसी, अरुचि, पीठका शूल इन उपद्रव करके युक्त ऐसा त्रिदोषज ज्वर दूर होवे ॥ २२ ॥ २३ ॥

आरग्वधादिकाढा वातकफज्वरपर ।

आरग्वधकणामूलमुस्ततिक्ताभयाकृतः ।
क्वाथः शमयति क्षिप्रं ज्वरं वातकफोद्भवम् ॥ २४ ॥
आमशूलप्रशमनो भेदी दीपनपाचनः ।

अर्थ-१ अमलतासका गूदा २ पीपरामूल ३ नागरमोथा ४ कुटकी और ५ जंगी हरड इन पांच औषधोंका काढा करके पीवे तो वातकफज्वर आमका शूल तत्काल नष्ट होय तथा मल उत्तम होकर दीपन पाचन करे ॥ २४ ॥

अमृताष्टक पित्तश्लेष्मज्वरपर ।

अमृतारिष्टकटुकामुस्तेन्द्रयवनागरैः ॥२५॥ पटोलचन्दनाभ्यां च पिप्पलीचूर्णयुक् शृतम्।अमृताष्टकमेतच्च पित्तश्लेष्मज्वरापहम् ॥२६॥ छर्द्यरोचकहृल्लासदाहतृष्णानिवारणम् ।

अर्थ-१ गिलोय २ नीमकी छाल ३ कुटकी ४ नागरमोथा ५ इन्द्रजौ ६ सोंठ ७ पटोलपत्र और ८ लालचन्दन इन आठ औषधोंका काढा करके पीपलका चूर्ण डालके पीवे तो पित्तकफज्वर दूर होवे तथा वमन, अरुचि, हृल्लास, दाह और प्यासको नष्ट करे ॥ २५ ॥ २६ ॥

पटोलादिकाढा पित्तकफज्वरपर ।

पटोलं चन्दनं मूर्वा तिक्ता पाठामृतागणः ॥ २७ ॥
पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहकण्डूविषापहः ।

अर्थ-१ पटोलपत्र २ रक्तचंदन ३ मूर्वा ४ कुटकी ५ पाढ और ६ गिलोय इन छः औषधोंका काढा करके पीवे तो पित्तकफज्वर, वमन, दाह, खुजली और विदग्धा इनको दूर करे ॥ २७ ॥

कंटकार्यादिपाचन सर्वज्वरपर।

कण्टकारीद्वयं शुण्ठी धान्यकं सुरदारु च ॥ २८ ॥
एभिः शृतं पाचनं स्यात् सर्वज्वरविनाशनम्।

अर्थ-१ कटेरी २ छोटी कटेरी ३ सोंठ ४ धनियां और ५ देवदारु इन पांच औषधोंका काढा करके पीवे तो सर्व प्रकारके ज्वर दूर हों, इसको पाचन कहते हैं ॥ २८ ॥

दशमूलादिकाढा वातकफज्वरादिपर।

शालिपर्णीपृष्टपर्णी बृहतीद्वयगोक्षुरैः ॥२९॥ बिल्वाग्निमन्थस्योनाककाश्मरीपाटलायुतैः। दशमूलमिति ख्यातं क्वथितं तज्जलं पिबेत् ॥३०॥ पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं वातश्लेष्मज्वरापहम् ॥ सन्निपातज्वरहरं सूतिकादोषनाशनम् ॥ ३१ ॥ शोषशैत्यभ्रमस्वेदकासश्वासविकारनुत्। हृत्कम्पग्रहपार्श्वार्तितन्द्रामस्तकशूलहृत् ॥ ३२ ॥

अर्थ-१ शालपर्णी २ पिठवन ३ छोटी कटेरी ४ बडी कटेरी ५ गोखरू ६ बेलगिरी ७ अरनी ८ टेंटू ९ कंभारी और १० पाढल इन दश मूलका काढा पिप्पलीका चूर्ण डालके पीवे तो वातकफज्वर संनिपातज्वर प्रसूतिका रोग शोष[1] सर्दीका लगना भ्रम पसीने खांसी और श्वास इन रोगोंको दूर करे ॥ २९-३२ ॥

अभयादिकाढा त्रिदोषज्वरपर।

अभयामुस्तधान्याकरक्तचन्दनपद्मकैः। वासकेन्द्रयवोशीरगुडूचीकृतमालकैः ॥ ३३ ॥ पाठानागरतिक्ताभिः पिप्पलीचूर्णयुक् शृतम्। पिबेत्त्रिदोषज्वरजित् पिपासादाहकासनुत् ॥ ३४ ॥ प्रलापश्वासतन्द्राघ्नं दीपनं पाचनं परम्। विण्मूत्रानिलविष्टम्भवमिशोषारुचिच्छिदम् ॥ ३५ ॥

अर्थ-१ जंगी हरड २ नागरमोथा ३ धनिया ४ लालचंदन ५ पद्माख ६ अडूसा ७ इन्द्रजौ ८ खस ९ गिलोय १० अमलतासका गूदा ११ पाढ १२ सोंठ और १३ कटकी इनका काढा करके उसमें पीपलका चूर्ण डालके पीवे तो त्रिदोषज्वर, प्यास,

१ शोष, शैत्य इस ठिकाने 'शाखाशैत्य' ऐसा पाठ है, तहां हाथ पैरमें सरदी होना ऐसा अर्थ जानना चाहिये।

दाह, खाँसी, प्रलाप, श्वास, तन्द्रा इनको दूर करे । दीपन और पाचन है । एवं मल मूत्र अधोवायु इनका रुकना, वमन, शोष और अरुचि इनको दूर करे ॥ ३३-३५॥

अष्टदशांगकाढा सन्निपानादिकोंपर ।

**किरातकटुकीमुस्ताधान्येन्द्रयवनागरैः । दशमूलमहादारुगजपिप्पलिकायुतैः ॥ ३६ ॥ कृतः कषायः पार्श्वार्तिसन्निपातज्वरं जयेत् । कासश्वासवमीहिक्कातंद्राहृद्ग्रहनाशनः॥३७॥**

अर्थ-१ चिरायता २ कुटकी ३ नागरमोथा ४ धनिया ५ इंद्रजौ ६ सोंठ १० दशमूल मिलायकर १६ हुए, १७ देवदारु और १८ गजपीपल इन अठारह औषधोंका काढा करके पीवे तो पार्श्वशूल और सन्निपातज्वर ये दूर हों । उसी प्रकार श्वास, खांसी, वमन, हिचकी, तंद्रा और हृदयपीडा इनको दूर करे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

यवान्यादिकाढा श्वासादिकोंपर ।

**यवानी पिप्पली वासा तथा वत्सकवल्कलः ।**
**एषां क्वाथं पिबेत् कासे श्वासे च कफजे ज्वरे ॥ ३८ ॥**

अर्थ-१ अजवायन, २ पीपल, ३ अडूसेके पत्ते और ४ कुडेकी छाल इन चार औषधोंका काढा करके पीवे तो खांसी, श्वास और कफज्वर इनका नाश करे ॥३८॥

कट्फलादिकाढा कासादिपर ।

**कट्फलाम्बुदभार्ङ्गीभिर्धान्यरोहिषपर्पटैः ।**
**वचाहरीतकीशृंगीदेवदारुमहौषधैः ॥**
**क्वाथः कासं ज्वरं हंति श्वासश्लेष्ममलग्रहान् ॥ ३९ ॥**

अर्थ-१ कायफल, २ नागरमोथा, ३ भारंगी, ४ धनियां ५ रोहिषतृण[1], ६ पित्तपापडा, ७ वच, ८ हरड, ९ काकडासिंगी, १० देवदारु और ११ सोंठ इन ग्यारह औषधोंका काढा पीनेसे खांसी, ज्वर, श्वास, कफ और कंठका रुकना इन सबको दूर करे॥ ३९॥

गुडूच्यादिकाढा तथा पर्पटादिकाढा ।

**क्वाथो जीर्णज्वरं हंति गुडूच्याः पिप्पलीयुतः ॥**
**तथा पर्पटजः क्वाथः पित्तज्वरहरः परः ।**
**किं पुनर्यदि युज्येत चन्दनोदीच्यनागरैः ॥ ४० ॥**

अर्थ-गिलोयका काढा सिद्ध होनेपर पीपलका चूर्ण डालके पीवे तो बहुत दिन का ज्वर जाय । इसी प्रकार केवल पित्तपापडेका काढा करके उसमें पीपलका चूर्ण मिलायके पीवे तो पित्तज्वर नष्ट होय । यदि लालचंदन, नेत्रवाला, सोंठ इनको मिलायके पित्तपापडेका काढा करके सेवन करे तो पित्तज्वर चला जाय इसमें क्या कहना है ॥ ४० ॥

१ रोहिषतृणके प्रतिनिधिमें चिरायता डालनेका सम्प्रदाय है ।

निदिग्धिकामृताशुण्ठीकषायं पाययेद् भिषक् ॥ ४१ ॥
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं श्वासकासार्दितापहम् ॥
पीनसारुचिवैस्वर्यशूलजीर्णज्वरच्छिदम् ॥ ४२ ॥

अर्थ–१ कटेरी, २ गिलोय, ३ सोंठ इन औषधोंका काढा पीपलका चूर्ण मिलायके सेवन करे तो श्वास, खांसी. आर्दितवायु. सरेकमा. अरुचि, स्वरभङ्ग, शूल और जीर्णज्वर इनको दूर करे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

देवदार्वादिकाढा प्रसूतिदोषपर ।

देवदारु वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम् । कट्फलं मुस्तभूनिम्बतिक्तधान्या हरीतकी ॥ ४३ ॥ गजकृष्णा च दुस्पर्शा गोक्षुरं धन्वयासकम् ॥ बृहत्यतिविषा च्छिन्ना कर्कटी कृष्णजीरकम् ॥ ४४ ॥ क्वाथमष्टावशेषं तु प्रसूतां पाययेत् स्त्रियम्॥शूलकासज्वरश्वासमूर्च्छाकम्पशिरोर्तिजित् ॥ ४५ ॥

अर्थ–१ देवदारु, २ वच, ३ कूठ, ४ पीपल, ५ सोंठ, ६ कायफल, ७ नागरमोथा, ८ चिरायता, ९ कुटकी, १० धनिया. ११ जङ्गीहरड. १२ गजपीपल, १३ लाल धमासा, १४ गोखरू, १५धमासा, १६ कटेरी, १७ अतीस, १८ गिलोय १९ काकडासिङ्गी और २० काला जीरा, इन बीस औषधोंका अष्टावशेष काढा करके पीवे तो प्रसूतिरोग, शूल, खांसी, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा. कम्पवायु और मस्तकपीडा इन सबको दूर करे ॥ ४३–४५ ॥

क्षुद्रादिकाढा सर्वशीतज्वरोंपर ।

क्षुद्राधान्यकशुण्ठीभिर्गुडूचीमुस्तपद्मकैः । रक्तचन्दनभूनिम्बपटोलवृषपौष्करैः ॥ ४६ ॥ कटुकेन्द्रयवारिष्टभार्ङ्गीपर्पटकैः समैः । क्वाथं प्रातर्निषेवेत सर्वशीतज्वरच्छिदम् ॥ ४७ ॥

अर्थ–१ कटेरी, २ धनिया,३ सोंठ,४ गिलोय, ५ नागरमोथा, ६ पद्माख,७ लाल चन्दन, ८ चिरायता, ९ पटोलपत्र, १० अडूसा, ११ अरंडकी जड, १२ कुटकी, १३ इन्द्रजौ, १४ नीमकी छाल, १५ भारंगी और १६ पित्तपापडा इन सोलह औषधोंका काढा प्रातःकालमे पीवे तो सर्वशीतज्वर दूर हों ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

---

१ यहां दुःस्पर्शा और धन्वयासक दोनो शब्दोका अर्थ धमासा ही होता है अत एव परिभाषामे कहे प्रमाण धमासा दूना लेना अथवा दुःस्पर्शा शब्द करके कौचके बीज लेने चाहिये ।

मुस्तादिकाढा विषमज्वरपर ।

**मुस्ताक्षुद्रामृताशुण्ठीधात्रीक्वाथः समाक्षिकः ।**
**पिप्पलीचूर्णसंयुक्तो विषमज्वरनाशनः ॥ ४८ ॥**

अर्थ-१ नागरमोथा, २ कटेरी, ३ गिलोय, ४सोंठ और ५ आमले इन पांच औषधोंका काढा सहत और पीपलका चूर्ण डालके पीवे तो विषमज्वर दूर होय ॥ ४८ ॥

पटोलादिकाढा ऐकाहिकज्वरपर।

**पटोलत्रिफलानिम्बद्राक्षाशम्याकविश्वकैः ।**
**क्वाथः सितामधुयुतो जयेदैकाहिकं ज्वरम् ॥ ४९ ॥**

अर्थ-१पटोलपत्र, २ त्रिफला, ३ नीमकी छाल, ४ मुनक्का, ( दाख ), ५ अमलतासका गूदा और ६ अडूसा इन छः औषधोंका काढा सहत और खांड डालके पीवे तो नित्य आनेवाला ज्वर दूर होवे ॥ ४९ ॥

**पटोलेन्द्रयवादारुत्रिफलामुस्तगोस्तनैः । मधुकामृतवासानां क्वाथं क्षौद्रयुतं पिबेत् ॥ ५० ॥ सन्तते सतते चैव द्वितीयकतृतीयके। ऐकाहिके वा विषमे दाहपूर्वे नवज्वरे ॥ ५१ ॥**

अर्थ-१ पटोलपत्र, २ इन्द्रजौ, ३ देवदारु, ४ त्रिफला, ५ नागरमोथा, ६ मुनक्का ( दाख ), ७ मुलहटी, ८ गिलोय और ९ अडूसा इन नव औषधोंका काढा कर सहत मिलायके पीवे तो सन्ततज्वर, तृतीयज्वर, ऐकाहिकज्वर, विषमज्वर, दाहपूर्वक ज्वर और नवज्वर इतने रोगोंको दूर करे ॥ ५० ॥ ५१ ॥

गुडूच्यादिकाढा तृतीयज्वरपर ।

**गुडूचीधान्यमुस्ताभिश्चन्दनोशीरनागरैः।कृतं क्वाथं पिबेत्क्षौद्रसितायुक्तं ज्वरातुरः ॥५२॥ तृतीयज्वरनाशाय तृष्णादाहनिवारणम् ।**

अर्थ-१ गिलोय, २धनिया, ३नागरमोथा, ४लालचंदन, ५नेत्रवाला और ६सोंठ इन छःऔषधोंका काढा सहत और खांड डालके पीवे तो तिजारी आना दूर होवे ॥५२॥

देवदार्वादिकाढा चातुर्थिकज्वरपर ।

**देवदारुशिवावासाशालिपर्णीमहौषधैः ॥ ५३ ॥**
**धात्रीयुतं शृतं शीतं दद्यान्मधुसितायुतम् ।**
**चातुर्थिकज्वरश्वासकासे मन्दानले तथा ॥ ५४ ॥**

अर्थ-१देवदारु, २ जंगी हरड, ३ अडूसा, ४सालपर्णी, ५ सोंठ और ६ आमले इन छः औषधोंका काढा करके शीतल होनेपर सहत और खांड मिलायके पीवे तो चौथैया ज्वर, श्वास और खांसी दूर हो तथा अग्नि प्रदीप्त होती है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

गुडूच्यादिकाढा ज्वरातिसारपर।

गुडूचीधान्यकोशीरशुण्ठीवालकपर्पटैः। बिल्वप्रतिविषापाठा-रक्तचन्दनवत्सकैः ॥५५॥ किरातमुस्तेन्द्रयवैः क्वथितं शिशिरं पिबेत्। सक्षौद्रं रक्तपित्तघ्नं ज्वरातीसारनाशनम् ॥ ५६ ॥

अर्थ-१ गिलोय २ धनिया ३ खस ४ सोंठ ५ नेत्रवाला ६ पित्तपापडा ७ बेल-गिरी ८ अतीस ९ पाढ १० लालचन्दन ११ कुटजकी छाल १२ चिरायता १३ नागरमोथा और १४ इन्द्रजौ इन चौदह औषधोंका काढा शीतल कर सहत मिलायके पीवे तो रक्तपित्त और ज्वरातिसार दूर होवे ॥ ५६ ॥ ५६ ॥

नागरादिकाढा ज्वरातिसारपर।

नागरं कुटजो मुस्तममृताऽतिविषा तथा।
एभिः कृतं पिबेत् क्वाथं ज्वरातीसारनाशनम् ॥५७॥

अर्थ-१ सोंठ २ कुडेकी छाल ३ नागरमोथा ४ गिलोय और ५ अतीस इन पांच औषधोंका काढा पीवे तो ज्वरातिसार शान्त होवे ॥ ५७ ॥

धान्यपञ्चक आमशूलपर।

धान्यवासकबिल्वाब्दनागरैः साधितं जलम्।
आमशूलहरं ग्राहि दीपनं पाचनं परम् ॥ ५८ ॥

अर्थ-१ धनिया २ नेत्रवाला ३ बेलगिरी ४ नागरमोथा और ५ सोंठ इन पांच औषधोंका काढा पीनेसे आमशूल दूर करके मलका अवष्टंभ दूर करे और दीपन पाचन करे ॥ ५८ ॥

धान्यकादिकाढा दीपनपाचनपर।

धान्यनागरजः क्वाथो दीपनः पाचनस्तथा।
एरण्डमूलयुक्तश्च जयेदामानिलव्यथाम् ॥ ५९ ॥

अर्थ-१ धनिया २ सोंठ, इन दोनों औषधोंका काढा पीनेसे दीपन, पाचन करे और यदि इसमें अरण्डकी जड डाल लेवे तो आमवायुको दूर करता है ॥५९॥

वत्सकादिकाढा आमातिसार और रक्तातिसारपर।

वत्सकातिविषाबिल्वमुस्तवालकमाशृतम्।
अतिसारं जयेत् सामं चिरजं रक्तशूलजित् ॥ ६० ॥

अर्थ-१ कुडेकी छाल २ अतीस ३ बेलगिरी ४ नागरमोथा और ५ नेत्रवाला इन पांच औषधोंका काढा बहुत दिनके आमातिसारको और शूलसहित रक्तातिसारको दूर करे ॥ ६० ॥

कुटजाष्टक काढा अतिसारादिकोंपर।

कुटजातिविषापाठाधातकीलोध्रमुस्तकैः। ह्रीबेरदाडिमयुतैः कृतः क्वाथः समाक्षिकः॥६१॥पेयो मोचरसेनैव कुटजाष्टकसञ्ज्ञकः।अतिसारान् जयेद्दातरक्तशूलामदुस्तरान् ॥ ६२ ॥

अर्थ—१कुडेकी छाल २ अतीस ३ पाढ ४ धायके फूल ५ लोध ६ नागरमोथा ७ नेत्रवाला और ८ अनारकी छाल इन आठ औषधोका काढा सहत और मोचरस मिलायके पीवे तो जिस अतिसारमें दाह, रक्तशूल और आम होय ऐसे घोर अतिसारको नष्ट करे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

ह्रीबेरादि काढा अतिसारादि रोगोंपर।

ह्रीबेरधातकीलोध्रपाठालज्जालुवत्सकैः।
धान्याकातिविषामुस्तगुडूचीबिल्वनागरैः॥ ६३ ॥
कृतः कषायः शमयेदतिसारं चिरोत्थितम्।
अरोचकामशूलास्रज्वरघ्नः पाचनः स्मृतः॥ ६४ ॥

अर्थ—१ नेत्रवाला २ धायके फूल ३ लोध ४ पाढ ५ लज्जालु ६ कुडेकी छाल ७ धनिया ८ अतीस ९ नागरमोथा १० गिलोय ११ बेलगिरी और १२ सोंठ इन बारह औषधोका काढा पीवे तो बहुत दिनका अतिसार अरुचि आमशूल रुधिरविकार और ज्वर दूर करे, इसको पाचन कहा है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

धातक्यादिकाढा बालकोंके सब अतिसारोंपर।

धातकीबिल्वलोध्राणि वालकं गजपिप्पली।
एभिः कृतं शृतं शीतं शिशुभ्यः क्षौद्रसंयुतम् ॥ ६५ ॥
प्रदद्यादवलेहं वा सर्वातीसारशान्तये।

अथ—१ धायके फूल २ बेलगिरी ३ लोध ४ नेत्रवाला और ५ गजपीपल इन पांच औषधोंके काढेको शीतल कर सहत मिलायके बालकको चटावे तो बालकका अतिसार रोग दूर होवे ॥ ६५ ॥

शालपर्ण्यादि काढा संग्रहणीपर।

शालिपर्णीबलाबिल्वधान्यशुण्ठीकृतं शृतम् ॥ ६६ ॥
आध्मानशूलसहितं वातजां ग्रहणीं जयेत्।

अर्थ—१ शालपार्णी २ खरेटी ३ बेलगिरी ४ धनियां और ५ सोंठ इन पांच औषधोंका काढा करके पीवे तो पेटका फूलना और शूल इन करके युक्त वातज संग्रहणीको दूर करे ॥ ६६ ॥

चतुर्भद्रादि काढा आमसंग्रहणीपर।

**गुडूच्यतिविषाशुण्ठीमुस्तैः क्वाथः कृतो जयेत् ॥ ६७ ॥**
**आमानुपक्तां ग्रहणीं ग्राही पाचनदीपनः।**

अर्थ-१ गिलोय २ अतीस ३ सोंठ और ४ नागरमोथा इन चार औषधोंका काढा पीवे तो आमयुक्तग्रहणी दूर होवे तथा ग्राही कहिये मलका अवष्टंभ करनेवाला होकर दीपन पाचन करता है ॥ ६७ ॥

इन्द्रयवादि काढा सब अतिसारोंपर।

**यवधान्यं पटोलानां क्वाथः सक्षौद्रशर्करः ॥ ६८ ॥**
**योज्यः सर्वातिसारेषु बिल्वाम्रास्थिभवस्तथा।**

अर्थ-१ इन्द्रजौ २ धनिया और ३ पटोलपत्र इन तीन औषधोंके काढेमें मिश्री और सहत मिलायके पीवे तो सम्पूर्ण अतिसार दूर होवे। उसी प्रकार बेलगिरीका अथवा मिश्री आमकी गुठलीका, आमकी गुठली और बेलगिरीका काढा करके सहत मिलायके पीवे तो रक्तपित्त और दुर्घट श्वास और खांसी दूर हो ॥ ६८ ॥

त्रिफलादि काढा कृमिरोगपर।

**त्रिफला देवदारुश्च मुस्ता मूषककर्णिका ॥ ६९ ॥**
**शिग्रुरेतैः कृतः क्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः।**
**विडंगचूर्णयुक्तश्च कृमिघ्नः कृमिरोगहा ॥ ७० ॥**

अर्थ-१ हरड २ बहेडा ३ आमला ४ देवदारु ५ नागरमोथा ६ मूसाकर्णी और ७ सहिंजनेकी छाल इन सात औषधोंका काढा पीपलका चूर्ण वा वायविडंगका चूर्ण मिलायके पीवे तो कृमिज्वर और विवर्णतादि दूर होय ॥ ६९ ॥ ७० ॥

फलत्रिकादि काढा कामला और पांडुरोगपर।

**फलत्रिकाऽमृतातिक्तानिम्बकैरातवासकैः।**
**जयेन्मधुयुतः क्वाथः कामलां पाण्डुतां तथा ॥ ७१ ॥**

अर्थ-१ हरड २ बहेडा ३ आमला ४ गिलोय ५ कुटकी ६ नीमकी छाल ७ चिरायता और ८ अडूसेके पत्ते इन आठ औषधोंका काढा कर उसमें सहत मिलायके पीवे तो कामला और पांडुरोगको दूर करे ॥ ७१ ॥

पुनर्नवादि काढा पांडुकासादिरोगोंपर।

**पुनर्नवाऽभयानिम्बदार्वीतिक्तापटोलकैः।**
**गुडूचीनागरयुतैः क्वाथो गोमूत्रसंयुतः ॥ ७२ ॥**
**पाण्डुकासोदरश्वासशूलसर्वाङ्गशोथहा ॥**

अर्थ-१ सांठीकी जड, २ हरडे, ३ नीमकी छाल, ४ दारुहल्दी, ५ कुटकी, ६ पटोलपत्र[1], ७ गिलोय और ८ सोंठ इनका काढा गोमूत्र मिलायके पीवे तो पांडुरोग, खांसी, उदररोग, श्वास, शूल और सर्वांगकी सूजनको नष्ट करे ॥ ७२ ॥

वासादिकाढा ।

**वासाद्राक्षाऽभयाक्वाथः पीतः सक्षौद्रशर्करः ॥ ७३ ॥**
**निहन्ति रक्तपित्तार्तिश्वासकासान्सुदारुणान् ।**

अर्थ-अडूसा २ दाख ३ हरडे इनके काढ़ेमें सहत और मिश्री मिलायके पीवे तो रक्तपित्तकी पीडा, श्वास और दारुण खांसी इन सबको दूर करे ॥ ७३ ॥

वासेका काढा रक्तपित्तक्षयादिपर ।

**रक्तपित्तं क्षयं कासं श्लेष्मपित्तज्वरं तथा ॥ ७४ ॥**
**केवलो वासकक्वाथः पीतः क्षौद्रेण नाशयेत् ।**

अर्थ-केवल अडूसेके काढ़ेमें सहत मिलायके पीवे तो रक्तपित्त, क्षय, खांसी और श्लेष्मपित्तज्वरको दूर करे ॥ ७४ ॥

वासादि काढ़ा ज्वरखांसीपर ।

**वासाक्षुद्रामृताक्वाथः क्षौद्रेण ज्वरकासहा ॥ ७५ ॥**

अर्थ-१ अडूसा २ कटेरी और ३ गिलोय इनके काढ़ेमें सहत मिलायके पीवे तो ज्वर खांसी दूर होवे ॥ ७५ ॥

क्षुद्रादिकाढा खांसीपर ।

**कासघ्नः पिप्पलीचूर्णयुक्तः क्षुद्राश्रृतस्तथा ।**

अर्थ-कटेरीके काढेमें पीपलका चूर्ण मिलाके पीवे तो खांसी दूर हो ॥

क्षुद्रादि काढा श्वासखांसीपर ।

**क्षुद्राकुलत्थावासाभिर्नागरेण च साधितः ॥ ७६ ॥**
**क्वाथः पौष्करचूर्णाढ्यः श्वासकासौ निवारयेत् ।**

अर्थ-१ कटेरी २ कुलथी ३ अडूसा ४ सोंठ इनके काढेमें पुहकरमूलका चूर्ण मिलायके पीवे तो श्वास खांसीको दूर करे ॥ ७६ ॥

रेणुकादि काढा हिक्कापर ।

**रेणुकापिप्पलीक्वाथो हिङ्गुकल्केन संयुतः ॥ ७७ ॥**
**पानादेव हि पञ्चापि हिक्का नाशयति क्षणात् ।**

---

१ किसी २ आचार्यने कडुपटोलके फल कहे है परन्तु "पटोलपत्रं पित्तघ्नं नाडी तस्य कफापहा" इस प्रमाणसे इस जगह परवलके पत्ते ही लेने चाहिये ।

अर्थ-१ रेणुका और २ पीपल इनके काढेमें हींगका कल्क मिलाकर पीवे तो पांच प्रकारकी हिचकियोंको तत्काल दूर करे ॥ ७७ ॥

हिग्वादिकाढा गृध्रसीरोगपर ।

**हिङ्गुपुष्करचूर्णाढ्यं दशमूलशृतं जयेत् ॥ ७८ ॥**
**गृध्रसीं केवलः क्वाथः शेफालीपत्रजस्तथा ।**

अर्थ-दशमूलके काढेमें भुनी हींग और पुहकरमूलका चूर्ण मिलायके पीवे तो गृध्रसी नामक वातका रोग दूर होवे अथवा केवल निर्गुंडीके पत्तोंके काढेमें भुनी हींग और पुहकरमूलका चूर्ण मिलायके पीवे तो भी गृध्रसी वायु दूर होवे ॥७८॥

बिल्वादि वा गुडूच्यादि क्वाथ ।

**बिल्वत्वचो गुडूच्या वा क्वाथः क्षौद्रेण संयुतः ॥ ७९ ॥**
**जयेत् त्रिदोषजां छर्दि पर्पटः पित्तजां तथा ।**

अर्थ-बेलकी छाल अथवा गिलोयके काढेमें सहत डालके पीवे तो सन्निपातकी छर्दि ( वमनरोग ) को दूर करे, अथवा पित्तपापडेका काढा सहत मिलायके पीनेसे पित्तजन्य छर्दिको दूर करे ॥ ७९ ॥

रास्नादिपंचकक्काथ सर्वांगवातपर ।

**रास्नाऽमृतामहादारुनागरैरण्डजं शृतम् ॥ ८० ॥**
**सप्तधातुगते वाते सामे सर्वांगजे पिबेत् ।**

अर्थ-१ रास्ना २ गिलोय ३ देवदारु ४ सोंठ और ५ अरण्डकी जड इनका काढा सप्तधातुगत वायु, आमवात और सर्वांगगतवातके रोगमें पीना चाहिये ॥ ८० ॥

रास्नासप्तक ।

**रास्नागोक्षुरकैरण्डदेवदारुपुनर्नवाः ॥ ८१ ॥**
**गुडूच्यारग्वधौ चैव क्वाथ एषां विपाचयेत् ।**
**शुण्ठीचूर्णेन संयुक्तः पिबेज्जंघाकटिग्रहे ॥ ८२ ॥**
**पार्श्वपृष्ठोरुपीडायामामवाते सुदुस्तरे ।**

अर्थ-१ रास्ना २ गोखरू ३ अरण्ड ४ देवदारू ५ पुनर्नवा ६ गिलोय और ७ अमलतासका गूदा इनके काढेमें सोंठका चूर्ण मिलायके जंघा और कमरके रह-जानेमें एवं पसवाडे, पीठ, ऊरुकी पीडा और आमवात इन रोगोंमें यह काढा पीना चाहिये तो उक्त रोग दूर हों ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

महारास्नादिकाढा संपूर्णवायुपर ।

**रास्ना द्विगुणभागा स्यादेकभागास्ततः परे ॥ ८३ ॥ धन्व-**

यासबलैरण्डदेवदारुशठीवचाः । वासको नागरं पथ्या चव्या मुस्ता पुनर्नवा ॥ ८४ ॥ गुडूची वृद्धदारुश्च शतपुष्पा च गोक्षुरः । अश्वगंधा प्रतिविषा कृतमालः शतावरी ॥ ८५ ॥ कृष्णा सहचरश्चैव धान्यकं बृहतीद्वयम् । एभिः कृतं पिबेत् क्वाथं शुण्ठीचूर्णेन संयुतम् ॥ ८६ ॥ कृष्णचूर्णेन वा योगराजगुग्गुलुनाऽथवा ॥ अजमोदादिना वाऽपि तैलेनैरण्डजेन वा ॥ ८७ ॥ सर्वाङ्गकम्पे कुब्जत्वे पक्षाघातेऽपबाहुके । गृध्रस्यामवाते च श्लीपदे चापतानके ॥ ८८ ॥ अण्डवृद्धौ तथाध्माने जंघाजानुगदार्दिते । शुक्रामयं मेढ्ररोगे वंध्यायोन्यामयेषु च ॥ ८९ ॥ महारास्नादिराख्यातो ब्रह्मणा गर्भकारणम् ।

अर्थ–१ रास्ना दो तोले और २ धमासा ३ खिरेटी ४ अरण्डकी जड ५ देवदारु ६ कचूर ७ वच ८ अडूसेका पंचांग ९ सोठ १० हरडकी छाल ११ चव्य १२ नागरमोथा १३ सोंटकी जड १४ गिलोय १५ विधायरा १६ सौंफ १७ गोखरू १८ असगंध १९ अतीस २० अमलतासका गूदा २१ शतावर २२ पीपल छोटी २३ पियाबांसा २४ धनिया और २५–२६ दोनों छोटी बडी कटेरी एक २ तोला। इन छब्बीस औषधोंके काढेमें सोंठका चूर्ण मिलायके अथवा पीपलके चूर्णको मिलायके अथवा योगराजगूगलके साथ अथवा अजमोदादिचूर्णके साथ अथवा अरंडीके तेलके साथ इस काढेको पीवे तो सर्वागकंप, कुबडापन, पक्षाघात, अपबाहुक, गृध्रसी, आमवात, श्लीपद, अपतानकवायु, अंडवृद्धि, अफरा, जंघा-जानुकी पीडा, शुक्रके दोष, लिंगके रोग, वन्ध्याकी योनिके और गर्भाशयके रोग इन सबको दूर करे। ब्रह्मदेवने गर्भ स्थापनमें कारण यह महारास्नादि क्वाथ कहा है ॥ ८३–८९ ॥

एरण्डसप्तक स्तनादिगतवायुपर ।

एरण्डो बीजपूरश्च गोक्षुरो बृहतीद्वयम् ॥ ९० ॥ अश्मभेदस्तथा बिल्व एतन्मूलैः कृतः शृतः । एरण्डतैलहिंग्वाढ्यः सयवक्षारसैन्धवः ॥ ९१ ॥ स्तनस्कन्धकटीमेढ्रहृदयोत्थव्यथां जयेत् ।

अर्थ–१ अरंडकी जड २ बिजोरेकी जड ३ गोखरू ४ छोटी कटेरी ५ बडी कटेरी ६ पाषाणभेद और ७ बेलगिरी इन सात ओषधियोंकी जडके काढेमें अरंडीका

तेल और भुनी हींग तथा जवाखार और सेंधानमक इनके चूर्ण मिलाकर पीवे तो स्तन, कन्धा, कमर, लिंग और छाती इन ठिकानोपर होनेवाली वातसम्बन्धी पीडाको दूर करे ॥ ९० ॥ ९१ ॥

नागरादिकाढा वातशूलपर ।

**नागरैरण्डयोः क्राथः क्वाथ इन्द्रयवस्य वा ॥ ९२ ॥**
**हिङ्गुसौवर्चलोपेतो वातशूलनिवारणः ॥**

अर्थ-१ सोंठ २ अरण्डकी जड इन दोनों औषधोंका काढा करके उसमें भुनी हींग और कालानमक मिलायके पीवे अथवा इन्द्रजौंके काढेमें कालानमक और हींग मिलायके पीवे तो वातसम्बन्धी पीडा दूर होवे ॥ ९२ ॥

त्रिफलादिकाढा पित्तशूलपर ।

**त्रिफलारग्वधक्वाथः शर्कराक्षौद्रसंयुतः ॥ ९३ ॥**
**रक्तपित्तहरो दाहपित्तशूलनिवारणः ।**

अर्थ-१ हरड २ बहेडा ३ आमला और ४ अमलतास इन चार औषधोंके काढेमें खाँड और सहत मिलायके पीवे तो रक्तपित्त, दाह और पित्तशूल दूर हो ॥ ९३ ॥

एरण्डमूलादिकाढा कफशूलपर ।

**एरण्डमूलं द्विपलं जलेऽष्टगुणिते पचेत् ॥ ९४ ॥**
**तत्क्वाथो यावशूकाढ्यः पार्श्वहृत्कफशूलहा ।**

अर्थ-१ अरण्डकी जड दोपलै ले, उसमें आठ पल पानी मिलायके काढा करे जब अष्टमावशेष काढा होजावे तब उतार छान उसमें जवाखार मिलायके पीवे तो पसवाडे और हृदयमें होनेवाले कफके शूलका नाश होवे ॥ ९४ ॥

दशमूलादिकाढा हृद्रोगादिकोंपर ।

**दशमूलकृतः क्वाथः सयवक्षारसैन्धवः ॥ ९५ ॥**
**हृद्रोगगुल्मशूलार्तिकासश्वासांश्च नाशयेत् ।**

अर्थ-दशमूलका काढा कर उसमें जवाखार और सेंधानमक मिलायके पीवे तो हृदयरोग, गोला, शूल, श्वास और खाँसी इनका नाश करे ॥ ९५ ॥

हरीतक्यादि काढा मूत्रकृच्छ्रपर ।

**हरीतकीदुरालम्भाकृतमालकगोक्षुरैः ॥ ९६ ॥ पाषाणभेदसहितैः क्वाथो माक्षिकसंयुतः । विबन्धे मूत्रकृच्छ्रे च सदाहे सरुजे हितः ॥ ९७ ॥**

---

१ मागधपरिभाषाके मानसे दो पलके व्यावहारिक आठ तोले होते हैं ।

अर्थ-१छोटी हरड २ धमासा ३ अमलतासका गूदा ४ गोखरू और ५ पाषाणभेद इन पांच औषधोंका काढा कर उसमें सहत मिलायके पीवे तो दाह, मूत्रका रुकना तथा वायुका अवरोध इन उपद्रवयुक्त मूत्रकृच्छ्र दूर होवे ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

वीरतर्वादिकाढा मूत्राघातादिकोंपर ।

**वीरतरुर्वृक्षवन्दा काशः सहचरत्रयम् । कुशद्वयं नलो गुन्द्रा बकपुष्पोऽग्निमन्थकः ॥९८॥ मूर्वा पाषाणभेदश्च स्योनाको गोक्षुरस्तथा।अपामार्गश्च कमलं ब्राह्मी चेति गणो वरः ॥९९॥ वीरतर्वादिरित्युक्तः शर्कराश्मरिकृच्छ्रहा । मूत्राघातं वायुरोगान् नाशयेन्निखिलानपि ॥ १०० ॥**

अर्थ-१ कोहवृक्षकी छाल २ बाँदा ३ कास ४ सफेद ५ पीला और ६ काला ऐसा पियाबाँसा ७ कुशा ८ डाभ ९ देवनल १० गुंद्रा[1] ( पटेर ) ११ बकपुष्पा ( शिवलिंगी ) १२ अरनीकी जड १३ मूर्वा १४ पाषाणभेद १५ टेंटूकी जड १६ गोखरू १७ ओंगा ( चिरचिटा ) १८ कमल और १९ ब्राह्मीके[2] पत्ते इन उन्नीस औषधोंका काढा करके पीवे तो यह वीरतर्वादिक्काथ शर्करा, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और सर्व प्रकारके वादीके रोगोंको दूर करे ॥ ९८-१०० ॥

एलादि काढा पथरीशर्करादिकोंपर ।

**एलामधुकगोकण्ठरेणुकैरण्डवासकाः । कृष्णाश्मभेदसहितः क्वाथ एषां सुसाधितः ॥१०१॥ शिलाजतुयुतः पेयः शर्कराश्मरिकृच्छ्रहा ।**

अर्थ-१ छोटी इलायचीके बीज २ मुलहटी ३ गोखरू ४ रेणुकाबीज[3]५अरंडकी जड ६ अडूसा ७ पीपर और ८ पाषाणभेद इन औषधोंका काढा करके उसमें शिलाजीत मिलायके पीवे तो शर्करा, पथरी और मूत्रकृच्छ्र इनको दूर करे ॥ १०१ ॥

**समूलगोक्षुरक्वाथः सितामाक्षिकसंयुतः ॥ १०२ ॥ नाशयेन्मूत्रकृच्छ्राणि तथा चोष्णसमीरणम् ।**

अर्थ-जडसहित गोखरूके वृक्षका काढा कर उसमें खाँड और सहत मिलायके पीवे तो मूत्रकृच्छ्र और उष्णवात ( गरमीका रोग ) दूर होता है ॥ १०२ ॥

---

१ गुन्द्राको हिन्दीमें पटेर और मराठीमे गोंदणी गवत कहते है । २ ब्राह्मी रूंखडी गंगा यमुनानदीके खादरमें बहुत होती है । इसका पृथ्वीमें फैला हुआ छत्ता होता है । पत्ते गोल कुछ सुकडे हुए होते है । इसके दो भेद होते है—एक ब्राह्मी, दूसरी मण्डूकपर्णी । ३ रेणुकाबीज प्रसिद्ध है, इसके काले २ दाने होते है ।

त्रिफलादि काढा प्रमेहपर ।

वरादार्व्यब्ददारूणां क्वाथः क्षौद्रेण मेहहा ॥ १०२ ॥
वत्सको त्रिफला दार्वी मुस्तको बीजकस्तथा ।

अर्थ-१ हरड २ बहेडा ३ आमला ४ दारुहल्दी ५ नागरमोथा और ६ देवदारु इनका काढा सहत मिलायके पीवे तो प्रमेह दूर हो । १ कुडेकी छाल २ हरडे ३ बहेडा ४ आमला ५ दारुहल्दी ६ नागरमोथा ७ बीजक इन सात औषधोंका काढा सहत मिलायके पीवे तो प्रमेहको दूर करे ॥ १०३ ॥

दूसरा फलत्रिकादि काढा प्रमेहपर ।

फलत्रिकाब्ददार्वीणां विशालायाः कृतं पिबेत् ॥ १०४ ॥
निशाकल्कयुतं सर्वं प्रमेहविनिवृत्तये ।

अर्थ-१ हरड २ बहेडा ३ आंवला ४ दारुहल्दी ५ नागरमोथा और ६ इंद्रायनकी जड इन छः औषधोंके काढेमें हल्दी मिलायके पीवे तो सर्वप्रकारके प्रमेह दूर होवें १०४

दार्व्यादि काढा प्रदररोगपर ।

दार्वी रसाञ्जनं मुस्तं भल्लातः श्रीफलं वृषः ॥ किरातश्च पिबे-
देषां क्वाथं शीतं समाक्षिकम् । जयेत् सशूलं प्रदरं पीतः
श्वेतासितारुणम् ॥ १०५ ॥

अर्थ-१ दारुहल्दी २ रसोंत ३ नागरमोथा ४ भिलावा ५ बेलगिरी ६ अडूसा और ७चिरायता इन सात औषधोंके काढेको शीतल करके उसमें सहत मिलायके पीवे तो शूलसहित पीला,सफेद,काला ऐसे रंगवाला स्त्रियोंका प्रदररोग दूर हो ॥१०५॥

न्यग्रोधादि काढा व्रणादिरोगोंपर ।

न्यग्रोधप्लक्षकोशाम्रवेतसा बदरी तुणिः । मधुयष्टी प्रियालश्च
लोध्रद्वयमुदुम्बरः ॥ १०६ ॥ पिप्पलयश्च मधूकश्च तथा
पारिसपिप्पलः । सल्लकी तिन्दुकी जंबूद्वयमाम्रतरुः शिवा
॥१०७॥ कदम्बककुभौ चैव भल्लातकफलानि च । न्यग्रो-
धादिगणक्वाथं यथालाभं च कारयेत् ॥१०८॥ अयं क्वाथो
महाग्राही व्रण्यो भग्नं च साधयेत् । योनिदोषहरो दाहमेदो-
मेहविषापहः ॥ १०९ ॥

अर्थ-१ बडकी छाल २पाखरकी छाल ३ अंबाडेकी छाल ४ वेतकी छाल ५ बेरकी छाल६तूनी(तूत वृक्षकी छाल) ७ मुलहटी ८ चिरोजी ९ लाल लोध १० सफेद लोध

११ गूलरकी छाल, १२ पीपलकी छाल १३ महुआकी छाल १४ पारिसपीपलकी छाल १५ सालई वृक्षकी छाल १६ तेंदु १७ छोटी जामुन १८ बडी जामुनकी छाल १९ आम २० छोटी हरड २१ कदंबकी छाल २२ कोहकी छाल और २३ भिलावे इन तेईस औषधोंका काढा करके पीवे तो मलका अवष्टंभ होकर व्रणरोग, अस्थिभंग, योनिदोष, दाह, मेदोरोग और विषदोष ये नष्ट होवें ॥ १०६-१०९ ॥

बिल्वादि काढा मेदोरोगपर ।

बिल्वोऽग्निमन्थः स्योनाकः काश्मरी पाटला तथा ।
क्वाथ एषां जयेन्मेदोदोषं क्षौद्रेण संयुतः ॥ ११० ॥

अर्थ-१ बेलगिरी २ अरनी ३ टेंटू ४ कंभारी ५ पाढल इस बृहत्पञ्चमूलका काढा करके उसमें सहत मिलायके पीवे तो सब शरीरमें मेद बढकर जो पीडा होती है वह दूर होवे ॥ ११० ॥

दूसरा त्रिफलादिकाढा ।

क्षौद्रेण त्रिफलाक्वाथः पीतो मेदोहरः स्मृतः ।
शीतीभूतं तथोष्णाम्बु मेदोहृत् क्षौद्रसंयुतम् ॥ १११ ॥

अर्थ-त्रिफलाका काढा करके उसमें सहत मिलायके पीवे तो मेद्रोग नष्ट होवे उसी प्रकार औटे हुए जलको शीत कर उसमें सहत मिलायके पीवे तो मेद रोग दूर होवे ॥ १११ ॥

चव्यादि काढा उदररोगपर ।

चव्यचित्रकविश्वानां साधितो देवादारुणा ।
क्वाथस्त्रिवृच्चूर्णयुतो गोमूत्रेणोदरान् जयेत् ॥ ११२ ॥

अर्थ-१ चव्य २चीतेकी छाल३सोंठ और४देवदारु इन चार औषधोंका काढा कर उसमें निशोथका चूर्ण और गोमूत्र मिलाके पीवे तो सम्पूर्ण उदररोग दूर हों॥११२॥

पुनर्नवादि काढा शोथोदरपर ।

पुनर्नवाऽमृतादारुपथ्यानागरसाधितः ।
गोमूत्रगुग्गुलुयुतः क्वाथः शोथोदरापहः ॥ ११३ ॥

अर्थ-१ सांठीकी जड २ गिलोय ३ देवदारु ४ जंगी हरड और ५ सोंठ इन पांच औषधोंका काढा करके उसमें गूगल और गोमूत्र मिलायकर पीनेसे सूजनवाला उदररोग नष्ट होवे ॥ ११३ ॥

पथ्यादि काढा यकृत्प्लीहादिकोंपर ।

पथ्यारोहितकक्वाथं यवक्षारकणायुतम् ।
प्रातः पिबेद् यकृत्प्लीहगुल्मोदरनिवृत्तये ॥ ११४ ॥

अर्थ-१ जंगीहरड २ रक्तरोहिडो इन दोनों औषधोंका काढा कर उसमें पीपलका चूर्ण और जवाखार मिलायके प्रातःकाल पीवे तो यकृत् रोग और प्लीहाका रोग तथा गुल्मोदर इनको दूर करे ॥ ११४ ॥

पुनर्नवादि काढा सूजनपर।

पुनर्नवा दारुनिशा निशा शुण्ठी हरीतकी।
गुडूची चित्रको भार्ङ्गी देवदारु च तैः शृतः ॥ ११५ ॥
पाणिपादोदरमुखप्राप्तं शोफं निवारयेत्।

अर्थ-१ सांठकी जड २ दारुहल्दी ३ हल्दी ४ सोंठ ५ जंगीहरड ६ गिलोय ७ चीतेकी छाल ८ भारंगी ९ देवदारु इन नौ औषधोंका काढा करके पीवे तो संपूर्ण अंगकी सूजन दूर होवे ॥ ११५ ॥

त्रिफलादि काढा वृषणशोथपर।

फलत्रिकोद्भवं क्वाथं गोमूत्रेणैव पाययेत् ॥ ११६ ॥
वातश्लेष्मकृतं हन्ति शोथं वृषणसंभवम्।

अर्थ--१ हरडे २ बहेडा ३ आंवला इन तीन औषधोंका काढा करके उसमें गोमूत्र मिलायके पीवे तो वातकफजन्य जो अंडकोशोंकी सूजन है वह दूर होय॥११६

रास्नादि काढा अन्त्रवृद्धिपर।

रास्नाऽमृताबलायष्टीगोकण्टरण्डजः शृतः ॥ ११७ ॥
एरण्डतैलसंयुक्तो वृद्धिमन्त्रोद्भवां जयेत्।

अर्थ--१ रासना २ गिलोय ३ खरेटी ४ मुलहटी ५ गोखरू ६ अरण्डकी जड इन छः औषधोंका काढा करके उसमें अरण्डीका तेल मिलायके पीवे तो अन्त्रवृद्धि ( अर्थात् अन्तर्गत वायु कि जिसमें अण्डकोश बडे होते हैं ) रोग दूर होवे ॥ ११७ ॥

कांचनारादि गण्डमालापर।

काञ्चनारत्वचः क्वाथः शुण्ठीचूर्णेन नाशयेत् ॥ ११८ ॥
गण्डमालां तथा क्वाथः क्षौद्रेण वरुणत्वचः।

अर्थ--कचनार वृक्षकी छालका काढा कर उसमें सोंठका चूर्ण मिलायके पीवे अथवा उसी प्रकार वरना वृक्षकी छालका काढा कर उसमें सहत मिलायके पीवे तो गण्डमाला दूर होवे ॥ ११८ ॥

१ रक्तरोहिडा प्रसिद्ध वृक्ष है। २ यकृत और प्लीहा ये दोनों मांसके पिंड हैं ( जिनको इनके विशेष लक्षण जानने हों वे प्रथम खण्डमें शारीरकमें देख लेवें ) सूजन आयकर जिसमें रुधिर नष्ट होजावे तथा राध वगैरह होय उस रोगको क्रमसे प्लीहोदर और यकृद्दाल्युदर कहते हैं।

शाखोटकादि काढा गण्डमालापर ।

शाखोटवल्कलक्वाथं गोमूत्रेण युतं पिबेत् ॥ ११९ ॥
श्लीपदानां विनाशाय मेदोदोषनिवृत्तये ।

अर्थ--सहोडाकी छालका काढा करके उसमें गोमूत्र मिलायके पीवे तो श्लीपद-रोग ( जो कि विशेष करके पैरोंमें होता है जिसको पीलापाव कहते हैं वह ) और मेदोरोग ये दूर हों ॥ ११९ ॥

पुनर्नवादि काढा अन्तर्विद्रधिपर ।

पुनर्नवावरुणयोः क्वाथोऽतर्विद्रधीन् जयेत् ॥ १२० ॥
तथा शिग्रुभवः क्वाथो हिङ्गुकल्केन संयुतः ।

अर्थ--१ पुनर्नवा २ वरना इन दोनों औषधोंका काढा पीनेसे अंतर्विद्रधिको दूर करे । अथवा सहँजनेकी छालका काढा करके उसमें भुनी हींग डालके पीवे तो भी अंतर्विद्रधि रोग दूर होय ॥ १२० ॥

वरुणादिकाढा मध्यविद्रधिपर ।

वरुणादिगणक्वाथमपक्वे मध्यविद्रधौ ॥ १२१ ॥
ऊषकादिरजोयुक्तं पिबेच्छमनहेतवे ।

अर्थ--वरुणादिक औषधोंका गण जो आगे कहेंगे उसका काढा करके तथा ऊषकादि औषधोंका चूर्ण जो आगे कहेंगे उसका चूर्ण करके उस काढेमें मिलायके पीवे तो पक्क नहीं हुआ जो विद्रधिरोग सो दूर होवे ॥ १२१ ॥

वरुणादिकाढा ।

वरुणो बकपुष्पश्च बिल्वापामार्गचित्रकाः ॥ १२२ ॥
आग्निमन्थद्वयं शिग्रुद्वयं च बृहतीद्वयम् ।
सैरेयकत्रयं मूर्वा मेषशृङ्गी किरातकः ॥ १२३ ॥
अजशृङ्गी च बिम्बी च करञ्जश्च शतावरी ।
वरुणादिगणक्वाथः कफमेदोहरः स्मृतः ॥ १२४ ॥
हन्ति गुल्मं शिरःशूलं तथाऽऽभ्यन्तरविद्रधीन् ॥

अर्थ--१ वरनाकी छाल २ शिवलिंगी ३ कोमल बेलफल ४ ओंगा ५ चित्रक ६ छोटी अरनी ७ बडी अरनी ८ कडुआ सहँजना ९ मीठा सहँजना १० छोटी कटेरी ११ बडी कटेरी १२ पीले फूलका पियावांसा १३ सफेद फूलका पियावांसा १४ काले फूलका

१ इस जगह बकपुष्प करके कमल लेना अथवा फूलप्रियंगु लेना चाहिये ।

पियाबांसा १५ मूर्वा १६ काकडासिंगी १७ चिरायता १८ मेढासिंगी १९ कडुई कंदूरीकी जड अथवा पत्ते २० कंजा और २१ शतावर इन इक्कीस औषधोंका काढा करके पीवे तो कफमेदरोग, मस्तकशूल और गोलेका रोग ये दूर हों, जो अंतर्विद्रधि नामका रोग होता है वह दूर हो। मूलके श्लोकमें "तथा विद्रधिपीनसान्" ऐसा भी पाठ है उस पक्षमें पीनसरोगको भी दूर करे ऐसा अर्थ जानना ॥ १२२-१२४ ॥

ऊषकादिगण।

**ऊषकस्तुत्थकं हिंगुकाशीसद्वयसैन्धवम् ॥ १२५ ॥**
**सशिलाजतुकृच्छ्राश्मगुल्ममेदःकफापहम्।**

अर्थ-१ खारी मिट्टी २ शुद्ध किया हुआ मोचरस ३ भुनी हींग ४ सुफेद हीराकसीस ५ पीला हीराकसीस (इसको शुद्ध करके लेना चाहिये) ६ सधानमक और ७ शिलाजीत इन सात ओषधियोंका चूर्ण सेवन करे तो मूत्रकृच्छ्र, पथरी, गोला और मेदरोग दूर होता है ॥ १२५ ॥

खादिरादिकाढा भगंदररोगपर।

**खदिरत्रिफलाक्वाथो महिषीघृतसंयुतः ॥ १२६ ॥**
**विडङ्गचूर्णयुक्तश्च भगन्दरविनाशनः।**

अर्थ-१ खैरसार २ हरड ३ बहेडा ४ आमला इन चार औषधोंका काढा करके उसमें भैंसका घी और वायविडंगका चूर्ण मिलायकर पीवे तो भगंदर रोग दूर होवे।

पटोलादिकाढा उपदंशपर।

**पटोलत्रिफलानिम्बकिरातखदिरासनैः ॥ १२७ ॥**
**क्वाथः पीतो जयेत् सर्वानुपदंशान् सगुग्गुलुः।**

अर्थ-१ पटोलपत्र २ हरड ३ बहेडा ४ आमला ५ नीमकी छाल ६ चिरायता ७ खैरसार और ८ विजयसार इन आठ औषधोंका काढा करके उसमें गूगल मिलायके पीवे तो संपूर्ण उपदंश (गरमीके) रोग दूर हों ॥ १२७ ॥

अमृतादिकाढा वातरक्तपर।

**अमृतैरण्डवासानां क्वाथ एरण्डतैलयुक् ॥ १२८ ॥**
**पीतः सर्वाङ्गसञ्चारि वातरक्तं जयेद् ध्रुवम्।**

अर्थ-१ गिलोय २ अरण्डकी जड और ३ अडूसा इन तीन ओषधियोंके काढेमें अरंडीका तेल मिलायकर पीवे तो संपूर्ण अंगमें विचरनेवाला वातरक्त रोग दूर होवे १२८

---

१ मेषशृङ्गी प्रसिद्ध है इसकी वेल होती है, इसको लौकिकमें मेढासिंगी कहते हैं।
२ असन शब्दके दो अर्थ हैं एक विजयसार दूसरा वनकुलथी, परंतु इस जगह विजयसार ही लेना चाहिये।

शाखोटकादि काढा गण्डमालापर।

शाखोटवल्कलक्वाथं गोमूत्रेण युतं पिबेत् ॥ ११९ ॥
श्लीपदानां विनाशाय मेदोदोषनिवृत्तये।

अर्थ--सहोडाकी छालका काढा करके उसमें गोमूत्र मिलायके पीवे तो श्लीपद्रोग ( जो कि विशेष करके पैरोंमें होता है जिसको पीलापाव कहते हैं वह) और मेदोरोग ये दूर हों ॥ ११९ ॥

पुनर्नवादि काढा अन्तर्विद्रधिपर।

पुनर्नवावरुणयोः क्वाथोंऽतर्विद्रधीन् जयेत् ॥ १२० ॥
तथा शिग्रुभवः क्वाथो हिङ्गुकल्केन संयुतः।

अर्थ--१ पुनर्नवा २ वरना इन दोनों औषधोंका काढा पीनेसे अंतर्विद्रधिको दूर करे। अथवा सहॅजनेकी छालका काढा करके उसमें भुनी हीग डालके पीवे तो भी अंतर्विद्रधि रोग दूर होय ॥ १२० ॥

वरुणादिकाढा मध्यविद्रधिपर।

वरुणादिगणक्वाथमपक्वे मध्यविद्रधौ ॥ १२१ ॥
ऊषकादिरजोयुक्तं पिबेच्छमनहेतवे।

अर्थ--वरुणादिक औषधोंका गण जो आगे कहेंगे उसका काढा करके तथा ऊपकादि औषधोंका चूर्ण जो आगे कहेंगे उसका चूर्ण करके उस काढेमें मिलायके पीवे तो पक्क नहीं हुआ जो विद्रधिरोग सो दूर होवे ॥ १२१ ॥

वरुणादिकाढा।

वरुणो बकपुष्पश्च बिल्वापामार्गचित्रकाः ॥ १२२ ॥
आग्निमन्थद्वयं शिग्रुद्वयं च बृहतीद्वयम्।
सैरेयकत्रयं मूर्वा मेषशृङ्गी किरातकः ॥ १२३ ॥
अजशृङ्गी च बिम्बी च करञ्जश्च शतावरी।
वरुणादिगणक्वाथः कफमेदोहरः स्मृतः ॥ १२४ ॥
हन्ति गुल्मं शिरःशूलं तथाऽऽभ्यन्तरविद्रधीन् ॥

अर्थ--१ वरनाकी छाल २ शिवलिंगी ३ कोमल बेलफल ४ ओंगा ५ चित्रक ६ छोटी अरनी ७ बडी अरनी ८ कडुआ सहॅजना ९ मीठा सहॅजना १० छोटी कटेरी ११ बडी कटेरी १२ पीले फूलका पियावांसा १३ सफेद फूलका पियाबांसा १४ काले फूलका

---

१ इस जगह बकपुष्प करके कमल लेना अथवा फूलप्रियगु लेना चाहिये।

पियावांसा १५ मूर्वा १६ काकडासिंगी १७ चिरायता १८ मेढासिंगी १९ कडुई कंदूरीकी जड अथवा पत्ते २० कंजा और २१ शतावर इन इक्कीस औषधोंका काढा करके पीवे तो कफमेदरोग, मस्तकशूल और गोलेका रोग ये दूर हों, जो अंतर्विद्रधि नामका रोग होता है वह दूर हो। मूलके श्लोकमें "तथा विद्रधिपीनसान्" ऐसा भी पाठ है उस पक्षमें पीनसरोगको भी दूर करे ऐसा अर्थ जानना ॥ १२२-१२४ ॥

ऊपकादिगण।

**ऊषकस्तुत्थकं हिंगुकाशीसद्वयसैन्धवम् ॥ १२५ ॥**
**सशिलाजतुकृच्छ्राश्मगुल्ममेदःकफापहम्।**

अर्थ-१ खारी मिट्टी २ शुद्ध किया हुआ मोचरस ३ भुनी हींग ४ सफेद हीराकसीस ५ पीला हीराकसीस (इसको शुद्ध करके लेना चाहिये) ६ सेंधानमक और ७ शिलाजीत इन सात ओषधियोंका चूर्ण सेवन करे तो मूत्रकृच्छ्र, पथरी, गोला और मेदरोग दूर होता है ॥ १२५ ॥

खादिरादिकाढा भगंदररोगपर।

**खदिरत्रिफलाक्वाथो महिषीघृतसंयुतः ॥ १२६ ॥**
**विडङ्गचूर्णयुक्तश्च भगन्दरविनाशनः।**

अर्थ-१ खैरसार २ हरड ३ बहेडा ४ आमला इन चार औषधोंका काढा करके उसमें भैंसका घी और वायविडंगका चूर्ण मिलायकर पीवे तो भगंदर रोग दूर होवे।

पटोलादिकाढा उपदंशपर।

**पटोलत्रिफलानिम्बकिरातखदिरासनैः ॥ १२७ ॥**
**क्वाथः पीतो जयेत् सर्वानुपदंशान् सगुग्गुलुः।**

अर्थ-१ पटोलपत्र २ हरड ३ बहेडा ४ आमला ५ नीमकी छाल ६ चिरायता ७ खैरसार और ८ विजयसार इन आठ औषधोंका काढा करके उसमें गूगल मिलायके पीवे तो संपूर्ण उपदंश (गरमीके) रोग दूर हों ॥ १२७ ॥

अमृतादिकाढा वातरक्तपर।

**अमृतैरण्डवासानां क्वाथ एरण्डतैलयुक् ॥ १२८ ॥**
**पीतः सर्वाङ्गसञ्चारि वातरक्तं जयेद् ध्रुवम्।**

अर्थ-१ गिलोय २ अरण्डकी जड और ३ अडूसा इन तीन ओषधियोंके काढेमें अरंडीका तेल मिलायकर पीवे तो संपूर्ण अंगमें विचरनेवाला वातरक्त रोग दूर होवे १२८

---

१ मेषशृङ्गी प्रसिद्ध है इसकी बेल होती है, इसको लौकिकमें मेढासिंगी कहते हैं।
२ असन शब्दके दो अर्थ हैं एक विजयसार दूसरा वनकुलथी, परंतु इस जगह विजयसार ही लेना चाहिये।

दूसरा पटोलादिकाढा ।

**पटोलं त्रिफला तिक्ता गुडूची च शतावरी ॥ १२९ ॥**
**एष क्वाथो जयेत पीतो वातास्रं दाहसंयुतम् ।**

अर्थ--१ पटोलपत्र २ हरड ३ बहेडा ४ आमला ५ कुटकी ६ गिलोय और ७ शतावर इन सात औषधियोंका काढा करके पीवे तो दाहयुक्त वातरक्त दूर हो१२९

अवल्गुजादि काढा श्वेतकुष्ठपर ।

**क्वाथोऽवल्गुजचूर्णाढ्यो धात्रीखदिरसारयोः ॥१३०॥**
**जयेत् सुशीलितो नित्यं श्वित्रं पथ्याशिनां नृणाम् ।**

अर्थ--आमला और खैरसार इन दोनों ओषधियोंका काढा करके उसमें बावचीका चूर्ण मिलाकर पीवे और पथ्यसे रहे तो मनुष्यका सफेद कुष्ठ दूर हो ॥ १३० ॥

लघुमंजिष्ठादि काढा वातरक्तकुष्ठादिकोंपर ।

**मञ्जिष्ठा त्रिफला तिक्ता वचा दारुनिशामृता ॥ १३१ ॥**
**निम्बश्चैषां कृतः क्वाथो वातरक्तविनाशनः ।**
**पामाकपालिकाकुष्ठरक्तमण्डलजिन् मतः ॥ १३२ ॥**

अर्थ--१ मंजीठ २ हरड ३ बहेडा४आमला५कुटकी ६ वच७दारुहल्दी ८गिलोय और९नीमकी छाल इन नौ औषधियोंका काढा करके पीवे तो वातरक्त,खाज, कपालिककुष्ठ,तथा रुधिरके विकार(देहमें काले चकत्तोंका होना,)दूर होवें॥१३१॥१३२॥

बृहन्मञ्जिष्ठादि काढा कुष्ठादिकोंपर ।

मञ्जिष्ठामुस्तकुटजगुडूचीकुष्ठनागरैः । भार्ङ्गीक्षुद्रावचानिम्बनिशाद्वयफलत्रिकैः ॥१३३॥ पटोलकटुकीमूर्वाविडङ्गासनचित्रकैः । शतावरीत्रायमाणाकृष्णेन्द्रयववासकैः ॥१३४ ॥ भृंगराजमहादारुपाठाखदिरचन्दनैः।त्रिवृद्वरुणकैरातबाकुचीकृतमालकैः ॥ १३५ ॥ शाखोटकमहानिम्बकरञ्जातिविषाजलैः । इन्द्रवारुणिकानन्तासारिवापर्पटैः समैः ॥१३६॥ एभिः कृतं पिबेत्क्वाथं कणागुग्गुलुसंयुतम्। अष्टादशसु कुष्ठेषु वातरक्तार्दिते तथा ॥१३७॥ उपदंशे श्लीपदे च प्रसुतौ पक्षघातके । मेदोदोषे नेत्ररोगे मञ्जिष्ठादिः प्रशस्यते ॥ १३८॥

—... ; २ नागरमोथा ३कुडेकी छाल ४गिलोय ५कूठ ६सोंठ ७ भारंगी ग ९वच १० नीमकी छाल ११ हल्दी १२ दारुहल्दी १३ हरडे ला १६पटोलपत्र १७कुटकी १८मूर्वा १९ वायविडंग २० विजय- ा (चीतेकी) छाल २२शतावर २३ त्रायमाण २४पीपल २५इन्द्रजौ २७भांगरा २८ देवदारु २९पाढ ३०खैरसार ३१ लालचन्दन ३२ की छाल ३४चिरायता ३५ बावची ३६ अमलतासका गूदा३७सहो- बकायन ३९ कंजा ४० अतीस ४१नेत्रवाला ४२ इन्द्रायनकी जड तारिवा और४५पित्तपापडा इन पैंतालिस औषधियोंको कूट पीस ; तोलेका काढा कर उसमें पीपलका चूर्ण और गूगल मिलायके कारके कोढ, वातरक्त,उपदंश(गरमीका रोग),श्लीपदरोग,अंगशून्य, दरोग और नेत्ररोग ये सब दूर हों ॥ १३३–१३८ ॥

पथ्यादि काढा शिरोरोगादिकोंपर।

त्रीभूनिम्बैर्निशानिम्बाऽमृतायुतैः । कृतः क्वाथः सगुडः शीर्षशूलहा ॥१३९॥ भ्रूशङ्खकर्णशूलानि सो रुजम्। सूर्यावर्तं शङ्खकं च दन्तपातं च त- ...॥१४०॥नक्तान्ध्यं पटलं शुक्रं चक्षुःपीडां व्यपोहति ।

र्थ-१हरडे २ बहेडा ३ आंवला ४चिरायता ५हल्दी ६ नीमकी छाल और ७ गि- इन सात ओषधियोंका काढा करके उसमे गूगल मिलायकर पीवे तो मस्तक- भौंह, शंख (कनपटी) और कानसम्बन्धी शूल, आधाशीशी, सूर्यावर्त्त (सूर्योदयसे दो प्रहरपर्यन्त जो शूल मस्तकमें बढता है वह), शंखका शूल, दांतोंके हिलनेसे जो पीडा होती है वह, साधारण दन्तशूल, रतौंध, नेत्रोंके पटलगत रोग एवं नेत्रका फूला तथा नेत्रोंका दूखना इन सब उपद्रवों सहित रोगोंको यह पथ्या- दि काढा दूर करता है ॥ १३९ ॥ १४० ॥

वासादिकाढा नेत्ररोगपर।

वासाविश्वामृतादार्वीरक्तचंदनचित्रकैः॥१४१॥भूनिम्बनिम्ब- कटुकापटोलत्रिफलांबुदैः।यवकालिङ्गकुटजैः क्वाथः सर्वाक्षि- रोगहा ॥१४२॥ वैस्वर्यं पीनसं श्वासं नाशयेदुरसःक्षतम् ।

अर्थ-१ अडूसा २ सोंठ ३ गिलोय ४ दारुहल्दी५लालचन्दन ६ चीतेकी छाल

१ कुडेकी जड लेना ऐसा भी किसी आचार्यका मत है। यदि इसमें कचनारकी छाल बबूलकी छाल सालसाकी लकडी और सरफोका ये मिलायकर काढा करे अथवा इसका भभकेमे अर्क निकाल. लेवे तो यह खूनकी सब बीमारियोको दूर करे। यदि इसमे सहत अथवा उन्नावका शरबत मिलाय लिया जावे तो परमोत्तम है यह हमारा अनुभव किया हुआ है।

७ चिरायता ८नीमकी छाल ९ कुटकी१०पटोलपत्र११हरड १२ बहेडा १३आमला १४ नागरमोथा १५जौ १६इन्द्रजौ और १७ कुडेकी छाल इन सत्रह ओषधियोंका काढा करके पीवे तो संपूर्ण नेत्रके रोग, स्वरभंग, पीनसरोग, श्वास और उरःक्षत येसंपूर्ण रोग दूर होवें ॥ १४१ ॥ १४२ ॥

दूसरा अमृतादिकाढा ।

अमृतात्रिफलाक्काथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः॥ १४३ ॥
सक्षौद्रः शीलितो नित्यं सर्वनेत्रव्यथां जयेत् ॥

अर्थ--१ गिलोय २ हरड३ बहेडा४आमला इन चार औषधियोंका काढा करके उसमें पीपलका चूर्ण और सहत मिलायके पीनेसे संपूर्ण नेत्रके रोग दूर होतेहैं१४३

व्रणादिकप्रक्षालन करनेका काढा ।

अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटवेतसजं शृतम् ॥ १४४ ॥
व्रणशोथोपदंशानां नाशनं क्षालनात् स्मृतम् ।

अर्थ–१पीपल २ गूलर ३ पाखर४बड और ५वेत[1] इन पांच ओषधियोंकी छालके काढेसे व्रण, सूजन, गर्मीका रोग धोनेसे नष्ट होता है ॥ १४४ ॥

प्रमथ्यादिकषायभेद ।

प्रमथ्या प्रोच्यते द्रव्यपलात् कल्कीकृताच्छ्रतात् ॥१४५॥
तोयेऽष्टगुणिते तस्य पानमाहुः पलद्वयम् ।

अर्थ–एक पल ओषधीको कूटपीसकर कल्क करे ( यदि औषध सूखी हुई हो, तो उसको भिगोकर कल्क करे ) उसमें आठगुना जल डालके औटावे । जब दो पल जल शेष रहे तब उतारले, इसको प्रमथ्या कहते हैं। इसके सेवन करनेका प्रमाण दो पल है ॥ १४५ ॥

मुस्तादिप्रमथ्या रक्तातिसारपर ।

मुस्तकेन्द्रयवैः सिद्धा प्रमथ्या द्विपलोन्मिता ॥ १४६ ॥
सुशीता मधुसंयुक्ता रक्तातीसारनाशिनी ।

अर्थ–१ नागरमोथा और २इन्द्रजौ इन दोनों ओषधियोंको १ पल कूट पीसके कल्क करे। उसमें आठगुना जल मिलायके २पल शेष रहने पर्यंत औटावें। फिर उतार शीतल करके उसमें सहत मिलायके पीवे तो रक्तातिसार दूर होवे॥ १४६ ॥

यवागूका विधान ।

साध्यं चतुष्पलं द्रव्यं चतुःषष्टिपले जले ॥ १४७ ॥
तत्क्वाथेनार्धशिष्टेन यवागूं साधयेद्धनाम् ।

---

१ यदि वेत न मिले तो जलवेतस लेना चाहिये ।

अर्थ--चार पल औषध लेकर कुछ थोडीसी कूटके उसमें ६४ चौसठ पल पानी मिलायके औटावे। जब आधा जल शेष रहे तब उतार ले। फिर उसको छानके उसमें दूसरे द्रव्य चावल आदि जो कहे हैं वे मिलायके फिर औटावे और जब गाढी हो जावे तब उतार ले। इसे यवागू कहते हैं ॥ १४७ ॥

आम्रादियवागू संग्रहणीपर।

**आम्राम्रातकजम्बूत्वक्कषाये विपचेद्बुधः ॥ १४८ ॥**
**यवागूं शालिभिर्युक्तां तां भुक्त्वा ग्रहणीं जयेत्।**

अर्थ--१ आम २ अंबाडा ३ जामुन इन तीन वृक्षोंकी चार पल छालको जवकूट कर चौसठगुने पानीमें डालके औटावे। जब आधा पानी रह जावेतब उतारके इस जलको छान ले, फिर उसमें चार पल चावल डालके फिर औटावे। जब औटाते २ गाढा हो जावे तब उतार ले। इसको आम्रादि यवागू कहते हैं इसके भोजन (सेवन) करनेसे संग्रहणी रोग दूर होवे ॥ १४८ ॥

**कल्कद्रव्यपलं शुण्ठी पिप्पली चार्धकार्षिकी ॥ १४९ ॥**
**वारिप्रस्थेन विपचेत् स द्रवो यूष उच्यते।**

अर्थ--कल्ककी औषध सामान्यतया १ पल लेवे। तथा जिस प्रयोगमें सोंठ और पीपल हो उस जगह वह तीक्ष्ण होनेके कारण आधा२कर्ष लेवे। या दोनों मिलायके अर्ध कर्ष लेवे, फिर उनका कल्क करके उसमें जल एक प्रस्थ(सेरभर)डालकर मिलाय-लेवें।उसको चूल्हेपर रखके पेजके समान गाढी करे उसको यूष ऐसे कहते हैं ॥१४९॥

सप्तमुष्टिकयूष संनिपातादिकोंपर।

**कुलित्थयवकोलैश्च मुद्गैर्मूलकग्रन्थिकैः ॥ १५० ॥**
**शुण्ठीधान्यकयुक्तैश्च यूषः श्लेष्माऽनिलापहः।**
**सप्तमुष्टिक इत्येष सन्निपातज्वरं जयेत् ॥ १५१ ॥**
**आमवातहरः कण्ठहृद्वक्त्राणां विशोधनः।**

अर्थ--१ कुलथी २ जौ ३ बेर ४ मूँग ५ छोटी मूली ६ सोंठ और ७ धनियां इन सात औषधोंको एक२पल लेकर सोलह गुने इनमें गाढा होने पर्यंत औटावे। इसको सप्तमुष्टिक यूष कहते हैं। इस यूपके पीनेसे कफ वायु संनिपात ज्वर और आम-वात दूर होता है तथा कण्ठ हृदय और मुखकी शुद्धि होती है ॥ १५० ॥ १५१ ॥

१ मागध परिभाषाके मानसे पलके व्यावहारिक चार तोले जानने। २ औषधोंका काढा करे जब आधा रहे तब उसको छानके उसमें चावल डालके यवागू करे। दूसरे प्रकारकी यवागू जो कहेंगे उसमें चावल और दूसरे धान्य जो कहेंगे इनमें पानी छः गुना डालके यवागू बनावे इतना ही भेद है।

पानादिककल्पना।

क्षुण्णं द्रव्यपलं साध्यं चतुःषष्टिपलेऽम्बुनि ॥ १५२ ॥
अर्धशिष्टं च तद्देयं पाने भक्तादिसंनिधौ।

अर्थ-एक पल औषध ले जवकूट कर उसको ६४ चौसठ पल जलमें डालके औटावे, जब आधा पानी रहे तब उतारकर कपडेसे छान ले। इसको जब२प्यास लगे तब और भोजनके समय थोडा२पीवे। वह प्रकार आगे लिखा जाता है ॥ १५२ ॥

उशीरादिपानक पिपासाज्वरपर।

उशीरपर्पटोदीच्यमुस्तनागरचन्दनैः ॥ १५३ ॥
जलं शृतं हिमं पेयं पिपासाज्वरनाशनम्।

अर्थ-१ खस २ पित्तपापडा ३ नेत्रवाला ४ नागरमोथा ५ सोंठ आर ६ रक्तचंदन इन छः ओषधियोंको मिलाय चार तोले लेवे। जव कूट करके उसको २५६ तोले जलमें डालके आधा पानी रहे तत्पर्यंत औटावे, फिर उतारके छान लेवे। शीतल होनेपर जिस ज्वरमें प्यास अत्यन्त लगती हो उसमें थोडा २ क्रमसे पीनेको देवे तो प्यास और ज्वर ये दूर हो ॥ १५३ ॥

गरमजलकी विधि ज्वरादिकोंपर।

अष्टमेनांशशेषेण चतुर्थेनाऽर्धकेन वा ॥ १५४ ॥
अथवा क्वथनेनैव सिद्धमुष्णोदकं वदेत्।

अर्थ-पानीको औटायके आठवां हिस्सा या चौथा हिस्सा अथवा अर्धावशेष रक्खे अथवा उत्तम रीतिसे खूब औटावे। इसको उष्णोदक (गरमजल) कहते हैं ॥ १५४ ॥

रात्रिमे गरमजल पीनेकी विधि।

श्लेष्मामवातमेदोघ्नं वस्तिशोधनदीपनम् ॥ १५५ ॥
कासश्वासज्वरहरं पीतमुष्णोदकं निशि।

अथ-रात्रिमें गरमजल पीनेसे कफ आमवात मेदरोग खांसी श्वास ज्वर नष्ट हो तथा पेटकी शुद्धि और अग्नि प्रदीप्त हो ॥ १५५ ॥

दूधके पाककी विधि आमशूल पर।

क्षीरमष्टगुणं द्रव्यात् क्षीरान्नीरं चतुर्गुणम् ॥ १५६ ॥

---

१ "कफवातज्वरे देय जलमुष्णं पिपासवे। पित्तमद्यविशेषोत्थे तिक्तकैः शृतशीतलम्॥१॥" अर्थ-तिक्त कहिये १ नागरमोथा २ पित्तपापडा ३ नेत्रवाला ४ चन्दन ५ खस और सोंठ इन छः ओषधियोंको कूटके औटते हुए पानीमे डालके उतार ले, फिर शीतल करके इसे पित्त और मद्यसे प्रगट हुए ज्वर, प्यास, कफज्वर, वातज्वर और कफवातज्वर इनमें देवे, ऐसा ही ग्रन्थान्तरमें पाठ है।

**क्षीरावशेषं तत्पीतं शूलमामोद्भवं जयेत् ।**

अर्थ--ओषधियोंका आठगुना गौका दूध लेवे और दूधसे चौगुना पानी ले सबको एकत्र करके दूध शेष रहे इतना औटावे फिर उस दूधको पीवे तो आमशूल दूर होवे ॥

पञ्चमूलीक्षीरपाक सर्वजीर्णज्वरोंपर ।

**सर्वज्वराणां जीर्णानां क्षीरं भैषज्यमुत्तमम् ॥ १५७ ॥**
**श्वासात् कासाच्छिरःशूलात् पार्श्वशूलात्सपीनसात् ।**
**मुच्यते ज्वरितः पीत्वा पञ्चमूलीश्रृतं पयः ॥ १५८ ॥**

अर्थ--१ शालपर्णी २ पृष्ठपर्णी ३ छोटी कटेरी ४ बडी कटेरी और ५ गोखरू इन पांच ओषधियोंकी जडको जवकूट करके आठगुने दूधमें और दूधसे चौगुने पानीमें डालके औटावे । जब औटाते २ केवल दूध शेष रहे तब उतारके छान लेवे । इसके पीनेसे श्वास, खाँसी, मस्तकशूल, पसवाडोंका शूल, पीनस और जीर्णज्वर दूर हों ( यह दूध सम्पूर्ण जीर्णज्वरोंकी उत्तम ओषधि है ) १५७ ॥ १५८ ॥

त्रिकण्टकादि क्षीरपाक ।

**त्रिकण्टकबलाव्याघ्रीकुष्ठनागरसाधितम् ।**
**वर्चोमूत्रविबन्धघ्नं कफज्वरहरं पयः ॥ १५९ ॥**

अर्थ--१ गोखरू २ खरेंटी ३ कटेरीकी जडका बक्कल ४ कुष्ठ और ५ सोंठ इन पांच औषधियोंको आठगुने दूध और दूधसे चौगुने पानीमें औटावे । जब दूध मात्र बाकी रहे तब उतार ले । इस दूधके पीनेसे मल और मूत्र उत्तम रीतिसे उतरे तथा कफज्वर दूर होवे ॥ १५९ ॥

अन्नस्वरूप यवागू ।

**अथान्नप्रक्रियात्रैव प्रोच्यते नातिविस्तरात्।यवागूः षड्गुणजले सिद्धा स्यात् कृशरा घना ॥१६०॥ तण्डुलैर्माषमुद्गैश्च तिलैर्वा साधिता हिता। यवागूर्ग्राहिणी बल्या तर्पिणी वातनाशिनी १६१॥**

अर्थ--अन्नक्रिया कहिये अन्नस्वरूप यवागू विलेपी और पेया इनके तैयार करनेकी विधि संक्षेप करके कहता हूं--चावल, मूँग, किंवा उडद, या तिलोंसे जिस द्रव्यकी यवागू बनानी हो उसको लेकर उसमें उससे छःगुना पानी डालके जबतक गाढी न होवे तबतक औटावे उसको अन्नयवागू कहते हैं । उस यवागूके दो नाम हैं--एक कृशरा, दूसरा घना । वह मलादिकोका स्तंभन, बल-वृद्धि, शरीरकी पुष्टि तथा वायुका नाश करनेवाली होती है ॥ १६० ॥ १६१ ॥

---

१ औषध इस जगह अनुक्त हैं इस वास्ते १ सोंठ २ भूय आंवला और ३ अरंडके बीज इन ओषधियोंका आठ गुना जल लेना चाहिये ।

विलेपीके लक्षण और गुण।

विलेपी च घनासिक्था सिद्धा नीरे चतुर्गुणे।
बृंहणी तर्पणी हृद्या मधुरा पित्तनाशिनी ॥ १६२ ॥

अर्थ–द्रव्यसे चौगुना पानी डालके औटावे। जब लहपसीके समान गाढी और लिपटनेवाली होजावे उसको विलेपी कहते हैं।वह धातुकी वृद्धि करनेवाली, शरीरको पुष्ट करनेवाली,हृदयको हितकारी,मधुर और पित्तका नाश करनेवाली है ॥ १६२ ॥

पेयालक्षण।

द्रवाधिका स्वल्पसिक्था चतुर्दशगुणे जले ॥
सिद्धा पेया बुधैर्ज्ञेया यूषः किञ्चिद्घनः स्मृतः ॥ १६३ ॥
पेया लघुतरा ज्ञेया ग्राहिणी धातुपुष्टिदा।
यूषो बल्यस्ततः कण्ठ्यो लघूपायः कफापहः ॥१६४ ॥

अर्थ–द्रव्यसे चौदहगुने पानीमें डालके पतली पेजके समान और कुछ लसदार होने पर्यन्त औटानेसे उसको पेया कहते हैं। पेयाकी अपेक्षा कुछ गाढीको यूष कहते हैं। पेया बहुत हलकी होकर मलादिकोंका स्तंभन करनेवाली और धातुपुष्ट करनेवाली है। और यूष बलको देनेवाला, कंठको हितकारी, हलका तथा कफको दूर करनेवाला जानना ॥ १६३ ॥ १६४ ॥

भात करनेका प्रकार।

जले चतुर्दशगुणे तण्डुलानां चतुःपलम्।
विपचेत् स्रावयेन् मण्डं स भक्तो मधुरो लघुः ॥ १६५ ॥

अर्थ--चार पल बीने फटके बारीक चावलोंको चौदहगुने जलमें डालके औटावे, जब सीज जावे तब मांड निकाल ले। यह चावलोंका भात मधुर तथा हलका होता है ॥ १६५ ॥

शुद्धमण्ड।

नीरे चतुर्दशगुणे सिद्धो मण्डस्त्वसिक्थकः।
शुण्ठीसैन्धवसंयुक्तः पाचनो दीपनः परः ॥ १६६ ॥

अर्थ--शुद्ध--चावलोंको चौदहगुने पानीमें डालके औटावे। जब चावल सीज जावे तब मांड निकाल लेवे। इस मांडको शुद्धमंड कहते हैं, इसमें सोंठ और सेंधा नमक मिलाकर पीवे तो अन्नका पचन और अग्निका दीपन होवे ॥ १६६ ॥

अष्टगुणमण्ड।

धान्यत्रिकटुसिन्धूत्थमुद्गतण्डुलयोजितः।
भृष्टश्च हिङ्गुतैलाभ्यां स मण्डोऽष्टगुणः स्मृतः ॥ १६७ ॥

---

१ 'विलेपी घनसिक्था स्यात' इति पाठान्तरम्। २ 'लघुपाठ.' इति पाठान्तरम्।

**दीपनः प्राणदो वस्तिशोधनो रक्तवर्धनः ।**
**ज्वरजित् सर्वदोषघ्नो मण्डोऽष्टगुण उच्यते ॥ १६८ ॥**

अर्थ-१ धनिया २ सोंठ ३ मिरच ४ पीपल ५ सेंधानमक ६ मूंग ७ चावल ८ हींग और ९ तेल इन नौ ओषधियोंमेसे प्रथम तेलमें हीग मिलायके उसमें मूंग एक पल तथा चावल दो पल लेकर दोनोको भूने। फिर दूसरी ओषधि रही हुई वह थोडी २ खारी और चरपरी न होवे इस प्रकार मूँग चावलोंमें मिलायके चौदहगुने पानीमें डालके औटावे। जब सीज जावे तब उतारके कपडेसे छान लेवे। इसको पीनेसे अग्नि प्रदीप्त होकर प्राणोंमें तेज आता है तथा वस्तिका शोधन होकर रुधिरकी वृद्धि होती है, ज्वर और वातादि तीन दोष दूर होवें। इसको अष्टगुण मण्ड कहते हैं ॥ १६७ ॥ १६८ ॥

वाट्यमण्ड कफपित्तादिरोगोंपर।

**सुकण्डितैस्तथा भृष्टैर्वाट्यमण्डो यवैर्भवेत् ।**
**कफपित्तहरः कण्ठ्यो रक्तपित्तप्रसादनः ॥ १६९ ॥**

अर्थ-उत्तम जवोंको उत्तम रीतिसे कूट फटककर भूने, फिर बीन फटककर उनमें चौदहगुना पानी चढायके सिजावे, फिर उस पानीको छानके सेवन करे, इसको वाट्यमण्ड कहते हैं। यह मण्ड पीवे तो कफ पित्तका प्रकोप दूर होवे, कण्ठको हितकारक होय तथा रक्तपित्तका प्रकोप दूर होता है ॥ १६९ ॥

लाजामण्ड कफपित्तज्वरादिकोंपर।

**लाजैर्वा तण्डुलैर्भृष्टैर्लाजमण्डः प्रकीर्तितः ।**
**श्लेष्मपित्तहरो ग्राही पिपासाज्वरजिन् मतः ॥ १७० ॥**

**इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायां चिकित्सा-स्थाने क्वाथादिकल्पना नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥**

अर्थ-धानकी भुनी खील अथवा चावलोंको भूनके उसमें चौदहगुना पानी डालके औटावे, फिर उसको पसायके मांड निकाल लेवे, इसे लाजमण्ड कहते हैं। यह मण्ड पीवे तो कफपित्तका प्रकोप दूर होकर संग्रहणी और अतिसार इनका स्तंभन होय तथा जिस ज्वरमें प्यास अधिक लगे सो दूर होय ॥ १७० ॥

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृत-शार्ङ्गधरसंहिताया भावप्रकाशिका-भाषाटीकायां द्वितीयखण्डे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

---

१-१ क्षुधानाशक २ मूत्रवस्तिशोधक ३ बलवर्धक ४ रक्तवर्द्धक ५ ज्वरनाशक ६ कफनाशक ७ पित्तनाशक तथा ८ वायुनाशक ऐसे इसमें आठ गुण जानने।

# तृतीयोऽध्यायः ३.

क्षुण्णे द्रव्यपले सम्यग् जलमुष्णं विनिक्षिपेत्।
मृत्पात्रे कुडवोन्मानं ततस्तु स्रावयेत् पटात् ॥ १ ॥
स स्याच्चूर्णद्रवः फांटस्तन्मानं द्विपलोन्मितम्।
मधुश्वेतगुडादींश्च क्राथवत् तत्र निक्षिपेत् ॥ २ ॥

अर्थ-एक पल ओषधियोंको लेकर अच्छी रीतिसे कूट एक कुडव[1] प्रमाण जलको किसी पात्रमें भरके जब अच्छी तरह गरम होजावे तब पूर्वोक्त कूटी हुई ओषधियोंको डालके खूब औटावे। फिर उस पानीको कपडेसे छान लेवे। इसको फाण्ट तथा चूर्णद्रव कहते हैं। इस फाण्टके पीनेका प्रमाण दो पल है तथा उस फांटमें सहत, मिश्री, खॉड, गुड आदिशब्दसे अन्य पदार्थ डालना होय तो जिस प्रकार काढेमें सहत, मिश्री आदिका डालना लिखा है उसी प्रमाण इस जगह फाण्टमें डालना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

मधूकादिफाण्ट वातपित्तज्वरपर।

मधूकपुष्पं मधुकं चन्दनं सपरूषकम्।
मृणालं कमलं लोध्रं कम्भारी नागकेशरम् ॥ ३ ॥
त्रिफलां सारिवां द्राक्षां लाजान् कोष्णे जले क्षिपेत्।
सितामधुयुतः पेयः फाण्टो वाऽसौ हिमोऽथवा ॥ ४ ॥
वातपित्तज्वरं दाहं तृष्णामूर्च्छारतिभ्रमान्।
रक्तपित्तं मदं हन्यान् नात्र कार्या विचारणा ॥ ५ ॥

अर्थ-१ महुआके फूल २ मुलहटी ३ लाल चन्दन ४ फालसे[2] ५ कमलकी डंडी ६ कमल ७ लोध ८ कंभारी ९ नागकेशर १० त्रिफला ११ सारिवा १२ मुनक्का दाख और १३ धानकी खील इन तेरह औषधोंको कूटकर इसमेंसे १ पल लेवे। फिर चार पल पानीको चूल्हेपर चढायके खूब गरम करे जब जल उबलने लगे तब उक्त कुटी हुई १ पल ओषधियोंको गेर देवे। फिर खूब औटावे तब उस पानीको उतारके छान लेवे। इसको मधूकादि फाण्ट कहते हैं। यह फाण्ट खांड और सहत मिलायके पीवे तो वातपित्तज्वर, दाह, प्यास, मूर्च्छा, अरति, भ्रम, रक्तपित्त और मदरोग ये दूर होवें, इसमें सन्देह नहीं है। तथा ये तेरह औषध रात्रिमें पानीमें भिगो देवे प्रातःकाल उस पानीको छानके सेवन करे, इसको हिमविधि कहते हैं। इस हिमके पीनेसे यह भी फाण्टके समान गुण करता है ॥ ३-५ ॥

---

१ कुडवके व्यावहारिक तोले सोलह होते है। २ फालसे मेवामें प्रसिद्ध है।

आम्रादिफाण्ट पिपासादिकोंपर।

आम्रजम्बूकिसलयैर्वटशुङ्गप्ररोहकैः।
उशीरेण कृतः फाण्टः सक्षौद्रो ज्वरनाशनः॥ ६॥
पिपासाच्छर्द्यतीसारान् मूर्च्छां जयति दुस्तराम्।

अर्थ-१ आम और २ जामुन इनके कोमल पत्ते और बडकी कलीके भीतरके पत्ते तथा उसके कोमल २ पत्ते और नेत्रवाला इन औषधोंका पूर्वरीतिसे फाण्ट करके पीवे तो ज्वर, प्यास, वमन, अतीसार तथा कष्टसाध्य मूर्च्छाके रोग दूर हों॥ ६॥

मधूकादिफाण्ट पित्ततृष्णादिकोंपर।

मधूकपुष्पकम्भारीचन्दनोशीरधान्यकैः॥ ७॥
द्राक्षया च कृतः फाण्टः शीतः शर्करया युतः।
तृष्णापित्तहरः प्रोक्तो दाहमूर्च्छाभ्रमाञ्जयेत्॥ ८॥

अर्थ-१ महुआके फूल, २ कंभारी, ३ लालचन्दन, ४नेत्रवाला, ५ धनियां और ६ दाख इन छः ओषधियोंका फांट करके पीवे तो प्यास, पित्त, दाह, मूर्च्छा और भ्रम ये दूर होते हैं॥ ७॥ ८॥

मन्थकल्पना।

मन्थोऽपि फाण्टभेदः स्यात्तेन चात्रैव कथ्यत।

अर्थ-मंथ भी फांटका ही भेद है इसीसे उसको भी इसी जगह कहते हैं।

मन्थकी विधि।

जले चतुष्पले शीते क्षुण्णं द्रव्यपलं क्षिपेत्॥ ९॥
मृत्पात्रे मन्थयेत् सम्यक् तस्माच्च द्विपलं पिबेत्।

अर्थ-एक पल ओषधिको अच्छी रीतिसे कूटे। फिर चार पल शीतल पानीको मृत्तिकाके पात्रमें भरके उसमें उस कुटी हुई ओषधिको डालके रईसे मन्थन करे। जब अत्यन्त झाग उठे तब उसको छानले इसे मन्थ कहते हैं। इस मन्थके पीनेकी मात्रा दो पलकी है॥ ९॥

खर्जूरादिमन्थ सर्वमद्यविकारोंपर।

खर्जूरदाडिमद्राक्षातिन्तिडीकाम्लिकामलैः॥ १०॥
सपरूषैः कृतो मन्थः सर्वमद्यविकारनुत्।

अर्थ-१ खर्जूर २ अनारदाने ३ दाख ४ तिन्तिडीक ५ इमली ६ आमले और ७फालसे इन सात ओषधियोंको कूटके एक पल लेवे, फिर चार पल शीतल जलको मृत्तिकाके पात्रमें भरके उस कुटी हुई ओषधियोंको डालके रईसे खूब मथे। फिर

उस पानीको नितारके छान ले । इसको पीवे तो संपूर्ण मद्यविकार, सुपारीका मद, कोदोधान्यका मद तथा आसवोंका मद ये सब मद दूर होयँ ॥ १० ॥

मसूरादिमन्थ वमनरोगपर ।

**क्षौद्रयुक्ता मसूराणां सक्तवो दाडिमांभसा ॥ ११ ॥**
**मंथिता वारयंत्याशु छर्दिं दोषत्रयोद्भवाम् ।**

अर्थ-साबत मसूरको भुनायके चून कराय ले । फिर पके हुए अनारदानेका पानी करके उसमें उस मसूरके चूनको सहत मिलायके पीवे तो वातपित्त तथा कफ इन तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुई जो वमन वह दूर हो ॥ ११ ॥

यवोंका मन्थ तृष्णादिकोंपर ।

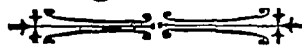
**प्लावितैः शीतनीरेण सघृतैर्यवसक्तुभिः[1] ॥ १२ ॥**
**मंथिता वारयंत्याशु च्छर्दिं दोषत्रयोद्भवाम् ।**

**इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायां चिकित्सा-स्थाने फाण्टादिकल्पनाध्यायस्तृतीयः ॥ ३ ॥**

अर्थ--साबत जवोंको भुनायके चून पिसवाय ले, उसको शीतल जलमें इस प्रकार मिलावे जिसमें न बहुत पतला होवे न बहुत गाढा होवे । फिर मथके उसमें घी मिलायके पीवे तो प्यास दाह और रक्तपित्त ये दूर हों ॥ १२ ॥

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतशार्ङ्गधरसंहिताया भावप्रकाशिका-भाषाटीकायां द्वितीयखण्डे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

# अथ चतुर्थोऽध्यायः ४.



हिमकल्पना ।

**क्षुण्णं द्रव्यपलं सम्यक् षड्भिर्नीरपलैः प्लुतम् ।**
**निशोषितं हिमः स स्यात्तथा शीतकषायकः ॥ १ ॥**
**तन्मानं फाण्टवज्ज्ञेयं सर्वत्रैष विनिश्चयः ।**

अर्थ-एक पल औषधिको जौकुट कूटके फिर छः पल जलको किसी मिट्टीके बर्तनमे भरके उसमें उस कुटी हुई ओषधिको मिलायके रात्रिमें भिगो देवे । प्रातः-काल उस पानीको छानके पीवे । इसको हिम अथवा शीत काढा इस प्रकार कहते हैं । इसके पीनेका मान फांटके समान दो पल जानना ॥ १ ॥

१ 'जातिसान्द्रद्रवो मन्थस्तृष्णादाहास्रपित्तहा ।' इति पाठान्तरम् ।

आम्रादिहिम रक्तपित्तपर ।

**आम्रं जम्बूं च ककुभं चूर्णीकृत्य जले क्षिपेत् ॥ २ ॥**
**हिमं तस्य पिबेत् प्रातः सक्षौद्रं रक्तपित्तजित् ।**

अर्थ–१ आमकी छाल, २ जामुनकी छाल और ३ कोहकी छाल इन तीन छालोंको ( एक पल प्रमाण ) लेकर चूर्ण करे । फिर छः पल जल किसी मिट्टीके पात्रमें भरके पूर्वोक्त कुटी हुई छालोंके चूर्णको उसमें भिगो देवे रात्रिभर भीगने दे, प्रातःकाल उस पानीको छानकर सहत मिलायके पीव तो रक्तपित्त दूर होवे ॥ २ ॥

मरीचादिहिम तृष्णादिकोंपर ।

**मरीचं मधुयष्टी च काकोदुम्बरपल्लवाः ।**
**नीलोत्पलं हिमस्तज्जस्तृष्णाच्छर्दिनिवारणः ॥ ३ ॥**

अर्थ–१ काली मिरच, २ मुलहटी, ३ कटूमरके पत्ते और ४ नीलाकमल इन चार औषधियोंको ( एक पल ले ) सबको जौकुट करै, फिर छः पल पानीको एक पात्रमें भरके उसमें पूर्वोक्त ओषधियोंको भिगोय देवे । प्रातःकाल उस पानीको छानके पीवे तो प्यास और वमन दूर होय ॥ ३ ॥

नीलोत्पलादिहिम वातपित्तज्वरपर ।

**नीलोत्पलं बला द्राक्षा मधूकं मधुकं तथा ॥ ४ ॥**
**उशीरं पद्मकं चैव काश्मरी च परूषकम् ।**
**एष शीतकषायश्च वातपित्तज्वराञ्जयेत् ॥ ५ ॥**
**सप्रलापभ्रमच्छर्दिमोहतृष्णानिवारणः ।**

अर्थ–१ नीलाकमल, २ खरेंटीकी छाल, ३ दाख, ४ महुआ, ५ मुलहटी, ६ नेत्रवाला, ७ पद्माख, ८ कंभारी और ९ फालसे इन नौ ओषधियोंका पूर्व विधिसे हिम बनायके पीवे तो वातपित्तज्वर, प्रलाप, भ्रम, वमन, मूर्च्छा और प्यास ये रोग दूर होवें ॥ ४ ॥ ५ ॥

अमृतादिहिम जीर्णज्वरपर ।

**अमृताया हिमः पेयो जीर्णज्वरहरः स्मृतः ॥ ६ ॥**

अर्थ–पूर्वोक्त विधिसे गिलोयका हिम करके पीवे तो जीर्णज्वर दूर होवे ॥ ६ ॥

वासाहिम रक्तपित्तज्वरपर ।

**वासायाश्च हिमः कासरक्तपित्तज्वराञ्जयेत् ।**

अर्थ–अडूसेका हिम करके पीवे तो खाँसी और रक्तपित्तज्वर ये दूर हो ।

धान्यादिहिम अन्तर्दाहपर ।

**प्रातः सशर्करः पेयो हिमो धान्यकसंभवः ॥ ७ ॥**

**अन्तर्दाहं तथा तृष्णां जयेत्स्रोतोविशोधनः ।**

अर्थ-रात्रिको पानीमें धनियेको भिगोय देवे, प्रातःकाल उस पानीको खाँड मिलायके पीवे तो शरीरके भीतरका दाह और प्यास ये दूर हों, तथा मूत्रादिमार्गोंका शोधन होय ॥ ७ ॥

धान्यादिहिम रक्तपित्तादिकोंपर ।

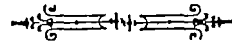
**धान्याकधात्रीवासानां द्राक्षापर्पटयोर्हिमः ॥ ८ ॥**
**रक्तपित्तज्वरं दाहं तृष्णां शोषं च नाशयेत् ।**

**इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने हिमकल्पनाऽध्यायश्चतुर्थः ॥ ४ ॥**

अर्थ-१ धनियां, २ आंवले, ३ अडूसा, ४ दाख और ५ पित्तपापडा इन पांचोंका हिम करके पीवे तो रक्तपित्तज्वर, दाह, प्यास और शोष इनको दूर करे ॥ ८ ॥

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतशार्ङ्गधरसंहितायां भावप्रकाशिकाभाषाटीकायां द्वितीयखण्डे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

# अथ पञ्चमोऽध्यायः ५.



कल्ककी कल्पना ।

**द्रव्यमार्द्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा सजलं भवेत् ।**
**प्रक्षेपावापकल्कास्ते तन्मानं कर्षसंमितम् ॥ १ ॥**
**कल्के मधु घृतं तैलं देयं द्विगुणमात्रया ।**
**सितागुडौ समौ दद्याद्द्रवा देयाश्चतुर्गुणाः ॥ २ ॥**

अर्थ-गीली ओषधिको चटनीके समान बारीक पीसे । यदि सूखी ओषधि होय तो उसमें पानी डालके पीसनी चाहिये, इसको कल्क कहते हैं । इसके सेवन करनेकी मात्रा १ कर्ष अर्थात् एक तोलेकी कही है तथा इसके दो और नाम हैं एक प्रक्षेप और दूसरा आवाप । यदि कल्कमें सहत, घी और तेल डालने हों तो कल्कसे दुगुने डाले, खांड और गुड डालने हों तो कल्कके समान डाले । दूध पानी आदि पतले पदार्थ डालने हों तो कल्कसे चौगुने डालने चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

वर्धमानपिप्पली पांडुरोगादिकोंपर ।

**त्रिवृद्ध्या पञ्चवृद्ध्या वा सप्तवृद्ध्याऽथवा कणाः ।**
**पिबेत् पिष्ट्वा दशदिनं तांस्तथैवापकर्षयेत् ॥ ३ ॥**

**एवं विंशद्दिनैः सिद्धं पिप्लीवर्द्धमानकम् ।**
**अनेन पाण्डुवातास्रकासश्वासारुचिज्वराः ॥**
**उदरार्शःक्षयश्लेष्मवाता नश्यन्त्युरोग्रहाः ॥ ४ ॥**

अर्थ-आज तीन, कल छः, परसों नौ इस प्रकार वृद्धि करके अथवा पांचसे वा सातसे वृद्धि करके पीपरका बारीक कल्क करे। उस कल्कसे चौगुना दूध अथवा पानी मिलाय दश दिनपर्यंत पीवे। फिर जिस क्रमसे बढाई हो उसी क्रमसे १० दिनमें घटाय लावै। इस प्रकार बीस दिन पीपल पीवे तो पांडुरोग, वातरक्त, खाँसी, श्वास, अरुचि, ज्वर, उदररोग, बवासीर, क्षय, कफ, वायु और उरोग्रह ये रोग दूर होवें। इस ओषधिको वर्धमानपीपल कहते हैं। मथुरा आदिके प्रान्तोंमें इस पीपलको विषमज्वरम दूध औटाकर देते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

निम्बकल्क व्रणादिकोंपर।

**लेपान्निम्बदलैः कल्को व्रणशोधनरोपणः ।**
**भक्षणाच्छर्दिकुष्ठानि पित्तश्लेष्मकृमीञ्जयेत् ॥ ५ ॥**

अर्थ-नीमके पत्तोंको पानीसे बारीक पीस कल्क करे। उस कल्कका लेप व्रण ( घाव ) पर करनेसे तथा इसकी टिकिया बाँधनेसे उस व्रणका शोधन होकर घाव भर जाता है, तथा इस कल्कको खानेसे वमन, कुष्ठ और पित्तकफकी बीमारीसम्बन्धी कृमिरोग दूर हों ॥ ५ ॥

महानिम्बकल्क गृध्रसीपर।

**महानिम्बजटाकल्को गृध्रसीनाशनः स्मृतः ॥ ६ ॥**

अर्थ-बकायनकी जडको पानीसे पीस कल्क करके पीवे तो गृध्रसी वायु जो वादीके रोगोंमें कही है वह दूर होवे ॥ ६ ॥

रसोनकल्क वायु और विषमज्वरपर।

**शुद्धः कल्को रसोनस्य तिलतैलेन मिश्रितः ।**
**वातरोगाञ्जयेत् तीव्रान् विषमज्वरनाशनः ॥ ७ ॥**

अर्थ-लहसनका कल्क करके उसमें तिलका तैल मिलायके पीवे तो दारुण वायुका रोग और विषमज्वर दूर होवे ॥ ७ ॥

---

१ दूध अथवा पानीमें पीपल पीसके कल्क करे फिर उसमें दूध अथवा पानी डालनेका हो तो वह दो तीन दिन चार तोले मिलावे, फिर कल्कसे चौगुना मिलावे परंतु वैद्योंका सम्प्रदाय दूध मिलानेका है। इस मथुरा आगरेके वैद्य पीपलोको क्रमसे बढाय आधा दूध और आधा पानी डालके औटाते है, जब जलमात्र जल जावे तब उस दूधमें ही उन पीपलोको पीसके देते है, कोई पीपलोको निकालके फंक देते हैं परन्तु फेंकनेसे कुछ गुण नही होता। यह विधि प्रायः विषमज्वर और मन्दाग्निपर कहते है।

दूसरा रसोनकल्क वातरोगपर ।

पक्वकन्दरसोनस्य गुलिका निस्तुषीकृता ।
पाटयित्वा च मध्यस्थं दूरीकुर्यात् तदंकुरम् ॥ ८ ॥
तदुग्रगन्धनाशाय रात्रौ तक्रे विनिक्षिपेत् ।
अपनीय च तन्मध्याच्छिलायां पेषयेत्ततः ॥ ९ ॥
तन्मध्ये पञ्चमांशेन चूर्णमेषां विनिक्षिपेत् ।
सौवर्चलं यमानीं च भर्जितं हिंगु सैंधवम् ॥ १० ॥
कटुत्रिकं जीरकं च समभावानि तूर्णयेत् ।
एकीकृत्य ततः सर्वं कल्कं कर्षप्रमाणतः ॥ ११ ॥
खादेदग्निबलापेक्षी ऋतुदोषाद्यपेक्षया ।
अनुपानं ततः कुर्यादेरण्डशृतमन्वहम् ॥ १२ ॥
सर्वाङ्गैकाङ्गजं वातमर्दितं चापतंत्रकम् ।
अपस्मारमथोन्मादमूरुस्तंभं च गृध्रसीम् ॥ १३ ॥
उरःपृष्ठकटीपार्श्वकुक्षिपीडां कृमीञ्जयेत् ।
अजीर्णमातपं रोषमतिनीरं पयो गुडम् ॥ १४ ॥
रसोनमश्नन् पुरुषस्त्यजेदेतन्निरंतरम् ।
मद्यं मांस तथाऽम्लं च रसं सेवेत नित्यशः ॥ १५ ॥

अर्थ—उत्तम इकपोती लहसनकी गांठोको लाकर उनके ऊपरका छिलका उतारके दूर करे । फिर उस लहसनकी वास दूर करनेको रात्रिमें छाछमे भिगोकर रख छोडे प्रातःकाल उनको निकाल शिलापर लोढेसे बारीक पीसकर कल्क करे । फिर १ सञ्चरनोन २ अजमोदा ३ भुनी हुई हींग ४ सेंधानमक ५ सोंठ ६ कालीमिरच ७ पीपल और ८ जीरा इन आठ ओषधियोंके चूर्णको उस लहसनके कल्कका पांचवॉं हिस्सा लेकर मिलावे । सबको एकत्र कर अरण्डीके जडका काढा करके उस कल्कमें १ तोला मिलायके पीवे, तथा अपनी शक्तिको विचारके और ऋतु कौन है उसका विचार करके जैसा आपको हित होवे उसी प्रकार सेवन करे तो सर्वांगवात, एकांगवात, मुखका टेढा होना, अर्दित वायु, धनुर्वात, मृगी, उन्माद,ऊरुस्तंभ, वायु, गृध्रसी वायु, उर, पीठ, कमर तथा पसवाडा इन सबका शूल और कृमिरोग, इनको दूर करे । लहसनका खानेवाला अजीर्णकारी पदार्थ, धूपमें रहना, क्रोध करना, अत्यन्त जल पीना. दूध, गुड इन सब पदार्थोंको सर्वथा त्याग देवे । तथा मद्यपान मांसभक्षण, खटाईवाले पदार्थ इनको सदैव सेवन किया करे ये पथ्य हैं ॥ ८–१५ ॥

विप्पलयादिकल्क ऊरुस्तंभादिकोंपर।

पिप्पली पिप्पलीमूलं भल्लातकफलानि च।
एतत्कल्कश्च सक्षौद्र ऊरुस्तम्भनिवारणः॥ १६॥

अर्थ—१ पीपर,पीपरामूल और ३ भिलावेके फल इन तीन ओषधियोंको पानीमें पीस कल्क करके सहत मिलायके सेवन करनेसे ऊरुस्तंभ वायु दूर होता है ॥१६॥

विष्णुक्रान्ताकल्क परिणामशूलपर।

विष्णुक्रान्ताजटाकल्कः सिताक्षौद्रघृतैर्युतः।
परिणामभवं शूलं नाशयेत् सप्तभिर्दिनैः। १७॥

अर्थ—विष्णुक्रांता (कोयल)की जडका कल्क करके उसमें खांड और सहत तथा घी मिलायके सेवन करे तो परिणामशूल दूर होवे। यह सात दिन रहता है ॥१७॥

दूसरा शुण्ठीकल्क।

शुण्ठीतिलगुडैः कल्कं दुग्धेन सह योजयेत्।
परिणामभवं शूलमामवातं च नाशयेत्॥ १८॥

अर्थ—१ सोंठ, २ तिल समान ले और दोनोंके बराबर गुड लेवे इन तीन ओषधियोंका कल्क करके गौके चौगुने दूधमें मिलायके सेवन करे तो परिणामशूल तथा आमवात ये दूर होवें। अन्नके पचनेके समय जो शूल होता है उसको परिणाम शूल कहते हैं॥ १८॥

अपामार्गकल्क रक्तार्शपर।

अपामार्गस्य बीजानां कल्कस्तंडुलवारिणा।
पीतो रक्तार्शसां नाशं कुरुते नात्र संशयः॥ १९॥

अर्थ—ओंगा ( चिरचिरा ) के बीजोंका कल्क करके चावलोंके धोवनके पानीमें पीवे तो खूनी बवासीर दूर होय॥ १९॥

बदरीमूलकल्क रक्तातिसारपर।

बदरीमूलकल्केन तिलकल्कश्च योजितः।
मधुक्षीरयुतः कुर्याद् रक्तातीसारनाशनम्॥ २०॥

अर्थ—झरबेरीकी जड और तिल इनके कल्क पृथक् २ तैयार करके दोनोंको मिलाय उसमें सहत मिलाय गौके दूधमें अथवा बकरीके दूधमें मिलायके पीवे तो रक्तातिसार दूर होवे॥ २०॥

लाक्षाकल्क रक्तक्षयादिकोंपर।

कूष्माण्डकरसोपेतां लाक्षां कर्षद्वयं पिबेत्।

१ चावलके धोवनमें पीसे अथवा कल्कका चौगुना चावलका धोवन लेवे।

**रक्तक्षयमुरोघातं क्षयरोगं च नाशयेत् ॥ २१ ॥**

अर्थ-बेरकी अथवा पीपरकी लाख दो तोले लेकर बारीक चूर्ण कर चौगुना पेठेका रस मिलायके पीवे तो रक्तक्षय तथा जिस रोगसे छाती दूखे वह और क्षय-रोग दूर होय ॥ २१ ॥

तण्डुलीयकल्क रक्तप्रदरपर ।

**तण्डुलीयजटाल्कः सक्षौद्रः सरसांजनः ।**
**तण्डुलोदकसंपीतो रक्तप्रदरनाशनः ॥ २२ ॥**

अर्थ-चौलाईकी जडको पीस कल्क करके उसमें सहत और रसोंत मिलाय चावलोंके धोवनसे पीवे तो स्त्रियोंका रक्तप्रदर नष्ट होवे ( इस रोगमें स्त्रीकी योनिसे लाल २ पानी गिरा करता है ) ॥ २२ ॥

अङ्कोटकल्क अतिसारपर ।

**अङ्कोटमूलकल्कश्च सक्षौद्रस्तण्डुलाम्बुना ।**
**अतिसारहरः प्रोक्तस्तथा विषहरः स्मृतः ॥ २३ ॥**

अर्थ-अंकोल वृक्षकी जडको कूट पीस कर कल्क करे, उसमें सहत मिलायके चावलोंके धोवनके जलसे पीवे तो अतिसार दूर होय तथा सिंगिया आदिका विष और सर्पादिकोंका विष भी दूर हो ॥ २३ ॥

कर्कोटिकाकल्क विषोंपर ।

**वन्ध्याकर्कोटिकामूलं पाटलाया जटा तथा ।**
**घृतेन बिल्वमूलं वा द्विविधं नाशयेद्विषम् ॥ २४ ॥**

अर्थ-१ बांझककोडाकी जड, २ पाढपाटलाकी जड, ३ बेलकी जड इन तीन जडोंमेंसे जो मिले उस जडको कूट पीस कल्क करके घीमें मिलायके पीवे तो वच्छनागादिक विष तथा सर्पादिकोंका विष दूर होवे ॥ २४ ॥

अभयादिकल्क दीपनपाचनपर ।

**अभयासैन्धवकणाशुण्ठीकल्कस्त्रिदोषहा ।**
**पथ्यासैन्धवशुण्ठीभिः कल्को दीपनपाचनः ॥ २५ ॥**

अर्थ-१ जंगीहरडे, २ सेंधानमक ३ पीपल और ४ सोंठ इन चार ओषधियोंके चूर्णको पानीमें पीसके कल्क करे,इस कल्कके पीनेसे वात पित्त आर कफका प्रकोप दूर होय । उसी प्रकार १ छोटी हरडे, २ सेंधानमक और ३ सोंठ इन तीन ओषधि-योंका कल्क करके पीवे तो अन्नका पचन हो तथा अग्नि प्रदीप्त होवे ॥ २५ ॥

---

१ कल्ककी अपेक्षा धोवन चौगुना लेवे,इसप्रकारका पानी दूध इत्यादि सर्वत्र चौगुने लेवै ।

त्रिवृतादिकल्क कृमिरोगपर।

**त्रिवृत्पलाशबीजानि पारसीकयवानिका।**
**कम्पिल्लकं विडङ्गं च गुडश्च समभागकः॥ २६॥**
**तक्रेण कल्कमेतेषां पिबेत् कृमिगणापहम्।**

अर्थ–१ निसोथ, २ पलास (ढाक) के बीज, ३ किरमानी अजमायन, ४ कबीला[1] और ५ वायविडंग इन पांच औषधियोंका चूर्ण कर उसके समान गुड मिलायके सबका कल्क करे। उसको छाछमें मिलायके पीवे तो कृमि रोग दूर होय। ग्रन्थान्तरमें इस प्रकार है कि किरमानी अजमायनको प्रातःकाल शीतल जलसे पीवे तो कृमिविकार दूर हो॥ २६॥

नवनीतकल्क रक्तातिसारपर।

**नवनीततिलैः कल्को जेता रक्तार्शसां स्मृतः॥ २७॥**
**नवनीतसितानागकेशरैश्चापि तद्विधः।**

अर्थ–तिलोंको पीस उसका मक्खनमें कल्क करके सेवन करे। अथवा नागकेशरको पीस मक्खन और मिश्रीमें कल्क करके पीवे तो खूनी बवासीरके कारण जो रुधिर निकला करता है वह बन्द होजावे॥ २७॥

मसूरकल्क संग्रहणीपर।

**पीतो मसूरयूषेण कल्कः शुण्ठीशलाटुजः।**
**जयेत्सङ्ग्रहणीं तद्वत् तक्रेण बृहतीभवः॥ २८॥**

**इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण निर्मितायां संहितायां चिकित्सास्थाने कल्ककल्पनाऽध्यायः पंचमः॥ ५॥**

अर्थ–१ सोंठ और २ छोटा कच्चा बेलका फल इन दोनों औषधियोंका कल्क करे, फिर मसूरका यूष जो प्रथम कह आये हैं उस प्रकार बनाय उसमें इस कल्कको मिलायके पीवे तो संग्रहणीका रोग दूर होवे[2]॥ २८॥

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतायां शार्ङ्गधरसंहिताया भावप्रकाशिकाभाषाटीकायां द्वितीयखण्डे पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

---

१ कबीला लालवर्णका मिट्टीकासा चूर्ण होता है। २ कल्क एक भाग लेके दुगुने लोनीमें मिलायके सेवन करे।

# अथ षष्ठोऽध्यायः ६.



चूर्णकी कल्पना।

अत्यन्तशुष्कं यद्द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम्।
तत्स्याच्चूर्णं रजः क्षोदस्तन्मात्रा कर्षसंमिता ॥ १ ॥
चूर्णे गुडः समो देयः शर्करा द्विगुणा भवेत्।
चूर्णेषु भर्जितं हिङ्गु देयं नोत्क्लेदकृद् भवेत् ॥ २ ॥
लिहेच्चूर्णं द्रवैः सर्वैर्घृताद्यैर्द्विगुणोन्मितैः।
पिबेच्चतुर्गुणैरेवं चूर्णमालोडितं द्रवैः ॥ ३ ॥
चूर्णावलेहगुटिकाकल्कानामनुमापकम्।
पित्तवातकफातङ्के त्रिद्व्येकपलमापकम् ॥ ४ ॥
यथा तैलं जले क्षिप्तं क्षणेनैव प्रसर्पति।
अनुपानबलादङ्गे तथा सर्पति भेषजम् ॥ ५ ॥
द्रवेण यावता सम्यक् चूर्णं सर्वं प्लुतं भवेत्।
भावनायाः प्रमाणं तु चूर्णे प्रोक्तं भिषग्वरैः ॥ ६ ॥

अर्थ—अत्यन्त सूखी ओषधीको कूट पीस कपडछान करे तो उसको चूर्ण कहते है। उस चूर्णके दो नाम हैं—एक रज और दूसरा क्षोद। इस चूर्णके भक्षणकी मात्रा एक कर्ष अर्थात् तोले भरकी है। यदि चूर्णमें गुड मिलाना होय तो चूर्णको बराबर डालना चाहिये, यदि हींग डालना होय तो घीमें भूनके हींग डाले तो विकलता नहीं करे। घी और सहत आदि चिकने पदार्थके साथ चूर्ण लेना होय तो वे पदार्थ चूर्णसे दुगुने लेवे। तथा दूध, गोमूत्र, पानी और अन्य पतली वस्तु चूर्णमें डालनी होयँ तो चूर्णसे चौगुनी लेकर उसमें चूर्ण मिलायके पीवे। चूर्ण, अवलेह, गुटिका और कल्क इनके जो अनुपान कहे हैं वे यदि पित्तरोग होय तो तीन पल लेवे, वात रोग होय तो दो पलके अनुमान लेवे और कफके रोगमे एक पल लेवे तो ओषधी उत्तमताके साथ देहमें फैल जाती है। इस विषयमें दृष्टांत देते है कि जैसे जलमे तैलकी बूँद डालनेसे फैल जाती है उसी प्रकार अनुपानके बलसे देहमे ओषधी फैलजाती है। तथा चूर्णमे नीबूके रसका अथवा दूसरी वनस्पतिके रसका पुट देना होवे तो जबतक चूर्ण रसमे डूब न जाय तबतक पुट देवे। इस प्रकार सब चूर्णोंके बनानेकी विधि जाननी ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

आमलक्यादिचूर्ण सर्वज्वरोंपर।

**आमलं चित्रकं पथ्या पिप्पली सैन्धवस्तथा।**
**चूर्णितोऽयं गणो ज्ञेयः सर्वज्वरविनाशनः॥ ७॥**
**भेदी रुचिकरः श्लेष्मजेता दीपनपाचनः।**

अर्थ–१ आमले, २ चीतेकी छाल, ३ जंगी हरड, ४ पीपल और ५ संधानमक ये पांच वस्तु समान भाग लेकर चूण करके सेवन करे तो संपूर्ण ज्वर दूर हो। यह दस्तावर है, रुचि प्रगटकर्ता है तथा कफको दूर करे. अग्नि प्रदीप्त हो और अन्नका पाचन होवे॥ ७॥

पिप्पलीचूर्ण खांसी आदिपर।

**मधुना पिप्पलीचूर्णं लिहेत् कासज्वरापहम्॥ ८॥**
**हिक्काश्वासहरं कण्ठ्यं प्लीहघ्नं बालकोचितम्।**

अर्थ–एक मासे पीपलके चूर्णको सहतमें मिलायके चाटे तो खांसी, ज्वर, हिचकी और प्यास ये दूर हों। यह चूर्ण कंठको हितकारी है, प्लीह रोगको दूर करनेवाला तथा बालकोंको अत्यन्त उपयोगी है॥ ८॥

त्रिफलादिचूर्ण प्रमेह आदिपर।

**एका हरीतकी योज्या द्वौ च योज्यौ बिभीतकौ॥ ९॥**
**चत्वार्यामलकान्येव त्रिफलैषा प्रकीर्तिता।**
**त्रिफला मेहशोथघ्नी नाशयेद् विषमज्वरान्॥ १०॥**
**दीपनी श्लेष्मपित्तघ्नी कुष्ठहंत्री रसायनी।**
**सर्पिर्मधुभ्यां संयुक्ता सेव नेत्रामयाञ्जयेत्॥ ११॥**

अर्थ–हरड एक, बहेडा दो और आमले चार, इन तीन ओषधियोंका चूर्ण करे इससे त्रिफला कहते है। इस त्रिफला चूर्णके सेवन करनेसे प्रमेह, सूजन, विषमज्वर, कफ, पित्त और कुष्ठ ये दूर हों, अग्नि प्रदीप्त हो। यह त्रिफला रसायन है। घी और सहत ये दोनों विषम भाग ले एकत्र कर उसमें इस त्रिफलेके चूर्णको मिलाय सेवन करै तो संपूर्ण नेत्रके विकार दूर हों॥ ९–११॥

---

१ तात्पर्य यह है कि उत्तम मोटी हरडे दो कर्षकी होती है, बहेडा एक कर्षका होता है और आमला आधे कर्षका तोलमें होता है। इसीसे एक हरडे दो बहेडे चार आमले लेनेसे समभाग हो जाता है यह मत बहुवैद्यसंमत है। कोई एक भाग हरड़े, दो भाग बहेड और चार भाग आंवले लेते है। २ जो देहकी वृद्धावस्था और रोगोंका नाश करे उसको रसायन कहते है। ३ घी और सहत समान भाग लेनेसे विष होजाता है, वह देहमें अनेक विकार उत्पन्न करता है, अत एव विषमभाग करके लेना चाहिये।

त्र्यूषणचूर्ण कफादिकोंपर।

पिप्पली मरिचं शुण्ठी त्रिभिस्त्र्यूषणमुच्यते।
दीपनं श्लेष्ममेदोघ्नं कुष्ठपीनसनाशनम् ॥ १२ ॥
जयेदरोचकं सामं मेहगुल्मगलामयान्।

अर्थ-१ पीपल, २ काली मिरच और ३ सोंठ इन तीन ओषधियोंको त्र्यूषण कहते हैं। इसका चूर्ण करके सेवन करे तो अग्नि प्रदीप्त हो, कफ, मेद, कुष्ठ, पीनस अरुचि, आमदोष, प्रमेह, गोला, और कण्ठरोग ये दूर हों ॥ १२ ॥

पञ्चकोलचूर्ण अरुच्यादिकोंपर।

पिप्पली चव्यविश्वाह्वपिप्पलीमूलचित्रकैः ॥ १३ ॥
पञ्चकोलमिति ख्यातं रुच्यं पाचनदीपनम्।
आनाहप्लीहगुल्मघ्नं शूलश्लेष्मोदरापहम् ॥ १४ ॥

अर्थ-१ पीपल, २ चव्य, ३ सोंठ, ४ पीपरामूल और ५ चीतेकी छाल इन पांच ओषधियोंको पंचकोल कहते हैं। इस पंचकोलके चूर्णका सेवन करे तो यह रुचिकारक, पाचन और दीपन है। इससे अफारा, प्लीह, गोलेका रोग, शूल और कफोदर ये दूर होये ॥ १३ ॥ १४ ॥

त्रिगन्ध तथा चतुर्जातचूर्ण।

त्रिगन्धमेलात्वक्पत्रैश्चतुर्जातं सकेशरम्।
त्रिगन्धं सचतुर्जातं रूक्षोष्णं लघु पित्तकृत् ॥ १५ ॥
वर्ण्यं रुचिकरं तीक्ष्णं पित्तश्लेष्मामयाञ्जयेत्।

अर्थ-छोटी इलायची, दालचीनी और पत्रज इन तीन ओषधियोंको त्रिगन्ध कहते हैं। इसमें चौथी केशर मिलावे तो इसीको चतुर्जात कहते हैं। तहां त्रिगन्ध और चतुर्जात इनका चूर्ण वीर्य करके रूक्ष, गरम, पाककालमें हलका पित्तको बढानेवाला, कांतिका दाता, रुचिकारी, तक्षिण और पित्तकफसंबंधी रोगोंको दूर करनेवाला है ॥ १५ ॥

कृष्णादिचूर्ण बालकोंके ज्वरातिसारपर।

कृष्णारुणामुस्तकशृङ्गिकाणां तुल्येन चूर्णेन समाक्षिकेण।
ज्वरातिसारः प्रशमं प्रयाति सश्वासकासः सवमिःशिशूनाम् १६

अथ-१ पीपल २ अतीस ३ नागरमोथा और ४ काकडासिंगी, इन चार ओषधियोंके चूर्णको सहतमें मिलायके बालकको चटावे तो श्वास, खांसी, वमन इन उपद्रवोंकरके युक्त ज्वरातिसार नष्ट होय ॥ १६ ॥

जीवनीयगण तथा उसके गुण।

**काकोली क्षीरकाकोली जीवकर्षभकौ तथा ॥**
**मेदा चान्या महामेदा जीवन्ती मधुकं तथा ॥ १७ ॥**
**मुद्गपर्णी माषपर्णी जीवनीयो गणस्त्वयम् ।**
**जीवनीयो गणः स्वादुर्गर्भसन्धानकृद् गुरुः ॥ १८ ॥**
**स्तन्यकृद् बृंहणो वृष्यः स्निग्धः शीतस्तृषापहः ।**
**रक्तपित्तं क्षयं शोषं ज्वरदाहानिलाञ्जयेत् ॥ १९ ॥**

अर्थ-१ काकोली, २ क्षीरकाकोली, ३ जीवक, ४ ऋषभक, ५ मेदा, ६ महामेदा, ७ जीवन्ती, ८ मुलहटी, ९ मुद्गपर्णी और १० माषपर्णी इन दश ओषधियोंके समुदायको जीवनीयगण कहते हैं। यह जीवनीयगण मधुर, गर्भस्थापक, भारी, स्तनोंमें दूध उत्पन्न करनेवाला, शरीरको पुष्ट करनेवाला, स्त्रीगमनमें हर्ष देनेवाला, स्निग्ध तथा शीतल होकर प्यास, रक्तपित्त, क्षय, शोष, ज्वर, दाह और वायु इनका नाश करता है ॥ १७-१९ ॥

अष्टवर्ग तथा उनका गुण।

**द्वे मेदे द्वे च काकोल्यौ जीवकर्षभकौ तथा ॥ २० ॥**
**ऋद्धिवृद्धी च तैः सर्वैरष्टवर्ग उदाहृतः। अष्टवर्गो बुधैः**
**प्रोक्तो जीवनीयसमो गुणैः ॥ २१ ॥**

अर्थ-१ मेदा, २ महामेदा, ३ काकोली, ४ क्षीरकाकोली, ५ जीवक, ६ऋषभक, ७ ऋद्धि और ८वृद्धि ये आठ ओषधियां समीप नही मिलती, किंतु काश्मीर, काबुल आदि देशोंमें और हिमालयपर्वतपर तलाश करनेसे मिलती हैं, अतएव इनके अभावमें ओषधि कहते हैं-मेदा और महामेदा इन दोनोंके अभावमें मुलहटी लेनी, काकोली और क्षीरकाकोली इन दोनोंके अभावमें असगंध लेनी, जीवक और ऋषभकके अभावमें विदारीकन्द लेना और ऋद्धि तथा वृद्धि इन दोनोंके अभावमें वाराहीकन्द वैद्यको लेना चाहिये। इस अष्टवर्गके भी गुण जीवनीयगणके समान जानने ॥ २० ॥ २१ ॥

लवणपञ्चकचूर्ण तथा गुण।

**सिन्धु सौवर्चलं चैव विडं सामुद्रिकं गडम् ।**
**एकद्वित्रिचतुःपंचलवणानि क्रमाद्विदुः ॥ २२ ॥**
**तेषु मुख्यं सैन्धवं स्यादनुक्ते तत् प्रयोजयेत् ।**
**सैन्धवाद्यं रोमकान्तं ज्ञेयं लवणपञ्चकम् ॥ २३ ॥**

मधुरं सृष्टविण्मूत्रं स्निग्धं सूक्ष्मं मलापहम् ।
वीर्योष्णं दीपनं तीक्ष्णं कफपित्तविवर्धनम् ॥ २४ ॥

अर्थ-१ सेंधानमक, २ संचरनमक, ३ विडनमक[1] ४ समुद्रनमक[2] और ५ सांम्हर नमक इन पांचोंमें पहिला एक लवण, पहिला और दूसरा इनको द्विलवण, पहला, दूसरा और तीसरा इनको त्रिलवण, पहला,दूसरा,तीसरा और चतुर्थ इनको चतुर्लवण, एवं पहला, दूसरा, तीसरा, चतुर्थ और पांचवां इनको पंचलवण कहते हैं। तथा इन पांचोंमें सेंधानमक उत्तम है । अत एव जिस जगह लवण डाले ऐसे विना विशेष नामके कहा हो वहांपर सेंधानमक डालना चाहिये । यह लवणपंचक मधुर है । इससे मूत्र और मल अच्छी रीतिसे उतरते हैं । ये ( पञ्चलवण ) स्निग्ध और सूक्ष्म होकर मलको हीन करते हैं । उष्ण वीर्यवाले होनेसे अग्निको प्रदीप्त करते हैं तथा तीक्ष्ण हैं अतएव कफ पित्तको बढाते हैं ॥ २२-२४ ॥

क्षार गुल्मादिकोंपर ।

स्वर्जिका यावशूकश्च क्षारयुग्ममुदाहृतम् ।
ज्ञेयौ वह्निसमौ क्षारौ स्वर्जिका यावशूकजौ ॥ २५ ॥
क्षाराश्चाऽन्येपि गुल्मार्शोग्रहणीरुक्छिदः सराः ।
पाचनाः कृमिपुंस्त्वघ्नाः शर्कराश्मरिनाशनाः ॥ २६ ॥

अर्थ-१ सज्जीखार और २ जवाखार ये दोनों खार अग्निके समान पाचक हैं इस प्रकार जानना तथा आक, ओंगा, थूहर, केला, अमलतास, मोथा, इत्यादिक जो अन्य ओषधियोंके खार हैं वे गोला, बवासीर और संग्रहणी इनको दूर करते हैं । दस्तकारक होकर अग्निको दीप्त करते हैं तथा कृमिविकार, पुरुषत्व और शर्करा एवं पथरीको नष्ट करते हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥

सुदर्शनचूर्ण सब ज्वरोंपर ।

त्रिफला रजनीयुग्मं कण्टकारी युगं सठी । त्रिकटु ग्रन्थिकं मूर्वा गुडूची धन्वयासकः ॥ २७ ॥ कटुका पर्पटो मुस्तं त्रायमाणा च बालकम् । निम्बाः पुष्करमूलं च मधुयष्टी च वत्सकम् ॥२८॥ यवानीन्द्रयवो भार्ङ्गी शिग्रुबीजं सुराष्टजा । वचा त्वक्पद्मकोशीरं चन्दनातिविषाबला ॥ २९ ॥ शालिपर्णी पृष्ठपर्णी विडङ्गं तगरं तथा । चित्रको देवकाष्ठं च चव्यं

१ प्रसारणीका कल्क करके नमकके साथ अग्निके संयोग करके जो होवे है वह कृत्रिम विड नमक कहलाता है। २ दक्षिणसमुद्रके समीप उत्पन्न होनेवालेको समुद्रनमक कहते हैं।

पत्रं पटोलजम् ॥३०॥ जीवकर्षभकौ चैव लवङ्गं वंशरोचना। पुण्डरीकं च काकोली पत्रकं जातिपत्रकम् ॥ ३१ ॥ तालीसपत्रं च तथा समभागानि चूर्णयेत्। सर्वचूर्णस्य चार्धांशं किरातं प्रक्षिपेत् सुधीः ॥ ३२ ॥ एतत् सुदर्शनं नाम चूर्णं दोषत्रयापहम्। ज्वरांश्च निखिलान् हन्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ ३३ ॥ पृथग्द्वंद्वागन्तुजांश्च धातुस्थान् विषमज्वरान्। सन्निपातोद्भवांश्चापि मानसानपि नाशयेत् ॥ ३४ शीतज्वरैकाहिकादीन् मोहं तन्द्रां भ्रमं तृषाम्। श्वासं कासं च पाण्डुं च हृद्रोगं हन्ति कामलाम् ॥ ३५ ॥ त्रिकपृष्ठकटीजानुपार्श्वशूलनिवारणम्। शीताम्बुना पिबेद्धीमान् सर्वज्वरनिवृत्तये ॥ ३६ ॥ सुदर्शनं यथा चक्रं दानवानां विनाशनम्। तद्वज्ज्वराणां सर्वेषामिदं चूर्णं विनाशम् ॥ ३७ ॥

अर्थ–१ हरड, २ बहेडा, ३ आंवला, ४ हल्दी, ५ दारुहल्दी, ६ छोटी कटेरी, ७ बडी कटेरी, ८ कचूर, ९ सोंठ, १० मिरच, ११ पीपल १२ पीपरामूल, १३ मूर्वा, १४ गिलोय, १५ धमासा, १६ कुटकी, १७ पित्तपापडा, १८ नागरमोथा, १९ त्रायमाण, २० नेत्रवाला, २१ नीमकी छाल, २२ पुहकरमूल, २३ मुलहटी, २४ कुडाकी छाल, २५ अजमायन, २६ इन्द्रजौ, २७ भारंगी, २८ सहँजनेके बीज, २९ फिटकरी, ३० वच, ३१ दालचीनी, ३२ पद्माख, ३३ चन्दन, ३४ अतीस, ३५ खरेंटी, ३६ शालपर्णी, ३७ पृष्ठपर्णी, ३८ वायविडंग, ३९ तगर, ४० चीतेकी छाल, ४१ देवदारु, ४२ चव्य, ४३ पटोलपत्र, ४४ जीवक[1], ४५ ऋषभक, ४६ लौंग, ४७ वंशलोचन, ४८ सफेद कमल, ४९ काकोली[2], ५० पत्रज, ५१ जावित्री तथा ५२ तालीसपत्र इन बावन ओषधियोको समान भाग ले और सब ओषधियोंका आधा चिरायता मिलावे, सबको कूटके दरदरा चूर्ण करे, इसको सुदर्शन चूर्ण कहते हैं। इस चूर्णको शीतल जलसे सेवन करे तो वात, पित्त, कफ, द्वन्द्व, सान्निपात इनसे होनेवाले ज्वर, विषमज्वर, आगन्तुकज्वर, धातुजन्यज्वर, मानसज्वर इत्यादि सम्पूर्णज्वर और शीतज्वर, ऐकाहिक आदि ज्वर, मोह, तंद्रा, भ्रम, तृष्णा, श्वास, खांसी, पांडुरोग, हृदयरोग, कामला, त्रिक, पीठ, कमर, जानु, पसवाडा, इनका शूल, ये सब दूर होवें। जैसे सुदर्शनचक्र दैत्योंका नाश करता है उसी प्रकार यह सुदर्शन चूर्ण सब ज्वरोंका नाश करता है ॥२७--३७॥

---

१ जीवक ऋषभक ये दोनों नहीं मिलते, अतएव इनके प्रतिनिधिमें विदारीकन्द लेवे।
२ काकोलीके अभावमें मुलहटी डालनी चाहिये।

त्रिफलापिप्पलीचूर्ण श्वासखांसीपर।

कासश्वासज्वरहरी त्रिफला पिप्पलीयुता।
चूर्णिता मधुना लीढा भेदिनी चाग्निबोधिनी ॥ ३८ ॥

अर्थ-१हरडे २ बहेडे ३ आंवला और ४ पीपर इनका चूर्ण कर सहतमें मिलायके चाटे तो मलका भेद हो ( दस्त साफ हो ), अग्नि प्रदीप्त होवे और श्वास खांसी तथा ज्वर ये दूर हों ॥ ३८ ॥

कट्फलादिचूर्ण ज्वरादिकोंपर।

कट्फलं मुस्तकं तिक्ता शुण्ठी शृङ्गी च पौष्करम्। चूर्णमेषां च मधुनाशृङ्गबेररसेन वा ॥३९॥ लेह्यं ज्वरहरं कंठ्यं कासश्वासारुचीर्जयेत्। वायुं छर्दिं तथा शूलं क्षयं चैव व्यपोहति ॥४०॥

अर्थ-१ कायफल २ नागरमोथा ३ कुटकी ४ सोंठ, ५काकडासिंगी और ६ पुहकरमूल इनका चूर्ण करके सहत अथवा अदरखके रसमें सेवन करे तो ज्वर दूर होवे तथा खांसी,श्वास,अरुचि,वादी,वमन, शूल और क्षयका रोग दूर होवे ॥३९॥ ४० ॥

दूसरा कट्फलादिचूर्ण कफशूलादिकोंपर।

कट्फलं पौष्करं शृङ्गी मुस्ता त्रिकटुकं शठी। समस्तान्येकशो वाऽपि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ४१ ॥ आर्द्रकस्वरसक्षौद्रैर्लिह्यात् कफविनाशनम्। शूलानिलारुचिच्छर्दिकासश्वासक्षयापहम् ॥ ४२ ॥

अर्थ-१ कायफल २ पुहकरमूल ३ काकडासिंगी ४ नागरमोथा ५ सोठ ६ मिरच ७ पीपल और ८ कचूर इन आठ औषधियोंको पृथक् २ कूटे अथवा सबको एक ही जगह कूट चूर्ण करे। फिर अदरखके रससे अथवा सहतके साथ मिलाकर दे तो कफ, शूल, वादी, अरुचि, ओकारी, खांसी, श्वास और क्षयरोग दूर होवें ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

तथा कट्फलादिचूर्ण कफादिकोंपर।

कट्फलं पौष्करं कृष्णा शृंगी च मधुना सह।
कासश्वासज्वरहरः श्रेष्ठो लेहः कफान्तकृत् ॥ ४३ ॥

अर्थ-१कायफल २ पुहकरमूल३पीपल ४ काकडासिंगी, इन चार ओषधियोका चूर्ण कर सहतसे चाटे तो श्वास, खांसी और कफज्वर इनको नष्ट करे ॥ ४३ ॥

शृंग्यादिचूर्ण बालकोके कासज्वरपर।

शृङ्गीं प्रतिविषां कृष्णां चूर्णितां मधुना लिहेत्।

**शिशोः कासज्वरच्छर्दिशान्त्यै वा केवला विषा ॥ ४४ ॥**

अर्थ–१ काकडासिंगी, २ अतीस और ३ पीपर इनका चूर्ण कर सहत मिलाय बालकोंको चटावे। अथवा एक अतीसका ही चूर्ण करके सहत मिलायके चटावे तो बालककी खाँसी, ज्वर और वमन ये रोग दूर होवें ॥ ४४ ॥

यवक्षारादिचूर्ण बालकोंकी पांच खाँसीपर।

**यवक्षारविषा शृङ्गी मागधी पौष्करोद्भवम्।**
**चूर्णं क्षौद्रयुतं लीढं पञ्चकासाञ्जयेच्छिशोः ॥ ४५ ॥**

अर्थ–१ जवाखार २ अतीस ३ काकडासिंगी ४ पीपल ५ पुहकरमूल इन पाँच ओषधियोका चूर्ण बालकोंको सहतमें चटावे तो पांच प्रकारकी खांसीका रोग दूर हो ॥ ४५ ॥

शुण्ठ्यादिचूर्ण आमातिसारपर।

**शुण्ठीप्रतिविषाहिङ्गुमुस्ताकुटजचित्रकैः।**
**चूर्णमुष्णाम्बुना पीतमामातीसारनाशनम् ॥ ४६ ॥**

अर्थ–१ सोंठ २ अतीस ३ हींग ४ नागरमोथा ५ इन्द्रजौ और ६ चीतेकी छाल इन छः ओषधियोंके चूर्णको चौगुने गरम जलसे पीवे तो आमातिसार दूर हो ॥ ४६ ॥

दूसरा हरीतक्यादिचूर्ण।

**हरीतकी[1] प्रतिविषा सिन्धु सौवर्चलं वचा।**
**हिङ्गु चेति कृतं चूर्णं पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ ४७ ॥**
**आमातिसारशमनं ग्राहि चाग्निप्रबोधनम्।**

अर्थ–१ जंगीहरडे २ अतीस ३ सेंधानमक ४ संचरनमक ५ वच और ६ भुनी हुई हींग इन छः ओषधियोंका चूर्ण करके गरम जलके साथ पीवे तो आमातिसार दूर होवे तथा मलका अवष्टंभ दूर होकर अग्नि प्रदीप्त होती है ॥ ४७ ॥

लघुगङ्गाधरचूर्ण सब अतिसारोंपर।

**मुस्तमिन्द्रयवं बिल्वं लोध्रं मोचरसं तथा ॥ ४८ ॥ धातकीं चूर्णयेत्तक्रगुडाभ्यां[2] पाययेत् सुधीः। सर्वातिसारशमनं निरुणद्धि प्रवाहिकाम् ॥ ४९ ॥ लघुगङ्गाधरं नाम चूर्णं संग्राहकं परम्।**

अर्थ–१ नागरमोथा २ इन्द्रजौ ३ बेलगिरी ४ लोधपठानी ५ मोचरस और ६ धायके फूल इन छः ओषधियोंका चूर्ण कर छाछमें गुड मिलाय उसके साथ इस

१ इस योगको कोई २ वैद्य हरडके विना भी बनाते है। २ 'तक्रशुण्ठीभ्याम्' ऐसा भी पाठान्तर है।

चूर्णको पीवे तो संपूर्ण अतिसार तथा प्रवाहिका रोग दूर होवे । इस चूर्णको लघुगंगाधर चूर्ण कहते हैं । यह चूर्ण मलका अवष्टम्भ करनेवाला है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

वृद्धगंगाधरचूर्ण सर्व अतिसारोंपर ।

मुस्तारलुकशुण्ठीभिर्धातकीलोध्रवालकैः ॥ ५० ॥
बिल्वमोचरसाभ्यां च पाठेन्द्रयववत्सकैः ।
आम्रबीजं प्रतिविषा लज्जालुरिति चूर्णितम् ॥ ५१ ॥
क्षौद्रतण्डुलपानीयैः पीतैर्याति प्रवाहिका ।
सर्वातिसारग्रहणी प्रशमं याति वेगतः ॥ ५२ ॥
वृद्धगङ्गाधरं चूर्णं सरिद्वेगेऽपि बन्धकम् ।

अर्थ-१ नागरमोथा २ टेंटु ३ सोंठ ४ धायके फूल ५ लोध ६ नेत्रवाला ७ बेलगिरी ८ मोचरस ९ पाढ १० इन्द्रजौ ११ कुडाकी छाल १२ आमकी गुठली १३ अतीस और १४ लजालु इन चौदह ओषधियोंका चूर्ण करके चावलोके धोवनके जलमे सहत मिलाय इसके साथ पीवे तो प्रवाहिका रोग, संपूर्ण अतिसार और संग्रहणी ये शीघ्र दूर हों । इस चूर्णको वृद्धगंगाधर चूर्ण कहते हैं । यह चूर्ण अतिसारके नदी समान वेगको भी दूर करता है ॥ ५०-५२ ॥

अजमोदादिचूर्ण अतिसारपर ।

अजमोदा मोचरसं सशृङ्गबेरं सधातकीकुसुमम् ।
गोदधिमथितेन युतं गङ्गामपि वाहिनीं रुन्ध्यात् ॥ ५३ ॥

अर्थ-१ अजमोदा २ मोचरस ३ अदरख और ४ धायके फूल इनका चूर्ण करके विना पानीके जमाये हुए गौके दहीमें मिलायके पीवे तो गंगाके समान दस्तोंके वेगको भी बन्द करता है ॥ ५३ ॥

मरीच्यादिचूर्ण संग्रहणीपर ।

तक्रेण यः पिबेन्नित्यं चूर्णं मरिचसम्भवम् ॥ ५४ ॥
चित्रसौवर्चलोपेतं ग्रहणी तस्य नश्यति ।
उदरप्लीहमन्दाग्निगुल्मार्शोनाशनं भवेत् ॥ ५५ ॥

अर्थ-१ कालीमिरच २ चीतेकी छाल ३ संचरनमक इन ओषधियोंका चूर्ण छाछमे मिलायके नित्य पीवे तो संग्रहणी, उदर, प्लीह, मन्दाग्नि, गोला और ववासीर इनको दूर करे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

कपित्थाष्टकचूर्ण संग्रहणी आदिपर ।

अष्टौ भागाः कपित्थस्य षड्भागा शर्करा मता । दाडिमं

तिन्तिडीकं च श्रीफलं धातकी तथा ॥ ५६ ॥ अजमोदा पिप्पली च प्रत्येकं स्युस्त्रिभागिकाः । मरिचं जीरकं धान्यं ग्रन्थिकं वालकं तथा ॥ ५७ ॥ सौवर्चलं यवानी च चातुर्जातं सचित्रकम् । नागरं चैकभागाः स्युः प्रत्येकं सूक्ष्मचूर्णितम् ॥५८॥ कपित्थाष्टकसंज्ञं स्याच्चूर्णमेतद्गलामयान् । अतिसारं क्षयं गुल्मं ग्रहणीं च व्यपोहति ॥ ५९ ॥

अर्थ–कैथका गूदा ८ तोले, मिश्री ६ तोले और १ अनारदाना, २ इमली, ३ बेलगिरी, ४ धायके फूल, ५ अजमोद और ६ पीपल इन छः औषधियोंको तीन तीन तोले लेवे। १ कालीमिरच, २ जीरा, ३ धनियां, ४ पीपरामूल, ५ नेत्रवाला, ६ सञ्चरनोन,७ अजवायन, ८दालचीनी,९ इलायचीके बीज,१० तमालपत्र,११नागकेशर, १२ चीतेकी छाल और १३ सोंठ इन तेरह औषधोंको एक एक तोला लेवे। सबका बारीक चूर्ण करे। इस चूर्णको कपित्थाष्टक चूर्ण कहते हैं, इसके सेवन करनेसे कण्ठके रोग, अतिसार,क्षय, गोला और संग्रहणी ये दूर होते हैं ॥ ५६–५९ ॥

पिप्पल्यादिचूर्ण संग्रहणीपर ।

पिप्पली बृहती व्याघ्री यवक्षारकलिङ्गकाः । चित्रकं सारिवा पाठा शठी लवणपञ्चकम् ॥ ६० ॥ तच्चूर्णं पाययेद् दध्ना सुरयोष्णाम्बुनाऽपि वा । मारुतग्रहणीदोषशमनं परमं हितम् ॥ ६१ ॥

अर्थ–१ पीपल, २कटेरी, ३बडी कटेरी, ४जवाखार, ५इन्द्रजौ, ६ चीतेकी छाल, ७ सरिवन, ८ पाढ, ९ कपूरकचरी और पांचों नमक इन १४ चौदह औषधियोंका चूर्ण कर दही, मद्य अथवा गरम जलके साथ पीवे तो वातकी संग्रहणी नष्ट होय ॥ ६० ॥ ६१ ॥

दाडिमाष्टकचूर्ण संग्रहण्यादिकोंपर ।

दाडिमी द्विपला ग्राह्या खण्डा[1] चाष्ट पलानि वा । त्रिगन्धस्य पलं चैकं त्रिकटु स्यात् पलत्रयम् ॥ ६२ ॥ एतदेकीकृतं सर्वं चूर्णं स्याद् दाडिमाष्टकम् । रुचिकृद् दीपनं कण्ठ्यं ग्राहि कासज्वरापहम् ॥ ६३ ॥

अर्थ–अनारदाना २ पल, मिश्री ८ पल, दालचीनी, इलायची और तेजपात ये तीनो मिलायके १ पल लेवे तथा सोंठ, कालीमिरच और पीपल ये तीनो ओषधि

१ "खण्डा दश पलानि च" इति पाठान्तरम् ।

एक एक पल ले सबको कूट पीस चूर्ण करे। इसको दाडिमाष्टक चूर्ण कहते हैं। इस चूर्णके सेवनसे मुखमें रुचि आवे, अग्नि प्रदीप्त होवे, कंठको हितकारी और मलका अवष्टंभक होकर खांसी और ज्वर दूर हों ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

वृद्धदाडिमाष्टक अतिसारादिकोंपर।

दाडिमस्य पलान्यष्टौ शर्करायाः पलाष्टकम्। पिप्पली पिप्पलीमूलं यवानी मरिचं तथा ॥ ६४ ॥ धान्यकं जीरकं शुण्ठी प्रत्येकं पलसंमितम्। कर्षमात्रा तुगाक्षीरी त्वक्पत्रैलाश्च केशरम् ॥ ६५ ॥ प्रत्येकं कोलमात्राः स्युस्तच्चूर्णं दाडिमाष्टकम् ॥ अतिसारं क्षयं गुल्मं ग्रहणीं च गलग्रहम् ॥ ६६ ॥ मन्दाग्निं पीनसं कासं चूर्णमेतद्व्यपोहति।

अर्थ–अनारदाना और मिश्री प्रत्येक आठ २ पल लेवे तथा १ पीपल, २पीपरामूल, ३अजमोद, ४कालीमिरच, ५धनियां, ६ जीरा और ७ सोंठ प्रत्येक एक एक पल लेवे। वंशलोचन १ तोला ले और १ दालचीनी, २ तेजपात, ३ इलायची, ४ नागकेशर ये चार औषधि आठ २ मासे लेवे। इन सब औषधियोंको कूट पीस चूर्ण करे। इसको वृद्धदाडिमाष्टक कहते हैं। इस चूर्णके सेवन करनेसे अतिसार, क्षय, गुल्म, संग्रहणी, कंठरोग, मन्दाग्नि, पीनस और खांसी, ये रोग दूर होते हैं ॥ ६४–६६ ॥

तालीसादिचूर्ण अरुचिआदि रोगोंपर।

तालीसं मरिचं शुण्ठी पिप्पली वंशरोचना ॥ ६७ ॥
एकद्वित्रिचतुःपञ्चकर्षैर्भागान् प्रकल्पयेत्।
एलात्वचोस्तु कर्षार्धं प्रत्येकं भागमावहेत् ॥ ६८ ॥
मृतं वङ्गं मृतं ताम्रं समभागानि कारयेत्।
द्वात्रिंशत् कर्षतुलिता प्रदेया शर्करा बुधैः ॥ ६९ ॥
तालीसाद्यमिदं चूर्णं रोचनं पाचनं स्मृतम्।
कासश्वासज्वरहरं छर्द्यतीसारनाशनम् ॥ ७० ॥
शोषाध्मानहरं प्लीहग्रहणीपाण्डुरोगजित्।

अर्थ–१ तालीसपत्र एक तोला, २सोंठ तीन तोले, ३पीपल चार तोले, ४ वंशलोचन पांच तोले, ५ इलायचीके दाने और ६ दालचीनी छः छः मासे, ७ वंगभस्म और

१ मागध परिभाषाके मानानुसार एक कर्षका व्यावहारिक १ तोला होता है। पलके चार तोले होते हैं।

८ ताम्रभस्म ये दोनों आठ८ तोले और मिश्री ३२ तोले ले। सबका चूर्ण कर मिश्री मिलाय सेवन करे तो यह तालीसचूर्ण रोचक, पाचक तथा खांसी, श्वास, ज्वर, वमन, अतिसार, शोष, अफरा, प्लीहा, संग्रहणी और पांडुरोग इनको नष्ट करता है॥६७-७०॥

लवङ्गादिचूर्ण हृद्रोगादिपर।

लवङ्गं शुद्धकर्पूरमेलात्वङ्नागकेशरम् ॥ ७१ ॥ जातीफलमुशीरं च नागरं कृष्णजीरकम् । कृष्णागुरुस्तुगाक्षीरी मांसी नीलोत्पलं कणा ॥७२॥ चन्दनं तगरं वालं कङ्कोलं चेति चूर्णयेत् । समभागानि सर्वाणि सर्वेभ्योऽर्धा सिता भवेत् ॥ ७३ ॥ लवङ्गाद्यमिदं चूर्णं राजार्हं वह्निदीपनम् । रोचनं तर्पणं वृष्यं त्रिदोषघ्नं बलप्रदम् ॥ ७४ ॥ हृद्रोगं कण्ठरोगं च कासं हिक्कां च पीनसम् । यक्ष्माणं तमकं श्वासमतीसारमुरःक्षतम् ॥ ७५ ॥ प्रमेहारुचिगुल्मादीन् ग्रहणीमपि नाशयेत् ।

अर्थ—१ लौंग, २ भीमसेनीकपूर[1], ३ इलायची, ४ दालचीनी, ५ नागकेशर, ६ जायफल, ७ खस, ८ सोंठ, ९ कालाजीरा, १० कालाअगर, ११ वंशलोचन, १२ जटामांसी, १३ नीला कमल, १४ पीपल, १५ सफेद चन्दन, १६ तगर, १७ नेत्रवाला और १८ कंकोल, इन अठारह ओषधियोंको समान भाग लेकर चूर्ण करे, चूर्णसे आधी मिश्री मिलावे, इस चूर्णको लवंगादिचूर्ण कहते हैं। यह चूर्ण राजाओंको देनेके योग्य है। इस चूर्णसे अग्नि प्रदीप्त होय और यह रुचिकारी है, शरीर पुष्ट होवे, स्त्रीभोगनेकी शक्ति हो, वात, पित्त, कफ, इनके प्रकोपको दूर करे, बल करे, हृदयरोग, कण्ठरोग, खांसी, हिचकी, पीनस, क्षय, तमकश्वास, अतिसार, अरुचि, प्रमेह, गोला और संग्रहणी इन सब रोगोको दूर करता है॥ ७१–७५॥

जातीफलादिचूर्ण संग्रहण्यादिपर।

जातीफललवङ्गैलापत्रत्वङ्नागकेशरैः ॥ ७६ ॥ कर्पूरचन्दनतिलत्वक्क्षीरीतगरामलैः । तालीसपिप्पलीपथ्यास्थूलजीरकचित्रकैः ॥ ७७ ॥ शुण्ठीविडंगमरिचैः समभागैर्विचूर्णितैः॥यावन्त्येतानि सर्वाणि कुर्याद्भंगां च तावतीम् ॥७८॥ सर्वचूर्णसमा देया शर्करा च भिषग्वरैः॥कर्षमात्रं ततः खादेत्

[1] कपूरके तीन भेद है—ईशावास, हिम और पोताश्रित। परंतु राजनिघंटुने बरास, चीनिया और कपूर ये भेद माने है। शुद्ध भीमसेनी कपूरको 'बरास' भी कहते है।

मधुना प्लावितं सुधीः ॥ ७९ ॥ अस्य प्रभावाद् ग्रहणीकासश्वासारुचिक्षयाः ॥ वातश्लेष्मप्रतिश्यायाः प्रशमं यान्ति वेगतः ॥ ८० ॥

अर्थ-१ जायफल, २ लौंग, ३ इलायची, ४ तमालपत्र, ५ दालचीनी, ६ नागकेशर, ७ कपूर, ८ सफेद चन्दन, ९ काले तिल, १० वंशलोचन, ११ तगर, १२ आंवले, १३ तालीसपत्र, १४ पीपल, १५ हरड, १६ कालाजीरा, १७ चीतेकी छाल, १८ सोंठ, १९ वायविडंग और २० कालीमिरच ये बीस ओषधि समान भाग लेवे, तथा इन सब औषधियोंके समान भाग शुद्ध भांग मिलायकर सबका चूर्ण कर चूर्णकी बराबर सफेद मिश्री मिलावे । सबको एकत्र कर एक २ तोला नित्य सहतके साथ सेवन करे तो संग्रहणी, खांसी, श्वास, अरुचि, क्षय, वात कफके विकार और पीनस ये रोग शीघ्र दूर होवें ॥ ७६-८० ॥

महाखाण्डवचूर्ण अरुच्यादिपर ।

मरिचं नागपुष्पाणि तालीसं लवणानि च । प्रत्येकमेकभागाः स्युः पिप्पलीमूलचित्रकैः ॥ ८१ ॥ त्वक्कणा तिन्तिडीकं च जीरकं च द्विभागकम् । धान्याम्लवेतसौ विश्वभद्रैलाबदराणि च ॥ ८२ ॥ अजमोदा जलधरः प्रत्येकं स्युस्त्रिभागिकाः ॥ सर्वौषधिचतुर्थांशं दाडिमस्य फलं भवेत् ॥ ८३ ॥ द्रव्येभ्यो निखिलेभ्यश्च सिता देयाऽर्धमात्रया । महाखाण्डवसंज्ञं स्याच्चूर्णमेतत्सुरोचनम् ॥ ८४ ॥ अग्निदीप्तिकरं हृद्यं कासातीसारनाशनम् ॥ हृद्रोगकण्ठजठरमुखरोगप्रणाशनम् ॥ ८५ ॥ विषूचिकां तथाऽऽध्मानमर्शोगुल्मकृमीनपि ॥ छर्दिं पञ्चविधां श्वासं चूर्णमेतद्व्यपोहति ॥ ८६ ॥

अर्थ-१ कालीमिरच, २ नागकेशर, ३ तालीस पत्र, ४ सैंधानमक, ५ सञ्चरनमक, ६ बिडनमक, ७ समुद्रनमक और ८ रेहका नमक ये आठ औषधि एक एक तोला लेवे । तथा १ पीपरामूल, २ चित्रक, ३ दालचीनी, ४ पीपल, ५ इमलीकी छाल, ६ जीरा, ये ओषधि दो दो तोले लेवे । १ धनियां, अमलवेत[1], ३ सोठ, ४ बडी इलायचीके दाने, ५ छोटे बेर, ६ अजमोद और ७ नागरमोथा ये सातों ओषधि

१ अमलवेत सर्वत्र प्रसिद्ध है । यदि कही न मिले तो उसके अभावमें चूका अथवा चनाकी खटाई डालनी चाहिये ।

तीन ३ तोले लेवे और सब ओषधियोंका चतुर्थ भाग अनारदाना ले, फिर सब ओषधियोंका चूर्ण कर इस चूर्णमें आधी सफेद मिश्री मिलावे. सबको एकत्र करे, इसको महाखांडव चूर्ण कहते हैं । इस चूर्णके सेवन करनेसे रुचि हो. अग्नि प्रदीप्त हो. यह हृदयको हितकारी, खांसी, अतिसार. हृद्रोग. कंठरोग. उदररोग. मुखरोग. विषूचिका (हैजा). अफरा. ववासीर. गोला. कृमिरोग, पांच प्रकारका अर्दिरोग तथा श्वास ये दूर होवें ॥ ८५-८६ ॥

नारायणचूर्ण उदररोगपर ।

चित्रकं त्रिफलाव्योषं जीरकं हपुषा वचा । यवानी पिप्पलीमूलं शतपुष्पाऽजगन्धिका ॥ ८७ ॥ अजमोदा शठी धान्यं विडङ्गं स्थूलजीरकम् । हेमाह्वा पौष्करं मूलं क्षारौ लवणपञ्चकम् ॥ ८८ ॥ कुष्ठं चेति समांशानि विशाला स्याद् द्विभागिका । त्रिवृत् त्रिभागा विज्ञेया दन्त्या भागत्रयं भवेत् ॥ ८९ ॥ चतुर्भागा शातला स्यात् सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत् । पाचनं स्नेहनाद्यैश्च स्निग्धकोष्ठस्य रोगिणः ॥ ९० ॥ दद्याच्चूर्णं विरेकाय सर्वरोगप्रणाशनम् । हृद्रोगे पाण्डुरोगे च कासे श्वासे भगन्दरे ॥९१॥ मन्देऽग्नौ च ज्वरे कुष्ठे ग्रहण्यां च गलग्रहे । दद्याद्युक्तानुपानेन तथाऽऽध्माने सुरादिभिः ॥ ९२ ॥ गुल्मे वदरनीरेण विड्भेदे दधिमस्तुना । उष्णाम्बुभिरजीर्णे च वृक्षाम्लैः परिकर्तिषु ॥ ९३ ॥ उष्ट्रीदुग्धेनोदरेषु तथा तक्रेण वा गवाम् । प्रसन्नया वातरोगे दाडिमाम्बुभिरर्शसि ॥ ९४ ॥ द्विविधे च विषे दद्याद् घृतेन विषनाशनम् । चूर्णं नारायणं नाम दुष्टरोगगणापहम् ॥ ९५ ॥

अर्थ—१ चीतेकी छाल. २ हरड. ३ बहेडा. ४ आंवला, ५ सोंठ ६ मिरच, ७ पीपल, ८ जीरा. ९ हाऊवेर १० वच, ११ अजवायन. १२ पीपरामूल. १३ सौंफ. १४ बवई (वनतुलसी). १५ अजमोदा, १६ कचूर. १७ धनिया. १८ वायविडंग. १९ मगरेला, (कलौंजी). २० पुहकरमूल. २१ सज्जीखार. २२ जवाखार. २३ सेंधानमक. २४ संचरनमक. २५ विडनमक २६ समुद्रनमक. २७ कचिया नमक और २८ कूट इन अट्ठाइस ओषधियोंका एक एक तोला लेवे । इंद्रायणकी जड २ तोले. निसोथ ३ तोले और दंतीकी जड ३ तोले, एवं पीली थूहर ४ तोले इन सब ओषधियोंको कूट पीस चूर्ण करे । फिर पाचन करके और स्नेहनादि करके जिस मनुष्यका चिकना कोठा

१ मनुष्यको आरग्वधादि पंचकके काढेसे पाचन देकर तथा इनस्खण्डमें जो घृतपानकी विधि है उसी प्रकार घी पीनेको देकर कोठेको चिकना करे पीछे चूर्णको देवे ।

होगया हो उस मनुष्यको दस्त होनेके वास्ते यह चूर्ण देवे तो संपूर्ण रोग दूर होवें। हृदयरोग, पांडुरोग, खांसी, श्वास, भगन्दर, मन्दाग्नि, ज्वर, कोढ, संग्रहणी इन रोगोंमें मद्य आदि अनुपानके साथ देवे । पेटके फूलनेपर दारूके साथ देवे, गोलेके रोगमें बेरके काढेके साथ देवे,मलबद्धवालेको दहीके जलसे देवे और अजीर्ण रोगीको गरम जलके साथ देवे । गुदामें कतरनीकीसी पीडा होती होवे तो तितिडीकके काढेके साथ देवे । उदररोग ( जलंधर ) में ऊँटनीके दूधके साथ अथवा गौके तक्रके साथ देवे । वादीके रोगमें प्रसन्न मद्यके साथ देवे । बवासीरमें अनारदानेके जलके साथ देवे । स्थावर और जंगम विषोंमें घृतके साथ देवे तो दोनों प्रकारके विष दूर हों । इसको नारायण चूर्ण कहते हैं, इससे संपूर्ण दुष्ट रोग दूर होते हैं ॥ ८७-९५ ॥

हपुषादिचूर्ण अजीर्णउदरादिकोंपर ।

**हपुषा त्रिफला चैव त्रायमाणा च पिप्पली ।**
**हेमक्षीरी त्रिवृच्चैव शातला कटुका वचा ॥ ९६ ॥**
**नालिनी सैन्धवं कृष्णलवणं चेति चूर्णयेत् ।**
**उष्णोदकेन मूत्रेण दाडिमत्रिफलारसैः ॥ ९७ ॥**
**तथा मांसरसेनापि यथायोग्यं पिबेन्नरः ।**
**अजीर्णे प्लीहगुल्मेषु शोफार्शोविषमाग्निषु ॥ ९८ ॥**
**हलीमकामलापाण्डुकुष्ठाध्मानोदरेष्वपि ।**

अर्थ-१ हाऊबेर, २ हरड, ३ बहेडा,४ आंवला,५ त्रायमाण[1],६ पीपल,७ चोक, ८निसोथ,९पीली थूहर,१० कुटकी, ११वच, १२ नीली[2], १३ सैंधानमक, १४ काला नमक प्रत्येक समान भाग लेवे । सबका चूर्ण कर गरम जलके वा गोमूत्रके साथ वा अनारदानेके रससे अथवा त्रिफलाके काढेके साथ, अथवा वनके हरिणादिकोंके मांसरससे योग्यता विचारके देवे तो अजीर्ण, प्लीहा, गोला, सूजन, बवासीर, मंदाग्नि, हलीमक, कामला, पांडुरोग, कुष्ठ, अफरा और उदररोग, इन सबको दूर करे ॥ ९६-९८ ॥

पञ्चसमचूर्ण[3] शूलादिपर ।

**शुण्ठी हरीतकी कृष्णा त्रिवृत् सौवर्चलं तथा ॥ ९९ ॥ सम-भागानि सर्वाणि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् । ज्ञेयं पञ्चसमं चूर्णमे-**

१ त्रायमाण इसी नामसे प्रसिद्ध है, इसके पत्ते जामुनकेसे होते है । २ नीलीके वृक्ष छोटे २ होते हैं यह नीलवृक्षके नामसे प्रसिद्ध है, इसमेंसे नीला रंग उत्पन्न होता है ।
३ यह पंचसमचूर्ण प्रायः शूलरोगपर बहुत चलता है और गुण भी शीघ्र दिखलाता है ।

तच्छूलहरं परम् ॥ १०० ॥ आध्मानजठरार्शोघ्नमामवातहरं स्मृतम्।

अर्थ-१ सोंठ, २ हरड, ३ पीपल, ४ निसोथ और ५ संचर नमक, ये पांचों ओषधी समभाग लेकर बारीक चूर्ण करे। इसको पंचसम चूर्ण कहते हैं। इसके सेवन करनेसे शूलरोग, पेटका फूलना, मन्दाग्नि, बवासीर और आमवायु ये रोग दूर होते हैं ॥ ९९ ॥ १०० ॥

पिप्पल्यादिचूर्ण अफराआदिपर।

कर्षमात्रा भवेत् कृष्णा त्रिवृता स्यात् पलोन्मिता ॥१०१॥ खण्डात् पलं च विज्ञेयं चूर्णमेकत्र कारयेत्। कर्षोन्मितं लिहेदेतत् क्षौद्रेणाध्माननाशनम् ॥ १०२ ॥ गाढविट्कोदरकफान् पित्तं शूलं च नाशयेत्।

अर्थ-पीपल १ तोला, निसोथ ४ तोले, मिश्री ४ तोले इनका एकत्र चूर्ण कर सहतसे सेवन करे तो पेटका अफरा तथा मलबद्धता, उदररोग, कफ, पित्त और शूलको नाश करे ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

लवणत्रितयादिचूर्ण यकृत्प्लीहादिकोंपर।

लवणत्रितयं क्षारं शतपुष्पाद्वयं वचा ॥ १०३ ॥ अजमोदाऽजगन्धा च हपुषा जीरकद्वयम्। मरिचं पिप्पलीमूलं पिप्पली गजपिप्पली ॥ १०४ ॥ हिङ्गुश्च हिङ्गुपत्री च शठी पाठोपकुञ्चिका। शुण्ठीचित्रकचव्यानि विडङ्गं चाम्लवेतसम् ॥१०५॥ दाडिमं तिन्तिडीकं च त्रिवृद्दन्ती शतावरी। इन्द्रवारुणिका भार्ङ्गी देवदारुयवानिका ॥ १०६ ॥ कुस्तुम्बुरुस्तुम्बुरूणि पौष्करं बदराणि च। शिवा चेति समांशानि चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥ १०७ ॥ भावयेदार्द्रकरसैर्बीजपूररसैस्तथा। तत्र पिबेत् सर्पिषा जीर्णमद्येनोष्णोदकेन वा ॥ १०८ ॥ कोलाम्भसा वा तक्रेण दुग्धेनौष्ट्रेण मस्तुना। यकृत्प्लीहकटीशूलगुदकुक्षिहृदामयान् ॥ १०९ ॥ अर्शोविष्टम्भमन्दाग्निगुल्माष्ठीलोदराणि च। हिक्काध्मानश्वासकासाञ्जयेदेतान्न संशयः ॥११०॥ एतैरेवौषधैः सम्यग्घृतं वा साधयेद्भिषक्।

-१ सेंधानमक, २ संचरनमक, ३ बिडनोन, ४ सज्जीखार, ५ जवाखार, ६सौंफ,

७ मगरेला ( कलौंजी ), ८ वच, ९ अजमोदा, १० बर्बरी (वनतुलसी),११ हाऊबेर, १२ सफेद जीरा, १३ कालाजीरा, १४ कालीमिरच, १५ पीपलामूल,१६पीपल, १७ गजपीपल, १८ हीग भुनी, १९ हिंगुपत्री, २० कचूर, २१ पाढ,२२छोटी इलायची, २३ सोंठ, २४ चव्य, २५ चीतेकी छाल, २६ वायविडिंग, २७ अमलवेत, २८ अनारदाना, २९ तिन्तिडीक, ३० निशोथ,३१दन्ती,३२ मतावर, ३३इन्द्रायर्ण[1]का गूदा, ३४ भारंगी,३५ देवदारु, ३६ अजवायन, ३७ धानियां, ३८ चिरफल, ३९ पुहकरमूल, ४० बेर और ४१ छोटी हरडे ये इकतालीस ओपधि समान भाग लेकर चूर्ण करे। फिर उस चूर्णको अदरखके रसका एक तथा विजोरेके रसका एक पुट देकर सुखाय लेवे। इस चूणको घी, पुराना मद्य, गरम जल, अथवा बेरका काढा, गौकी छाछ, ऊँटनीका दूध और दहीका पानी, इनमें जो अनुपान रोगीको हितकारी होय वह, उसके साथ देवे तो कलेजेका रोग, प्लीहा ( तिल्ली ) कमरका दर्द, गुदाका रोग, कूखका शूल, हृदयरोग, बवासीर, मलका अवरोध, मंदाग्नि, गोला, अष्ठीला, उदररोग, हिचकी, अफरा, श्वास और खांसी ये रोग दूर होवें। अथवा इस चूर्णमे कही हुई ओपधियोका काढा करके उसमे घी मिलाके साधन करे, जब घी सिद्ध होजावे तब उतारले। इस घृतके सेवन करनेसे ऊपर कहे हुए संपूर्ण रोग दूर होय ॥ १०३-११० ॥

तुम्बर्वादिकचूर्ण शूलादिकोंपर ।

**तुम्बरूणि त्रिलवणं यवानी पुष्कराह्वयम् ॥१११॥ यवक्षाराभया हिङ्गुविडङ्गानि समानि च। त्रिवृत्त्रिभागा विज्ञेया सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ११२ ॥ पिबेदुष्णेन तोयेन यवक्काथेन वा पिबेत्। जयेत् सर्वाणि शूलानि गुल्माध्मानोदराणि च ॥ ११३ ॥**

अर्थ-१ धानियां अथवा चिरफल, २ सेंधानमक, ३ संचरनमक, ४ विडनमक, ५ अजमोदा, ६ पुहकरमूल, ७ जवाखार, ८ हरड, ९ भुनी हुई हाग और१०वायविडंग इन दश ओषधियोंको समान भाग लेवे तथा निसोथ तीन भाग ले, सब औषधियोंका बारीक चूर्ण कर गरम जलसे अथवा जौके काढेके साथ सेवन करे तो सब प्रकारके शूल, गोला, अफरा और उदररोग दूर होवे ॥ १११-११३ ॥

चित्रकादिचूर्ण गुल्मादिकोंपर ।

**चित्रकं नागरं हिङ्गु पिप्पली पिप्पलीजटा। चव्याजमोदा मरिचं प्रत्येकं कर्षसंमितम् ॥११४॥ स्वर्जिका च यवक्षारः**

---

१ इन्द्रायणको हमारे इस मथुराप्रान्तके मनुष्य फरफेंदू कहते है। इसकी बेल होती है और पीले रंगका वडा बेलकी बराबर फल लगता है, यह अत्यंत कडुआ होता है, यदि इसका फल न मिलै तो इसकी जड लेनी चाहिये।

सिन्धुसौवर्चलं विडम्। सामुद्रकं रोमकं च कोलमात्राणि कारयेत् ॥ ११५॥ एकीकृत्याखिलं चूर्णं भावयेन्मातुलुङ्गजैः। रसैर्दाडिमजैर्वाऽपि शोषयेदातपेन च ॥ ११६॥ एतच्चूर्णं जयेद् गुल्मं ग्रहणीमामजां रुजम्। अग्निं च कुरुते दीप्तं रुचिकृत् कफनाशनम् ॥ ११७॥

अर्थ-१ चीतेकी छाल, २ सोंठ, ३ भुनी हुई हींग, ४ पीपल, ५ पीपरामूल, ६ चव्य, ७ अजमोद, ८ कालीमिरच, इन आठ औषधियोंको तोले २ भर लेवे तथा १ सज्जीखार, २ जवाखार, ३ सेंधवनमक, ४ सञ्चरनमक, ५ बिडनोन, ६ समुद्रनमक और ७ रेहका नमक इन सात खारोंको आठ मासे लेवे। फिर सब औषधियोंका चूर्ण कर विजोरेके रसकी एक भावना देवे। अथवा अनारदानेके रसकी एक पुट देवे, फिर धूपमें धरके सुखाय लेवे। इस चूर्णके सेवन करनेसे गोला, संग्रहणी, आम ये दूर हो तथा अग्नि प्रदीप्त हो, रुचि बढे तथा कफ दूर होय ॥ ११४-११७ ॥

वडवानलचूर्ण मन्दाग्निआदिरोगोंपर।

सैन्धवं पिप्पलीमूलं पिप्पली चव्यचित्रकम्।
शुण्ठी हरीतकी चेति क्रमवृद्ध्या विचूर्णयेत् ॥ ११८॥
वडवानलनामैतच्चूर्णं स्यादग्निदीपनम्।

अर्थ-१ सेंधानमक एक भाग, २ पीपरामूल दो भाग, ३ पीपल तीन भाग, ४ चव्य चार भाग, चीतेकी छाल पांच भाग, ६ सोंठ छः भाग, ७ जंगी हरड सात भाग-इस क्रमसे ये औषधी लेकर चूर्ण करे। इस चूर्णको वडवानल चूर्ण कहते हैं। इसका सेवन करनेसे अग्नि प्रदीप्त होती है ॥ ११८॥

अजमोदादिचूर्ण आमवातपर।

अजमोदा विडङ्गानि सैन्धवं देवदारु च ॥ ११९॥ चित्रकः पिप्पलीमूलं शतपुष्पा च पिप्पली। मरिचं चेति कर्षांशं प्रत्येकं कारयेद्बुधः ॥ १२० ॥ कर्षास्तु पञ्च पथ्याया दश स्युर्वृद्धदारुकात्। नागराच्च दशैव स्युः सर्वाण्येकत्र कारयेत् ॥१२१॥ पिबेत् कोष्णजलेनैव चूर्णं श्वयथुनाशनम्। आमवातरुजं हन्ति सन्धिपीडां च गृध्रसीम् ॥ १२२॥ कटिपृष्ठगुदस्थां च जंघयोश्च रुजं जयेत्। तूणीप्रतूणीवि-

श्वाचीकफवातामयाञ्जयेत् । समेन वा गुडेनास्य वटकान् कारयेत्सुधीः ॥ १२३ ॥

अर्थ-१ अजमोद, २ वायविडंग, ३ सैंधानमक, ४ देवदारु, ५ चित्रक, ६ पीपरामूल, ७ सौंफ, ८ पीपल और ९ काली मिरच इन औषधियोंको तोले २ लेवे तथा जङ्गीहरडे २ तोले ले, विधायरा १० तोले और सोंठ दश तोले । सब औषधियोंको कूट पीस और छानके चूर्ण करे, इसको गरम जलके साथ ले तो सूजन, आमवात, सन्धियोका दूखना, गृध्रसी वायु ( जो करसे लेकर पैर पर्यंत पीडा होती है वह ), कमर, पीठ, गुदा, जंघा और पीडरियोंकी पीडा, तूनी वायु, प्रतूनी वायु तथा विश्वाची वायु और कफवायुके विकार, ये सम्पूर्ण रोग दूर होवे। अथवा इस चूर्णके समान भाग गुड मिलायके गोली बनायके खाय तो चूर्ण खानेसे जो रोग नष्ट होते हैं वेही इस गोलीके सेवनसे नष्ट होय ॥ ११९-१२३ ॥

शुंठ्यादिचूर्ण श्वासादिकोंपर ।

शुण्ठी सौवर्चलं हिंगु दाडिमं चाम्लवेतसम् ।
चूर्णमुष्णाम्बुना पेयं श्वासहृद्रोगशान्तये ॥ १२४ ॥

अर्थ-१ सोंठ, २ सञ्चरनमक, ३ भुनीहुई हींग, ४ अनारदाना और ५ अमलवेत इनका चूर्ण गरम जलके साथ ले तो श्वास और हृदयरोग नष्ट होवे ॥ १२४ ॥

हिंग्वादिचूर्ण शूलादिकोंपर ।

हिंगूग्रगन्धाबिडविश्वकृष्णाकुष्ठाभयाचित्रकयावशूकम् ।
पिबेत् ससौवर्चलपुष्कराढ्यं हिमांभसा शूलहृदामयघ्नम् ॥ १२५ ॥

अर्थ-१ हींग, २ वच, ३ विडनोन, ४ सोंठ, ५ पीपल, ६ कूठ, ७ हरड, ८ चीतेकी छाल, ९ जवाखार, १० सञ्चरनमक और ११ पुहकरमूल इन ग्यारह औषधियोंका चूर्ण कर शीतलजलके साथ पीवे तो शूल और हृदयरोग शांत होवे ॥ १२५ ॥

हिंग्वादिचूर्ण शूलादिकोंपर ।

हिंगुपाठाऽभया धान्यं दाडिमं चित्रकं शठी । अजमोदा त्रिकटुकं हपुषा चाम्लवेतसम् ॥ १२६ ॥ अजगन्धा तिन्तिडीकं जीरकं पौष्करं वचा । चव्यं क्षारद्वयं पञ्च लवणानीति चूर्णयेत् ॥ १२७ ॥ प्राग्भोजनस्य मध्ये वा चूर्णमेतत् प्रयोजयेत् । पिबेद्वा जीर्णमद्येन तक्रेणोष्णोदकेन वा ॥ १२८ ॥ गुल्मे वातकफोद्भूते विड्ग्रहेऽष्ठीलिकासु च । हृद्बस्तिपार्श्वशूलेषु शूले च गुदयोनिजे ॥ १२९ ॥ मूत्रकृच्छ्रे तथाऽऽनाहे

पाण्डुरोगेऽरुचौ तथा । हिक्कायां यकृति प्लीह्नि श्वासे कासे गलग्रहे ॥ १३० ॥ ग्रहण्यर्शोविकारेषु चूर्णमेतत् प्रशस्यते । भावितं मातुलुङ्गस्य बहुशः स्वरसेन वा ॥१३१॥ कुर्याच्च गुटिकाः पथ्या वातश्लेष्मामयापहाः ।

अर्थ–१ भुनी हींग, २ पाढ, ३ जंगीहरड, ४ धनियां, ५ अनारदाना, ६ चीनेकी छाल, ७ कचूर, ८ अजमोद, ९ सोंठ, १० मिरच, ११ पीपल, १२ हाऊबेर, १३ अमलवेत, १४ वनतुलसी, १५ तिंतिडीक अथवा इमली, १६ जीरा, १७ पुहकरमूल, १८ वच, १९ चव्य, २० सज्जीखार, २१ जवाखार, २२ सेंधानोन, २३ संचरनोन, २४ बिडनोन, २५ बांगड खार और २६ समुद्रका नोन, इन छब्बीस औषधियोंको कूट पीसके चूर्ण करे, इसको भोजनके आदिमें अथवा भोजनके मध्यमें खाय अथवा बहुत दिनके पुराने मद्यके साथ सेवन करे, अथवा गौकी छाछ एवं गरम जलके साथ सेवन करे तो वात कफसे उत्पन्न होनेवाला गोलेका रोग, हृद्रोग, अष्ठीला इस नामसे पेटमें होनेवाला वादीका रोग, हृदय, वस्ति, कूख इनका शूल तथा गुदाका शूल, योनिशूल, मूत्रकृच्छ्र, मलबद्धता, पांडुरोग, अरुचि, हिचकी, यकृद्रोग, तिल्लीका रोग, श्वास, खांसी, कंठरोग, संग्रहणी, बवासीर ये संपूर्ण रोग दूर हों । इस चूर्णमें बिजोरेके रसके सात पुट देकर गोली बनाके सेवन करे तो वात कफसे होनेवाले रोग दूर होवे ॥ १२६–१३१ ॥

यवानीखाण्डवचूर्ण अरुच्यादिपर ।

यवानी दाडिमं शुण्ठी तिन्तिडीकाम्लवेतसौ ॥ १३२ ॥ बदराम्लं च कुर्वीत चतुःशाणमितानि च । सार्द्धद्विशाणं मरिचं पिप्पली दशशाणिका ॥ १३३ ॥ त्वक्सौवर्चलधान्याकं जीरकं द्विद्विशाणिकम् । चतुःषष्टिमितैः शाणैः शर्करामत्र योजयेत् ॥१३४॥ चूर्णितं सर्वमेकत्र यवानीखाण्डवाभिधम् । चूर्णं जयेत पाण्डुरोगं हृद्रोगं ग्रहणीं ज्वरम् । ॥ १३५ ॥ छर्दिशोषातिसारांश्च प्लीहानाहविबन्धताम् । अरुचिं शूलमन्दाग्नी अर्शोजिह्वागलामयान् ॥ १३६ ॥

अर्थ–१ अजमोदा, २ अनारदाना, ३ सोंठ, ४ तिंतिडीक अथवा इमली, ५ अमलवेंत और ६ खट्टे बेर । ये छः औषधि चार २ शाण लेवे । काली मिरच ढाई शाण, पीपल दश शाण, दालचीनी, संचरनमक, धनियां जीरा ये प्रत्येक दो दो शाण और मिश्री चौसठ शाण ले, फिर सब औषधियोंको कूटकर चूर्ण करे, इस

चूर्णको यवानीखांडव चर्ण कहते हैं । इस चूर्णके सेवन करनेसे पांडुरोग, हृद्रोग, संग्रहणी, ज्वर, वमन, शोष, अतिसार, तिल्ली, मलबद्धता, अरुचि, शूल, मन्दाग्नि, बवासीर, जीभ और गलेके रोग—ये सब दूर होते हैं ॥ १३२–१३६ ॥

तालीसादिचूर्ण अरुच्यादिरोगोंपर ।

तालीसं मरिचं शुण्ठी पिप्पली वंशलोचनम् । एकद्वित्रिचतुःपञ्चकर्षैर्भागान् प्रकल्पयेत् ॥ १३७ ॥ एलात्वचोस्तु कर्षार्धं प्रत्येकं भागमावहेत् । द्वात्रिंशत्कर्षतुलिता प्रपेया शर्करा बुधैः ॥ १३८ ॥ तालीसाद्यमिदं चूर्णं रोचनं पाचनं स्मृतम् । कासश्वासज्वरहरं छर्द्यतीसारनाशनम् ॥ १३९ ॥ शोषाध्मा[१]नहरं प्लीहग्रहणीपाण्डुरोगजित् ॥ पक्त्वा वा शर्करां चूर्णं क्षिपेत् स्याद्गुटिका ततः ॥ १४० ॥

अर्थ—तालीसपत्र १ तोला, कालीमिरच २ तोले, सोंठ ३ तोले, पीपल ४ तोले, वंशलोचन५तोले,छोटी इलायची और दालचीनी दोनों छःछः मासे और मिश्री ३२ तोले ले फिर सबको कूट पीस चूर्ण करके सेवन करे तो रुचि होय, अन्न पचे, तथा खांसी, श्वास, ज्वर, वमन, अतिसार, शोष, अफरा, तिल्ली, संग्रहणी और पांडुरोग ये दूर हों अथवा मिश्रीकी चासनी करके उसमे इस चूर्णको डाल गोली बनाय लेवे तो यह भी चर्णके समान गुण करती है ॥ १३७–१४० ॥

सितोपलादिचूर्ण खांसीक्षयपित्तादिकोंपर ।

सितोपला षोडश स्यादष्टौ स्याद् वंशरोचना । पिप्पली स्याच्चतुःकर्षा स्यादेला च द्विकार्षिकी ॥ १४१ ॥ एकः कर्षस्त्वचः कार्यश्चूर्णयेत् सर्वमेकतः । सितोपलादिकं चूर्णं मधुसर्पिर्युतं लिहेत् ॥१४२॥ श्वासकासक्षयहरं हस्तपादाङ्गदाहजित् । मन्दाग्निं शून्यजिह्वत्वं पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ १४३ ॥ ज्वरमूर्ध्वगतं रक्तपित्तमाशु व्यपोहति ।

अर्थ—मिश्री१६तोले,वंशलोचन८तोले,पीपल४तोले,छोटी इलायचीके बीज २ तोले, दालचीनी १तोला इन सबको कूट पीसकर चूर्ण करे, इसको सितोपलादिचूर्ण कहते हैं। और इस चूर्णको सहत और घीके साथ मिलायके खाय तो श्वास, खांसी, क्षय, हाथ पैरोंका तथा अंगोंका दाह, मंदाग्नि, जीभकी शून्यता, पसलीका शूल, अरुचि,

१ 'शोफाध्मानहरं' कहीं ऐसा पाठ है, तहां शोफ कहिये सूजन ऐसा अर्थ जानना । परस्पर विषम भाग होना चाहिये ।

ज्वर, ऊर्ध्वगत रक्तपित्त, (नाकमुखसे रुधिर आना) ये सब तत्काल दूर होवे ॥ १४१-१४३ ॥

लवणभास्करचूर्ण संग्रहणीगुल्मादिकोंपर ।

सामुद्रलवणं कार्यमष्टकर्पमितं बुधैः ॥ १४४ ॥ पञ्च सौवर्चलं ग्राह्यं बिडं सैन्धवधान्यके । पिप्पली पिप्पलीमूलं कृष्णजीरकपत्रकम् ॥१४५॥ नागकेसरतालीसमम्लवेतसकं तथा । द्विकर्षमात्राण्येतानि प्रत्येकं कारयेद्बुधः ॥१४६॥ मरिचं जीरकं विश्वमेकैकं कर्षमात्रकम् । दाडिमं स्याच्चतुःकर्षं त्वगेले चार्धकर्षिके ॥ १४७ ॥ बीजपूररसेनैव भावितं सप्तवारकम् । एतच्चूर्णीकृतं सर्वं लवणं भास्कराभिधम् । शाणप्रमाणं देयं तु मस्तुतक्रसुरासवैः॥१४८॥वातश्लेष्मभवं गुल्मं प्लीहानमुदरं क्षयम्। अर्शांसि ग्रहणीं कुष्टं विबन्धं च भगन्दरम् ॥ १४९ ॥ शोफं शूलं श्वासकासमामदोषं च हृद्रुजम् । मन्दाग्निं नाशयेदेतत् दीपनं पाचनं परम् ॥१५०॥ सर्वलोकहितार्थाय भास्करेणोदितं पुरा ।

अर्थ-समुद्रनमक ८ तोले, संचरनोन ५ तोले तथा १ बिडनोन, २ सेंधानमक ३ धनियां,४पीपल,५पीपरामूल, ६कालाजीरा, ७ पत्रज, ८ नागकेशर, ९ तालीसपत्र और १० अमलवेत ये दश ओषधि प्रत्येक दो दो तोले ले कालीमिरच, जीरा और सोंठ ये तीन ओषधि एक एक तोला ले तथा अनारदाना ४ तोले, दालचीनी और इलायची छः छः मासे । इन सब ओषधियोंको कूट पीस चूर्ण करे । बिजौरेके रसकी सातवार भावना दे इसको दहीके जलसे वा मलाई या छाछ और मद्य (दारू) इनमेंसे रोगानुसार अनुपानके साथ ४ मासे देवे तो वातकफसे उत्पन्न होनेवाला गोला, प्लीहा उदररोग, क्षय, बवासीर, संग्रहणी, कोढ, मलबद्धता(बद्धकोष्ठ), भगंदर,सूजन,शूल,श्वास,खांसी, आमवात, हृद्रोग और मन्दाग्नि ये सब रोग दूर हो । अग्नि प्रदीप्त हो, तथा अन्नका उत्तम परिपाक होवे । यह चूर्ण लोकोंके हितके वास्ते सूर्यने कहा है, इसीसे इसका नाम लवणभास्कर चूर्ण विख्यात है ॥ १४४-१५० ॥

एलादिचूर्ण वमनपर ।

एलाप्रियंगुमुस्तानि कोलमज्जा च पिप्पली ॥ १५१ ॥ श्रीचन्दनं तथा लाजा लवङ्गं नागकेसरम् । एतच्चूर्णीकृतं सर्वं सिताक्षौद्रयुतं लिहेत् ॥ १५२ ॥ वातपित्तकफोद्भूतां छर्दिं हन्त्यतिवेगतः ।

अर्थ-१ छोटी इलायचीके बीज, २ फूलप्रियंगु, ३ नागरमोथा, ४ बेरकी गुठली, ५ पीपर, ६ सफेद चंदन, ७ खील, ८ लौंग, ९ नागकेशर इनको कूट पीस चूर्णकरके सहत और मिश्रीके साथ खाय तो वात, पित्त और कफसे उत्पन्न हुआ वमन ( रद्द ) ये सब तत्काल दूर हो ॥ १५१ ॥ १५२ ॥

पञ्चनिम्बचूर्ण कुष्ठादिकोंपर ।

मूलं पत्रं फलं पुष्पं त्वचं निम्बात् समाहरेत्॥१५३॥सूक्ष्मचूर्णमिदं कुर्यात् पलैः पञ्चदशोन्मितैः। लोहभस्महरीतक्यौ चक्रमर्दकचित्रकौ ॥ १५४ ॥ भल्लातकविडङ्गानि शर्करामलकं निशा । पिप्पली मरिचं शुंठी बाकुची कृतमालकः ॥१५५॥गोक्षुरश्च पलोन्मानमेकैकं कारयेद् बुधः । सर्वमेकीकृतं चूर्णं भृङ्गराजेन भावयेत्॥१५६॥ अष्टभागावशिष्टेन खदिरासनवारिणा । भावयित्वा च संशुष्कं कर्षमात्रं ततः क्षिपेत् ॥ १५७ ॥ खदिरासनतोयेन सर्पिषा पयसाथवा । मासेन सर्वकुष्ठानि विनिहंति रसायनम् ॥ १५८ ॥ पञ्चनिम्बमिदं चूर्णं सर्वरोगप्रणाशनम् ।

अर्थ-१ जड, २पत्ते, ३ फल,४फूल और५छाल ये पांच अंग नीमके १५पल लेय उनको चूर्ण करे, उसमे १ लोहेकी भस्म, २ जंगीहरड, ३ पवाडके बीज, ४ चीतेकी छाल, ५ भिलावे, ६ वायविंडग, ७ मिश्री, ८ आमलक, ९ हल्दी, १० पीपर, ११ कालीमिरच, १२ सोठ, १३ बावची, १४ अमलतासका गूदा और १५ गोखरू ये पन्द्रह ओषधि प्रत्येक एक एक पल लेकर इन सबका चूर्ण करे । फिर पूर्वोक्त नीमका चूर्ण और पन्द्रह ओषधियोंका चूर्ण मिलाय एकत्र करके भाँगरेके रसकी भावना देकर सुखाय ले । पश्चात् खैरकी छालका काढा करके उसका एक पुट दे । फिर विजयसारकी छालका काढा करके एक पुट देकर सुखाय लेवे । १ तोला इस चूर्णको खैरकी छालके काढेसे पीवे । अथवा विजयसारके काढेसे वा गौके घी या दूधसे पीवे तो एक महीनेमे संपूर्ण कोढ दूर होवे इस चूर्णको पंचनिंब चूर्ण कहते हैं, यह चूर्ण रसायन है ॥ १५३-१५८ ॥

शतावरीचूर्ण वाजीकरणपर ।

शतावरी गोक्षुरश्च बीजं च कपिकच्छुजम् ॥ १५९ ॥ गांगेरुकी चातिबला बीजमिक्षुरकोद्भवम् । चूर्णितं सर्वमेकत्र गोदुग्धेन पिबेन्निशि ॥ १६० ॥ न तृप्तिं याति नारीभिर्नरश्चूर्णप्रभावतः ।

अर्थ-१ शतावर, २ गोखरू, ३ कौंचके बीज, ४ गंगेरनकी छाल, ५ कंगहीकी छाल, ६ तालमखाना, इनका चूर्ण कर रात्रिमें गौके दूधके साथ सेवन करे तो बहुत स्त्री भोगनेसे भी इच्छाकी तृप्ति नहीं हो, ऐसा चूर्णका प्रभाव है १५९॥१६०॥

अश्वगन्धादिचूर्ण पुष्टाइपर ।

**अश्वगन्धा दशपला तन्मात्रो वृद्धदारकः ॥ १६१ ॥ चूर्णीकृत्योभयं विद्वान् घृतभाण्डे निधापयेत् । कर्षैकं पयसा पीत्वा नारीभिर्नैव तृप्यति॥ १६२ ॥ अगत्वा प्रमदां भूयो वलीपलितवर्जितः ।**

अर्थ-असगन्ध १० पल, विधायरा १० पल इन दोनोंका चूर्ण कर घीके बासनमें भरके रात्रिको रख देवे फिर इनमेंसे २ तोले चूर्णको गौके दूधसे सेवन करे तो बहुतसी स्त्रियोंसे भोग करने पर भी तृप्त न हो और यदि स्त्रीसेवनको त्यागके इस चूर्णको सेवन करे तो अंगमें गुजलटोंका पडना और बालोंका सफेद होना ये रोग दूर हो और बुड्ढेसे जवान हो ॥ १६१ ॥ १६२ ॥

मुसलीचूर्ण धातुवृद्धिपर ।

**मुसलीकन्दचूर्णं तु गुडूचीसत्त्वसंयुतम् ॥ १६३ ॥ वानरीगोक्षुराभ्यां च शाल्मलीशर्करामलैः । आलोड्य घृतदुग्धेन दापयेत् कामवर्धनम् ॥ १६४ ॥**

अर्थ-१सफेद मूसली,२गिलोयका सत्व, ३ कौंचके बीज, ४ गोखरू, ५ सेमरका मूसला, ६मिश्री और ७ आँवले इन सात औषधियोंका चूर्ण करके गौके दूधमें घी मिलायके इस चूर्णको पीवे तो धातुकी वृद्धि होकर काम बढावे ॥ १६३ ॥ १६४ ॥

नवायसचूर्ण पाण्डुरोगादिकोंपर ।

**चित्रकं त्रिफलामुस्तं विडङ्गं त्र्यूषणानि च । समभागानि सर्वाणि नवभागो हतायसः ॥ १६५ ॥ एतदेकीकृतं चूर्णं मधुसर्पिर्युतं लिहेत् । गोमूत्रमथवा तक्रमनुपाने प्रशस्यते ॥ १६६ ॥ पाण्डुरोगं जयत्युग्रं त्रिदोषं च भगन्दरम् । शोथकुष्ठोदरार्शांसि मंदाग्निमरुचिं कृमीन् ॥ १६७ ॥**

अर्थ-१चीतेकी छाल, २ हरड,३ बहेडा,४आँवला, ५ नागरमोथा, ६ वायविडंग, ७ सोंठ,८ कालीमिरच और ९ पीपल ये नौ औषधि समान भाग ले चूर्ण करके उस चूर्णके समान लोहभस्म मिलावे । फिर इस चूर्णको सहत और घीके साथ अथवा गोमूत्रसे अथवा गौकी छाछसे सेवन करे तो बडा भारी घोर पाण्डुरोग, त्रिदोष,

भगन्दर, सूजन, कोढ, उदररोग, बवासीर, मन्दाग्नि, अरुचि, और कृमिरोग इन सबको नष्ट करे ॥ १६५-१६७ ॥

अकारकरभादिचूर्ण स्तम्भनपर ।

अकारकरभः शुण्ठी कङ्कोलं कुंकुमं कणा । जातीफलं लवङ्गं च चन्दनं चेति कार्षिकान् ॥१६८॥ चूर्णानि मानतः कुर्यादहिफेनं पलोन्मितम् । सर्वमेकीकृतं सूक्ष्मं माषैकं मधुना लिहेत् ॥१६९॥ शुक्रस्तम्भकरं चूर्णं पुंसामानंदकारकम् । नारीणां प्रीतिजननं सेवेत निशि कामुकः ॥१७०॥

अर्थ-१ अकरकरा, २ सोठ, ३ कंकोल, ४ केशर, ५ पीपल, ६ जायफल, ७ लौंग और ८ सफेद चन्दन ये आठ औषधि एक एक तोला लेवे, तथा अफीम चार तोले लेवे इन सबको एकत्र चूर्ण करके १ मासेके अनुमान इस चूर्णको सहतसे रात्रिके समय सेवन करे तो धातुका स्तम्भन होकर पुरुषको आनन्द होय तथा स्त्रियोंमें प्रीति उत्पन्न होय ॥ १६८-१७० ॥

मञ्जन ।

बकुलत्वग्भवं चूर्णं घर्षयेद्दंतपङ्क्तिषु ।
वज्रादपि दृढीभूता दन्ताः स्युश्चपला ध्रुवम् ॥ १७१ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने चूर्णकल्पनाऽध्यायः षष्ठः ॥ ६ ॥

अर्थ-मोलसिरीकी छालके चूर्णको दांतोंमे घिसा करे तो हिलते हुए दांत भी वज्रके समान दृढ होवें इसमें सन्देह नही ॥ १७१ ॥

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृत-शार्ङ्गधरसंहिताया-भावप्रकाशिका-भाषाटीकायां द्वितीयखण्डे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

## अथ सप्तमोऽध्यायः ७.

वटिकाश्चाथ कथ्यन्ते तन्नाम गुटिका वटी । मोदको वटिका-पिण्डी गुडोवर्तिस्तथोच्यते ॥१॥ लेहवत् साध्यते वह्नौ गुडो वा शर्कराऽथवा । गुग्गुलं वा क्षिपेत्तत्र चूर्णं तन्निर्मिता वटी ॥२॥ प्रकुर्याद्वह्निसिद्धेन क्वचिद्गुग्गुलुना वटी । द्रवेण मधुना वाऽपि गुटिकां कारयेद् बुधः ॥३॥ सिता चतुर्गुणा देया

वटीषु द्विगुणो गुडः। चूर्णाच्चूर्णसमः कार्यो गुग्गुलुर्मधु तत्समम् ॥४॥ द्रवं च द्विगुणं देयं मोदकेषु भिषग्वरैः। कर्षप्रमाणा तन्मात्रा बलं दृष्ट्वा प्रयुज्यताम् ॥ ५ ॥

अर्थ १–गुटिका, २ वटी, ३ मोदक, ४ वटिका, ५ पिंडी, ६ गुड और ७ वर्त्ती ये सात वटिका अर्थात् गोलीके पर्याय शब्द हैं। इनका बनाना इस प्रकार है कि गुड, खांड अथवा गूगलका पाक करके उसमें चूर्ण मिलाकर गोली बनानी चाहिये। पाक करे विना गोली बनानी होवे तो गूगलको शोध पीस उसमें चूर्ण मिलाकर घीसे गोली बनाय लेवे। अथवा जल दूध सहत आदि पतली वस्तुओंमें चूर्ण डालके खरल कर गोली बनाय लेवे। यदि खांड मिश्री आदि डालके गोली बनानी होवे तो चूर्णसे चौगुनी मिश्री मिलायके गोली बनावे। यदि गुड मिलायके गोली करनी होवे तो चूर्णसे दूना गूड मिलायके गोली बनावे, कभी गूगल और सहत दोनो डालके बनानी हो तो, गूगल और सहत ये दोनो चूर्णके समान भाग लेकर गोली बनावे। और पानी दूध इत्यादि द्रव पदार्थसे गोली बनानी होवे तो चूर्णसे दूना डालके गोली बनानी चाहिये। चूर्णके सेवनकी मात्राका प्रमाण १ तोला है अथवा रोगीकी प्रकृतिके अनुसार वैद्यको मात्रा देनी चाहिये ॥ १–५ ॥

बाहुशालगुड बवासीरपर।

इन्द्रवारुणिकामुस्ते शुण्ठी दन्ती हरीतकी। त्रिवृच्छठी-विडङ्गानि गोक्षुरश्चित्रकस्तथा ॥ ६ ॥ तेजोह्वा च द्विक-र्षाणि पृथग्द्रव्याणि कारयेत्। सूरणस्य पलान्यष्टौ वृद्ध-दारु चतुष्पलम् ॥ ७ ॥ चतुःपलं स्याद् भल्लातः क्वाथ-येत् सर्वमेकतः। जलद्रोणे चतुर्थांशं गृह्णीयात् क्वाथ-मुत्तमम् ॥ ८ ॥ क्वाथ्यद्रव्यात्त्रिगुणितं गुडं क्षिप्त्वा पुनः पचेत्। सम्यक् पक्वं च विज्ञाय चूर्णमेतत् प्रदाप-येत् ॥ ९ ॥ चित्रकस्त्रिवृता दन्ती तेजोह्वा पलिकाः पृथक्। पृथक् त्रिपलिकाः कार्या व्योषैलामरिचत्वचः ॥ १० ॥ निक्षिपेन्मधु शीते च तस्मिन्प्रस्थप्रमाणतः। एवं सिद्धो भवेच्छ्रीमान् बाहुशालगुडः शुभः॥ ११ ॥ जयेदर्शांसि सर्वाणि गुल्मं वातोदरं तथा। आमवातं प्रतिश्यायं ग्रहणीक्षयपी-नसान् ॥ १२ ॥ हलीमकं पाण्डुरोगं प्रमेहं च रसायनम्।

अर्थ-१इंद्रायनकी जड, २ नागरमोथा, ३ सोंठ, ४ दंती,५ जंगी हरडे,६निसोथ, ७ कचूर, ८ वायविडंग, ९ गोखरू,१०चीतेकी छाल, ११ तेजबल, ये ग्यारह औषधि प्रत्येक दो २ तोले लेवे, जमीकन्द (सूरन) आठ पल, विधायरा १६ तोले, भिलावा४ पल ले । इन सब ओषधियोंको एकत्र कूट पीस उसमें दो द्रोण जल डालके अग्नि-पर चढाकर मन्दी २ आंचसे चतुर्थांश जल शेष रहे तत्पर्यन्त गाढा करे, और सब ओषधियोंसे तिगुना गुड डाले । फिर औटायकर पाक करे । फिर इस पाकमें आगे कहा हुआ ओषधियोंका चूर्ण डाले । जैसे-चीतेकी छाल, निशोथ, दन्ती, तेजबल ये चार ओषधियां एक २ पल ले, सोंठ,मिरच, पीपल, आंवले, दालचीनी ये पांच ओषधियां तीन२पल ले । सबका चूर्ण कर उस पाकमें मिलावे । इसको बाहुशाल-गुड कहते हैं । इस गुडके खानेसे सम्पूर्ण बवासीर, गुल्म, वातोदर, बादीसे अंगोंका जकडना, आमवात, जुखाम, संग्रहणी, क्षय, पीनस, हलीमक, पांडुरोग और प्रमेह दूर होवे । यह बाहुशालगुड रसायन है ॥ ६-१२ ॥

मरीचादिगुटिका खांसीपर ।

**मरिचं कर्षमात्रं स्यात् पिप्पली कर्षसंमिता ॥ १३ ॥ अर्ध-कर्षो यवक्षारः कर्षयुग्मं च दाडिमम् । एतच्चूर्णीकृतं युंज्या-दष्टकर्षगुडेन हि ॥ १४ ॥ शाणप्रमाणां गुटिकां कृत्वा वक्त्रे विधारयेत् । अस्याः प्रभावात्सर्वेऽपि कासा यान्त्येव संक्षयम्१५**

अर्थ-कालीमिरच और पीपल२तोले,जवाखार आधा तोला,अनारकी छाल२ तोले इनका चूर्ण कर ८ तोले गुड मिलायके४मासेकी गोली बनावे, फिर इस गोलीको मुखमें रक्खे तो संपूर्ण जातिकी खांसी दूर होवे, इसमें संशय नही ॥१३-१५॥

व्याघ्र्यादिगुटिका ऊर्ध्ववातपर ।

**व्याघ्रीजीरकधात्रीणां चूर्णं मधुयुतं लिहेत् ।**
**ऊर्ध्ववातमहाश्वासतमकैर्मुच्यते क्षणात् ॥ १६ ॥**

अर्थ-१ कटेरी, २ जीरा और ३ आंवला इनका चूर्ण कर सहत मिलाकर चाटे तो ऊर्ध्ववायु, महाश्वास और तनकश्वास ये सब रोग तत्काल दूर हों ॥ १६ ॥

गुडादिगुटिका श्वासखांसीपर ।

**गुडशुण्ठीशिवामुस्तैर्गुटिकां धारयेन्मुखे ।**
**श्वासकासेषु सर्वेषु केवलं वा बिभीतकम् ॥ १७ ॥**

अर्थ-१ सोंठ, २ जंगी हरडे और ३ नागरमोथा इनको कूट पीसकर इसमें दूना गुड मिलायके गोली बनावे । फिर एक गोलीको मुखमें रक्खे तो संपूर्ण खांसी और श्वास ये दूर हो। अथवा साबत बहेडेकी छालको मुखमें रखनेसे श्वास और खांसी दूर होवे ॥ १७ ॥

आमलक्यादिगुटिका मुखशोषादिपर ।

**आमलं कमलं कुष्ठं लाजाश्च वटरोहकम् । एतच्चूर्णस्य मधुना गुटिकां धारयेन्मुखे ॥ १८ ॥ तृष्णां प्रवृद्धां हन्त्येषा मुखशोषं च दारुणम् ।**

अर्थ १–आमला, २ कमल, ३ कूट, ४ खील और ५ बडकी कोंपल इन पांच ओषधियोंको सहतमें मिलायके गोली बनावे । इसको मुखमें रक्खे तो अत्यंत प्यासका लगना और मुखके घोर शोषको यह दूर करे ॥ १८ ॥

सञ्जीवनीगुटिका सन्निपातादिकोपर ।

**विडङ्गं नागरं कृष्णा पथ्यामलबिभीतकौ ॥ १९ ॥ वचा गुडूची भल्लातं सविषं चात्र योजयेत् । एतानि समभागानि गोमूत्रेणैव पेषयेत् ॥२०॥ गुञ्जाभा गुटिका कार्या दद्या-दार्द्रकजै रसैः । एकामजीर्णगुल्मेषु द्वे विषूच्यां च दापयेत् ॥ २१ ॥ तिस्रश्च सर्पदष्टे तु चतस्रः सन्निपातके । वटी सञ्जीवनी नाम्ना सञ्जीवयति मानवम् ॥ २२ ॥**

अर्थ–१ वायविडंग, २ सोंठ, ३ पीपल, ४ जंगीहरड,५आंवला, ६ बहेडा,७वच, ८गिलोय,९भिलावा,१०बच्छनाग( शुद्ध किया हुआ ) इन दश ओषधियोंको समान भाग लेकर गौके मूत्रमें पीसके एक२रत्तीकी गोली बनावे । फिर इसको अदरखके रसके साथ अजीर्ण रोगमें तथा गोलाके रोगमें १गोली सेवन करे,विषूचिका (हैजा)में दो गोली, सर्पके विषपर तीन गोली, सन्निपातमें चार गोली सेवन करे । यह गोली मनुष्योंको संजीवन करनेवाली है इसीसे इसको संजीवनी गुटिका कहते हैं १९–२२

व्योषादिगुटिका पीनसपर ।

**व्योषाम्लवेतसं चव्यं तालीसं चित्रकस्तथा । जीरकं तिन्ति-डीकं च प्रत्येकं कर्षभागिकम् ॥ २३ ॥ त्रिसुगन्धं त्रिशाणं स्याद्गुडः स्यात कर्षविंशतिः । व्योषादिगुटिका सामपीनस-श्वासकासजित् ॥ २४ ॥ रुचिस्वरकरा ख्याता प्रतिश्याय-प्रणाशिनी ।**

अर्थ–१ सोंठ,२कालीमिरच,३पीपल,४अमलवेत,५चव्य, ६तालीसपत्र, ७ चित्रक ८जीरा और९इमलीकी छाल इन नौ ओषधियोंको एक२तोला लेवे । तथा १दालचीनी २इलायचीके दाने तथा३पत्रज ये तीन ओषधियोंको तीन२शाण लेवे, फिर सब ओष-

अर्थ—१इंद्रायनकी जड, २ नागरमोथा, ३ सोंठ, ४ दंती,५ जंगी हरडे,६निसोथ, ७ कचूर, ८ वायविडंग, ९ गोखरू,१०चीतेकी छाल, ११ तेजबल, ये ग्यारह औषधि प्रत्येक दो २ तोले लेवे, जमीकन्द (सूरन) आठ पल, विधायरा १६ तोले, भिलावा४ पल ले । इन सब ओषधियोंको एकत्र कूट पीस उसमें दो द्रोण जल डालके अग्निपर चढाकर मन्दी २ आंचसे चतुर्थांश जल शेष रहे तत्पर्यन्त गाढा करे, और सब ओषधियोंसे तिगुना गुड डाले । फिर औटायकर पाक करे । फिर इस पाकमें आगे कहा हुआ ओषधियोंका चूर्ण डाले । जैसे—चीतेकी छाल, निशोथ, दन्ती, तेजबल ये चार ओषधियां एक २ पल ले, सोंठ,मिरच, पीपल, आंवले, दालचीनी ये पांच ओषधियां तीन२पल ले । सबका चूर्ण कर उस पाकमें मिलावे । इसको बाहुशालगुड कहते हैं । इस गुडके खानेसे सम्पूर्ण बवासीर, गुल्म, वातोदर, बादीसे अंगोंका जकडना, आमवात, जुखाम, संग्रहणी, क्षय, पीनस, हलीमक, पांडुरोग और प्रमेह दूर होवे । यह बाहुशालगुड रसायन है ॥ ६-१२ ॥

मरीचादिगुटिका खांसीपर ।

**मरिचं कर्षमात्रं स्यात् पिप्पली कर्षसंमिता ॥ १३ ॥ अर्धकर्षो यवक्षारः कर्षयुग्मं च दाडिमम् । एतच्चूर्णीकृतं युंज्यादष्टकर्षगुडेन हि ॥ १४ ॥ शाणप्रमाणां गुटिकां कृत्वा वक्त्रे विधारयेत् । अस्याः प्रभावात्सर्वेऽपि कासायान्त्येव संक्षयम् १५**

अर्थ—कालीमिरच और पीपल२तोले,जवाखार आधा तोला,अनारकी छाल२ तोले इनका चूर्ण कर ८ तोले गुड मिलायके४मासेकी गोली बनावे, फिर इस गोलीको मुखमें रक्खे तो संपूर्ण जातिकी खांसी दूर होवे, इसमें संशय नहीं ॥१३-१५॥

व्याघ्र्यादिगुटिका ऊर्ध्ववातपर ।

**व्याघ्रीजीरकधात्रीणां चूर्णं मधुयुतं लिहेत् ।**
**ऊर्ध्ववातमहाश्वासतमकैर्मुच्यते क्षणात् ॥ १६ ॥**

अर्थ—१ कटेरी, २ जीरा और ३ आंवला इनका चूर्ण कर सहत मिलाकर चाटे तो ऊर्ध्ववायु, महाश्वास और तनकश्वास ये सब रोग तत्काल दूर हों ॥ १६ ॥

गुडादिगुटिका श्वासखांसीपर ।

**गुडशुण्ठीशिवामुस्तैर्गुटिकां धारयेन्मुखे ।**
**श्वासकासेषु सर्वेषु केवलं वा बिभीतकम् ॥ १७ ॥**

अर्थ—१ सोंठ, २ जंगी हरडे और ३ नागरमोथा इनको कूट पीसकर इसमें दूना गुड मिलायके गोली बनावे । फिर एक गोलीको मुखमें रक्खे तो संपूर्ण खांसी और श्वास ये दूर हो। अथवा साबत बहेडेकी छालको मुखमें रखनेसे श्वास और खांसी दूर होवे ॥ १७ ॥

आमलक्यादिगुटिका मुखशोषादिपर ।

**आमलं कमलं कुष्ठं लाजाश्च वटरोहकम् । एतच्चूर्णस्य मधुना गुटिकां धारयेन्मुखे ॥ १८ ॥ तृष्णां प्रवृद्धां हन्त्येषा मुखशोषं च दारुणम् ।**

अर्थ १–आमला, २ कमल, ३ कूट, ४ खील और ५ वडकी कोंपल इन पांच ओषधियोंको सहतमे मिलायके गोली बनावे । इसको मुखमें रक्खे तो अत्यंत प्यासका लगना और मुखके घोर शोषको यह दूर करे ॥ १८ ॥

सञ्जीवनीगुटिका सन्निपातादिकोंपर ।

**विडङ्गं नागरं कृष्णा पथ्यामलबिभीतकौ ॥ १९ ॥ वचा गुडूची भल्लातं सविषं चात्र योजयेत् । एतानि समभागानि गोमूत्रेणैव पेषयेत् ॥२०॥ गुञ्जाभा गुटिका कार्या दद्या-दार्द्रकजै रसैः । एकामजीर्णगुल्मेषु द्वे विषूच्यां च दापयेत् ॥ २१ ॥ तिस्रश्च सर्पदष्टे तु चतस्रः सन्निपातके । वटी सञ्जीवनी नाम्ना सञ्जीवयति मानवम् ॥ २२ ॥**

अर्थ–१ वायविंडग, २ सोठ, ३ पीपल, ४ जंगीहरड,५आंवला, ६ बहेडा,७वच, ८गिलोय,९भिलावा,१०बच्छनाग( शुद्ध किया हुआ ) इन दश ओषधियोंको समान भाग लेकर गौके मूत्रमें पीसके एक२रत्तीकी गोली बनावे । फिर इसको अदरखके रसके साथ अजीर्ण रोगमें तथा गोलाके रोगमें १गोली सेवन करे,विषूचिका (हैजा)में दो गोली, सर्पके विषपर तीन गोली, सन्निपातमें चार गोली सेवन करे । यह गोली मनुष्योको संजीवन करनेवाली है इसीसे इसको संजीवनी गुटिका कहते हैं १९–२२

व्योषादिगुटिका पीनसपर ।

**व्योषाम्लवेतसं चव्यं तालीसं चित्रकस्तथा । जीरकं तिन्तिडीकं च प्रत्येकं कर्षभागिकम् ॥ २३ ॥ त्रिसुगन्धं त्रिशाणं स्याद्गुडः स्यात कर्षविंशतिः । व्योषादिगुटिका सामपीनस-श्वासकासजित् ॥ २४ ॥ रुचिस्वरकरा ख्याता प्रतिश्याय-प्रणाशिनी ।**

अर्थ–१ सोठ,२कालीमिरच,३पीपल,४अमलवेत,५चव्य, ६तालीसपत्र, ७ चित्रक ८जीरा और९इमलीकी छाल इन नौ ओषधियोको एक२तोला लेवे । तथा १दालचीनी २इलायचीके दाने तथा३पत्रज ये तीन ओषधियोंको तीन२शाण लेवे, फिर सब ओष-

धियोंको कूट पीस चूर्ण कर इसमें २० तोले गुड मिलायके गोली बना लेवे। यह व्योषादि गुटिका आम, पीनसका रोग, श्वास, खांसी, इन सब रोगोंको दूर करै तथा मुखमें रुचि प्रगट करे, इससे स्वर (अवाज) शुद्ध हो तथा सरेमका जुखाम दूर होय ॥ २३ ॥ २४ ॥

गुडवटिकाचतुष्टय आमादिकोंपर।

आमेषु सगुडां शुण्ठीमजीर्णे गुडपिप्पलीम् ॥ २५ ॥
कृच्छ्रे जीरगुडं दद्यादर्शःसु च गुडाभयाम्।

अर्थ-सोंठके चूर्णमें गुड मिलायके गोली बनाकर भक्षण करे तो आंव दूर होवे। गुड और पीपल एकत्र करके गोली बनावे, इसके सेवनसे अजीर्ण दूर हो। गुड और जीरेको एकत्र कूट पीस गोली बनावे, इसके सेवनसे मूत्रकृच्छ्र दूर हो। एवं छोटी हरडेके चूर्णमें गुड मिलायके गोली बनावे। इसका सेवन करै तो बवासीरका रोग दूर होवे ॥ २५ ॥

वृद्धदारुकमोदक बवासीरपर।

वृद्धदारुकभल्लातशुंठीचूर्णेन योजितः ॥ २६ ॥
मोदकः सगुडो हन्यात् षड्विधार्शःकृतां रुजम्।

अर्थ-१ विधायरा, २ भिलावा और ३ सोंठ इनको समान भाग लेकर चूर्ण करे, चूर्णसे दूना गुड मिलायके गोली बनावे। इसके खानेसे छःप्रकारका बवासीररोग नष्ट होताहै २६

सूरणवटक बवासीरपर।

शुष्कसूरणचूर्णस्य भागान् द्वात्रिंशदाहरेत् ॥ २७ ॥
भागान्षोडश चित्रस्य शुण्ठ्या भागचतुष्टयम्।
द्वौ भागौ मरिचस्यापि सर्वाण्येकत्र कारयेत् ॥ २८ ॥
गुडेन पिण्डिकां कुर्यादर्शसां नाशिनीं पराम्।

अर्थ-१ जमीकंदको सुखाकर ३२ तोले ले। चीतेकी छाल १६ तोले, सोंठ ४ तोले और काली मिरच २ तोले ले। सबको कूट पीस चूर्ण करे। चूर्णके समान गुड मिलायके गोली बनावे, इस गोलीको नित्य खानेसे छःप्रकारकी बवासीर नष्ट होवे। यह सूरणवटक कहाता है ॥ २७ ॥ २८ ॥

बृहत्सूरणवटक बवासीरपर।

सूरणो वृद्धदारुश्च भागैः षोडशभिः पृथक् ॥ २९ ॥ मुसलीचित्रकौ ज्ञेयावष्टभागमितौ पृथक्। शिवा बिभीतकी धात्री विडङ्गं नागरं कणा ॥ ३० ॥ भल्लातः पिप्पलीमूलं तालीसं च पृथक्पृथक्। चतुर्भागप्रमाणानि त्वगेला मरिचं तथा ॥ ३१ ॥ द्विभागमात्राणि पृथक् ततस्त्वेकत्र चूर्णयेत्।

द्विगुणेन गुडेनाथ वटकान् धारयेद् बुधः ॥ ३२ ॥ प्रबलाग्निकरा ह्येतास्तथार्शोऽनाशनाः परम्। ग्रहणीं वातकफजां श्वासं कासं क्षयामयम् ॥ ३३ ॥ प्लीहानं श्लीपदं शोफं हिक्कां मेहं भगन्दरम्। निहन्युः पलितं वृष्यास्तथा मेध्या रसायनाः॥३४॥

अर्थ—जमीकन्द १६ तोले, विधायरा १६ तोले, मसूरी ८ तोले, चीतेकी छाल ८ तोले लेवे। तथा १ हरड, २ बहेडा, ३ आमला, ४वायविडंग, ५ सोंठ, ६पीपल, ७ भिलावा, ८ पीपरामूल और ९ तालीसपत्र ये नौ औषधि चार २ तोले ले। एवं १ दालचीनी, २ इलायची और ३ कालीमिरच ये तीन औषधि दो दो तोले ले। इन सब औषधियोंको कूट पीस चूर्ण करे, इसमें सब चूर्णसे दूना गुड मिलायके गोली बनावे। इसका सेवन करे तो अग्नि प्रदीप्त होय, बवासीरका रोग, वात कफसे उत्पन्न हुआ संग्रहणी, श्वास, खाँसी, क्षय, पेटमें होनेवाला प्लीहाका रोग, श्लीपद-रोग, सूजन, हिचकी, प्रमेह, भगन्दर और जिससे सफेद बाल होवें ऐसा पलित रोग ये सब दूर होवें। ये गोलियां स्त्रीगमनकी इच्छा कराती हैं तथा बुद्धि देती हैं, एवं शरीरकी वृद्धावस्थाको दूर करती हैं ॥ २९–३४ ॥

मण्डूरवटक कामलादिकोंपर।

त्रिफला त्र्यूषणं चव्यं पिप्पली मूलचित्रकौ। दारु माक्षिकधातुश्च दार्वी मुस्तं विडङ्गकम् ॥ ३५ ॥ प्रत्येकं कर्षमात्राणि सर्वा द्विगुणितं तथा। मण्डूरं चूर्णयेत् सर्वं गोमूत्रेऽष्टगुणे क्षिपेत् ॥ ३६ ॥ पक्त्वा च वटकान् कृत्वा दद्यात् तक्रानुपानतः। कामलापाण्डुमेहार्शःशोथकुष्ठकफामयान् ॥ ३७ ॥ ऊरुस्तंभमजीर्णं च प्लीहानं नाशयेदपि।

अर्थ—१ हरड, २बहेडा, ३ आमला, ४ सोंठ, ५ मिरच, ६ पीपली, ७ चव्य, ८ पीपरामूल, ९ चीतेकी छाल, १० देवदारु, ११ सुवर्णमाक्षिककी भस्म, १२ दाल-चीनी, १३ दारुहल्दी, १४ नागरमोथा और १५ वायविडंग इन पंद्रह औषधियोंको तोले तोलेभर लेकर चूर्ण करे और मण्डूरको डालके औटाकर गाढा करे, जब गोली बन्धने योग्य होय तब गोली बनाय लेवे। इस गोलीको छाछके साथ सेवन करे तो नेत्रोंमे जो कमलवायुरोग ( पीलीयाका भेद ) होता है सो दूर होवे। पांडु-रोग, प्रमेह, बवासीर, सूजन, कोढ, कफके विकार जिस करके जांघोंका स्तम्भन होय वह वायु, अजीर्ण और प्लीहा इन सबको दूर करे ॥ ३५–३७ ॥

पिप्पलीमोदक धातुज्वरादिकोंपर।

क्षौद्राद्द्विगुणितं सर्पिर्घृताद्द्विगुणपिप्पली ॥३८॥ सिता द्विगुणिता तस्याः क्षीरं देयं चतुर्गुणम्। चातुर्जातं क्षौद्रतुल्यं

पक्त्वा कुर्याच्च मोदकान् ॥ ३९ ॥ धातुस्थांश्च ज्वरान् सर्वान् श्वासं कासं च पाण्डुताम् । धातुक्षयं वह्निमान्द्यं पिप्पलीमोदको जयेत् ॥ ४० ॥

अर्थ-सहतसे दूना घी और घीसे दूनी पीपल, पीपलसे दूनी मिश्री, मिश्रीसे चौगुना दूध ले तथा १ दालचीनी, २तेजपात, ३ इलायचीके बीज और ४ नागकेशर इन चारोंका चूर्ण सहतके बराबर लेना चाहिये । फिर सबका पाक करके लड्डू बनावे । एक २ लड्डू नित्य सेवन करे तो धातुगतज्वर, श्वास, खांसी, पांडुरोग, धातुक्षय और मन्दाग्नि इन सब विकारोंको नष्ट करता है ॥ ३८-४० ॥

चन्द्रप्रभा गुटिका प्रमेहादिकोंपर।

चन्द्रप्रभा वचा मुस्तं भूनिम्बामृतदारुकम् । हरिद्राऽतिविषा दार्वी पिप्पलीमूलचित्रकौ ॥ ४१ ॥ धान्यकं त्रिफलं चव्यं विडङ्गं गजपिप्पली । व्योषं माक्षिकधातुश्च द्वौ क्षारौ लवणत्रयम् ॥ ४२ ॥ एतानि शाणमात्राणि प्रत्येकं कारयेद् बुधः । त्रिवृद्दन्तीपत्रकं च त्वगेला वंशरोचना ॥ ४३ ॥ प्रत्येकं कर्षमात्रं च कुर्यादेतानि बुद्धिमान् । द्विकर्षं हतलोहं स्याच्चतुःकर्षा सिता भवेत् ॥ ४४ ॥ शिलाजत्वष्टकर्षं स्यादष्टौ कर्षाश्च गुग्गुलोः । एभिरेकत्र संक्षुण्णैः कर्तव्या गुटिका शुभा ॥ ४५ ॥ चन्द्रप्रभेति विख्याता सर्वरोगप्रणाशिनी । प्रमेहान् विंशतिं कृच्छ्रं मूत्राघातं तथाऽश्मरीम् ॥ ४६ ॥ विबन्धानाहशूलानि मेहनं ग्रंथिमर्बुदम् । अण्डवृद्धिं तथा पाण्डुं कामलां च हलीमकम् ॥ ४७ ॥ अन्त्रवृद्धिं कटीशूलं कासं श्वासं विचर्च्चिकाम् । कुष्ठान्यर्शांसि कंडूं च प्लीहोदरभगन्दरे ॥ ४८ ॥ दन्तरोगं नेत्ररोगं स्त्रीणामार्तवजां रुजम् । पुंसां शुक्रगतान् दोषान् मंदाग्निमरुचिं तथा ॥ ४९ ॥ वायुं पित्तं कफं हन्याद्बल्या वृष्या रसायनी । चंद्रप्रभायां कर्षस्तु चतुःशाणो विधीयते ॥ ५० ॥

अर्थ-१कचर, २वच, ३ नागरमोथा, ४ चिरायता, ५गिलोय, ६देवदारु, ७ हल्दी, ८अतीस, ९दारुहल्दी, १० पीपरामूल, ११चीतेकी छाल, १२धनियां, १३हरड, १४बहेडा,

१५ आमला, १६ चव्य, १७ वायविडंग, १८ गजपीपल, १९सोंठ, २०कालीमिरच, २१ पीपल, २२सुवर्णमाक्षिककी भस्म, २३सज्जीखार, २४ जवाखार, २५सेंधानमक, २६संचरनमक और २७ विडनमक ये सत्ताईस ओषधि एक एक शाण प्रमाण लेवे। तथा १ निसोथ, २ दंती, ३ तेजपात, ४ दालचीनी, ५ इलायचीके दाने और ६ वंशलोचन ये छः ओषधि सोलह २ मासे लेकर इन सबका चूर्ण करे। फिर लोहभस्म दो तोले, मिश्री चार तोले, शिलाजीत ८ तोले लेवे, इन सब ओषधियोंको एक जगह कूट पीस एकजीव करके एक कर्ष अर्थात् चार शाणकी गोली बनावे। इस रसायनके विषयमें कर्ष शब्द चार शाणका बोधक है। इस योगको 'चन्द्रप्रभा' कहते हैं। यह संपूर्ण रोगोंको दूर करनेमें विख्यात है, २० प्रकारके प्रमेहके रोग, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, पथरी, मलबद्धता, पेटका फूलना, शूल, प्रमेहापिडिका, जिस करके अण्डकोश बढ जावे वह रोग, पांडुरोग, कामला, हलीमक, अन्त्रवृद्धि, कमरकी पीडा, श्वास, खांसी, विचर्चिका, कोढ, बवासीर, खुजली, प्लीहोदर, भगंदर, दांतके रोग, नेत्रके रोग, स्त्रियोंके रजोधर्मसंबन्धी रोग, पुरुषोंके वीर्यका विकार, मन्दाग्नि, अरुचि, वात, पित्त और कफ इनका प्रकोप ये संपूर्ण रोग दूर होवे। तथा यह चन्द्रप्रभावटी बल देनेवाली, स्त्रीगमनकी इच्छा करानेवाली रसायन है ॥ ४१–५० ॥

काङ्कायनगुटिका गुल्मादिरोगोंपर।

यवानी जीरकं धान्यं मरीचं गिरिकर्णिका। अजमोदोपकुञ्ची च चतुःशाणा पृथक्पृथक् ॥ ५१ ॥ हिंगु षट्शाणिकं कार्यं क्षारौ लवणपञ्चकम्। त्रिवृच्चाष्टमितैः शाणैः प्रत्येकं कल्पयेत् सुधीः ॥ ५२ ॥ दन्ती शठी पौष्करं च विडङ्गं दाडिमं शिवा। चित्रोऽम्लवेतसः शुण्ठी शाणैः षोडशभिः पृथक् ॥ ५३ ॥ बीजपूररसेनैषां गुटिकाः कारयेद्बुधः। घृतेन पयसा मद्यैरम्लैरुष्णोदकेन वा ॥ ५४ ॥ पिबेत् काङ्कायनप्रोक्तां गुटिकां गुल्मनाशिनीम्। मद्येन वातिकं गुल्मं गोक्षीरेण च पैत्तिकम् ॥ ५५ ॥ मूत्रेण कफगुल्मं च दशमूलैस्त्रिदोषजम्। उष्ट्रीदुग्धेन नारीणां रक्तगुल्मं निवारयेत् ॥ ५६ ॥ हृद्रोगं ग्रहणीं शूलं कृमीनर्शांसि नाशयेत्।

अर्थ–१ अजवायन, २ जीरा, ३ धनियां, ४कालीमिरच, ५गणियारी (इस्फन्द), ६ अजमोद और ७ कलौंजी ये सात औषध चार २ शाण लेवे। भुनी हींग छःशाण लेवे। तथा १जवाखार, २सज्जीखार, ३सैंधानमक, ४संचरनमक, ५बिडनोन, ६ समुद्रका नमक, ७ वांगडता नमक और ८ निसोथ ये आठ औषध आठ २ शाण लेवे। एवं १ दंती, कचूर, ३ पुहकरमूल, ४ वायविडंग, ५ अनारकी छाल, ६ जंगीहरड, ७ चीतेकी छाल, ८अमलवेत और ९सोंठ ये नौ औषधि कुटी हुई सोलह२शाण लेवे।

फिर सबका चूर्ण करे,इस चूर्णको बिजोरके रसमें खरल कर गोली बना लेवे, इसको (कांकायनगुटिका) कहते हैं। यह गुटिका घी, गौका दूध, खट्टा मद्य, अथवा गरम पानी, इनमेंसे किसी एकके साथ अनुपान माफिक गोला दूर होनेके वास्ते देवे । यह गोली मद्यके साथ लेनेसे वायुगोला दूर होय । गौके दूधसे सेवन करे तो पित्तका गोला नष्ट होवे । गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे कफगुल्म दूर होवे । दशमूलके काढेके साथ सेवन करे तो त्रिदोष अर्थात् सन्निपातका गोला दूर होवे । ऊँटनीके दूधके साथ खानेसे स्त्रियोंका रक्तगुल्म दूर होवे । तथा यथायोग्य अनुपानके साथ सेवन करनेसे यह हृदयरोग, संग्रहणी, शूल, कृमिरोग और बवासीर इन सब रोगोंको नष्ट करे ॥ ५१-५६ ॥

योगराजगुग्गुलु वातादिरोगोंपर ।

नागरं पिप्पली चव्यं पिप्पलीमूलचित्रकौ ॥ ५७ ॥ भृष्टं हिंग्वजमोदं च सर्षपो जीरकद्वयम् । रेणुकेन्द्रयवा पाठा विडङ्गं गजपिप्पली॥५८॥कटुकातिविषा भार्ङ्गी वचा मूर्वा त्रिभागतः॥प्रत्येकं शाणिकानि स्युर्द्रव्याणीमानि विंशतिः ॥ ५९ ॥ द्रव्येभ्यः सकलेभ्यश्च त्रिफला द्विगुणा भवेत् । एभिश्चूर्णीकृतैः सर्वैः समो देयस्तु गुग्गुलुः ॥ ६० ॥ वङ्गं रौप्यं च नागं च लोहसारं तथाऽभ्रकम् । मण्डूरं रसिन्दूरं प्रत्येकं पलसंमितम् ॥६१॥ गुडपाकसमं कृत्वा इमं दद्या-द्यथोचितम् । एकपिण्डं ततः कृत्वा धारयेद् घृतभाजने । ॥६२॥ गुटिकाः शाणमात्रास्तु कृत्वा ग्राह्या यथोचिताः । गुग्गुलुर्योगराजोऽयं त्रिदोषघ्नो रसायनः॥६३॥ मैथुनाहार-पानानां त्यागो नैवात्र विद्यते । सर्वान् वातामयान् कुष्ठा-नर्शांसि ग्रहणीगदम् ॥ ६४ ॥ प्रमेहं वातरक्तं च नाभिशूलं भगन्दरम्। उदावर्तं क्षयं गुल्ममपस्मारमुरोग्रहम् ॥ ६५ ॥ मन्दाग्निं श्वासकासञ्च नाशयेदरुचिं तथा । रेतोदोषहरः पुंसां रजोदोषहरः स्त्रियाम् ॥६६॥ पुंसामपत्यजनको वन्ध्यानां गर्भदस्तथा । रास्नादिक्वाथसंयुक्तो विविधं हन्ति मारुतम् । ॥ ६७ ॥ काकोल्यादिशृतात् पित्तं कफमारग्वधादिना ।

दार्वीशृतेन मेहांश्च गोमूत्रेणैव पाण्डुताम् ॥ ६८ ॥ मेदोवृद्धिं च मधुना कुष्ठं निम्बशृतेन वा । छिन्नाक्वाथेन वातास्रं शोथं शूलं कणाशृतात् ॥ ६९ ॥ पाटलाक्वाथसहितो विषं मूषकजं जयेत् । त्रिफलाक्वाथसहितो नेत्रार्तिं हन्ति दारुणाम् ॥ ७० ॥ पुनर्नवादेः क्वाथेन हन्यात् सर्वोदराण्यपि ।

अर्थ–१ सोंठ, २ पीपल, ३ चव्य, ४ पीपरामूल, ५ चीतेकी छाल, ६ भुनी हुई हींग, ७ अजमोद, ८ सरसों, ९ जीरा, १० काला जीरा, ११ रेणुका, १२ इंद्रजौ, १३ पाढ, १४ वायविडंग, १५ गजपीपल, १६ कुटकी, १७ अतीस, १८ भारंगी १९, वच और २० मूर्वा ये बीस औषधि एक एक शाण लेवे । इन ओषधियोंसे दुगुना त्रिफला लेवे, फिर इन सब औषधियोंको कूटकर चूर्ण करके इस चूर्णके समान भाग शुद्ध गूगल लेकर खरलमें डालके खूब बारीक पीसके गुडके पाकसमान पतला करके उसमें पूर्वोक्त चूर्णको मिला देवे । पश्चात् वंग, रूपरस, नागेश्वर, लोहसार, अभ्रक, मण्डूर और रससिंदूर इन सातोंकी भस्म चार चार तोले लेकर उस गूगलमे मिला देवे । सबका एक गोला बनावे । फिर इनमेंसे चार गोलियां बनावे । इनको घीके चिकने बासनमें भरके धर रक्खे, इसको योगराजगूगल कहते हैं । यह गूगल सेवन करनेसे त्रिदोषको दूर करे, तथा रसायन है । इसके ऊपर मैथुन करना, खाना, पीना, इनका निषेध नहीं है । विना पथ्यके भी गुण करता है, इससे सम्पूर्ण वादीके रोग, कोढ, बवासीर, संग्रहणी, प्रमेह, वातरक्त, नाभिका शूल, भगंदर, उदावर्त्त, क्षयरोग, गोलेका रोग, मृगीरोग, उरोग्रह, मंदाग्नि, खांसी, श्वास और अरुचि, ये सब रोग नष्ट होते हैं । यह योगराजगूगल पुरुषोंके धातुविकारको दूर करता है और स्त्रियोंके रजोदर्शनसम्बन्धी रोगोंको दूर करता है । पुरुषोंके धातुकी वृद्धि करके पुत्र देता है, बांझ स्त्रियोंको गर्भ देता है । रास्नादि काढेके साथ सेवन करनेसे अनेक प्रकारके वायु दूर होयँ । काकोल्यादि काढेसे सेवन करे तो पित्तरोग दूर होवें । और आरग्वधादि काढेके साथ सेवन करे तो कफविकार दूर हो । दारुहल्दीके काढेसे सेवन करे तो प्रमेहको दूर करे । गोमूत्रसे सेवन करे तो पांडुरोगको नष्ट करे । जो प्राणी मेदके बढनेसे अधिक मोटा हो गया हो वह सहतके साथ इसे सेवन करे । कुष्ठरोगमें नीमकी छालके काढेसे सेवन करे । वातरक्तरोगमें गिलोयके काढेसे खाय । शूल और सूजन इनमें पीपलके काढेसे सेवन करे । मूसेके विषपर पाडलके काढेसे सेवन करे । नेत्ररोगमें त्रिफलाके काढेसे साधन करे । और पुनर्नवादि काढेके साथ सम्पूर्ण उदरके रोगोंपर सेवन करना चाहिये । ( इस प्रकार योगराजगूगलके अनुपान हैं बाकी अपनी बुद्धिसे वैद्य कल्पना करे ) ॥ ५७–७० ॥

केशोरगुग्गुलु वातरक्तादिकोंपर ।

त्रिफलायास्त्रयः प्रस्थाः प्रस्थैका चामृता भवेत् ॥ ७१ ॥

संकुट्य लोहपात्रेण सार्धद्रोणाम्बुना पचेत् । जलमर्धशृतं ज्ञात्वा गृह्णीयाद् वस्त्रगालितम् ॥७२॥ क्वाथे क्षिपेत्तु शुद्धं च गुग्गुलुं प्रस्थसंमितम् । पुनः पचेदयस्पात्रे दर्व्या संघट्टयेन्मुहुः ॥ ७३ ॥ सान्द्रीभूतं च तं ज्ञात्वा गुडपाकसमाकृतिम् । चूर्णीकृत्य यतस्तत्र द्रव्याणीमानि निक्षिपेत् ॥ ७४ ॥ त्रिफलाऽऽर्द्धपला ज्ञेया गुडूची पलिका मता । षडस्रं त्र्यूषणं प्रोक्तं विडङ्गानां पलार्धकम् ॥७५॥ दन्ती कर्षमिता कार्या त्रिवृत्कर्षमिता स्मृता । ततः पिण्डीकृतं सर्वं घृतपात्रे विनिःक्षिपेत् ॥७६॥ गुटिका शाणिका कार्या युञ्ज्याद् दोषाद्यपेक्षया । अनुपानैर्भिषग्दद्यात् कोष्णं नीरं पयोऽथवा ॥ ॥ ७७ ॥ मञ्जिष्ठादि शृतं वाऽपि युक्तियुक्तमतः परम् । जयेत् सर्वाणि कुष्ठानि वातरक्तं त्रिदोषजम् ॥ ७८ ॥ सर्वव्रणानि गुल्मानि प्रमेहपिडिकास्तथा । प्रमेहोदरमन्दाग्निकासश्वयथुपाण्डुजान् ॥ ७९ ॥ हन्ति सर्वामयान् नित्यमुपयुक्तो रसायनम् । कैशोरकाभिधानोऽयं गुग्गुलुः कान्तिकारकः॥८०॥ वासादिना नेत्रगदान् गुल्मादीन् वरुणादिना । क्वाथेन खदिरस्यापि व्रणकुष्ठानि नाशयेत् ॥ ८१ ॥ अम्लं तीक्ष्णमजीर्णं च व्यवायं श्रममातपम् ॥ मद्यं रोषं त्यजेत् सम्यग्गुणार्थी पुरसेवकः ॥ ८२ ॥

अर्थ-१ हरड, २ बहेडा, ३ आंवला और गिलोय ये चारा ओषधि एक२प्रस्थ लेवे, इनको कुछ कूटकर लोहेकी कढाईमें डेढ द्रोण पानी डालके उसमें इन ओषधियोंको डालके आधा पानी रहने पर्यंत औटावे, फिर इसको दूसरे पात्रमें कपडेमें छानके इसमें शुद्ध किया हुआ गूगल १ प्रस्थ प्रमाण लेकर बारीक कूटके मिलाय देवे, फिर इस गुग्गुलयुक्त काढेको अग्निपर लोहेकी कढाईमें चढायके लोहेकी कलछीसे बारंवार चलाता जावे, इस प्रकार गुडके पाकसमान होने पर्यंत गाढा करे । फिर इसमें आगे लिखी हुई औषधियोंका चूर्ण करके डाले उन ओषधियोंको कहते हैं-१ हरड, २ बहेडा, ३ आमला, ४ गिलोय ये चार ओषधि आधा २ पल ले और १ सोंठ, २ कालीमिरच और ३ पीपल ये तीन ओषधि दो दो अक्ष लेवे वायविडंग आधा पल लेय, दन्ती एक कर्ष, निसोय एक कर्ष इन सबका चूर्ण कर, उस गूगलके पाकमे मिलायके कूट डाले, जब एकजीव

होजावे तब एक एक शाणकी गोली बनाय लेवे। इनको घीके चिकने बासनमें रख देवे। इसको कैशोरगूगल कहते हैं, इस गूगलको गरम जलके साथ अथवा दूधके साथ अथवा मंजिष्ठादि काढेसे सेवन करे। यह गोली रोगीकी शक्तिका तथा रोगका तारतम्य देखके अनुपानके साथ देवे तो सम्पूर्ण कुष्ठ तथा त्रिदोषसे उत्पन्न हुए वातरक्त एवं सम्पूर्ण व्रण, गोला, प्रमेह, उदर, मन्दाग्नि, खांसी, श्वास और पांडुरोग ये दूर होवें। यह कैशोरगूगल कान्तिको देता है, वासकादि काढेके साथ सेवन करनेसे नेत्रके रोग दूर होते हैं। तथा वरुणादि काढेके साथ सेवन करनेसे गुल्मादिक रोग दूर हों। खदिरादि काढेके साथ सेवन करनेसे व्रण और कुष्ठरोग दूर होवें। अब गूगलसेवनकर्ता प्राणीको इसका पथ्य कहते हैं, जैसे-खटाई, तीक्ष्ण, अजीर्ण, स्त्रीसे मैथुन करना, परिश्रम करना, धूपमें रहना, मद्य पीना तथा क्रोध करना ये सब वस्तु गूगलसेवनकर्ता (जिस प्राणीको गुणकी इच्छा हो) उसको त्याज्य हैं।जो अपथ्यको त्याग पथ्यके साथ गूगल सेवन करता है उसको ही गुण होता है अन्यथा गुणके बदले अवगुण होता है। इति कैशोरगुग्गुलुः॥७१-८२॥

त्रिफला गुग्गुलु भगन्दररोगादिकोंपर।

त्रिपलं त्रिफलाचूर्णं कृष्णाचूर्णं पलोन्मितम्। गुग्गुलं पञ्च पलिकं क्षोदयेत् सर्वमेकतः॥ ८३॥ ततस्तु गुटिकां कृत्वा प्रयुञ्ज्याद् वह्न्यपेक्षया। भगन्दरं गुल्मशोथावर्शांसि च विनाशयेत्॥ ८४॥

अर्थ-१हरडे, २ बहेडा, ३ आंवला और ४पीपल ये चार औषधि एक एक पल लेकर चूर्ण करे, फिर शुद्ध किया हुआ गूगल ५ पल ले, इन सबको बारीक कूट पीसके गोली बनावे। रोगीको जठराग्निका बलाबल विचारके इसे देवे तो भगन्दर-रोग, गोलेका रोग, सूजन और बवासीर इन सब रोगोंको नष्ट करे॥८३॥८४॥

गोक्षुरादिगुग्गुलु प्रमेहादिरोगोंपर।

अष्टाविंशतिसंख्यानि पलान्यानीय गोक्षुरात्। विपचेत् षड्गुणे नीरे क्वाथो ग्राह्योऽर्धशेषितः॥ ८५॥ ततः पुनः पचेत्तत्र पुरं सप्तपलं क्षिपेत्। गुडपाकसमाकारं ज्ञात्वा तत्र विनिक्षिपेत्॥ ८६॥ त्रिकटु त्रिफला मुस्तं चूर्णितं पल सप्तकम्। ततः पिण्डीकृतस्यास्य गुटिकामुपयोजयेत्॥८७॥ हन्यात् प्रमेहं कृच्छ्रं च प्रदरं मूत्रघातकम्। वातास्रं वातरोगांश्च शुक्रदोषं तथाऽश्मरीम्॥ ८८॥

अर्थ-अट्ठाईस पल (११२ तोले) गोखरू लेकर जौकुट करके छः गुने पानीमें

चढायके जबतक आधा न जले तबतक औटावे । जब आधा जल रहे तब शुद्ध किया गूगल ७ पल प्रमाण लेकर उत्तम रीतिसे कूट पीसके उस काढेमें मिलाय देवे । फिर उस काढेका गुडके समान पाक करे । जब गाढा होजावे तब आगे लिखी हुई औषधियोंको मिलावे–१ सोंठ, २ काली मिरच, ३ पीपल, ४ हरड, ५ बहेडा, ६ आंवला और ७ नागरमोथा ये सात औषधि एक २ पल लेवे । सबका चूर्ण करके उस पाककी चासनीमें मिलायके एक गोला बनाय ले । फिर इसकी गोली बनाय ले । इसके सेवन करनेसे प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, स्त्रियोंका प्रदररोग, मूत्राघात, वातरक्त, वादीके रोग, धातुके विकार अर्थात् वीर्यसंबंधी रोग और पथरी, इन सब रोगोंको दूर करे ॥ ८५–८८ ॥

चन्द्रकलागुटिका प्रमेहपर ।

एलासकर्पूरसितासधात्रीजातीफलं गोक्षुरशाल्मलीत्वक् ।
सूतेन्द्रवङ्गायसभस्म सर्वमेतत्समानं परिभावयेच्च ॥ ८९ ॥
गुडूचिकाशाल्मलिकाकषायैर्निष्कार्धमात्रा मधुना ततश्च ।
बद्धा गुटी चन्द्रकला तु नाम्ना मेहेषु सर्वेषु च योजनीया॥९०॥

अर्थ–१ इलायचीके दाने, २ कपूर ( शुद्ध ), ३ मिश्री, ४ आंवले, ५ जायफल, ६ गोखरू, ७ कांटेदार सेमरकी छाल, ८ रससिंदूर, ९ वंगभस्म और १० लोहभस्म ये दश औषध समान भाग लेकर इनको गिलोय और सेमरके काढेकी भावना देकर दो दो मासेकी गोली बनावे, इनको सहतमें मिलायके खावे, तो सर्व प्रकारके प्रमेह नष्ट होवें ॥ ८९ ॥ ९० ॥

त्रिफलादिमोदक कुष्ठादिकोंपर ।

त्रिफलाष्टपला कार्या भल्लातानां चतुःपलम् । बाकुचीं पञ्चपलिकां विडङ्गानां चतुःपलम् ॥ ९१ ॥ हतलोहं त्रिवृच्चैव गुग्गुलुश्च शिलाजतु । एकैकं पलमात्रं स्यात् पलार्धं पौष्करं भवेत् ॥९२॥ चित्रकस्य पलार्धं स्यात्त्रिशाणं मरिचं भवेत् । नागरं पिप्पलीमुस्ता त्वगेलापत्रकुंकुमम् ॥ ९३ ॥ शाणोन्मितं स्यादेकैकं चूर्णयेत्सर्वमेकतः।ततस्तत्प्रक्षिपेच्चूर्णं पक्वखण्डे च तत्समे ॥ ९४ ॥ मोदकान् पलिकान् कृत्वा प्रयुञ्जीत यथोचितम् । हन्युः सर्वाणि कुष्ठानि त्रिदोषप्रभवामयान् ॥९५॥ भगन्दरप्लीहगुल्मान् जिह्वातालुगलामयान् । शिरोऽक्षिभ्रूगतान् रोगान् मन्यापृष्ठगतानपि ॥ ९६ ॥ प्राग्भोज-

नस्य देयं स्यादधःकायस्थिते गदे । भेषजं भक्तमध्ये च रोगे जठरसंस्थिते ॥ ९७ ॥ भोजनस्योपरि ग्राह्यमूर्ध्वजत्रुगदेषु च ।

अर्थ-१ हरड, २ बहेडा और ३ आमला ये तीन औषधि आठ पल लेय । भिलावा चार पल, बावची पांच पल, वायविडंग चार पल और १ लोहभस्म, २ निसोथ. ३ गूगल, ४ शिलाजीत ये चार औषधि एक २ पल लेनी चाहिये । गांठदार पुहकरमूल आधा पल, चीतेकी छाल आधा पल, कालीमिरच दो शाण, एवं १ सोंठ २ पीपल ३ नागरमोथा ४ दालचीनी ५ इलायची ६ तेजपात और ७ नागकेशर ये सात औषधि एक २ शाण लेवे । सबको कूट पीस चूर्ण करे, इस चूर्णके बराबर मिश्री लेके पाक करे उसमें इस चूर्णको डालके सबको एक जीव करके एक २ पलके मोदक बनावे । इस मोदकके सेवन करनेसे सर्व प्रकारके कुष्ठ रोग, त्रिदोषसे उत्पन्न भगंदर रोग, नेत्रोंके रोग, प्लीहरोग, गोलेका रोग, जीभ, तालु, गला, शिर, नेत्र, भौंह इनके रोग, गरदन, पीठ इनके रोग. इत्यादि सर्व दूर होवे । कमरसे लेकर नीचे पैरोंतक रोग होवे तो प्रातःकाल औषधि सेवन करे । यदि पेटके रोग होवें तो भोजन समय ग्रास ( गस्सा ) के साथ सेवन करे, छातीसे लेकर माथे पर्यंतके रोगोंमें भोजन करनेके पश्चात् इस त्रिफलादि मोदकका सेवन करना चाहिये ॥ ९१-९७ ॥

काञ्चनारगुग्गुलु गण्डमालादिकोंपर ।

काञ्चनारत्वचो ग्राह्यं पलानां दशकं बुधः ॥ ९८ ॥ त्रिफला षट्पला कार्या त्रिकटु स्यात् पलत्रयम् । पलैकं वरुणं कुर्या-देलात्वक्पत्रकं तथा ॥ ९९ ॥ एकैकं कर्षमात्रं स्यात् सर्वा-ण्येकत्र चूर्णयेत् । यावच्चूर्णमिदं सर्वं तावन्मात्रस्तु गुग्गुलुः ॥ १०० ॥ संकुट्य सर्वमेकत्र पिण्डं कृत्वा च धारयेत् । गुटिकाः शाणिकाः कार्याः प्रातर्ग्राह्या यथोचिताः ॥ १०१ ॥ गण्डमालां जयत्युग्रामपचीमर्बुदानि च । ग्रन्थीन् गुल्मांश्च व्रणांश्च कुष्ठानि च भगन्दरम् ॥ १०२ ॥ प्रदेयश्चानुपानार्थं क्काथो मुंडानिकाभवः । क्वाथः खदिरसारस्य पथ्याक्वा-थोष्णकं जलम् ॥ १०३ ॥

अर्थ-कचनार वृक्षकी छाल १० पल लेवे तथा १ हरड, २ बहेडा, ३ आंवला ये तीन औषधि दो दो पल अर्थात् सब छः पल ले और १ सोंठ, २ मिरच, ३ पीपल ये तीनों औषधि एक २ पल लेनी । तथा बरना एक पल, १ इलायची, २ दालचीनी, ३ तेजपात ये तीन औषधि एक १ कर्ष लेनी चाहिये । फिर सब औषधियोंको कूट पीस चूर्ण करे

इस चूर्णके समान भाग शुद्ध किये हुए गूगलको कूट पीसके उस चूर्णमें मिलाय देवे। फिर कूटके एक गोला करके एक २ शाणकी गोलियां बनावे। प्रातःकाल मुंडी अथवा खैरसार अथवा हरडेके काढेसे या गरम जलके साथ एक २ गोली सेवन करे तो घोर दुर्धर गण्डमालाका रोग तथा गण्डमालाका भेद, अपचीरोग, अर्बुद, गांठ, व्रण, गोला, कोढ, भगन्दर ये सब रोग दूर होवें॥ ९८-१०३॥

माषादिमोदक धातुपुष्टिपर।

निस्तुषं माषचूर्णं स्यात्तथा गोधूमसंभवम्। निस्तुषं यवचूर्णं च शालितण्डुलजं तथा॥ १०४॥ सूक्ष्मं च पिप्पलीचूर्णं पलिकान्युपकल्पयेत्। एतदेकीकृतं सर्वं भर्जयेद्गोघृतेन च॥१०५॥ अर्धमात्रेण सर्वेभ्यस्ततः खण्डं समं क्षिपेत्। जलं च द्विगुणं दत्त्वा पाचयेच्च शनैः शनैः॥ १०६॥ ततः पक्वं समुद्धृत्य वृत्तान् कुर्वीत मोदकान्। भुक्त्वा सायं पलैकं च पिबेत् क्षीरं चतुर्गुणम्॥ १०७॥ वर्जनीयौ विशेषेण क्षाराम्लौ द्वौ रसावपि। कृत्वैवं रमयेन्नारीर्बह्वीर्न क्षीयते नरः॥ १०८॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने वटककल्पना नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

अर्थ-उडदकी दालका चून, गेहूंका चून, तुषरहित जौका चून, चावलोका चून और पीपलका चूर्ण ये सब औषधि एक २ पल लेवे। सबको एकत्र करके इन सबका आधा शुद्ध गौका घी कडाहीमें डालके उन सबको मन्द २ अग्निसे भूने। फिर सबकी बराबर खांडकी चासनी दूना जल डालके करै। उसमें पूर्वोक्त भुने हुए चूनको मिलायके एक २ पल अर्थात् चार २ या पांच २ तोलेके लड्डू बना लेवे, इसको रात्रिके समय खायकर ऊपरसे पाव भर दूध पीवे, तथा खटाई और खारी पदार्थ न खाय इस प्रकार करनेसे मनुष्य बहुत स्त्रियोंसे भोग करनेपर भी क्षीणबल नहीं होता है॥ १०४-१०८॥

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतायां शार्ङ्गधरसंहिताया भावप्रकाशिकाभाषाटीकायां द्वितीयखण्डे सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

---

१ इसको गोरखमुण्डी कहते हैं।

# अथाष्टमोऽध्यायः ८.

अवलेहोंकी योजना।

क्वाथादीनां पुनः पाकाद्घनत्वं सा रसक्रिया। सोऽवलेहश्च लेहः स्यात्तन्मात्रा स्यात् पलोन्मिता ॥१॥ सिता चतुर्गुणा कार्या चूर्णाच्च द्विगुणो गुडः। द्रवं चतुर्गुणं दद्यादिति सर्वत्र निश्चयः ॥२॥ सुपक्वे तन्तुमत्त्वं स्यादवलेहोऽप्सु मज्जति। खरत्वं पीडिते मुद्रागन्धवर्णरसोद्भवः ॥३॥ दुग्धमिक्षुरसो यूषः पञ्चमूलकषायजः। वासाक्वाथो यथायोग्यमनुपानं प्रशस्यते ॥ ४ ॥

अर्थ–ओषधियोंके कषाय और फाण्ट आदिकोंको पुनः औटायके गाढा करनेसे जो रसकर्म होता है उसको अवलेह और लेह कहते हैं। इस अवलेहकी मात्रा १पल अर्थात् ४ चार तोले भरकी है। उसमें खांड डालनी हो तो जितना चूर्ण हो उससे चौगुनी डालनी और गुड डालना हो तो जितना चूर्ण हो उससे दुगुना डालना। दूध, मूत्र, पानी आदिक पतले पदार्थ डालने हों तो जितना चूर्ण हो उससे चौगुने डालने। ऐसा सर्व अवलेह-प्रकरणमें निश्चय है सो जानना। यह अवलेह अच्छा पका या नहीं? इसकी परीक्षा कहते हैं–अवलेहका अच्छी रीतिसे पाक होजानेसे तांत छूटते हैं और पानीमें वह अवलेह डालनेसे डूब जाता है और अँगुलियोसे दबानेसे करडा और चिकना होता है तथा उसमें दूसरे ही किसी एक प्रकारके अपूर्व गन्ध, वर्ण और स्वाद उत्पन्न होते हैं इन लक्षणोंसे अवलेह परिपक्व हुआ ऐसा जानना। दूध, ईखका रस, पञ्चमूलके काढेका यूष और अडूसेका काढा, ये इस अवलेहके अनुपान हैं इनमेंसे रोगकी योग्यता विचारके जो अनुपान देनेका होवे, सो देना चाहिये ॥ १–४ ॥

कण्टकारी अवलेह हिचकी श्वासकासोंके ऊपर।

कण्टकारीं तुलां नीरद्रोणे पक्त्वा कषायकम्। पादशेषं गृहीत्वा च तस्मिंश्चूर्णानि दापयेत् ॥ ५ ॥ पृथक्पलानि चैतानि गुडूचीचव्यचित्रकाः। मुस्तं कर्कटशृङ्गी च त्र्यूषणं धन्वयासकः ॥ ६ ॥ भार्ङ्गी रास्ना शठी चैव शर्करा पलविंशतिः। प्रत्येकं च पलान्यष्टौ प्रदद्याद् घृततैलयोः ॥७॥ पक्त्वा लेहत्वमानीय शीते मधुपलाष्टकम्। चतुष्पलं तुगा-

क्षीर्याः पिप्पलीनां चतुष्पलम् ॥ ८ ॥ क्षिप्त्वा निदध्यात् सुदृढे मृन्मये भाजने शुभे। लेहोऽयं हंति हिक्कार्तिं श्वासकासानशेषतः ॥ ९ ॥

अर्थ-भटकटैया४००तोले लेके थोडी २ कूटकर उसमें एक द्रोण (१०२४तोले) पानी डालके चौथाई पानी शेष रहे तबतक कषाय करके फिर उस काढेको छानना। और उसमें इन ओषधियोंका चूर्ण मिलाना, गिलोय, चव्य, चीता, नागरमोथा, काकडासिंगी, सोंठ, मिरच, पीपल, जवासा, भार्ङ्गी, रास्ना, कचूर, ये बारह ओषधि चार चार तोले लेके इनका चूर्ण कर उस काढेमें डाले। खांड ८० तोले घृत और तेल ३२ तोले डालना। ये सब ओषधि डालके, औटायके अवलेह करके ठण्डा करना, फिर उसमें बत्तीस तोले सहत और सोलह तोले वंशलोचन तथा पीपलका चूर्ण उस अवलेहमें मिलायके दृढ मिट्टीके पात्रमें धरके अच्छी रीतिसे रखना, यह अवलेह नित्य सेवन करनेसे हिचकीकी पीडा, श्वास और कास इन सब रोगोंको नष्ट कर देता है ॥ ५-९ ॥

क्षयादिकोंपर च्यवनप्राशावलेह।

पाटलारणिकाश्मर्यबिल्वारलुकगोक्षुराः ॥ पर्ण्यौ बृहत्यौ पिप्पल्यः शृंगी द्राक्षाऽमृताऽभयाः ॥१०॥ बला भूम्यामली वासा ऋद्धिर्जीवन्तिका शठी ॥ जीवकर्षभकौ मुस्तं पौष्करं काकनासिका॥११॥मुद्गपर्णी माषपर्णी विदारी च पुनर्नवा। काकोल्यौ कमलं मेदे सूक्ष्मैलाऽगरुचन्दनम् ॥१२॥ एकैकं पलसंमानं स्थूलचूर्णितमौषधम्। एकीकृत्य बृहत्पात्रे पञ्चामलशतानि च ॥ १३ ॥ पचेद्द्रोणजले क्षिप्त्वा ग्राह्यमष्टांशशेषितम्। ततस्तु तान्यामलानि निष्कुलीकृत्य वाससा ॥१४॥ दृढहस्तेन संमर्द्य क्षिप्त्वा तत्र ततो घृतम्। पलसप्तमितं तानि किंचिद्दद्याऽल्पवह्निना ॥१५॥ ततस्तत्र क्षिपेत् क्वाथं खण्डं चार्धतुलोन्मितम्। लेहवत्साधयित्वा च चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ १६ ॥ पिप्पली द्विपला ज्ञेया तुगाक्षीरी चतुष्पला। प्रत्येकं च त्रिशाणःस्युस्त्वगेलापत्रकेसराः॥१७॥ ततस्त्वेकीकृते तस्मिन् क्षिपेत् क्षौद्रं च षट्पलम्। इत्येवं च्यवनप्रोक्तं च्यवनप्राशसंज्ञकम् ॥१८॥ लेहं वह्निबलं दृष्ट्वा

खादेत् क्षीणो रसायनम्। बालवृद्धक्षतक्षीणा नारीक्षीणांश्च शोषिणः ॥१९॥हृद्रोगिणः स्वरक्षीणा ये नरास्तेषु युज्यते। कासं श्वासं पिपासां च वातास्रमुरसोग्रहम् ॥२०॥ वातं पित्तं शुक्रदोषं मूत्रदोषं च नाशयेत्। मेधां स्मृतिं स्त्रीषु हर्षं कान्तिं वर्णं प्रसन्नताम् ॥ २१ ॥ अस्य प्रयोगादाप्नोति नरोऽजीर्णविवर्जितः।

अर्थ–सिरस, अरनी, काश्मर्य, बेलवृक्षकी जड, स्योनापाठा, गोखरू, शालिपर्णी, पृष्ठिपर्णी, दोनों कटेली, तीनों पीपल. काकडासिंगी, दाख, गिलोय, हरड, खरेंटी, भूमिआंवला, अडूसा, ऋद्धि, जीवंतिका, कचूर, जीवक, ऋषभक, नागरमोथा, पोहकरमूल, कौआटोडी, मूंगपर्णी, माषपर्णी, विदारीकंद, सांठी, काकोली, कमल, मेदा, महामेदा, छोटी इलायची, अगर, चन्दन ये सब औषधि चार २ तोले लेकर थोडा २ कूट इकट्ठी करे। फिर बडे २ आंवले५००लेकर बडे मटकेमें डाल, तिसमें १०२४ तोले पानी डालके पकावे। जब उसका आठवां हिस्सा शेष रहे तब उन औषधियोंमेंसे५००पांच सौ आंवलोंको निकाल लेवे। पीछे उन आंवलोंको छीलकर कलई किये हुए पात्रके ऊपर वस्त्रको दृढ बांधकर उसके ऊपर धरके करडे हाथसे अत्यंत मर्दन करे। फिर पीछे नीचे उतरे हुए आंवलोके मगजमें २८ तोले भर घृत डालके मन्द अग्निके ऊपर थोडासा भूनकर पीछे तिसमें पूर्व किया हुआ क्काथ और अर्धतुला खांड डालना। जबतक वह कठिन न होवे तबतक उसे पकाना। ऐसे इसको लेहकी रीतिसे सिद्ध करे। पीछे ये औषधि डाले--पीपल ८ तोलेभर, वंशलोचन १६ तोले और दालचीनी, इलायची और तेजपात, ये औषधि ३ शाण परिमाण ले। तब अवलेहको इकट्ठा करके उसमें २४ तोले सहत मिलावे। यह च्यवनऋषिका कहा हुआ च्यवनप्राशसंज्ञक अवलेह है। क्षीण हुए पुरुषको रसायनरूप है, इसको अग्निका बलाबल देखके खाना चाहिये। यह च्यवनप्राशावलेह बालक, वृद्ध, क्षतक्षीण, नपुंसक, शोषरोगी, हृद्रोगी, स्वरक्षीण इन पुरुषोंको उपयुक्त है। और यह कास, श्वास, पिपासा, वातरक्त, उरोग्रह, वात, पित्त, वीर्यके दोष, मूत्रके दोष, इतने रोगोंका नाश करता है, इस अवलेहके प्रयोगसे पुरुष बुद्धि, स्मरणशक्ति, स्त्रीके साथ संग करनेकी इच्छा, शरीरकी कांति और वर्ण, अंतःकरणके संतोषको प्राप्त होता है और अजीर्ण करके रहित होता है ॥१९–२१॥

कूष्माण्डकावलेह रक्तपित्तादिकोंपर।

निष्कुलीकृतकूष्माण्डखण्डात् पलशतं पचेत् ॥ २२ ॥ निक्षिप्य द्वितुलं नीरमर्धशिष्टं च गृह्यते। तानि कूष्मांड-खंडानि पीडयेद् दृढवाससा॥२३॥आतपे शोषयेत् किञ्चि-च्छूलाग्रैर्बहुशो व्यधेत्। क्षिप्त्वा ताम्रकटाहे च दद्यादष्टपलं

घृतम्॥२४॥ तेन किंचिद्भर्जयित्वा पूर्वोक्तं च जलं क्षिपेत् । खण्डं पलशतं दत्त्वा सर्वमेकत्र पाचयेत् ॥ २५ ॥ सुपक्वे पिप्पली शुंठी जीराणां द्विपलं पृथक्।पृथक्पलार्धं धान्याकं पत्रैला मरिचं त्वचम् ॥ २६ ॥ चूर्णीकृत्य क्षिपेत् तत्र घृतार्धं क्षौद्रमावपेत्।खादेदग्निबलं दृष्ट्वा रक्तपित्ती क्षयज्वरी ॥२७॥ शोषतृष्णातमच्छर्दिकासश्वासक्षतातुरः। कूष्मांड-कावलेहोऽयं बालवृद्धेषु युज्यते ॥ २८ ॥ उरःसन्धानकृद् वृष्यो बृंहणो बलकृन्मतः ।

अर्थ-उत्तम पके हुए पेठेके ऊपरकी छिलका कतरके तथा भीतरके बीजोंको निकालके छोटे २ टुकडे कर १०० पल लेवे । उनमें दो तुला जल डालके औटावे, जब आधा अर्थात् एक तुला जल रहे तब उतार ले । उस जलको छानके एक जगह रख देवे । फिर उन पेठेके टुकडोंको कपडेमें बांधके निचोड लेवे । पश्चात् उनको कुछ गरम बाफ देकर सूएसे अत्यंत छेदे । तांबेके पात्रमें ९ पल घी डाल उन टुकडोंको धीमी आंचपर भूने । पश्चात् पूर्वोक्त पेठेके निचुडे हुए पानीमें इस भुने पेठेको डाले तथा१००पल मिश्री मिलायके पाक करे । जब पाक सिद्ध होनेपर आवे तब आगे लिखी औषधें डाले । जैसे-१पीपल, २सोंठ और ३ जीरा ये तीन औषाधि दो दो पल, तथा १ धानियां, २ पत्रज, ३ इलायचीके दाने, ४ काली मिरच, ५ दालचीनी ये पांच औषाधि आधा २ पल लेवे । फिर सबका चूर्ण करके पाकमें मिलाय देवे और सहत ४ पल मिलावे । इसको कूष्मांडावलेह कहते हैं । यह अवलेह यह रोगीको अपना बलाबल विचारके सेवन करना चाहिये, इससे रक्तपित्त, क्षय, ज्वर, शोष, तृषा, नेत्रोंके आगे अंधेरीका आना, वमन, खांसी, श्वास और उरःक्षत ये रोग दूर होवें । यह अवलेह बालक और बुड्ढोके उपयोगी है । छातीमे जो अन्नका रस आता है उसका साधक होता है, स्त्रीप्रसंगकी इच्छा प्रगट करे, धातुवृद्धि करे तथा बल बढावे ॥ २२-२८ ॥

कूष्माण्डखंडलेह बवासीरपर ।

युक्त्या कूष्माण्डखंडं च सूरणं विपचेत् सुधीः ॥ २९ ॥ अर्शसां मूढवातानां मन्दाग्नीनां च युज्यते ।

अर्थ-पेठेके बारीक २ टुकडे तथा सूरण ( जमीकंद ) का सीरा, इन दोनोंको मिलायके घीमें भूनकर दुगुनी मिश्री मिलायके पाक करे, अर्थात् अवलेह बनावे । इससे बवासीर, मूढवादी, ( अधोवायुका नीचे न उतरना )ये दूर हों तथा जठराग्नि प्रदीप्त हो ॥ २९ ॥

अगस्त्यहरीतकी क्षयादिकोंपर ।

हरीतकीशतं भद्रं यवानामाढकं तथा ॥ ३० ॥ पलानि

दशमूलस्य विंशतिं च नियोजयेत्। चित्रकः पिप्पलीमूलमपामार्गः शठी तथा ॥ ३१ ॥ कपिकच्छूः शङ्खपुष्पी भार्ङ्गी च गजपिप्पली। बला पुष्करमूलं च पृथग्द्विपलमात्रया ॥३२॥ पचेत् पञ्चाढके नीरे यवैः स्विन्नैः शृतं नयेत्। तत्राभयाशतं दद्यात् क्वाथे तस्मिन् विचक्षणः ॥ ३३ ॥ सर्पिस्तैलाष्टपलकं क्षिपेद् गुडतुलां तथा । पक्त्वा लेहत्वमानीय सिद्धे शीते पृथक्पृथक्॥ ३४ ॥ क्षौद्रं च पिप्पलीचूर्णं दद्यात् कुडवमात्रया । हरीतकीद्वयं खादेत्तेन लेहेन नित्यशः ॥ ३५ ॥ क्षयं कासं ज्वरं श्वासं हिक्काशोंऽरुचिपीनसान्। ग्रहणीं नाशयत्येष वलीपलितनाशनः ॥ ३६ ॥ बलवर्णकरः पुंसामवलेहो रसायनम् । विदितोऽगस्त्यमुनिना सर्वरोगप्रणाशनः ॥ ३७ ॥

अर्थ–१ आढक जौ ले, उनको जौकुट करके चौगुना जल मिलायके औटावे, जब चौथाई जल रहे तब उतार छानके धर रक्खे और उन औटे हुए जवोंको फेंक देवे। फिर दशमूलकी ओषधि बीस पल लेवे और १ चित्रक,२ पीपरामूल,३ओंगा, ४ कचूर, ५ कौंचके बीज, ६ शंखपुष्पी, ७ भार्ङ्गी, ८ गजपीपल, ९ खरेंटीकी जड और १० गांठदार पुहकरमूल ये दश ओषधि दो दो पल ले । इस प्रकार बीस औषधियोंको एकत्र करके जौकुट कर लेवे। इनमें ५ आढक जल मिलायके औटावे। जब जल चतुर्थांश शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसको पूर्वोक्त जौके काढेमें मिलाय देवे, पीछे इसमें बडी २ हरड १०० नग डाले। घी और तिलोंका तेल, आठ २ पल लेवे, गुड एक तुलाभर ले, सबको काढेमें मिलाके पाक करे । जब गाढा हो जाय तब उतार ले। फिर शीतल होनेपर पीपलका चूर्ण और सहत, ये दोनों कुडव अर्थात् पाव पाव भर लेकर उस पाकमें मिला देवे। इस अगस्त्यऋषिके कहे हुए अवलेहको अगस्त्यहरीतकी कहते हैं। इसमेंसे जो हरड अवलेहके साथ खाय तो क्षय, खांसी, ज्वर, श्वास, हिचकी, मूलव्याधि(बवासीर), अरुचि, पीनसरोग)जो नाकमें होता है वह ) तथा संग्रहणी ये रोग दूर होंय तथा देहमें गुजलट पडे वे दूर हों, सफेद बाल काले होंय, बल और कांति आवे। यह अवलेह रसायन है, इससे सम्पूर्ण रोग दूर होते हैं ॥ ३०–३७ ॥

कुटजावलेह अर्शादिपर।

कुटजत्वक्तुलां द्रोणे जलस्य विपचेत् सुधीः। कषायं पादशेषं च गृह्णीयाद् वस्त्रगालितम्॥३८॥ त्रिंशत्पलं गुडस्यात्र

दत्त्वा च विपचेत् पुनः । सान्द्रत्वमागतं ज्ञात्वा चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ ३९ ॥ रसाञ्जनं मोचरसं त्रिकटु त्रिफलां तथा । लज्जालुं चित्रकं पाठां बिल्वमिन्द्रयवं वचाम् ॥४०॥ भल्लातकं प्रतिविषां विडङ्गानि च वालकम् । प्रत्येकं पलसंमानं घृतस्य कुडवं तथा ॥ ४१॥ सिद्धशीते ततो दद्यान् मधुनः कुडवं तथा। जयेदेषोऽवलेहस्तु सर्वाण्यर्शांसि वेगतः ॥४२॥दुर्नामप्रभवान् रोगानतीसारमरोचकम्।ग्रहणीं पाण्डुरोगं च रक्तपित्तं च कामलाम् ॥ ४३ ॥ अम्लपित्तं तथा शोषं कार्श्यं चैव प्रवाहिकाम्।अनुपाने प्रयोक्तव्यमाजं तक्रं पयो दधि॥४४॥घृतं जलं वा जीर्णे च पथ्यभोजी भवेन्नरः।

अर्थ--कुडाकी छाल एक तुला ( ४०० तोले ) लेवे, उसको जौंकुट कर १ द्रोण जलमें डालके काढा करै । जब जल चतुर्थांश शेप रहे तब उतारके कपडेसे छान लेवे, इसमें गुड ३० पल डालके फिर औटावे । जब गाढा होनेपर आवे तब आगे लिखी औषधि मिलावे—१ रसोंत, २ मोचरस, ३ सोंठ, ४ मिरच, ५ पीपल, ६ हरड, ७ बहेडा, ८ ऑवला, ९ लजालू, १० चीतेकी छाल, ११ पाढ, १२कच्चा बेलफल, १३ इन्द्रजौ, १४ वच, १५ भिलावा, १६ अतीस, १७ वायविडंग और १८ नेत्रबाला ये अठारह औषध एक २ पल लेवे । सबका चूर्ण करके पाकमें मिलावे, घी एक कुडव डाले । जब पाक शीतल हो जावे तब सहत एक कुडव मिलावे, पश्चात् इस अवलेहको बकरीके दूध, छॉछ, दही अथवा घी मिलायके लेवे तथा औषधि पचनेपर उत्तम भोजन करे तो सम्पूर्ण बवासीरके तथा बवासीरके कारणसे होनेवाले दूसरे भगन्दरादि रोग, अतिसार, अरुचि, संग्रहणी, पांडुरोग, रक्तपित्त, नेत्रोंमें होनेवाला कामला रोग, अम्लपित्त, सूजन, कृशता, प्रवाहिका और अतिसार भेद ये सब रोग दूर होवें ॥ ३८--४४ ॥

दूसरा कुटजावलेह अतिसारादि रोगोंपर ।

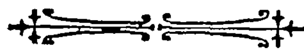
कुटजत्वक्तुलामार्द्रां द्रोणनीरे विपाचयेत् ॥ ४५ ॥ पादशेषं शृतं नीत्वा चूर्णान्येतानि दापयेत् । लज्जालुर्धातकी बिल्वं पाठा मोचरसस्तथा ॥ ४६ ॥ मुस्तं प्रतिविषा चैव प्रत्येकं स्यात् पलं पलम् । ततस्तु विपचेद् भूयो यावद्दर्वीप्रलेपनम् ॥४७॥ जलेन च्छागदुग्धेन पीतो मंडेन वा जयेत् । सर्वा-

तिसारान् घोरांस्तु नानावर्णान् सवेदनान् । असृग्दरं समस्तं च सर्वार्शांसि प्रवाहिकाम् ॥ ४८ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशाङ्गधरेण विरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने अवलेहकल्पना नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अर्थ–कुडेकी गीली छाल १ तुला प्रमाण लेवे, उसको जौकुट करके एक द्रोण जल मिलाकर काढा करै । जब चतुर्थांश शेष रहै तब उतारके उसके जलको कपडेमें छान लेवे । फिर १ लजालु, २ धायके फूल, ३ कोमल बेलगिरी,४पाठ,५मोचरस,६नागरमोथा और७अतीस ये सात ओषधि एक२पल प्रमाण लेकर सबका चूर्ण करके उस काढेमें मिलाकर उस काढेको लोहेकी कडाहीमें चढाकर पाक करके अवलेह कलछीमें लिपटने लगे इतना गाढा करे । फिर इस अवलेहको जल अथवा बकरीके दूधसे किंवा मांडके साथ सेवन करे तो वेदनायुक्त तथा नीलपीतादिक अनेक प्रकारके रंगका घोर अतिसार रोग संपूर्ण दूर होवें । स्त्रियोंके सर्व प्रकारके असृग्दरादि रोग, संपूर्ण मूळव्याधि ( बवासीर ) और प्रवाहिका रोग जो अतिसारका भेद है ये सब दूर होवें ॥ ४५–४८ ॥

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतायां शार्ङ्गधरसंहिताया भावप्रकाशिकाभाषाटीकायां द्वितीयखण्डे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥



# अथ नवमोऽध्यायः ९.

घृततैलआदिस्नेहोंका साधनप्रकार ।

कल्काच्चतुर्गुणीकृत्य घृतं वा तैलमेव वा । चतुर्गुणे द्रवे साध्यं तस्य मात्रा पलोन्मिता ॥ १ ॥ निक्षिप्य क्वाथयेत् तोयं क्वाथ्यद्रव्याच्चतुर्गुणम् । पादशिष्टं गृहीत्वा च स्नेहं तेनैव साधयेत् ॥ २ ॥ चतुर्गुणं मृदुद्रव्ये कठिनेऽष्टगुणं जलम् । तथा च मध्यमे द्रव्ये दद्यादष्टगुणं पयः ॥ ३ ॥ अत्यन्तकठिने द्रव्ये नीरं षोडशिकं मतम् । कर्षादितः पलं यावत्क्षिपेत्षोडशिकं जलम् ॥४॥ तदूर्ध्वं कुडवं यावत्क्षिपेदष्टगुणं पयः । प्रस्थादितः क्षिपेन्नीरं खारी यावच्च-

१ चावलोंमे चौदहगुना जल डालके औटावे । जब चावल गल जावे तब उसके मांडको निकाल लेवे, इसको माण्ड कहते है ।

तुर्गुणम् ॥ ५ ॥ अम्बुक्वाथरसैर्यत्र पृथक्स्नेहस्य साधनम् । कल्कस्यांशं तत्र दद्याच्चतुर्थं षष्ठमष्टमम् ॥ ६ ॥ दुग्धे दध्नि रसे तक्रे कल्को देयोऽष्टमांशकः । कल्कस्य सम्यक्पाकार्थं तोयमत्र चतुर्गुणम् ॥७॥ द्रवाणि यत्र स्नेहेषु पञ्चादीनि भवन्ति हि । तत्र स्नेहसमान्याहुर्यथापूर्वं चतुर्गुणम् ॥ ८ ॥ द्रव्येण केवलेनैव स्नेहपाको भवेद्यदि । तत्राम्बुपिष्टः कल्कः स्याज्जलं चात्र चतुर्गुणम् ॥ ९ ॥ क्वाथेन केवलेनैव पाको यत्रेरितः क्वचित् । क्वाथ्यद्रव्यस्य कल्कोऽपि तत्र स्नेहे प्रयुज्यते ॥ १० ॥ कल्कहीनस्तु यः स्नेहः स साध्यः केवलद्रवे । पुष्पकल्कस्तु यः स्नेहस्तत्र तोयं चतुर्गुणम् ॥ ११ ॥ स्नेहे स्नेहाष्टमांशश्च पुष्पकल्कः प्रयुज्यते । वर्तिवत्स्नेहकल्कः स्याद्यदाङ्गुल्या विमर्दितः ॥१२॥ शब्दहीनोऽग्निनिर्क्षिप्तः स्नेहः सिद्धो भवेत्तदा । यदा फेनोद्भवस्तैल फेनशांतिश्च सर्पिषि ॥१३॥ गन्धवर्णरसोत्पत्तिःस्नेह-

स्तदा भवेत् । स्नेहपाकस्त्रिधा प्रोक्तो मृदुर्मध्यः खरस्तथा ॥ १४ ॥ ईषत्सरसकल्कस्तु स्नेहपाको मृदुर्भवेत् । मध्यपाकस्य सिद्धिश्च कल्के नीरसकोमलः॥१५॥ईषत्कठिनकल्कश्च स्नेहपाको भवेत्खरः।तदूर्ध्वं दग्धपाकः स्याद्दाहकृन्निष्प्रयोजनः ॥ १६ ॥ आमपाकश्च निर्वीर्यो वह्निमान्द्यकरो गुरुः । नस्यार्थं स्यान्मृदुःपाको मध्यमः सर्वकर्मसु ॥ १७ ॥ अभ्यङ्गार्थं खरः प्रोक्तो युंज्यादेवं यथोचितम् । घृततैलगुडादींश्च साधयेंन्नैकवासरे ॥ १८ ॥प्रकुर्वन्त्युषिता ह्येते विशेषाद्गुणसञ्चयम् ।

अर्थ-कल्ककी ओषधियोंसे चौगुना घृत अथवा तेल लेवे तथा उस घृत तेलका चौगुना दूध गौ आदिका मूत्रइत्यादिक द्रवपदार्थ ले,सबको एकत्र कर अग्निके संयोगसे उस द्रव्यपदार्थको जलायके घृत तथा तेल शेष रक्खे।इस प्रकार सिद्ध किये हुए घृत और तेलकी भक्षण करनेकी मात्रा वातादि रोगोंपर १ पलकी जाननी । काढेकी ओषधियोंमें चौगुना पानी डालके औटावे, जब चतुर्थांश शेष रहे तब उतार ले

उसमें घृत अथवा तैल डालके औटावे।जब घृत तथा तेल मात्र बाकी रहे तब सिद्ध हुआ जानना। यदि नरम गूडूच्यादि औषधि हों तो उसमें चौगुना पानी डाले। अमलतास आदि कठिन ओषधियोंमें तथा दशमूलादि जो मध्यम ओषधि हैं उनमें काढेके वास्ते आठगुना जल मिलावे।पञ्चाख आदि जो अत्यन्त कठोर औषधि हैं उनमें जल सोलहगुना डालना चाहिये। कर्षसे लेकर पलपर्यन्त मान कही हुई ओषधियोंका यदि काढा करना होय तो जल सोलहगुना डाले, पलसे लेकर कुडवमान पर्यंत ओषधियोंका काढा करना होय तो पानी आठगुना मिलावे। प्रस्थसे लेकर खारीमानपर्यन्त ओषधियोंका काढा करना होय तो चौगुना जल डाले। केवल जलमें स्नेह सिद्ध करना होय तो स्नेहका चतुर्थांश कल्क डाले। काढेमें स्नेह सिद्ध करना होय तो उसमें स्नेहका षष्ठांश कल्क मिलावे। मांसके रसमें स्नेह सिद्ध करना होय तो उसमें स्नेहका अष्टमांश कल्क डाले। दूध, दही,अथवा धतूरे आदिके रसमें स्नेह सिद्ध करना होय तो उसमें स्नेहका अष्टमांश कल्क मिलावे, कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते स्नेहका चौगुना जल डाले। स्नेहमें दूध गोमूत्रादिक स्नेहके समान भाग लेवे। यदि द्रवपदार्थ डालने होंय तो दूध गोमूत्र इत्यादि पांच द्रव पदार्थोंसे अधिक द्रवपदार्थ डालने होंय तो दूध और गोमूत्रादिक स्नेहके समान भाग लेवे।यदि द्रवपदार्थ पांचसे न्यून होवें तो स्नेहके चौगुने ले। जिस ठिकाने केवल एकही द्रव्यसे स्नेहपाक साधन लिखा होय वहाँ कल्कको पानीमें पीसके उसका चौगुना पानी डाले। यदि काढेमें स्नेह सिद्ध करना होय तो कल्क द्रव्यको पानीमें पीस कल्क कर स्नेहमें डाल उसमें स्नेहका चौगुना जल डाले। अथवा किसी प्रयोगमें काढेमें स्नेह सिद्ध करना होय तो काढेकी ओषधियोंका कल्क करके स्नेहमें मिलाय उसमें पानी चौगुना डालकर औटावे,जब द्रवपदार्थ जल जावे तब स्नेहका चौगुना जल डाले। फूलोंका कल्क स्नेहका अष्टमांश डालना। अब इसके उपरान्त उत्तम सिद्ध हुए स्नेहके लक्षणोंको लिखते हैं--जो स्नेह ऊँगलीके पोरुओंके लगानेसे और मिडनेसे बत्ती-सा होजावे तथा उस कल्कको अग्निपर गेरनेसे चटचटाहट न करे, तेलके पाकमें झाग आनेसे तथा घृतके पाकमें झाग आकर शांत होजानेसे तथा उस पाकको सुगंध करके रक्तादिवर्ण करके मधुरादि रसोंकरके युक्त होनेसे स्नेह सिद्ध हो गया इस प्रकार वैद्य जाने।

स्नेहका पाक तीन प्रकारका है। जैसे नम्र, मध्यम और कठिन। उनके लक्षण कहते हैं--जिस स्नेहमें कल्ककी कुछ २ आर्द्रता बनी रहे अर्थात् वह कल्क समग्र न जले उसको नम्रपाक हुआ जानना। जिस स्नेहमें कल्ककी मृदुता होनेसे जलका अंश सर्वथा न रहे उस पाकको मध्यम पाक जानना। और जिस स्नेहका पाक किंचित् अर्थात् कल्क सर्वथा जलकर भी कुछ तेल जल गया हो वह स्नेह दाहकारी और निष्प्रयोजक है अर्थात् कुछ कामका नहीं है।कच्चा पाक रहनेसे उसमें पराक्रम नहीं रहता,अग्निको मंद करता है तथा भारी होता है।स्नेहका पाक नरम होनेसे वह

स्नेह नाकमें नस्य देनेके विषयमें योग्य होता है । मध्यपाकवाला स्नेह सर्व कर्ममें वर्तना चाहिये और कठिन पाक होनेपर उस स्नेहको देहमे मालिश करनेमें लेवे। घृत, तैल, गुड आदि ये बनाने हाेय तो एक दिनमे ही सिद्ध न करे इनके संपूर्ण द्रव्योंको एकत्र कर एकरात्रि भिगो देवे दूसरे दिन सिद्ध करे, इस प्रकार स्नेहके साधनेकी क्रिया जाननी । इसमे भी प्रथम घृत और पश्चात् तैल बनाना इस अध्यायमे कहा जावेगा ॥ १-१८ ॥

घृतका साधनप्रकार, तिनमें प्रथम क्षीरघृत प्लीहादिकोंपर ।

**पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ॥ १९ ॥ ससैंधवैश्च पलिकैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् । क्षीरं चतुर्गुणं दत्त्वा तत्सिद्धं प्लीहनाशनम्॥२०॥विषमज्वरं मंदाग्निहरं रुचिकरं परम् ।**

अर्थ-१ पीपल २ पीपरामूल ३ चव्य ४ चित्रक ५ सोंठ ६ सेंधानमक ये छः ओषधि एक२ पल ले कल्क करके एक प्रस्थ गौके घीमे मिलावे । और घीसे चौगुना जल मिलाकर फिर गौका दूध उसमे मिलावे, कल्कका पाक उत्तम होनेके वास्ते घृतसे चौगुना पानी डालके पाक करे । जब घृतमात्र शेप रहे तब उतारके छान लेवे । इसके सेवन करनेसे पेटमें बांई तरफ जो प्लीहा ( तिल्ली )का रोग होता है वह और विषमज्वर,मन्दाग्नि ये रोग दूर होवें, मुखमे उत्तम रुचि आवे ॥१९॥२०

चाङ्गेरीघृत अतिसारसंग्रहणीपर ।

**पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकोहस्तिपिप्पली।२१।श्वदंष्ट्रानागरं धान्यं पाठा बिल्वं यवानिका । द्रव्यैश्च पलिकैरेतैश्चतुःषष्टिः पलं घृतम्॥२२॥घृताच्चतुर्गुणं दद्याच्चांगेरीस्वरसं बुधः । तथा चतुर्गुणं दत्त्वादधिसर्पिर्विपाचयेत्२३॥शनैःशनैर्विपक्वं च चाङ्गेरीघृतमुत्तमम्।तद्घृतं कफवातघ्नं ग्रहण्यर्शोविकारनुत् ॥ २४ ॥ हन्त्यानाहं गुदभ्रंशं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम् ।**

अर्थ-१ पीपल २ पीपरामूल ३ चित्रक ४ गजपीपल ५ गोखरू ६ सोंठ ७धनियां ८ पाठ ९ बेलगिरी १० अजमोद ये दश ओषधि एक २ पल लेवे । कल्क करके चौंसठ पल घी लेवे उसमें इस कल्कको मिलाय तथा घृतसे चौगुना चूकेका रस और दहीकी छाल डालके मन्दाग्निसे परिपक्व करे । जब घृतमात्र शेष रहे तब छानके धर रक्खे, इसको चांगेरीघृत कहते हैं, इसका सेवन करनेसे कफवायु, संग्रहणी, मूलव्याधि ( बवासीर ),मलबद्धता, कांचका निकलना, मूत्रकृच्छ्र और प्रवाहिका ये सम्पूर्ण रोग दूर होते हैं ॥ २१-२४ ॥

---

१ वैद्यको उचित है कि जब तेल घृत आदि कोईसी वस्तु बनानी होय तो इस स्नेह साधनके अनुसार कल्क ( काढा ) दूध और गोमूत्र आदिक डालें तो ठीक बनैगा अन्यथा विगड जावेगा ।

मसूरादिघृत अतिसार आदिपर ।

**मसूराणां पलशतं नीरद्रोणे विपाचयेत् ॥२५॥ पादशेषं शृतं नीत्वा दत्त्वा बिल्वपलाष्टकम्॥ घृतप्रस्थं पचेत्तेन सर्वातीसार-नाशनम् ॥ २६ ॥ ग्रहणीं भिन्नविड्कां च नाशयेच्च प्रवाहिकाम्॥**

अर्थ– सौ पलमें मसूर एक द्रोण जल डालके औटावे,जब चौथाई जल शेष रहे तब उतारके जलको छान लेवे । इसमें आठ पल बेलगिरीका बारीक चूर्ण करके डाले तथा घी एक प्रस्थ मिलाकर पाक करे । जब घृतमात्र शेष रहे तब उतारके घीको छानके किसी उत्तम पात्रमें भरके रख देवे । इस घृतके सेवन करनेसे संपूर्ण अतिसार, संग्रहणी, मलके चिथडे और टुकडे २गिरे वह और प्रवाहिका ये संपूर्ण रोग दूर होंय ॥ २५ ॥ २६ ॥

कामदेवघृतरक्तपित्तादिकोंपर ।

**अश्वगन्धा तुलैका स्यात्तदर्धो गोक्षुरः स्मृतः॥२७॥बाला-मृता शालिपर्णी विदारी च शतावरी॥ पुनर्नवाऽश्वत्थशुण्ठी काश्मर्यास्तु फलान्यपि ॥ २८ ॥ पद्मबीजं माषबीजं दद्या-द्दशपलं पृथक् ॥ चतुर्द्रोणांभसा पक्त्वा पादशेषं शृतं नयेत् ॥ २९ ॥ जीवनीयगणः कुष्ठं पद्मकं रक्तचन्दनम् ॥ पत्रकं पिप्पली द्राक्षा कपिकच्छुफलं तथा ॥ ३० ॥ नीलोत्पलं नागपुष्पं सारिवे द्वे बले तथा ॥ पृथक्कर्पसमा भागाः शर्क-रायाः पलद्वयम् ॥ ३१ ॥ रसश्च पौण्ड्रकेक्षूणामाढकैकं समाचरेत् ॥ घृतस्य चाढकं दत्त्वा पाचयेन्मृदुनाऽग्निना ॥ ३२ ॥ घृतमेतन्निहंत्याशु रक्तपित्तमुरःक्षतम्॥ हलीमकं पांडुरोगं वर्णभेदं स्वरक्षयम्॥ ३३ ॥ वातरक्तं मूत्रकृच्छ्रं पार्श्वशूलं च कामलाम् ॥ शुक्रक्षयमुरोदाहं कार्श्यमोजः-क्षयं तथा ॥ ३४ ॥ स्त्रीणां चैवाप्रजातानां गर्भदं शुक्रदं नृणाम् ॥ कामदेवघृतं नाम हृद्यं बल्यं रसायनम् ॥ ३५ ॥**

अर्थ–असगन्ध १ तुला, दक्षिणी गोखरू अर्द्धतुला और १ चीतेकी छाल, २ गिलोय, ३ शालपर्णी, ४ विदारीकन्द,५शतावर, ६ पुनर्नवा (सांठ),७ पीपरामूल, ८ सोंठ, ९ कंभारीके फल, १० कमलगट्टा और ११ उडद ये ग्यारह औषधि दश दश पल लेकर एकत्र कूट इसमें चार द्रोण जल मिलाकर काढा करे, जब चतुर्थांश जल शेष रहे तब उतारके छान लेवे । फिर १० जीवनीयगणकी औषधि, ११ कूट

१२ पद्माख, १३ लालचन्दन, १४ तेजपात, १५ पीपल, १६ दाख बीज, १८ नीलाकमल, १९ नागकेशर २० कालीसारिवा, २१ स बला और १३ नागबला ये तेईस औषधि एक२ कर्ष ले कल्क कर मिला देवे । खांड दोपल डाले । सफेद ईखका रस और घृत ये दो लेके उस काढेमें मिलाय देवे, फिर भट्टीपर चढाय मन्दाग्निसे घृतका सब पदार्थ जलके घृतमात्र शेष रहे तब उतारके इसको छान ले करनेसे रक्तपित्त, उरःक्षत रोग, पांडुरोगका भेद, हलीमक रोग, स्व मूत्रकृच्छ्र, पिठका दर्द, नेत्रोंका पीला होना, धातुक्षय, उरः ( छ कृशता, शरीरके तेजका क्षय ये सम्पूर्ण रोग दूर होवें । यह घृत जिस न होती हो उसके वास्ते देनेसे पुत्र देवे, पुरुषोंके वीर्य प्रगट करे, ह और बल देता है तथा यह रसायन है, इसको कामदेव घृत कहते हैं

पानीयकल्पनाघृत अपस्मारादिकोंपर ।

त्रिफला द्वे निशे कौन्ती सारिवे द्वे प्रियंगुका । श पृष्ठपर्णी देवदार्व्यैलवालुकम् । नतं विशाला दन्ती च नागकेशरम् ॥ ३६ ॥ नीलोत्पलैला मञ्जिष्ठा विड पद्मकम् । जातीपुष्पं चन्दनं च तालीसं बृहती त कर्षसमैः कल्कैर्जलं दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ ३७ ॥ घृ पचेद्धीमानपस्मारे ज्वरे क्षये । उन्मादे वातरक्ते मन्दानले तथा ॥ ३८ ॥ प्रतिश्याये कटीशूले चतुर्थके । मूत्रकृच्छ्रे विसर्पे च कण्डूपाण्ड्वाम ॥ ३९ ॥ विषद्वये प्रमेहेषु सर्वथैवोपयुज्यते । व पुत्रदं भूतयक्षरक्षोहरं स्मृतम् ॥ ४० ॥

अथ-१ हरड, २ बहेडा, ३ आंवला, ४ हल्दी, ५ दारुहल्दी, ६ कालीसारिवा, ८ सफेद सारिवा, ९ फूलप्रियंगु, १० शालपर्णी, १२ देवदारु १३ एलवालुक, १४ तगर, १५ इन्द्रायणकी जड, १६ १७ दन्ती, १८ नागकेशर, १९ नीले कमल, २० इलायची, २१ मंजी डंग, २३ कूठ, २४ पद्माख, २५ चमेलीके फूल, २६ चन्दन, २७ ताली कटेरी, ये अट्ठाईस औषधि एक एक कर्ष लेवे । कल्क कर इ चौगुना जल मिलाय दे । फिर १ प्रस्थ घी मिलायके म करावे । जब घृतमात्र शेष रहे तब उतारके छान ले और उत्तम पा देवे । इसके सेवन करनेसे मृगी, ज्वर, क्षयरोग, उन्माद, वातरक्त, स्व पीनस, कमरका शूल, तृतीयक ज्वर, चातुर्थिक ज्वर, मूत्र रोग ( जो पैरोंमें होता है ), खुजली, पाण्डुरोग, सर्पादिकोंके वि

नाग आदि स्थावर विषोंके विकार तथा प्रमेह ये सब रोग दूर हों।यह घृत वंध्या स्त्रियों-को पुत्र देता है। इस घृतके सेवन करनेसे भूतबाधा भी दूर होती है॥३७-४०॥

अमृताघृत वातरक्तपर।

**अमृताक्वाथकल्काभ्यां सक्षीरं विपचेद् घृतम्। वातरक्तं जयत्याशु कुष्ठं जयति दुस्तरम्॥ ४१॥**

अर्थ-गिलोयको जौकुट कर उसमें चौगुना पानी डालके औटावे। जब चौथाई रहे तब उतारके छान लेवे।फिर इस काढेमें काढेका चतुर्थांश घी मिलावे और घीका चतुर्थांश गिलोयका कल्क डाले। घृतसे चौगुना दूध डाले।फिर अग्निपर चढायके सिद्ध करे,जब घृतमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे।इसके सेवन करनेसे वातरक्त और कुष्ठ रोग बहुत जल्दी दूर होवें॥ ४१॥

महातिक्तकघृत वातरक्तकुष्ठादिकोंपर।

**सप्तच्छदः प्रतिविषा श्यामाकः कटुरोहिणी। पाठा मुस्त-मुशीरं च त्रिफला पर्पटस्तथा॥४२॥ पटोलनिम्बमंजिष्ठाः पिप्पली पद्मकं शठी। चन्दनं धन्वयासश्च विशाले द्वे निशे तथा॥४३॥ गुडूची सारिवे द्वे च मूर्वा वासा शतावरी। त्रायन्तीन्द्रयवायष्टीभूनिम्बश्चाक्षभागिका॥ ४४॥ घृतं चतुर्गुणं दद्याद्घृतादामलकीरसः। द्विगुणः सर्पिषश्चात्र जल-मष्टगुणं भवेत्॥४५॥ तत्सिद्धं पाययेत्सर्पिर्वातरक्तेषु सर्वथा। कुष्ठानि रक्तपित्तं च रक्तार्शांसि च पाण्डुताम्॥ ४६॥ हृद्रोगगुल्मवीसर्पप्रदरान् गण्डमालिकाम्। क्षुद्ररोगाञ्ज्वरांश्चैव महातिक्तमिदं जयेत्॥ ४७॥**

अर्थ-१ सतोना,२अतीस,३अमलतासका गूदा,४कुटकी,५पाढ, ६नागरमोथा, ७ खस,८हरड,९बहेडा,१०आंवला,११पित्तपापडा,१२पटोलपत्र, १३नीमकी छाल, १४ मँजीठ,१५पीपल, १६पद्माख, १७कचूर,१८सफेद चन्दन,१९धमासा, २०इंद्रायणकी जड,२१हलदी,२२दारुहलदी, २३गिलोय,२४काली सारिवा, २५सफेद सारिवा,२६ मूर्वा,२७ अडूसा,२८ सतावर,२९ त्रायमाण,३०इन्द्रजौ,३१ मुलहटी और ३२चिरा-यता ये बत्तीस औषधि एक२कर्ष लेवे। कल्क कर कल्कका चौगुना घी लेकर उसमें कल्कको मिलाय दे और घीसे दुगुना आंवलोंका रस एवं आठगुना जल डालके मन्दाग्निपर परिपक्व करे। जब घृतमात्र शेष रहे तब उतारके छान ले और उत्तम पात्रमें भरके रख देवे। इसके सेवन करनेसे वातरक्त अवश्य दूर होवे तथा कुष्ठ,

रक्तपित्त, रक्तमूलव्याधि अर्थात् खूनी बवासीर, पांडुरोग, हृदयरोग, गोला, विसर्परोग, प्रदररोग, गण्डमाला, क्षुद्ररोग और ज्वर ये रोग दूर हों ॥ ४२--४७ ॥

सूर्यपाकसिद्ध कासीसाद्यघृत कुष्ठदद्रुपामा इत्यादिकोंपर ।

कासीसं द्वे निशे मुस्तं हरितालं मनःशिलाम् । कंपिल्लकं गंधकं च विडङ्गं गुग्गुलुं तथा ॥४८॥ सिक्थकं मरिचं कुष्ठं तुत्थकं गौरसर्षपान् । रसाञ्जनं च सिन्दूरं श्रीवासं रक्तचन्दनम् ॥ ४९ ॥ अरिमेदं निम्बपत्रं करञ्जं सारिवां वचाम् । मञ्जिष्ठां मधुकं मांसीं शिरीषं लोध्रपद्मकम् ॥ ५० ॥ हरीतकीं प्रपुन्नाटं चूर्णयेत्कार्षिकान्पृथक् । ततश्च चूर्णमालोड्य त्रिंशत्पलमिते घृते ॥ ५१ ॥ स्थापयेत्ताम्रपात्रे च घर्मे सप्त दिनानि च । अस्याभ्यङ्गेन कुष्ठानि दद्रूपामाविचर्चिकाः । ॥ ५२ ॥ शूकदोषा विसर्पाश्च विस्फोटा वातरक्तजाः । शिरःस्फोटोपदंशाश्च नाडीदुष्टव्रणानि च ॥ ५३ ॥ शोथो भगन्दरश्चैव लूताः शाम्यन्ति देहिनाम् । शोधनं रोपणं चैव सुवर्णकरणं घृतम् ॥ ५४ ॥

अर्थ-१ हीराकसीस, २ हल्दी, ३दारुहल्दी, ४नागरमोथा,५हरताल,६मनसिल,७कवीला,८गंधक,९वायविडंग,१०गूगल,११मोम,१२काली मिरच,१३ कूठ,१४ सफेद सरसो,१५रसांजन,१६सिंदूर, १७ गंधाविरोजा,१८ लालचन्दन, १९ खैरकी छाल, २० नीमके पत्ते, २१ कंजाके बीज,२२सारिवा,२३वच,२४मंजीठ, २५ मुलहटी,२६ जटामांसी,२७सिरसकी छाल,२८लोध,२९पद्माख,३० जंगी हरड और ३१ पमारके बीज ये एकतीस औषधि एक एक कर्ष लेवे।सबका चूर्ण कर तीस पल घी ताँबेके पात्रमें डाल चूर्ण मिलाकर सात दिन धूपमें धरा रहने देवे । फिर इस घीको देहमें लगावे तो सर्व कुष्ठ,दाह,खाज,जिससे पैर फट जाते हैं ऐसी विचर्चिका, लिंगेंद्रियका शूकसंज्ञक रोग,विसर्परोग,वातरक्तसे जो विस्फोटक रोग होता है वह मस्तकके फोडे उपदंश ( गरमीका रोग ),नाडीव्रण ( नासूरका घाव ),दुष्टव्रण,सूजन,भगंदर और लूता ये संपूर्ण रोग दूर होवें।यह घृत व्रणादिकोंका शोधन करके व्रणको भर लाताहै तथा त्वचाकी कांति जैसी प्रथम थी उसी प्रकारकी करता है ॥ ४८–५४ ॥

जात्यादिघृत व्रणपर ।

जातिनिम्बपटोलांश्च द्वे निशे कटुकी तथा । मञ्जिष्ठा मधुकं सिक्थं करञ्जोशीरसारिवाः ॥५५॥ तुत्थं च विपचेत्सम्य-

कल्कैरेभिर्घृतं बुधः । अस्य लेपात्प्ररोहन्ति सूक्ष्मनाडीव्रणा अपि ॥ ५६ ॥ मर्माश्रिताः क्लेदिनश्च गंभीराः सरुजो व्रणाः ।

अर्थ–१ चमेलीके पत्ते, २ नीमके पत्ते, ३ पटोलपत्र, ४ हल्दी, ५ दारुहल्दी, ६ कुटकी, ७ मंजीठ, ८ मुलहटी, ९ मोम, १० कंजा, ११ खस, १२ सारिवा और १३ नीलाथोथा ये तेरह ओषधि एक एक कर्ष प्रमाण लेनी । इसका कल्क करके उस कल्कका चौगुना घी ले, उसमें कल्कको मिलाकर धूपमें एक दिन धरा रहने दे, फिर अग्निपर धरके घृतको सिद्ध करे । इस घृतका नाडीव्रण ( नासूरके घाव ) में लेप करे तथा मर्मस्थलमें जो घाव होय, और राध आदि करके गीले गंभीर और पीडायुक्त हो ऐसे व्रणोमे इसका लेप करे तो व्रण भरके अच्छा होय ॥५५॥५६॥

बिन्दुघृत उदरादिकोंपर ।

चित्रकः शङ्खिनी पथ्या कम्पिल्लस्त्रिवृतायुगम् ॥ ५७ ॥ वृद्धदारुश्च शम्याको दन्ती दन्तीफलं तथा । कोशातकी देवदाली नीलिनी गिरिकर्णिका ॥५८॥ सातला पिप्पली-मूलं विडङ्गं कटुकी तथा। हेमक्षीरी च विपचेत् कल्कैरेभिः पिचून्मितैः॥५९॥घृतप्रस्थं स्नुहीक्षीरे षट्पले तु पलद्वयम्। अर्कक्षीरस्य मतिमांस्तत्सिद्धं गुल्मकुष्ठनुत् ॥ ६० ॥ हन्ति शूलमुदावर्तं शोथाध्मानं भगन्दरम् । शमयत्युदराण्यष्टौ निपीतं बिन्दुसंख्यया ॥ ६१ ॥ गोदुग्धेनोष्ट्रदुग्धेन कौल-त्थेन शृतेन वा । उष्णोदकेन वा पीत्वा बिन्दुवेगैर्विरिच्यते ॥ ६२ ॥ एतद्बिन्दुघृतं नाम नाभिलेपाद्विरेचयेत् ।

अर्थ–१ चीतकी छाल, २ शंखपुष्पी ( शंखाहूली ), ३ हरड, ४ कम्पिला, ५ सफेद निसोथ, ६ कालीनिसोथ, ७ विधायरा, ८ अमलतासका गूदा, ९ दंतीकी जड, १० जमालगोटा, ११ कडुई तोरई, १२ बंदाल, १३ नील, १४ विष्णुकांता(कोयल), १५ पीले रंगकी थूहर, १६ पीपरामूल, १७ वायविडंग, १८ कुटकी और १९ चूक ये उन्नीस औषधि एक एक कर्ष प्रमाण लेवे सबका कल्क कर एक प्रस्थ घीमें उसको मिलाय थूहरका दूध छः पल और आकका दूध दो पल मिलावे । कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते उस घीका चौगुना जल डालके मन्दाग्निसे घृत शेष रक्खे । इस प्रकार जब घृत सिद्ध होजावे तब इसको छानके किसी उत्तम पात्रमें भरके धर रक्खे, इसको बिंदुघृत कहते हैं । इसके सेवन करनेसे गोला, कोढ, शूल, उदावर्त, सूजन, अफरा, भगंदर, आठ प्रकारके उदररोग ये सम्पूर्ण रोग दूर होवें । इसका अनुपान गौका अथवा ऊंटनीका दूध, कुलथीका काढा, अथवा गरम जल इतने अनुपानोंसे जैसा रोगका तारतम्य देखे उसी प्रकार देवे । इस घृतके जितने बिंदु

रक्तपित्त, रक्तमूलव्याधि अर्थात् खूनी बवासीर, पांडुरोग, हृदयरोग, गोला, विसर्परोग, प्रदररोग, गण्डमाला, क्षुद्ररोग और ज्वर ये रोग दूर हों ॥ ४२--४७ ॥

सूर्यपाकसिद्ध कासीसाद्यघृत कुष्ठदद्रुपामा इत्यादिकोंपर ।

कासीसं द्वे निशे मुस्तं हरितालं मनःशिलाम् । कंपिल्लकं गंधकं च विडङ्गं गुग्गुलुं तथा ॥४८॥ सिक्थकं मरिचं कुष्ठं तुत्थकं गौरसर्षपान् । रसाञ्जनं च सिन्दूरं श्रीवासं रक्तचन्दनम् ॥ ४९ ॥ अरिमेदं निम्बपत्रं करञ्जं सारिवां वचाम् । मञ्जिष्ठां मधुकं मांसीं शिरीषं लोध्रपद्मकम् ॥ ५० ॥ हरीतकीं प्रपुन्नाटं चूर्णयेत्कार्षिकान्पृथक् । ततश्च चूर्णमालोड्य त्रिंशत्पलमिते घृते ॥ ५१ ॥ स्थापयेत्ताम्रपात्रे च घर्मे सप्त दिनानि च । अस्याभ्यङ्गेन कुष्ठानि दद्रूपामाविचर्चिकाः । ॥ ५२ ॥ शूकदोषा विसर्पाश्च विस्फोटा वातरक्तजाः । शिरःस्फोटोपदंशाश्च नाडीदुष्टव्रणानि च ॥ ५३ ॥ शोथो भगन्दरश्चैव लूताः शाम्यन्ति देहिनाम् । शोधनं रोपणं चैव सुवर्णकरणं घृतम् ॥ ५४ ॥

अर्थ-१ हीराकसीस, २ हल्दी, ३दारुहल्दी, ४नागरमोथा,५हरताल,६मनसिल,७ कवीला,८गंधक,९वायविडंग,१०गूगल,११मोम,१२काली मिरच,१३ कूठ,१४ सफेद सरसों,१५रसांजन,१६सिंदूर, १७ गंधाविरोजा,१८ लालचन्दन, १९ खैरकी छाल, २० नीमके पत्ते, २१ कंजाके बीज,२२सारिवा,२३वच,२४मंजीठ, २५ मुलहटी,२६ जटामांसी,२७सिरसकी छाल,२८लोध,२९पद्माख,३० जंगी हरड और ३१ पमारके बीज ये एकतीस औषधि एक एक कर्ष लेवे।सबका चूर्ण कर तीस पल घी तॉबेके पात्रमें डाल चूर्ण मिलाकर सात दिन धूपमें धरा रहने देवे । फिर इस घीको देहमें लगावे तो सर्व कुष्ठ,दाह,खाज,जिससे पैर फट जाते हैं ऐसी विचर्चिका, लिंगेंद्रियका शूकसंज्ञक रोग,विसर्परोग,वातरक्तसे जो विस्फोटक रोग होता है वह मस्तकके फोडे उपदंश ( गरमीका रोग ),नाडीव्रण ( नासूरका घाव ),दुष्टव्रण,सूजन,भगंदर और लूता ये संपूर्ण रोग दूर होवें।यह घृत व्रणादिकोंका शोधन करके व्रणको भर लाताहै तथा त्वचाकी कांति जैसी प्रथम थी उसी प्रकारकी करता, है ॥ ४८–५४ ॥

जात्यादिघृत व्रणपर ।

जातिनिम्बपटोलांश्च द्वे निशे कटुकी तथा । मञ्जिष्ठा मधुकं सिक्थं करञ्जोशीरसारिवाः ॥५५॥ तुत्थं च विपचेत्सम्य-

( बूँद ) डालके पीवे उतने ही दस्त होते हैं । इस घृतका नाभिपर लेप करनेसे भी दस्त होते हैं ॥ ५७-६२ ॥

त्रिफलाघृत नेत्ररोगोंपर ।

**त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं वासारसोद्भवम् ॥६३॥ भृङ्गराजरसप्रस्थं प्रस्थमाजं पयःस्मृतम् । दत्त्वा तत्र घृतप्रस्थं कल्कैः कर्षमितैः पृथक् ॥ ६४ ॥ त्रिफला पिप्पली द्राक्षा चन्दनं सैन्धवं बला । काकोली क्षीरकाकोली मेदा मरिचनागरम् ॥ ६५ ॥ शर्करा पुण्डरीकं च कमलं च पुनर्नवा। निशायुग्मं च मधुकं सर्वैरेभिर्विपाचयेत् ॥६६॥ नक्तान्ध्यं नकुलान्ध्यं च कण्डूं पिल्लं तथैव च । नेत्रस्रावं च पटलं तिमिरं चाजकं जयेत् ॥ ६७ ॥ अन्येऽपि प्रशमं यान्ति नेत्ररोगाः सुदारुणाः ॥ त्रैफलं घृतमेतद्धि पाने नस्यादि सूचितम् ॥ ६८ ॥**

अर्थ-१ हरड, २ बहेड़ा और ३ ऑवला इन तीनोंका स्वरस पृथक् २ एक एक प्रस्थ लेवे । यदि स्वरस न मिल सके तो इनको आठगुने जलमें डालके चतुर्थांश शेष काढा लेवे । इसकी भी स्वरस संज्ञा है । यह एक २ प्रस्थ लेवे । अडूसेका स्वरस १ प्रस्थ, भांगरेका स्वरस १ प्रस्थ, बकरीका दूध १ प्रस्थ ये संपूर्ण रस और दूधको एकत्र करके इसमें घी एक प्रस्थ डालके कल्क बनावे । इसमें डालनेकी जो ओषधियां हैं उनको कहता हूं, जैसे-१ हरड़, २ बहेड़ा, ३ आँवला, ४ पीपल, ५ दाख, ६ सफेद चन्दन, ७ सैंधानमक, ८ गंगेरन, ९ काकोली और क्षीरकाकोली ( इन दोनोंके अभावमें असगन्ध लेवे ), १० मेदाके अभावमें मुलहटी, ११ काली मिरच, १२ सोंठ, १३ खाँड, १४ सफेद कमल, १५ कमल, १६ पुनर्नवा ( सोंठ ) १७ हल्दी, १८ दारुहल्दी और १९ मुलहटी ये उन्नीस ओषधि प्रत्येक २ कर्ष लेवे । कल्क करके इनको १ प्रस्थ घीमें मिलाय मन्दाग्निपर घीको सिद्ध करे । जब तैयार हो जावे तब उतारके छान लेवे, इसको त्रिफला घृत कहते हैं । इस घृतके सेवन करनेसे रतौंध तथा नौलाकेसे नेत्र चमके उसको नकुलांध्य कहते हैं,नेत्रोंकी खुजली, पिल्लरोग ( नेत्रोंसे जलका गिरना ), नेत्रोंके पटलमें जो तिमिररोग होता है वह, मोतियाबिन्दु, नेत्ररोगका भेद अजक रोग ये सम्पूर्ण दूर होवें । इसके सिवाय और जो छोटे बडे नेत्रोंके रोग हैं वे भी दूर हों । यह घृत नाकमें डालनेके भी उपयोगी है ॥ ६३-६८ ॥

मतान्तरसे लिखते हैं कि, त्रिफलेका रस १ प्रस्थ भांगरेका रस १ प्रस्थ अडूसेका रस १ प्रस्थ, सतावरका रस १ प्रस्थ, बकरीका दूध १ प्रस्थ, गिलोयका रस १प्रस्थ और ऑवलोंका रस १ प्रस्थ, इन सब रसोंको एकत्र कर १ प्रस्थ घी डालके पक्क करे । यह वंगसेन ग्रंथमें लिखा है । इसे भी पूर्वोक्त नेत्ररोगोंपर देवे ॥

गौर्याद्यघृत व्रणादिकोंपर ।

द्वे हरिद्रे स्थिरा मूर्वा सारिवा चन्दनद्वयम् । मधुपर्णी च मधुकं पद्मकेसरपद्मकम् ॥ ६९ ॥ उत्पलोशीरमेदाभिस्त्रिफलापञ्चवल्कलैः । कल्कैः कर्षमितैरेतैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत ॥ ७० ॥ विसर्पलूताविस्फोटविषकीटव्रणापहम् । गौर्याद्यमिति विख्यातं सर्पिर्विषहरं परम् ॥ ७१ ॥

अर्थ-१ हल्दी २दारुहल्दी३ शालपर्णी ४ मूर्वा५सारिवा ६ सफेदचन्दन ७ लालचन्दन ८ माषपर्णी ९ मुलहटी १० कमलके भीतरकी केशर ११ पद्माख १२ कमल १३ खस १४ मेदाके अभावमें मुलहटी १५ हरड १६ बहेडा १७ आँवला १८बडकी छाल १९ गूलरकी छाल २० पीपलकी छाल २१ पाखरकी छाल और २२ वेत ये बाईस औषधि प्रत्येक एक २ कर्ष लेवे सबका कल्क करके इसका चौगुना इसमें जल मिलावे फिर इसमें १ प्रस्थ घी डालके घी शेष रहने पर्यन्त पचन करे । जब सिद्ध होजावे तब उतारके घीको छान लेय । इस घृतके सेवन करनेसे विसर्परोग, लूता, विस्फोटक, विषदोष, क्षुद्र कुष्ठ, व्रण ये रोग दूर होवें । इस घृतके सेवनसे प्रायः विषबाधा दूर होती है ॥ ६९-७१ ॥

मयूरघृत शिरोरोगादिकोंपर ।

बलामधुकरास्नाभिर्दशमूलफलत्रिकैः । पृथग्द्विपलिकैरेभिर्द्रोणनीरेण पाचयेत् ॥ ७२ ॥ मयूरं पक्षपित्तांत्रयकृत्पादास्य वर्जितम् । पादशेषं शृतं नीत्वा क्षीरं दत्त्वा च तत्समम् ॥७३॥ घृतप्रस्थं पचेत्सम्यग्जीवनीयैः पिचून्मितैः । तत्सिद्धं शिरसः पीडां मन्याग्रीवाग्रहं तथा ॥७४॥ अर्दितं कर्णनासाक्षिजिह्वागलरुजो जयेत् । पाने नस्ये तथाऽभ्यङ्गे कर्णपूरेषु युज्यते ॥ ७५ ॥ हेमन्तकालशिशिरवसन्तेषु च शस्यते ।

अर्थ-१ गंगेरनकी छाल २ मुलहटी ३ रास्ना १० मूलोंकी जड ३ त्रिफला इस प्रकार सब मिलायके १६ औषधि दो दो पल लेकर जौकुट करके एक द्रोण जलमें डाल देवे । फिर एक मोरको मारके उसके पंख दूर करके कलेजेमे पित्त होता है वह आँतडे और दहनी तरफ जो यकृत ( कलेजा ) पैर और मुख ये सब दूर करके उस मोरका शुद्ध मांस लेवे । तथा दूध काढेके समान ले, घी एक प्रस्थ ले एवं जीवनीयगणकी औषधियोंका कल्क करके उसमें डाल देवे । फिर घृतमात्र शेष रहे इस प्रकार मंदाग्निपर पाचन कर उतारके छान लेवे । पीनेमें नाकमें डालनेके विषयमें देहमें लगाने और कानमें डालनेमें इनमें रोगका तारतम्य देखकर इसकी

योजना करे । इसका सेवन हेमंत कालमें, शिशिर कालमें, तथा वसन्तकालमें करे तो मस्तककी पीडा दूर होय । गर्दन और गला इनका स्तंभ, तथा टेढा मुख होजावे, ऐसी अर्दित वायु, कर्णशूल, नाक, नेत्र, जीभ और गला इनकी पीडाको दूर करे । इसे मयूरघृत कहते हैं ॥ ७२-७५ ॥

फलघृत वन्ध्यारोगपर ।

त्रिफला मधुकं कुष्टं द्वे निशे कटुरोहिणी ॥ ७६ ॥ विडङ्गं पिप्पली मुस्ता विशाला कट्फलं वचा । द्वे मेदे द्वे च काकोल्यौ सारिवे द्वे प्रियङ्गुका॥७७॥शतपुष्पा हिङ्गु रास्ना चन्दनं रक्तचन्दनम् । जातीपुष्पं तुगाक्षीरी कमलं शर्करा तथा॥७८॥ अजमोदा च दन्ती च कल्कैरेतैश्च कार्षिकैः ॥ जीववत्सैकवर्णाया घृत प्रस्थं च गोः क्षिपेत्॥ ७९ ॥ चतुर्गुणेन पयसा पचेदारण्यगोमयैः । सुतिथौ पुष्यनक्षत्रे मृद्भाण्डे ताम्रजे तथा ॥ ८० ॥ ततः पिबेच्छुभदिने नारी वा पुरुषोऽथवा । एतत्सर्पिर्नरः पीत्वा स्त्रीषु नित्यं वृषायते । ॥८१॥ पुत्रानुत्पादयद्धीमान्वन्ध्याऽपि लभते सुतम् । अनायुषं या जनयेद् या च सूता पुनः स्थिता ॥ ८२ ॥ पुत्रं प्राप्नोति सा नारी बुद्धिमन्तं शतायुषम् । एतत्फलघृतं नाम भारद्वाजेन भाषितम् ॥ ८३ ॥ अनुक्तं लक्षणामूलं क्षिपेत् तत्र चिकित्सकः ॥

अर्थ-१ हरड२बहेडा३आँवला४मुलहटी५कूट६हल्दी७दारुहल्दी८कुटकी ९ वायविडंग१०पीपल११नागरमोथा१२इन्द्रायणकी जड१३कायफल१४वच१५मेदा और महामेदा ( इन दोनोंके अभावमें मुलहटी)१६काकोली और क्षीरकाकोली(इन दोनोके अभावमें असगंध ) १७ सफेद सारिवा १८ काली सारिवा१९फूलप्रियंगु २० सौंफ २१ भुनी हींग २२ रास्ना२३सफेदचंदन२४लाल चन्दन २५ जावित्री२६ वंशलोचन २७ कमल २८ खाँड२९अजमोदा३०दन्ती ये तीस औषधि एक २ कर्ष प्रमाण लेवे सबका कल्क कर जिसके बछडा होवे तथा एकवर्णवाली गौका घी एक प्रस्थ लेवे उसमें उस कल्कको मिलावे, और कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते घीसे चौगुना गौका दूध डाले । फिर सबको एक ताँबेके पात्रमें भरके अथवा मिट्टीके बासनमें भरके जिस दिन पुष्यनक्षत्र होवे अथवा शुभदिन होय उस दिन आरने उपलोंकी मंद२अग्नि देवे।जब घृत शेष रहे तब उसको उतारके छान लेवे इसको फलघृत कहते हैं।यह घृत भारद्वाज ऋषिने कहा है इसको उत्तम दिनमें पुरुषोंको

अथवा स्त्रियोंको देवे. पुरुषोंको देनेसे उनका काम बढकर स्त्रीके साथ नित्य रमण करे। उनके पुत्र बुद्धिमान् होवे। बांझ स्त्री इसका सेवन करे. तो पुत्र प्रगट करे, जिस स्त्रीके बालक होकर मर जावे ऐसी स्त्रीको इसके सेवन करनेसे जो बालक होवे वह सौ वर्ष जीवे. तथा बुद्धिमान् होय। इस घृतमें तो लक्ष्मणामूल कहा नहीं है परंतु ये गर्भदाता है, इसवास्ते इसको भी डाले (कोई सफेद कटेलीको लक्ष्मणा कहते हैं) ॥ ७६–८३ ॥

पञ्चतिक्तघृत विषमज्वरादिकोंपर ।

वृषनिम्बाऽमृताव्याघ्रीपटोलानां शृतेन च ॥ ८४ ॥
कल्केन पक्वं सर्पिस्तु निहन्याद्विषमज्वरान् ।
पाण्डुं कुष्ठं विसर्पं च कृमीनर्शांसि नाशयेत् ॥ ८५ ॥

अर्थ–१ अडूसा, २ नीमके पत्ते, ३ गिलोय. ४ कटेरी, ५ पटोलपत्र इन पांच ओषधियोंका क्वाथ कर उससे चौगुना घी लेवे. उसमें उसी कल्कको मिलावे, फिर भट्टीपर चढायके मन्दमन्द अग्निसे घृत सिद्ध करे। फिर इसको छानके धर लेवे। इसके सेवन करनेसे विषमज्वर, पांडुरोग, कोढ, विसर्प, कृमिरोग और बवासीर ये सब रोग दूर होवे ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

लघुफलघृत योनिरोगपर ।

सहाचरे द्वे त्रिफलां गुडूचीं सपुनर्नवाम्॥शुकनासां हरिद्रे द्वे रास्नां मेदां शतावरीम् ॥ ८६ ॥ कल्कीकृत्य घृतप्रस्थं पचेत् क्षीरे चतुर्गुणे। तत्सिद्धं पाययेन्नारीं योनिशूलनिपीडिताम् ॥ ८७ ॥ पीडिता चलिता या च निःसृता विवृता च या। पित्तयोनिश्च विभ्रान्ता पण्ढयोनिश्च या स्मृता ॥ ॥ ८८ ॥ प्रपद्यन्ते हि ताः स्थानं गर्भं गृह्णन्ति चासकृत् । एतत् फलघृतं नाम योनिदोषहरं परम् ॥ ८९ ॥

अर्थ–१ पियावांसा, २ कालेफूलका पियावांसा, ३ हरड, ४ बहेडा, ५ आमला, ६ गिलोय ७ पुनर्नवा, ८ टेंटू, ९ हलदी, १० दारुहलदी, ११ रास्ना, १२ मेदा ( मेदाके अभावमें मुलहटी) तथा १३ सतावर इन तेरह ओषधियोंका कल्क कर एक प्रस्थ प्रमाण घी लेवे उसमें पूर्वोक्त कल्क मिलावे। गौका दूध घीसे चौगुना लेवे, तथा कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते घीसे चौगुना जल मिलावे, फिर चूलेहपर चढाय मन्द मन्द अग्नि देवे, जब सब वस्तु जलके केवल घृतमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसको जिस स्त्रीके योनिशूल हो उसको देवे। मैथुनादिक करके जिसकी योनि पीडित है, जिस स्त्रीकी योनि चलकर पुष्पस्थानसे भ्रष्ट हुई तथा योनिका मुख बडा होगया हो उसको देवे। पित्तयोनि, विभ्रांतयोनि तथा पंढयोनि ( जो गर्भधारण न करे ) ऐसी स्त्रीको यह घृत देनेसे संपूर्ण योनिके रोग दूर होकर, ठिकानेपर आवे और गर्भ धारण करे। इस घृतको लघुफलघृत कहते हैं, यह घृत योनिके दोष हरण करनेमें श्रेष्ठ है ॥८६–८९॥

अथ तैलसाधनप्रकारो लिख्यते ।

लाक्षादितैल ।

लाक्षाढकं क्वाथयित्वा जलस्य चतुराढकैः । चतुर्थांशं शृतं नीत्वा तैलप्रस्थे विनिक्षिपेत् ॥९०॥ मस्त्वाढकं च गोदध्न-स्तत्रैव विनियोजयेत् । शतपुष्पामश्वगन्धां हरिद्रां देवदारु च ॥ ९१ ॥ कटुकां रेणुकां मूर्वां कुष्ठं च मधुयष्टिकाम् । चन्दनं मुस्तकं रास्नां पृथक्कर्षप्रमाणतः ॥ ९२ ॥ चूर्णयेत्तत्र निक्षिप्य साधयेन्मृदुवह्निना । अस्याभ्यङ्गात्प्रशाम्यन्ति सर्वेऽपि विषमज्वराः ॥ ९३ ॥ कासश्वासप्रतिश्यायत्रिक-पृष्ठग्रहास्तथा । वातं पित्तमपस्मारमुन्मादं यक्षराक्षसान् ॥ ९४ ॥ कण्डूं शूलं च दौर्गंध्यं गात्राणां स्फुरणं जयेत् । पुष्टगर्भा भवेदस्य गर्भिण्यभ्यंगतो भृशम् ॥ ९५ ॥

अर्थ-बेरकी अथवा कुडाकी लाख १ आढक लेके उसमें चार आढक जल डालके औटावे, जब सेरभर जल रहे तब उतारके छान लेवे । उसमें तिल्लीका तेल १ प्रस्थ डाले तथा दहीका तोड एक आढक मिलावे । फिर चूर्ण करके डालनेकी ओषधि इस प्रकार डाले-१सौंफ,२असगंध,३ हल्दी, ४ देवदारु, ५ कुटकी, ६रेणुकाबीज,७ मूर्वा,८कूठ, ९ मुलहटी, १० सफेदचंदन, ११ नागरमोथा और १२ रास्ना ये बारह ओषधि एक एक कर्ष लेवे । सबका चूर्ण करके उस तेलमें डालके मन्दाग्निसे पचन करावे, जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके तेलको छान लेवे । इससे देहमें मालिस करनेसे संपूर्ण विषमज्वर, खांसी, श्वास, पीनस, कमरका तथा पीठका शूल, वादीका कोप, पित्तका कोप, मृगी, उन्मादरोग, क्षयरोग, राक्षसादिककी पीडा, खुजली, देहमें दुर्गंधका आना, शूल, अंगस्फुरण, ये संपूर्ण रोग दूर होय । गर्भवती स्त्री भी इसे मर्दन कर सकती है, क्योंकि इससे गर्भ पुष्ट होता है ॥ ९०-९५ ॥

मूर्वा लाक्षा हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठा सेन्द्रवारुणी । बृहती सैंधवं कुष्ठं रास्ना मांसी शतावरी।९६।आरनालाढके तत्र तैलप्रस्थं विपाचयेत् । तैलमङ्गारकं नाम सर्वज्वरविमोक्षणम् ॥ ९७ ॥

अङ्गारतैल सर्वज्वरपर ।

अर्थ-१ मूर्वा, २ लाख, ३ हल्दी, ४ दारुहल्दी, ५मंजीठ, ६इन्द्रायणकी जड,७ कटेरी, ८ सैंधानमक, ९कूठ,१० रास्ना, ११ जटामांसी और १२ शतावर ये बारह ओषधि समान भाग अर्थात् एक एक कर्ष प्रमाण लेवे, सबका चूर्ण करे,चार सेर कांजी तथा एक प्रस्थ तिलका तेल, इनमें पूर्वोक्त चूर्णको मिलायके औटावे, जब

तैलमात्र शेष रहे तब उतार ले, इस तेलको अंगारतैल कहते हैं। इसकी मालिश करनेसे सभी ज्वर दूर होवें ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

नारायणतैल सर्ववातपर ।

अश्वगन्धां बलां विल्वं पाटलां बृहतीद्वयम् । श्वदंष्ट्राऽतिबले निम्बं स्योनाकं च पुनर्नवाम् ॥ ९८ ॥ प्रसारिणीमग्निमन्थं कुर्याद्दशपलं पृथक् । चतुर्द्रोणे जले पक्त्वा पादशेषं शृतं नयेत् ॥ ९९ ॥ तैलाढकेन संयोज्यं शतावर्या रसाढकम् । क्षिपेत्तत्र च गोक्षीरं तैलात्तस्माच्चतुर्गुणम् ॥ १०० ॥ शनैर्विपाचयेदेभिः कल्कैर्द्विपलिकैः पृथक् । कुष्ठलाचंदनं मूर्वा-वचामांसीससैंधवैः ॥ १०१ ॥ अश्वगन्धाबलारास्नाशतपुष्पेन्द्रदारुभिः । पर्णीचतुष्टयेनैव तगरेण प्रसाधयेत् ॥१०२॥ तत्तैलं नावनेऽभ्यङ्गे पाने वस्तौ च योजयेत् । पक्षाघातं हनुस्तम्भं मन्यास्तम्भं कटिग्रहम् ॥१०३॥ खल्लत्वं बधिरत्वं च गतिभंगं गलग्रहम् । गात्रशोषेन्द्रियध्वंसावसृक्शुक्रज्वरक्षयान् ॥१०४॥ अण्डवृद्धिं कुरण्डं च दन्तरोगं शिरोग्रहम् । पार्श्वशूलं च पाङ्गुल्यं बुद्धिहानिं च गृध्रसीम्॥१०५॥अन्यांश्च विषमान् वाताञ्जयेत् सर्वाङ्गसंश्रयान् । अस्य प्रभावाद्वंध्यापि नारी पुत्रं प्रसूयते ॥१०६॥ मर्त्यो गजो वा तुरगस्तैलाभ्यङ्गात्सुखी भवेत् । यथा नारायणो देवो दुष्टदैत्यविनाशनः ॥ १०७ ॥ तथैव वातरोगाणां नाशनं तैलमुत्तमम् ।

अर्थ—१ असंगध, २ गंगेरनकी छाल, ३ बेलगिरी, ४ पाठ, ५ कटेरी, ६ बडी कटेरी,७ गोखरू, ८ अतिबल,९ नीमकी छाल,१० टेंटू, ११ पुनर्नवा, १२ प्रसारणी और १३अरनी ये तेरह ओषधि दश २ पल लेवे। इनको जौकुट करके चार द्रोण जलमें डालके काढा करे । जब चतुर्थांश रहे तब उतारके काढेको छान लेवे । इसमे तिलीका तैल १ आढक डाले शतावरीका रस १ आढक तथा गौका दूध ४ आढक उस तेलमें मिलाय देवे । आगे कल्क करके डालनेकी ओषधि लिखते हैं, जैसे—१ कूठ, २ इलायची, ३ सफेद चंदन, ४ मूर्वा, ५ वच, ६ जटामांसी,७सैंधानमक, ८असगंध, ९ गंगेरनकी छाल,१० रास्ना,११ सौंफ, १२ देवदारु,१३सालपर्णी,१४पृष्ठपर्णी,१५ पृश्निपर्णी, १६ मुद्गपर्णी और १७ तगर ये औषधि दो दो पल लेकर सबका कल्क

करके उस तेलमें मिला देवे। फिर इस तेलको चूल्हे पर चढाकर मंद२अग्निपर रखके परिपाक करे,जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारकर छान लेवे। इस तेलको नारायणतेल कहते हैं। इस तेलको नाकमें डालना, देहमें, लगाना,पीना तथा वस्तिकर्म विषयमें योजना करे। इस तेलसे पक्षाघात कहिये अर्धांगवायु, हनुस्तंभ, मन्यास्तंभ, कटिग्रहवायु, खल्लत्व बहरापन, पैरोंकी वायु, बलग्रह, कमरकी वायु, हाथ पैर आदि गात्रोंका शोषणकर्ता वायु, चक्षुरादि इन्द्रियको नाशकर्ता वायु, रुधिरविकार, धातुक्षयरोग, अंत्रवृद्धि, कुरंड ( जिससे अण्डकोश बढ जावे ), दंतरोग, मस्तकका वायु, पार्श्वशूल. जिससे पांगुरापना होय वह वायु, बुद्धिभ्रंश और कमरसे लेकर पैर पर्यंत गृध्रसी इस नामकी जो वायु होती है वह,ये संपूर्ण वादीके विकार दूर हों। तथा इसके सिवाय दूसरे विषमवायु छोटे बडे सर्वांगमें अथवा अर्धांगमें जो हों वे भी दूर हों। इस तेलके प्रभावसे वंध्या स्त्रियोंके पुत्र होय। यह तेल अंगमें लगानेसे मनुष्योंको सुख होता है, हाथीके तथा घोडोंके अंगमें लगानेसे उनके भी वादीके रोग दूर होते हैं। इसमें दृष्टान्त है कि जैसे नारायण दैत्योंका नाश करते हैं उसी प्रकार यह नारायण तैल संपूर्ण वातरोगोंका नाश करता है ॥ ९८–१०७ ॥

वारुण्यादितैल कम्पवायुपर।

वारुण्या ह्यौत्तरं मूलं कुट्टितं तु पलत्रयम् ॥ १०८ ॥
पलद्वादशकं तैलं क्षणं वह्नौ विपाचितम्।
निष्कत्रयं भक्तयुतं सेवेतास्माद्विनश्यति ॥ १०९ ॥
हस्तकंपः शिरःकंपः कंपो मन्याशिराभवः।

अर्थ–इन्द्रायणकी उत्तर दिशाके तरफ होनेवाली जड ३ पल ले जौ कूट करके फिर बारह पल तिलोंके तेलमें इस कल्कको मिलाकर औटावे। जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे, यह तेल बलाबल विचारके तोले २ भातके साथ खाय तो हस्तकंप, शिरःकंप, गरदनका हिलना इत्यादि वातरोग दूर हों ॥१०८॥१०९॥

बलातैल वातादिकोंपर।

बलामूलकषायेण दशमूलश्रृतेन च ॥११०॥ कुलत्थयवकोलानां क्वाथेन पयसा तथा। अष्टाष्टभागयुक्तेन भागमेकं च तैलकम् ॥ १११ ॥ गणेन जीवनीयेन शतावर्यैन्द्रदारुणा। मञ्जिष्ठा कुष्ठशैलेयतगरागरुसैन्धवैः ॥ ११२ ॥ वचापुनर्नवामांसीसारिवाद्वयपत्रकैः। शतपुष्पाऽश्वगन्धाभ्यामेलया च विपाचयेत् ॥ ११३ ॥ गर्भार्थिनीनां नारीणां पुंसां च क्षीण-

१ जिस वातमें पैर पिंडरी जांघ और पहुँचा मुडजावे उसको खल्लीवात कहते हैं।

रेतसाम् । व्यायामक्षीणगात्राणां सूतिकानां च युज्यते ॥ ११४ ॥ राजयोग्यमिदं तैलं सुखिनां च विशेषतः । बलातैलमिति ख्यातं सर्ववातामयापहम् ॥ ११५ ॥

अर्थ–खरैटीकी जड ८ प्रस्थ ले उसमें बत्तीस प्रस्थ जल डाले। फिर चूल्हेपर चढायके चौथाई शेष रहे इस प्रकार काढा करे। इसको छानके धर देवे तथा दश-मूलकी दश ओषधि आठ प्रस्थ लेकर उनमें ३२ प्रस्थ जल डालके काढा करे, जब चौथाई रहे तब उतारके छान लेवे तथा १ कुलथी, २ जौ और ३ बेरके भीतरका बीज ये तीन ओषधि पृथक् २ आठ २ प्रस्थ लेके बत्तीस प्रस्थ जल डालके चतुर्था-वशेष काढा करे और पृथक् २ छानके धर लेवे, फिर इन पांचों काढोंको मिलाकर इसमें गौका दूध आठ प्रस्थ डाले और तिलोंका तेल एक प्रस्थ मिलावे। फिर चूर्ण करके डालनेकी ओषधि इस प्रकार ले। जैसे ७ जीवनीयगण की ओषधि, ८ सना-वर, ९ देवदारु, १० मंजीठ, ११ कूट, १२ पत्थरका फूल, १३ तगर, १४ अगर, १५ सैंधानमक, १६ वच, १७ पुनर्नवा, १८ जटामांसी, १९ सफेद सारिवा, २० कालीसारिवा, २१ पत्रज, २२ सौंफ, २३ असगन्ध, और २४, इलायची ये चौबीस ओषधि तेलसे चतुर्थांश लेकर कल्क करके उस तेलमें डाल देवे, फिर अग्निपर चढाके तेल शेष रहने पर्यन्त औटावे, फिर इसको छान लेवे, इसको बला तेल कहते है। यह तेल जिस स्त्रीके गर्भकी इच्छा हो उसके देहमें लगावे तथा जिस पुरुषकी धातु क्षीण है उसके तथा बहुत दूर जाने आनेके परिश्रम करके क्षीण है देह जिसका उसके तथा प्रसूता स्त्रियोंके लगावे। यह तेल विशेष करके राजाओं और सुखी मनुष्य सेठ साहूकारोंके योग्य है। इससे सम्पूर्ण वादीके विकार दूर होते हैं ॥ ११०–११५ ॥

प्रसारिणीतैल वातकफजन्यविकार तथा वादीपर।

प्रसारिणीं पलशतं जलद्रोणेन पाचयेत् । पादशिष्टः शृतो ग्राह्यस्तैलं दधि च तत्समम् ॥ ११६ ॥ काञ्जिकं च समं तैलात् क्षीरं तैलाच्चतुर्गुणम् । तैलात्तथाऽष्टमांशेन सर्वकल्कानि योजयेत् ॥ ११७ ॥ मधुकं पिप्पलीमूलं चित्रकः सैन्धवं वचा । प्रसारिणी देवदारु रास्ना च गजपिप्पली ॥११८॥ भल्लातः शतपुष्पा च मांसी चैभिर्विपाचयेत् । एतत्तैलवरं पक्वं वातश्लेष्मामयाञ्जयेत् ॥११९॥ कौब्जं खञ्जत्वपङ्गुत्वे गृध्रसीमर्दितं तथा । हनुपृष्ठशिरोग्रीवाकटिस्तम्भं च नाश-येत्॥१२०॥ अन्यांश्च विषमान्वातान् सर्वानाशु व्यपोहति ।

अर्थ–प्रसारिणी ओषधि १०० पल ले उसमें १ द्रोण जल डालके काढा करे, जब चौथाई जल रहे तब उतारके छान लेवे। इसमें तेल दही और कांजी, ये काढेके

समान पृथक २ लेके मिलावे । फिर तेलसे चौगुना गौका दूध डाले, तथा कल्क करके डालनेकी ओषधि इस प्रकार लेनी, जैसे-१ मुलहटी, २ पीपरामूल, ३ चीतेकी छाल, ४ सेंधानमक, ५ वच, ६ प्रसारिणी, ७ देवदारु, ८ रास्ना, ९ गजपीपल, १० भिलावे, ११ सौंफ और १२ जटामांसी ये बारह ओषधि तेलके अष्टमांश लेके कल्क करके तेलमें मिलाय देवे । फिर अग्निपर चढायके तेलमात्र शेष रक्खे, इसको छानके धर ले । इसकी देहमें मालिश करे तो वात कफके विकार जिससे मनुष्य कुबडा होता है वह खंजवायु, जिससे मनुष्य पांगुला होय सो पांगुवायु, गृध्रसीवायु, हनु ( टोढी ) पृष्ठ ( पीठ ), शिर-गरदन और कमर इनका जकडना ये सब वायु दूर होवें । इसके सिवाय दूसरे विषम वायु जो छोटे बडे हैं वे इस तेलके लगानेसे दूर होवें ॥११६-१२०॥

माषादितैल ग्रीवास्तंभादिकोंपर ।

माषा यवातसी क्षुद्रा मर्कटी च कुरण्टकः॥१२१॥ गोकण्टघ्टुकश्चैषां कुर्यात्सप्तपलं पृथक् । चतुर्गुणाम्बुना पक्त्वा पादशेषं शृतं नयेत् ॥ १२२ ॥ कार्पासास्थीनि बदरं शणबीजं कुलत्थकम् । पृथक् चतुर्दशपलं चतुर्गुणजले पचेत् । चतुर्थांशाव शिष्टंच गृह्णीयात्क्वाथमुत्तमम् ॥१२३॥ प्रस्थैकं छागमांसस्य चतुःषष्टिपले जले । निक्षिप्य पाचयेद्धीमान् पादशेषं रसं नयेत् ॥ १२४ ॥ तैलप्रस्थे ततः क्वाथान् सर्वानेतान् विनिक्षिपेत् । कल्कैरेभिश्च विपचेदमृताकुष्ठनागरैः ॥ १२५ ॥ रास्नापुनर्नवैरण्डैः पिप्पल्या शतपुष्पया । बलाप्रसारिणीभ्यां च मांस्या कटुकया तथा ॥ १२६ ॥ पृथगर्धपलैरेतैः साधयेन्मृदुवह्निना । हन्यात्तैलमिदं शीघ्रं ग्रीवास्तम्भापबाहुकौ ॥ १२७ ॥ अर्धाङ्गशोषमाक्षेपमूरुस्तम्भापतानकौ । शाखाकम्पं शिरःकम्पं विश्वाचीमर्दितं तथा ॥ १२८ ॥ माषादिकामिदं तैलं सर्ववातविकारनुत् ।

अर्थ-१ उडद, २ जव, ३ अलसीके बीज, ४ कटेरी, ५ कौंचके बीज, ६ पियावांसा, ७ गोखरू और ८ टेंटू ये आठ ओषधि सात२ पल लेवे । सबको जौकुट कर सब ओषधियोंसे चौगुना जल डालके औटावे । जब चौथाई शेष रहे तब उतारके छान लेवे । १ कपासके बिनोले २ बेरकी गुठली ३ सनके बीज ४ कुलथी ये चार ओषधि चौदह २ पल लेवे । इनमें चौगुना जल मिलायके चौथाई जल रहने पर्यन्त काढा करे, फिर छानके इसको धर लेवे । पश्चात् बकरेका मांस १ प्रस्थ ले उसमें चौसठ पल जल डालके

औटावे। चौथाई शेष रहे तब उतारके छान लेवे। फिर तिलोंका तेल १ प्रस्थ ले और पूर्वोक्त संपूर्ण काढेको एकत्र करके उसमें तेलको मिलाय देवे। इसमें कल्क करके डालनेकी ओषधि इस प्रकार लेनी—१ गिलोय, २ कूठ, ३ सोंठ, ४ रास्ना, ५ पुनर्नवा, ६ अरण्डकी जड, ७ पीपल, ८ सौंफ, ९ खरेंटीकी छाल, १० प्रसारणी, ११ जटामांसी और १२ कुटकी ये बारह ओषधि आधे २ पल लेकर सबका कल्क करके तेलमें मिलाय देवे, फिर इसको चूल्हेपर चढाकर मन्दाग्निसे पचन करे। जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसको माषादितैल कहते हैं। यह तेल देहमें लगानेसे ग्रीवास्तंभ वायु, अपबाहुकवायु, अर्धांग वायु, आक्षेपक वायु, ऊरुस्तंभ वायु, अपतानक वायु, हस्तपादादिशाखाओंको कंपानेवाला वायु, मस्तक कपानेवाला वायु, विश्वाची वायु, अर्दित वायु ये संपूर्ण दूर होवे॥ १२१–१२८॥

शतावरी तैल शूलादि वाय्वादिकोपघ्न।

शतावरी बलायुग्मं पर्ण्यौ गन्धर्वहस्तकः॥ १२९॥ अश्वगन्धा श्वदंष्ट्रा च बिल्वः काशः कुरण्टकः। एतान् सार्धपलान् भागान् कल्कयेच्च विपाचयेत्॥ १३०॥ चतुर्गुणेन नीरेण पादशेषं शृतं नयेत्। नियोज्य तैलप्रस्थं च क्षीरप्रस्थं विनिक्षिपेत्॥ १३१॥ शतावरीरसप्रस्थं जलप्रस्थं च योजयेत। शतावरी देवदारु मांसी तगरचन्दनम्॥ १३२॥ शतपुष्पा बला कुष्ठमेला शैलेयमुत्पलम्। ऋद्धिमेदा च मधुकं काकोली जीवकस्तथा॥१३३॥ एषां कर्षसमैः कल्कैस्तैलं गोमयवह्निना। पचेत्तेनैव तैलेन स्त्रीषु नित्यं वृषायते॥ १३४॥ नारी च लभते पुत्रं योनिशूलं च नश्यति। अङ्गशूलं शिरःशूलं कामलां पाण्डुतां गरम्॥ १३५॥ गृध्रसीं प्लीहशोषांश्च मेहान् दण्डापतानकम्। सदाहं वातरक्तं च वातपित्तगदार्दितम्॥१३६॥ असृग्दरं तथाध्मानं रक्तपित्तं च नश्यति। शतावरीतैलमिदं कृष्णाऽऽत्रेयेण भाषितम्॥ १३७॥

"ॐनारायणाय स्वाहा।" उत्तराभिमुखो भूत्वा खनेत्खदिरशङ्कुना।"सर्वव्याधिनाशिन्यै स्वाहा।"इति उत्पाटनमन्त्रः। "ॐ कुमारजीवन्यै स्वाहा।" इति पाचनमन्त्रः।

अर्थ—१ शतावर, २ खरेंटीकी जड, ३ गंगेरन, ४ शालपर्णी, ५ पृष्ठपर्णी, ६ अरण्डकी जड, ७ असगन्ध, ८ गोखरू, ९ बेलकी जड, १० कासकी जड, ११ पियावांसा ये ग्यारह ओषधि डेढ २ पल लेवे, उनमें चौगुना जल डालके औटावे

जब चौथाई जल रहे तब उतारके छान लेवे । इसमें तिलका तेल १ प्रस्थ, गौका दूध १ प्रस्थ, शतावरका रस १ प्रस्थ और जल १ प्रस्थ सबको मिलायके एकत्र करे । फिर १ शतावर, २ देवदारु, ३ जटामांसी, ४तगर, ५ सफेदचन्दन, ६ सौंफ, ७ खरेंटीकी जड, ८ कूट, इलायची, १० पत्थरका फल, ११ कमल, १२ ऋद्धि ( ऋद्धिके अभावमें वाराहीकन्द ), १३ मेदा ( मेदाके अभावमें मुलहटी ), १४ मुलहटी, १५ काकोली ( काकोलीके अभावमें असगन्ध ), १६ जीवक ( जीवकके अभावमें विदारीकन्द ) ये सोलह ओषधि एक २ कर्ष ले, सबका कल्क करके उस तेलमें डालके गौके आरने उपलोंकी मन्दाग्निसे तेलको सिद्ध करे, जब तेलमात्र शेष रहे, तब उतारके छान लेवे । इसको शतावरी तेल कहते हैं । यह तेल कृष्णात्रेय ऋषिने कहा है । इसकी मालिस करनेसे पुरुष स्त्रियोंको नित्य अत्यंत प्रीतिके साथ भोगे तथा स्त्रियोंके देहमें लगानेसे पुत्रकी प्राप्ति होय और योनिशूल,अङ्गशूल, मस्तकशूल,कामला, पांडुरोग, विषबाधा, गृध्रसीरोग, तिल्ली,शोष, प्रमेह, दंडापतानक वायु,दाहयुक्त वातरक्त तथा वातपित्तज्वर करके उत्पन्न स्त्रियोंका प्रदर, पेटका फूलना और रक्तपित्त ये संपूर्ण रोग दूर हों ॥ १२९-१३७ ॥

अब वनमेंसे शतावर लानेका प्रकार कहते हैं कि " नारायणाय स्वाहा " इस प्रकार कहके और नमस्कार कर उत्तरकी तरफ मुख करके खैरकी कीलके समान लकडीसे शतावरको खोदे तथा "सर्वव्याधिनाशिन्यै स्वाहा" इस प्रकार कहके और नमस्कार करके उसको उखाडे और " कुमारजीवन्यै स्वाहा " ऐसे कहके और नमस्कार करके इसका पाक करे । इति शतावरीतैलम् ।

कासीसादितैल बवासीरपर ।

**कासीसं लङ्गाली कुष्ठं शुण्ठी कृष्णा च सैन्धवम् ॥ १३८ ॥ मनःशिलाश्वमारश्च विडङ्गं चित्रको वृषः । दन्ती कोशातकी बीजं हेमाह्वा हरितालकम् ॥ १३९ ॥ कल्कैः कर्षमितैरेतैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् । सुधार्कपयसी दद्यात्पृथग्द्विपलसंमिते ॥ १४० ॥ चतुर्गुणं गवां मूत्रं दत्त्वा सम्यक्प्रसाधयेत् । कथितं खरनादेन तैलमर्शोविनाशनम् ॥ १४१ ॥ क्षारवत्पातयत्येतदर्शांस्यभ्यंगतो भृशम् । वलीर्न दूषयत्येतत् क्षारकर्मकरं स्मृतम् ॥ १४२ ॥**

अर्थ-१ हीराकसीस,२कलयारी,३कूठ,४सोंठ,५पीपल, ६ सैंधानमक, ७ मनशिल, ८सफेद कनेर,९वायविडंग,१०चीतकी छाल,११अडूसा, १२दंती, १३ कडुई तोरईके बीज,१४चोक और १५हरताल,ये१५ ओषधि एक एक कर्षभर ले सबका कल्क करके

तिलके १ प्रस्थ तेलमें मिलाय देवे । थूहरका दूध तथा आकका दूध, ये दोनों दो दो पल ले, सबको तेलमें मिलाय देवे और चौगुना गौका मूत्र ले, इसको भी तेलमें मिलाकर अग्निपर चढायके पाक करे । जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे, यह तेल खरनादऋषिने कहा है, इसे बवासीरके मस्सोंपर क्षार लगानेके समान लगावे । इसके लेपसे गुदाके भीतरके मस्से विना उपद्रवके जडसे उखडके गिर जावें और यह क्षारके समान गुदाकी वलीको नहीं बिगाडता है ॥ १३८-१४२ ॥

पिण्डतैल वातरक्तपर ।

मञ्जिष्ठासारिवासर्जयष्टीसिक्थैः पलोन्मितैः ।
पिण्डाख्यं साधयेत्तैलमैरण्डं वातरक्तनुत ॥ १४३ ॥

अर्थ-१मंजीठ, २सारिवा, ३राल, ४मुलहटी, और ५मोम इनको एक२ पल लेकर कल्क करे, चौगुना अरंडीका तेल लेकर पूर्वोक्त कल्कमें मिलाय दे और पाक होनेके वास्ते कल्कसे चौगुना जल डाले । फिर अग्निपर रखके तेल सिद्ध करे तथा इसमें मोम डाले, जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । यह तेल जिस मनुष्यके वातरक्त रोग होय उसके लगावे तो वातरक्त रोग दूर होवे ॥ १४३ ॥

अर्कतैल खुजली और फोडा आदिपर ।

अर्कपत्ररसे पक्वं हरिद्राकल्कसंयुतम् ।
नाशयेत्सार्षपं तैलं पामां कच्छूं विचर्चिकाम् ॥ १४४ ॥

अर्थ-हलदीका कल्क करके उस कल्कका चौगुना सरसोंका तेल लेवे । इसमें कल्कको मिलाकर तथा तेलसे चौगुना आकके पत्तोंका रस डालके तेलको परिपक्व करे, जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे, इसको देहमें लगानेसे खुजली, कच्छू, दाद, फूटकर दरा पड जावें वे और विचर्चिका रोग दूर होय ॥ १४४ ॥

मरिचादितैल कुष्ठादिकोंपर ।

मरिचं हरितालं च त्रिवृतं रक्तचन्दनम् ॥ १४५ ॥ मुस्तं मनःशिला मांसी द्वे निशे देवदारु च । विशाला करवीरं च कुष्ठमर्कपयस्तथा ॥ १४६ ॥ तथैव गोमयरसं कुर्यात्कर्षमितान्पृथक् । विषं चार्धपलं देयं प्रस्थं च कटुतैलकम् ॥ १४७ ॥ गोमूत्रं द्विगुणं दद्याज्जलं च द्विगुणं भवेत् । मरिचाद्यमिदं तैलं सिध्मकुष्ठहरं परम् ॥ १४८ ॥ जयेत्कुष्ठानि सर्वाणि पुण्डरीकं विचर्चिकाम् । पामां सिध्मानि रक्तं च कण्डूं कच्छूं प्रणाशयेत् ॥ १४९ ॥

अर्थ-१कालीमिरच, २ हरताल, ३ निशोथ, ४लालचन्दन, ५नागरमोथा, ६ मैनसिल, ७ जटामांसी, ८ हल्दी, ९दारुहलदी, १०देवदारु, ११ इन्द्रायनकी जड, १२ कनेर-

की जड, १३ कूट, १४ आकका दूध, १५ गौके गोबरका रस, ये पंद्रह ओषधि एक एक कर्ष लेवे तथा शुद्ध किया हुआ बच्छनागविष आधा पल लेवे, सबको एकत्र पीस कल्ल करके सरसोंके १ प्रस्थ तेलमें मिला दे। तथा तेलसे दुगुना गोमूत्र और पानी डालके औटावे। जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसकी देहमें मालिस करनेसे सिध्म, कुष्ठ आदि संपूर्ण कुष्ठ दूर हों। पुंडरीकनामक कुष्ठ, विचर्चिका, खुजली, चित्रकुष्ठ, कंडू, रक्तकुष्ठ और फोडा ये संपूर्ण रोग दूर होवें ॥ १४५-१४९ ॥

त्रिफलातैल व्रणपर ।

**त्रिफलारिष्टभूनिम्बं द्वे निशे रक्तचन्दनम् ।**
**एतैः सिद्धमरूंषीणां तैलमभ्यञ्जने हितम् ॥ १५० ॥**

अर्थ-१ हरड, २ बहेडा, ३ आंवला, ४ नीमकी छाल, ५ चिरायता, ६ हल्दी, ७ दारुहल्दी और ८ लालचंदन इनका कल्क करके तथा कल्कसे चौगुना तिलका तेल लेवे, इसमें कल्कको डाले। कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते कल्कसे चौगुना जल डालके औटावे, जब केवल तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेय। जिस मनुष्यके अंगपर बहुत व्रण ( फोडे ) हों तथा मुंडेमें फोडा होवे, उसमें लगावे तो सब व्रण दूर हों ॥ १५० ॥

निम्बबीजतैल पलितरोगपर ।

**भावयेन्निम्बबीजानि भृङ्गराजरसेन हि ।**
**तथासनस्य तोयेन तत्तैलं हन्ति नस्यतः ॥ १५१ ॥**
**अकालपलितं सद्यः पुंसां दुग्धान्नभोजिनाम् ।**

अर्थ-नीमके बीजोंमें भांगरेके रसका पुट दे तथा विजयसारकी छालके रसकी पुट देवे, फिर उनका यंत्रद्वारा तेल निकाल लेवे। इस तेलकी नस्य लेवे और पथ्यमें गौका दूध और भात देवे तो जिस मनुष्यके अकालमे सफेद बाल होगये हों वे तत्काल काले भौंरेके समान होजावे ॥ १५१ ॥

मधुयष्टीतेल बाल आनेपर ।

**यष्टीमधुकक्षीराभ्यां नवधात्रीफलैः शृतम् ॥ १५२ ॥**
**तैलं नस्यकृतं कुर्यात्केशान्श्मश्रूणि सर्वशः ।**

अर्थ-मुलहटी और नवीन गीले आंवले इन दोनोंका कल्क करे, तथा कल्कसे चौगुने तिलोंका तेल लेवे, कल्कको मिलाके तेलसे चौगुना गौका दूध तथा कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तैलसे चौगुना जल डाले, सबको एकत्र कर अग्निपर चढाय-कर पाक करे, जब तेल शेष रहे तब उतारके तेलको छान ले। इसकी नस्य देनेसे इस प्राणीके मस्तकके तथा मूंछ डाढीके बाल जो उड गये हैं वे जम जावें ॥ १५२ ॥

करञ्जादितैल इन्द्रलुप्तपर ।

**करञ्जश्चित्रको जाती करवीरश्च पाचितम् ॥ १५३ ॥**
**तैलमेभिर्द्रुतं हन्यादभ्यङ्गादिन्द्रलुप्तकम् ।**

अर्थ-१ करंजेकी छाल, २ चीतकी छाल, ३ चमेलीके पत्ते, ४ कनेरकी जड़ ये चार औषधि लेकर कल्क करे, तथा कल्कसे चौगुना तिलीका तेल ले, उसमें कल्कको मिलावे और कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तेलसे चौगुना जल डालके औटावे । जब तेलमात्र शेष रहे तब छानके धर रक्खे । यह तेल जिस मनुष्यके मस्तकके अथवा डाढी मूंछके बाल जाते रहे ( उस रोगको इन्द्रलुप्त कहते है ), उसपर लगानेसे तत्काल बाल जम जावें ॥ १५३ ॥

नीलकादितैल पलितदारुण आदि रोगोपर ।

**नीलिका केतकीकन्दं भृंगराजः कुरण्टकः ॥ १५४ ॥ तथा-ऽर्जुनस्य पुष्पाणि बीजकात्कुसुमान्यपि । कृष्णास्तिलाश्च तगरं समूलं कमलं तथा ॥ १५५ ॥ अयोरजः प्रियङ्गुश्च दाडिमत्वग्गुडूचिका । त्रिफला पद्मपङ्कश्च कल्कैरेभिः पृथक्पृथक् ॥ १५६ ॥ कर्पमात्रं पचेत्तैलं त्रिफलाक्वाथसंयुतम् । भृंगराजरसेनैव सिद्धं केशस्थिरीकृतम् ॥ १५७ ॥ अकालपलितं हन्ति दारुणं चोपजिह्विकाम् ।**

अर्थ-१ नीलके पत्ते, २ केतकीका कंद, ३ भांगरा, ४ पियावासा, ५ कोहवृक्षके फूल, ६ विजयसारके फूल, ७ काले तिल, ८ तगर, ९ कंदसहित कमल, १० लोहचूर्ण, ११ फूलप्रियंगु, १२ अनारकी छाल, १३ गिलोय, १४ हरड, १५ बहेडा, १६ आवला और १७ कमलसंबंधी कीच ये सत्रह औषधि एक एक प्रमाण लेवे । कल्क करके कल्कका चौगुना तिलका तेल लेवे । उसमें वह कल्क डालके तेलसे चौगुना त्रिफलेका काढा तथा भांगरेका रस मिलायके औटावे । जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । इसको बालोंमें लगावे तो जमकर दृढ होवे । जिस प्राणीके बाल कुसमयमें सफेद हो गये हो वह इस तेलके लगानेसे काले हो जावें और मस्तकमें जो दारुण रोग होता है वह उपजिह्व रोग ये दूर होवें । यह बालोंमें लगानेसे कल्पके समान चमत्कार दिखाता है ॥ १५४-१५७ ॥

भृंगराजतैल पलितादिरोगोपर ।

**भृंगराजरसेनैव लोहकिट्टं फलत्रिकम् ॥ १५८ ॥**
**सारिवां च पचेत्कल्कैस्तैलं दारुणनाशनम् ।**
**अकालपलितं कण्डूमिन्द्रलुप्तं च नाशयेत् ॥ १५९ ॥**

अर्थ-१ लोहकी कीट अर्थात् मल, २ हरड, ३ बहेडा, ४ आंवला और ५ सारिवा इनका कल्क करे। इस कल्कसे चौगुना तिलका तेल लेकर उसमें कल्कको मिलाकर भांगरेका रस डालके पकावे। जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इस तेलको मस्तकमें लगानेसे दारुण रोग दूर हो। तथा जिस मनुष्यके छोटी अवस्थामें सफेद बाल होगये हों वे इस तेलके लगानेसे काले हो, कंडुरोग दूर हो, मस्तकके, डाढीके और मूँछोंके बाल जो झड गये हों, जिस ठौर चिकनी होगई हो, उस जगह पर भी बाल जम जावें वही यह कल्प है॥ १५८॥ १५९॥

अरिमेदादितैल मुखदन्तादिरोगोंपर।

अरिमेदत्वचं क्षुण्णां पचेच्छतपलोन्मिताम्। जले द्रोणे ततः क्वाथं गृह्णीयात्पादशेषितम् ॥१६०॥ तैलस्यार्धाढकं दत्त्वा कल्कैः कर्षमितैः पचेत्॥ अरिमेदलवङ्गाभ्यां गैरिकागरुपद्मकैः ॥१६१॥ मञ्जिष्ठालोध्रमधुकैर्लाक्षान्यग्रोधमुस्तकैः। त्वग्जातिफलकर्पूरकङ्कोलखदिरैस्तथा ॥१६२॥ पतङ्गधातकीपुष्पसूक्ष्मैलानागकेशरैः। कट्फलेन च संसिद्धं तैलं मुखरुजं जयेत्॥ १६३॥ प्रदुष्टमांसं पलितं शीर्णदन्तं च सौषिरम्। शीतादं दन्तहर्षं च विद्रधिं कृमिदंतकम् ॥१६४॥ दंतस्फुरणदौर्गन्ध्ये जिह्वाताल्वोष्ठजां रुजम्।

अर्थ-काले खैरकी छाल १०० पलको जौकुट करके १ द्रोण जल डालके औटावे, जब चतुर्थांश शेष रहे तब उतारके छान ले। उसमें तिलका तेल आधा आढक डाले इसमें चूर्ण करके डालनेकी औषधि इस प्रकार ले-१ काले खैरकी छाल, २ लौंग, ३ गेरू, ४ अगर, ५ पद्माख, ६ मंजीठ, ७ लोध, ८ मुलहटी, ९ लाख, १० नागरमोथा, ११ वडकी छाल, १२ दालचीनी, १३ जायफल, १४ कपूर, १५ कंकोल, १६ सफेद खैरकी छाल, १७ पतंग, १८ धायके फूल, १९ इलायची, २० नागकेशर और २१ कायफल, ये इक्कीस ओषधियां एक २ कर्ष लेवे। इनका कल्क करके उनको १ प्रस्थ तेलमें मिलायके औटावे। जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसको मुखसंबंधी पीडापर, दांतोका मांस दुष्ट होनेसे उसपर, दांतोके हिलनेपर तथा दांतोंमे छिद्र पडके दूखते हो उसपर, दांतोकी सूजन होनेसे लाल हो जावे उसपर श्यावदन्तरोग, दांतोसे शीतल रूखा खट्टा पदार्थ तथा घोर वायु न सही जावे ऐसा प्रहर्ष नामक दंतरोग है उसपर, तथा दंतविद्रधिपर, दन्तसंबंधी रक्तकृमिरोग इनके दुष्ट होनेसे डाढोंमें काले छिद्र होकर उनसे राध आदि निकलना उसपर, कृमिदन्तके रोगपर, दन्तस्फुटन रोग, दांतोंमें दुर्गंधका आना तथा जीभ तालु होठ इनके रोगपर भी लगावे तो ये संपूर्ण विकार दूर होंय॥ १६०-१६४॥

जात्यादितैल नाडीव्रणादिकोंपर।

जातिनिम्बपटोलानां नक्तमालस्य पल्लवाः॥ १६५॥ सिक्थं समधुकं कुष्ठं द्वे निशे कटुरोहिणी॥ मंजिष्ठा पद्मकं लोध्रमभया नीलमुत्पलम्॥ १६६॥ तुत्थकं सारिवा बीजं नक्तमालस्य दापयेत्। एतानि समभागानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत्॥ १६७॥ नाडीव्रणे समुत्पन्ने स्फोटके कच्छुरोगिषु। सद्यः शस्त्रप्रहारेषु दग्धविद्धेषु चैव हि॥ १६८॥ नखदन्तक्षते देहे व्रणे दुष्टे प्रशस्यते।

अर्थ–चमेली, नीम, परवल और कंजा इनके कोमल २ पत्ते और मोम, मुलहटी, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, मजीठ, पद्माख, लोध, हरड, नील कमल, सारिवा, अमलतासके बीज ये सब एक २ तोला लेवे। सबका चूर्ण कर १ प्रस्थ तिलोंके तेलमें इनको पूर्वोक्त विधिसे पचावे। इस तेलकी मालिशसे नाडीव्रण (नासूर), फोडा, जखम, शस्त्रप्रहारजन्य घाव, दग्ध व्रण, नखदन्तादिकसे हुआ व्रण इत्यादि सब नष्ट होवें॥ १६५–१६८॥

हिंग्वादितैल कर्णशूलपर।

हिङ्गुतुम्बरुशुण्ठीभिः कटुतैलं विपाचयेत्॥ १६९॥
तस्य पूरणमात्रेण कर्णशूलं प्रणश्यति।

अर्थ–१ हींग, २ धनियां, ३ सोंठ इनका कल्क करके उस कल्कसे चौगुना सरसोंका तेल लेकर उसमें कल्कको मिलावे और कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तेलसे चौगुना जल डाले। सबको मिलायके पाक करे। जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसको कानमें डाले तो कर्णशूल दूर होय॥ १६९॥

बिल्वादितैल बधिरतापर।

बालबिल्वानि गोमूत्रे पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत्॥ १७०॥
साजक्षीरं च नीरं च बाधिर्यं हन्ति पूरणात्।

अर्थ–कोमल २ बेलके फलोंको गोमूत्रमें पीसकर कल्क करे, उस कल्कका चौगुना तिलोंका तेल ले, उसमें बेलफलके कल्कको मिलावे। तथा तेलसे चौगुना बकरीका दूध, एवं कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तेलसे चौगुना जल डाले। फिर चूल्हेपर चढायके परिपाक करे, जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसको कानमें डाले तो बहरापन दूर होवे॥ १७०॥

क्षारतैल कर्णस्रावादिकोंपर।

बालमूलकशुण्ठीनां क्षारः क्षारयुतं तथा॥ १७१॥ लव-

णानि च पञ्चैव हिङ्गु शिग्रु महौषधम् । देवदारु वचा कुष्ठं शतपुष्पा रसाञ्जनम् ॥ १७२ ॥ ग्रन्थिकं भद्रमुस्तं च कल्कैः कर्षमितैः पृथक् । तैलं प्रस्थं च विपचेत्कदलीबीजपूरयोः ॥ ॥ १७३ ॥ रसाभ्यां मधुसूक्तेन चातुर्गुण्यमितेन च । पूयस्रावं कर्णनादं शूलं बधिरतां कृमीन् ॥ १७४ ॥ अन्यांश्च कर्णजान् रोगान् मुखरोगांश्च नाशयेत् ।

अर्थ-१ कोमल मूलियोंका खार, २ सज्जीखार, ३ जवाखार, ४ सैंधानमक, ५ संचरनमक, ६ समुद्रका निमक, ७ विडनोन, ८ बांगडाका खार, ९ हींग, १० सहँजनेकी छाल, ११ सोंठ, १२ देवदारु, १३ सौंफ, १४ वच, १५रसोत, १६पीपरामूल, १७ नागरमोथा ये सत्रह ओषधि एक एक कर्ष लेकर सबका कल्क करे। उस कल्कका चौगुना तिलका तेल लेकर इसमें कल्कको मिलावे और तेलसे चौगुना केलाके कंदका रस तथा विजोरेका रस, एवं मधुसूक्त[1] ये उस तेलमें मिलाकर चूल्हेपर चढायके पाक करे। जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसको कानमें डालनेसे कानसे राधका बहना दूर होय तथा कर्णनाद, कर्णशूल और बधिरता ( बहरापन ) दूर होय। इसके सिवाय और जो अनेक प्रकारके कर्णरोग उत्पन्न होते हैं, वे तथा मुखके रोग इससे दूर होते हैं ॥ १७१-१७४ ॥

पाठादितैल पीनसरोगपर ।

पाठा द्वे च निशे मूर्वा पिप्पली जातिपल्लवैः ॥ १७५ ॥
दन्त्या च तैलं संसिद्धं नस्यं स्याद्दुष्टपीनसे ।

अर्थ-१ पाठेकी जड, २ हल्दी, ३ दारुहल्दी, ४ मूर्वा, ५ पीपल, ६ चमेलीके पत्ते, ७ दंतीकी जड ये सात औषधि समान भाग ले कल्क करे। उस कल्कका चागुना तिलोका तेल लेके कल्क मिलाय देवे। तथा कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तैलसे चौगुना जल मिलावे, फिर चूल्हेपर चढायके मन्दाग्निसे पचावे। जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसकी नस्य देवे तो घोर दुर्धर पीनसका रोग दूर होवे ॥ १७५ ॥

व्याघ्रीतैल पूय और पीनसरोगपर ।

व्याघ्रीदन्तीवचाशिग्रुतुलसीव्योषसैन्धवैः ॥ १७६ ॥
कल्कैश्च पाचितं तैलं पूतिनासागदापहम् ।

---

१ कागदी नीबूका रस २ प्रस्थ तथा एक कुडव सहत उसमें डाले एवं पीपलका चूर्ण एक पल डाल किसी मिट्टीके पात्रमे भरके उसका मुख वन्द कर मिट्टीसे लेप देवे। फिर एक महीने पर्यत धानकी राशिमे धरा रहने दे, इसको ' मधुसूक्त ' कहते है।

अर्थ–१ कटेरी, २ दन्तीकी जड, ३ वच, ४ सहँजनेकी छाल, ५ तुलसीके पत्ते. ६ सोंठ, ७ काली मिरच, ८ पीपर और ९ सैंधानमक इनको समान भाग ले कल्क करे। कल्कसे चौगुना तिल्लीका तेल लेवे उसमें कल्कको मिला देवे। तथा कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तेलसे चौगुना जल मिलावे। फिर इसको मन्दाग्निपर पचन करे, जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। जिस मनुष्यके नाकमें पीनस रोग होनेसे राध वहती होय उसको इसकी नस्य देवे तो पीनसका रोग दूर होय ॥ १७६॥

कुष्ठतैल छींक आनेपर।

**कुष्ठं बिल्वकणाशुण्ठीद्राक्षाकल्ककषायवत् ॥ १७७ ॥**
**साधितं तैलमाज्यं वा नस्यात्क्षवथुनाशनम्।**

अर्थ–१ कूठ, २ कोमल बेलफल, ३ पीपल, ४ सोंठ, ५ दाख ये पांच औषधि समान भाग ले कल्क करके उस कल्कके चौगुना तिलोंका तेल, अथवा घी ले उसमें कल्कको मिला दे, कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तेलसे चौगुना जल मिलावे, फिर इसको मधुरी अग्निसे सिद्ध करे, जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इस तेलको जिस प्राणीको अत्यंत छींक आती होय उसकी नाकमें डालनेसे बहुत छींकोंका आना बंद होय ॥ १७७ ॥

गृहधूमादितैल नासार्शपर।

**गृहधूमकणादारुक्षारनक्ताह्वसैन्धवैः ॥ १७८ ॥**
**सिद्धं शिखरिबीजैश्च तैलं नासार्शसां हितम्।**

अर्थ–१ चूल्हेके ऊपरका धूआँ, २ पीपल, ३ देवदारु, ४ जवाखार, ५ करंजकी छाल, ६ सैंधानमक और ७ ओंगाके बीज ये सात औषधि समान भाग ले कल्क करे। कल्कका चौगुना तिलका तेल लेके उसमें कल्कको मिलाय देवे, तथा कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तेलसे चौगुना जल डाले। फिर मधुरी अग्निसे सिद्ध करे। जब केवल तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसका जिस मनुष्यकी नाकमें मांसका मस्सा होय उसको नस्य देवे तो मस्सा टूटके गिर जावे। इस नाकके मस्सेको नासार्श अर्थात् नाककी बवासीर कहते हैं ॥ १७८ ॥

वज्रीतैल सर्वकुष्ठोपर।

**वज्रीक्षीरं रविक्षीरं द्रवं धत्तूरचित्रकम् ॥१७९॥ महिषीविड्भवं द्रावं सर्वांशं तिलतैलकम्। पचेत्तैलावशेषं च गोमूत्रेऽथ चतुर्गुणे ॥१८०॥ तैलावशेषं पक्त्वा च तत्तैलं प्रस्थमात्रकम्। गन्धकाग्निशिलातालं विडङ्गातिविषाविषम् ॥१८१॥ तिक्तकोशातकीकुष्ठं वचामांसीकटुत्रयम्। पीतदारु च**

यष्ट्याह्वं सर्जिकाक्षारजीरकम् ॥ १८२ ॥ देवदारु च कर्षांशं चूर्णं तैले विनिक्षिपेत् । वज्रतैलमिति ख्यातमभ्यङ्गात्सर्वकुष्ठनुत् ॥ १८३ ॥

अर्थ—थूहरका दूध, आकका दूध, धतूरेका रस, चीतेका रस, भैंसके गोबरका रस, ये संपूर्ण रस समानभाग, तथा तिलोंका तेल सब रसोंके समान ले इसमें पूर्वोक्त रसोंका शेष मिलायके मंदाग्निपर पचन करे । जब तेलमात्र शेष रहे तब तेलसे चौगुना गोमूत्र डालके औटावे । जब तेलमात्र रहे तब उतारके छान लेय । फिर इसमे १ गंधक, २ चीतेकी छाल, ३ मैनसिल, ४ हरताल, ५ वायविडंग, ६ अतीस, ७ शुद्ध किया हुआ सिंगिया विष, ८ कडुई तोरई, ९ कूट, १०वच, ११ जटामांसी, १२ सोंठ, १३ कालीमिरच, १४ पीपल, १५ दारुहल्दी, १६ मुलहटी, १७ सज्जीखार, १८ जीरा, १९ देवदारु ये उन्नीस ओषधि एक एक कर्ष ले सबका बारीक चूर्ण करके उस तेलमें मिलायके तेलकी मालिश करे तो संपूर्ण कुष्ठ दूर होवें ॥ १७९-१८३ ॥

करवीरादितैल लोमशातनपर ।

करवीरशिखादंती त्रिवृत्कोशातकीफलम् ।
रंभाक्षारोदके तैलं प्रशस्तं लोमशातनम् ॥ १८४ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने तैलकल्पना नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अर्थ—१ कनेरकी जड़, २ दंतीकी जड़, ३ निसोथ और ४ कडुई तोरई इनका कल्क करके उसमे चौगुना तिलोंका तेल मिलाय दे । फिर केलाके कंदकी राख करके उसका क्षार निकाल लेवे । उस क्षारको तेलसे चौगुना जल डालके औटावे, जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । इस तेलको जिस जगहके बाल दूर करने हों उस जगह लगावे तो बाल उखडकर गिर जावें ॥ १८३ ॥

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृत—शार्ङ्गधरसंहिताया भावप्रकाशिकाभाषाटीकायां द्वितीयखण्डे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

---

# अथ दशमोऽध्यायः १०.

द्रवेषु चिरकालस्थं द्रव्यं यत्सन्धितं भवेत् । आसवारिष्टभेदैस्तत्प्रोच्यते भेषजोचितम् ॥ १ ॥ यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः । अरिष्टः क्वाथसिद्धः स्यात्तयोर्मानं पलोन्मितम् ॥२॥ अनुक्तमानारिष्टेषु द्रवद्रोणे तुलां गुडम् ।

क्षौद्रं क्षिपेद्गुडादर्धं प्रक्षेपं दशमांशकम् ॥ ३ ॥ ज्ञेयः शीतरसः सीधुरपक्वमधुरद्रवैः। सिद्धः पक्वरसः सीधुः सम्पक्वमधुरद्रवैः॥४॥परिपक्वान्नसंधानसमुत्पन्नां सुरां जगुः। सुरामण्डः प्रसन्नः स्यात्ततः कादम्बरी घनः॥ ५ ॥ तदधो जगलो ज्ञेयो मेदको जगलाद्घनः।पुक्कसो हृतसारःस्यात्सुराबीजं च किण्वकम् ॥६॥ यत्तालखर्जूररसैः सन्धिता सा हि वारुणी। कन्दमूलफलादीनि सस्नेहलवणानि च ॥७॥ यत्र द्रवेऽभिपूयन्ते तच्छूक्तमभिधीयते। विनष्टमम्लतां यातं मद्यं वा मधुरद्रवैः ॥ ८ ॥ विनष्टः सन्धितो यस्तु तच्चुक्रमभिधीयते। गुडाम्बुना सतैलेन कन्दमूलफलैस्तथा ॥ ९ ॥ सन्धितं चाम्लतां यातं गुडसूक्तं तदुच्यते। एवमेवेक्षुसूक्तं स्यान्मृद्वीकासम्भवं तथा ॥ १० ॥ तुषाम्बु सन्धितं ज्ञेयमामैर्विदलितैर्यवैः। यवैस्तु निस्तुषैः पक्वैः सौवीरं संधितं भवेत् ॥ ११ ॥ कुल्माषधान्यमण्डादि सन्धितं कांजिकं विदुः।शण्डाकी संधिता ज्ञेया मूलकैः सर्षपादिभिः॥१२॥

अर्थ–जल आदि द्रव (पतले) पदार्थोंमें औषधको भिगो देवे। फिर उसके मुखको बंद कर मुद्रा देकर १ महीने वा १५ दिनतक उसी रीतिसे धरा रहने देवे तो उत्कृष्ट औषध हो। वह आसव आरिष्ट इत्यादि भेदोंसे प्रसिद्ध है, ये सब भेद इस प्रकार जानने-१जल और औषध इनका विना पाक किये ही पूर्वोक्त रीतिसे सिद्धकरे उसको 'आसव' कहते हैं। २ काढा करके उसमें औषधियोंको डालके पूर्वोक्त रीतिसे सिद्ध किया जावे उसको 'आरिष्ट' कहते हैं। इनकी मात्रा १ पलप्रमाण है। जिस अरिष्टके प्रयोगमें जलादिकोंका मान ( तोल ) नहीं कहा, उसमें जलादिक द्रव पदार्थ एक द्रोण डालने चाहिये, और उसमें गुड १ तुला ( १०० पल ) डाले तथा सहत अर्ध तुला ( ५० ) पल डाले। एवं यादि ओषधियोंका चूर्ण डालना होय तो गुडके दशमांश डालके अरिष्टको सिद्ध करे।३ अपक्व ईखके रस आदि मधुर पदार्थोंसे सिद्ध किये हुए मद्यको 'शीतरस सीधु' कहते हैं।४ ईख आदि मधुर द्रव पदार्थोंको पकायके जो मद्य बनाते हैं,उसको 'पक्वरस–सीधु' कहते हैं। ५ तंडुल (चावल) आदि धान्यको उबालके अग्निसंयोग करके यंत्रद्वारा जो मद्य बनाते हैं उसको शास्त्रमें 'सुरा' ( दारु ) कहते

हैं। ६ उस सुराके घन ( संघट्ट ) भागको 'कादंबरी' कहते हैं। और ७ उस सुराके नीचे भागमें जो द्रव ( पतला ) पदार्थ है उसको 'जगल' कहते हैं। ८ उस जगलमें जो घन ( गाढा ) भाग है उसको 'मेदक' कहते हैं। ९ मेदकका सार ( सत्त्व ) निकले हुए भागको 'पुक्कस' कहते हैं। १० सुराबीजको 'किण्वक' कहते हैं। ११ ताड अथवा खजूरके रससे अग्निसंयोग यन्त्रद्वारा जो रस खीचते हैं उसको 'मद्य' और 'वारुणी' कहते हैं। लौकिकमें इसको 'ताडी' और 'खिजूरी दारू' कहते हैं। १२ कन्दमूल फलादिकको उबालके तैलादिक स्नेह करके मिश्रित कर जल अथवा सिरका आदिमें डालते हैं उसको 'सूक्त' कहते हैं और लौकिकमें इसको 'आचार-संधान' कहते हैं। १३ जो मद्य विना खटाईके आये अथवा विना खट्टे हुए मधुर द्रव पदार्थोंको पात्रमे भरके उनका मुख बंद कर उसपर मुद्रा देकर १ महीने या पंद्रह दिन धरा रहनेसे सिद्ध हुई उस मद्यको 'चुक्र' कहते हैं। १४ गुड, जल, तेल, कंद, मूल और फल इन सबको किसी पात्रमें भरके उसके मुखको बन्द कर मुद्रा देकर महीने या पक्ष मात्र धरा रहने देवे। जब खट्टा होजाय तब अपने कार्यमें लावे उसे 'गुडसूक्त' कहते हैं। इसी प्रकार ईख और दाखका सूक्त बनाना चाहिये। १५ कच्चे जवोंको भूनके किसी पात्रमे भरके उसमें पानी डालके उस पात्रके मुखपर मुद्रा देकर कुछ दिन धरा रहने दे उसको 'तुषांबु' कहते हैं। १६ जवोंके तुष दूर करके उनको अग्निपर पकावे। फिर उनमें पानी डालके उस पात्रका मुख बंद कर मुद्रा कर कुछ दिन धरा रहने देवे उसको 'सौवीर' कहते हैं। १७ कुलथी अथवा चावलोंसे पानी डालके सिवाय उसका मंड (मांड) काढ उसमें सोंठ, राई, जीरा, हींग, सैंधानमक, हल्दी इत्यादिक पदार्थ डालके मुख मूँदके मुद्रा लगाकर तीन दिन या चार दिन धरा रहने दे उसको 'कांजी' कहते हैं। १८ मूलीको कतरके उसमे पानी डालके हल्दी, हींग, राई, सैंधानमक, जीरा, सोंठ इत्यादिकोंका चूर्ण डाल पात्रका मुख बंद कर ३-४ दिन धरा रहने दे, उसको 'शंडाकी' कहते हैं। इस प्रकार आसव और अरिष्टादिकोंकी कल्पना जाननी ॥ ३-१२ ॥

उशीरासव रक्तपित्तादिकोंपर।

उशीरं वालकं पद्मं काश्मरीं नीलमुत्पलम्। प्रियंगु पद्मकं लोध्रं मञ्जिष्ठां धन्वयासकम् ॥१३॥ पाठां किराततिक्तं च न्यग्रोधोदुम्बरं शठीम्। पर्पटं पुण्डरीकं च पटोलं काञ्चनारकम् ॥१४॥ जम्बूशाल्मलिनिर्यासं प्रत्येकं पलसंमितान्। भागान्सुचूर्णितान् कृत्वा द्राक्षायाः पलविंशतिम् ॥ १५ ॥

धातकीं षोडशपलां जलद्रोणद्वये क्षिपेत् । शर्करायास्तुलां पक्त्वा क्षौद्रस्यैकतुलां तथा ॥१६॥ मासं च स्थापयेद्भाण्डे मांसीमरिचधूपिते । उशीरासव इत्येष रक्तपित्तनिवारणः ॥ १७ ॥ पाण्डुकुष्ठप्रमेहार्शःकृमिशोथहरस्तथा ।

अर्थ–१ खस, २ नेत्रवाला, ३ लाल कमल, ४ कंभारी, ५ नील कमल, ६ फूल-प्रियंगु, ७ पद्माख, ८ लोध, ९ मंजीठ, १० धमासा, ११ पाठ, १२ चिरायता, १३ कुटकी, १४ वडकी छाल, १५ गूलरकी छाल, १६ कचूर, १७ पित्तपापड़ा, १८ सफेद कमल, १९ पटोलपत्र, २० कचनारकी छाल, २१ जामुनकी छाल, २२ सेमरका गोंद ये बाईस औषधि एक एक पल, दाख बीस पल और धायके फूल १६ पल इन सबका चूर्ण कर दो द्रोण जलमें भिगो देवे, और खाँड १ तुला डाले । एवं सहत १ तुला डालके प्रथम उस पात्रमें जटामांसी और काली मिरचकी धूनी देकर सब वस्तु भरके मुखको खांम दे । उसको एक महीने पर्यंत रहने देवे, पश्चात् मुद्राको खोलके उस रसको छानके निकाल लेवे । इसको 'उशीरासव' कहते हैं । इसको पीवे तो रक्तपित्त, पांडुरोग, कुष्ठ, प्रमेह, बवासीर, कृमिरोग और सूजन ये सब रोग दूर होवे ॥ १३–१७ ॥

कुमार्यासव क्षयादिकोंपर ।

सुपक्वरससंशुद्धं कुमार्याः पत्रमाहरेत् ॥१८॥ यत्नेन रसमादाय पात्रे पाषाणमृन्मये । द्रोणे गुडतुलां दत्त्वा घृतभांडे निधापयेत्॥१९॥माक्षिकं पक्वलोहं च तस्मिन्नर्धतुलां क्षिपेत्। कटुत्रिकं लवङ्गं च चातुर्जातकमेव च ॥ २० ॥ चित्रकं पिप्पलीमूलं विडंगं गजपिप्पली । चव्यकं हपुषा धान्यं क्रमुकं कटुरोहिणी ॥ २१ ॥ मुस्ताफलं त्रिकं रास्ना देवदारु निशाद्वयम् । मूर्वा मधुरसा दन्ती मूलं पुष्करसम्भवम् ॥ २२ ॥ बला चातिबला चैव कपिकच्छुस्त्रिकण्टकम् । शतपुष्पा हिंगुपत्री ह्याकल्लकमुटिङ्गणम् ॥ २३ ॥ पुनर्नवाद्वयं लोध्रं धातुमाक्षिकमेव च ॥ एषां चार्धपलं दत्त्वा धातक्यास्तु पलाष्टकम् ॥ २४ ॥ पलं चार्धपलं चैव पलद्वयमुदाहृतम् । वपुर्वयःप्रमाणेन बलवर्णाग्निदीपनम् ॥२५॥

बृंहणं रोचनं वृष्यं पक्तिशूलनिवारणम् । अष्टावुदरजान्रोगान् क्षयमुग्रं च नाशयेत् ॥ २६ ॥ विंशतिं मेहजान्रोगानुदावर्तमपस्मृतिम् । मूत्रकृच्छ्रमपस्मारं शुक्रदोषं तथाश्मरीम् ॥ ॥ २७ ॥ कृमिजं रक्तपित्तं च नाशयेत्तु न संशयः ।

अर्थ-पुराने घीगुवारके पट्ठेका रस १ द्रोण, पुराना गुड १०० पल, सहत और लोहचूर ये दोनों औषध आधे तोले, १ सोंठ, २ काली मिरच, ३ पीपल, ४ लौंग, ५ दालचीनी, ६ पत्रज, ७ इलायचीके दाने, ८ नागकेशर, ९ चित्रक, १० पीपरामूल, ११ वायविडंग, १२ गजपीपल, १३ चव्य, १४ ह्रीबेर ( हाऊबेर ), १५ धानियां. १६ सुपारी, १७ कुटकी, १८ नागरमोथा, १९ हरड, २० बहेडा, २१ आंवला, २२ देवदारु, २३ हल्दी, २४ दारुहलदी, २४ मूर्वा, २६ प्रसारणी, २७ दन्ती, २८ पुहकरमूल, २९ खरेंटी, ३० नागबला, ३१ कौंचके बीज, ३२ गोखरू, ३३ सौंफ, ३४ हिंगुपत्री, ३५ अकरकरा, ३६ उटंगनके बीज, ३७ सफेद सांठ ( विषखपरा ), ३८ सोंठ, ३९ सुवर्णमाक्षिककी भस्म ये उनतालीस औषध दो दो तोले लेवे । माक्षिकभस्मके सिवाय सबका चूर्ण करे । फिर ऊपर कही हुई ओषधि तथा धायके फूल ८ पल इनको एकत्र करके घीके चिकने बरतनमें भरके ( १ महीने पर्यंत या पन्द्रह दिन ) धरा रहने दे तो यह कुमार्यासव बनके तैयार होवे । इसको बलाबल विचारके १ पल अथवा आधा पल रोगीको देवे तो यह आसव रोगीके बल, वर्ण और अग्निको बढावे, शरीरको पुष्ट करे, पक्ति ( परिणाम ) शूल, सब प्रकारके उदररोग, क्षय, प्रमेह, उदावर्त, अपस्मार, मूत्रकृच्छ्र, शुक्रदोष, पथरी, कृमिरोग और रक्तपित्त इनको भी दूर करे ॥ १८-२७ ॥

पिप्पल्यासव क्षयादिरोगोंपर ।

पिप्पली मरिचं चव्यं हरिद्रा चित्रको घनः ॥ २८ ॥ विडंगं क्रमुको लोध्रः पाठा धात्र्येलवालुकम् । उशीरं चन्दनं कुष्ठं लवङ्गं तगरं तथा ॥२९॥ मांसी त्वगेलापत्रं च प्रियंगुर्नागकेशरम् । एषामर्धपलान् भागान् सूक्ष्मचूर्णीकृताञ्छुभान् ॥३०॥ जलद्रोणद्वये क्षिप्त्वा दद्याद्गुडतुलात्रयम् । पलानि दश धातक्या द्राक्षा षष्टिपला भवेत् ॥ ३१ ॥ एतान्येकत्र संयोज्य मृद्भाण्डे च विनिक्षिपेत् । ज्ञात्वा गतरसं सर्वं पाय-

येदस्यपेक्षया ॥ ३२ ॥ क्षयगुल्मोदरे कार्श्यं ग्रहणीं पाण्डुतां तथा। अर्शांसि नाशयेच्छीघ्रं पिप्पल्याद्यासवस्त्वयम् ॥३३॥

अर्थ-१पीपल, २ काली मिरच, ३ चव्य, ४ हलदी, ५ चीतेकी छाल, ६ नागरमोथा, ७ वायविडंग, ८सुपारी, ९ लोध, १० पाढ, ११ आंवले, १२ एलवालुक, १३ खस, १४सफेद चन्दन, १५कूट, १६ लौंग, १७ तगर, १८जटामांसी, १९ दालचीनी, २० इलायचीके दाने, २१ पत्रज, २२ फूलप्रियंगु और २३ नागकेशर ये तेईस औषध आधे आधे पल लेवे। सबका वारीक चूर्ण करके द्रोण जलमें डाल देवे और गुड तीन तुला डाले। तथा धायके फूल दश पल और दाख साठ पल इन दोनोंको वारीक कूटके उसी जलमें डाल देवे। फिर उस पात्रके मुखको बन्द करके एक महीने धरा रहने दे फिर उस मुद्राको खोलके रसको निकाल लेवे। इसको पिप्पल्यासव कहते हैं। इसको जठराग्निका वलावल विचारके पीवे तो क्षय, गोला, उदर, शरीरकी कृशता, संग्रहणी, पांडुरोग और ववासीर ये सब रोग दूर हो ॥ २८-३३ ॥

लोहासव पाण्डुरोगादिपर।

लोहचूर्णं त्रिकटुकं त्रिफलां च यवानिकाम्। विडंगं मुस्तकं चित्रं चतुःसंख्यापलं पृथक् ॥ ३४ ॥ धातकी कुसुमानां तु प्रक्षिपेत्पलविंशतिम्। चूर्णीकृत्य ततः क्षौद्रं चतुःषष्टिपलं क्षिपेत् ॥ ३५ ॥ दद्याद्गुडतुलां तत्र जलद्रोणद्वयं तथा। घृतभाण्डे विनिक्षिप्य निदध्यान्मासमात्रकम् ॥ ३६ ॥ लोहासवममुं मर्त्यः पिबेदग्निकरं परम्। पाण्डुश्वयथुगुल्मानि जठराण्यर्शसां रुजम् ॥ ३७ ॥ कुष्ठं प्लीहामयं कण्डूं कासं श्वासं भगन्दरम्। अरोचकं च ग्रहणीं हृद्रोगं च विनाशयेत् ॥ ३८॥

अर्थ-१ लोहभस्म, २ सोंठ, ३ काली मिरच, ४ पीपल, ५ हरड, ६ बहेडा, ७ आंवला, ८ अजमोदा, ९ वायविडंग, १० नागरमोथा, ११ चीतेकी छाल ये ग्यारह औषध चार २ पल लेवे तथा धायके फूल बीस पल लेकर सबका चूर्ण करे। ६४ पल सहत तथा एक तुला ( १०० पल ) इन सबको एकत्र करके पूर्वोक्त ओषधियोंके चूर्णको उसमें मिलायकर २ द्रोण जलमे डालके किसी घीके चिकने पात्रमें भरके मुख बन्द कर मुद्रा देकर १महीनेपर्यंत रखा रहने दे। पश्चात् मुद्रा खोलके निकाल

बृंहणं रोचनं वृष्यं पक्तिशूलनिवारणम् । अष्टावुदरजान्रोगान् क्षयमुग्रं च नाशयेत् ॥ २६ ॥ विंशतिं मेहजान्रोगानुदावर्तमपस्मृतिम् । मूत्रकृच्छ्रमपस्मारं शुक्रदोषं तथाश्मरीम् ॥ ॥ २७ ॥ कृमिजं रक्तपित्तं च नाशयेत्तु न संशयः ।

अर्थ—पुराने घीगुवारके पट्ठेका रस १ द्रोण, पुराना गुड १०० पल, सहत और लोहचूर ये दोनों औषध आधे तोले, १ सोंठ, २ काली मिरच, ३ पीपल, ४ लौंग, ५ दालचीनी, ६ पत्रज, ७ इलायचीके दाने, ८ नागकेशर, ९ चित्रक, १० पीपरामूल, ११ वायविडंग, १२ गजपीपल, १३ चव्य, १४ ह्रीबेर ( हाऊबेर ), १५ धानियां. १६ सुपारी, १७ कुटकी, १८ नागरमोथा, १९ हरड, २० बहेडा, २१ आंवला, २२ देवदारु, २३ हल्दी, २४ दारुहलदी, २४ मूर्वा, २६ प्रसारणी, २७ दन्ती, २८ पुहकरमूल, २९ खरेंटी, ३० नागबला, ३१ कौंचके बीज, ३२ गोखरू, ३३ सौंफ, ३४ हिंगुपत्री, ३५ अकरकरा, ३६ उटंगनके बीज, ३७ सफेद सांठ ( विषखपरा ), ३८ सोंठ, ३९ सुवर्णमाक्षिककी भस्म ये उनतालीस औषध दो दो तोले लेवे । माक्षिकभस्मके सिवाय सबका चूर्ण करे । फिर ऊपर कही हुई ओषधि तथा धायके फूल ८ पल इनको एकत्र करके घीके चिकने बरतनमें भरके ( १ महीने पर्यंत या पन्द्रह दिन ) धरा रहने दे तो यह कुमार्यासव बनके तैयार होवे । इसको बलाबल विचारके १ पल अथवा आधा पल रोगीको देवे तो यह आसव रोगीके बल, वर्ण और अग्निको बढावे, शरीरको पुष्ट करे, पक्ति ( परिणाम ) शूल, सब प्रकारके उदररोग, क्षय, प्रमेह, उदावर्त, अपस्मार, मूत्रकृच्छ्र, शुक्रदोष, पथरी, कृमिरोग और रक्तपित्त इनको भी दूर करे ॥ १८–२७ ॥

पिप्पल्यासव क्षयादिरोगोंपर ।

पिप्पली मरिचं चव्यं हरिद्रा चित्रको घनः ॥ २८ ॥ विडंगं क्रमुको लोध्रः पाठा धात्र्येलवालुकम् । उशीरं चन्दनं कुष्ठं लवङ्गं तगरं तथा ॥२९॥ मांसी त्वगेलापत्रं च प्रियंगुर्नागकेशरम् । एषामर्धपलान् भागान् सूक्ष्मचूर्णीकृताञ्छुभान् ॥३०॥ जलद्रोणद्वये क्षिप्त्वा दद्याद्गुडतुलात्रयम् । पलानि दश धातक्या द्राक्षा षष्टिपला भवेत् ॥ ३१ ॥ एतान्येकत्र संयोज्य मृद्भाण्डे च विनिक्षिपेत् । ज्ञात्वा गतरसं सर्वं पाय-

येदग्न्यपेक्षया ॥ ३२ ॥ क्षयगुल्मोदरे कार्श्यं ग्रहणीं पाण्डुतां तथा । अर्शांसि नाशयेच्छीघ्रं पिप्पल्याद्यासवस्त्वयम् ॥३३॥

अर्थ-१पीपल, २ काली मिरच, ३ चव्य, ४ हलदी, ५ चीतेकी छाल, ६ नागरमोथा, ७ वायविडंग, ८सुपारी, ९ लोध, १० पाढ, ११ आंवले, १२ एलवालुक, १३ खस, १४सफेद चन्दन, १५कूट, १६ लौंग, १७ तगर, १८जटामांसी, १९दालचीनी, २० इलायचीके दाने, २१ पत्रज, २२ फूलप्रियंगु और २३ नागकेशर ये तेईस औषध आधे आधे पल लेवे। सबका बारीक चूर्ण करके द्रोण जलमें डाल देवे और गुड तीन तुला डाले। तथा धायके फूल दश पल और दाख साठ पल इन दोनोंको बारीक कूटके उसी जलमें डाल देवे। फिर उस पात्रके मुखको बन्द करके एक महीने धरा रहने दे फिर उस मुद्राको खोलके रसको निकाल लेवे। इसको पिप्पल्यासव कहते हैं। इसको जठराग्निका बलाबल विचारके पीवे तो क्षय, गोला, उदर, शरीरकी कृशता, संग्रहणी, पांडुरोग और बवासीर ये सब रोग दूर हों ॥ २८-३३ ॥

लोहासव पाण्डुरोगादिपर ।

लोहचूर्णं त्रिकटुकं त्रिफलां च यवानिकाम् । विडंगं मुस्तकं चित्रं चतुःसंख्यापलं पृथक् ॥ ३४ ॥ धातकी कुसुमानां तु प्रक्षिपेत्पलविंशतिम् । चूर्णीकृत्य ततः क्षौद्रं चतुःषष्टिपलं क्षिपेत् ॥ ३५ ॥ दद्याद्गुडतुलां तत्र जलद्रोणद्वयं तथा। घृतभाण्डे विनिक्षिप्य निदध्यान्माषमात्रकम् ॥ ३६ ॥ लोहासवममुं मर्त्यः पिबेदग्निकरं परम् । पाण्डुश्वयथुगुल्मानि जठराण्यर्शसां रुजम् ॥ ३७ ॥ कुष्ठं प्लीहामयं कण्डूं कासं श्वासं भगन्दरम् । अरोचकं च ग्रहणीं हृद्रोगं च विनाशयेत् ॥ ३८॥

अर्थ-१ लोहभस्म, २ सोंठ, ३ काली मिरच, ४ पीपल, ५ हरड, ६ बहेडा, ७ आंवला, ८ अजमोदा, ९ वायविडंग, १० नागरमोथा, ११ चीतेकी छाल ये ग्यारह औषध चार २ पल लेवे तथा धायके फूल बीस पल लेकर सबका चूर्ण करे। ६४ पल सहत तथा एक तुला ( १०० पल ) इन सबको एकत्र करके पूर्वोक्त ओषधियोंके चूर्णको उसमे मिलायकर २ द्रोण जलमें डालके किसी घीके चिकने पात्रमें भरके मुख बन्द कर मुद्रा देकर १महीनेपर्यंत रखा रहने दे। पश्चात् मुद्रा खोलके निकाल

लेवे । इसको लोहासव कहते हैं । इस आसवके सेवन करनेसे गुल्म (गोलेका रोग ), बवासीर, कोढ तथा पेटमें जो बांई तरफ प्लीहारोग होता है वह, खुजली, खांसी, श्वास, भगंदर, अरुचि,संग्रहणी, हृदयरोग ये सब दूर होवें ॥ ३४–३८ ॥

मृद्वीकासव ग्रहण्यादिरोगोंपर ।

मृद्वीकायाः पलशतं चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् । द्रोणशेषे सुशीते च पूते तस्मिन्प्रदापयेत् ॥ ३९ ॥ तुले द्वे क्षौद्रखण्डाभ्यां धातक्याः प्रस्थमेव च । कङ्कोलकं लवङ्गं च फलं जात्या-स्तथैव च ॥ ४० ॥ पलांशकं च मरिचं त्वगेलापत्रकेसराः । पिप्पली चित्रकं चव्यं पिप्पलीमूलरेणुके ॥४१॥ घृतभाण्डे विनिक्षिप्य चंदनागरुधूपिते । कर्पूरवासितो ह्येष ग्रहण्यां दीपनः परः ॥४२॥ अर्शसां नाशने श्रेष्ठ उदावर्तस्य गुल्म-नुत् । जठरकृमिकुष्ठानि व्रणानि विविधानि च । अक्षिरो-गशिरोरोगगलरोगांश्च नाशयेत् ॥ ४३ ॥

अर्थ–१०० पल मुनक्का ( दाख ) ले चार द्रोण जलमें औटावे, जब १ द्रोण शेष रहे तब उतार लेवे । जब शीतल जल हो जावे तब छान ले । फिर आगे लिखी हुई औषध इसमें डाले । सहत और खांड प्रत्येक सौ २ पल, धायके फूल १ प्रस्थ और १ कंकोल, २ लौंग, ३ जायफल, ४ काली मिरच, ५ दालचीनी, ६ इलायचीके बीज, ७ पत्रज, ८ नागकेशर, ९ पीपल, १० चीतेकी छाल, ११चव्य, १२ पीपपरामूल, १३ रेणुका ये तेरह औषध एक २ पल लेवे । सबका चूर्ण करके चंदनकी धूनी दिये हुए घीके चिकने बासनमें सबको भर देवे । मुखपर मुद्रा देकर पन्द्रह दिन धरा रहने दे तो यह द्राक्षासव बनके तैयार हो । इसको शुद्ध कपूर करके बासित करनेसे संग्रहणीवालेकी अग्नि प्रदीप्त हो । उसी प्रकार बवासीर, उदा-वर्त्त, गोला, उदर, कृमिरोग, कोढ, व्रण, नेत्ररोग, शिरोरोग और गलेके रोग दूर होवें ॥ ३९–४३ ॥

लोध्रासव प्रेमहादिकोपर ।

लोध्रं शठी पुष्फरमूलमेला मूर्वा विडङ्गं त्रिफला यवानी । चव्यं प्रियङ्गु क्रमुकं विशालां किराततिक्तं कटुरोहिणी च ॥ ४४ ॥ भार्ङ्गी नतं चित्रकपिप्पलीनां मूलं च कुष्ठाति-विषां च पाटाम् । कलिङ्गकं केसरमिन्द्रसाह्वानंतासिपत्रं

मरिचप्लवं च ॥ ४५ ॥ द्रोणेऽम्भसः कर्षसमांश्च पक्त्वा पूते चतुर्भागजलावशेषे। रसार्धभागं मधुनः प्रदाय पक्षं निधेयो घृतभाजनस्थः ॥ ४६ ॥ लोध्रासवोऽयं कफपित्तमेहान्क्षिप्रं निहन्याद्द्विपलप्रयोगात् । पाण्ड्वामयार्शांस्यरुचिं ग्रहण्या दोषं बलासं विविधं च कुष्ठम् ॥ ४७ ॥

अर्थ-१ लोध, २ कचूर, ३ पुहकरमूल, ४ इलायची, ५ मूर्वा, ६ वायविडंग, ७ त्रिफला, ८ अजवायन, ९ चव्य, १० फूलप्रियंगु, ११ सुपारी, १२ इन्द्रायन, १३ चिरायता, १४ कुटकी, १५ भारंगी, १६ तगर, १७ चीतेकी छाल, १८ पीपरामूल १९ कूट, २० अतीस, २१ पाढ, २२ इन्द्रजव, २३ नागकेशर, २४ कोहकी छाल, २५ धमासा, २६ ईख, २७ काली मिरच और २८ क्षुद्रमोथा ये अट्ठाईस औषध प्रत्येक एक २ तोला लेवे। सबका चूर्ण करके एक द्रोण जलमें डालके पकावे, फिर चतुर्थांश शेष रहनेपर छाने, शीतल होनेपर काढेका आधा भाग सहत मिलावे। पश्चात् घीके चिकने बासनमें उसको भरके बासनके मुखपर मुद्रा देकर १५ दिन पर्यंत धरा रहने देवे तो यह लोध्रासव तैयार होवे। इसको देहका बलाबल विचारके दो पल पर्यंत देवे तो कफपित्तके विकार, प्रमेह, पांडुरोग, बवासीर, अरुचि,संग्रहणी आदि अनेक प्रकारके कफ और सर्व प्रकारके कुष्ठरोग दूर होवें ॥४४-४७॥

कुटजारिष्ट सर्वज्वरोंपर।

तुलां कुटजमूलस्य मृद्वीकार्धतुलां तथा ॥ ४८ ॥ मधुकं पुष्पकाश्मर्यौ भागान् दशपलोन्मितान्। चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा क्वाथे द्रोणावशेषिते ॥ ४९ ॥ धातक्या विंशतिपलं गुडस्य च तुलां क्षिपेत्। माषमात्रं स्थितो भाण्डे कुटजारिष्ट-संज्ञितः ॥५०॥ ज्वरान् प्रशमयेत्सर्वान् कुर्यात्तीक्ष्णं धनञ्जयम्।

अर्थ-कुडेकी जड १ तुला, १ दाख आधा तुला, महुएके फूल और कंभारीकी जड दश २ पल लेवे। सबको जौकुट करके ४ द्रोण जलमें डालके औटावे। जब १ द्रोण जल शेष रहे तब उतारके कपडेसे छान लेवे। उस जलमें धायके फूलोंका चूर्ण २० पल डाले तथा गुड एक तुला डालके सबको मिलाकर चिकने पात्रमें भरके मुखको बन्द कर मुद्रा देकर एक महीने पर्यंत धरा रहने दे। फिर मुद्राको दूर करके इसको निकाल लेवे। इसे "कुटजारिष्ट" कहते हैं। इस अरिष्टके पीनेसे सर्व प्रकारके ज्वर दूर होवें और अग्नि प्रदीप्त होवे ॥ ४८-५० ॥

विडङ्गारिष्ट विद्रधिआदिपर।

विडङ्गं ग्रंथिकं रास्नाकुटजत्वक्फलानि च ॥ ५१ ॥ पाठैलवालुकं धात्रीभागान् पञ्चपलान् पृथक् । अष्टद्रोणेऽम्भसः पक्त्वा कुर्याद्द्रोणावशेषितम् ॥ ५२ ॥ पूते शीते क्षिपेत्तत्र क्षौद्रं पलशतत्रयम् । धातकीं विंशतिपलां त्रिजातं द्विपलं तथा ॥ ५३ ॥ प्रियंगुकाञ्चनाराणां सलोध्राणां पलं पलम् । व्योषस्य च पलान्यष्टौ चूर्णीकृत्य प्रदापयेत् ॥ ५४ ॥ घृतभाण्डे विनिक्षिप्य मासमेकं विधारयेत् । ततः पिबेद्यथार्हं तु जयेद्विद्रधिमूर्ज्जितम् ॥ ५५ ॥ ऊरुस्तम्भाश्मरीमेहान् प्रत्यष्ठीलाभगन्दरान् । गण्डमालां हनुस्तंभं विडङ्गारिष्टसंज्ञितः ॥ ५६ ॥

अर्थ–१ वायविडंग, पीपरामूल, ३ रास्ना, ४ कुडेकी छाल, ५ इन्द्रजौ, ६ पाढ, ७ एलवालुक और ८ आमले ये आठ औषध पांच २ पल लेवे, जौकुट करके इसमें आठ द्रोण जल डालके औटावे। जब एक द्रोण जल शेष रहे तब उतारके छान लेवे। जब शीतल हो जावे तब ३०० तीन सौ पल सहत, वीस पल धायके फूल, १ दालचीनी, २ छोटी-इलायचीके दाने, ३ पत्रज ये तीन औषधि एक एक पल लेवे तथा १ सोंठ, २ काली मिरच, ३ पीपल इन तीन ओषधियोंको मिलायके आठ पल लेवे। इस प्रमाणसे सब औषधियोंको लेकर चूर्ण करे फिर उस काढेमें मिलाकर इनको घीके चिकने बरतनमें भरके बासनका मुख बन्द करे, फिर मुद्रा देकर १ महीने पर्यंत धरा रहने दे, फिर मुद्राको दूर कर निकाल लेवे। इसको विडंगारिष्ट कहते हैं। इस अरिष्टके पीनेसे विद्रधिरोग, ऊरुस्तंभ रोग, पथरीका रोग, प्रमेह, प्रत्यष्ठीला, वादीका रोग, गंडमाला तथा हनुस्तंभ ( वादीका रोग ) इन सबको यह दूर करता है ॥ ५१–५६ ॥

देवदार्वरिष्ट प्रमेहादिकोपर।

तुलार्धं देवदारुः स्याद्वासा च पलविंशतिः । मञ्जिष्ठेन्द्रयवादन्तीतगरं रजनीद्वयम् ॥५७॥ रास्नाकृमिघ्नमुस्तं च शिरीषं खदिरार्जुनौ।भागान् दश पलान् दद्याद्यवान्या वत्सकस्य च ॥५८॥ चन्दनस्य गुडूच्याश्च रोहिण्याश्चित्रकस्य च। भागा-

नष्ट पलानेतानष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥५९॥ द्रोणशेषे कषाये च पूते शीते प्रदापयेत्। धातक्याः षोडशपलं माक्षिकस्य तुलात्रयम् ॥ ६० ॥ व्योषस्य द्विपलं दद्यात्त्रिजातस्य चतुष्पलम्। चतुष्पलं प्रियंगुश्च द्विपलं नागकेशरम् ॥ ६१ ॥ सर्वाण्येतानि संचूर्ण्य घृतभाण्डे निधापयेत्। मासादूर्ध्वं पिबेदेनं प्रमेहं हन्ति दुर्जयम् ॥ ६२ ॥ वातरोगान् ग्रहण्यर्शोमूत्रकृच्छ्राणि नाशयेत्। देवदार्वादिकोऽरिष्टो दद्रुकुष्ठविनाशनः ॥ ६३ ॥

अर्थ-देवदारु ५० पल, अडूसा २० पल और १ मंजीठ, २ इन्द्रजौ, ३ दन्ती, ४ तगर, ५ हल्दी, ६ दारुहलदी, ७ रास्ना, ८ वायविडंग, ९ नागरमोथा, १० शिरस, ११ खैरकी छाल, १२ कोहकी छाल ये बारह औषध दश २ पल लेवे। १ अजमोद, २ कुडेकी छाल, ३ सफेद चन्दन, ४ गिलोय, ५ कुटकी, ६ चीतेकी छाल ये छः ओषधि आठ आठ पल लेवे। फिर सब ओषधियोंको कूट करके उसमे आठ द्रोण जल डालके औटावे, जब १ द्रोणमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। जब शीतल हो जावे तब आगे लिखी ओषधियोंको डाले-धायके फूल १५ पल, सहत तीन तुला और सोंठ, मिर्च, पीपल ये तीनों औषध मिलाकर दो पल लेवे। दालचीनी, इलायचीके दाने, पत्रज ये तीन औषध चार पल लेवे। फूलप्रियंगु और नागकेशर दो दो पल लेवे। सब ओषधियोंका चूर्ण करके उस काढेमें डाल देवे। फिर सहतको मिलाके एकत्र कर घीके चिकने बासनमें भर मुख बन्द कर मुद्रा देके रख दे, जब एक महीना हो जावे तब मुद्राको खोलकर रस निकाल ले, इसको " देवदार्वरिष्ट " कहते हैं। इसको पीवे तो घोर प्रमेहका रोग दूर हो तथा यह वादीका रोग, संग्रहणी, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, दाह और कोढके रोगको नष्ट करे ॥ ५९-६३ ॥

खदिरारिष्ट कुष्ठादिकोंपर।

खदिरस्य तुलार्धं तु देवदारु च तत्समम्। बाकुची द्वादशपला दार्वी स्यात्पलविंशतिः ॥६४॥ त्रिफला विंशतिपला ह्यष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत्। कषाये द्रोणशेषे च पूतशीते विनिक्षिपेत् ॥ ६५ ॥ तुलाद्वयं माक्षिकस्य पलैका शर्करा मता।

धातक्या विंशतिपलं कङ्कोलं नागकेशरम् ॥ ६६ ॥ जातीफलं लवङ्गैलात्वक्पत्राणि पृथक्पृथक् । पलोन्मितानि कृष्णाया दद्यात् पलचतुष्टयम् ॥ ६७ ॥ घृतभाण्डे विनिक्षिप्य मासादूर्ध्वं पिबेत्ततः । महाकुष्ठानि हृद्रोगं पाण्डुरोगार्बुदे तथा ॥६८॥ गुल्मं ग्रन्थिं कृमीञ्श्वासं कासं प्लीहोदरं तथा । एष वै खदिरारिष्टः सर्वकुष्ठनिवारणः ॥ ६९ ॥

अर्थ–खैरकी छाल ५० पल,देवदारु ५०पल, बावची १२पल,दारुहल्दी २०पल,हरड, बहेडा और आमला ये तीनों मिलाके २० पल,इस प्रकार संपूर्ण औषधि लेकर जौकुट करके उसको आठ द्रोण जलमें डाल काढा करे । जब एक द्रोणमात्र जल शेष रहे तब उतारके छान लेवे।जब शीतल हो जावे तब इसमें २०० पल सहत डाले, खांड १०० पल ले, धायके फूल २० पल और १ कंकोल, २ नागकेशर, ३ जायफल, ४ लौंग, ५ इलायची, ६ दालचिनी, ७ पत्रज ये सात ओषधि एक एक पल और पीपल ४ पल इस प्रकार सबको एकत्र करके चूर्ण कर उसको पूर्वोक्त काढेमें मिलाय दे, फिर सबको घीके चिकने पात्रमें भर मुखपर मुद्रा दे १ महीने पर्यंत धरा रहने दे फिर बाद १ महीनेके निकालके पीवे तो इस खदिरारिष्टसे महाकुष्ठ, हृदयरोग, अर्बुदरोग, गोलेका रोग, ग्रंथी ( गांठ ), कृमिरोग, श्वास, खांसी, पेटमें बांई तरफ होनेवाला फियाका रोग ये सब रोग दूर हों ॥ ६४–६९ ॥

बब्बूलारिष्ट क्षयादिकोपर ।

तुलाद्वयं च बब्बूल्याश्चतुर्द्रोणे जले पचेत् । द्रोणशेषे रसे शीते गुडस्य त्रितुलां क्षिपेत् ॥ ७० ॥ धातकीं षोडशपलां कृष्णां च द्विपलां तथा । जातीफलानि कङ्कोलमेलात्वक्पत्रकेशरम्॥७१॥लवङ्गं मरिचं चैव पलिकान्युपकल्पयेत् । मासं भाण्डे स्थितस्त्वेष बब्बूलारिष्टको जयेत् ॥ ७२ ॥ क्षयं कुष्टमतीसारं प्रमेहं श्वासकासनुत् ।

अर्थ–बबूल ( कीकर ) की छाल दो तुला ( २० पल ) लेवे । उसको जोकुट करके ४ द्रोण पानी डालके काढा करे । जब एक द्रोण शेष रहे तब उतारके छान लेवे, जब शीतल हो जावे तब गुड ३०० तीन सौ पल मिलावे । धायके फूल सोलह पल डाले । पीपल २ पल और १ जायफल, २ कंकोल, ३ इलायचीके दाने,

४ दालचीनी, ५ पत्रज, ६ नागकेशर, ७ लौंग, ८काली मिरच एक २ पल प्रमाण लेवे। सबका चूर्ण कर उस काढेमें डालके सबको घीके चिकने बासनमें भरके मुखपर मुद्रा दे १ महीने पर्यंत धरा रहने दे, फिर मुद्राको दूर कर रसको छानके निकाल लेवे। इसको 'बब्बूलारिष्ट' कहते हैं। इसको पीवे तो-क्षय, कुष्ठ, अतिसार, प्रमेह, खांसी, श्वास इन सब रोगोंको दूर करे ॥ ७०-७२ ॥

द्राक्षारिष्ट उरःक्षतादिकोंपर।

द्राक्षातुलार्धं द्विद्रोणे जलस्य विपचेत् सुधीः ॥७३॥ पादशेषे कषाये च पूते शीते विनिक्षिपेत्। गुडस्य द्वितुलां तत्र त्वगेला-पत्रकेशरम् ॥ ७४ ॥ प्रियङ्गुमरिचं कृष्णां विडङ्गं चेति चूर्णयेत् । पृथक्पलोन्मितैर्भागैस्ततो भाण्डे निधापयेत् ॥ ७५ ॥ स्थापयित्वा ततो मासं ततो जातरसं पिबेत् । उरःक्षतं क्षयं हंति कासश्वासगलामयान् ॥ ७६ ॥ द्राक्षा-रिष्टाह्वयः प्रोक्तो बलकृन्मलशोधनः ।

अर्थ-मुनक्का (दाख) ५० पल लेवे। उसमें दो द्रोण पानी डालके औटावे। जब चौथाई जल रहे तब उतारके कपडेसे छान लेवे। जब शीतल हो जावे तब गुड दो तुला डाले। और १ दालचीनी, २ इलायचीके दाने, ३ पत्रज, ४ नागकेशर, ५ फूलप्रियंगु, ६ काली मिरच, पीपल, ८ वायविडंग ये आठ औषधि एक एक पल ले, सबका चूर्ण कर उस काढेमें मिला देवे। फिर सबको एक चिकने पात्रमें भरके मुख बन्द कर मुद्रा देवे और उसको १ महीने ( अथवा एक पखवारे ) धरा रहने दे। सिद्ध होनेके पश्चात् मुद्राको दूर करके रसको छानके निकाल ले, इसको 'द्राक्षारिष्ट' कहते हैं। इस अरिष्टके पीनेसे उरःक्षतरोग, क्षयरोग, खांसी, श्वास और कंठका रोग दूर होवे। यह बल बढाता और मलको साफ कराता है॥ ७३-७६ ॥

रोहितारिष्ट अर्शादिरोपर।

रोहीतकतुलामेकां चतुर्द्रोणे जले पचेत् ॥ ७७ ॥ पादशेषे रसे शीते पूते पलशतद्वयम्। दद्याद्गुडस्य धातक्याः पलषो-डशिका मता ॥७८॥ पञ्चकोलत्रिजातं च त्रिफलां च विनि-क्षिपेत्। चूर्णयित्वा पलांशेन ततो भाण्डे निधापयेत् ॥७९॥ मासादूर्ध्वं च पिबतां गुदजा यान्ति संक्षयम्। ग्रहणी

धातक्या विंशतिपलं कङ्कोलं नागकेशरम् ॥ ६६ ॥ जातीफलं लवङ्गैलात्वक्पत्राणि पृथक्पृथक् । पलोन्मितानि कृष्णाया दद्यात् पलचतुष्टयम् ॥ ६७ ॥ घृतभाण्डे विनिक्षिप्य मासादूर्ध्वं पिबेत्ततः । महाकुष्ठानि हृद्रोगं पाण्डुरोगार्बुदे तथा ॥६८॥ गुल्मं ग्रन्थिं कृमीन्श्वासं कासं प्लीहोदरं तथा । एष वै खदिरारिष्टः सर्वकुष्ठनिवारणः ॥ ६९ ॥

अर्थ-खैरकी छाल ५० पल, देवदारु ५० पल, बावची १२ पल, दारुहल्दी २० पल, हरड, बहेडा और आमला ये तीनों मिलाके २० पल, इस प्रकार संपूर्ण औषधि लेकर जौकुट करके उसको आठ द्रोण जलमें डाल काढा करे। जब एक द्रोणमात्र जल शेष रहे तब उतारके छान लेवे। जब शीतल हो जावे तब इसमें २०० पल सहत डाले, खांड १०० पल ले, धायके फूल २० पल और १ कंकोल, २ नागकेशर, ३ जायफल, ४ लौंग, ५ इलायची, ६ दालचिनी, ७ पत्रज ये सात ओषधि एक एक पल और पीपल ४ पल इस प्रकार सबको एकत्र करके चूर्ण कर उसको पूर्वोक्त काढेमें मिलाय दे, फिर सबको घीके चिकने पात्रमें भर मुखपर मुद्रा दे १ महीने पर्यंत धरा रहने दे फिर बाद १ महीनेके निकालके पीवे तो इस खदिरारिष्टसे महाकुष्ठ, हृदयरोग, अर्बुदरोग, गोलेका रोग, ग्रंथी ( गांठ ), कृमिरोग, श्वास, खांसी, पेटमें बांई तरफ होनेवाला फियाका रोग ये सब रोग दूर हो ॥ ६४-६९ ॥

बब्बूलारिष्ट क्षयादिकोंपर।

तुलाद्वयं च बब्बूल्याश्चतुर्द्रोणे जले पचेत् । द्रोणशेषे रसे शीते गुडस्य त्रितुलां क्षिपेत् ॥ ७० ॥ धातकीं षोडशपलां कृष्णां च द्विपलां तथा । जातीफलानि कङ्कोलमेलात्वक्पत्रकेशरम् ॥७१॥ लवङ्गं मरिचं चैव पलिकान्युपकल्पयेत् । मासं भाण्डे स्थितस्त्वेष बब्बूलारिष्टको जयेत् ॥ ७२ ॥ क्षयं कुष्ठमतीसारं प्रमेहं श्वासकासनुत् ।

अर्थ-बबूल ( कीकर ) की छाल दो तुला ( २० पल ) लेवे। उसको जौकुट करके ४ द्रोण पानी डालके काढा करे। जब एक द्रोण शेष रहे तब उतारके छान लेवे, जब शीतल हो जावे तब गुड ३०० तीन सौ पल मिलावे। धायके फूल सोलह पल डाले। पीपल २ पल और १ जायफल, २ कंकोल, ३ इलायचीके दाने,

४ दालचीनी, ५ पत्रज, ६ नागकेशर, ७ लौंग, ८काली मिरच एक २ पल प्रमाण लेवे । सबका चूर्ण कर उस काढेमें डालके सबको घीके चिकने वासनमें भरके मुखपर मुद्रा दे १ महीने पर्यंत धरा रहने दे, फिर मुद्राको दूर कर रसको छानके निकाल लेवे । इसको 'बब्बूलारिष्ट' कहते हैं । इसको पीवे तो–क्षय, कुष्ठ, अतिसार, प्रमेह, खांसी, श्वास इन सब रोगोंको दूर करे ॥ ७०–७२ ॥

द्राक्षारिष्ट उरःक्षतादिकोपर ।

**द्राक्षातुलार्धं द्विद्रोणे जलस्य विपचेत् सुधीः ॥७३॥ पादशेषे कषाये च पूते शीते विनिक्षिपेत्।गुडस्य द्वितुलां तत्र त्वगेला-पत्रकेशरम् ॥ ७४ ॥ प्रियङ्गुमरिचं कृष्णां विडङ्गं चेति चूर्णयेत् । पृथक्पलोन्मितैर्भागैस्ततो भाण्डे निधापयेत् ॥ ७५ ॥ स्थापयित्वा ततो मासं ततो जातरसं पिबेत् । उरःक्षतं क्षयं हंति कासश्वासगलामयान् ॥ ७६ ॥ द्राक्षा-रिष्टाह्वयः प्रोक्तो बलकृन्मलशोधनः ।**

अर्थ–मुनक्का (दाख) ५० पल लेवे । उसमें दो द्रोण पानी डालके औटावे । जब चौथाई जल रहे तब उतारके कपडेसे छान लेवे । जब शीतल हो जावे तब गुड दो तुला डाले । और १ दालचीनी, २ इलायचीके दाने, ३ पत्रज, ४ नागकेशर, ५ फूलप्रियंगु, ६ काली मिरच, पीपल, ८ वायविडंग ये आठ औषधि एक एक पल ले, सबका चूर्ण कर उस काढेमें मिला देवे । फिर सबको एक चिकने पात्रमें भरके मुख बन्द कर मुद्रा देवे और उसको १ महीने ( अथवा एक पखवारे ) धरा रहने दे । सिद्ध होनेके पश्चात् मुद्राको दूर करके रसको छानके निकाल ले, इसको 'द्राक्षारिष्ट' कहते है । इस अरिष्टके पीनेसे उरःक्षतरोग, क्षयरोग, खांसी, श्वास और कंठका रोग दूर होवे । यह बल बढाता और मलको साफ कराता है॥ ७३–७६ ॥

रोहितारिष्ट अर्शादिरोपर ।

**रोहीतकतुलामेकां चतुर्द्रोणे जले पचेत् ॥ ७७ ॥ पादशेषे रसे शीते पूते पलशतद्वयम् । दद्याद्गुडस्य धातक्याः पलषो-डशिका मता ॥७८॥ पञ्चकोलत्रिजातं च त्रिफलां च विनि-क्षिपेत् । चूर्णयित्वा पलांशेन ततो भाण्डे निधापयेत् ॥७९॥मासादूर्ध्वं च पिबतां गुदजा यान्ति संक्षयम् । ग्रहणी**

पांडुहृद्रोगप्लीहगुल्मोदराणि च । कुष्ठशोफारुचिहरो रोहितारिष्टसंज्ञकः ॥ ८० ॥

अर्थ-लाल रोहिडा १ तुला लेकर जौकुट करके चार द्रोण जलमें डालके काढा करे । जब एक द्रोण जल शेष रहे तब उतारके छान लेवे । जब शीतल हो जावे तब इसमे गुड २०० पल मिलावे । धायके फूल १६ पल, एवं १पीपल, २ पीपरामूल, ३ चव्य, ४ चीतेकी छाल, ५ सोंठ, ६ दालचीनी, ७इलायचीके बीज, ८ पत्रज, ९ हरड, १० बहेडा और ११ आंवला ये ग्यारह ओषधि एक एक पल ले, सबका चूर्ण करके पूर्वोक्त काढेमें डालके उसको किसी चिकने पात्रमे भर मुखपर मुद्रा देकर एक महीने पर्यंत धरा रहने दे, पश्चात् मुद्राको दूर करे । इसको 'रोहितारिष्ट' कहते हैं । इसके पीनेसे बवासीर, संग्रहणी, पांडुरोग, हृदयरोग, प्लीहा, गोलेका रोग, उदर-रोग, कुष्ठ, सूजन और अरुचिरोग ये सब रोग दूर होवें ॥ ७७-८० ॥

दशमूलारिष्ट क्षयप्रमेहादिकोंपर ।

पर्ण्यौ बृहत्यौ गोकण्टो बिल्वोऽग्निमन्थकोऽरलुः । पाटला काश्मरी चेति दशमूलमिहोच्यते ॥ ८१ ॥ दशमूलानि कुर्वीत भागैः पञ्चपलैः पृथक् । पञ्चविंशत्पलं कुर्याच्चित्रकं पौष्करं तथा ॥ ८२ ॥ कुर्याद्विंशत्पलं लोध्रं गुडूची तत्समा भवेत् । पलैः षोडशभिर्धात्री रविसंख्यैर्दुरालभा ॥ ८३ ॥ खदिरो बीजसारश्च पथ्या चेति पृथक्पलैः । अष्टभिर्गुणितं कुष्ठं मञ्जिष्ठा देवदारु च ॥ ८४ ॥ विडङ्गं मधुकं भार्ङ्गी कपित्थोऽक्षः पुनर्नवा । चव्यं मांसी प्रियंगुश्च सारिवा कृष्णजीरकः ॥ ८५ ॥ त्रिवृता रेणुका रास्ना पिप्पली क्रमुकः शठी । हरिद्रा शतपुष्पा च पद्मकं नागकेशरम् ॥ ८६ ॥ मुस्तमिन्द्रयवः शृङ्गी जीवकर्षभकौ तथा । मेदा चान्या महामेदा काकोल्यौ ऋद्धिवृद्धिके ॥ ८७ ॥ कुर्यात् पृथग्द्विपलिकान् पचेदष्टगुणे जले । चतुर्थांशं शृतं नीत्वा मृद्भाण्डे सन्निधापयेत् ॥ ८८ ॥ चतुःषष्टिपलां द्राक्षां पचेन्नीरे चतुर्गुणे । त्रिपादशेषं शीतं

च पूर्वक्वाथे शृतं क्षिपेत् ॥ ८९ ॥ द्वात्रिंशत्पलकं क्षौद्रं दद्याद्गुडचतुः शतम्। त्रिंशत्पलानि धातक्याःकङ्कोलं जल-चन्दनम् ॥९०॥ जातीफलं लवङ्गं च त्वगेलापत्रकेशरम्। पिप्पली चेति संचूर्ण्य भागैर्द्विपलिकैः पृथक् ॥ ९१ ॥ शाणमात्रां च कस्तूरीं सर्वमेकत्र निक्षिपेत्। भूमौ निखात-येद्भाण्डं ततो जातरसं पिबेत् ॥ ९२ ॥ कतकस्य फलं क्षिप्त्वा रसं निर्मलतां नयेत्। ग्रहणीमरुचिं श्वासं कासं गुल्मं भगन्दरम् ॥ ९३ ॥ वातव्याधिं क्षयं छर्दिं पाण्डुरोगं च कामलाम्।कुष्ठान्यर्शांसि मेहांश्च मंदाग्निमुदराणि च ॥९४॥ शर्करामश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं धातुक्षयं जयेत्। कृशानां पुष्टि-जननो वंध्यानां गर्भदः परः। अरिष्टो दशमूलाख्यस्तेजः-शुक्रबलप्रदः ॥ ९५ ॥

**इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायां चिकित्सा-स्थाने आसवारिष्टकल्पनानाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥**

अर्थ-दशमूल प्रत्येक पांच २ पल, चीतेकी छाल २५ पल, पुहकरमूल २५पल, लोध २० पल, गिलोय २० पल, आंवले १६ पल, धमासा १२ पल, खैरकी छाल ८ पल, विजयसार ८ पल और हरड ८ पल। एवं १ कूठ, २ मंजीठ, ३ देवदारु, ४ वायविडंग, ५ मुलहठी, ६ भारंगी, ७ कैथ, ८ बहेडा, ९ पुनर्नवा, १० चव्य, ११ जटा-मांसी, १२ प्रियंगु, १३ सारिवा, १४ कालाजीरा, १५ निसोथ, १६ रेणुकबीज, १७ रास्ना, १८ पीपल, १९ सुपारी, २० कचूर, २१ हल्दी, २२ सौंफ, २३ पद्माख, २४ नागकेशर, २५ नागरमोथा, २६ इंद्रजौ, २७काकडासिंगी और २८ जीवक ऋषभक (इन दोनोंके अभावमें विदारीकन्द लेवे) २९ मेदा और महामेदा (इन दोनोंके अभावमें मुलहठी लेवे), ३० काकोली और क्षीरकाकोली (इन दोनोंके अभावमें अस-गन्ध लेवे) तथा ३१ ऋद्धि और वृद्धि (इनके अभावमें वाराहीकन्द लेवे) ये इकतीस औषधि दो दो पल लेवे। फिर सबको जौकुट करके सब ओषधियोंका आठ गुना जल मिलायके काढा करे। जब चौथाई रहे तब उतारके छान ले और इसको किसी घीके चिकने पात्रमें भर देवे। फिर दाख ६४ पल ले उसमें चौगुना पानी डालके औटावे, जब तीन हिस्सा पानी शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसको भी पहले काढेमें मिलाय देवै, पश्चात् ३१ पल सहत और ४०० चारसौं पल गुड एवं ३० तीस पल

धायके फूल डालने चाहिये । १ कंकोल, २ नेत्रवाला, ३ सफेद चन्दन, ४ जायफल, ५ लौंग, ६ दालचीनी, ७ इलायचीके दाने, ८ पत्रज, ९ नागकेशर और १० पीपल ये दश औषध दो दो पल लेकर चूर्ण करके पूर्वोक्त काढेमें मिलावे । एवं १ शाण कस्तूरीका चूर्ण करके पूर्वोक्त काढेमें मिला दे, फिर उस पात्रका मुख बन्द कर मुद्रा दे । इसको एक महीने अथवा पन्द्रह दिन पर्यंत पृथ्वीमें गडा रहने देवे । जब उन ओषधियोंका उत्तम रस होजावे तब उसको बाहर निकालके मुद्रा करे । फिर इसमे निर्मलीके बीजोंका चूर्ण कर थोडासा डाल देवे तो रस निर्मल होजावे । इसको 'दशमूलारिष्ट' कहते हैं । इस अरिष्टके पीनेसे संग्रहणी, अरुचि, श्वास, खांसी, गोला, भगंदर, वादीका रोग, क्षय रोग, वमन, पांडुरोग, नेत्रोंका कामलारोग, कुष्ठ, बवासीर, प्रमेह, मन्दाग्नि, उदररोग, शर्करा ( पथरीका भेद ), मूत्रकृच्छ्र और धातुक्षय ये संपूर्ण रोग दूर होवे । यह अरिष्ट दुर्बल मनुष्यको पुष्ट करे और वन्ध्या स्त्रीको पुत्र देवे, तेज धातु ( वीर्य ) और बल देता है ॥ ८१-९९ ॥

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृत-शार्ङ्गधरसंहिताया भावप्रकाशिका-भाषाटीकायां द्वितीयखण्डे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

# अथैकादशोऽध्यायः ११.

## स्वर्णादिधातु और उनका शोधन ।

**स्वर्णं तारं ताम्रमारं नागवङ्गौ च तीक्ष्णकम् । धातवः सप्त विज्ञेयास्ततस्ताञ्छोधयेद् बुधः ॥ १ ॥ स्वर्णताराारताम्राणां पत्राण्यग्नौ प्रतापयेत् । निषिंचेत्तत्ततप्तानि तैले तक्रे च काञ्जिके ॥ २ ॥ गोमूत्रे च कुलत्थानां कषाये च त्रिधा त्रिधा । एवं स्वर्णादिलोहानां विशुद्धिः सम्प्रजायते ॥ ३ ॥ नागवङ्गौ प्रतप्तौ च गलितौ तौ निषेचयेत् ॥ त्रिधा त्रिधा विशुद्धिः स्याद्रविदुग्धेन च त्रिधा ॥ ४ ॥**

अर्थ-१ सुवर्ण, २ रूपा ( चांदी ), तांबा, ४ जस्त[१], अथवा पीतल, ५ शीशा, ६ रांग और ७ पोलाद लोह आदि इन सातोंको धातु[२] कहते है । ये सातो धातु पर्वतसे उत्पन्न होती है इससे उनमे थोडा वहुत मैल रहता है, इस वास्ते इनका

१ जस्तके स्थानमें कोई पीतल लेता है परन्तु पीतल मिश्रित धातु है इसवास्ते हमको यह मत मन्तव्य नही है । २ वृद्धत्व, कृशत्व और रोगोंको निवारणकर ये देहको धारण करती है इसीसे सुवर्णादि धातु कहे जाते है ।

बुद्धिमान् वैद्य शोधन इस प्रकार करे कि-सुवर्ण (सोना) रूपा जस्त ताम्र (तांबा) इनको बारीक कंटकवेधी पत्र कर अग्निमें वारंवार तपा तपाकर तेल, छाछ, कांजी, गोमूत्र और कुलथीका काढा इन प्रत्येकमें तीन २ वार बुझावे। इस प्रकार सुवर्णादि सात धातुओंकी शुद्धि होती है। शीशा और रांगा ये दोनों धातु नरम हैं, इसलिये इनकी विशेष शुद्धि कहते हैं। शीशे और रांगेको अग्निमें तपावे। जब गल जावे तब तैलादिकोंमें तीन२ वार बुझा (गेर) देवे। तथा आकके दूधमें गलाय २ के बुझावे तो इनकी शुद्धि हो जाती है॥ १-४॥

सुवर्णभस्मकी प्रथम विधि।

**स्वर्णाच्च द्विगुणं सूतमम्लेन सह मर्दयेत्। तद्गोलके समं गन्धं निदध्यादधरोत्तरम्॥ ५॥ गोलकं च ततो रुन्ध्याच्छरावदृढसंपुटे। त्रिंशद्वनोपलैर्दद्यात्पुटान्येवं चतुर्दश॥ ६॥ निरुत्थं जायते भस्म गन्धो देयः पुनः पुनः।**

अर्थ-सुवर्णका बारीक चूर्ण करके १ भाग और शुद्ध किया हुआ पारा २ भाग ले, दोनोंको खरलमें डालके कागदी नीबूके रसमें खरल करे। जब सम्पूर्ण पारा सुवर्णके बुरादेपर चढ जावे और उसका गोलासा बँध जावे तब गोलाके समान भाग शुद्ध की हुई आंवलासारगन्धकका बारीक चूर्ण कर फिर मिट्टीके दो शराव ले, प्रथम शरावमे आधी गन्धकको बिछायके उसपर उस सुवर्ण और पारेके गोलेको रख देवे फिर बाकी गन्धक जो बची है उसको उस गोलेके ऊपर बुरकके दूसरे शरावसे बन्द कर देवे और इसके ऊपर सात कपडमिट्टी करे, फिर ३० आरने उपलोंको आधे नीचे रक्खे और आधे ऊपर रक्खे बीचमें सम्पुट रख फूंक देवे। जब स्वांगशीतल हो जावे तब सम्पुटसे उसको निकालके फिर पारेमें घोटे और फिर इसी प्रकार आंच देवे। इस प्रकार १४ चौदह आंच देवे तो सुवर्णकी निरुत्थ भस्म होजायगी। अर्थात् फिर घृत सुहागे आदि डालनेसे भी नहीं जीवेगी। यह सुवर्णमारणकी प्रथम विधि कही है॥ ५॥ ६॥

१ कॉजी बनानेकी क्रिया-मिट्टीकी मथानीको सरसोंके तेलसे पोतकर उसमें निर्मल पानी भरे तथा १ राई, २ जीरा, ३ सैधानमक, ४ हीग, ५ सोंठ और ६ हल्दी इन छः औषधोंका चूर्ण कर चावलोंका भातयुक्त मांड तथा कुलथीका काढा थोडे बॉसके पत्ते ये सब पात्रमें डाल दे तथा पानीके अनुमान माफिक दश पांच उडदके बडे बनाकर उसका मुख बन्द करके तीन दिन धरा रहने दे, जब खट्टी वास आने लगे तब जाने कि कॉजी बन गई। यह कॉजी बनानेकी विधि है। २ शीशा अथवा रॉगेको अग्निसे पिघलाकर तैल कॉजी आदिमें बुझाना चाहे तो प्रथम उस तेल कॉजीके पात्रको छिद्रदार शरावसे ढक देवे फिर उस छिद्रद्वारा शीशे आदिको गेरे अन्यथा वह पिघला हुआ शीशा आदि उछलकर वैद्यके देहपर पडनेका भय रहता है।

सुवर्णमारणकी दूसरी विधि ।

**कांचनं गालिते नागं षोडशांशेन निक्षिपेत् ॥७॥ चूर्णयित्वा तथाम्लेन घृष्ट्वा कृत्वा च गोलकम् । गोलकेन समं गन्धं दत्त्वा चैवाधरोत्तरम् ॥८॥ शरावसम्पुटे धृत्वा पुटेत्त्रिंशद्वनोपलैः । एवं सप्तपुटैर्हेम निरुत्थं भस्म जायते ॥ ९ ॥**

अर्थ-सुवर्णको अग्निके संयोगसे पिघलाकर उसमें सोलहवां हिस्सा शीशा डालके ढाल देवे, फिर उसका रेतीसे चूर्ण करके नींबूके रसमें खरलकर गोला बनावे । उस गोलाके समानभाग शुद्ध गंधक लेकर चूर्ण करे । मिट्टीके दो शराव लेकर एक शरावेमें आधा गन्धक नीचे बिछावे और आधा ऊपर बिछावे, बीचमें उस गोलेको रखके दूसरे शरावेसे मुख बन्द करके कपडमिट्टी कर तीस आरने उपलोंकी आंचमें रखके फूंक देवे । इस प्रकार बारंबार घोटे और बारंबार अग्नि देवे। ऐसे सात अग्नि देनेसे सुवर्णकी उत्तम भस्म होती है और यह मित्रपंचक मिलाकर अग्नि देनेसे भी निरुत्थ भस्म रहती है ॥ ७-९ ॥

सुवर्णकी तीसरी विधि ।

**कांचनाररसैर्घृष्ट्वा समसूतकगंधयोः । कज्जल्या हेमपत्राणि लेपयेत्सममात्रया ॥ १० ॥ कांचनारत्वचः कल्कं मूषायुग्मं प्रकल्पयेत् । धृत्वा तत्संपुटे गोलं मृन्मूषासंपुटे च तत् ॥ ॥ ११ ॥ निधाय संधिरोधं च कृत्वा संशोष्य गोमयैः । वह्निं खरतरं कुर्यादेवं दद्यात्पुटत्रयम् ॥ १२ ॥ निरुत्थं जायते भस्म सर्वकार्येषु योजयेत् । कांचनारप्रकारेण लांगली हंति कांचनम् ॥ १३ ॥ ज्वालामुखी यथा हन्यात्तथा हन्ति मनःशिला ।**

अर्थ-पारा और गंधक दोनो समान भाग लेवे,दोनोंको खरलमें डाल कचनारके रससे खरल करके कजली करे । उस कजलीको समानभाग सुवर्णके पत्रोंपर लेप करे, फिर कचनारकी छालको पीस कल्क करके उसकी दो मूषा बनावे । उस एक मूषामे सोनेके पत्र रखके उसपर दूसरी मूषाको रख दोनोंकी संधि मिलाकर गोला बनावे । उस गोलेको मिट्टीके शरावेमे रख दूसरे शरावसे बंद करके कपडमिट्टी कर देवे । फिर धूपमें सुखाय तीव्र आरने उपलोंकी अग्नि देवे । इस प्रकार तीन अग्निके पुट

१ "कोकिलैः" ऐसा भी पाठान्तर है, तहां कोकिल कहिये कौले ।

देवे तो सुवर्णकी उत्तम निरुत्थ भस्म हो जाती है। यह भस्म संपूर्ण रोगोंपर देनी चाहिये। इसी प्रकार कलयारीके रसमें पारे गन्धकको खरल कर कजली करे और सुवर्णके पत्रोंपर लेप कर कलयारीकी मूषामें रख शरावसंपुटमें धरके फूंक देवे तो सुवर्णकी भस्म होय जैसे ज्वालामुखीके रसमें घोट पत्रोंपर लेपकर मूषामें रख शरावसंपुटमें फूके तो भस्म हो जाती है वैसे ही मनाशिलमें कजली कर लेप करे और मूषाद्वारा शरावसंपुटमें फूंक देय तो भी सुवर्णकी उत्तम भस्म होजाती है॥ १०-१३॥

सुवर्णभस्मकी अन्य विधि।

**शिलासिंदूरयोश्चूर्ण समयोरर्कदुग्धकैः॥ १४॥ सप्तैव भावना दद्याच्छोषयेच्च पुनः पुनः। ततस्तु गलिते हेम्नि कल्कोऽयं दीयते समः॥ १५॥ पुनर्धमेदतितरां यथा कल्को विलीयते। एवं वेलात्रयं दद्यात्कल्कं हेममृतिर्भवेत्॥ १६॥**

अर्थ-मनासिल और सिंदूर समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके आकके दूधमें खरल कर धूपमें सुखा लेवे इस प्रकार सात भावना देवे। फिर सुवर्णको गलाकर उस सुवर्णके समान ऊपर लिखा मनाशिल और सिन्दूरका चूर्ण डाले जब यह चूर्ण मिलकर नष्ट होजावे तबतक अग्निमें रख धौकनीसे अत्यन्त धमावे। फिर समान भाग मनशिलादिकोंका चूर्ण डाले और धमावे। इस प्रकार तीन बार करनेसे सुवर्णकी उत्तम भस्म होजाती है॥ १४-१६॥

सुवर्णभस्मका प्रकारान्तर।

**पारावतमलैर्लिपेदथवा कुक्कुटोद्भवैः। हेमपत्राणि तेषां च प्रदद्यादधरोत्तरम्॥१७॥ गंधचूर्णं समं दत्त्वा शरावयुगसंपुटे। प्रदद्यात्कुक्कुटपुटं पंचभिर्गोमयोपलैः॥१८॥ एवं नव पुटान्दद्याद्दशमं च महापुटम्। त्रिंशद्वनोपलैर्देयं जायते हेमभस्मकम्॥ १९॥ सुवर्णं च भवेत्स्वादु तिक्तं स्निग्धं हिमं गुरु। बुद्धिविद्यास्मृतिकरं विषहारि रसायनम्॥ २०॥**

अर्थ-सुवर्णके पत्र उनपर कबूतर अथवा मुरगेकी बीटका लेप करके उन पत्रोंके समानभाग गंधकका चूर्ण मिट्टीके सरावेमें आधा बिछावे। उसपर सुवर्णके पत्र रखकर फिर आधी गंधक ऊपरसे डाल देवे, फिर दूसरे सरावसे बंद करके कपडमिट्टी कर धूपमें सुखाले फिर इसको गौके गोबरके बडे २ पांच उपले ले अग्नि देवे। ऐसे

नौ पुट देकर दशवींबार तीस उपलोंका महापुट देवे इस प्रकार महापुट देनेसे सुवर्णकी उत्तम भस्म होजाती है । अब इस भस्मके गुण कहते हैं । यह मधुर, तिक्त, स्निग्ध, शीतल और भारी है । यह भस्म बुद्धिकर्ता, विद्याकर्त्ता, स्मरणशक्ति बढानेवाली तथा विषबाधाका नाश करनेवाली और रसायन है ॥ १७-२० ॥

रौप्य ( चांदी ) की भस्म ।

**भागैकं तालकं मर्द्यं याममम्लेन केनचित् । तेन भागत्रयं तारपत्राणि परिलेपयेत् ॥ २१ ॥ धृत्वा मूषापुटे रुद्ध्वा पुटे त्रिंशद्वनोपलैः । समुद्धृत्य पुनस्तालं दत्त्वा रुद्ध्वा पुटे पचेत् ॥ २२ ॥ एवं चतुर्दशपुटैस्तारं भस्म प्रजायते ।**

अर्थ-एक भाग हरताल लेकर नींबूके रसमें १ प्रहर खरल करे। फिर हरतालसे तीन गुणे रूपेके पत्र लेकर उनपर उस हरतालके कल्कका लेप करे । फिर उनको एकके ऊपर एक रखके मिट्टीके सरावके पुटमे रख कपडमिट्टी करके धूपमें सुखा लेवे फिर तीस आरने उपलोके बीचमे उस सरावसंपुटको रखके फूंक देवे । इस प्रकार चौदह अग्निपुट देवे तो रूपेकी उत्तम भस्म हो जाती है ॥ २१ ॥ २२ ॥

रूपेकी भस्म करनेकी दूसरी विधि ।

**स्नुहीक्षीरेण संपिष्टं माक्षिकं तेन लेपयेत् ॥ २३ ॥**
**तालकस्य प्रकारेण तारपत्राणि बुद्धिमान् ।**
**पुटेच्चतुर्दशपुटैस्तारं भस्म प्रजायते ॥ २४ ॥**

अर्थ-सुवर्णमाक्षिक एक भाग लेकर चूर्ण करे । फिर उसको थूहरके दूधमें १ प्रहर खरल कर सुवर्णमाक्षिकसे तिगुने चांदीके पत्र ले उनपर पूर्वोक्त सुवर्णमाक्षिकके कल्कका लेप करके मिट्टीके सरावसंपुटमे रख कपडमिट्टी कर धूपमें सुखा लेवे। पश्चात् उसको आरने उपलोके बीचमे अग्नि देवे । इस प्रकार चौदह पुट देवे तो रूपेकी भस्म हो जाती है ॥ २३ ॥ २४ ॥

ताम्रभस्मकी विधि ।

**सूक्ष्माणि ताम्रपत्राणि कृत्वा संस्वेदयेद्बुधः । वासरत्रयमम्लेन ततः खल्वे विनिक्षिपेत् ॥ २५ ॥ पादांशं सूतकं दत्त्वा याममम्लेन मर्दयेत् । तत उद्धृत्य पत्राणि लेपये-**

द्विगुणेन च ॥ २६ ॥ गन्धकेनाम्लघृष्टेन तस्य कुर्याच्च गोलकम् । ततः पिष्ट्वा च मीनाक्षीं चाङ्गेरीं वा पुनर्नवाम् ॥ २७ ॥ तत्कल्केन बहिर्गोलं लेपयेदंगुलोन्मितम् । धृत्वा तद्गोलकं भाण्डे शरावेण च रोधयेत् ॥ २८ ॥ वालुकाभिः प्रपूर्याथ विभूतिलवणांबुभिः । दत्त्वा भांडमुखे मुद्रां ततश्चुल्यां विपाचयेत् ॥ २९ ॥ क्रमवृद्ध्याग्निना सम्यग्यावद्यामचतुष्टयम् । स्वांगशीतलमुद्धृत्य मर्दयेत्सूरणद्रवैः ॥ ३० ॥ दिनैकं गोलकं कुर्यादर्धं गन्धेन लेपयेत् । सघृतेन ततो मूषापुटे गजपुटे पचेत् ॥ ३१ ॥ स्वांगशीतं समुद्धृत्य मृतं ताम्रं शुभं भवेत् । वान्तिं भ्रांतिं क्लमं मूर्च्छां न करोति कदाचन ॥ ३२ ॥

अर्थ—तांबेके कंटकवेधी पत्रोंके बहुत बारीक नखकेसमान छोटे २ टुकडे कर उनको नींबूके रसमें डालके तीन दिन स्वेदन करे ( पचावे ), फिर उन पत्रोंको और उन पत्रोंका चतुर्थांश पारा लेकर दोनोंको खरलमें डालके नींबूके रससे १ प्रहर घोटे। फिर उन तांबेके पत्रोको खरलसे निकालके उनकी दूनी गन्धक लेके उसको नींबूके रससे खरल करके उन तांबेके पत्रोंपर लेप करके एक गोला बनावे। फिर मीनाक्षी[१] ( मछेछी ) अथवा खट्टाम्ल अथवा पुनर्नवा ( सांठी ) इन तीनों वनस्पतियोंमेंसे जो मिले उसको पीसके उस ताम्रगोलेके चारों तरफ एक[२] एक अंगुल मोटा लेप करे। उस गोलेको किसी पात्रमे धरके उसपर मिट्टीका शराव उलटा ढकके उसके ऊपर मुखपर्यंत बालू भर देवे। फिर राख और नमकको जलमें मिलाके उसकी उस पात्रके मुखपर मुद्रा देकर उस पात्रको चूल्हेपर चढाकर क्रमसे मंद, मध्य और तेज अग्नि चार प्रहर देवे जब शीतल हो जावे तब बाहर निकालके सूरण ( जमीकन्द ) के रससे १ दिन खरल करे। फिर इसका गोला बनाकर उसकी आधी गन्धकको घीमें पीसके उस गोलेके चारो तरफ लेप करे, फिर मिट्टीके दो सरावे लेकर गोलेको एक सरावेमें दूसरेसे बन्द करके कपडमिट्टी करके आरने उपलोके गजपुटमें[३] रखके फूंक देवे। जब

---

१ मीनाक्षीको मत्स्याक्षी कहते है अर्थात कुटकी जाननी ऐसा किसीका मत है। २ अस्मत्सम्प्रदाये द्व्यंगुलं लेपं युक्तम्। ३ सवा हाथ गहरा, सवा हाथ चौडा और इतने लम्बे गड्ढेमें आरने उपलोंको भरके बीचमें औषधिके संपुटको रखके अग्नि देनेको गजपुट कहते है। परन्तु यह प्रमाण ठीक नही है। रसराजसुन्दरके मध्यभागमें यन्त्राध्यायमें लिखा है सो देखो।

शीतल हो जावे तब उस सरावसंपुटको बाहर निकाल उसमेसे ताम्रभस्मको बुद्धि-मानीसे निकाल लेवे। यह भस्म परमोत्तम गुण देनेवाली है इससे वमन, भ्रांति, श्रम और मूर्च्छा कदापि नहीं होती है॥ २९-३२॥

पीतलकी भस्म।

**अर्कक्षीरेण संपिष्टो गंधकस्तेन लेपयेत्। समेनारस्य पत्राणि शुद्धान्यम्लद्रवैर्मुहुः॥ ३३॥ ततो मूषापुटे धृत्वा पुटेद्गज-पुटेन च। एवं पुटद्वयेनैव भस्मारं भवति ध्रुवम्॥ ३४॥ आरवत्कांस्यमप्येवं भस्मतां याति निश्चितम्। अर्कक्षीरं वटक्षीरं निर्गुण्डी क्षीरिका तथा॥ ३५॥ ताम्र-रीति-ध्वनि-वधे समगंधकयोगतः।**

अर्थ-पीतलके पत्र करके अग्निमें तपाकर सात वार अथवा तीन वार निम्बूके रसमें बुझाके शुद्ध करे। फिर उन पत्रोंके समान भाग गन्धक लेकर आकके दूधमें खरल कर उन तांबेके पत्रोंपर लेप कर मिट्टीके प्यालेमें रखके दूसरे प्यालेसे उसका मुख बन्द कर देवे और कपडमिट्टी करके आरने उपलोंके गजपुटमें धरके फूंक देवे। इस प्रकार दो अग्निपुट देनेसे पीतलकी निश्चय भस्म होवे। इसी प्रकार कांसेकी भस्म होती है।

तांबा, पीतल और कांसा इनके मारनेकी दूसरी विधि कहते हैं-तांबा पीतल और कांसा इनमेसे जिसकी भस्म करनी होवे उसके बराबर गन्धक लेकर आकके अथवा बडके अथवा गौके दूधमें खरल करे, अथवा निर्गुंडीके रसमें या दुद्धीके रसमें खरल करके उन पत्रोंपर पृथक् २ लेप करे और सम्पुटमे धर आरने उप-लोंकी पुट देवे तो उक्त ताम्र आदि धातुओंका भस्म होय॥ ३३-३५॥

शीशेकी भस्म।

**तांबूलीरससंपिष्टः शिलालेपात्पुनः पुनः॥ ३६॥**
**द्वात्रिंशद्भिः पुटैर्नागो निरुत्थो याति भस्मताम्।**

अर्थ-नागरवेलके पानोका रस निकालके उसमे शीसेके समान भाग मनशि-लको पीसे और शीशेके पत्रोंपर उस ( मनशिल ) का लेप करे और मिट्टीके दो शरावे लेकर एकमे उन शीशेके पत्रोंको रखके दूसरेसे उसको बन्द करके कपड-

---

१ "अर्कक्षीरवदाज्यं स्यात्क्षीरं निर्गुंडिका तथा।" इति पाठान्तरम्। २ पुटद्वयं सम्प्रदायानुगतम्।

मिट्टी कर धूपमें सुखाके फिर गढा खोदके आरने उपलोंसे भरके गजपुटकी अग्नि देवे। इस प्रकार बत्तीस अग्नि देवे तो शीशेकी भस्म होवे, फिर नहीं जीवे। इसको नागभस्म अथवा नागेश्वर कहते हैं ॥ ३६ ॥

शीशे मारणका दूसरा प्रकार।

**अश्वत्थचिञ्चत्वक्चूर्णं चतुर्थांशेन निक्षिपेत् ॥ ३७ ॥ मृत्पात्रे द्राविते नागे लोहदर्व्या प्रचालयेत्। यामैकेन भवेद्भस्म तत्तुल्यां च मनःशिलाम् ॥ ३८ ॥ कांजिकेन द्रयं पिष्ट्वा पचेद्गढपुटेन च। स्वाङ्गशीतं पुनः पिष्ट्वा शिलया कांजिकेन च ॥३९॥ पुनः पुटेच्छरावाभ्यामेवं षष्टिपुटैर्मृतिः।**

अर्थ-मिट्टीके ठीकरेको चूल्हेपर चढाय उसमें शीशाको डालके पिघलावे, जब रसरूप होजावे तब पीपलकी छाल, इमलीकी छाल इन दोनोंका चूर्ण शीशेका चौथाई भाग लेवे, उसको शीशाके रसपर थोडा २ बुरकता जावे और लोहेकी कडछीसे चलाता जावे, इस प्रकार १ प्रहर करनेसे शीशेकी भस्म होती है। उस भस्मके समान मनशिल लेकर दोनोंको कांजीमें खरल करे। फिर मिट्टीके दो शरावे ले एकमें उस भस्मको रक्खे और दूसरेसे उसका मुख बन्द कर कपडमिट्टी करके गढा खोद उसमें आरने उपले भरे और बीचमें शराव सम्पुट रखके ऊपरसे फिर आरने उपले भरे। इस प्रकार गजपुटकी अग्नि देवे। जब शीतल होजावे तब बाहर निकाल लेवे। फिर इसमें समान भाग मनशिल मिलायके दोनोंको कांजीमें खरल कर मिट्टीके सरावसंपुटमें डालके कपडमिट्टी करके धूपमें सुखाय आरने उपलोंकी अग्निदेवे। इस प्रकार ६० पुट देनेसे शीशेकी उत्तम भस्म होती है ॥ ३७-३९ ॥

रांगभस्म प्रकार।

**मृत्पात्रे द्राविते वङ्गे चिञ्चाश्वत्थत्वचोरजः ॥४०॥ क्षिप्त्वा तेन चतुर्थांशमयोदर्व्या प्रचालयेत्। ततो द्वियाममात्रेण वंगभस्म प्रजायते ॥४१॥ अथ भस्मसमं तालं क्षिप्त्वाम्लेन प्रमर्दयेत् ॥ ततो गजपुटे पक्त्वा पुनरम्लेन मर्दयेत् ॥४२॥ तालेन दशमांशेन याममेकं ततः पुटेत्। एवं दशपुटैः पक्वो वङ्गस्तु म्रियते ध्रुवम् ॥ ४३ ॥**

अर्थ-मिट्टीके ठीकरेको चूल्हेपर चढाकर उसमे रांगको डालके तपावे। जब रसरूप होजाय तब इमलीकी छाल और पीपलकी छाल इन दोनोंका चूर्ण रांगेसे चतुर्थांश लेकर उस गले हुए रांगपर थोडा २ डालता जावे और लोहेकी कडछीसे

चलाता जाय । इस प्रकार दो प्रहर करे तो रांगेकी भस्म होती है । फिर भस्मके समान हरताल लेकर दोनोंको नींबूके रसमें खरल करके मिट्टीके शरावमे भर करके ऊपरसे कपडमिट्टी कर देवे, गढ्ढा खोदकर आरने उपलोंके गजपुटमें रखके फूंक देवे, जब स्वांगशीतल होजावे तब बाहर निकालके उस भस्मका दशवां हिस्सा हरताल लेकर नींबूके रसमें दोनोको खरल कर शरावसंपुटमें रख कपडमिट्टी करके धूपमें सुखा ले, फिर आरने उपलोंके गजपुटमें रखके फूंक देवे । इस प्रकार इसमें दश अग्निपुट देवे तो रांगकी निश्चय उत्तम भस्म होजावे । इसको वंगभस्म कहते हैं ॥ ४०-४३ ॥

लोहभस्मप्रकार ।

**शुद्धं लोहभवं चूर्णं पातालगरुडीरसैः । मर्दयित्वा पुटेद्वह्नौ दद्यादेवं पुटत्रयम् ॥४४॥ पुटत्रयं कुमार्याश्च कुठारच्छिन्न-कारसैः । पुटषट्कं ततो दद्यादेवं तीक्ष्णमृतिर्भवेत् ॥४५॥**

अर्थ-फौलाद अथवा खेरी लोहका रेतीसे चूरा करके पाताल गरुडी ( छिलहिंटा ) के रसमें खरल कर शरावसंपुटमें भरके कपडमिट्टी कर आरने उपलोंके संपुटमें रखके फूंक देवे । इस प्रकार तीन अग्निपुट देवे । तथा घीकुवारके रसकी तीन अग्निपुट देवे, एवं वनतुलसीके ( अथवा कसोंदीके ) रसकी तीन अग्निपुट देय। इस प्रकार नव पुट देनेसे फौलाद आदि लोहोंकी उत्तम भस्म होय । इसमें जो पुट कहे हैं उन्हे गजपुट जानना ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

लोहभस्मका दूसरा प्रकार ।

**क्षिपेद्द्वादशकांशेन पारदं तीक्ष्णलोहतः । मर्दयेत्कन्यकाद्रावै-र्यामयुग्मं ततः पुटेत् ॥ ४६ ॥ एवं सप्तपुटैर्मृत्युं लोहचूर्ण-मवाप्नुयात् । रसैः कुठारच्छिन्नायाः पाताल गरुडीरसैः ॥ ॥४७॥ स्तन्येन चार्कदुग्धेन तीक्ष्णस्यैवं मृतिर्भवेत् ।**

अर्थ-खेडी लोहको रेतीसे चूर्ण कर उस चूर्णका बारहवां हिस्सा शिंग्रफ लेकर घीकुवारके रसमे दोनोको दो प्रहर खरल करे, फिर मिट्टीके सरावसंपुटमे भरके कपडमिट्टी कर आरने उपलोके बीचमे रखके फूँक देवे । इस प्रकार सात पुट देय तो फौलाद और खेडी आदि लोहकी उत्तम भस्म होती है । लोहभस्म करनेका दूसरा प्रकार और कहते हैं-छिलहिंटाके रस अथवा स्त्रीके दूधमे तथा गौके दूधमे अथवा पियावांसा अथवा आकके दूधमे सिगरफ मिलाय फौलाद लोहेको घोटके पृथक् सात अग्नि देवे तो तीक्ष्ण लोहेकी उत्तम भस्म हो जाती है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

---

१ पुटषट्कमित्यनेन प्रोक्तं पुटत्रयं बोध्यम् । २ कुठारच्छिन्ना कुटजभेद इत्यन्ये तदभावे जम्बुत्वक् इत्यपरे अस्मत्सम्प्रदाये तु तिपानीशब्देन द्रुमविशेषो गृह्यते ॥

लोहभस्मका तीसरा प्रकार।

सूतकाद्विगुणं गन्धं दत्त्वा कुर्याच्च कज्जलीम् ॥ ४८ ॥ द्वयोः समं लोहचूर्णं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः । यामयुग्मं ततः पिंडं कृत्वा ताम्रस्य पात्रके ॥ ४९ ॥ घर्मे धृत्वा ऋबूकस्य पत्रैराच्छादयेद्बुधः। यामार्धेनोष्णता भूयाद्धान्यराशौ न्यसेत्ततः ॥५०॥ तस्योपरि शरावं तु त्रिदिनांते समुद्धरेत् । पिष्ट्वा च गालयेद्वस्त्रादेवं वारितरं भवेत् ॥५१॥ एवं सर्वाणि लोहानि स्वर्णादीन्यपि गालयेत्।शिलागन्धार्कदुग्धाक्ताः स्वर्णाद्याः सर्वधातवः॥५२॥म्रियंते द्वादशपुटैः सत्यं गुरुवचो यथा ।

अर्थ-पारा एक भाग और गन्धक दो भाग लेकर दोनोंकी कजली करे । फिर उस कजलीके समान भाग फौलादका चूरा लेवे । सबको घीकुवारके रसमें दो प्रहर पर्यंत खरल करके गोला बनावे, उसको तांबेके पात्रमें रखके उसके ऊपर अरंडके पत्ते देकर चार घडी पर्यंत धूपमें रख देवे, जब वह गोला गरम होजावे तब मिट्टीके शरावेसे उस तांबेके पात्रका मुख बन्द करके धानकी राशि ( अन्नकी खत्ती ) में तीन दिन पर्यंत गाड देवे । फिर चौथे दिन बाहर निकालकर उस लोहेकी भस्मको कपडछान करके इसको पानीमें डाले । यदि पानीमें तरने लगे तो उस भस्मको उत्तम हुई जानना । इस प्रकार संपूर्ण लोहकी भस्म कपडेसे छानके पानीमें डालके देखे, यदि पानीमे तरने लगे तो उत्तम भस्म हुई जानना । अब दूसरे प्रकारसे संपूर्ण धातुओंके भस्म करनेके विधि कहते हैं-मनशिल और गन्धक इन दोनोंको आकके दूधमें पीसके सुवर्ण आदि संपूर्ण धातुओंपर लेप करके आरने उपलोंकी बारह गजपुट अग्नि देवे तो संपूर्ण धातुओंकी भस्म होवे । इस विषयमें दृष्टान्त है जैसे-गुरुका वचन सत्य होता है उसी प्रकार इस प्रयोग करके संपूर्ण धातुओंकी निश्चय भस्म हो जाती है ॥ ४८-५२ ॥

सात उपधातु ।

माक्षिकं तुत्थकाभ्रौ च नीलाञ्जनाशिलालकाः ॥ ५३ ॥
रसकश्चेति विज्ञेया एते सप्तोपधातवः ।

अर्थ-१ सुवर्णमाक्षिक ( सोनामक्खी ), २ नीलाथोथा, ३ अभ्रक ,४कालासुरमा, ५ मनशिल, ६ हरताल और ७ खपरिया ये सात उपधातु जाननी ॥ ५३ ॥

सुवर्णमाक्षिकका शोधन और मारण ।

माक्षिकस्य त्रयो भागा भागैकं सैन्धवस्य च ॥५४॥ मातु-

लुङ्गद्रवैर्वाथ जम्बीरोत्थद्रवैः पचेत् । चालयेल्लोहजे पात्रे यावत्पात्रं सुलोहितम् ॥ ५५ ॥ भवेत्ततस्तु संशुद्धिं स्वर्णमाक्षिकमृच्छति । कुलत्थस्य कषायेण घृष्ट्वा तैलेन वा पुटेत् । ॥५६॥ तक्रेण वाथ गोमूत्रैः[1] म्रियते स्वर्णमाक्षिकम् ।

अर्थ—सुवर्णमाक्षिक तीन भाग और सेंधानमक एक भाग दोनोंका चूर्ण कर दोनोको लोहेकी कडाहीमें डालके चूल्हेपर चढाकरके नीचे अग्नि जलावे, फिर इसमें बिजोरेका रस अथवा जंभीरीका रस डालके लोहेकी कडछीसे घोटे। जब कडाही लाल होजावे तब नीचे उतार लेवे। जब शीतल होजावे तब सुवर्णमाक्षिककी भस्मको उसमेंसे निकाल लेवे। इस प्रकार शोधन करके उस सोनामक्खीको कुलथीके काढेमें, तिलके तेलमें, छांछमे अथवा गोमूत्रमें खरल कर सरावसंपुटमें रखके कपडमिट्टी कर आरने उपलोकी अग्निमे फूंक देवे तो सुवर्णमाक्षिककी भस्म हो जाती है ॥ ५४—५६ ॥

रौप्यमाक्षिकका शोधन और मारण ।

कर्कोटी मेषशृंग्युत्थैर्द्रवैर्जंबीरजैर्दिनम् ॥ ५७ ॥
भावयेदातपे[2] तीव्रे विमला शुद्ध्यति ध्रुवम् ।

अर्थ—रूपामाखीका चूर्ण कर ककोडा, मेढासिंगी और जंभीरी इन तीनोंके रसमें एक एक दिन खरल कर धूपमें धरनेसे रौप्यमाक्षिक ( रूपामाखी ) शुद्ध होती है। ( इसका मारण सुवर्णमाक्षिकके समान जानना ) ॥ ५७ ॥

नीलेथोथेका शोधन ।

विष्ठया मर्दयेत्तुत्थं मार्जारककपोतयोः ॥ ५८ ॥ दशांशं टंकणं दत्त्वा पचेन्मृदुपुटे[3] ततः । पुटं दध्ना पुटं क्षौद्रैर्देयं तुत्थविशुद्धये ॥ ५९ ॥

अर्थ—बिल्ली और कबूतर ( अथवा पिंडुकिया ) इनकी विष्ठा नीलेथोथेके समान तथा नीलेथोथेका दशवां हिस्सा सुहागा लेकर सबको एकत्र करके खरल करे और मिट्टीके शरावसंपुटमे भर कपडमिट्टी कर आरने उपलोंकी हलकी अग्नि देवे, फिर बाहर निकाल दहीमें खरल कर इसी प्रकार अग्नि देवे फिर सहतमें खरल करके अग्नि देवे तो नीलाथोथा शुद्ध हो जाता है ॥ ५८ ॥ ५९

---

१ कही " वाजमूत्रेण " ऐसा पाठ है, वहां ' बकरेका मूत ' यह अर्थ जानना ।
२ तीव्रघर्माभावे आतपे शोधयेदित्यपि सम्प्रदायः । ३ मृदुपुटं कुक्कुटपुटप्रभृतिकम् ।

अभ्रकका शोधन और मारण।

कृष्णाभ्रकं धमेद्वह्नौ ततः क्षीरे विनिक्षिपेत्। भिन्नपत्रं तु तत्कृत्वा तंडुलीयाम्लयोर्द्रवैः॥ ६०॥ भावयेदष्टयामं तदेवं शुद्ध्यति चाभ्रकम्। कृत्वा धान्याभ्रकं तच्च शोषयित्वाथ मर्दयेत्॥६१॥ अर्कक्षीरैर्दिनं खल्वे चक्राकारं च कारयेत्। वेष्टयेदर्कपत्रैश्च सम्यग्गजपुटे पचेत्॥ ६२॥ पुनर्मर्द्यं पुनः पाच्यं सप्तवारं प्रयत्नतः। ततो वटजटाक्वाथैस्तद्वद्देयं पुट-त्रयम्॥ ६३॥ म्रियते नात्र सन्देहः सर्वरोगेषु योजयेत्। मृतं त्वभ्रं हरेन्मृत्युं जरापलितनाशनम्॥ ६४॥ अनुपानैश्च संयुक्तं तत्तद्रोगहरं परम्॥

अर्थ–काली अभ्रक अर्थात् वज्राभ्रकको कोलोंमें डालके धौंकनीसे अथवा फूकनीसे फूककर तपावे। जब लाल होजावे तब निकालके दूधमें बुझाय दे। फिर उसके पृथक् २ पत्र करके चौलाईका रस और नींबूका रस दोनोंको एकत्र करके उसमे उन पत्रोंको आठ प्रहर पर्यंत भिगोय देवे तो अभ्रक शुद्ध होजाता है। फिर उस अभ्रकको उस रसमेंसे निकालके उसका धान्याभ्रक कर उसको आकके दूधमें एक प्रहर पर्यंत खरल कर गोल २ चक्रके आकार टिकियां बनावे। उनके चारों तरफ आकके पत्ते लपेटके मिट्टीके सरावसम्पुटमें भर उसपर कपडमिट्टी करके धूपमें सुखा लेवे। फिर उसको आरने उपलोंके गजपुटमें रखके फूक देवे। इस प्रकार आकके दूधमे १ एक दिन खरल करे और रात्रिमें पुट देवे ऐसे सात पुट देय। फिर वडकी जटाके काढेमें उस अभ्रकको एक दिन खरल करे और अग्नि देवे, इस प्रकार तीन गजपुट देवे। ऐसी अग्नि देवे तो अभ्रकसे उत्तम भस्म होजाती है इसमे संशय नहीं है। इस अभ्रकसे सम्पूर्ण रोग दूर होवें तथा अकाल मृत्युका भी निवारण हो, बुढापा दूर हो, सफेद बालोंके काले बाल हों तथा इसको जैसे २ अनुपानके साथ जिस २ रोगमे दे तो यह वैसे २ गुणोंको करता है॥ ६०–६४॥

दूसरी विधि।

शुद्धं धान्याभ्रकं मुस्तं शुण्ठी षड्भागयोजितम्॥ ६५॥ मर्दयेत्कांजिकेनैव दिनं चित्रकजै रसैः। ततो गजपुटं दद्यात्त-

[1] एके चात्र योगत्रयं मन्यन्ते तन्मते तु मुस्तप्रभृति चित्रकान्तैरेको योगः केवलं त्रिफलया द्वितीय. बलाप्रभृतिसुरणान्तैस्तृतीयः।

स्मादुद्धृत्य मर्दयेत् ॥ ६६ ॥ त्रिफलावारिणा तद्वत्पुटेदेवं पुटैस्त्रिभिः । बलागोमूत्रमुसलीतुलसीसूरणद्रवैः ॥ ६७ ॥ मर्दितं पुटितं वह्नौ त्रिस्त्रिवेलं व्रजेन्मृतिम् ।

अर्थ-जिस प्रकार प्रथम विधिमें धान्याभ्रक करनेकी विधि कह आये हैं उस प्रकारसे शुद्ध किया हुआ धान्याभ्रक लेवे उस धान्याभ्रकका छठा हिस्सा नागरमोथा और सोंठ इनका चूर्ण करके उसमे मिलावे । फिर उसको कांजीमें १ दिन खरल करे । पश्चात् एक दिन चीतेके रसमे खरल करके मिट्टीके सरावसम्पुटमें रखके कपडमिट्टी कर आरने उपलोके गजपुटमे रखके फूंक देवे जब शीतल हो जावे तब उसको बाहर निकालके त्रिफलेके काढेमे नित्य प्रति मर्दन करे, इस प्रकार तीन दिन करे और तीनही गजपुटकी आंच देवे पश्चात् खरेंटीका रस अथवा खरेंटीका काढा, गोमूत्र, मुसलीका काढा, तुलसीके पत्तोका रस और जमीकन्द इन पांचोके रसमें अभ्रकको पृथक् खरल करावे । एक एकके तीन २ गजपुट देवे । इस प्रकार गजपुटकी अग्नि देनेसे अभ्रककी परमोत्तम भस्म हो जाती है ॥ ६५-६७ ॥

काला सुरमा और गैरिकादिकोंका शोधन ।

नीलांजनं चूर्णयित्वा जंबीरद्रवभावितम् ॥ ६८ ॥ दिनैकमातपे शुद्धं भवेत्कार्येषु योजयेत । एवं गैरिक-काशीसं टंकणानि वराटिका ॥ ६९ ॥ तुवरी शंखकं कुष्ठं शुद्धिमायाति निश्चितम् ॥

अर्थ-कालेसुरमेका चूर्ण करके जम्भीरीके रसमें खरल कर एक दिन धूपमें रक्खे तो सुरमा शुद्ध हो जाता है । फिर इसको रोगादिकोंपर देना चाहिये । इसी प्रकार गेरू, हीराकसीस, सुहागा,कौडी, फिटकरी, शंख और मुरदाशंख इन सबकी शुद्धि करनी चाहिये ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

मनशिलका शोधन ।

पचेत् त्र्यहमजामूत्रैर्दोलायंत्रे मनःशिलाम् ॥ ७० ॥ भावयेत्सप्तधा पित्तैरजायाः शुद्धिमृच्छति ॥

१ धान्याभ्रककी यह विधि है कि,कतरीहुई अभ्रकको लेकर चतुर्थांश चावलोंके धानको मिलाके उसको कम्वलमें पोटली बाँधके परांतमे रखे। फिर उसपर जल डालताजाय और हाथोंसे उस पोटलीको मीडताजावे।इस प्रकार करनेसे उस कम्वलमें जितना अभ्रक होगा वह वह वहकर उस परांतके पानीमें आजावेगा जब जाने कि सब अभ्रक परांतमें आगया तब उस परांतके पानीको नितारके पटकदेवे और उस अभ्रकके चूरेको लेकर धूपमें सुखायले । इसे धान्याभ्रक कहते है ।

अर्थ-मनशिलको दोलायन्त्रमें डालके बकरीके मूत्रमें तीन दिन पचावे । फिर बाहर निकालके खरलमें डाल सात पुट बकरीके पित्तेकी देवे तो मनशिल शुद्ध हो जाती है ॥ ७० ॥

हरतालका शोधन ।

**तालकं कणशः कृत्वा तच्चूर्णं कांजिके क्षिपेत् ॥ ७१ ॥ दोलायंत्रेण यामैकं ततः कूष्मांडजैर्द्रवैः । तिलतैले पचेद्यामं यामं च त्रिफलाजलैः ॥ ७२ ॥ एवं यंत्रे चतुर्यामं पाच्यं शुद्ध्यति तालकम् ॥**

अर्थ-हरतालके छोटे २ बारीक टुकडे कर उनको कपडेकी पोटलीमें बाँध दोला-यन्त्रद्वारा कांजीमें १ प्रहर पेठेके रसमें, १ प्रहर तिलके तेलमें, तथा त्रिफलाके काढेमें १ प्रहर पचावे । इस प्रकार दोलायन्त्रमें हरतालको चार प्रहर पक्व करनेसे शुद्धि होती है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

खपरियाका शोधन ।

**नृमूत्रे वाथ गोमूत्रे सप्ताहं रसकं क्षिपेत् ॥ ७३ ॥ दोलायंत्रेण शुद्धिः स्यात्ततः कार्येषु योजयेत् ।**

अर्थ-खपरियाको दोलायन्त्रमें डालके मनुष्यके मूत्रमें सात दिन अथवा गोमूत्रमें सातदिन पचानेसे खपरिया शुद्ध हो तब इसको औषधोंमें मिलावे ॥ ७३ ॥

अभ्रकहरतालआदिसे सत्व निकालनेकी विधि ।

**लाक्षामीनपयश्छागं टंकणं मृगशृङ्गकम् ॥ ७४ ॥ पिण्याकं सर्षपाःशिग्रुगुञ्जोर्णागुडसैन्धवाः । यवास्तिक्ता घृतं क्षौद्रं यथालाभं विचूर्णयेत् ॥७५॥ एभिर्विमिश्रिताः सर्वे धातवो गाढवह्निना । मूषाध्माताः प्रजायंते मुक्तसत्त्वा न संशयः ॥७६॥**

अर्थ-१ लाख, २ छोटी मछली, ३ बकरीका दूध, ४ सुहागा[2], ५ हरिणका सींग, ६ तिलोंकी खल, ७ सरसों, ८ सहँजनेके बीज, ९ घूंघची ( चिरमिठी ), १० मेढेके बाल ( ऊन ), ११ गुड, १२ सेंधानिमक, १३ जौ, १४ कुटकी, १५ घी और १६

---

१ काढे आदि पतली वस्तुको किसी गगरे आदिमें भरके जो औषध शोधनी होवे उसकी पोटली बांधके लटकाय देवे इस प्रकार स्वेदनविधि करनेको दोलायन्त्र कहते है ।

२ संम्पूर्ण औषधोंकी अपेक्षा सुहागा सत्त्व निकालनेवाली धातुका चतुर्थांश लेवे, ऐसा किसी आचार्यका मत है ।

सहत ये सोलह वस्तु हरताल आदि जिस वस्तुका सत्त्व निकालना होवे उस धातुका आठवां हिस्सा एक २ औषध लेकर सबका चूर्ण कर एकत्र गोलासा बनाकर मूषामें रखके कोलोकी आँचमें धौंकनेसे खूब धमाकर हरताल अथवा अभ्रक आदि उपधातुओंका सत्त्व निकाले । इस प्रकार जिस वस्तुका सत्त्व निकालना हो निकाल लेवे ॥ ७४-७६ ॥

हीरेका शोधन और मारण ।

**कुलित्थकोद्रवक्वाथैर्दोलायंत्रे विपाचयेत् । व्याघ्रीकंदगतं वज्रं त्रिदिनं शुद्धिमृच्छति ॥७७॥ तप्तं तप्तं तु तद्वज्रं खरमूत्रे निषेचयेत् ॥ पुनस्ताप्यं पुनः सेच्यमेवं कुर्यात्रिसप्तधा ॥७८॥ मत्कुणैस्तालकं पिष्ट्वा यावद्भवति गोलकम् । तद्गोले निहितं वज्रं तद्गोलं वह्निना धमेत् ॥७९॥ सेचयेदश्वमूत्रेण तद्गोले च क्षिपेत्पुनः । रुद्ध्वा ध्मातं पुनः सेच्यमेवं कुर्याच्च सप्तधा[1] ॥ ८० ॥ एवं च म्रियते वज्रं चूर्णं सर्वत्र योजयेत् ॥**

अर्थ-व्याघ्रीकन्दको कूट पीस लुगदी कर उसमें हीरेको रखके उसकी वस्त्रसे पोटली बनाकर दोलायन्त्रमें डालके कुलथीके काढेमें तीन तथा कोदोंधान्यके काढेमें तीन दिन पचावे तो हीरा शुद्ध होता है । फिर उस हीरेको अग्निमें तपा २ कर गधेके मूत्रमें बुझावे, इस प्रकार इक्कीस बार बुझावे । फिर खटमलोंमें मिलायकर हरतालको पीस उसका गोला करके उस गोलेके बीचमें हीरेको रखके उसको मूषामें रखके कोलोंकी तीव्र अग्निसे धमावे । जब अत्यन्त गरम होजावे तब उसको घोडेके मूत्रमें बुझा देवे । फिर उस हीरेको निकाल ले और पूर्वोक्त विधिसे हरतालको खटमलोंके रुधिरमें घोट गोला बनाकर उसमें हीरेको रखके उसी प्रकार कोलोंमें धमावे। जब अत्यन्त गरम हो जाय तब घोडेके मूत्रमें बुझा देवे । इस प्रकार सात वार करे तो हीरेकी उत्तम भस्म हो जाती है । फिर इस भस्मको सम्पूर्ण रोगोंमें देवे । ( व्याघ्रीकन्दको दक्षिणमें गुहेरीकन्द कहते है और कोई कटेरीकी जडको ही व्याघ्रीकन्द कहते हैं ) ॥ ७७-८० ॥

हीरेकी भस्मकी दूसरी विधि।

**हिङ्गुसैन्धवसंयुक्ते क्वाथे कौलत्थजे क्षिपेत ॥ ८१ ॥ तप्तं तप्तं पुनर्वज्रं भूयाच्चूर्णं त्रिसप्तधा[2] ।**

---

१ 'एवं त्रिसप्तधा कृत्वा मृतं वज्रं श्रेष्ठं भवति' इति दीपिकाकारमतम्। २ तद्द्रवे क्वाथे हिंगुसैन्धवकल्केन वज्रं लिप्त्वाऽग्नौ संताप्य कुलत्थक्वाथेनैव सेचयेदिति सम्प्रदायः।

अर्थ–हींग, सेंधानमक और कुलथी इन तीनोंका काढा कर उसमें हीरेको तपा तपा कर इक्कीस वार बुझावे तो हीरेकी भस्म होवे ॥ ८१ ॥

तीसरी विधि।

मण्डूकं कांस्यजे पात्रे निगृह्य स्थापयेत्सुधीः ॥ ८२ ॥
स भीतो मूत्रयेत्तत्र तन्मूत्रे वज्रमावपेत्।
तप्तं तप्तं च वहुधा वज्रस्यैवं मृतिर्भवेत् ॥ ८३ ॥

अर्थ–मेंडकको कांसीके पात्रमें रक्खे जब वह डरके मारे मूते तव उस मूत्रमें हीरेको तपा२ कर अनेक वार बुझावे तो हीरेकी भस्म हो जाती है ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

वैक्रांतका शोधन और मारण।

वैक्रांतं वज्रवच्छोध्यं नीलं वा लोहितं तथा। हयमूत्रे तु तत्सेच्यं तप्तं तप्तं द्विसप्तधा ॥ ८४ ॥ ततस्तु मेषशृङ्गयुक्त-पञ्चांगे गोलके क्षिपेत् ॥ पुटेन्मूषापुटे रुद्ध्वा कुर्यादेवं च सप्तधा॥८५॥वैक्रांतं भस्मतां याति वज्रस्थाने नियोजयेत्।

अर्थ–वैक्रांत[2] ( कासुला ) मणि नीलमणि तथा पद्मराग ( लाल ) मणि इनका शोधन हीरेके समान करे। फिर उस वैक्रान्तमणिको तपा २ कर घोडेके मूत्रमें चौदह वार बुझावे। पश्चात् मेढासिंगीकी पञ्चांगको कूट पीस उसकी लुगदी करके उसमें इस वैक्रान्तमणिको रखके सरावसम्पुटमें धरके कपडमिट्टीकर आरने उपलोंके गजपुटमें रखके फूंक देवे। इस प्रकार सात अग्नि देवे तो वैकान्तमणिकी भस्म हो जाती है। यह हीरेकी भस्मके अभावमें देनी चाहिये ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

सम्पूण रत्नोंका शोधन और मारण।

स्वेदयेद्दोलिकायन्त्रे जयन्त्याः स्वरसेन च ॥८६॥ मणि-मुक्ताप्रवालानां यामैकं शोधनं भवेत्। कुमार्या तन्दुलीयेन स्तन्येन च निषेचयेत् ॥८७॥ प्रत्येकं सप्तवेलं च तप्ततप्तानि कृत्स्नशः। मौक्तिकानि प्रवालानि तथा रत्नान्यशेषतः ॥८८॥ क्षणाद्विविधवर्णानि म्रियंते नात्र संशयः। उक्तमा-क्षिकवन्मुक्ताः प्रवालानि च मारयेत् ॥ ८९ ॥ वज्रवत्सर्व-रत्नानि शोधयेन्मारयेत्तथा।

---

१ एवं सप्तधा कुर्यादिति सम्प्रदायः।

२ उत्पन्न होते समय विकृतताको प्राप्त होनेसे इसी हीराको 'वैक्रान्त' कहते हैं।

अर्थ-सूर्यकान्तमणि, मोती और मूंगा इनको दोलायन्त्रमें डालके अरनी अथवा जाईके रसमें एक प्रहर पचावे तो ये शुद्ध होवें । फिर इनका मारण इस प्रकार करे कि घीगुवारका रस, चौलाईका रस तथा स्त्रीका दूध इन तीनोंमें उन मणि, मोती और मूँगा तथा और अन्य प्रकारके रत्नोंको तपा २ कर एक एकमें सात सात वार बुझावे तो क्षणमात्रमें सबकी भस्म होवे, इस विषयमें संन्देह नहीं है । अब इनके मारणकी दूसरी विधि कहते हैं कि-सुवर्णमाक्षिकका जिस प्रकार मारण कहा है उसी प्रकार मोतियोंका, मूंगोंका मारण करे । हीराके शोधन और मारणके सदृश सम्पूर्ण रत्नोंका शोधन मारण करना चाहिये ॥ ८६-८९ ॥

शिलाजीतका शोधन ।

शिलाजतु समानीय ग्रीष्मतप्तशिलाच्युतम् ॥ ९० ॥
गोदुग्धैस्त्रिफलाक्वाथैर्भृंगद्रावैश्च[1] मर्दयेत् ।
आतपे दिनमेकैकं तच्छुष्कं शुद्धतां व्रजेत् ॥ ९१ ॥

अर्थ-ग्रीष्म ऋतुमें गरमी अधिक होती है इसीसे पर्वतमें जो बडी २ शिलाएँ होती हैं वे गरमीसे अत्यन्त तपती हैं तब उनसे रस गलकर जम जाता है उसको शिलाजीत कहते हैं । उस शिलाजीतको लाकर गौके दूधमें, त्रिफलेके काढेमें तथा भाँगरेके रसमें पृथक् २ एक एक दिन खरल कर धूपमें धरके सुखा लेवे तो शिलाजीत शुद्ध हो जाती है ॥ ९० ॥ ९१ ॥

मुख्यां शिलाजतुशिलां सूक्ष्मखण्डप्रकल्पिताम् । निक्षिप्यात्युष्णपानीये यामैकं स्थापयेत्सुधीः ॥ ९२ ॥ मर्दयित्वा ततो नीरं गृह्णीयाद्वस्त्रगालितम् । स्थापयित्वा च मृत्पात्रे धारयेदातपे बुधः ॥ ९३ ॥ उपरिस्थं घनं च स्यात्तत्क्षिपेदन्यपात्रके । धारयेदातपे धीमानुपरिस्थं घनं नयेत् ॥ ९४ ॥ एवं पुनः पुनर्नीत्वा द्विमासाभ्यां शिलाजतु । भूयात्कार्यक्षमं वह्नौ क्षिप्तं लिंगोपमं भवेत् ॥ ९५ ॥ निर्धूमं च ततः शुद्धं सर्वकर्मसु योजयेत् । अधःस्थितं च यच्छेषं तस्मिन्नीरं विनिक्षिपेत् ॥ ९६ ॥ विमर्द्य धारयेद्धर्मे पूर्ववच्चैव तन्नयेत् ।

---

1 बहुवचनोक्त्या बहुवारं कुर्यादित्याशयः ।

अर्थ–जिस पाषाणसे शिलाजीत उत्पन्न होती है उस पाषाणको उत्तम देखके लेवे, उस पाषाणके बारीक २ टुकडे करके खलबलाते हुए गरम पानीमें एक प्रहर पर्यंत भिगोवे। पश्चात् उन टुकडोंको उसी पानीमें बारीक पीसके कपडेमें छान उस पानीको मिट्टीकी नांदमें डालके धूपमें रख देवे। जब उस पानीपर मलाई आवे उसको उतारके दूसरे पात्रमें डालता जाय इस प्रकार पृथक् २ पात्रमें वारंवार सब मलाई उतारके दूसरे पात्रमें इकट्ठी करे। फिर उस दूसरे पात्रमें भी गरम जल डालके उस शिलाजीतकी मलाईको मिलायके धूपमें धर देवे। जब उसमें मलाई पडे तब उतार२ के तीसरी नांदमें डाले और उसमें भी गरम जल डालके धूपमें धर देवे। जब उसमें मलाई आवे तब फिर पहली शुद्ध की हुई नांदमें मलाईको इकठी करे। इस क्रमसे बराबर एकमेंसे निकालकर दूसरेमें एकत्र करे और पहिली नांदमें जो नीचे गरम बैठ जावे उसको जलमे पीसके छान लेवे और इसी क्रमसे उसको धूपमें रखके मलाई उतार लिया करे। इस प्रकार दो महीने पर्यन्त करे तो शिलाजीतकी उत्तम शुद्धि होवे। इसकी परीक्षा इस प्रकार करे कि इसमेंसे थोडासा टुकडा तोडके अग्निमें डाले तो उसका लिंगके समान धूमरहित आकार होता है उसको शुद्ध शिलाजीत जानना चाहिये। इसको सर्व कार्यमें देवे ॥ ९२–९६ ॥

मण्डूर बनानेकी विधि।

**अक्षांगारैर्धमेत्किट्टं लोहजं तद्गवां जलैः ॥९७॥ सेचयेत्तत्तप्तं तत्सप्तवारं पुनः पुनः। चूर्णयित्वा ततः क्वाथैर्द्विगुणैस्त्रिफलाभवैः॥९८॥आलोड्य भर्जयेद्वह्नौ मण्डूरं जायते वरम्[1]।**

अर्थ–बहेडेकी लकडियोंके कोले करके उसमें पुराने लोहकी कीटी डालके धोंके जब लाल होजावे तब उस कीटीको गोमूत्रमें बुझा देवे। इस प्रकार सात वार तपा२ कर गोमूत्रमे बुझावे। फिर उस कीटीका बारीक चूर्ण करके उसका दूना त्रिफलेका काढा हांडीमे भर उसमे उस कीटिके चूर्णको डालके अच्छी रीतिसे उस हांडीके मुखको ढक मुखपर कपडमिट्टी कर देवे। पश्चात् उसको आरने उपलोंकी गजपुटमें रखके फूंक देवे, जब शीतल होजावे तब उस हांडीको बाहर निकाल उसमें उस कीटका जो शुद्ध मण्डूर बनके तैयार होवे उसको निकाल ले तो परमोत्तम मण्डूर बने। इसे सब योगोमे मिलावे ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

क्षार बनानेकी विधि।

**क्षारवृक्षस्य[2] काष्ठानि शुष्कान्यग्नौ प्रदीपयेत् ॥९९॥ नीत्वा तद्भस्म मृत्पात्रे क्षिप्त्वा नीरे चतुर्गुणे। विमर्द्य धारयेद्रात्रौ**

---

[1] श्रेष्ठताऽस्याजनसादृश्यात भवति। [2] ओंगा, इमली, केला, अलाश, थूहर, चीता, कटेरी और मोखवृक्ष इत्यादि क्षारवृक्ष जानने।

प्रातरक्षजलं नयेत् ॥ १०० ॥ तन्नीरं क्वाथयेद्वह्नौ यावत्सर्वं विशुष्यति । ततः पात्रात्समुल्लिख्य क्षारो ग्राह्यः सितप्रभः । ॥१०१॥चूर्णाभः प्रतिसार्यः स्यात्पेयः स्यात्क्वाथवत्स्थितः। इति क्षारद्वयं धीमान् युक्तकार्येषु योजयेत् ॥ १०२ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने मध्यमखण्डे धातुशोधनमारणं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अर्थ—जिन वृक्षोंसे खार निकलता है उन वृक्षोंकी लकडी पञ्चाग लाकर सुखाकर जला लेवे । जब राख हो जाय तब उस राखको मिट्टीके पात्रमे भर राखसे चौगुना जल डालके उस राखको उस पानीमे मिलाके रख देवे । सुश्रुतमें ६ गुना जल डालना लिखा है । इस प्रकार १ रात्रिभर धरी रहने दे प्रातःकाल उस घडेमेसे ऊपर ऊपरका नितरा हुआ जल लोहेकी कडाहीमें निकाल लेवे, फिर उस कडाहीको अग्निपर चढाकर नीचे अग्नि जलाकर उस पानीको जला देवे। इस प्रकार करनेसे पानी जल जानेपर उस कडाहीमें चारों तरफ सफेद २ खार चूर्णके समान लगाहुआ रह जावेगा उसको निकाल लेवे। इस क्षारको प्रतिसार्य कहते हैं । इसको श्वासादि रोगोंपर देवे तथा काढेके समान पतला जो क्षार रहता है उसको पेय कहते हैं । उस क्षारको गुल्मादिक रोगोंपर देवे । इस प्रकार पतला और चूर्णके समान ऐसे दो प्रकारका क्षार जानना चाहिये ॥ ९९–१०२ ॥

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतायां शार्ङ्गधरसंहिताया भावप्रकाशिका-भाषाटीकायां द्वितीयखण्डे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

# अथ द्वादशोऽध्यायः १२.



## पारदके नाम तथा सूर्यादिनवग्रहोंके नाम करके ताम्रादि नवधातुओंकी संज्ञा ।

पारदः सर्वरोगाणां जेता[1] पुष्टिकरः स्मृतः ॥ सुज्ञेन[2] साधितः

१ नेता' इति पाठान्तरम् । २ 'सुदिने' इति पाठोऽन्यत्र पुस्तके ।

कुर्यात्संसिद्धिं देहलोहयोः ॥ १ ॥ रसेन्द्रः पारदः सूतो हरजः सूतको रसः । मुकुंदश्चेति[1] नामानि ज्ञेयानि रस-कर्मसु ॥ २ ॥ ताम्रतारारनागाश्च[2] हेमवङ्गौ च तीक्ष्णकम् । कांस्यकं कांतलोहं च धातवो नव ये स्मृताः ॥ ३ ॥ सूर्या-दीनां ग्रहाणां ते कथिता नामभिः क्रमात् ।

अर्थ—पारा सम्पूर्ण रोगोंका जीतनेवाला और देहको पुष्ट करनेवाला है, वह चतुर मनुष्यकरके बनाया हुआ देहकी और लोहकी तत्काल सिद्धि करता है अर्थात् खानेसे देहको अजर अमर करे और लोह ( तांबा रांगा आदि ) में डालनेसे सुवर्ण करता है । पारदके नाम—१ रसेंद्र, २ पारद, ३ सूत, ४ हरज, ५ सूतक, ६ रस और ७ मुकुंद ये सात नाम रस कर्ममें जहां २ आवें वहां पारदके जानने । १ताम्र, २ रूपा, ३ जस्त, ४ शीशा, ५ सुवर्ण,६ रांग, ७ फौलाद,८ कांसा और ९ कांत-लोह ये नौ धातु क्रमसे सूर्यादि नवग्रहोंके नाम जानने । जैसे—जितने सूर्यके नाम हैं वे सब तांबेके जानने, जितने चन्द्रमाके नाम हैं वे सब रूपेके नाम जानने, जितने मंगलके नाम हैं वे सब जस्तके अथवा पीतलके जानने । इसी क्रमसे जो नवग्रहोंके[3] नाम हैं वे नौ धातुओंके जानने चाहिये ॥ १–३ ॥

पारेका शोधन ।

राजी रसोनं मूषायां रसं क्षिप्त्वा विबन्धयेत् ॥ ४ ॥ वस्त्रेण पोलिकायन्त्रे स्वेदयेत्कांजिकैस्त्र्यहम् ॥ दिनैकं मर्दयेत्सूत कुमारीसम्भवैर्द्रवैः ॥ ५ ॥ तथा चित्रकजैः क्वाथैर्मर्दयेदेक-वासरम् । काकमाचीरसैस्तद्वद्दिनमेकं च मर्दयेत् ॥ ६ ॥ त्रिफलायास्ततः क्वाथे रसो मर्द्यः प्रयत्नतः । ततस्तेभ्यः पृथक्कुर्यात्सूतं प्रक्षाल्य कांजिकैः ॥ ७ ॥ ततः क्षिप्त्वा रसं खल्वे रसादर्धं च सैन्धवम् । मर्दयेन्निम्बुकरसैर्दिनमेकमना-रतम् ॥ ८ ॥ ततो राजी रसोनश्च मुख्यश्च नवसादरः । एते रससमैस्तद्वत्सूतो मर्द्यस्तुषांबुना ॥ ९ ॥ ततः संशोध्य चक्राभं कृत्वा क्षिप्त्वा च हिंगुना । द्विस्थालीसम्पुटे धृत्वा पूरयल्लवणेन च ॥१०॥ अथ स्थाल्यां ततो मुद्रां दद्याद्

१ 'बुधस्तस्येति नामानि ' इति पाठांतरम्।२आरशब्देन पीतलोहं पित्तलाभिधं बहुसम्मतम्।३ 'सूर्याचन्द्रमसौ भौम शशिजो जीवभार्गवौ।सूर्यसूनुः सैंहिकेयःकेतुश्चेति नवग्रहाः ॥ ''

दृढतरां बुधः । विशोष्याग्निं विधायाधो निषिञ्चेदंबु चोपरि ॥११॥ ततस्तु कुर्यात्तीव्राग्निं तदधः प्रहरत्रयम् । एवं निपातयेदूर्ध्वं रसो दोषविवर्जितः ॥ १२ ॥ अथोर्ध्वपिठरीमध्ये लग्नो ग्राह्यो रसोत्तमः ।

अर्थ-प्रथम स्वेदन संस्कार कहते हैं-राई और लहसन दोनोंको एकत्र पीसकै उसकी मूषा बनावे । उसमे पारा डालके कपडेमें पोटली बांध दोलायन्त्र करके कॉजीमें तीन दिन पचावे । फिर उस पारेको निकाल खरलमें डालके घीगुवारके रसमे एक दिन खरल करे । फिर चीतेके और कांगुनीके रसमें और त्रिफलाके काढेमें एक २ दिन खरल करे । अब मर्दन संस्कार कहते हैं-फिर कांजीमें इस पारेको धोयकर उस औषधोंके रससे पृथक् करके फिर खरलमे डालके उस पारेका आधा सैंधानमक मिलाकर दोनोंको नीबूके रसमें १ दिन खरल करे । अब मूर्छन संस्कार कहते हैं-फिर राई लहसन और नौसादर ये तीन औषध पारेके समान भाग लेके उसमे पारेको मिलाकर धानके तुषोंके काढेमे सबको खरल करे । अब पातन-संकार कहते हैं-जब शुष्क होजावे तब उसकी गोल २ टिकियासी बनावे । उनके चारों तरफ हींगका लेप करके उन टिकियाओंको एक घडेमें रखके उसमें नमक डालके घडेके मुखपर दूसरा घडा उलटा जोडके कपडमिट्टी कर दृढ करके धूपमें सुखा देवे । फिर इसको चूल्हेपर चढाकर नीचे अग्नि जलावे और ऊपरके घडेपर गीले कपडेका पोचा फेरता जावे कि जिससे ऊपरका घडा शीतल रहे और जमा हुआ पारा नीचे न गिरे अथवा उसपर शीतल जल भर देवे । उस नीचेके घडेके नीचे ३ प्रहर तेज अग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब घडोंको अलग २ करके हलके हाथसे उस ऊपरके लगे हुए पारेको निकाल लेवे । यह पारा परम शुद्ध और दोषरहित होता है ॥ ४-१२ ॥

गन्धकका शोधन ।

लोहपात्रे विनिक्षिप्य घृतमग्नौ प्रतापयेत् ॥ १३ ॥ तप्ते घृते तत्समानं क्षिपेद्गंधकजं रजः ॥ विद्रुतं गंधकं ज्ञात्वा दुग्धमध्ये विनिक्षिपेत्॥१४॥एवं गंधकशुद्धिःस्यात्सर्वकार्येषु योजयेत्।

अर्थ-लोहेके कडछेमे घी डालके मन्दाग्निसे तपाय उस घीकी बराबर आमलासार गन्धकका बारीक चूर्ण करके उस घीमे डाल देवे । फिर गन्धक घीमे तपकर जब रसरूप होजावे तब एक दूधके पात्रपर बारीक कपडा बांधके उसमें उस गन्धकको डाल देवे । जब शीतल होजावे तब उस गन्धकको निकाल ले । यह शुद्ध गन्धक सर्व कार्योंमें वर्तनी चाहिये ॥ १३ ॥ १४ ॥

सिंगरफसे पारा निकालनेकी विधि।

निंबूरसैर्निंबपत्ररसैर्वा याममात्रकम् ॥१५॥ पिष्ट्वा दरदमूर्ध्वं च पातयेत्सूतयुक्तिवत्। ततः शुद्धरसं तस्मान्नीत्वा कार्येषु योजयेत् ॥ १६ ॥

अर्थ-नींबूके रसमें अथवा नीमके पत्तोंके रसमें शिंगरफको १ प्रहर खरल कर डमरूयंत्रमें भर नीचे अग्नि जलावे। उसमेंसे पारा उडकर ऊपरकी हांडीमें जाकर जम जावेगा, उसे धोंकर पारा निकाल ले। इसे शुद्ध जानना, इसको सर्व कार्यमें वर्तना चाहिये ॥ १५ ॥ १६ ॥

शिंगरफका शोधन।

मेषीक्षीरेण दरदमम्लवर्गैश्च भावितम्।
सप्तवारं प्रयत्नेन शुद्धिमायाति निश्चितम् ॥ १७ ॥

अर्थ-शिंगरफको खरलमें डालके भेडके दूधकी सात पुट देवे तथा नींबूके रसकी सात पुट ऐसे चौदह पुट देवे तो शिंगरफ निश्चय शुद्ध हो जाती है ॥ १७ ॥

शुद्ध हुए पारेके मुख करनेकी विधि।

कालकूटो वत्सनाभः शृङ्गकश्च प्रदीपकः। हलाहलो ब्रह्मपुत्रो हारिद्रः सक्तुकस्तथा ॥१८॥ सौराष्ट्रिक इति प्रोक्ता विषभेदा अमी नव। अर्क-सेहुण्ड-धत्तूरलांगलीकरवीरकम् ॥ १९ ॥ गुञ्जाहिफेनावित्येताः सप्तोपविषजातयः ॥ एतैर्विमर्दितः सूतश्छिन्नपक्षः प्रजायते ॥ २० ॥ मुखं च जायते तस्य धातूँश्च ग्रसते क्षणात्।

अर्थ-१ कालकूट २ वत्सनाभ ( वच्छनाग ) ३ शृङ्गक ( सिंगिया अथवा मीठा तेलिया ) ४ प्रदीपक ५ हालाहल ६ ब्रह्मपुत्र ७ हारिद्र ८ सक्तुक और ९ सौराष्ट्रिक ये नौ महाविष है। १ आक २ थूहर ३ धतूरा ४ कलहारी ५ कनेर ६ गुंजा और ७ अफीम ये सात उपविष हैं। ऐसे सब मिलके १६ हुए। इनमेसे एक एक विषमें पारेको सात २ दिन एकके पीछे दूसरेमे इस प्रकार पृथक् २ खरल करके धोवे तो पारेके पक्ष ( पर ) कट जावेंगे अर्थात् उडेगा नहीं तथा उसके मुख होकर सुवर्णादि धातुओंको तत्काल ग्रसे अर्थात् खा जावे ॥ १८-२० ॥

यहांपर इन कालकूटादि महाविषोंके लक्षण ग्रन्थान्तरमें जो लिखे हैं उनको टीकाकार प्रसंगवश लिखते हैं:-

१ कालकूट-विष सफेद वर्णका होता है तथा उसपर लाल २ बिंदु बहुत होते हैं कीचडके समान नरम होता है। यह विष देवता और दैत्योंके युद्धमें मालिनामक दैत्यके रुधिरसे उत्पन्न हुआ हैं। यह पीपलके वृक्षके समान एक वृक्ष होता है उसका गोंद है। इसकी उत्पत्ति अहिच्छत्र मलय कोंकण और शृंगवेर इन पर्वतोंपर अत्यंत होती है।

२ वत्सनाभ-विषके निर्गुंडीके समान पत्र होते हैं और आकृति ( स्वरूप ) बचनागके समान होती है। इसके आसपास वृक्ष बेल घास ये बढते नही है। यह विष द्रोणाचलपर्वतपर अत्यंत उत्पन्न होताहै।

३ शृंगकविष-गौके सीगके समान होकर उसके दो भाग होते हैं। इक विषको गौके सीगमे बांधे तो गौका दूध रुधिरके समान होता है, इसके पत्ते अदरखके पत्तेके समान होते हैं। यह नदीके किनारे जिस जगहपर कीचड होती है उस जगह बहुधा प्रगट होता है।

४ प्रदीपक विष-दहकते हुए अंगारेके समान लाल रंगका कांतिवाला होता है और इसके पत्ते खजूरके समान होते हैं। इसके सूँघनेसे प्राणीके देहमे दाह प्रकट होकर तत्काल मर जाता है। यह समुद्रके किनारे बहुत होता है।

५ हालाहल विष-ताडके पत्तेके समान होता है। इसके पत्ते नीले रंगके होते है और फल इसके गौके स्तनके समान लंबे और सफेद होते हैं तथा इसका कंद भी गौके थनके समान होता है। इसके आसपास वृक्षादिक नही होते। इसकी बास सूंघते ही मनुष्य तत्काल मर जाता है।

६ ब्रह्मपुत्र विष-ब्रह्मपुत्रनामक नदके किनारे बहुत होता है। इसके पत्ते पलाशके समान होते हैं और फल भी पलाश ( ढाक ) के समान होते हैं। कंद इसका बडा तथा पांडु वर्णका होता है। यह विष रोगहरणमे और रसायन क्रियामें अत्युपयोगी होता है।

७ हारिद्र विष-हल्दीके खेतोंमें उत्पन्न होता है। इसके पत्ते हल्दीके समान होते हैं और गांठ भी हल्दीके समान होती है। यह विष रसायन विषयमें समर्थ है।

८ सक्तुक विष-जौके समान आकृतिमें होता है और भीतरसे सफेद है। यह लोकपर्वतमे बहुत उत्पन्न होता है।

९ सौराष्ट्रिक विष-सोरठ ( गुजरात ) देशमें उत्पन्न होता है। इसका कंद कछुआके मस्तकके समान मोटा होता है। तथा कृष्णागरुके समान काला वर्ण होता है और इसके पत्ते पलाशके समान होते है, इसका पराक्रम भी बडा उत्कट है।

मुख और पक्षच्छेदनका दूसरा प्रकार।

**अथवा त्रिकटुक्षारौ राजीलवणपञ्चकम् ॥ २१ ॥ रसोनो नवसारश्च शिग्रुश्चैकत्र चूर्णितैः। समांशैः पारदादेतैर्जंबीरेण**

द्रवेण वा ॥२२॥ निम्बुतोयैः काञ्जिकैर्वा सोष्णखल्वे विमर्दयेत्। अहोरात्रत्रयेण स्याद्रसे धातुचरं मुखम् ॥ २३ ॥ अथवा बिन्दुलीकीटै रसो मर्द्यस्त्रिवासरम्। लवणाम्लैर्मुखं तस्य जायते धातुवस्मरम् ॥ २४ ॥

अर्थ-१ सोंठ २ कालीमिरच ३ पीपल ४ जवाखार ५ सज्जीखार ६ राई ७ सैंधानमक ८ सञ्चर नमक ९ विडखार १० समुद्रनमक ११ रेहकाखार १२ लहसन १३ नौसादर और १४ सहँजनेकी छाल ये चौदह औषध समान भाग लेकर चूर्ण करके पारेके समान भाग ले, सबको तप्त खल्वमें डालके जम्भीरी अथवा नींबूके रससे अथवा कांजीमें तीन दिन रात खरल करे तो स्वर्णादिधातु भक्षण करनेवाला पारेका मुख हो जाता है। अथवा बीरबहूटी ( जिसको इन्द्रवधू भी कहते हैं । इस नामका कीडा चातुर्मास्यमें होता है ) को लाकर उसके साथ पारेको तीन दिन खरल करे फिर नींबूका रस और सैंधानमक दोनोंको एकत्र करके पारा डाल तीनोंको खरल करे तो भी स्वर्णादि धातुओंको खानेवाला पारेका मुख हो जाता है ॥ २१-२४ ॥

कच्छपयन्त्र करके गन्धकजारण।

मृत्कुण्डे निक्षिपेन्नीरं तन्मध्ये च शरावकम्। महत्कुण्डपिधानाभं मध्ये मेखलया युतम् ॥२५॥ लिप्त्वा च मेखलामध्यं चूर्णेनात्र रसं क्षिपेत्। रसस्योपरि गन्धस्य रजो दद्यात्समांशकम् ॥ २६ ॥ दत्त्वोपरि शरावं च भस्ममुद्रां प्रदापयेत्। तस्योपरि पुटं दद्याच्चतुर्भिर्गोमयोपलैः ॥ २७ ॥ एवं पुनः पुनर्गन्धं षड्गुणं जारयेद्बुधः। गन्धजीर्णे भवेत्सूतस्तीक्ष्णाग्निः सर्वकर्मकृत् ॥ २८ ॥

अर्थ-मिट्टीका एक पात्र कूँडेके समान ऊँचे मुखका लेकर उसमें जल भरके ऊपर ढकनेकी ऐसी कूँडी लेवे जो उस पात्रके मुखपर आ जावे । उसको लेकर पानीमें न लगे इस प्रकार अलग रखे। फिर उस कुंडीमें मिट्टीका गोल एक अंगुल ऊंचा गढा करके उसमें चूना बिछाकर पारा भर देवे । फिर पारेके समान भाग गन्धकका चूर्ण उस पारेपर डाले। फिर मिट्टीकी दूसरी कुण्डी उलटी ढकके उसकी संधियोंको नमक मिली हुई राखमें बन्द कर मुद्रा दे देवे। उसके ऊपर गौके गोब-

१ केचिल्लोहकुण्डं साधु मन्यन्ते।

रके ४ उपले रखके अग्नि देवे। इस प्रकार उस पारेपर छः वार गन्धक डाल २ के अग्नि देकर गन्धकजारण करे तो यह पारा देदीप्यमान अग्निके समान होकर सर्व कार्यकर्त्ता हो जाता है ॥ २५-२८ ॥

पारामारणकी विधि।

धूमसारं रसं तोरीं गन्धकं नवसादरम्।
यामैकं मर्दयेदम्लैर्भागं कृत्वा समं समम् ॥ २९ ॥
काचकुप्यां विनिक्षिप्य तां च मृद्वस्त्रमुद्रिताम्।
विलिप्य परितो वक्रं मुद्रां दत्त्वा च शोषयेत् ॥ ३० ॥
अधः सच्छिद्रपिठरीमध्ये कूपीं निवेशयेत्।पिठरीं वालुका-पूरैर्भृत्वा चाकूपिकागलम् ॥३१॥ निवेश्य चुल्ल्यां तदधः कुर्याद्वह्निं शनैः शनैः।तस्मादप्यधिकं किञ्चित्पावकं ज्वाल-येत्क्रमात् ॥ ३२ ॥ एवं द्वादशभिर्यामैर्म्रियते सूतकोत्तमः।
स्फोटयेत्स्वांगशीतं च ऊर्ध्वगं गन्धकं त्यजेत् ॥ ३३ ॥
अधःस्थं मृतसूतं च सर्वकर्मसु योजयेत्।

अर्थ-१ घरका धूआं २ पारा, ३ फिटकरी ४ गन्धक ५ नौसादर ये पांच औषध समान भाग लेकर नीबूके रसमें १ प्रहर खरल कर कांचकी शीशीमें भरके उसपर कपडमिट्टी करके धूपमें सुखा ले। फिर मुखपर डाट देकर बन्द कर देवे। फिर एक मिट्टीका बडा पात्र लेके उसकी पेंदीमें छेद करके उसके बीचमें एक ठीकरी रखके उसके ऊपर कांचकी शीशीको रखके ऊपरसे शीशीके गले पर्यन्त वालू भर देवे, शीशीकी नलीको खाली रक्खे। इस यन्त्रको वालुकायन्त्र कहते हैं। फिर उस पात्रको चूल्हेपर रखके नीचे प्रथम हलकी, फिर मध्यम और अन्तमें तेज इसप्रकार बारह प्रहर पर्यंत अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब शीशीको बाहर निकाल युक्तिसे फोडके उसके मुखपर जो गन्धक लगी हुई है उसको दूर करके नीचे पारेकी भस्म जो रहती है उसको निकालके कार्यमें लाना चाहिये ॥ २९-३३ ॥

पारदभस्म करनेका दूसरा प्रकार।

अपामार्गस्य बीजानां मूषायुग्मं प्रकल्पयेत् ॥३४॥ तत्सं-पुटे न्यसेत्सूतं मलयूदुग्धमिश्रितम्[१]। द्रोणपुष्पीप्रसूनानि विडंगान्यरिमेदकः ॥ ३५ ॥ एतच्चूर्णमधोर्ध्वं च दत्त्वा मुद्रां

१ मिश्रितमित्यनेन काकोदुम्बरिकादुग्धमर्दितमिति ज्ञेयम्।

प्रदीयताम्। तं गोलं सन्धयेत्सम्यङ्मृन्मूषासम्पुटे सुधीः ॥ ३६ ॥ मुद्रां दत्त्वा शोषयित्वा ततो गजपुटे पचेत्। एवमेकपुटेनैव जायते भस्म सूतकम् ॥ ३७ ॥

अर्थ–ओंगा ( चिरचिटा ) के बीजोंको बारीक पीसके दो मूषा बनावे । फिर द्रोणपुष्पी ( गोमा ) के फूल वायविडंग और खैरकी छाल इन औषधोंका चूर्ण करके आधा चूर्ण एक मूषमें भरे, उसके ऊपर कद्दू भरके दूधसे मर्दन किये हुए पारेको रखके उस पारेके ऊपर आधे चूर्णको रख देवे । फिर दूसरी मूषको उस पहली मूषपर रखके सन्धिको लेप कर अच्छी तरह बन्द कर देवे, फिर गोला बनाकर मिट्टीके सरावसम्पुटमें रखके उसपर भी कपडमिट्टी करके आरने उपलोंके गजपुटमें फूंक देवे तो एक ही पुट करके पारदकी भस्म हो जाती है ॥ ३४–३७ ॥

तीसरा प्रकार।

काकोदुम्बरिकादुग्धे रसं किञ्चिद्विमर्दयेत्। तद्दुग्धघृष्टहिङ्गोश्च मूषायुग्मं प्रकल्पयेत् ॥ ३८ ॥ क्षिप्त्वा तत्संपुटे सूतं तत्र मुद्रां प्रदापयेत्। धृत्वा तं गोलकं प्राज्ञो मृन्मूषासंपुटेऽधिके ॥३९॥ पचेन्मृदु पुटेनैव सूतको याति भस्मताम्।

अर्थ–कमरीके दूधमें पारेको थोडी देर खरल करे। फिर कठूमरके दूधमें हींगको खरल करके दो मूष बनावे। एक मूषमें पारेको रखके दूसरी मूषसे उसका मुख बन्द करके अच्छी प्रकार संधियोंको बन्द कर देवे। फिर ऊपरसे पोतकर गोला बनाय ले, इस गोलेको मिट्टीके शरावसम्पुटमे रखके उसपर कपडमिट्टी कर आरने उपलोंकी हलकीसी अग्निमें रखके फूंक देवे तो पारेकी भस्म हो जाती है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

चौथा प्रकार।

नागवल्लीरसैर्घृष्टः कर्कोटीकन्दगर्भितः ॥ ४० ॥
मृन्मूषासम्पुटे पक्वा सूतो यात्येव भस्मताम्।

अर्थ–नागरवेलके पानोंके रसमें पारेको खरल कर ककोडेके कन्दमें पारेको रखके उसके ही टुकडेसे बन्द करके संधि मिलाकर कपडमिट्टी करे, फिर उसको धूपमें सुखाकर मिट्टीके सरावसम्पुटमें रख उसपर कपडमिट्टी करके आरने उपलोंमें रखके हलकी अग्नि देवे तो पारेकी अवश्य भस्म होजावे, इसको कार्यमे लावे ॥४०

ज्वरांकुश रस।

खण्डितं मृगशृङ्गं च ज्वालामुख्या रसैः समम् ॥ ४१ ॥ रुद्ध्वा भांडे पचेच्चुल्ल्यां यामयुग्मं ततो नयेत्। अष्टांशं त्रिकटुं दद्यान्निष्कमात्रं च भक्षयेत् ॥ ४२ ॥ नागवल्ल्या रसैः सार्धं वातपित्तज्वरापहम्। अयं ज्वरांकुशो नाम रसः सर्वज्वरापहः ॥ ४३ ॥

अर्थ–हरिणके सींगके बारीक टुकडे करके पात्रमें रख उसमें ज्वालामुखीका रस डालके उसके मुखपर सराव ढकके कपडमिट्टी करे। उसको चूलहेपर रखके नीचे दो प्रहर पर्यन्त अग्नि देवे। जब शीतल होजावे तब उन टुकडोंकी भस्मको बाहर निकालके उस भस्मका आठवां भाग सोंठ, मिरच और पीपल इनका चूर्ण करके उस भस्ममें मिला दे। फिर इसमेंसे ४ मासेके अनुमान पानके रसमें मिलाकर पीवे। इसको ज्वरांकुश कहते हैं। यह सम्पूर्ण ज्वरोंको दूर करता है ॥ ४१–४३ ॥

ज्वरारिरस।

पारदं रसकं तालं तुत्थं टंकणगन्धकैः। सर्वमेतत्समं शुद्धं कारवेल्ल्या रसैर्दिनम् ॥४४॥ मर्दयेल्लेपयेत्तेन ताम्रपात्रोदरं भिषक्। अंगुल्यर्धप्रमाणेन ततो रुद्ध्वा च तन्मुखम् ॥४५॥ पचेत्तं वालुकायंत्रे क्षिप्त्वा धान्यानि तन्मुखे। यदा स्फुटन्ति धान्यानि तदा सिद्धं विनिर्दिशेत् ॥ ४६ ॥ ततो नयेत्स्वांगशीतं ताम्रपात्रोदराद्भिषक्। रसं ज्वरारिनामानं विचूर्ण्य मरिचैः समम् ॥ ४७ ॥ माषैकं पर्णखण्डेन भक्षयेन्नाशयेज्ज्वरम्। त्रिदिनैर्विषमं तीव्रमेकद्वित्रिचतुर्थकम् ॥ ४८ ॥

अर्थ–१ पारा २ खपरिया ३ हरताल ४ नीलाथोथा ५ सुहागा और ६ गन्धक इन छः औषधोको शोधकर समान भाग लेवे। सबको खरलमें डाल करेलेके पत्तोंके रससे १ दिन खरल करे। फिर तांबेकी डिब्बीमें अर्द्ध अंगुल लेप करके उसपर ढकना देकर उसे वालुकायन्त्रमे डालके चूलहेपर रखके नीचे अग्नि जलावे और उस पात्रके मुखपर धान रख देवे। जब वह भूनके खील हो जावे तब जाने कि ओषधि सिद्ध होगई। फिर अग्निको वन्द करे। जब शीतल हो जावे तब बाहर निकाल करके उस डिब्बीसे ओषधिको निकाल लेवे। इसको ज्वरारिरस कहते हैं।

इसके समान कालीमिरच बारीक पीसकर मिला लेवे । इसमेंसे १ मासा पानमें रखके तीन दिन नित्य खावे तो यह ज्वरारिरस ऐकाहिंक[1], द्व्याहिंक[2], त्र्याहिंक[3], चातुर्थिंक[4] और दारुण विषम ज्वरको भी नष्ट करे ॥ ४४--४८ ॥

शीतज्वरारि रस ।

तालकं तुत्थकं ताम्रं रसं गन्धं मनःशिलाम् । कर्षं कर्षं प्रयोक्तव्यं मर्दयेत्त्रिफलांबुभिः ॥ ४९ ॥ गोलं न्यसेत्संपुटके पुटं दद्यात्प्रयत्नतः । ततो नीत्वार्कदुग्धेन वज्रीदुग्धेन सप्तधा ॥ ५० ॥ क्वाथेन दंत्या श्यामाया भावयेत्सप्तधा पुनः । माषमात्रं रसं दिव्यं पञ्चाशन्मरिचैर्युतम् ॥ ५१ ॥ गुडगद्याणकं चैव तुलसीदलयुग्मकम् । भक्षयेत्त्रिदिनं शक्त्या शीतारिर्दुर्लभः परः ॥ ५२ ॥ पथ्यं दुग्धौदनं देयं विषमं शीतपूर्वकम् । दाहपूर्वं हरत्याशु तृतीयकचतुर्थकौ ॥ ५३ ॥ द्व्याहिकं संततं चैव वैवर्ण्यं च नियच्छति ।

अर्थ--१ हरताल, नीलाथोथा, ३ ताम्रभस्म, ४ पारा, ५ गन्धक, ६ मैनसिल ये छः ओषधि एक एक कर्ष लेकर सबको त्रिफलेके काढेमें खरल कर गोला बनाकर मिट्टीके सरावसम्पुटमें भरके कपडमिट्टी करके धूपमें सुखा ले। फिर इसको आरने उपलोंके गजपुटमें रखके फूंक देवे । जब शीतल हो जावे तब बाहर निकाल लेवे । फिर खरलमें डालके आकके दूधकी सात पुट देकर मासे मासेकी गोली बना लेवे । पचास मिरच, गुड छः मासे और तुलसीके पत्ते दो इन सबको एकत्र करके उसमें एक एक गोली बलाबल विचारके तीन दिन सेवन करे और पथ्यमें दूध भात खानेको देवे तो शीतपूर्वक विषमज्वर, दाहपूर्वक ज्वर, तृतीयक, चातुर्थिक और दिन रात्रिमें दो वार आनेवाला द्व्याहिक ज्वर तथा देहमें एकसा रहनेवाला ज्वर और विलक्षण ज्वर ये सब दूर हो जाते हैं ॥ ४९--५३ ॥

ज्वरघ्नी गुटिका ।

भागैकः स्याद्रसाच्छुद्धादेलायाः पिप्पली शिवा ॥ ५४ ॥ आकारकरभो गन्धः कटुतैलेन शोधितः । फलानि चेन्द्रवारुण्याश्चतुर्भागमिता ह्यमी ॥५५॥ एकत्र मर्दयेच्चूर्णमिंद्रवारु-

१ दिनरात्रिमें एकवार आवे । २ दिनरात्रिमें दो वार आवे । ३ तीसरे दिन आवे जिसको तिजारी कहते है । ४ जो चतुर्थ दिन आवे उसको चौथय्या कहते है ॥

णिकारसे । माषोन्मितां गुटीं कृत्वा दद्यात्सर्वज्वरे बुधः ॥ ५६ ॥ छिन्नारसानुपानेन ज्वरघ्नी गुटिका मता ।

अर्थ-शुद्ध किया हुआ पारा एक भाग, १ एलुआ, २ पीपल, ३ जंगीहरड, ४ अकरकरा, ५ सरसोंके तेलमें शोधी हुई गन्धक और ६ इन्द्रायनके फल ये छः ओषधि चार २ भाग लेवे । सबका चूर्ण करके पारा[1] समेत खरलमें डालके इन्द्रायनके फलके रसमें खरल करके एक एक मासेकी गोली बनावे । एक गोली गिलोयके रससे सेवन करे तो सम्पूर्ण ज्वर दूर हो जावें ॥ ५४--५६ ॥

लोकनाथरस क्षयादिरोगोंपर ।

शुद्धो बुभुक्षितः सूतो भागद्वयमितो भवेत् ॥५७॥ तथा गंधस्य भागौ द्वौ कुर्यात्कज्जलिकां तयोः । सूताच्चतुर्गुणेष्वेव कपर्देषु विनिक्षिपेत् ॥५८॥ भागैकं टंकणं दत्त्वा गोक्षीरेण विमर्दयेत् । तथा शंखस्य खण्डानां भागानष्टौ प्रकल्पयेत् ॥५९॥ क्षिपेत्सर्वं पुटस्यान्तश्चूर्णं लिप्तशरावयोः । गर्ते हस्तोन्मिते धृत्वा पचेद्गजपुटेन च ॥ ६० ॥ स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य पिष्ट्वा तत्सर्वमेकतः । षड्गुञ्जासंमितं चूर्णमेकोनत्रिंशदूषणैः ॥ ६१ ॥ घृतेन वातजे दद्यान्नवनीतेन पित्तजे । क्षौद्रेण श्लेष्मजे दद्यादतीसारे क्षये तथा ॥ ६२ ॥ अरुचौ ग्रहणीरोगे कार्श्ये मन्दानले तथा । कासे श्वासेषु गुल्मेषु लोकनाथो रसो हितः ॥ ६३ ॥ तस्योपरि घृतान्नं च भुञ्जीत कवलत्रयम् । मञ्चे क्षणैकमुत्तानः शयीतानुपधानके ॥ ६४ ॥ अनम्लमन्नं सघृतं भुञ्जीत मधुरं दधि । प्रायेण जांगलं मांसं प्रदेयं घृतपाचितम् ॥ ६५ ॥ सदुग्धभक्तं दद्याच्च जातेऽग्नौ सान्ध्यभोजने । सघृतान्मुद्गवटकान्व्यंजनेष्वेव चारयेत ॥ ६६ ॥ तिलामलककल्केन स्नापयेत्सर्पिषाऽथवा । अभ्यञ्जयेत्सर्पिषा च स्नानं कोष्णोदकेन च ॥६७॥ क्वचित्तैलं न गृह्णीयान्न बिल्वं कारवेल्लकम् । वार्ताकं शफरीं चिंचां त्यजेद्व्यायाममैथु-

[1] पारा और गंधक इनको प्रथम खरलकर पश्चात् उसमे चूर्ण मिलाय गोली बनाय ले।

नम्॥६८॥मद्यं संधानकं हिंगुशुंठीमाषान्मसूरकान्। कूष्मांड राजिकां कोपं काञ्जिकं चैव वर्जयेत् ॥ ६९ ॥ त्यजेदयुक्तनिद्रां च कांस्यपात्रे च भोजनम्। ककारादियुतं सर्वं त्यजेच्छाकफलादिकम् ॥ ७० ॥ पथ्योऽयं लोकनाथस्तु शुभनक्षत्रवासरे। पूर्णातिथौ शुक्लपक्षे जाते चन्द्रबले तथा ॥७१॥ पूजयित्वा लोकनाथं कुमारीं भोजयेत्ततः। दानं दद्याद्द्विघटिकामध्ये ग्राह्यो रसोत्तमः ॥ ७२ ॥ रसात्संजायते तापस्तदा शर्करया युतम्। सत्त्वं गुडूच्या गृह्णीयाद्वंशरोचनया युतम् ॥७३॥ खर्जूरं दाडिमं द्राक्षामिक्षुखंडानि चारयेत्। अरुचौ निस्तुषं धान्यं घृतभृष्टं सशर्करम् ॥ ७४ ॥ दद्यात्तथा ज्वरे धान्यं गुडूचीक्वाथमाहरेत्। उशीरवासकक्वाथं दद्यात्समधुशर्करम् ॥ ७५ ॥ रक्तपित्ते कफे श्वासे कासे च स्वरसंक्षये। अग्निभृष्टजया चूर्णं मधुना निशि दीयते ॥७६॥ निद्रानाशेऽतिसारे च ग्रहण्यां मन्दपावके। सौवर्चलाभयाकृष्णाचूर्णमुष्णजलैः पिबेत् ॥७७॥ शूलेऽजीर्णे तथा कृष्णा मधुयुक्ता ज्वरे हिता। प्लीहोदरे वातरक्ते छर्द्यां चैव गुदांकुरे ॥ ७८ ॥ नासिकादिषु रक्तेषु रसं दाडिमपुष्पजम्। दूर्वायाः स्वरसं नस्ये प्रदद्याच्छर्करायुतम् ॥ ७९ ॥ कोलमज्जाकणाबर्हिपक्षभस्म सशर्करम्। मधुना लेहयेच्छर्दिहिक्का-कोपस्य शांतये ॥८०॥ विधिरेष प्रयोज्यस्तु सर्वस्मिन्पोटलीरसे। मृगाङ्के हेमगर्भे च मौक्तिकाख्ये रसेषु च ॥ ८१ ॥ इत्ययं लोकनाथाख्यो रसः सर्वरुजो जयेत्।

अर्थ-शुद्ध और बुभुक्षित[1] ऐसा पारा दो भाग तथा शुद्ध की हुई गन्धक दो भाग इन दोनोंकी एक जगह कजली करके पारेसे चौगुनी कौडियोंमें उस कजली

---

[1] गन्धादिकोंका जारण करके सुवर्णादि धातु ग्रसनेके विषयमें योग्य हुआ जो पारा उसको बुभुक्षित पारा कहते है।

-को भरे। फिर सुहागा एक भाग लेकर गौके दूधमें खरल कर उससे कौडियोंके मुखको मूंद देवे, पश्चात् शंखके टुकडे आठ भाग लेकर मिट्टीके दो शरावे लेकर एकमें चूनेका लेपकर उसमें शंखके टुकडे आधे धरे और उनके ऊपर इन कौडि-योंको रक्खे। फिर बाकी रहे हुए आधे शंखके टुकडोंको रख देवे। फिर इसके ऊपर दूसरा शराव ढकके कपडमिट्टी कर एक हाथ गढा खोदके आरने उपलोंके गजपुटमे रखके अग्नि देवे। जब शीतल होजावे तब बाहर निकाल उस शरावमेंसे औष-धोंको निकाल लेवे। फिर इसको खरल करके धर रक्खे। इसे लोकनाथरस कहते हैं। यह लोकनाथरस छः रत्ती उनतीस काली मिरचोंके चूर्णमें मिलाकर जिसको वादीका रोग होवे उसको घीके साथ देवे। पित्तरोग होवे तो मक्खनके साथ देवे, कफरोग होवे तो सहतमें देवे और अतिसार, क्षय, अरुची, संग्रहणी, कृशता, मन्दाग्नि, खांसी, श्वास और गोलेका रोग ये सब दूर होते हैं, यह लोकनाथरस परम प्रशस्त है। इसकी मात्रा सेवन करके इसके ऊपर घी और भातके तीन ग्रास देने चाहिये। फिर शय्यापर विना बिछौनाके एक क्षणमात्र सीधा लेटे और खट्टे पदा-र्थोंको त्यागके घृतके साथ भोजन करे। उत्तम मीठा घी भोजनमें सेवन करे। जंगली जीवोमें हरिणादिकोंका मांस घीमें तलके खाय। संध्याके समय भूँख लगे तो दूधभात खाय तथा मूंगके बडे घीमें तलके खाय। तिल और आमलोंका कल्क कर देहमे मालिश करे अथवा घीकी मालिश करे। स्नानका जल कुछ गरम होना चाहिये। तैलको किसी काममें न लावे। बेलफल, करेले, बैंगन, छोटी मछली, इमली, श्रम, मैथुन, मद्य, संधान( संधाने ), हींग, सोंठ, उडद, मसूर, पेठा, राई, काँजी और कोप इनको लोकनाथरसका सेवन करनेवाला त्याग देवे, दिनमें न सोवे। काँसेके पात्रमें भोजन न करे, ककार जिनके आदिमें है ऐसे शाक ( जैसे करेला ककडी आदि)को तथा फलोको त्याग देवे। इस प्रकार लोकनाथरसका पथ्य कहा है। उत्तम दिन उत्तम वार पूर्णा तिथि ( पंचमी दशमी और पूर्णिमा) शुक्ल पक्ष तथा उत्तम चन्द्रमाका बल विचारके लोकनाथ रसका पूजन कर फिर कुमारी ( कन्याओं ) को भोजन कराकर तथा यथाशक्ति सुवर्णादिका दान देकर इस रसका सेवन करे। इस रसके सेवन करनेसे दो घडी देहमे संताप होता है,उसके शांति करनेको मिश्री-गिलोयका सत्त्व और वंशलोचन इन तीनोको एकत्र करके सेवन करे तो सन्ताप दूर हो जावे। खजूर (छुहारे) विलायती अनार, दाख ( अंगूर ) और ईखके टुकडे ये पदार्थ थोडे २ खाय तो इसका सन्ताप और अरुचि दूर हो। धनियेको कूट उसके तुषोको दूर करके घीमे भूनके उसमे मिश्री मिलायके उसमें इस लोकनाथरसको मिलायके पीवे तो ज्वर दूर होवे। धनिया और गिलोय इनका काढा करके उसमें इस

लोकनाथरसको मिलायके पीवे तो ज्वर दूर होवे। नेत्रवाला और अडूसा इन दोनोंका काढा करके सहत और मिश्री मिलाकर इसके साथ लोकनाथरस खावे तो रक्तपित्त कफ श्वास खांसी स्वरभंग ये रोग दूर होजावें। थोडी भॉगको भून चूर्ण कर उसमें इस रसको मिलाकर इसको सहतमें मिलाय रात्रिके समय सेवन करे तो गई हुई निद्रा आवे, अतिसार और संग्रहणी ये रोग दूर हों तथा अग्नि प्रदीप्त होय। काला नमक जंगी हरड और पीपल इन औषधोंका चूर्ण करके इसमें लोकनाथ रस मिलायके गरम पानीसे सेवन करे तो शूल और अजीर्ण रोग दूर हो। सहत और पीपलके साथ लोकनाथरस सेवन करे तो पेटमें बाईं तरफ जो तिल्ली रोग होता है वह तथा वातरक्त, वमन, मूलव्याधि और नाकके रास्ते रुधिरका गिरना ये संपूर्ण रोग दूर होंय। दूबके रसमें मिश्री मिलायके लोकनाथरस डाल नाकमे नस्य देवे तो नाकसे रुधिरका गिरना बंद होजावे, बेरकी गुठली पीपल और मोरपांखकी भस्म इन तीन औषधोंको एकत्र करके उसमे मिश्री और सहत मिलाकर लोकनाथरसको एकत्र कर सेवन करे तो उबकाई तथा हिचकी ये दूर होजावें। इसी प्रकार-संपूर्ण पोटली रस और मृगांक रस हेमगर्भ रस तथा मौक्तिकाख्य रसायन इनमे भी वही विधि करनी चाहिये। इस प्रकार लोकनाथ रस कहा है। यह लोकनाथरस संपूर्ण रोगोको दूर करता है ॥ ५७-८१ ॥

लघुलोकनाथरस क्षयपर।

**वराटभस्म मंडूरं चूर्णयित्वा घृते पचेत् ॥ ८२ ॥ तत्समं मारिचं चूर्णं नागवल्ल्या विभावितम्॥तच्चूर्णं मधुना लेह्यम-थवा नवनीतकैः ॥८३॥ माषमात्रं क्षयं हन्ति यामे यामे च भक्षितम्। लोकनाथरसो ह्येष मंडलाद्राजयक्ष्मनुत् ॥८४॥**

अर्थ-कौडियोंकी भस्म एक भाग, मंडूर एक भाग इन दोनों औषधोंको एकत्र कर घीमें भून ले। और फिर दो भाग कालीमिर्चका चूर्ण मिलाकर नागरवेलके पानोंके रसमें खरल करके रख ले। इसको लघुलोकनाथरस कहते हैं। इसे सहतके सात अथवा मक्खनके साथ एक एक प्रहरके अंतरसे एक एक मासे खावे तो सामान्य क्षयरोग दूर हो। इस प्रकार मंडल पर्यंत सेवन करे तो राजमक्ष्माको भी दूर करता है८२-८४

मृगांकपोटलीरस क्षयादिरोगोंपर।

**भूर्जवत्तनुपत्राणि हेम्नः सूक्ष्माणि कारयेत्। तुल्यानि तानि सूतेन खल्वे क्षिप्त्वा विमर्दयेत् ॥८५॥ काञ्चनाररसेनैव**

---

मंडल चालिस दिवसका होता है।

ज्वालामुख्या रसेन वा ॥ लाङ्गल्या वा रसैस्तावद्यावद्भवति पिष्टिका ॥८६॥ ततो हेम्नश्चतुर्थांशं टंकणं तत्र निक्षिपेत्। पिष्टिमौक्तिकचूर्णं च हेमाद्द्विगुणमावपेत् ॥८७॥ तेषु सर्वसमं गन्धं क्षिप्त्वा चैकत्र मर्दयेत् ॥ तेषां कृत्वा ततो गोलं वासोभिः परिवेष्टयेत् ॥ ८८ ॥ पश्चान्मृदा वेष्टयित्वा शोषयित्वा च धारयेत्। शरावसंपुटस्यान्ते तत्र मुद्रां प्रदापयेत् ॥८९॥ लवणापूरिते भाण्डे धारयेत्तं च संपुटम्। मुद्रां दत्त्वा शोषयित्वा बहुभिर्गोमयैः पुटेत् ॥ ९० ॥ ततः शीते समाहृत्य गन्धं सूतसमं क्षिपेत्। घृष्ट्वा च पूर्ववत्खल्वे पुटेद्गजपुटेन च ॥ ९१ ॥ स्वाङ्गशीतं ततो नीत्वा गुञ्जायुग्मं प्रकल्पयेत्। अष्टभिर्मरिचैर्युक्तः कृष्णात्रययुतोऽथवा ॥ ९२ ॥ विलोक्य देयो दोषादीनेकैका रसरक्तिका। सर्पिषा मधुना वापि दद्याद्दोषाद्यपेक्षया ॥ ९३ ॥ लोकनाथसमं पथ्यं कुर्यात्स्वस्थमनाः शुचिः। श्लेष्माणं ग्रहणीं कासं श्वासं क्षयमरोचकम् ॥ ९४ ॥ मृगाङ्कोऽयं रसो हन्यात् कृशत्वं बलहीनताम्।

अर्थ–सोनेके भोजपत्रके समान पतले पत्र करके उसके समान भाग शुद्ध पारा लेकर दोनोंको एक जगह कचनारके रससे अथवा कलहारीके रससे अथवा ज्वालामुखीके रससे जबतक मिलकर पिट्ठीके समान न होवे तबतक खरल करे। पश्चात् सोनेका चतुर्थांश सुहागा तथा सोनेसे दूना मोतियोंका चूरा और सबकी बराबर गंधक ले सबको एक जगह खरल करके एक गोला बनावे। उसके चारों तरफ कपडा लपेटकर ऊपरसे मिट्टी लहेस देवे। फिर इसको धूपमें सुखा ले। और मिट्टीके दो सरावे ले एकमें इस गोलेको रखके दूसरा उसके मुखपर रखके उसपर कपडमिट्टी कर देवे। फिर एक हाँडी लेवे। उसको पिसे हुए नमकसे आधी भरके बीचमें इस संपुटको रखके उसको नमकसे ही फिर भरके बन्द कर देवे और उसके मुखको बन्द कर मुखपर भी कपडमिट्टी कर देवे। इसको गजपुटकी अग्निसे कुछ अधिक अग्नि आरने उपलोंकी देवे। जब स्वांगशीतल हो जावे तब बाहर निकाल औषधोको खरलमें डालके फिर पारेके समान गन्धकको लेके कचनार अथवा ज्वालामुखीके

रसमें खरल करे। पूर्वोक्त विधिसे गजपुटकी अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब निकाल ले। इस रसको मृगांकपोटलीरस कहते हैं। यह पोटलीरस दो रत्ती प्रमाण आठ मिरचोंके साथ अथवा तीन पीपलोंके साथ देवे। दोषोंका तारतम्य देखकर एक रत्ती देवे। दोषोंकी अपेक्षानुसार घी और सहतसे देवे। इस रसका सेवन करनेवाले प्राणी अन्तःकरणको स्वस्थ करके पवित्र हो लोकनाथरसके समान पथ्य करे। इस प्रकार आचरण करनेसे इस रसायनसे कफके रोग, संग्रहणी, खाँसी, श्वास, क्षयरोग, अरुचि, शरीरकी कृशता और बलहानि ये सम्पूर्ण रोग दूर हो जाते हैं ॥ ८९-९४ ॥

हेमगर्भपोटलीरस कफक्षयादिकोपर।

सूतात्पादप्रमाणेन हेम्नः पिष्टं प्रकल्पयेत् ॥ ९५ ॥ तयोः स्याद्विगुणो गन्धो मर्दयेत्काञ्चनारिणा। कृत्वा गोलं क्षिपेन्मूषसंपुटे मुद्रयेत्ततः ॥९६॥ पचेद्भूधरयन्त्रेण वासरत्रितयं बुधः। तत उद्धृत्य तत्सर्वं दद्याद्गन्धं च तत्समम् ॥ ९७ ॥ मर्दयेच्चार्द्रकरसैश्चित्रकं स्वरसेन च। स्थूलपीतवराटांश्च पूरयेत्तेन युक्तितः ॥ ९८ ॥ एतस्मादौषधात्कुर्यादष्टमांशेन टङ्कणम्। टङ्कणार्धं विषं दत्त्वा पिष्ट्वा सेहुण्डदुग्धकैः ॥९९॥ मुद्रयेत्तेन कल्केन वराटानां मुखानि च। भांडे चूर्णप्रलिप्तेऽथ धृत्वा मुद्रां प्रदापयेत् ॥ १०० ॥ गर्ते हस्तोन्मिते धृत्वा पुटेद्गजपुटेन च। स्वाङ्गशीतं रसं ज्ञात्वा प्रदद्याल्लोकनाथवत् ॥१०१॥ पथ्यं मृगांकवज्ज्ञेयं त्रिदिनं लवणं त्यजेत्। यदा छर्दिर्भवेत्तस्या दद्याच्छिन्नाशृतं तदा ॥ १०२ ॥ मधुयुक्तं तथा श्लेष्मकोपे दद्याद्गुडार्द्रकम्। विरेके भर्जिता भङ्गा प्रदेया दधिसंयुता ॥ १०३ ॥ जयेत्कासं क्षयं श्वासं ग्रहणीमरुचिं तथा। अग्निं च कुरुते दीप्तं कफवातं नियच्छति ॥ १०४ ॥ हेमगर्भः परो ज्ञेयो रसः पोटलिकाभिधः।

अर्थ-शुद्धपारा १ भाग ले, उसका चतुर्थांश खरल किया हुआ सुवर्णका चूरा अथवा सोनेके वर्क लेवे। एवं पारे और सुवर्ण दोनोंसे दूनी शुद्ध की हुई गंधक लेवे। तीनोंको कचनारके रसमें खरल कर उसका गोला करके मिट्टीके सरावसंपुटमें रखके कपड-

मिट्टी कर देवे। फिर एक हाथका गड्ढा खोद उसमें दूसरा गड्ढा छोटासा खोदके उसमे पूर्वोक्त शरावसम्पुटको रखके ऊपर मिट्टी बिछाके दाब देवे। फिर उसके चारों तरफ आरने उपलोंके बारीक २ टुकडे डालके तीन दिन अग्नि देवे ( इस क्रियाको भूधरयन्त्र कहते हैं ) जब शीतल हो जावे तब बाहर निकाल शरावेमेंसे रसको ले समान भाग गन्धक मिलाय दोनोंको अदरखके रसमें खरल करके फिर चीतेके रसमें खरल करे। पश्चात् बडी २ पीली कौडी लाकर उनमें इस घुटी हुई दवाको भर देवे। फिर सब औषधोंका आठवां भाग सुहागेका आधा भाग विष ले दोनोंको थूहरके दूधमें खरल करके उन कौडियोंके मुखको बन्द कर देवे। फिर एक हाँडीमें चूना लेपकर इन कौडियोंको रख देवे। उस हाँडीके मुखपर दूसरी हाँडी जोडके उसकी सन्धियोंको कपडमिट्टी करके हाथ भरके गड्ढेमें आरने उपले भरके गजपुटकी अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब निकाल ले। इसको हेमगर्भपोटलीरस कहते हैं। हेमगर्भपोटलीरस लोकनाथरसकी विधिसे सेवन करे और मृगांकरसायनके समान पथ्य करे। इसमें भी विशेष पथ्य यह है कि तीन दिन नमकरहित भोजन करे। इस औषधके सेवनसे यदि उलटी आवे तो गिलोयका काढा करके उसमें सहत डालके पीवे तो ओकारियोंका आना दूर होजाता है। कफके प्रकोपमें गुड और अदरखको एकत्र करके सेवन करे तो कफ दूर होवे। यदि इस रसके प्रभावसे दस्त होने लगें तो भाँगको थोडी भूनके दहीमे मिलायके खावे तो दस्तोंका होना दूर हो। इस हेमगर्भपोटलीरससे खाँसी, क्षय, श्वास, संग्रहणी और अरुचि ये रोग दूर हो। अग्नि प्रदीप्त होवे तथा कफवायुका प्रकोप दूर होजाता है ॥ ९९-१०४ ॥

दूसरी विधि।

**रसस्य भागाश्चत्वारस्तावन्तः कनकस्य च ॥ १०५ ॥ तयोश्च पिष्टिकां कृत्वा गंधो द्वादशभागिकः। कुर्यात्कज्जलिकां तेषां मुक्ताभागाश्च षोडश ॥ १०६ ॥ चतुर्विंशश्च शंखस्य भागैकं टंकणस्य च। एकत्र मर्दयेत्सर्वं पक्वनिंबूकजै रसैः ॥१०७॥ कृत्वा तेषां ततो गोलं मूषासंपुटके न्यसेत्। मुद्रां दत्त्वा ततो हस्तमात्रे गर्ते च गोमयैः ॥ १०८ ॥ पुटेद्गजपुटेनैव स्वांगशीतं समुद्धरेत्। पिष्ट्वा गुंजाचतुर्मानं दद्याद्व्याज्यसंयुतम् ॥ १०९ ॥ एकोनत्रिंशदुन्मानमरिचैः सह दीयताम्। राजते मृन्मये पात्रे काचजे वावलेहयेत् ॥११०॥**

**लोकनाथसमं पथ्यं कुर्याच्च स्वस्थमानसः। कासे श्वासे क्षये वाते कफे ग्रहणिकागदे ॥ १११ ॥ अतीसारे प्रयोक्तव्या पोटलीहेमगर्भिका।**

अर्थ-पारा चार भाग तथा सुवर्णका बारीक चूर्ण चार भाग दोनोंको एक जगह उत्तम पिट्टी होनेपर्यंत खरल करे। फिर बारह भाग गंधक लेके खरल कर कजली करे। पश्चात् सोलह भाग मोती, चौबीस भाग शंख और एक भाग सुहागा लेके पूर्वोक्त कजलीमें मिलाकर पके हुए नींबूके रसमें खरल करके उसका गोला बनाकर मिट्टीके शरावसंपुटमें रखके उसपर कपडमिट्टी कर देवे। फिर १ हाथका गहरा और लंबा चौडा गड्ढा खोद उसमें गौके गोबरके उपले भर बीचमे शरावसंपुटको रखके गजपुटकी अग्नि देवे। जब शीतल होजावे तब बाहर निकालके उसमेंसे औषधको ले खरल करके धर रक्खे। इसको हेमगर्भपोटली रस कहते हैं। यह हेमगर्भ चार रत्ती लेकर उनतीस काली मिरचके चूर्णके साथ रूपेके अथवा मिट्टीके अथवा कॉचके प्यालेमें गौका घी डालके स्वस्थचित्त करके पीवे और इसके ऊपर लोकनाथ रसायनके समान पथ्य करे तो खॉसी, श्वास, क्षयरोग, कफ, ग्रहणी और अतिसार ये संपूर्ण रोग दूर होजावें ॥ १०५-१११ ॥

महाज्वरांकुश विषमज्वरपर।

**शुद्धसूतो विषं गंधः प्रत्येकं शाणसंमितम् ॥११२॥ धूर्तबीजं त्रिशाणं स्यात्सर्वेभ्यो द्विगुणा भवेत्। हेमाह्वा[1] कारयेदेषां सूक्ष्मचूर्णं प्रयत्नतः ॥ ११३ ॥ देयं जम्बीरमज्जाभिश्चूर्णं गुञ्जाद्वयोन्मितम्। आर्द्रकस्वरसैर्वापि ज्वरं हंति त्रिदोषजम् ॥११४॥ ऐकाहिकं द्व्याहिकं वा त्र्याहिकं वा चतुर्थकम्। विषमं च ज्वरं हन्याद्विख्यातोऽयं ज्वरांकुशः ॥ ११५ ॥**

अर्थ-शुद्ध पारा तीन मासे, शुद्ध किया हुआ विष तीन मासे, गन्धक तीन मासे, धतूरेके बीज नौ मासे और चोक सबसे दूना लेवे। सबको एकत्र कर बारीक चूर्ण करके जंभीरीके रसमें अथवा अदरखके रसमें दो रत्ती देवे तो त्रिदोषज्वर और नित्य आनेवाला दिनरात्रिमें दो बार आनेवाला एकतर तिजारी और चातुर्थिक ज्वर ये सब दूर हों। यह ज्वरांकुश विषमज्वर दूर करनेमें विख्यात है ॥ ११२-११५ ॥

१ हेमक्षीरीस्थाने केचित्त्रिकटुकं लिपन्ति।

आनन्दभैरवरस अतिसारादिकोंपर।

दरदं वत्सनाभं च मरिचं टंकणं कणा। चूर्णयेत् समभागेन रसो ह्यानन्दभैरवः॥ ११६॥ गुञ्जैकं वा द्विगुञ्जं वा बलं ज्ञात्वा प्रयोजयेत्। मधुना लेहयेचानु कुटजस्य फलत्वचम्॥११७॥ चूर्णितं कर्षमात्रं तु त्रिदोषोत्थातिसारनुत्। दध्यन्नं दापयेत्पथ्यं गोघृतं तक्रमेव च॥११८॥ पिपासायां जलं शीतं विजया च हिता निशि।

अर्थ-१ सिंग्रफ २ शुद्ध किया हुआ वत्सनाभ विष ३ काली मिरच ४ सुहागा और ५ पीपल ये पांच औषध समान भाग लेके एकत्र चूर्ण करे, इसको आनन्दभैरवरस कहते हैं। यह आनन्दभैरव रस इंद्रजौ और कूडेकी छाल ये दोनों एक कर्ष प्रमाण लेकर चूर्ण करे। इस चूर्णके साथ रोगोंका बलाबल विचारके १ रत्ती प्रमाण अथवा दो रत्ती प्रमाण सहतसे देवे तो त्रिदोषसे प्रकट अतिसारका रोग दूर होवे। पथ्यमें गौका दही और भात अथवा छाछ भात देवे। प्यास लगे तो शीतल जल पीवे। रात्रिमें थोडी भांग शुद्ध करके घोटके पीनी चाहिये॥ ११६-११८॥

लघुसूचिकाभरणरस सन्निपातपर।

विषं पलमितं सूतः शाणिकश्चूर्णयेद्द्वयम्॥११९॥ तच्चूर्णं संपुटे क्षिप्त्वा काचलिप्तशरावयोः॥ मुद्रां दत्त्वा च संशोष्य ततश्चुल्यां निवेशयेत॥ १२०॥ वह्निं शनैः शनैः कुर्यात्प्रहरद्वयसंख्यया। तत उद्घाटयेन्मुद्रामुपरिस्थां शरावकात॥१२१॥ सँलग्नो यो भवेत्सूतस्तं गृह्णीयाच्छनैः शनैः। वायुस्पर्शो यथा न स्यात्तथा कूप्यां निवेशयेत्॥ १२२॥ यावत्सूच्यामुखे लग्नः कूप्यां निर्याति भेषजम्। तावन्मात्रो रसो देयो मूर्च्छिते सन्निपातिनि॥ १२३॥ क्षुरेण प्रच्छिते मूर्ध्नि तत्रांगुल्या च घर्षयेत। रक्तभेषजसंपर्कान्मूर्च्छितोऽपि हि जीवति॥१२४॥ तथैव सर्पदष्टस्तु मृतावस्थोऽपि जीवति। यदा तापो भवेत्तस्य मधुरं तत्र दीयते॥ १२५॥

---

१ सूचीमुखं ग्रहणार्थं शलाका कथ्यते, सा तु मसूरदलसंस्थामुखी भवति।

अर्थ–बच्छनागविष १ पल, शुद्ध किया हुआ पारा ३ मासे, दोनोंको एकत्र खरल करके चूर्ण करे। फिर काचसे लिपे (काच चढे) हुए दो मिट्टीके सकोरे ले, उनमें चूर्णको रख दोनोंको मिलाकर मुख बन्द कर ऊपर कपडामिट्टी कर देवे। फिर धूपमें सुखाके चूल्हेपर रखके दो प्रहरतक मन्द २ अग्नि देवे, तब उसको नीचे उतारके मुद्रा दूर कर ऊपरके शरावेमें लगे हुए पारेको हलके हाथसे युक्तिसे निकाल शीशीमें भरके धर रक्खे। पश्चात् उस शीशीमें सूई डालके जितना रस सूईके अग्रभागमें लगे इतना बाहर निकाले जिस मनुष्यको सन्निपातके होनेसे मूर्च्छा आरही हो उस मनुष्यके मस्तकमें तालुएके स्थानमें उस्तरेसे बालोंको मूँडके फिर उस जगहकी खालको छीलके उस घावमें इस औषधको लगाकर उँगलीसे यहांतक मलता रहे कि जबतक वह औषध रुधिरसे न मिले। जब रुधिरमें यह औषध अच्छे प्रकार मिल जावेगी उसी समय उस प्राणीकी मूर्च्छा जाती रहेगी और वह प्राणी होशमें आजावेगा। उसी प्रकार जिस प्राणीको सांपके काटनेसे मूर्च्छा आगई हो और मरा चाहता हो वह भी इस क्रियाके करनेसे बच जाता है। इस उपायके करनेसे देहमें दाह विशेष होती है, उसके दूर करनेको गुलकन्द दाख इत्यादिक मधुर पदार्थ भक्षणको देवे तो दाह शान्त हो ॥ ११९–१२५ ॥

जलचूँडामणिरस सान्निपातपर।

**सूतभस्मसमं गन्धं गन्धात्पादं मनःशिला। माक्षिकं पिप्पलीं व्योषं प्रत्येकं शिलया समम् ॥ १२६ ॥ चूर्णयेद्भावयेत्पित्तैर्मत्स्यमायूरसंभवैः। सप्तधा भावयेच्छुष्कं देयं गुञ्जाद्वयं हितम् ॥ १२७ ॥ तालपर्णी रसश्चानु पञ्चकोलशृतोऽथवा। जलचूडो रसो नाम सन्निपातं नियच्छति ॥ १२८ ॥ जलेयोगश्च कर्तव्यस्तेन वीर्यं भवेद्रसे।**

अर्थ–पारेकी भस्म १ भाग और गन्धक १ भाग, गन्धकका चतुर्थांश मनशिल, १ सुवर्णमाक्षिककी भस्म २ पीपल ३ सोंठ ४ काली मिरच और ५ पीपल ये पांच औषध मनशिलके समान ले चूर्ण करे। फिर खरलमें डालके मछलीके कलेजेमें जो पित्ता होता है उसके सात पुट देवे, फिर मोरके पित्तेके सात पुट देकर सुखा लेवे, इसको जलचूडामणिरस कहते हैं। यह जलचूडामणिरस दो रत्तीके अनुमान मूसलीके रसमें अथवा पञ्चँकोलके काढेमें देवे। जब इसकी गरमी होवे तब उस

---

१ अन्यत्र पुस्तके जलबन्धुनामा ख्यातः। २ एतेन शीतलजलपानं तथा हृदयनेत्रादिसेचनं चेति सम्प्रदायः। ३ पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः। पञ्चकोलमिति।

रोगीके मस्तकपर शीतल जलका तरडा देवे तो रसमें वीर्य बढे। इस प्रकार करनेसे सन्निपात दूर होवे ॥ १२६-१२८ ॥

पञ्चवक्त्ररस सन्निपातपर।

**शुद्धसूतं विषं गन्धं मरिचं टङ्कणं कणा ॥१२९॥ मर्दयेद्धूर्तजद्रावैर्दिनमेकं तु शोषयेत्। पंचवक्त्रो रसो नाम द्विगुञ्जः सन्निपातहा ॥ १३० ॥ अर्कमूलकषायं तु सत्र्यूषमनुपाययेत्। युक्तं दध्योदनं पथ्यं जलयोगं च कारयेत् ॥१३१॥ रसेनानेन शाम्यन्ति सक्षौद्रेण कफादयः। मध्वार्द्रकरसं चानु पिबेदग्निविवृद्धये ॥ १३२ ॥ यथेष्टं घृतमांसाशी शक्तो भवति पावकः।**

अर्थ-१ शुद्ध किया हुआ पारा २ शुद्ध किया हुआ बच्छनाग विष ३ गन्धक ४ काली मिरच ५ सुहागा ६ पीपल इन छः औषधोको. धतूरेके रसमें एक दिन खरल कर दो दो रत्तीकी गोलियां बनावे और इनको धूपमें सुखा ले। इसको पञ्चवक्त्ररस कहते हैं। इस रसको आककी जडका काढा कर उसमें सोंठ, मिरच पीपलका चूर्ण मिलाकर उसके साथ देवे और पथ्यमें दही भात देवे तथा रोगीको जब गरमी होवे तब शीतल जलका तरेडा देवे तो सन्निपात दूर हो जावे। इस रसको सहतके साथ सेवन करनेसे कफादिक रोग दूर हों, अदरखके रसमें सहत मिलाकर सेवन करे तो जठराग्निकी वृद्धि होवे। घी और मांस यथेष्ट भोजन करनेसे पच जाते हैं ॥ १२९-१३२ ॥

उन्मत्तरस सन्निपातपर।

**रसगन्धौ समानांशौ धत्तूरफलजै रसैः ॥ १३३ ॥**
**मर्दयेद्दिनमेकं च तत्तुल्यं त्रिकटु क्षिपेत्।**
**उन्मत्ताख्यो रसो नाम नस्ये स्यात्संनिपातजित् ॥१३४॥**

अर्थ-शुद्ध किया पारा १ भाग, गन्धक १ भाग, १ सोंठ २ कालीमिरच ३ पीपल ये तीन औषध पारा गन्धक दोनोंके समान लेवे। सबका चूर्ण कर धतूरेके फलके रसमें एक दिन खरल करे, फिर सुखाकर चूर्ण बनाकर धूपमें सुखा ले। इसको उन्मत्तरस कहते हैं। जिसको संनिपात होवे उसकी नाकमें इसकी नस्य देवे तो रोगीका संनिपात दूर होय ॥ १३३॥१३४ ॥

---

१ उत्कटसन्निपाते रक्तिकाद्वयमितं भक्षणेऽपि देयमित्यस्मत्संप्रदायेऽनुभूतम्।

सन्निपातपर अञ्जन ।

निस्त्वग्जेपालबीजं च दशनिष्कं विचूर्णयेत् । मरिचं पिप्पलीं सूतं प्रतिनिष्कं विमिश्रयेत् ॥ १३५ ॥ भाव्यो जम्बीरजैर्द्रावैः सप्ताहं संप्रयत्नतः । रसोऽयमञ्जने दत्तः सन्निपातं विनाशयेत् ॥ १३६ ॥

अर्थ–छिलके रहित जमालगोटेके बीज १० टंक लेवे और कालीमिरच, पीपल और पारा ये औषध एक एक टंकण लेवे । इन चारोंको जम्बीरीके रसमें सात दिन खरल कर उसकी गोलियां बना लेवे । सन्निपातवाले रोगीके नेत्रमें इस गोलीको जलमें घिसके लगावे तो सान्निपात दूर हो जाता है ॥ १३५ ॥ १३६ ॥

नाराचरस शूलादिरोगोंपर ।

सूतटङ्कणके तुल्ये मरिचं सूततुल्यकम् । गन्धकं पिप्पली शुंठी द्वौ द्वौ भागौ विचूर्णयेत् ॥ १३७ ॥ सर्वतुल्यं क्षिपेद्दन्तीबीजं निस्तुषितं भिषक् । द्विगुंजं रेचनं सिद्धं नाराचोऽयं महारसः ॥ १३८ ॥ आध्मानं शूलविष्टंभानुदावर्त्तं च नाशयेत् ।

अर्थ–पारा, सुहागा और कालीमिरच ये समभाग ले । गन्धक, पीपल और सोंठ ये तीन औषध पारेसे दूनी ले तथा शुद्ध किया हुआ जमालगोटा सबकी बराबर लेय, सबको एकत्र कर चूर्ण कर लेवे । इसको नाराचरस कहते हैं । यह रस दस्त होनेके वास्ते २ रत्ती देवे तो ( दस्त ) होवे और पेटका फूलना शूलरोग मलका अवरोध और वायुकी ऊर्ध्वगति ये सब रोग दूर होंय । इस नाराचरसको गरम जलके साथ वा तुलसीके रससे वा सहत तथा अदरखके रसके साथ देते हैं । और जब दस्त बन्द करने होंय तब शीतल जल पीवे तो दस्त बन्द हो जावें ॥ १३७॥१३८॥

इच्छाभेदीरस शूलादिकोंपर ।

दरदं टंकणं शुंठी पिप्पली चेति कार्षिकाः ॥१३९॥ हेमाह्वा पलमात्रा स्याद्दन्तीबीजं च तत्समम् । विशोष्यैकत्र सर्वाणि गोदुग्धेनैव पाययेत्[1] ॥ १४० ॥ त्रिगुंजं रेचनं दद्याद्विष्टंभाध्मानरोगिषु ।

---

१ साधयेदिति पाठान्तरम् ।

अर्थ-सिंग्रफ, सुहागा, सोंठ और पीपल ये चार औषध एक एक तोला लेवे और चोक तथा शुद्ध किया हुआ जमालगोटा चार २ तोले लेवे। सब औषधोंको कूट पीस चूर्ण करे। इसको इच्छाभेदीरस कहते हैं। यह रस दस्त होनेके वास्ते गौके दूधमें तीन रत्ती देवे तो दस्त होकर मलका अवरोध तथा पेटका फूलना इत्यादि रोग दूर होते हैं। यह प्राणीको इच्छाके माफिक दस्त कराता है इससे इसे इच्छाभेदीरस कहते हैं॥ १३९॥ १४०॥

वसन्तकुसुमाकररस प्रमेहादिकोंपर।

द्वौ भागौ हेमभूतेश्च गगनं चापि तत्समम्॥ १४१॥ लोहभस्म त्रयो भागाश्चत्वारो रसभस्मतः। वंगभस्म त्रिभागं स्यात्सर्वमेकत्र मर्दयेत्॥ १४२॥ प्रवालं मौक्तिकं चैव रससाम्येन दापयेत्। भावना गव्यदुग्धेन रसैर्घृष्ठ्वाटरूषकैः॥ १४३ हरिद्रावारिणा चैव मोचकंदरसेन च। शतपत्ररसेनापि मालत्याः स्वरसेन च॥ १४४॥ पश्चान्मृगमदश्चंद्रस्तुलसीरसभावितः। कुसुमाकर इत्येष वसंतपदपूर्वकः॥ १४५॥ गुञ्जाद्वयं ददीतास्य मधुना सर्वमेहनुत्। सितचन्दनसंयुक्तश्चाम्लपित्तादिरोगजित्॥१४६॥

अर्थ-सुवर्णकी भस्म २ भाग अभ्रककी भस्म २ भाग लोहभस्म ३ भाग पारेकी भस्म ४ भाग वंगभस्म ३ भाग मूँगे और मोतीकी भस्म ४ भाग इनको गौके दूधकी १ अडूसेके पत्तोंके रसकी १ हलदीके रसकी १ सिंबलकी जडके रसकी १ गुलाबजलकी १ मालतीकी ३ कस्तूरीकी १ भीमसेनी कपूरकी १ तुलसीके रसकी एक एक भावना देकर गोली बना सुखाय लेवे, इसको वसन्तकुसुमाकर रस कहते हैं। इसकी दो रत्ती मात्रा सर्व प्रमेहोंपर देवे। मिश्री और सफेद चन्दनके चूरके साथ देनेसे सर्व पित्तके रोग दूर होते हैं ( यह रस शार्ङ्गधरका नहीं है प्रक्षिप्त पाठ है )॥ १४१-१४६॥

राजमृगांकरस क्षयरोगपर।

सूतभस्म त्रिभागं स्याद्भागैकं हेमभस्मकम्। मृताभ्रस्य च भागैकं शिलागंधकतालकम्॥ १४७॥ प्रतिभागद्वयं

---

१ एतच्चूर्णं पयसा सम्मिश्र्य क्षीरनाशाद्धि वह्नौ पाचयेत्। क्षीरपरिमाणं च द्रव्यसम्भाराच्चतुर्गुणं ज्ञेयमिति सम्प्रदायः। २ 'मृतताम्रस्य' इति पाठान्तरम्।

शुद्धमेकीकृत्य विचूर्णयेत् । वराटान्पूरयेत्तेन छागीक्षीरेण टंकणम् ॥ १४८ ॥ पिष्ट्वा तेन मुखं रुद्ध्वा मृद्भांडे तन्निरोधयेत् । शुष्कं गजपुटे पक्त्वा चूर्णयेत्स्वाङ्गशीतलम् ॥१४९॥ रसो राजमृगांकोऽयं चतुर्गुञ्जः क्षयापहः । दशपिप्पलिकाक्षौद्रैरेकोनत्रिंशदूषणैः ॥ १५० ॥ सघृतं दापयेत्पथ्यं स्त्रीकोपाग्निश्रमांस्त्यजेत् । पथ्यं वा लघुमांसानि राजरोगप्रशान्तये ॥ १५१ ॥

अर्थ–पारेकी भस्म ३ भाग सुवर्णकी तथा अभ्रककी भस्म एक एक भाग १ मनशिल २ गन्धक और ३ हरिताल ये तीनों शुद्ध की हुई दो दो भाग ले सबको एकत्र खरल कर चूर्ण कर लेवे । फिर बडी २ पीली कौडी ले उनमें इस चूर्णको भरके मुखको बकरीके दूधमें पिसे हुए सुहागेसे बंद कर देवे । फिर उन कौडियोंको हांडीमें रखके उस हांडीके मुखपर दूसरी छोटी हांडी रखके उसकी संधियोंको कपडमिट्टीसे बंद कर देवे । धूपमें सुखाके आरने उपलोंके गजपुटमें धरके फूँकदेवे, जब शीतल होजावे तब उस संपुटमेंसे रस निकालके धर रक्खे । इसको राजमृगांक कहते हैं । यह राजमृगांक चार रत्ती, दश पीपल[1] और उन्तीस काली मिरच इन दोनोंके चूर्णमें मिलाकर सहतमें चाटे तो क्षयरोग दूर होजावे । इसके ऊपर घृतसहित पथ्य दे और राजरोगकी शान्तिके लिये लघुमांसोंका प्रयोग करे, स्त्रीसंग, क्रोध, अग्निसे ताप और परिश्रम छोड देवे ॥ १४७–१५१ ॥

स्वयमग्निरस क्षयादिकोंपर ।

शुद्धं सूतं द्विधा गन्धं कुर्यात्खल्वेन कज्जलीम् । तयोः समं तीक्ष्णचूर्णं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ॥ १५२ ॥ द्वियामांते कृतं गोलं ताम्रपात्रे विनिक्षिपेत् । आच्छाद्यैरण्डपत्रेण यामार्धेऽत्युष्णता भवेत् ॥१५३॥ धान्यराशौ न्यसेत्पश्चादहोरात्रात्समुद्धरेत् । संचूर्य गालयेद्वस्त्रे सत्यं वारितरं भवेत् ॥१५४॥ भावयेत्कन्यकाद्रावैः सप्तधा भृङ्गजैस्तथा । काकमाचीकुरण्टोत्थद्रवैर्मुण्ड्या पुनर्नवैः ॥ १५५ ॥ सहदेव्यमृतानीलीनिर्गुंडीचित्रजैस्तथा । सप्तधा तु पृथग्द्रावैर्भाव्यं शोष्यं

१ यदि यह चूर्ण एक वारमें न खाया जाय तो दो तीन वार मिलायके खाय ।

तथाऽऽतपे ॥ १५६ ॥ सिद्धयोगो ह्ययं ख्यातः सिद्धानां च मुखागतः । अनुभूतो मया सत्यं सर्वरोगगणापहः ॥१५७॥ स्वर्णादीन्मारयेदेवं चूर्णीकृत्य तु लोहवत् । त्रिफलामधुसंयुक्तः सर्वरोगेषु योजयेत् ॥१५८॥ त्रिकटुत्रिफलैलाभिर्जातीफललवङ्गकैः । नवभागोन्मितैरेतैः समः पूर्वरसो भवेत् ॥ १५९ ॥ संचूर्ण्यालोडयेत्क्षौद्रैर्भक्ष्यं निष्कद्वयं द्वयम् स्वयमग्निरसो नाम्ना क्षयकासनिकृन्तनः ॥ १६० ॥

अर्थ-शुद्ध पारा १ भाग तथा शुद्ध गंधक दो भाग लेकर दोनोंकी कजली करके फिर इसमें समान भाग फौलाद लोहका चूर्ण मिलाकर घीगुवारके रसमें दो प्रहर पर्यंत खरल करे । फिर इसका गोला बनाकर ताम्रके कटोरेमें उस गोलेको रखके उसके ऊपर अरंडके पत्ते ढकके चार घडी पर्यंत धूपमें रख देवे । जब गोला अत्यंत गरम हो जावे तब उसको धानकी राशिमे गाड देवे । एक दिनरात्रिके पश्चात् उसको निकालकर उसको कपडेमें छान लेय और पानीमें डाले तो यह भस्म निश्चय पानीमें तरने लगे । इस भस्मको खरलमें डालके आगे कही हुई औषधोंके रसकी भावना देवे । जैसे घीगुवार, भांगरा, मकोय, पियावांसा, मुंडी, पुनर्नवा, सहदेई, गिलोय, नीली, निर्गुंडी और चित्रक इनके पृथक् २ सात पुट देवे(ऊपर कही हुई औषधोंके रसमें खरल कर धूपमें सुखा ले यह एक पुट हुई इस प्रकार सात २ पुट देवे ) तो यह रसायन सिद्ध होजावे । इसको स्वयमाग्निरस कहते हैं । यह रस सर्वत्र प्रसिद्ध बडे २ पुरुषोंने कहा है, इस वास्ते मैंने अनुभव करके कहा है । यह स्वयमाग्निरस संपूर्ण रोग दूर करनेको त्रिफलेका चूर्ण और सहत इस अनुपानके साथ दो निष्कप्रमाण लेवे तो संपूर्ण रोग दूर हों । १ सोंठ, २ मिरच ३ पीपल ४ हरड ५ बहेडा ६ आँवला ७ इलायची ८ जायफल और ९ लौंग इन नौ औषधोंका समान भाग ले चूर्ण करे । इस चूर्णके समान यह स्वयमाग्नि रस लेवे । दोनोंको एकत्र कर सहतमें मिलाके दो निष्कप्रमाण सेवन करे तो क्षयरोग और खाँसीका रोग ये नष्ट हों । इस रसायनकी रीतिसे स्वर्णादिक धातुका लोहेके समान चूर्ण करके भस्म करे तो उनकी भी भस्म हो जावे ॥ १५२-१६० ॥

सूर्यावर्त्तरस श्वासपर ।

सूताधौं गन्धको मर्द्यो यामैकं कन्यकाद्रवैः । द्वयोस्तुल्यं ताम्रपत्रं पूर्वकल्केन लेपयेत् ॥ १६१ ॥ दिनैकं स्थालिका-

१ मृतलोहचूर्णं चेति केचित् । २ संप्रदाये तु त्रिदिनान्तं धारणम् ।

यन्त्रे पक्त्वा चादाय चूर्णयेत्। सूर्यावर्तो रसो ह्येष द्विगुञ्जः श्वासजिद्भवेत् ॥ १६२ ॥

अर्थ–शुद्ध पारा १ भाग और गंधक पारेसे आधी ले, दोनोंको एकत्र करके घीगुवारके रससे एक प्रहर खरल करके कल्क करावे। फिर दोनोंके समान तांबेके पत्र लेकर उनपर इस कल्कका लेप करके उन पत्रोंको मिट्टीके पात्रमें रखके उस पात्रके मुखपर दूसरा पात्र औंधा रखके उसकी संधियोंको कपडमिट्टीसे बंद कर देवे। फिर उसको धूपमें सुखाके चूल्हेपर रखके एक दिनकी अग्नि देवे। इसको स्थालिकायंत्र कहते हैं। फिर शीतल होनेपर पत्रोंको बाहर निकाल खरल करके बारीक चूर्ण कर लेवे। इसको सूर्यावर्त्तरस कहते हैं। यह दो रत्तीके अनुमान श्वासरोगवालेको देवे तो उसके श्वासको दूर करता है ॥ १६१ ॥ १६२ ॥

स्वच्छन्दभैरवरस वातरोगपर।

शुद्धं सूतं मृतं लोहं ताप्यं गंधकतालकम्। पथ्याग्निमंथनिर्गुंडी त्र्यूषणं टङ्कणं विषम् ॥१६३॥ तुल्यांशं मर्दयेत्खल्वे दिनं निर्गुंडिकाद्रवैः। मुण्डीद्रावैर्दिनैकं तु द्विगुञ्जं वटीकीकृतम् ॥ १६४ ॥ भक्षयेद्वातरोगार्तो नाम्ना स्वच्छन्दभैरवः। रास्नामृतादेवदारुशुंठिवातारिजं शृतम् ॥१६५॥ सगुग्गुलुं पिबेत्कोष्णमनुपानं सुखावहम्।

अर्थ–१ शुद्ध पारा २ लोहभस्म ३ स्वर्णमाक्षिककी भस्म ४ गंधक ५ हरताल ६ जंगीहरड ७ अरनी ८ निर्गुंडी ९ सोठ १० कालीमिरच ११ पीपल १२ सुहागा १३ शुद्ध बच्छनाग विष ये तेरह औषध समान भाग लेकर निर्गुंडीके रसमे एक दिन खरल करे, पीछे मुंडीके रसमें १ दिन घोट दो दो रत्तीकी गोलियां बनावे। इसको स्वच्छंदभैरवरस कहते हैं। यह रस और १ रास्ना २ गिलोय ३ देवदारु ४ सोंठ ५ अरंडकी जड इन पांच औषधोंका काढा करके उसमें गूगल मिलाके सेवन करे तो वादीका रोग दूर होजावे ॥ १६३॥१६५ ॥

हंसपोटलीरस संग्रहणीपर।

दग्धान्कपर्दिकान्पिष्ट्वा त्र्यूषणं टङ्कणं विषम् ॥ १६६ ॥
गन्धकं शुद्धसूतं च तुल्यं जम्बीरजैर्द्रवैः।
मर्दयेद्भक्षयेन्माषं मरिचाज्यं लिहेदनु ॥ १६७ ॥
निहन्ति ग्रहणीरोगं पथ्यं तक्रौदनं हितम्।

अर्थ-१ कौडीकी भस्म २ सोंठ ३ काली मिरच ४ पीपल ५ फूला हुआ सुहागा ६ शुद्ध बच्छनाग ७ गंधक और ८ शुद्ध किया हुआ पारा इन आठ औषधोंको कूट पीस जंभीरीके रसमें खरल कर एक एक मासेकी गोली बनावे । इसको हंसपोटली-रस कहते हैं । इसको काली मिरचके चूर्णसे सहत मिलायके भक्षण करे, इसपर छाछ और भातको खाना पथ्य है । यह संग्रहणीरोगको दूर करता है ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

त्रिविक्रमरस पथरीपर ।

**मृतं ताम्रमजाक्षीरे पाच्यं तुल्ये गतद्रवम् ॥१६८॥ तत्ताम्रं शुद्धसूतं च गंधकं च समं समम् । निर्गुण्डीस्वरसैर्मर्द्यं दिनं तद्गोलकं कृतम् ॥१६९॥ यामैकं वालुकायन्त्रे पाच्यं योज्यं द्विगुञ्जकम् । बीजपूरस्य मूलं तु सजलं चानुपाययेत् । ॥ १७० ॥ रसस्त्रिविक्रमो नाम्ना मासैकेनाश्मरीप्रणुत् ।**

अर्थ-ताम्रभस्मके समान बकरीका दूध ले, उसमें तांबेकी भस्मको मिलायके औटायके गाढी करे । यह ताम्रभस्म, शुद्ध पारा और गंधक ये तीनों औषध समान भाग लेके निर्गुंडीके रससे एक दिन खरल कर उसकी गोली करके उसको वालु-कायन्त्रमें डालके एक प्रहर अग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब बाहर निकालके उस संपुटसे औषधोंको निकाल लेवे । इसको त्रिविक्रम रस कहते हैं । यह रस दो रत्तीके अनुमान बिजौरेकी जडके रसमें अथवा काढा करके उसके साथ सेवन करे तो पथ-रीका रोग एक महीनेमें दूर होजावे ॥ १६८-१७० ॥

महातालेश्वररस कुष्ठादिकोंपर ।

**[२]तालं ताप्यं शिला सूतं शुद्धं सैन्धवटङ्कणे ॥१७१॥ समांशं चूर्णयेत्खल्वे सूताद्द्विगुणगन्धकम् । गन्धतुल्यं मृतं ताम्रं जम्बीरैर्दिनपञ्चकम् ॥ १७२ ॥ मर्द्यं षड्भिः पुटैः पाच्यं भूधरे संपुटोदरे । पुटे पुटे द्रवैर्मर्द्यं सर्वमेतच्च षट्पलम् । जम्बीराम्लेन तत्सर्वं दिनं मर्द्यं पुटेल्लघु ॥१७४॥ त्रिंशदंशं विषं चास्य क्षिप्त्वा सर्वं विचूर्णयेत् । माहिषाज्येन संमिश्रं**

---

१ तद्गोलं संधयेद्दिनमिति पाठोऽपि। २ तालमित्यस्य स्थाने तारमित्यपि दृश्यते दीपिकादौ।

निष्कार्धं भक्षयेत्सदा[1] ॥ १७५ ॥ मध्वाज्यैर्बाकुचीचूर्णं कर्ष-मात्रं लिहेदनु। सर्वकुष्ठान्निहन्त्याशु महातालेश्वरो रसः॥१७६॥

अर्थ-१ हरताल २ सुवर्णमाक्षिक ३ मनशिल ४ शुद्ध किया हुआ पारा ५ सैंधानमक और ६ सुहागा ये छः औषध समान भाग तथा पारेसे दूनी गन्धक लेवे। तथा गन्धकके समान ताम्रभस्म ले। सबको खरल कर जम्भीरीके रसमें ५ दिन पर्यन्त घोटे। फिर इसका गोला बनाकर उसको शरावसंपुटमें रखके कपड-मिट्टी करके भूधर[2]यन्त्रमें उस शरावसम्पुटको धरके आरने उपलोंकी अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब निकाल फिर जम्भीरीके रसमें खरलकर पूर्वरीतिसे भूधरयन्त्रमें धरके अग्नि देवे। इस प्रकार छः बार भूधरयन्त्रमे डालके अग्नि देवे तो सिद्ध हो। इस प्रकार की हुई भस्म छः पल ताम्रभस्म दो पल और लोहभस्म चार पल इन तीनों भस्मोंको एकत्र खरल कर जम्भीरीके रसमें एक दिन खरल करे। मिट्टीके शरावसम्पुटमें डालके कपडमिट्टी कर आरने उपलोंकी हलकी[3] अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब बाहर निकालके इस भस्मका तीसवां हिस्सा शुद्ध किया वच्छ-नाग विष बारीक करके मिलावे। इसको महातालेश्वर रस कहते है। यह महाता-लेश्वर रस अर्द्धनिष्कप्रमाण लेके भैंसके घीके साथ सेवन करे और उसी समय घी और सहत दोनो विषम भाग ले एकत्र करे, उसमे बावचीका चूर्ण एक कर्ष मिलायके इनके साथ सेवन करे तो यह सम्पूर्ण कुष्ठोंको तत्काल दूर करता है ॥ १७१-१७६ ॥

कुष्ठकुठाररस कुष्ठरोगपर।

सूतभस्म समो गन्धो मृतायस्ताम्रगुग्गुलू। त्रिफला च महा-निम्बश्चित्रकश्च शिलाजतु ॥१७७॥ इत्येतच्चूर्णितं कुर्यात् प्रत्येकं शाणषोडशम्। चतुःषष्टि करंजस्य बीजचूर्णं प्रक-ल्पयेत् ॥१७८॥ चतुःषष्टि मृतं चाभ्रं मध्वाज्याभ्यां विलो-डयेत। स्निग्धभांडे घृतं खादेद्द्विनिष्कं सर्वकुष्ठनुत् ॥ ॥ १७९ ॥ रसः कुष्ठकुठारोऽयं गलत्कुष्ठनिवारणः।

अर्थ-१ पारेकी भस्म २ गन्धक ३ लोहभस्म ४ ताम्रभस्म ५ गूगल ६ हरड ७ बहेडा ८ आंवला ९ बकायनकी छाल १० चीतेकी छाल और ११ शिलाजीत

---

१ सदाशब्दोऽत्र रससंसेव्यविषये सूचयति, तेन सेव्योऽयं रसः इति तात्पर्यार्थः।
२ भूधरयन्त्रका स्वरूप प्रथम हेमगर्भपोटलीमें कह आये है। ३ एक विलस्त लम्बा चौडा गड्ढा खोद उसमें आरने उपले भरके हलकी अग्नि देवे, इसको 'कुक्कुटपुट' कहते हैं।

ये ग्यारह औषध प्रत्येक सोलह २ शाण लेवे तथा करञ्जाके बीज ६४ शाण लेवे। सबका बारीक चूर्ण करके अभ्रक भस्म ६४ शाण लेके उस चूर्णमें मिला देवे। इसको कुष्ठकुठाररस कहते हैं। यह रस दो निष्कप्रमाण सेवन करे तो सम्पूर्ण कुष्ठ और गलत्कुष्ठ ये सब दूर हों॥ १७७-१७९ ॥

उदयादित्यरस श्वेतकुष्ठ आदिपर।

शुद्धं सूतं द्विधा गन्धं मर्द्य कन्याद्रवैर्दिनम्॥१८०॥ तद्गोलं पिठरीमध्ये ताम्रपात्रेण रोधयेत्।सूतकाद्द्विगुणेनैव शुद्धेनाधोमुखेन च ॥१८१॥ पार्श्वे भस्म निधायाथ पात्रोर्ध्वं गोमयं जलम्। किञ्चित् किञ्चित्प्रदातव्यं चुल्ल्यां यामद्वयं पचेत् ॥१८२॥चण्डाग्निना तदुद्धृत्य स्वाङ्गशीतं विचूर्णयेत्। काकोदुम्बरिका वह्निं त्रिफला राजवृक्षकम्॥ १८३ ॥ विडङ्गं बाकुचीबीजं क्काथयेत्तेन भावयेत्। दिनैकमुदयादित्यो रसो देयो द्विगुञ्जकः ॥ १८४ ॥ विचर्चिकां दद्रुकुष्ठं वातरक्तं च नाशयेत्। अनुपानं च कर्तव्यं बाकुचीफलचूर्णकम्॥१८५॥ खदिरस्य कषायेण समेन परिपाचितम्।त्रिशाणं तद्गवां क्षीरैः क्काथैर्वा त्रिफलैः पिबेत् ॥ १८६ ॥ त्रिदिनांते भवेत्स्फोटः सप्ताहाद्वा किलासके। नीलीं गुञ्जांश्च कासीसं धत्तूरं हंसपादिकम्॥१८७॥सूर्यभक्तां च चाङ्गेरीं पिष्ट्वा मूलात्प्रलेपयेत्। स्फोटस्थानप्रशांत्यर्थं सप्तरात्रं पुनः पुनः ॥ १८८ ॥ श्वेतकुष्ठान्निहन्त्याशु साध्यासाध्यं न संशयः।अपरःश्वित्रलेपोऽपि कथ्यतेऽत्र भिषग्वरैः ॥ १८९ ॥ गुञ्जाफलाग्निचूर्णं च प्रलेपः श्वेतकुष्ठनुत्।शिलापामार्गभस्मानि लिप्तं श्वित्रं विनाशयेत्१९०॥

अर्थ-शुद्ध किया पारा ४ पल और गन्धक दो भाग लेके घीगुवारके रसमें दोनोको खरल करके दोनोका गोला बनावे। उस गोलेको घडेमें रखके पारेका तिगुना शुद्ध किया हुआ तांबा लेकर उसकी कटोरी बनाके उस पूर्वोक्त गोलेके ऊपर ढक देवे और उसकी सन्धियोंको उपलोंकी राखसे बन्द कर देवे। गौका गोबर और जल दोनोको मिलाय उस कटोरीके चारों तरफ लेप कर देवे। उस घडेको चूल्हेपर चढायके प्रचण्ड अग्नि दो प्रहर देवे। जब स्वांगशीतल होजावे तब संपुटमेंसे औषधोको

निकालके खरल कर आगे लिखे औषधोंके रसकी पुट देवे। जैसे १ कठूमर २ चित्रक ३ हरड ४ बहेडा ५ आमला ६ अमलतासका गूदा ७ वायविडंग और ८ बावची इन आठ औषधोंका काढा करके उक्त रसमें डालके एक दिन खरल करे, फिर इसको गाढीकर गोली बना ले। इसे उदयादित्यरस कहते हैं। यह रस १ रत्ती लेकर खैरकी छालके काढेमें बावचीका चूर्ण ३ शाण मिलाके उसके साथ लेवे अथवा गौके दूधसे अथवा त्रिफलेके काढेसे सेवन करे तो विचर्चिका रोग दाद कुष्ठ और वातरक्त ये रोग दूर होजावें। इस उदयादित्यरसका तीन दिन सेवन करनेसे उस चित्रकुष्ठी मनुष्यके देहमें चौथे दिन अथवा सातवें दिन फोडे उत्पन्न होते हैं उनके दूर होनेका औषध कहते हैं ॥ १८०–१९० ॥

१ नीलपुष्पी २ घूँगची ३ हीराकसीस ४ धतूरा ५ हंसपदी ६ हुलहुल ७ खट्टम्ल इन सात औषधोंको समान भाग लेके बारीक पीस लेवे। फिर इसको उन फोडोंपर सात दिन लेप करे तो फोडे अच्छे होकर सफेद कुष्ठ साध्य अथवा असाध्य होय तो भी दूर होजावे इसमें संशय नहीं है।

दूसरा प्रयोग यह है कि घुंघुची ( चिरमिठी ) और चित्रक इनका बारीक चूर्ण करके पानीमें मिला मालिश करे। उसी प्रकार मनशिल और आंगेकी राख इन दोनोंको खरल करके देहमें मालिश करे तो सफेद कुष्ठ दूर हो।

सर्वेश्वररस कुष्ठादिकोंपर।

शुद्धं सूतं चतुर्गन्धं पलं यामं विचूर्णयेत्। मृतताम्राभ्रलोहानां दरदस्य पलंपलम् ॥१९१॥ सुवर्णं रजतं चैव प्रत्येकं दशनिष्ककम्। माषैकं मत्तवज्रं च तालं शुद्धं पलद्वयम् ॥१९२॥ जम्बीरोन्मत्तवासाभिः स्नुह्यर्कविषमुष्टिभिः। मर्द्यं हयारिजैर्द्रावैः प्रत्येकेन दिनं दिनम् ॥१९३॥ एवं सप्तदिनं मर्द्यं तद्गोलं वस्त्रवेष्टितम्। वालुकायन्त्रगं स्वेद्यं त्रिदिनं लघुवह्निना ॥ १९४ ॥ आदाय चूर्णयेच्छ्लक्ष्णं पलैकं योजयेद्विषम् ॥ द्विपलं पिप्पलीचूर्णं मिश्रं सर्वेश्वरो रसः ॥ १९५ ॥ द्विगुञ्जो लिह्यते क्षौद्रैः सुप्तिमंडलकुष्ठनुत्। बाकुचीं देवकाष्ठं च कर्षमात्रं सुचूर्णयेत् ॥ १९६ ॥ लिहेदेरंडतैलाक्तमनुपानं सुखावहम्।

अर्थ–शुद्ध किया हुआ पारा १ पल गन्धक ४ पल दोनोंको एकत्र कर एक प्रहर पर्यन्त खरल करे। फिर तांबेकी भस्म अभ्रकभस्म लोहभस्म और हिंगूल ये चार

वस्तु एक एक पल ले सुवर्णभस्म और रूपेकी भस्म दोनों दश दश निष्क लेवे और हीरेकी भस्म १ मासा तथा हरतालका सत्त्व दो २ पल ये सब औषध उस पारे गन्धककी कजलीमें मिलाय नींबू, धतूरा, अडूसा, बकायन और कनेर इनकी जडके रसमे तथा थूहर और आक इनके दूधमें पृथक् २ एक २ दिन खरल करके गोला करे, उसके चारों तरफ कपडा लपेट बालुकायन्त्रमें रखके चूल्हेपर चढावे और उसके नीचे मन्द २ अग्नि तीन दिन देवे। जब शीतल हो जावे तब उस संपुटमेंसे रसको निकालके उसमे शुद्ध किया हुआ बच्छनाग विषका चूर्ण १ पल और पीपलका चूर्ण दो पल मिला देवे। इसे सर्वेश्वररस कहते हैं। यह रस २ रत्तीके अनुमान सहतके साथ सेवन करे और इसके ऊपर तत्काल बावची और देवदारु इनका चूर्ण एक कर्ष अरण्डीके तेलमे मिलाके सेवन करे तो सुप्तिकुष्ठ और मण्डलकुष्ठ दूर हो ॥ १९१-१९६ ॥

स्वर्णक्षीरीरस सुप्तिकुष्ठपर।

हेमाह्वां पञ्चपलिकां क्षिप्त्वा तक्रघटे पचेत् ॥ १९७ ॥ तक्रे जीर्णे समाहृत्य पुनः क्षीरघटे पचेत् ॥ क्षीरे जीर्णे समुद्धृत्य शालयित्वा विशेषतः ॥ १९८ ॥ तच्चूर्णं पञ्चपलिकं मरिचानां पलद्वयम्। पलैकं मूर्च्छितं[1] सूतमेकीकृत्य तु भक्षयेत् ॥१९९॥ निष्कैकं सुप्तिकुष्ठार्तः स्वर्णक्षीरिरसो ह्ययम् ॥

अर्थ—चोक५पल लेकर एक घडेमे छाछ भरके उसमें उस चोकको डालके औटावे जब छाछ सूख जाय तब चोकको निकाल लेवे फिर उसको दूधके घडेमे डालके औटावे जब दूध भी सूख जावे तब उसको निकालकर धो लेवे। फिर उसका चूर्ण करके पांच पल ले तथा दो पल मिरचका चूर्ण और पारेकी भस्म १ पल प्रमाण लेके तिन दोनोको एकत्र पीस लेवे। इसे स्वर्णक्षीरीरस कहते हैं। यह रस १ निष्क नित्य सेवन करे तो सुप्तिकुष्ठ दूर हो जावे ॥ १९७-१९९ ॥

प्रमेहबद्धरस प्रमेहरोगपर।

सूतभस्ममृतं कान्तं मुंडे[2]भस्म शिलाजतु ॥ २०० ॥ शुद्धं तार्प्यं शिला व्योषं त्रिफलां कोलबीजकम्। कपित्थं रजनीचूर्णं भृंगराजेन भावयेत् ॥ २०१ ॥ विंशद्वारं विशोष्याथ मधुयुक्तं लिहेत्सदा। निष्कमात्रं हरेन्मेहान्मेहबद्धरसो

१ मूर्च्छितं सूतं रससिन्दूरम्। २ एके मुण्डमिति किट्टविशेषं मन्यन्ते तन्न सर्वमतम्। केचित् मुण्डस्थाने उरगभस्मेति पठन्ति, तत्र उरगभस्म नागभस्मेति कस्यचिन्मतम् ॥

महान् ॥ २०२ ॥ महानिंबस्य बीजानि पिष्ट्वा पट्संमितानि च। पलं तंदुलतोयेन घृतनिष्कद्वयेन च ॥ २०३ ॥ एकीकृत्य पिबेच्चानु हन्ति मेहं चिरन्तनम्।

अर्थ—१ पारेकी भस्म २ कांतलोहेकी भस्म ३ लोहभस्म ४ शुद्ध किया हुआ शिलाजीत ५ सुवर्णमाक्षिककी भस्म ६ मनशिल ७ सोंठ ८ मिरच ९ पीपल १० हरड ११ बहेडा १२ आंवला १३ अंकोलके बीज १४ कैथका गूदा और १५ हल्दी ये पंद्रह औषध समान भाग ले इनमें भस्मके सिवाय जो औषधी हैं उनका चूर्ण कर उसमें सब भस्मोंको मिलाके फिर भांगरेके रसकी २० पुट देवे। इसको मेहबद्ध रस कहते हैं। यह रस १ निष्क प्रमाण सहतके साथ सेवन करे तो घोर प्रमेहका रोग नष्ट होजावे। यदि बकायनके छः बीजका चूर्ण करके चावलोंका धोवन एक पल लेके उसमें उस बकायनके चूर्णको मिलावे और दो निष्क घी मिलाकर इस अनुपानके साथ इस मेहबद्धरसको भक्षण करे तो बहुत दिनका पुराना प्रमेह भी दूर होजावे २००–२०३

महावह्निरस सर्व उदररोगोपर।

चतुः सूतस्य गंधाष्टौ रजनी त्रिफला शिवा ॥ २०४ ॥ प्रत्येकं च द्विभागं स्यात्त्रिवृज्जैपालचित्रकाः। प्रत्येकं च त्रिभागं स्यात् त्र्यूषणं दन्ति जीरकम् ॥२०५॥ प्रत्येकमष्टभागं स्यादेकीकृत्य विचूर्णयेत्। जयन्ती स्नुक्पयो भृङ्गवह्निवातारितैलकैः ॥ २०६ ॥ प्रत्येकेन क्रमाद्भाव्यं सप्तवारं पृथक्पृथक्। महावह्निरसो नाम निष्कमुष्णजलैः पिबेत् ॥ २०७ ॥ विरेचनं भवेत्तेन तक्रभक्तं ससैन्धवम्। दिनान्ते दापयेत्पथ्यं वर्जयेच्छीतलं जलम् ॥ २०८ ॥ सर्वोदरहरः प्रोक्तो मूढवातहरः परः।

अर्थ—पारा चार भाग, गन्धक ८ भाग, १ हल्दी २ हरड ३ बहेडा ४ आंवला और ५ छोटी हरड ये पांच औषध दो दो भाग लेवे। १ निशोथ २ शुद्ध किया हुआ जमालगोटा और ३ चित्रक ये औषध तीन २ भाग लेवे तथा १ सोंठ २ मिरच ३ पीपल ४ दन्ती और ५ जीरा ये पांच औषध आठ २ भाग लेवे। सब औषधोका चूर्ण करके अरणीका रस, थूहरका दूध, भांगरेका रस, चित्रक और अरंडीका तेल इन प्रत्येककी पृथक् २ सात २ भावना देवे। फिर एक एक निष्ककी गोलियां बांध लेवे। इनमेंसे १ गोली गरम जलके साथ सेवन करे तो इससे दस्त हो। जब

दस्त होचुके तब सायंकालको पथ्यमे छाछ और भात नमक डालकर देना चाहिये और जब २ जल पीवे तब २ गरम जल पीवे शीतल न पीवे इस रसायनसे दस्त होकर सम्पूर्ण उदरके विकार तथा मूढवात दूर होवें ॥ २०४-२०८ ॥

विद्याधररस गुलमप्लीहादिरोगोंपर ।

**गंधकं तालकं तार्प्यं मृतताम्रं मनःशिलाम् ॥२०९॥ शुद्धं सूतं च तुल्यांशं मर्दयेद्भावयेद्दिनम् । पिप्पल्यास्तु कषायेण वज्रीक्षीरेण भावयेत् ॥ २१० ॥ निष्कार्धं भक्षयेत्क्षौद्रैर्गु-ल्मप्लीहादिकं जयेत् । रसो विद्याधरो नाम गोमूत्रं च पिबेदनु ॥ २११ ॥**

अर्थ-१ गन्धक २ हरताल ३ सुवर्णमाक्षिककी भस्म ४ ताम्रभस्म ५ मनशिल और ६ शुद्ध किया हुआ पारा ये छः औषध समान भाग लेकर खरलमें डालके पीपलके काढेसे १ दिन खरल करे । फिर १ दिन थूहरके दूधसे खरल करे । इसको विद्याधर रस कहते हैं । यह रस आधा निष्क लेकर सहतमें मिलायके सेवन करे तो गुल्म ( गोलेका ) रोग और प्लीहादिक रोग दूर होवें । और इसके ऊपर गो-मूत्रका अनुपान करना चाहिये ॥ २०९-२११ ॥

त्रिनेत्ररस पक्ति ( परिणाम ) शूलादिकोंपर ।

**टङ्कणं हारिणं शृङ्गं स्वर्णं शुल्बं मृतं रसम् । दिनैकमार्द्रकद्रावै-र्मर्द्यं रुद्ध्वा पुटे पचेत् ॥ २१२ ॥ त्रिनेत्राख्यरसस्यैकं माषं मध्वाज्यकैर्लिहेत् । सैन्धवं जीरकं हिंगु-मध्वाज्याभ्यां लिहे-दनु ॥२१३॥ पक्तिशूलहरः ख्यातो मासमात्रान्न संशयः ॥**

अर्थ-१ सुहागा २ हरिणका सींग ३ सुवर्णभस्म ४ ताम्रभस्म और ५ पारेकी भस्म इन पांच औषधोंको अदरखके रसमे एक दिन खरलकर मिट्टीके शरावसंपुटमें रखके उसपर कपडमिट्टी करके गढा खोद उसमें आरने उपलोकी हलकी अग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब बाहर निकालके उसमेंसे औषधको निकाल ले । इसको त्रिनेत्र रस कहते हैं । यह रस एक मासेके अनुमान लेके सहत और घी दोनोको मिलाके इसको भक्षण करे और इसके ऊपर तत्काल १ सैंधानमक २ जीरा ३ भुनी हींग इन तीन औषधोंका चूर्ण करके घी और सहतमें मिलाके खावे तो पक्ति ( परिणाम ) शूल एक महीनेमें दूर होजाता है ॥ २१२ ॥ २१३ ॥

शूलगजकेसरीरस शूलादिकोंपर ।

शुद्धसूतं द्विधा गंधं यामैकं मर्दयेद्दृढम्॥२१४॥ द्वयोस्तुल्यं शुद्धताम्रं संपुटे तं निरोधयेत् । ऊर्ध्वाधो लवणं दत्त्वा मृद्भांडे धारयेद्भिषक् ॥ २१५ ॥ ततो गजपुटे पक्त्वा स्वांगशीतं समुद्धरेत् । संपुटं चूर्णयेत्सूक्ष्मं पर्णखंडे द्विगुंजकम्॥२१६॥ भक्षयेत्सर्वशूलार्तो हिंगु शुंठी सजीरकम् । वचा मरिचजं चूर्णकर्षमुष्णजलैः पिबेत् ॥ २१७ ॥ असाध्यं नाशयेच्छूलं रसोऽयं गजकेसरी ।

अर्थ-शुद्ध किया हुआ पारा १ भाग, गन्धक २ भाग दोनोंको मिलाके १ प्रहर पर्यन्त खरल करके दोनोंके समान शुद्ध किया तांबा लेवे । उसकी कटोरी बनायके उसमें पारा गन्धककी कजलीको रखके दूसरी कटोरीसे ढकके मिट्टीकी हांडीको आधी नमकसे भर बीचमें इस तांबेकी कटोरीको रख ऊपर फिर पिसे हुए नमकसे भर देवे, फिर उस हांडीके मुखपर दूसरी छोटी पारी ढकके उसकी संधियोंको कपड-मिट्टी करके सुखा लेवे । फिर गड्ढा खोदके उसमें आरने उपले भरके बीचमें संपुटको रखके ऊपर उपले भरके गजपुटकी आग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब निकालके उस कटोरीको बारीक पीसके चूर्ण करे । इसको शूलगजकेसरी रस कहते हैं । जिस मनुष्यको सर्व प्रकारका शूल हो उसको पानके बीडेमें दो रत्ती यह खिलावे और इसके ऊपर तत्काल १ भुनी हींग २ सोंठ ३ जीरा ४ वच और ५ कालीमिरच इन पांच औषधोंका चूर्ण एक कर्ष प्रमाण ले पानीमें मिलाके पिलावे तो असाध्य भी शूल दूर हो जाता है ॥ २१४-२१७ ॥

सूतादिवटी मन्दाग्नि आदिरोगोंपर ।

शुद्धसूतं विषं गंधमजमोदां फलत्रयम् ॥२१८॥ सज्जीक्षारं यवक्षारं वह्निसैन्धवजीरकौ । सौवर्चलं विडङ्गानि सामुद्रं त्र्यूषणं समम् ॥ २१९ ॥ विषमुष्टिं सर्वतुल्यां जंबीराम्लेन मर्दयेत् । मरिचाभां वटीं खादेत्सर्वाजीर्णप्रशांतये ॥२२०॥ पथ्या शुण्ठी गुडं चानु पलार्धं भक्षयेत्सदा । अग्नितुण्डी-वटी ख्याता सर्वरोगकुलान्तका ॥ २२१ ॥

१ अग्नितुण्डीति नाम बहुमतम् । २ विषमुष्टिस्थाने केऽपि महानिम्बफलं तथाऽन्ये समुद्र-फलं प्रयुञ्जन्ति, परमस्मदनुभवे तु विषतिन्दुकमेव वरम् ।

दस्त होचुके तब सायंकालको पथ्यमें छाछ और भात नमक डालकर देना चाहिये और जब २ जल पीवे तब २ गरम जल पीवे शीतल न पीवे इस रसायनसे दस्त होकर सम्पूर्ण उदरके विकार तथा मूढवात दूर होवें ॥ २०४–२०८ ॥

विद्याधररस गुल्मप्लीहादिरोगोंपर ।

गंधकं तालकं तार्क्ष्यं मृतताम्रं मनःशिलाम् ॥२०९॥ शुद्धं सूतं च तुल्यांशं मर्दयेद्भावयेद्दिनम् । पिप्पल्यास्तु कषायेण वज्रीक्षीरेण भावयेत् ॥ २१० ॥ निष्कार्धं भक्षयेत्क्षौद्रैर्गुल्मप्लीहादिकं जयेत् । रसो विद्याधरो नाम गोमूत्रं च पिबेदनु ॥ २११ ॥

अर्थ–१ गन्धक २ हरताल ३ सुवर्णमाक्षिककी भस्म ४ ताम्रभस्म ५ मनाशिल और ६ शुद्ध किया हुआ पारा ये छः औषध समान भाग लेकर खरलमें डालके पीपलके काढेसे १ दिन खरल करे । फिर १ दिन थूहरके दूधसे खरल करे । इसको विद्याधर रस कहते हैं । यह रस आधा निष्क लेकर सहतमें मिलायके सेवन करे तो गुल्म ( गोलेका ) रोग और प्लीहादिक रोग दूर होवें । और इसके ऊपर गोमूत्रका अनुपान करना चाहिये ॥ २०९–२११ ॥

त्रिनेत्ररस पक्ति ( परिणाम ) शूलादिकोंपर ।

टङ्कणं हारिणं शृङ्गं स्वर्णं शुल्बं मृतं रसम् । दिनैकमार्द्रकद्रावैर्मर्द्यं रुद्ध्वा पुटे पचेत् ॥ २१२ ॥ त्रिनेत्राख्यरसस्यैकं माषं मध्वाज्यकैर्लिहेत् । सैन्धवं जीरकं हिंगु-मध्वाज्याभ्यां लिहेदनु ॥२१३॥ पक्तिशूलहरः ख्यातो मासमात्रान्न संशयः ॥

अर्थ–१ सुहागा २ हरिणका सींग ३ सुवर्णभस्म ४ ताम्रभस्म और ५ पारेकी भस्म इन पांच औषधोंको अदरखके रसमे एक दिन खरलकर मिट्टीके शरावसंपुटमें रखके उसपर कपडमिट्टी करके गढा खोद उसमे आरने उपलोकी हलकी अग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब बाहर निकालके उसमेसे औषधको निकाल ले । इसको त्रिनेत्र रस कहते हैं । यह रस एक मासेके अनुमान लेके सहत और घी दोनोको मिलाके इसको भक्षण करे और इसके ऊपर तत्काल १ सैंधानमक २ जीरा ३ भुनी हींग इन तीन औषधोका चूर्ण करके घी और सहतमें मिलाके खावे तो पक्ति ( परिणाम ) शूल एक महीनेमे दूर होजाता है ॥ २१२ ॥ २१३ ॥

शूलगजकेसरीरस शूलादिकोंपर ।

शुद्धसूतं द्विधा गंधं यामैकं मर्दयेद्दृढम्॥२१४॥ द्वयोस्तुल्यं शुद्धताम्रं संपुटे तं निरोधयेत् । ऊर्ध्वाधो लवणं दत्त्वा मृद्भांडे धारयेद्भिषक् ॥ २१५ ॥ ततो गजपुटे पक्त्वा स्वांगशीतं समुद्धरेत् । संपुटं चूर्णयेत्सूक्ष्मं पर्णखंडे द्विगुंजकम्॥२१६॥ भक्षयेत्सर्वशूलार्तो हिंगु शुंठी सजीरकम् । वचा मरिचजं चूर्णकर्षमुष्णजलैः पिबेत् ॥ २१७ ॥ असाध्यं नाशयेच्छूलं रसोऽयं गजकेसरी ।

अर्थ—शुद्ध किया हुआ पारा १ भाग, गन्धक २ भाग दोनोंको मिलाके १ प्रहर पर्यन्त खरल करके दोनोंके समान शुद्ध किया तांबा लेवे । उसकी कटोरी बनायके उसमें पारा गन्धककी कजलीको रखके दूसरी कटोरीसे ढकके मिट्टीकी हांडीको आधी नमकसे भर बीचमें इस तांबेकी कटोरीको रख ऊपर फिर पिसे हुए नमकसे भर देवे, फिर उस हांडीके मुखपर दूसरी छोटी पारी ढकके उसकी संधियोंको कपड-मिट्टी करके सुखा लेवे । फिर गड्ढा खोदके उसमें आरने उपले भरके बीचमें संपुटको रखके ऊपर उपले भरके गजपुटकी अग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब निकालके उस कटोरीको बारीक पीसके चूर्ण करे । इसको शूलगजकेसरी रस कहते हैं । जिस मनुष्यको सर्व प्रकारका शूल हो उसको पानके बीडेमें दो रत्ती यह खिलावे और इसके ऊपर तत्काल १ भुनी हींग २ सोंठ ३ जीरा ४ वच और ५ कालीमिरच इन पांच औषधोंका चूर्ण एक कर्ष प्रमाण ले पानीमें मिलाके पिलावे तो असाध्य भी शूल दूर हो जाता है ॥ २१४–२१७ ॥

सूतादिवटी मन्दाग्नि आदिरोगोंपर ।

शुद्धसूतं विषं गंधमजमोदां फलत्रयम् ॥२१८॥ सज्जीक्षारं यवक्षारं वह्निसैन्धवजीरकौ । सौवर्चलं विडङ्गानि सामुद्रं त्र्यूषणं समम् ॥ २१९ ॥ विषमुष्टिं सर्वतुल्यां जंबीराम्लेन मर्दयेत् । मरिचाभां वटीं खादेत्सर्वाजीर्णप्रशांतये ॥२२०॥ पथ्या शुण्ठी गुडं चानु पलार्धं भक्षयेत्सदा । अग्नितुण्डी-वटी ख्याता सर्वरोगकुलान्तका ॥ २२१ ॥

१ अग्नितुण्डीति नाम बहुमतम् । २ विषमुष्टिस्थाने केऽपि महानिम्बफलं तथाऽन्ये समुद्र-फलं प्रयुञ्जन्ति, परमस्मदनुभवे तु विषतिन्दुकमेव वरम् ।

अर्थ-१ शुद्ध किया पारा २ शुद्ध किया बच्छनाग विष ३ गन्धक ४ अजमोद ५ हरड ६ बहेडा ७ आंवला ८ सज्जीखार ९ जवाखार १० चित्रक ११ सैंधानमक १२ जीरा १३ काला नमक १४ बिडनमक १५ सामुद्रनमक १६ सोंठ १७ मिरच १८ पीपल ये अठारह औषध समान भाग ले और शुद्धकुचलेके बीज सब औषधोंके बराबर ले सबका चूर्ण कर जंबीरीके रसमें खरल कर मिरचके समान गोली बांधे। इनमेंसे एक एक गोली नित्य खावे तो सर्व प्रकारके अजीर्ण दूर होजावें। इसके ऊपर हरड सोंठ और गुडको कूटकर २ तोले नित्य खावे तो यह अग्नितुंडीवटी सब रोगोंका नाश करे ॥ २१८-२२१ ॥

अजीर्णकंटकरस अजीर्णपर ।

शुद्धसूतं विषं गधं समं सर्वं विचूर्णयेत् । मरिचं सर्वतुल्यांशं कंटकार्याः फलद्रवैः ॥ २२२ ॥ मर्दयेद्भावयेत्सर्वमेकविंशतिवारकम् । वटीं गुंजात्रयं खादेत्सर्वाजीर्णप्रशांतये ॥२२३॥ अजीर्णकंटकश्चायं रसो हंति विषूचिकाम् ।

अर्थ-१ शुद्ध किया पारा २ शुद्ध बच्छनागविष और ३ गन्धक ये तीन औषध समान भाग लेवे और तीनोंके समान काली मिरच लेवे। सबको खरल करके कटेरीके फलोंके रसमें इक्कीस भावना देके तीन तीन रत्तीकी गोली बनावे। इसको अजीर्णकण्टकरस कहते हैं। इस रसकी एक एक गोली सेवन करनेसे सर्व प्रकारके अजीर्ण तथा विषूचिका ( हैजा ) दूर होवे ॥ २२२ ॥ २२३ ॥

मंथानभैरवरस कफरोगपर ।

मृतं सूतं मृतं ताम्रं हिङ्गु पुष्करमूलकम् ॥ २२४ ॥ सैन्धवं गन्धकं तालं कटुकीं चूर्णयेत्समम् । पुनर्नवादेवदालीनिर्गुंडीतंडुलीयकैः ॥ २२५ ॥ तिक्तकोशातकीद्रावैर्दिनैकं मर्दयेदृढम् । माषमात्रं लिहेत्क्षौद्रे रसं मंथानभैरवम् ॥२२६॥ कफरोगप्रशांत्यर्थं निंबक्काथं पिबेदनु ।

अर्थ-१ पारेकी भस्म २ तांबेकी भस्म ३ हींग ४ पोहकरमूल ५ सैंधानमक ६ गन्धक ७ हरताल और ८ कुटकी ये आठ औषध समान भाग ले। भस्मके विना सर्व औषधोंका चूर्ण करके फिर पूर्वोक्त भस्म मिलाके पुनर्नवा ( सांठी ) के रससे एक दिन खरल करे। फिर बंदाल, निर्गुंडी, चौलाई और कडवी तोरई इन एक एकके रसमें

१ एरण्डनालेन वमनं च श्रेयस्करम् ।

एक एक दिन खरल कर गोली बनावे। इसको मन्थानभैरव रस कहते हैं। यह रस १ मासा सहतमें मिलाके सेवन करे और उसके ऊपर नीमकी छालका काढा पीवे तो कफ रोग दूर हो ॥ २२४-२२६ ॥

वातनाशकरस वातविकारपर।

सूतहाटकवज्राणि ताम्रं लोहं च माक्षिकम् ॥ २२७ ॥ तालं नीलाञ्जनं तुत्थमहिफेनं समांशकम्। पञ्चानां लवणानां च भागमेकं विमर्दयेत् ॥ २२८ ॥ वज्रीक्षीरैर्दिनैकं तु रुद्ध्वाधो भूधरे पचेत्। माषैकमार्द्रकद्रावैर्लेहयेद्वातनाशनम् ॥२२९॥ पिप्पलीमूलजक्वाथं सकृष्णमनुपाययेत्। सर्वान् वातविकारांस्तु निहन्त्याक्षेपकादिकान् ॥ २३० ॥

अर्थ-१ पारेकी भस्म २ सुवर्णभस्म ३ हीरेकी भस्म ४ तांबेकी भस्म ५ लोहेकी भस्म ६ सुवर्णमाक्षिककी भस्म ७ हरतालकी भस्म ८ शुद्ध सुरमा ९ शुद्ध नीलाथोथा और १० अफीम ये दश औषध समान भाग ले, १ सैंधानमक २ सञ्चरनमक ३ बिडनोन ४ खारानोन और ५ समुद्रनमक ये पांच नमक मिलाकर एक भाग लेवे अर्थात् दश औषध दश तोले होयं तो पांचो नमक मिलाके १ तोला लेवे। सबको एकत्र करके थूहरके दूधसे १ दिन खरल कर मिट्टीके शरावसम्पुटमें भरके कपडमिट्टी कर भूधरयन्त्रमें रखके अग्नि देवे. जब स्वांगशीतल हो जावे तब बाहर निकालके उसमेंसे औषधको निकाल लेवे। इसको वातनाशक रस कहते हैं। यह रस एक मासेके अनुमान अदरखके रससे सेवन करे और इसके ऊपर तत्काल पीपलामूलका काढा कर उसमें पीपलका चूर्ण डालके पीवे तो सम्पूर्ण आक्षेपकादि वातरोग दूर हो ॥ २२७-२३० ॥

कनकसुन्दररस सन्निपातपर।

कनकस्याष्टशाणाः स्युः सूतो द्वादशभिर्मतः। गन्धोऽपि द्वादशप्रोक्तस्ताम्रं शाणद्वयोन्मितम् ॥ २३१ ॥ अभ्रकस्य चतुःशाणं माक्षिकं च द्विशाणिकम्। वङ्गो द्विशाणः सौवीरं त्रिशाणं लोहमष्टकम् ॥ २३२ ॥ विषं त्रिशाणिकं कुर्याल्लाङ्गलीपलसंमिता। मर्दयेद्दिनमेकं च रसैरम्लफलोद्भवैः ॥२३३॥ दद्यान्मृदुपुटे वह्नौ ततः सूक्ष्मं विचूर्णयेत्। माष-

मात्रो रसो देयः सन्निपाते सुदारुणे ॥ २३४ ॥ आर्द्रकस्व-रसेनैव रसोनस्य रसेन वा । किलासं सर्वकुष्ठानि विसर्पं च भगन्दरम् ॥२३५॥ ज्वरं गरमजीर्णं च जयेद्रोगहरो रसः ।

अर्थ–धतूरेके बीज आठ शाण, पारा बारह शाण, गन्धक बारह शाण, तांबेकी भस्म दो शाण, अभ्रक भस्म चार शाण, स्वर्णमाक्षिकभस्म दो शाण, वंगभस्म दो शाण, शुद्ध सुरमा तीन शाण, लोहभस्म आठ शाण, शुद्ध बच्छनाग विष तीन शाण और कलयारी विषकी जड एक पल इन सबको बारीक पीसके नीबूके रससे एक दिन पर्यन्त खरल कर मिट्टीके शराव संपुटमें रखके उसपर कपडमिट्टी करके आरने उपलोंकी हलकी अग्नि देवे । जब शीतल हो जावे तब बाहर निकालके बारीक पीसके धर रक्खे । इसको कनकसुन्दर रस कहते हैं । इसको एक मासा लेके अदरखके रससे खाय अथवा लहसुनके रसमे मिलायके खावे तो घोर दुर्घट सन्निपात दूर हो । किलासकुष्ठ और अन्य प्रकारके सर्व कुष्ठ विसर्प भगन्दर ज्वर विषदोष और अजीर्ण ये रोग दूर हों ॥ २३१–२३५ ॥

सन्निपातभैरव रस ।

रसगंधौ त्रिकर्षौ स्तः कुर्यात्कज्जलिकां द्वयोः ॥ २३६ ॥ ताराभ्रताम्रवङ्गाहिसाराश्चैकैककार्षिकाः । शिग्रुज्वालामुखी-शुंठीबिल्वेभ्यस्तंदुलीयकात् ॥ २३७ ॥ प्रत्येकं स्वरसैः कुर्याद्यामैकैकं विमर्दनम् । कृत्वा गोलं वृतं वस्त्रे लवणापूरिते न्यसेत् ॥ २३८ ॥ काचभाण्डे ततः स्थाल्यां काच-कूपीं निवेशयेत् । वालुकाभिः प्रपूर्याथ वह्नियामद्वयं भवेत् ॥२३९॥ तत उद्धृत्य तं गोलं चूर्णयित्वा विमिश्रयेत् । प्रवालचूर्णकर्षेण शाणमात्रविषेण च ॥२४०॥ कृष्णसर्पस्य गरलैर्दिवसं भावयेत्तथा । तगरं मुसली मांसी हेमाह्वा वेतसः कणाः ॥२४१॥ नीलिनी पत्रकं चैला चित्रकस्य कुठे-रकः । शतपुष्पा देवदाली धत्तूरागस्त्यमुण्डिकाः ॥२४२॥ मधूक-जातिमदना-रसैरेषां विमर्दयेत् । प्रत्येकमेकवेलं च ततः संशोष्य धारयेत् ॥ २४३ ॥ बीजपूरार्द्रकद्रावैर्मरिचैः

१ कनकमात्रवर्णमिति दीपिकाकारादयः ।

षोडशोन्मितैः । रसो द्विगुञ्जाप्रमितः सन्निपातेषु दीयते ॥ २४४ ॥ प्रसिद्धोऽयं रसो नाम्ना सन्निपातस्य भैरवः ।

अर्थ-शुद्ध पारा ३ कर्ष और गन्धक तीन कर्ष दोनोंको खरल करके कजली करे, फिर रूपेकी भस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म,नागभस्म, वंगभस्म और लोहभस्म ये छः भस्म एक एक कर्ष लेवे । सबको पूर्वोक्त पारे गंधककी कजलीमे मिलाय देवे । फिर सहँजनेकी छालके रसमें १ प्रहर खरल करे, पश्चात् ज्वालामुखीके रसमें सोंठके काढेमें बेलफलके रसमें और चौलाईके रसमें पृथक् २ एक प्रहर खरल करके गोला बना ले । उस गोलेके आस पास कपडा लपेटके उस गोलेको कांचके प्यालेमें रखके उसके ऊपर दूसरा प्याला औंधा ढकके कपडमिट्टी कर देवे । फिर एक हांडी ले उसमें पिसा हुआ नमक आधा भरके बीचमें उस संपुटको रख ऊपरसे फिर पिसा हुआ नमक उस हांडीके मुख पर्यन्त भर देवे । फिर उस हांडीको चूल्हेपर चढा नीचे दो प्रहर पर्यन्त अग्नि जलावे । फिर शीतल होनेपर उस संपुटमेसे औषधको निकाल लेवे । तब उस गोलेका चूर्ण करके उसमें मूंगेका चूरा एक कर्ष तथा शुद्ध बच्छनाग चूर्ण १ शाण मिला काले सर्पका विष डालके एक दिन पर्यन्त खरल करे फिर इस रसको कांचकी आतसी शीशीमें भरके उस शीशीपर कपडमिट्टी करके उस शीशीके मुखपर ईंटकी डाट देकर कपडमिट्टी कर दे । इसको धूपमें सुखाके बालुकायन्त्रमें रखके चूल्हेपर चढाकर दो प्रहर पर्यन्त अग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब शीशीसे औषधको बाहर निकाल खरल करके आगे लिखी हुई औषधोंकी पुट देवे । जैसे-१ तगर २ मुसली ३ जटमांसी ४ चोक ५ वेत ६ पीपल ७ नीलपुष्पी ८ पत्रज ९ इलायची १० चित्रक ११ वनतुलसी १२ सौंफ १३ बन्दाल १४ धतूरा १५ अगस्तिया १६ मुंडी १७ महुआ १८ चमेली और १९ मैनफल इन उन्नीस औषधोंके स्वरसमें घोटे । अर्थात् एक औषधका रस निकालके घोटे जब वह सूख जावे तब दूसरी औषधका रस डालके खरल करे, इस प्रकार पृथक् २ घोटे । जिन औषधोंमेंसे रस न निकलता होवे उनका काढा करके उस काढेमें खरल करे । जब सूख जावे तब गोली बांध लेवे । इस रसको सन्निपातभैरवरस कहते हैं । इस रसको दो रत्ती प्रमाण बिजोरेके रस और अदरखके रसमें मिला तथा उसमें १६ काली मिरचका चूर्ण डालके सन्निपातवाले मनुष्यको देवे तो इससे सन्निपात दूर हो ॥ २३६-२४४ ॥

ग्रहणीकपाटरस संग्रहणीपर ।

तारमौक्तिकहेमानि सारश्चैकैकभागिकाः ॥२४५ ॥ द्विभागो गन्धकः सूतस्त्रिभागो मर्दयेदिमान् । कपित्थस्वरसैर्गाढं मृग-

शृङ्गे ततः क्षिपेत् ॥ २४६ ॥ पुटेन्मध्यपुटेनैव तत उद्धृत्य मर्दयेत् । बलारसैः सप्तवेलमपामार्गरसैस्त्रिधा ॥ २४७ ॥ लोध्रं प्रतिविषा मुस्तं धातकीन्द्रयवाः स्मृताः । प्रत्येकमेषां स्वरसैर्भावना स्यात्त्रिधा त्रिधा ॥ २४८ ॥ माषमात्रो रसो देयो मधुना मरिचैस्तथा । हन्यात् सर्वानतीसारान् ग्रहणीं सर्वजामपि ॥२४९॥ कपाटो ग्रहणीरोगे रसोऽयं वह्निदीपनः ।

अर्थ—१ रूपेकी भस्म २ मोती भस्म ३ सुवर्णभस्म और ४ लोहभस्म ये चार औषध एक २ भाग लेवे । गन्धक दो भाग और शुद्ध पारा तीन भाग सबको खरल करके कैथके रसमें घोटके हरिणके सींगमें खूब दाब २ के भरे । फिर उस सींगपर कपड-मिट्टी करके आरने उपलोंकी मध्यमाग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब बाहर निका-लके खरलमें डालके खरैंटीके रसकी ७ पुट देवे । फिर ओंगा, लोध, अतीस, नागरमोथा, धायके फूल, इन्द्रजौ और गिलोय इनके पृथक् २ स्वरसको निकालके एक २ न्यारी २ तीन २ भावना देवे । जिस औषधका स्वरस न निकले उसका काढा करके इस रसको घोटे । जब सूखनेपर आवे तब एक एक मासेकी गोलियां बनावे, इसको ग्रहणीकपाटरस कहते हैं । इस रसकी एक गोली काली मिरचके चूर्णके साथ सहतमें मिलाके सेवन करे तो संपूर्ण अतिसार तथा संपूर्ण संग्रहणीके रोग दूर होवें और अग्नि प्रदीप्त होती है ॥ २४५–२४९ ॥

### ग्रहणीवज्रकपाटरस संग्रहणीपर ।

मृतसूताभ्रके गन्धं यवक्षारं सटंकणम् ॥ २५० ॥ अग्निमंथं वचां कुर्यात्सूततुल्यानिमान् सुधीः । ततो जयन्तीजम्बीरभृ-ङ्गद्रावैर्विमर्दयेत् ॥२५१॥ त्रिवासरं ततो गोलं कृत्वा संशो-ष्य धारयेत् । लोहपात्रे शरावं च दत्त्वोपरि विमुद्रयेत् ॥२५२॥ अधो वह्निं शनैः कुर्याद्यामार्धं तत उद्धरेत् । रसतु-ल्यां प्रतिविषां दद्यान्मोचरसं तथा ॥ २५३ ॥ कपित्थवि-जयाद्रावैर्भावयेत्सप्तधा भिषक् । धातकीन्द्रयवामुस्ता लोध्रं बिल्वं गुडूचिका ॥ २५४ ॥ एतद्रसैर्भावयित्वा वेलैकैकं च शोषयेत् । रसं वज्रकपाटाख्यं शाणैकं मधुना लिहेत् ॥

॥२५५॥ वह्निशुण्ठी बिडं बिल्वं लवणं चूर्णयेत्समम्। पिबे-
दुष्णांबुना चानु सर्वजां ग्रहणीं जयेत् ॥ २५६ ॥

अर्थ–१पारेकी भस्म २ अभ्रकभस्म ३ गन्धक ४ जवाखार ५ सुहागा ६ अरनीकी जड और ७ वच ये सात औषध समान भाग लेवे। सबको पीसके अरनीके रसमें एक दिन खरल करे। फिर जम्भीरीके रसमें एक दिन तथा भांगरेके रसमें एक दिन इस प्रकार इन तीनोंके रसमें तीन दिन खरल करके गोला बनावे। उसको सुखाके लोहेकी कडाहीमें रख उसके ऊपर मिट्टीका सरावा ढक उसकी संधियोंको मिट्टीकी मुद्रा देके बन्द कर देवे। फिर उस कडाहीको चूल्हेपर चढायके नीचे मन्द मन्द अग्नि चार घडी पर्यन्त देवे, जब शीतल हो जावे तब गोलेको बाहर निकाल लेवे। फिर इसके समान भाग अतीसका चूर्ण और मोचरसका चूर्ण मिलायके खरलमें डाल कैथके रसकी सात पुट देवे तथा भांगके रसकी सात पुट देवे। पश्चात् धायके फूल, इन्द्रजौ, नागरमोथा, लोध, बेलफल और गिलोय इन औषधोंके पृथक् २ रसमें पृथक् २ घोटे, जब जाने कि कुछ थोडी गीली है तब एक २ शाणकी गोली बनावे इसको ग्रहणीवज्रकपाट रस कहते हैं। जिसके संग्रहणीका विकार हो उसको मद्यके साथ यह गोली देवे और उसके ऊपर तत्काल चित्रक सोंठ बिडनमक बेलगिरी सैंधानमक इन पांच औषधोंका चूर्ण करके गरम जलके साथ पीवे तो सर्व प्रकारकी संग्रहणी दूर होवे ॥ २५०–२५६ ॥

मदनकामदेवरस वाजीकरणपर।

तारं वज्रं सुवर्णं च ताम्रं सूतकगन्धकम्। लोहं क्रमविवृद्धानि कुर्यादेतानि मात्रया ॥ २५७ ॥ विमर्द्य कन्यकाद्रावैर्न्यसेत् काचमये घटे। विमुच्य पिठरीमध्ये धारयेत्सैन्धवावृते २५८ पिठरीं मुद्रयेत्सम्यक्ततश्चुल्ल्यां निवेशयेत्। वह्निं शनैःशनैः कुर्याद्दिनैकं तत उद्धरेत् ॥ २५९ ॥ स्वांगशीतं च संचूर्ण्य भावयेदर्कदुग्धकैः। अश्वगंधा च काकोली वानरी मुसली क्षुरा ॥ २६० ॥ त्रित्रिवेलं रसैरेषां शतावर्याश्च भावयेत्। पद्मकन्दकसेरूणां रसैः काशस्य भावयेत् ॥२६१॥ कस्तूरी-व्योषकर्पूरकंकोलैलालवंगकम्। पूर्वचूर्णादष्टमांशमेतच्चूर्णं विमिश्रयेत् ॥२६२॥ सर्वैः समां शर्करां च दत्त्वा शाणोन्मितं पिबेत्। गोदुग्धद्विपलेनैव मधुराहारसेवकः ॥२६३॥ अस्य

प्रभावात्सौन्दर्यं स लभेन्नात्र संशयः । तरुणी रमयेद्बह्वीः शुक्रहानिर्न जायते ॥ २६४ ॥

अर्थ-रूपेकी भस्म १ भाग, हीरेकी भस्म २ भाग, सुवर्णकी भस्म ३ भाग, ताम्रभस्म४भाग, शुद्ध पारा५भाग, गन्धक ६ भाग और लोहभस्म ७भाग इस प्रकार संपूर्ण औषध लेवे । सबको खरलमें डालके घीगुवारके रसमें खरल करके कांचकी आतसी शीशीमें भर उसपर कपडमिट्टी करे और मुखपर मुद्रा करके सूखनेपर उस शीशीको हांडीमें रखके शीशीके गलेपर्यंत पिसा हुआ नमक भरके गला खुला रहने दे । फिर उस हांडीको परियासे ढकके उसकी संन्धियोंको कपडमिट्टीसे बन्द कर देवे । फिर धूपमें सुखा चूल्हेपर रखके नीचे मन्द २,एक दिनतक अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब शीशीसे औषध निकालके खरलमें डाल आकके[1] दूधकी तीन पुट देवे । पश्चात् १ असगन्ध २ काकोलीके अभावमें असगन्ध[2] ३ कौंचके बीज४मूसली ५ तालमखाने ६ शतावर ७ कमलगट्टा ८ कसेरू और ९ कसोंदी इन नौ औषधोंके पृथक् २ रस निकालके एक एककी तीन २ भावना देवे तो यह रस सिद्ध हुआ ऐसा जानना । १ कस्तूरी २ सोंठ ३ कालीमिरच ४ पीपल ५ कपूर ६ कंकोल ७ इलायची और८लौंग इन आठ औषधोंका चूर्ण करके इस रसका आठवां भाग लेके मिलावे । फिर इसमेंसे १ शाण रस लेके उसकी बराबरकी मिश्री मिलाकर दो पल (८तोले) गौके दूधसे पीवे तो देह अत्यन्त सुन्दर होय बलवान् तथा तेजस्वी होय एवं अनेक तरुण स्त्रियोंसे संभोग करनेसे भी वीर्यका क्षय नहीं हो । इस रसपर खटाई आदिको वर्जन करे और मिष्ट पदार्थ भोजन करे । इसे मदनकामदेवरस कहते हैं ॥ २५७-२६४ ॥

सूतो वज्रमहिर्मुक्ता तारं हेम सिताभ्रकम् । रसैः कर्षांशकानेतान् मर्दयेदिरिमेदजैः ॥२६५॥ प्रवालचूर्णं गंधश्च द्विद्विकर्षं विमिश्रयेत । ततोऽश्वगन्धास्वरसैर्विमर्द्य मृगशृंगके ॥२६६॥ क्षिप्त्वा मृदुपुटे पक्त्वा भावयेद्धातकीरसैः ॥ काकोली मधुकं मांसी वलात्रयबिसेङ्गुदम् ॥२६७॥ द्राक्षापिप्पलिवंदाकं वरीपर्णीचतुष्टयम् । परूषकं कसेरुश्च मधूकं वानरी तथा ॥ २६८ ॥ भावयित्वा रसैरेषां शोषयित्वा

---

१ आकके दूधकी तीन पुट देना जो कहा है सो घीगुवारका पुट देकर पश्चात् देना, फिर उस औषधको शीशीमें भरके सिद्ध करे।जब सिद्ध होजावे तब पश्चात् पुट देनेसे कदाचित वमन होजावे । इस वास्ते टीकाकारने पहले पुट देना कहा है । २ असगन्ध दो वार आई है इसवास्ते इसकी पुट दूनी देवे ॥

विचूर्णयेत्। एला त्वक्पत्रकं वंशी लवंगागरुकेशरम् ॥२६९॥ मुस्तं मृगमदः कृष्णा जलं चन्द्रश्च मिश्रयेत्। एतच्चूर्णैः शाणमितै रसं कंदर्पसुंदरम् ॥ २७० ॥ खादेच्छाणमितं रात्रौ सिता धात्री विदारिका। एतेषां कर्षचूर्णेन सर्पिःकर्षे सुसंयुतम् ॥२७१॥ तस्यानु द्विपलं क्षीरं पिबेत्सुस्थितमानसः। रमणी रमयेद्बह्वीः शुक्रहानिर्न जायते ॥२७२॥

अर्थ-१ पारेकी भस्म २ हीरेकी भस्म ३ नागभस्म ४ मोतीभस्म ५ रूपेकी भस्म ६ सुवर्णकी भस्म और ७ काले अभ्रककी भस्म ये सात औषध एक एक कर्ष लेवे। सबको खरलमें डालके खैरकी छालके रसमें खरल कर मूँगेका चूर्ण और गन्धक ये दो दो कर्ष लेकर उस औषधमें मिलायके असगन्धके रससे खरल करे, फिर उसको हरिणके सींगमें भरके उसपर कपडमिट्टी कर आरने उपलोंकी मंदाग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब बाहर निकाल खरलमें डालके आगे लिखी औषधोकी पुट देवे। जैसा-१धायके फूल २ कंकोलके अभावमे असगन्ध ३ मुलहटी ४ जटामांसी ५ खरैंटीकी छाल ६ कँघी ७ गंगेरन ८ बिस ( कमलका कन्द ) ९ इंगुदी ( हिंगोट ) १० दाख ११ पीपल १२ बाँदा १३ सतावर १४ माषपर्णी १५ मुद्गपर्णी १६ पृष्ठपर्णी १७ शालपर्णी १८ फालसे १९ कसेरू २० महुआ २१ कौंचके बीज इन इक्कीस औषधोंका पृथक् २ रस निकालके इस रसमें न्यारी २ भावना देके सुखाय ले, इसको कन्दर्पसुन्दररस कहते हैं। पश्चात् १ इलायची २ दालचीनी ३ तमालपत्र ४ वंशलोचन ५ लौंग ६ अगर ७ केशर ८ नागरमोथा ९ कस्तूरी १० पीपल ११ नेत्रवाला और १२ भीमसेनी कपूर इन बारह औषधोंके एक शाण चूर्णमें इस कन्दर्पसुन्दररसको एक शाण मिलाके एकत्र करे, इसको एक कर्ष घीमें मिलाके आँवला और विदारीकन्द इनका चूर्ण तथा मिश्री ये एक एक कर्ष लेके उस घीमें मिलाके रात्रिमें पीवे और उसी समय प्रसन्न चित्तसे दो पल गौका औटा हुआ दूध पीवे तो अनेक स्त्री भोगने पर भी धातु क्षीण नहीं होता। अर्थात् अपार वीर्यवाला हो जाता है ॥ २६९-२७२ ॥

लोहरसायन क्षयादिरोगोंपर।

शुद्धं रसेन्द्रं भागैकं द्विभागं शुद्धगन्धकम्। क्षिपेत्कज्जलिकां कुर्यात्तत्र तीक्ष्णभवं रजः ॥ २७३ ॥ क्षिप्त्वा कज्जलिकातुल्यं प्रहरैकं विमर्दयेत्। तत्र कन्याद्रवैः खल्वे त्रिदिनं परिमर्दयेत् ॥ २७४ ॥ ततः संजायते तस्य सोष्णो धूमो-

द्रुमो महान् । अत्यंतं पिण्डितं कृत्वा ताम्रपात्रे निधाय च ॥ २७५ ॥ मध्ये धान्यकुशूलस्य त्रिदिनं धारयेद्बुधः । उद्धृत्य तस्मात्खल्वे च क्षिप्त्वा घर्मे निधाय च ॥ २७६ ॥ रसैः कुठारच्छिन्नायास्त्रिवेलं परिभावयेत् । संशोष्य घर्मे क्वाथैश्च भावयेत्रिकटोस्त्रिधा ॥२७७॥ वासामृताचित्रकाणां रसैर्भाव्यं क्रमात्रिधा । लोहपात्रे ततः क्षिप्त्वा भावयेत्रिफलाजलैः ॥ २७८ ॥ निर्गुंडीदाडिमत्वग्भिर्बिसभृंगकुरंटकैः । पलाशकदलीद्रावैर्बीजकस्य शृतेन वा ॥ २७९ ॥ नीलिकालंबुषाद्रावैर्बब्बूलफलिकारसैः । त्रिस्त्रिवेलं यथालाभं भावयदेभिरौषधैः ॥ २८० ॥ ततः प्रातर्लिहेत्क्षौद्रघृताभ्यां कोलमात्रकम् । पलमात्रं वराक्वाथं पिबेदस्यानुपानकम् ॥ २८१ ॥ मासत्रयं शीलितं स्याद्वलीपलितनाशनम् मन्दाग्निं श्वासकासौ च पांडुतां कफमारुतौ ॥ २८२ ॥ पिप्पलीमधुसंयुक्तं हन्यादेतन्न संशयः । वातास्रमूत्रदोषांश्च ग्रहणीं तोयजां[1] रुजम् ॥ २८३ ॥ अंडवृद्धिं जयेदेतच्छिन्नासत्त्वमधुप्लुतम् । बलवर्णकरं वृष्यमायुष्यं परमं स्मृतम् ॥ २८४ ॥ जयेत्सर्वामयान् कालादिदं लोहरसायनम् । प्रलेपौषधमेतस्मिन् प्रदद्यात्कोलमात्रकम् ॥ २८५ ॥ कूष्मांडं तिलतैलं च माषान्नं राजिका तथा । मद्यमम्लरसं चैव त्यजेल्लोहस्य सेवकः ॥ २८६ ॥

**इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने मध्यमखण्डे रसकल्पनो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥**

अर्थ—शुद्ध पारा १ भाग तथा शुद्ध गन्धक २ भाग ले दोनोंको खरलमें डालके कजली करे, फिर इसके समान फौलाद लोहेका चूर्ण लेकर उस कजलीमे मिलाकर एक प्रहर पर्यन्त खरल करके घीगुवारके रसमें तीन दिनपर्यन्त खरल करे । पश्चात्

१ गुदजामिति पाठोऽपि ।

उस औषधमेंसे जब गरम २ अत्यंत धूँआ निकलने लगे तब उसका गोला करके तांबेके बासनमें रखके उसको धानकी राशिमें गाड देवे । तीन दिनके बाद चौथे दिन निकालके उस गोलेका चूर्ण कर धूपमें रखके वनतुलसीके रसकी ३ पुट देवे । फिर सोंठ, कालीमिरच और पीपल इनका पृथक् २ काढा करके एक एककी तीन २ पुट देवे । पश्चात् अडूसा गिलोय और चित्रक इन तीनोंका पृथक् २ रस निकाल क्रमसे तीन पुट देवे । पीछे इस रसायनको लोहकी कडाहीमें डालके आगे लिखी हुई ओषधोंकी पुट देवे । जैसे–१हरड २ बहेडा ३ आँवला ४ निर्गुंडी ५ अनारकी छाल ६ भसीड ( कमलकन्द ) ७ भाँगरा ८ पियावांसा ९ पलाश १० केलेकी कन्द ११ विजयसार १२ नीलापुष्पी १३ मुण्डी और १४ बबूलकी छाल इन चौदह औषधोंका पृथक् २ रस निकाल क्रमसे एक एकके रसकी तीन २ पुट दे, पश्चात् इस रसायनको कोल प्रमाण सहत और घी एकत्र मिलाकर उसमें डालके सेवन करे और इसके ऊपर तत्काल त्रिफलेका काढा १ पल पीवे । इस प्रकार इस रसायनको तीन महीने सेवन करे तो देहमें अत्यन्त पुरुषार्थ हो, सफेद बाल काले होवें, सहत और पीपलके साथ लेवे तो मन्दाग्नि श्वास खाँसी पांडुरोग कफवायु ये दूर होवें । गिलोयके सत्त्वके साथ मिलायके लेवे तो वातरक्त मूत्रदोष जलसे उत्पन्न हुई संग्रहणी अण्डवृद्धि ये रोग दूर होवें । यह लोहरसायन बलकर्त्ता कांतिकर्त्ता स्त्रीगमनविषयमें इच्छा बढाता है तथा आयुषकी वृद्धि करे और समयानुसार सब रोगोंको नष्ट करता है । इस रसायनके सेवन करनेवालेको पेठा तिल्लीका तेल उडद राई सहत खट्टे पदार्थ ये सम्पूर्ण वस्तु खाना मना है ॥ २७३–२८६ ॥

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृत–शार्ङ्गधरसंहिताया भावप्रकाशिका-भाषाटीकायां द्वितीयखण्डे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ क्षेपकश्लोकाः ।

जैपालं रहितं त्वगङ्कुररसज्ञाभिर्मले माहिषे निक्षिप्तं त्र्यहमुष्णतोयविमलं खल्वे सवासोर्दितम् । लिप्तं नूतनखर्परेषु विगतस्नेहं रजःसंनिभं निंबूकांबुविभावितं च बहुशः शुद्धं गुणाढ्यं भवेत् ॥ १ ॥

अर्थ–जमालगोटेके बीज लेकर उनके ऊपरकी छाल निकाल अंकुरके भीतरकी जिह्वाको दूर कर कपडेमें पोटली बाँधके तीन दिन भैंसेके गोबरमें रक्खे । चौथे दिन निकालके उस जमालगोटेको गरम जलसे धो डाले । फिर दूसरे उत्तम कपडेमें बांधके कपडे सहित खरल करे । जब बारीक चूर्ण होजावे तब निकालके नये

१ सवस्त्र खरल करनेका यह प्रयोजन है, कि वह कपडा उस जमालगोटेकी चिकनाईको सोख लेता है ।

खिपडेपर उसको पोत देवे तो वह चिकनाई रहित होकर धूलके समान होजावेगा। फिर इसको नींबूके रसकी दो पुट देवे तो यह शुद्ध जमालगोटा विशेष गुण करनेवाला होता है ॥ १ ॥

बच्छनाग वा सिंगीमुहराविषकी शुद्धि ।

**विषं तु खण्डशः कृत्वा वस्त्रखण्डेन बंधयेत् । गोमूत्रमध्ये निक्षिप्य स्थापयेदातपे त्र्यहम् ॥ २ ॥ गोमूत्रं च प्रदातव्यं नूतनं प्रत्यहं बुधैः । त्र्यहेऽतीते समुद्धृत्य शोषयेन्मृदु पेषयेत् ॥३॥ शुध्यत्येवं विषं तच्च योग्यं भवति चातिजित् ।**

अर्थ—बच्छनाग विषके टुकडे करके उसकी कपडेमें पोटली बांधके एक घडेमें डूब जावे इस माफिक कर गोमूत्र भरके उसको तीन दिन धूपमें रखके धूप देवे और चौथे दिन गोमूत्रको निकाल लिया करे। उसमें नवीन गोमूत्र भर दिया करे, फिर चौथे दिन उस बच्छनागको बाहर निकालके धूपमें सुखा ले। फिर बारीक चूर्ण करे तो उत्तम शुद्ध रोगदूरकर्त्ता होजाता है। बच्छनाग और सिंगिया विषमें केवल नाम भेद है ॥ २ ॥ ३ ॥

विषशोधनका दूसरा प्रकार ।

**खण्डीकृत्य विषं वस्त्रपरिबद्धं तु दोलया ॥ ४ ॥ अजापयसि संस्विन्नयामतः शुद्धिमाप्नुयात् । अजादुग्धाभावतस्तु गव्यक्षीरेण शोधयेत् ॥ ५ ॥**

अर्थ—बच्छनाग विषके टुकडे करके कपडेकी पोटलीमें बांधके दोलायन्त्र करके बकरीके दूधमें एक प्रहर पर्यंत औटावे। यदि बकरीका दूध न मिले तो गौके दूधमें एक प्रहर पर्यंत औटावे तो बच्छनाग शुद्ध होवे और यह भी याद रहे कि एक तोले बच्छनागको सेरभर दूधमें औटावे और मन्दाग्निसे पचन करावे ॥ ४ ॥ ५ ॥

इति क्षेपकश्लोकाः।

## इति श्रीशार्ङ्गधरसंहिताद्वितीयखण्डं संपूर्णम् ॥

॥ श्रीः ॥

# शार्ङ्गधरसंहिता ।

## भाषाटीकासमेता.

## तृतीयः खण्डः ३.

### प्रथमोऽध्यायः १.

प्रथम स्नेहपानविधि ।

**स्नेहश्चतुर्विधः प्रोक्तो घृतं तैलं वसा तथा ।**
**मज्जा च तं पिबेन्मर्त्यः किञ्चिदभ्युदिते रवौ ॥ १ ॥**

अर्थ–स्नेह चार प्रकारका है–जैसे घी तेल वसा ( चरबी ) मज्जा ( हड्डीके भीतरका तेल ) ये चार स्नेह यत्किंचित् सूर्योदय होनेपर पीने चाहिये ॥ १ ॥

**स्थावरो जंगमश्चैव द्वियोनिः स्नेह उच्यते ।**
**तिलतैलं स्थावरेषु जंगमेषु घृतं वरम् ॥ २ ॥**

अर्थ–फिर स्नेह दो प्रकारका है एक स्थावर ( जो वृक्षादिकसे उत्पन्न हो ) और दूसरा जङ्गम ( जो पशुमनुष्यादिकसे प्रगट होवे )। स्थावर पदार्थोंके स्नेह अनेक हैं तिनमें तिलोंका तेल श्रेष्ठ और जङ्गम पदार्थोंमें घृत आदि शब्दसे वसादिक स्नेह अनेक हैं उनमें घी श्रेष्ठ है इस प्रकार स्नेहके दो भेद जानने ॥ २ ॥

स्नेहका भेद ।

**द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिस्तैर्यमकस्त्रिवृतो महान् ।**

अर्थ–घी और तेल दोनोंको एकत्र करनेसे उसकी यमक संज्ञा है । घी तेल और वसा ( मांसका तेल ) ये तीन एकत्र होनेसे उसको त्रिवृत कहते हैं । और घी तेल मांसस्नेह तथा वसा ये चार स्नेह एकत्र होनेसे उसको महान् कहते हैं । इस प्रकार स्नेहके ये तीन भेद जानने चाहिये ।

---

१ मांसकी अपेक्षा अष्टगुण घी है, इस वास्ते प्रथम घृत कहा है तथा घृतमें यह गुण अधिक है कि जिसके साथ इसका संयोग करो उसके गुणोंको करे और अपने गुणोको भी नही त्यागे, इसवास्ते प्रथम घृतको लिखा है ।

स्नेह पीनेका काल

**पिबेत्त्र्यहं चतुरहं पञ्चाहं षडहं तथा॥ ३ ॥**

अर्थ-घी तीन दिन, तेल चार दिन, मांसस्नेह पांच दिन और हड्डीका तेल छः दिन पीवे। इस प्रमाण क्रमसे घृतादि स्नेह पीनेका क्रम जानना ॥ ३ ॥

स्नेहका सात्म्य कितने दिनमें होता है।

**सप्तरात्रात्परं स्नेहः सात्मीभवति सेवितः।**

अर्थ-सात दिनके पश्चात् घृतादिक स्नेह पीनेसे आहारके समान सात्म्य हो जाता है, फिर उससे गुण और अवगुण कुछ नहीं होता।

स्नेहपानकी मात्राको कहते हैं।

**दोष[1]काला[2]ग्नि[3]वयसां[4] बलं दृष्ट्वा प्रयोजयेत्॥ ४ ॥**
**हीनां च मध्यमां ज्येष्ठां मात्रां स्नेहस्य बुद्धिमान्।**

अर्थ-वातादिक दोष काल अग्नि अवस्था इनका बलाबल विचारके घृतादिक स्नेह पीनेकी मात्रा हीन ( दो कर्ष ), मध्यम ( तीन कर्ष ) और ज्येष्ठ (एक पल ) इनका तारतम्य देखके योजना करनी चाहिये ॥ ४ ॥

स्नेहकी मात्राका प्रमाण त्यागके स्नेह पीनेके दोष।

**अमात्रया तथाकाले मिथ्या[5]हारविहार[6]तः॥ ५ ॥**
**स्नेहः करोति शोफार्शस्तन्द्रानिद्राविसंज्ञताः[7]।**

अर्थ-घृतादिक स्नेह पीनेके कहे हुए परिमाणको त्यागकर न्यूनाधिक पीनेसे अथवा पानका काल त्यागके पहले या पीछे पीवे अथवा घृतादिक स्नेह पीकर मिथ्याहार और मिथ्याविहार करनेसे सूजन बवासीर तन्द्रा निद्रा और संज्ञानाश होते हैं। इसवास्ते यथार्थ समयमें ठीक २ स्नेहमात्राका सेवन करे ॥ ५ ॥

दीप्ताग्नि मध्यमाग्नि और अल्पाग्निमें स्नेहकी मात्रा देनेका प्रमाण।

**देया दीप्ताग्नये मात्रा स्नेहस्य पलसंमिता॥ ६ ॥**
**मध्यमाय त्रिकर्षा स्याज्जघन्याय द्विकार्षिकी।**

---

१ दोषास्त्रिविधाश्चतुर्विधा वा। २ कालः शीतोष्णवर्षालक्षणस्त्रिविधः। ३ अग्निरपि समविषममृदुतीक्ष्णभेदैश्चतुर्विधः। ४ वयोऽपि बालमध्योत्तरभेदेन त्रिविधम्। ५ अकालमें थोडा अथवा बहुत भोजन करना तथा अपनी प्रकृतिको जो पदार्थ अच्छा न लगे उसको भक्षण करना तथा देशविरुद्ध अथवा कालविरुद्ध पदार्थ तथा संयोगविरुद्ध पदार्थोंका भक्षण करना मिथ्याहार कहाता है। ६ जिस कर्मको करनेका सामर्थ्य न होनेपर भी बलात्कारसे जो करना है उसको मिथ्याविहार जानना चाहिये। ७ 'प्रकुर्याल्लंघनं तत्र स्वेदं ज्ञात्वा विरेचनम्' इति केचित्पठन्ति ॥

अर्थ–जिस मनुष्यकी दीप्ताग्नि है उसको घृतादिक स्नेहकी एक पल मात्रा देवे, जिसकी मध्याग्नि है उस मनुष्यको तीन कर्ष प्रमाण देवे और जिसकी मन्दाग्नि है उस मनुष्यको दो कर्ष प्रमाण स्नेहकी मात्रा देनी चाहिये ॥ ६ ॥

स्नेहकी मात्राओंका भेद।

**अथवा स्नेहमात्राः स्युस्तिस्रोऽन्याः सर्वसंमताः ॥ ७ ॥**
**अहोरात्रेण महती जीर्यत्यह्नि तु मध्यमा।**
**जीर्यत्यल्पा दिनार्धेन सा विज्ञेया सुखावहा ॥ ८ ॥**

अर्थ–सम्पूर्ण वैद्योंको मान्य ऐसे घृतादिक स्नेह पीनेकी मात्रा तीन हैं उनको कहते हैं–जो मात्रा आठ प्रहरमें पचे उसको महती अर्थात् बडी मात्रा कहते हैं। इससे वह पलकी होती है। जो मात्रा एक दिनमें पचे उसको मध्यम कहते हैं, यह तीन कर्षकी जाननी। और जो मात्रा दो प्रहरमें पचे उसको अल्प अर्थात् छोटी मात्रा कहते हैं। यह दो कर्षकी मात्रा सुखकी देनेवाली है ॥ ७ ॥ ८ ॥

अल्पादिमात्राओंके गुण।

**अल्पा स्याद्दीपनी वृष्या वातदोषे सुपूजिता।**
**मध्यमा स्नेहनी ज्ञेया बृंहणी भ्रमहारिणी ॥ ९ ॥**
**ज्येष्ठा कुष्ठविषोन्मादग्रहापस्मारनाशिनी।**

अर्थ–घृतादिक स्नेह पीनेमें जो कर्ष प्रमाणकी अल्प मात्रा है वह जठराग्निको प्रदीप्त करके स्त्रीसंगमें इच्छा प्रकट करती है तथा वातादिक दोषोंके अल्प प्रकोपका नाश करे। तीन कर्षकी जो मध्यम मात्रा है वह देहको पुष्ट करके धातुकी वृद्धि करे तथा भ्रमको दूर करे और पल प्रमाणकी जो ज्येष्ठ मात्रा है वह कुष्ठरोग विषदोष उन्माद भूतादिक ग्रह तथा अपस्मार इन रोगोंको दूर करती है ॥ ९ ॥

दोषोंमें अनुपानविशेष।

**केवलं पैत्तिके सर्पिर्वातिके लवणान्वितम् ॥ १० ॥**
**पेयं बहुकफे वापि व्योषक्षारसमन्वितम्।**

अर्थ–पित्तमें केवल घी पीनेको देवे। वादीका कोप होनेसे घीमें सैंधानमक मिलाके देवे। कफका कोप हो तो व्योष (सोंठ मिरच पीपल) और जवाखार इनका चूर्ण कर घीमें मिलायके पिलावे ॥ १० ॥

घी पिलाने योग्य प्राणी।

**रूक्षक्षतविषार्तानां वात-पित्त-विकारिणाम् ॥ ११ ॥**
**हीनमेधास्मृतीनां च सर्पिःपानं प्रशस्यते।**

अर्थ-रूक्ष उरःक्षतरोगी तथा विषदोष इन करके पीडित है शरीर जिनका ऐसे मनुष्योंको तथा जिन मनुष्योंको वात पित्तका विकार है उनको एवं हीन है धारणारूप और स्मरणरूप बुद्धि जिनकी इतने मनुष्योंको घृतपान उत्तम कहा है ॥ ११ ॥

तेल पिलाने योग्य रोगी ।

**कृमिकोष्ठानिलाविष्टाः प्रवृद्धकफमेदसः ॥ १२ ॥**
**पिबेयुस्तैलसात्म्या ये तैलं दीप्ताग्नयस्तु ये ।**

अर्थ-जिनके उदरमें कृमिविकार है, वादी करके व्याप्त है शरीर जिनका, अत्यन्त बढा हुआ है कफ और मेद जिन्होंके, ऐसे मनुष्योंको तेल पिलावे । एवं जिनकी प्रकृतिको तेल रुचे अर्थात् झिलता हो उनको और प्रदीप्ताग्निवाले मनुष्योंको तेल पिलाना चाहिये ॥ १२ ॥

वसा ( मांसस्नेह ) पिलाने योग्य रोगी ।

**व्यायामकर्शिताः शुष्क-रेतो-रक्त-महारुजः ॥ १३ ॥**
**महाग्निमारुतप्राणा वसायोग्या नराः स्मृताः ।**

अर्थ-मल्लादि युद्ध ( दण्डकसरत कुस्ती आदि ) तथा धनुष आदिका खींचना इन करके पीडित है शरीर जिन्होंका, क्षीण है वीर्य तथा रक्त जिनका, देहमें घोर है पीडा जिनके तथा अग्नि वायु तथा बल हो अधिक जिनके ऐसे मनुष्योंको वसा ( मांसका स्नेह ) पीने योग्य जानने चाहिये ॥ १३ ॥

मज्जा पिलाने योग्य रोगी ।

**क्रूराशयाः क्लेशसहा वातार्ता दीप्तवह्नयः ॥ १४ ॥**
**मज्जानं च पिबेयुस्ते सर्पिर्वा सर्वतो हितम् ।**

अर्थ-करडा है कोष्ठ जिनका, दुःख सहन करता, तथा जो वादीसे पीडित है, एवं प्रदीप्त है अग्नि जिनकी, ऐसे मनुष्योंको मज्जा ( हड्डीका तेल ) अथवा घी पिलानेसे देहको सुख देता है ॥ १४ ॥

स्नेह पीनेमे कालनियम ।

**शीतकाले दिवा स्नेहमुष्णकाले पिबेन्निशि ॥ १५ ॥**
**वातपित्ताधिके रात्रौ वातश्लेष्माधिके दिवा ।**

---

१ जिस मनुष्यकी अग्नि प्रदीप्त है, वायु शरीरमें जैसा वर्तना चाहिये वैसा वर्तता हो, अग्निके साथ हो अन्नका पचन करता है इसीसे अग्नि और वायु ये शक्तिके देनेवाले है यदि ये अनुकूल होवें तो मांसका स्नेह पचे अन्यथा नही पचे । २ आम अग्नि पक्व मूत्र इनके आशय यकृत और प्लीहा छःस्थान तथा हृदय उन्दुक और फुप्फुस इन नौ स्थानोंको कोष्ठ कहते है ।

अर्थ-शीतलकालमें घृतादिक स्नेह दिनमें पीवे, गरमीकी ऋतुमें वात पित्त प्रबल होनेसे रात्रिके समय पीवे, तथा कफ और बादी जिनके प्रबल होवें वे घृतादिस्नेह दिनमें ही पीवें। इस प्रकार स्नेहपानका क्रम जानना ॥ १५ ॥

स्थलविशेषमें स्नेहोंकी योजना।

**नस्याभ्यंजनगण्डूषमूर्धकर्णाक्षितर्पणे ॥ १६ ॥**
**तैलं घृतं वा युंजीत दृष्ट्वा दोषबलाबलम्।**

अर्थ-नस्य ( नाकमें डालना ) अभ्यञ्जन ( देहमें मालिश करना ) गण्डूप ( कुरले करना ) तथा मस्तक कर्ण और नेत्रोंके तर्पणमें वातादि दोषोंका बलाबल विचारके वैद्य तेल अथवा घीकी योजना करें ॥ १६ ॥

स्नेहोंके पृथक् २ अनुपान।

**घृते कोष्णं जलं पेयं तैले यूषः प्रशस्यते ॥ १७ ॥**
**वसामज्ज्ञोः पिबेन्मंडमनुपानं सुखावहम्।**

अर्थ-घी पीकर उसपर गरम जल पीवे एवं तेल पीकर उसके ऊपर यूष[1] पीवे। मांसस्नेह तथा हड्डीका तेल पीकर उसके ऊपर मण्ड[2] पीवे तो सुखकारी होता है। इस प्रकार स्नेहोके अनुपान जानने ॥ १७ ॥

भातके साथ स्नेह पिलाने योग्य।

**स्नेहद्विषः शिशून्वृद्धान्सुकुमारान्कृशानपि ॥ १८ ॥**
**तृष्णातुरानुष्णकाले सह भक्तेन पाययेत्।**

अर्थ-घृतादिक स्नेहसे द्वेष है जिनको तथा बालक वृद्ध और सुकुमार ( नाजुक ) मनुष्य तथा तृषाकरके पीडित ऐसे मनुष्योंको गरमीकी ऋतुमें भातके साथ घृतादिक स्नेह पिलावे ॥ १८ ॥

स्नेहके विना यवागूसे सद्यःस्नेहन होनेवाले।

**सर्पिष्मती बहुतिला यवागूः स्वल्पतंदुला ॥ १९ ॥**
**सुखोष्णा सेव्यमाना तु सद्यः[3] स्नेहनकारिणी।**

अर्थ-तिलोंको कूटकर उनमें थोडेसे चावल मिलाय घी और पानी डालके चूल्हेपर चढाके औटावे। जब चावल सीज जावें और लहपसीके समान पतली हो

१ यूषका बनाना मध्यखण्डमें लिख आये हैं सो देख लेना।

२ भातके माण्डको मण्ड कहते है। इसकी विधि द्वितीय खण्डमें काढोंके प्रकरणमें लिखी है। ३ सद्यः इति तस्मिन्नेव दिवसे त्वराया स्नेहनं करोति। सद्योग्रहणं स्तुतिपरमित्यन्ये स्नेहनं स्नेहयतीत्यर्थः।

जावे उसको यवागू कहते हैं । इस यवागूको सुहाती २ गरम २ पीनेसे सद्यःस्नेहन करनेवाली जाननी ॥ १९ ॥

धारोष्णदूधसे तत्काल स्नेहन होता है ।

**शर्कराचूर्णसंभृष्टे दोहनस्थे घृते तु गाम् ॥ २० ॥**
**दुग्ध्वा क्षीरं पिबेदुष्णं सद्यः स्नेहनमुच्यते ॥**

अर्थ-मिश्रीको पीसके घीमें मिलावे। फिर इस घीको थोडा गरम कर दूध निकालनेके बरतनमें डाले । फिर उस बरतनमें गौका दूध निकाले और उसी समय गरमागरम पीवे तो सद्यः स्नेहन होवे ॥ २० ॥

मिथ्या आचारसे न पचे स्नेहका यत्न ।

**मिथ्याचाराद्बहुत्वाद्वा यस्य स्नेहो न जीर्यति ॥ २१ ॥**
**विष्टभ्य वापि जीर्येत वारिणोष्णेन वामयेत् ।**

अर्थ-घृतादिक स्नेह पीकर उसपर व्यायामादिक परिश्रम होनेसे तथा कफकारी पदार्थ भोजनमें आनेसे वह स्नेह नही पचता है, अथवा अत्यन्त पीनेसे नहीं पचता अथवा मलका अवरोध करके पचे, ऐसे मनुष्योंको गरम जल पिलाके उलटी करावे तो स्नेहाजीर्णका दोष दूर होवे ॥ २१ ॥

स्नेहजन्य अजीर्णका यत्न ।

**स्नेहस्याजीर्णशंकायां पिबेदुष्णोदकं नरः ॥ २२ ॥**
**तेनोद्गारो भवेच्छुद्धो भक्तं प्रति रुजिस्तथा ।**

अर्थ-घृतादि स्नेह पीकर अजीर्ण होनेकी शंका होनेसें उसपर गरम जल पीवे तो शुद्ध उत्तम डकार आकर अन्नपर इच्छा जानेसे अजीर्ण दूर हुआ ऐसा जाने ॥ २२॥

स्नेह अजीर्णका द्वितीय यत्न ।

**स्नेहेन पैत्तिकस्याग्निर्यदा तीक्ष्णतरीकृतः ॥ २३ ॥**
**तदास्योदीरयेत्तृष्णां विषमां तस्य पाययेत् ।**
**शीतं जलं वामयेच्च पिपासा तेन शाम्यति ॥ २४ ॥**

अर्थ-जिस मनुष्यकी पित्तकी प्रकृति होती है उस मनुष्यकी अग्नि घृतादि स्नेह पीनेसे अत्यन्त तीक्ष्ण होकर तृषाको अत्यन्त बढाती है । ऐसी अवस्थामे शीतल जल पिलाना और वमन कराना चाहिये जिससे तृषा शांत होवे ॥ २३॥२४ ॥

स्नेहपानके अयोग्य मनुष्य ।

**अजीर्णी वर्जयेत्स्नेहमुदरो तरुणज्वरी ।**
**दुर्बलोऽरोचकी स्थूलो मूर्च्छार्तो मदपीडितः ॥ २५ ॥**

**दत्तवस्तिर्विरिक्तश्च वांतितृष्णाश्रमान्वितः ।**
**अकालप्रसवा नारी दुर्दिने च विवर्जयेत् ॥ २६ ॥**

अर्थ-अजीर्णका विकार और उदररोग है जिसको, तथा तरुणज्वरी, दुर्बल, अरुची रोगी, स्थूल मनुष्य, मूर्च्छा और मद इन करके पीडित, वस्तिकर्म किया हुआ, तथा जिसको दस्त होते हो या विरेचन लिया हो, वमन तथा प्यास इन करके युक्त, एवं प्रसूत होनेके कालको छोडकर. अन्य कालमें प्रसूता स्त्री इतने रोगियोंको और दुर्दिनमे कोईसा घृतादिक स्नेहपान नहीं करना चाहिये ॥ २५ ॥ २६ ॥

स्नेहपान योग्य मनुष्य ।

**स्वेद्य-संशोध्य-मद्य-स्त्री-व्यायामासक्तचिन्तकाः ।**
**वृद्धा बालाः कृशा रूक्षाः क्षीणास्राः क्षीणरेतसः ॥ २७ ॥**
**वातार्तितिमिरार्ता ये तेषां स्नेहनमुत्तमम् ।**

अर्थ-औषधादि करके जिनका पसीना निकाला है ऐसे शोधन किये हुए मनुष्य, मद्य पीनेवाले, स्त्रीमे आसक्त, परिश्रम कर चुके हो, चिन्ता करके व्याप्त, वृद्ध, बालक, कृश, रूक्ष, क्षीण है रुधिर धातु ( वीर्य ) जिन्होके, वादीसे पीडित और तिमिर रोगसे व्याप्त ऐसे प्रकारके मनुष्य घृतादिक स्नेह पीनेके योग्य हैं ऐसा जानना चाहिये ॥ २७ ॥

सम्यक्स्नेहपानके लक्षण ।

**वातानुलोम्यं दीप्तोऽग्निर्वर्चः स्निग्धमसंहतम् ॥ २८ ॥**
**मृदुस्निग्धांगता ग्लानिः स्नेहोद्वेगोऽङ्गलाघवम् ।**
**विमलेन्द्रियता सम्यक् स्निग्धे रूक्षे विपर्ययः ॥ २९ ॥**

अर्थ-घृतादिक स्नेह पीनेसे अंगकी रूक्षता दूर होकर मनुष्य उत्तम स्निग्ध होता है उसके लक्षण वायुका अनुलोमन होवे, अग्नि प्रदीप्त हो, मल स्निग्ध तथा साफ हो, शरीर नम्र सचिक्कण और ग्लानिरहित होता है। घृतादि स्नेहोके सेवन करनेकी इच्छाका होना, शरीर हलका होवे तथा इन्द्रिय निर्मल होवें ये स्निग्धके लक्षण हैं। एवं रूक्ष मनुष्य ऊपर कहे हुए लक्षणोंसे विपरीत लक्षणवाला होता है अर्थात् शरीरमे स्नेह करके स्नेह न होनेसे जो रूक्ष होता है उसके विपरीत लक्षण होते हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥

अत्यन्तस्नेहपानके लक्षण ।

**भक्तद्वेषो मुखस्रावो गुदे दाहः प्रवाहिका ।**
**तन्द्रातिसारः पाण्डुत्वं भृशं स्निग्धस्य लक्षणम् ॥ ३० ॥**

अर्थ-जो मनुष्य घृतादिक स्नेह बहुत पीता है, उसके लक्षण-भोजनमें अप्रीति, मुखसे लारका गिरना, गुदामें दाह होना, प्रवाहिका, नेत्रोंमें तन्द्रा, अतिसार और देह पीला पड जावे ये लक्षण बहुत स्नेहपान करनेके जानने चाहिये॥ ३० ॥

रूक्षको स्निग्ध और स्निग्धको रूक्ष करना।

**रूक्षस्य स्नेहनं स्नेहैरतिस्निग्धस्य रूक्षणम्।**
**श्यामाकचणकाद्यैश्च तक्रपिण्याकसक्तुभिः॥ ३१॥**

अर्थ-रूक्षमनुष्यको स्निग्ध पदार्थ जैसे-तत्काल मक्खन निकाली हुई छाछ, तिलका कल्क करके स्निग्ध करे। एवं स्निग्ध मनुष्यको रूक्षपदार्थ जैसे-शामखिया और चने आदिसे रूक्ष करना चाहिये ×॥ ३१॥

स्नेहादिकसेवनके गुण।

**दीप्ताग्निः शुद्धकोष्ठश्च पुष्टधातुर्जितेन्द्रियः।**
**निर्जरो बलवर्णाढ्यः स्नेहसेवी भवेन्नरः॥ ३२॥**

अर्थ-घृतादिक स्नेहोंके सेवन करनेसे मनुष्यकी अग्नि प्रदीप्त होती है, कोठा शुद्ध होता है, शरीरकी रसादिक धातु पुष्ट होती हैं। वह मनुष्य जितेन्द्रिय होवे, वृद्धावस्थारहित तथा बल कांति इन करके युक्त होता है। ये गुण स्नेह सेवन करनेसे होते हैं॥ ३२॥

स्नेहपानमें वर्ज्य पदार्थ।

**स्नेहे व्यायाम-संशीत-वेगाघात-प्रजागरान्।**
**दिवास्वप्नमभिष्यंदि रूक्षान्नं च विवर्जयेत्॥ ३३॥**

**इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे प्रथमोऽध्यायः॥ १॥**

अर्थ-स्नेह पीनेवाले मनुष्यको परिश्रम करना, अत्यन्त शीतल पदार्थ, मलमूत्रादि वेगोंका धारण, जागना, दिनमे सोना, कफकारी पदार्थ तथा रूक्षान्न इतनी वस्तु वर्जित है॥ ३३॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे वैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृत-
भावप्रकाशिकाभाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

---

× गूढार्थदीपिकानुमतोऽयमर्थः। परमाढमल्लेन तु स्नेहैः सद्यः स्नेहकारिभिस्तैलघृतादिभिः स्नेहनं कार्यम्। रूक्षणं च श्यामाकादि सक्त्वन्तैरिति व्याख्यातम्।

# अथ द्वितीयोऽध्यायः २.

स्नेहपानानन्तर पसीने निकालनेकी विधि और उसके भेद कहते हैं।

स्वेदश्चतुर्विधः प्रोक्तस्तापोष्मौ स्वेदसंज्ञितौ।
उपनाहो द्रवः स्वेदः सर्वे वातार्तिहारिणः॥ १॥

अर्थ—पसीने निकालनेकी विधि चार प्रकारकी है। जैसे—१ ताप[1] २ ऊष्म[2] ३ उपनाह[3] ४ द्रव[4] ये चारों वादीकी पीडा दूर करनेवाले हैं॥ १॥

स्वेदौ तापोष्मजौ प्रायः श्लेष्मघ्नौ समुदीरितौ।
उपनाहस्तु वातघ्नः पित्तसंगे द्रवो हितः॥ २॥

अर्थ—ताप और ऊष्म इन नामोंवाले जो स्वेद निकालनेके प्रकार हैं वे दोनों कफके नाशक हैं। उपनाहनामक जो स्वेदका प्रकार है वह वादीका नाश करता है और द्रवसंज्ञक स्वेद निकालनेका जो प्रकार है वह पित्त और वादीको नष्ट करता है॥२॥

वादीकी तारतम्यताके साथ न्यूनाधिक स्वेदकी योजना।

महाबले महाव्याधौ शीते स्वेदो महान्स्मृतः।
दुर्बले दुर्बलः स्वेदो मध्ये मध्यतमो मतः॥ ३॥

अर्थ—जिस प्राणीके देहमें घोर वादीका रोग है उसके देहसे शीतकालमें बहुत पसीने निकालने चाहिये। थोडा रोग हो तो देहसे थोडे पसीने निकाले। एवं देहमें मध्यम रोग हो तो वैद्य उस रोगीके देहसे मध्यम पसीने निकाले। इसमें भी देश काल आदिका विचार वैद्यको करना मुख्य है॥ ३॥

रोगविशेषकरके स्वेदविशेषकी योजना।

बलासे रूक्षणः स्वेदो रूक्षः स्निग्धः कफानिले।
कफमेदोवृते वाते कोष्णगेहं रवेः करान्॥ ४॥
नियुद्धं मार्गगमनं गुरुप्रावरणं ध्रुवम्।
चिन्ताव्यायामभारांश्च सेवेतामयमुक्तये॥ ५॥

---

१ वालुकादिकोंकी पोटलीसे शरीरको तपाकर पसीने निकालनेको ताप कहते है।
२ काढे आदिका भफारा देकर पसीने निकालनेको ऊष्म कहते हैं।
३ रोगके स्थानपर औषधादिकोंकी पिण्डी बांधके पसीने निकालनेको उपनाह कहते हैं।
४ पतले द्रव्यके योग करके पसीने निकालनेको द्रव कहते हैं।

अर्थ—कफका रोग होनेसे रूक्षपदार्थ जैसे वालुकादिक इनसे अंगका पसीना निकाले। कफ वायुके रोगमें स्निग्ध[1] तथा रूक्ष इन दोनों पदार्थों करके पसीने निकाले। एवं कफमेदयुक्त वादीका रोग हो तो जिस घरमें गरमी हो उस जगह बैठकर अंगको सहन हो ऐसी थोडी २ गरमीको सहन करे, तथा सूर्यकी किरण ( धूप ) खाये, कुस्ती लडे, कुछ थोडा मार्ग चले, कंबल रजाई इत्यादिक ओढे, चिंता करे, प्रातःकाल बैठा न रहे, परिश्रम करे तथा किसी एक अंगपर बोझा धारण करे। इतने उपाय पसीने निकालनेको करे तो कफ और मेदोयुक्त वादीका रोग दूर हो ॥ ४ ॥ ५ ॥

जिनका प्रथम पसीना निकालना हो।

**येषां नस्यं विधातव्यं वस्तिश्चापि हि देहिनाम्।**
**शोधनीयाश्च ये केचित्पूर्वं स्वेद्याश्च ते मताः ॥ ६ ॥**

अर्थ—जो मनुष्य नस्य[2]कर्मके योग्य है तथा वस्ति[3]कर्मके योग्य है तथा दस्त देने योग्य है इतने मनुष्योंके अंगमें प्रथम पसीने देकर फिर नस्यादि यत्न करने चाहिये ॥ ६ ॥

भगन्दरादिरोगमे स्वेदनकी आज्ञा।

**स्वेद्याः पूर्वं त्रयः प्लीह[4]भगंदर्यर्शसस्तथा।**
**अश्मर्याश्चातुरो जन्तुः समये शस्त्रकर्मणः ॥ ७ ॥**

अर्थ—जिस मनुष्यके भगंदर रोग हो तथा बवासीरवाला और पथरीरोग करके पीडित ऐसे तीन प्रकारके मनुष्योंके अंगका प्रथम पसीना निकालके फिर शस्त्रकर्म करके इन रोगोंका शमन करे। अर्थात् इन रोगोंमे स्वेदन करनेसे वह नरम होकर शस्त्रकर्मके योग्य होजाता है ॥ ७ ॥

पश्चात् पसीने निकालने योग्य प्राणी।

**पश्चात् स्वेद्या गते शल्ये मूढगर्भगदे तथा।**
**काले प्रजाताऽकाले वा पश्चात्स्वेद्या नितंबिनी ॥ ८ ॥**

अर्थ—जिस स्त्रीके उदरमें गर्भका शूल होवे उसका पतन होनेके पश्चात्, मूढगर्भका पतन होनेके पश्चात्, तथा नौ महीनेके पश्चात् अथवा नौ महीनेके पूर्व प्रसूत होनेसे उस स्त्रीके देहसे पसीने निकाले ॥ ८ ॥

---

१ घृतादिक स्निग्ध और वालुकादिक रूक्ष इन दोनोकी एकत्र पोटली बनाके देहको सेंके ये संपूर्ण उपाय तापसंज्ञक पसीनेके जानने। २ नाकमे औषध डालनेके प्रयोगको नस्य कर्म कहते है। ३ गुदामें पिचकारी मारनेके कर्मको वस्ति कहते है।

४ प्लीहा ( तिल्ली ) भगंदर और बवासीर और पथरीरोगवालोंको पहले और पीछे पसीना देना चाहिये यह अर्थ दीपिकाकारके अनुसार लिखा है।

पसीने निकालनेमें देश और काल।

**सर्वान् स्वेदान्निवाते च जीर्णाहारे च कारयेत्।**

अर्थ—ये चारों प्रकारके पसीने मनुष्योंके आहार पचनेके पश्चात् जिस स्थानमें वायुका लेशमात्र न भी आता होवे उस जगह करने चाहिये।

पसीने निकालनेपर किस मार्गसे दोष दूर होते हैं।

**स्वेदाद्धातुस्थिता दोषाः स्नेहस्निग्धस्य देहिनः ॥९॥**
**द्रवत्वं प्राप्य कोष्ठांतगता यांति विरेकताम्।**

अर्थ—औषधादिकों करके मनुष्यके अंगसे पसीने निकालनेसे तथा किसी बडे बरतनमें तेल[1] भरके उसमें मनुष्यके बैठनेसे उसके रसादिकधातुओंमें रहनेवाले वातादिक दोष कोष्ठमें जाकर पतले हो गुदाके द्वारा गिरते हैं ॥ ९ ॥

पसीने निकालनेके पश्चात् दस्त होनेसे उसकी चिकित्सा।

**स्विद्यमानशरीरस्य हृदयं शीतलैः स्पृशेत् ॥ १० ॥**
**स्नेहाभ्यक्तशरीरस्य शीतैराच्छाद्य चक्षुषी।**

अर्थ—मनुष्यके पसीने निकालनेसे उस रोगीके दोष पेटमें पतले होकर गुदाके द्वारा निकाले जावे तब उसकी छातीमें चन्दनका लेप करे तो प्रकृति स्वस्थ हो। तथा जो मनुष्य तेलमे बैठा हो उसके दोष पतले होकर गुदाके द्वारा निकाले जावें तब नेत्रोंपर कमलके पत्ते अथवा केलाके पत्ते शीतल करनेको रक्खे तो ग्लानि दूर होकर प्रकृति स्वस्थ होवे ॥ १० ॥

स्वेदके अयोग्य मनुष्य।

**अजीर्णी दुर्बलो मेही क्षतक्षीणः पिपासितः ॥११॥ अतिसारी रक्तपित्ती पांडुरोगी तथोदरी। मदार्तो गर्भिणी चैव नहि स्वेद्या विजानता ॥ १२ ॥ एतानपि मृदुस्वेदैः स्वेदसाध्यानुपाचरेत्।**

अर्थ—अजीर्ण दुर्बलता प्रमेह उरःक्षत अत्यन्त तृषा अतिसार रक्तपित्त पांडुरोग उदर और मद इनमेसे कोईसा विकार जिस मनुष्यके होवे वह तथा गर्भिणी स्त्री पसीने निकालनेके योग्य नही हैं अर्थात् इनके देहसे पसीने न निकाले। यदि ये रोगी पसीने निकालनेसे ही अच्छे होते दीखें तो हलका उपाय करके थोडे पसीने निकाले ११॥१२

अल्पपसीने निकालनेके योग्य रोगीके अंग।

**मृदुस्वेदं प्रयुंजीत तथा हृन्मुष्कदृष्टिषु ॥ १३ ॥**

---

१ नाभीके नीचे चार अंगुल तेल आवे इतना तेल उस पात्रमें भरके बैठे।

अर्थ—हृदय,अंडकोश और नेत्र इनका पसीना निकालना हो तो थोडा निकालो १३

अत्यन्त पसीने निकालनेके उपद्रव ।

**अतिस्वेदात्संधिपीडा दाहस्तृष्णा क्लमो भ्रमः ।**
**पित्तासृक्पिटिका कोपस्तत्र शीतैरुपाचरेत् ॥ १४ ॥**

अर्थ—देहसे अत्यन्त पसीने निकालनेसे सर्व सन्धियोंमें पीडा हो,दाह,तृषा,ग्लानि, भ्रम और रक्तपित्त ये उपद्रव हों तथा देहपर फुन्सी प्रगट होवें । इनके नष्ट करनेको शीतल उपाय करे तो स्वेदके उपद्रव दूर होवें ॥ १४ ॥

चार प्रकारके पसीनोंमें तापसंज्ञक पसीनेके लक्षण ।

**तेषु तापाभिधः स्वेदो वालुकावस्त्रपाणिभिः ।**
**कपालकंदुकाङ्गारैर्यथायोग्यं प्रजायते ॥ १५ ॥**

अर्थ—चार प्रकारके पसीने हैं उनमे ताप इस नाम करके जो पसीना है वह १ वालु[1] २ वस्त्र ३ हाथ ४ ठिकरा ५ कपडेकी गेंद और ६ अंगार इन करके वालुकादिकमे जैसी २ शक्ति है उसी २ प्रकारका उत्पन्न होता है ॥ १५ ॥

ऊष्मसंज्ञक पसीनेके लक्षण ।

**ऊष्मस्वेदः प्रयोक्तव्यो लोहपिंडैष्टकादिभिः । प्रतप्तैरम्लसिक्तैश्च काये रल्लकवेष्टिते ॥१६॥ अथवा वातनिर्णाशिद्रव्यक्काथरसादिभिः । उष्णैर्घटं पूरयित्वा पार्श्वे छिद्रं निधाय च ॥ १७ ॥ विमुद्र्यास्यं त्रिखण्डां च धातुजां काष्ठवंशजाम् । षडङ्गुलास्कां गोपुच्छां नलीं युंज्याद्विहस्तिकाम् ॥ १८ ॥ सुखोपविष्टं स्वभ्यक्तं गुरुप्रावरणावृतम् । हस्तिशुंडिकया नाड्या स्वेदयेद्वातरोगिणम् ॥ १९ ॥ पुरुषायाममात्रां वा भूमिमुत्कीर्य खादिरैः । काष्ठैर्दग्ध्वा तथाभ्युक्ष्य क्षीरधान्याम्लवारिभिः॥२०॥वातघ्नपत्रैराच्छाद्य शयानं स्वेदयेन्नरम् । एवं माषादिभिः स्विन्नैः शयानः स्वेदमाचरेत् ॥ २१ ॥**

---

१ ये छः प्रकार कहे है । इनकी क्रिया इस प्रकार है कि खैरके अथवा कणखर लकडीके धुआँ रहित तथा दहकते हुए अंगारों करके उनपर वालूको तपावे, फिर उस वालूको अरंडके पत्तोपर रखके उसकी पुडिया बांधके मनुष्यकी देहको सेंके तो अंगोंसे पसीने नीकलें। यह पसीने निकालनेका एक प्रकार है ।

अर्थ—ऊष्मा इस नामक जो पसीना है उसकी क्रिया—लोहेका गोला अथवा ईंटको तपाकर उसपर थोडे खट्टे[1] पदार्थको छिडककर रोगीको कंबल उढाके उस गोलासे अथवा ईंटसे उस रोगीके अंगोंको सेंके तो पसीने निकलें। यह एक प्रकार है। अथवा दशमूलादिक वातनाशक औषधोंके काढेसे अथवा उन औषधोंके रसको गरम कर मिट्टीकी गागरमें[2] भरके उस गागरके मुखपर मुद्रा देकर मुखको बंद कर देवे, फिर उस गागरके कुक्षमें छिद्र कर धातुकी[3] अथवा लकडीकी अथवा बाँसकी दो हाथकी नली बनावे, उस नलीमें तीन संधि करे उनका मुख छः अंगुल लंबा और ऊँचा अथवा गौकी पूंछके समान करे। इस नलीका आकार हाथीकी सूंडके सदृश होनेसे इसको हस्तिशुंडिका नाडी कहते हैं। फिर इस नलीको गागरकी कूखमें उस छिद्रके जडमें फँसाकर संधियोंको बंद कर देवे। फिर वादीसे पीडित जो मनुष्य हो उसको स्वस्थ बैठाके देहमें घी अथवा तेलकी मालिश करके रजाई अथवा कंबल उढाकर उस कपडेके भीतर उस नलीका मुख करके देहसे पसीने निकाले। अथवा मनुष्यके साढेतीन हाथ अथवा चार हाथ लंबी जमीन खोद उसमें खैरकी लकडी भरके जलावे। कोला होजावे तब तत्काल उनको निकालके उस जमीनमें दूध धान्योदक छाल अथवा कांजी इनसे छिडकर तथा उस जमीनमें वादीहरणकर्ता औषधोंके पत्ते बिछाकर उसपर रोगीको सुलाके रोगीके देहके पसीने निकाले। इसी प्रकार उडदोंको लेकर उनको थोडेसे उबाले जब अधकच्चे होजावें तब उनको तपी हुई पृथ्वीमें फैलाके उनके ऊपर अंडके पत्ते आदि वातहारक[4] औषधोंके पत्ते डालके उसपर रोगीको सुलाके ऊपरसे कंबल उढाके अंगके पसीने निकाले। इस प्रकार ऊष्मसंज्ञक पसीनेके लक्षण जानने चाहिये ॥ १९–२१ ॥

उपनाहसंज्ञकस्वेदके लक्षण।

**अथोपनाहस्वेदं च कुर्याद्वातहरौषधैः।**
**प्रदिह्य देहं वातार्तं क्षीरमांसरसान्वितैः ॥ २२ ॥**
**अम्लपिष्टैः सलवणैः सुखोष्णैः स्नेहसंयुतैः।**

---

१ छाछ कांजी इत्यादिक खट्टे पदार्थ। २ उस गागरके मुखपर डाट देके उसको दहकते हुए कोलोंपर धरे तो उस नलीके रास्ते भाफ उत्तम प्रकारसे बाहर निकले। ३ ताम्र लोह इत्यादि धातुओंकी नली बनावे। ४ अंडके पत्ते, आकके पत्ते निर्गुंडी इत्यादिकोंके पत्तोंको वातहर जानना। अथवा अंगारोंपर अपने हाथ गरम २ करके रोगीके अंगोंको सेंके तथा कपडोंकी गेंद करके अंगारोंपर गरम कर उस गेंदसे रोगीके अंगोंको सेंके। अथवा केवल कपडेको ही अंगारोंसे गरम कर उस कपडेसे अंगोंको सेंके। अंगारोंको खिपडेमें भर उस खिपडेसे युक्तिके साथ रोगीके अंगमें सेंक लगे इस प्रकार रक्खे। इतने उपायोंसे पसीना निकलता है।

अर्थ-अब उपनाह नामक स्वेदकी क्रिया कहते हैं-दशमूलादि वायुहारक औषधोंको कूटकर चूर्ण कर उसमें दूध और हरिणादिकोंके मांसका स्नेह ये दोनों मिलायके कुछ गरम कर वायुपीडित अंग, उस अंगको सहन होय ऐसा गाढा लेप करके वस्त्रादिके पट्टीसे बाँध अंगका पसीना निकाले। अथवा वातहर औषधोंको कूटकर चूर्ण करे, उसको छाछमें अथवा काँजीमें पीसके उसमें थोडा सैंधानमक और तिलका तेल मिलाय कुछ गरम करके वादीसे पीडित अंगपर सहता २ गाढा लेप करके वस्त्रादिकसे बाँधकर अंगका पसीना निकाले। इसको उपनाहसंज्ञक क्रिया कहते हैं ॥ २२ ॥

दूसरा प्रकार महाशाल्वणप्रयोग।

उपग्राम्यानूपमांसैर्जीवनीयगणेन च ॥ २३ ॥
दधिसौवीरकक्षारैर्वीरतर्वादिना तथा।
कुलित्थमाषगोधूमैरतसीतिलसर्षपैः ॥ २४ ॥
शतपुष्पादेवदारुशेफालीस्थूलजीरकैः।
एरंडमूलबीजैश्च रास्नामूलकशिग्रुभिः ॥ २५ ॥
मिशिकृष्णाकुठारैश्च लवणैरम्लसंयुतैः।
प्रसारिण्यश्वगंधाभ्यां बलाभिर्दशमूलकैः ॥ २६ ॥
गुडूचीवानरीबीजैर्यथालाभं समाहृतैः।
क्षुण्णैः स्विन्नैश्च वस्त्रेण बद्धैः संस्वेदयेन्नरम् ॥ २७ ॥
महाशाल्वणसंज्ञोऽयं योगः सर्वानिलार्तिजित्।

अर्थ-ग्राम्यमांस आनूपमांस जीवनीयगणकी औषधि, गौका दही, सौवीर सज्जीखार जवाखार रेहका खार वीरतर्वादिगणकी ओषधि कुलथी उडद गेहूँ अलसी तिल सरसों सौफ देवदारु निर्गुंडी कलौंजी अंडकी जड, अंडके बीज रास्ना मूली सहँ-

१ अयमपि शाल्वणसंज्ञः। २ एतैर्द्रव्यैर्व्यस्तैस्समस्तैर्वा योगा वोद्धव्या भिन्नतृतीयान्तपदत्वात्। ३ मुरगा, बकरा, भेड इत्यादिकोंके मांसको ग्राम्यमांस कहते है। ४ जलमुरगावी, वत्तक, चकवा और मछली आदि जलचरोंके मांसको आनूपमांस कहते हैं। ५ जीवनीयगणकी औषधें दूसरे खंडमें लिखी है। ६ कच्चे अथवा पके जवोको कूट तुष निकाल पानी डालके तीन दिन धरा रहने दे उसको 'सौवीर' कहते है। इसी प्रकार गेहूंका भी जानना। ७ ये भी वीरतर्वादिकाढमें देखो।

जना हालो पीपल वनतुलसी पांचों नमक अनारदाना प्रसारिणी असगन्ध गंगेरनकी छाल दशमूलकी सब ओषधि गिलोय और कौंचके बीज इन सम्पूर्ण ओषधियोंमेंसे जो मिले उन सबको लाके कूट डाले। फिर गरम करके कपडेकी पोटली बांधके उस पोटलीसे रोगीके अंगोंको सेंके तो सम्पूर्ण वादीकी पीडा दूर हो। इस प्रयोगको महाशाल्वण प्रयोग कहते हैं। इस प्रकार उपनाहसंज्ञक स्वेदके लक्षण जानने॥ २३-२७॥

द्रवसंज्ञकस्वेदके लक्षण।

द्रवस्वेदस्तु वातघ्नो द्रव्यक्वाथेन पूरिते ॥ २८॥ कटाहे कोष्ठके वापि सूपविष्टोऽवगाहयेत्। [ * सौवर्णे राजते वापि ताम्र आयस-दारुजे। कोष्ठकं तत्र कुर्वीतोच्छ्राये षट्त्रिंशदंगुलम्। आयामेन तदेव स्याच्चतुष्टयसृणि तथा॥ ] नाभेः षडंगुलं यावन्मग्नः क्वाथस्य धारया॥ २९॥ कोष्ठके स्कन्धयोः सिक्ता तिष्ठेत्स्निग्धतनुर्नरः। मृदु स्तोकं समारभ्य यावद्यामचतुष्टयम्॥ ३०॥ तावत्तदवगाहेत यावदारोग्यनिश्चयः। एवं तैलेन दुग्धेन सर्पिषा स्वेदयेन्नरम् ॥ ३१॥ एकांतरे द्व्यंतरे वा स्नेहो युक्तोऽवगाहने। शिरामुखै रोमकूपैर्धमनीभिश्च तर्पयेत्॥ ३२॥ शरीरबलमाधत्ते युक्तः स्नेहावगाहने। जलसिक्तस्य वर्धन्ते यथा मूलेऽङ्कुरास्तरोः॥३३॥ तथा धातुविवृद्धिर्हि स्नेहसिक्तस्य जायते। नातः परतरः कश्चिदुपायो वातनाशनः॥ ३४॥

अर्थ-द्रव इस नाम करके जो स्वेद है उसकी क्रिया अर्थात् विधि कहते हैं-दशमूलादि वातहारक औषधोंका काढा करके रोगीके देहमे घी अथवा तेलकी मालिश करे। उसको कडाहीमें अथवा तांबेके बडे पात्रमें पाटव आदिमें बैठाके पूर्वोक्त काढेम गरम गरम सुहाते २ की धार उस मनुष्यके कन्धोंपर डाले। यह धार टूँडी (नाभि) पर छः अंगुल पर्यन्त चढे तहांतक डालता रहे। पहिले इस क्रियाको थोडी देर करे अथवा जबतक सह सके या आराम हो,इसकी अवधि ४ प्रहरकी है। इस प्रकार तेलकी, दूधकी अथवा घीकी धार डाले और उसको घर्मयुक्त करे। इस प्रकार एक दिनका बीच देकर अथवा दो दिन बीचमे देकर करे तो शिराओंके

* यह कोष्ठान्तर्गत पाठ प्रक्षिप्त प्रतीत होता है, अतएव टीकाकारने इसका अर्थ भी नहीं लिखा।

मुखद्वारा रोमोंके छिद्रोंमें होकर तथा नाडीके मार्गोंमें होकर ये स्नेहादि पदार्थ शरीरके अभ्यन्तर प्रविष्ट होकर शरीरमें बल उत्पन्न करते हैं। इस विषयमें दृष्टान्त है कि जैसे वृक्षकी जडमें बारंबार जलसेचन करनेसे वृक्ष बढता है उसी प्रकार तैलादिकोंमें बैठनेसे मनुष्यके रसादि सात धातु बढती हैं और वादीका नाश होता है। इस उपायकी अपेक्षा वायुनाशक दूसरा उपाय नहीं है ॥ २८-३४ ॥

पसीने निकालनेकी अवधि ।

**शीतशूलाद्युपरमे स्तंभगौरवनिग्रहे ।**
**दीप्तेऽग्नौ मार्दवे जाते स्वेदनाद्विरतिर्मता ॥३५॥**

अर्थ-अंगसे शरदी और शूल ( दर्द ) इनकी शांति होनेपर अंगका स्तम्भ तथा भारीपन ये दूर होनेसे तथा अग्नि प्रदीप्त होनेसे अंगोंमें नम्रता आनेपर रोगीकी देहसे पसीना निकलना बन्द करे ॥ ३५ ॥

स्वेद निकालनेके पश्चात् उपचार ।

**सम्यक्स्विन्नं विमृदितं स्नानमुष्णांबुभिः शनैः ॥**
**भोजयेच्चानभिष्यंदि व्यायामं च न कारयेत् ॥३६॥**

**इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखंडे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥**

अर्थ-जिस मनुष्यके अंगसे पसीना निकाले हैं उसको और जिसके देहमें तेलकी मालिश की है उसको धीरे २ गरम जलसे स्नान करावे। कफकारी पदार्थ खानेको न देवे तथा परिश्रम न करे। इस प्रकार द्रवसंज्ञक स्वेदके लक्षण जानने ॥ ३६ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहिताया वैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृत-भावप्रकाशिकाभाषाटीकायां तृतीयखण्डे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

---

# अथ तृतीयोऽध्यायः ३.



वमनविरेचनकाल ।

**शरत्काले वसन्ते च प्रावृट्काले च देहिनाम् ।**
**वमनं रेचनं चैव कारयेत् कुशलो भिषक् ॥ १ ॥**

अर्थ-शरद कालमें, वसन्त कालमें और प्रावृट् कालमें कुशल वैद्य मनुष्यको वमनका

---

१ कन्या, तुला संक्रांतिसे शरत्काल होता है। २ मीनमेषकी संक्रांतिका वसन्तकाल होता है। ३ वर्षाकालके प्रारंभको प्रावृट्काल कहते है। सो कर्क सिंह संक्रांतिमे जानना।

औषध देकर उलटी करावे और दस्त लानेवाली ओषधि ( जुलाब ) देवे तो प्रकृति ठीक रहे। कुशल वैद्यके कहनेसे यह प्रयोजन है कि वमन और विरेचन मूढ वैद्यसे न करावे। क्योंकि मूढ वैद्यद्वारा वमन विरेचन करानेसे प्राण-बाधाका भय रहता है ॥ १ ॥

वमन कराने योग्य रोगी।

बलवन्तं कफव्यार्तं हृल्लासार्तिनिपीडितम्। तथा वमनसात्म्यं च धीरचित्तं च वामयेत् ॥२॥ विषदोषे स्तन्यरोगे मन्देऽग्नौ श्लीपदेऽर्बुदे। हृद्रोगकुष्ठ-वीसर्प-मेहाजीर्णभ्रमेषु च ॥ ३ ॥ विदारिकापचीकासश्वासपीनसवृद्धिषु। अपस्मारे ज्वरोन्मादे तथा रक्तातिसारिषु ॥ ४ ॥ नासाताल्वोष्ठपाकेषु कर्णस्रावे द्विजिह्वके। गलशुंडचामतीसारे पित्तश्लेष्मगदे तथा ॥ ५ ॥ मेदोगदेऽरुचौ चैव वमनं कारयेद्भिषक्।

अर्थ-बलवान् मनुष्य जो कफसे व्याकुल है, जिसके मुखसे लार बहती हो, जिसको वमन करना सहा जाता हो, धीर चित्तवाला, विषदोष, स्तन्यरोग, मन्दाग्नि, श्लीपद, अर्बुद, हृद्रोग, कुष्ठ, विसर्प, प्रमेह, अजीर्ण, भ्रम, विदारिका, गण्डमालाका भेद, अपचीरोग, खांसी, श्वास, पीनस, अण्डवृद्धि, अपस्मार, ज्वर, उन्माद, रक्तातिसार, नासापाक, तालुपाक, ओष्ठपाक, कर्णस्राव, द्विजिह्वक, गलशुण्डी, अतिसार, पित्त, श्लेष्मके रोग, मेदोरोग और अरुचि इनमेंसे जो रोग जिसके हों उस रोगीको वैद्य वमन करावे ॥ २-५ ॥

वमनमें अयोग्य प्राणी।

न वामनीयस्तिमिरी न गुल्मी नोदरी कृशः ॥ ६ ॥
नातिवृद्धो गर्भिणी च न च स्थूलः क्षतातुरः।
मदार्तो बालको रूक्षः क्षुधितश्च निरूहितः ॥ ७ ॥
उदावर्त्यूर्ध्वरक्ती च दुश्छर्दिः केवलानिली।
पांडुरोगी कृमिव्याप्तः पठनात्स्वरघातकः ॥ ८ ॥
एतेऽप्यजीर्णव्यथिता वाम्या ये विषपीडिताः।
कफव्याप्ताश्च ते वाम्या मधुकक्काथपानतः ॥ ९ ॥

---

१ दोषदेशसात्म्यप्रकृतिवयोवह्निधातुमलविशेषज्ञाने च कुशलः।
२ ये सम्पूर्ण रोग प्रथमखण्डके सातवे अध्यायमें कहे हैं वहांसे जान लेना।

मुखद्वारा रोमोंके छिद्रोंमें होकर तथा नाडीके मार्गोंमें होकर ये स्नेहादि पदार्थ शरीरके अभ्यन्तर प्रविष्ट होकर शरीरमें बल उत्पन्न करते हैं। इस विषयमें दृष्टान्त है कि जैसे वृक्षकी जडमें बारंबार जलसेचन करनेसे वृक्ष बढता है उसी प्रकार तैलादिकोंमें बैठनेसे मनुष्यके रसादि सात धातु बढती हैं और वादीका नाश होता है। इस उपायकी अपेक्षा वायुनाशक दूसरा उपाय नहीं है ॥ २८-३४ ॥

पसीने निकालनेकी अवधि ।

**शीतशूलाद्युपरमे स्तंभगौरवनिग्रहे ।**
**दीतेऽग्नौ मार्दवे जाते स्वेदनाद्विरतिर्मता ॥३५॥**

अर्थ-अंगसे शरदी और शूल ( दर्द ) इनकी शांति होनेपर अंगका स्तम्भ तथा भारीपन ये दूर होनेसे तथा अग्नि प्रदीप्त होनेसे अंगोंमें नम्रता आनेपर रोगीकी देहसे पसीना निकलना बन्द करे ॥ ३५ ॥

स्वेद निकालनेके पश्चात् उपचार ।

**सम्यक्स्विन्नं विमृदितं स्नानमुष्णांबुभिः शनैः ॥**
**भोजयेच्चानभिष्यंदि व्यायामं च न कारयेत् ॥३६॥**

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखंडे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अर्थ-जिस मनुष्यके अंगसे पसीना निकाले हैं उसको और जिसके देहमें तेलकी मालिश की है उसको धीरे २ गरम जलसे स्नान करावे। कफकारी पदार्थ खानेको न देवे तथा परिश्रम न करे। इस प्रकार द्रवसंज्ञक स्वेदके लक्षण जानने ॥ ३६ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहिताया वैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृत-भावप्रकाशिकाभाषा-टीकायां तृतीयखण्डे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

---

# अथ तृतीयोऽध्यायः ३.



वमनविरेचनकाल ।

**शरत्काले वसन्ते च प्रावृट्काले च देहिनाम् ।**
**वमनं रेचनं चैव कारयेत् कुशलो भिषक् ॥ १ ॥**

अर्थ-शरद[1] कालमें, वसन्त[2] कालमें और प्रावृट्[3] कालमें कुशल वैद्य मनुष्यको वमनका

---

१ कन्या, तुला संक्रांतिसे शरत्काल होता है। २ मीनमेषकी संक्रांतिका वसन्तकाल होता है। ३ वर्षाकालके प्रारंभको प्रावृट्काल कहते है। सो कर्क सिंह संक्रांतिमे जानना।

औषध देकर उलटी करावे और दस्त लानेवाली ओषधि ( जुलाब ) देवे तो प्रकृति ठीक रहे। कुशल वैद्यके कहनेसे यह प्रयोजन है कि वमन और विरेचन मूढ वैद्यसे न करावे। क्योंकि मूढ वैद्यद्वारा वमन विरेचन करानेसे प्राण-बाधाका भय रहता है ॥ १ ॥

वमन कराने योग्य रोगी।

**बलवन्तं कफव्याप्तं हृल्लासार्तिनिपीडितम् । तथा वमनसात्म्यं च धीरचित्तं च वामयेत् ॥२॥ विषदोषे स्तन्यरोगे मन्देऽग्नौ श्लीपदेऽर्बुदे। हृद्रोगकुष्ठ-वीसर्प-मेहाजीर्णभ्रमेषु च ॥ ३ ॥ विदारिकापचीकासश्वासपीनसवृद्धिषु। अपस्मारे ज्वरोन्मादे तथा रक्तातिसारिषु ॥ ४ ॥ नासाताल्वोष्ठपाकेषु कर्णस्रावे द्विजिह्वके । गलशुंड्यामतीसारे पित्तश्लेष्मगदे तथा ॥ ५ ॥ मेदोगदेऽरुचौ चैव वमनं कारयेद्भिषक्।**

अर्थ-बलवान् मनुष्य जो कफसे व्याकुल है, जिसके मुखसे लार बहती हो, जिसको वमन करना सहा जाता हो, धीर चित्तवाला, विषदोष, स्तन्यरोग, मन्दाग्नि, श्लीपद, अर्बुद, हृद्रोग, कुष्ठ, विसर्प, प्रमेह, अजीर्ण, भ्रम, विदारिका, गण्डमालाका भेद, अपचीरोग, खांसी, श्वास, पीनस, अण्डवृद्धि, अपस्मार, ज्वर, उन्माद, रक्तातिसार, नासापाक, तालुपाक, ओष्ठपाक, कर्णस्राव, द्विजिह्वक, गलशुण्डी, अतिसार, पित्त, श्लेष्मके रोग, मेदोरोग और अरुचि इनमेंसे जो रोग जिसके हों उस रोगीको वैद्य वमन करावे ॥ २-५ ॥

वमनमें अयोग्य प्राणी।

**न वामनीयस्तिमिरी न गुल्मी नोदरी कृशः ॥ ६ ॥**
**नातिवृद्धो गर्भिणी च न च स्थूलः क्षतातुरः।**
**मदार्तो बालको रूक्षः क्षुधितश्च निरूहितः ॥ ७ ॥**
**उदावर्त्यूर्ध्वरक्ती च दुश्छर्दिः केवलानिली।**
**पांडुरोगी कृमिव्याप्तः पठनात्स्वरघातकः ॥ ८ ॥**
**एतेऽप्यजीर्णव्यथिता वाम्या ये विषपीडिताः।**
**कफव्याप्ताश्च ते वाम्या मधुकक्काथपानतः ॥ ९ ॥**

१ दोषदेशसात्म्यप्रकृतिवयोवह्निधातुमलविशेषज्ञाने च कुशलः।
२ ये सम्पूर्ण रोग प्रथमखण्डके सातवे अध्यायमें कहे हैं वहांसे जान लेना।

अर्थ–तिमिर, गोला और उदर इन रोगवाले मनुष्य तथा अतिकृश, अतिवृद्ध, गर्भिणी स्त्री, बडे स्थूल पुरुष, उरःक्षत करके तथा मद करके पीडित, बालक, रूक्ष, क्षुधित ( भूंखा )) निरूहित ( गुदाद्वारा पिचकारी दी है जिसके ), उदावर्त रोग होय, ऊर्ध्वरक्ती[1], जिसको वमन नही होती हो, जिसके केवल वादीका रोग हो, पांडुरोगी, कृमिरोगी तथा वेदशास्त्रके अत्यन्त उच्चस्वर पढनेसे जिसका कण्ठ बैठ गया हो इतने रोगियोंको वमन नहीं कराना चाहिये। यदि ये रोगी अजीर्ण करके अथवा कफ करके व्याप्त होवें या जो विषसे पीडित हों तो इनको मुलहठीकी अथवा महुएकी छालका अथवा मधुमिले जलका काढा पिलाके वमन करावे ॥ ६–९ ॥

वमनके अयोग्य प्राणी।

**सुकुमारं कृशं बालं वृद्धं भीरुं न वामयेत्।**

अर्थ–सुकुमार ( नाजुक ) मनुष्य कृश[2] बालक वृद्ध डरपोक इन पांच मनुष्योंको वमनवाली औषधि नहीं देनी चाहिये।

वमनमें विहितपदार्थोंको कहते हैं।

**पीत्वा यवागूमाकण्ठं क्षीरतक्रदधीनि च ॥ १० ॥**
**असात्म्यैः श्लेष्मलैर्भोज्यैर्दोषानुत्क्लिश्य देहिनः।**
**स्निग्धस्विन्नाय वमनं दत्तं सम्यक्प्रवर्तते ॥ ११ ॥**

अर्थ–जिस मनुष्यको वमन कराना होवे उसको प्रथम पेट भरके यवागू[3] दूध छाछ अथवा दही पीनेको देवे। जो पदार्थ अपनी प्रकृतिको न भावते हो वे पदार्थ तथा कफकारी पदार्थ खानेको देकर मनुष्योंके दोषोको उत्क्लेशित करे तो उस मनुष्यको भले प्रकार वमन होवे। जिस मनुष्यने घृतपान और स्वेदकर्म किया है उस मनुष्यको एक दिन बीचमें देकर वमन कराना उत्तम है अर्थात् इस प्रकार करनेसे उत्तम छर्दी होती है ॥ १० ॥ ११ ॥

वमनमें सहायक पदार्थ।

**वमनेषु च सर्वेषु सैन्धवं मधु वा हितम्।**
**बीभत्सं वमनं दद्याद्विपरीतं विरेचनम् ॥ १२ ॥**

अर्थ–जितने वमनकारक प्रयोग है उन सबमे सैधानमक अथवा सहत इनको

---

१ रक्तपित्तके कोप करके जिनके ऊर्ध्व ( मुख नासिका आदि ) होकर रुधिर गिरे उसको ऊर्ध्वरक्तपित्ती जानना। २ कृश,बालक और वृद्ध इनको वमन न करावे ऐसा प्रथम ही लिख आये है परन्तु निश्चयार्थ फिर भी लिखा है ऐसे जानना चाहिये। ३ चावलोको कूटके उसमे छः गुना जल मिलायके औटावे, जब एकजीव हो जावे तब उतार लेवें,इसको 'यवागू' कहते हैं।

मिलावे तो हितकारी है। वमन देवे तो बीभत्स[1] (अरोचक वस्तु) देवे और विरेचनमें रोचक पदार्थ (औषध) देवे ॥ १२ ॥

वमनप्रयोगमें काढे करनेका प्रमाण।

**क्वाथ्यद्रव्यस्य कुडवं श्रपयित्वा जलाढके।**
**अर्धभागावशिष्टं च वमनेष्ववचारयेत्[2] ॥ १३ ॥**

अर्थ-काढेकी ओषधी १ कुडव[3] ले कुछ कूटके उसमें एक आढक[4] जल डालके औटावे, जब आधा जल रह जावे तब उतार छानके वमनके वास्ते पीनेको देवे ॥ १३ ॥

वमनमें काढा पीनेका प्रमाण।

**क्वाथपाने नवप्रस्था ज्येष्ठा मात्रा प्रकीर्तिता[5]।**
**मध्यमा षण्मिता प्रोक्ता त्रिप्रस्था च कनीयसी ॥ १४ ॥**

अर्थ-जिस मनुष्यको वमन करना है उसका नौ प्रस्थ[6] काढा पीना बडी मात्रा जाननी। छः प्रस्थ काढा पीना मध्यम मात्रा है और तीन प्रस्थ काढेकी मात्रा लघुमात्रा जाननी चाहिये ॥ १४ ॥

वमनमें कल्कादिकोंका प्रमाण।

**कल्कचूर्णावलेहानां त्रिपलं श्रेष्ठमात्रया।**
**मध्यमं द्विपलं विद्यात् कनीयस्तु पलं भवेत् ॥ १५ ॥**

अर्थ-कल्क[7] चूर्ण और अवलेह ये तीन पल लेना बडी मात्रा कहलाती है। दो पलकी मध्यम मात्रा जाननी तथा एक पलकी छोटी मात्रा जाननी चाहिये ॥ १५ ॥

वमनमें उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ वेगोंका प्रमाण।

**वमने चापि वेगाः स्युरष्टौ पित्तांतमुत्तमाः।**

---

१ वमन करानेवाली औषधोंमें घी मिलायके वमन देनेको बीभत्स वमन कहते है।

२ अयं परिमाणोऽप्येकदैव पानाशक्तत्वाद्विभज्य देयः।

३ चार पलोका कुडव जानना, उस कुडवके व्यावहारिक तोले १६ होते है।

४ चार प्रस्थका एक आढक जानना, उस आढकके तोले २५६ होते है।

५ भेडोक्तमेतत्परिमाणं पश्चाज्जलपानस्येति वृद्धाः। अन्यथा पूर्वापरयोरव्यवस्था स्यात्। अथवा पूर्वपरिमाणं तु यवाग्वादीनां पाचनार्थं पश्चात्क्काथपानस्येत्यर्थः। तत्र यवाग्वाद्युपकल्पयेदिति पाठान्तरत्वात। वृद्धोक्तमात्रया व्यवहारः इति चक्रः। चरके तु मदनफलकषायमात्राणां प्रमाणं तु खलु सर्वशोधनमात्राप्रमाणानि प्रीतपुरुषमेवेहितव्यानि भवंति। यावद्धि यस्य संशोधनं पीतं वैकारिकदोषहरणायोपपद्यते नचातियोगाय तावदस्य मात्रापरिमाणं वेदितव्यम्। वाग्भटेन कोष्ठं विभज्य भैषज्यमात्राकल्पनमुक्तं दृढबलेन शरावमात्रा चोक्ता तत्कल्पनार्थं चलाढकावशिष्टं प्रशस्तं च। द्वित्रिवारं पानमित्येके।

६ वमन विषयमें जो काढा लेना कहा है तहां १३ ॥ पलका एक प्रस्थ जानना, इस हिसाबसे नौ प्रस्थ काढा लेवे। ७ सूखी औषधमें जल डालके चटनीके समान पीसे उसको कल्क कहते है।

षड्वेगा मध्यवेगाश्च चत्वारस्त्ववरा मताः ॥ १६ ॥

अर्थ-जिस प्राणीको वमनकारक ओषधि देनेसे सात वेग पर्यंत सम्पूर्ण दोष निकलकर आठवें वेगमें पित्त निकले तो उत्तम वेग जानने । उसी प्रकार पांच वेग पर्यंत दोष निकलके छठे वेगमें पित्त पडनेसे मध्यम वेग जानने । एवं तीन वेग पर्यंत दोष निकलके चतुर्थ वेगमे पित्त निकले तो उस प्राणीके वमनको हीनवेग हुए ऐसे जानना चाहिये ॥ १६ ॥

वमनके विषयमें प्रस्थका प्रमाण ।

वमने च विरेके च तथा शोणितमोक्षणे ।
सार्धत्रयोदशपलं प्रस्थमाहुर्मनीषिणः ॥ १७ ॥

अर्थ-वमन होनेके विषयमें तथा दस्त होनेमें जो औषध प्रस्थप्रमाण लेनी कही है वहांपर १३ ॥ साढे तेरह पलका प्रस्थ लेना चाहिये और फस्त खोलनेमें भी १३॥ साढे तेरह पलका प्रस्थ लेना ऐसी शास्त्राज्ञा है ॥ १७ ॥

वमनमें औषधविशेषकरके कफादिककी जय ।

कफं कटुकतीक्ष्णेन पित्तं स्वादुहिमैर्जयेत् ।
सस्वादुलवणाम्लोष्णैः संसृष्टं वायुना कफम् ॥ १८ ॥

अर्थ-कटु[१] और तीक्ष्ण औषधोंसे कफको जीते, मधुर[२] और शीतल औषधोंसे पित्त तथा मधुर क्षार अम्ल और उष्ण औषधोंसे वातामिश्रित कफको जीते ॥ १८ ॥

कफादिकोंको वमनद्वारा निकालनेवाली औषध ।

कृष्णाराठफलं सिंधुं कफे कोष्णजलैः पिबेत् ।
पटोलवासानिंबैश्च पित्ते शीतजलं पिबेत् ॥ १९ ॥
सश्लेष्मवातपीडायां सक्षीरं मदनं पिबेत् ।
अजीर्णे कोष्णपानीयं सिन्धुं पीत्वा वमेत्सुधीः ॥ २० ॥

अर्थ-कफदोषमें पीपल, मैनफल और सैंधानमक इनका चूर्ण करके गरम जलके साथ पिलावे तो वमनके साथ कफ निकले । तथा पित्तदोषमे पटोलपत्र, अडूसा और कटुनिंबके पत्तोका चूर्ण करके शीतल जलमे मिलाके पीवे तो वमनमें पित्त निकले तथा कफवायुकी पीडा हो तो मैनफलके चूर्णको दूधमें डालके पीवे तो वमन करनेसे कफवायुकी पीडा दूर होवे । तथा अजीर्णमें गरम जलमें सैंधानमक डालके पीवे तो वमन होनेसे उस प्राणीका अजीर्ण दूर होवे ॥ १९ ॥ २०॥

१ सोंठ मिरच पीपल राई आदि तीक्ष्ण औषध कहलाती है । २ अनारका मुनक्का दाख मिश्री आदि मधुर ओषधि जाननी ।

वमन करनेमें बाह्योपचार।

**वमनं पाययित्वा च जानुमात्रासने स्थितम्।**
**कण्ठमेरंडनालेन स्पृशन्तं वामयेद्भिषक् ॥ २१ ॥**
**ललाटं वमतः पुंसः पार्श्वौ द्वौ च प्रबोधयेत्।**

अर्थ-मनुष्यको वमनकारक औषध देकर घुटनेपर्यंत ऊंचे आसनपर बैठावे और अरंडकी नालको लेकर उसको मुखमें डाळके हलके हाथसे जैसे कफको स्पर्श करे इस प्रकार कण्ठमें फेरे। इस प्रकार भीतर बाहरसे कण्ठको हिलाकर वैद्य मनुष्यको उल्टी करावे तथा उस उल्टी करनेवालेके मस्तकको तथा उसकी दोनो कूखां-( पसलियों ) को धीरे २ हाथसे मसलना चाहिये ॥ २१ ॥

उत्तम वमन न होनेसे उपद्रव।

**प्रसेकी हृद्ग्रहः कोठः कण्डूर्दुश्छर्दितोद्भवेत् ॥ २२ ॥**

अर्थ-वमनका उत्तमयोग न होनेसे मुखसे लार गिरे, हृदयमे पीडा होवे, देहमें चकत्ते[1] और खुजली होती है ॥ २२ ॥

अत्यन्त वमन होनेके उपद्रव।

**अतिवांते भवेत्तृष्णा हिक्कोद्गारौ विसंज्ञता।**
**जिह्वानिःसर्पण चाक्ष्णोर्व्यावृत्तिर्हनुसंयतिः ॥ २३ ॥**
**रक्तच्छर्दिः ष्ठीवनं च कंठे पीडा च जायते।**

अर्थ-मनुष्यको अत्यन्त वमन होनेसे अत्यन्त तृषा लगे, हिचकी डकार आना, संज्ञाका नाश, जीभ मुखसे बाहर निकलपडे, नेत्र फटेसे होकर चञ्चल होवें, भ्रम, ठोडीका जकडना, अथवा पीडाका होना, मुखसे रुधिरका गिरना, बारंबार थूकना तथा कण्ठमें पीडा ये उपद्रव अत्यन्त वमन होनेसे होते हैं ॥ २३ ॥

अत्यन्त वमन होनेकी चिकित्सा।

**वमनस्यातियोगेन मृदु कुर्याद्विरेचनम् ॥ २४ ॥**

अर्थ-यदि मनुष्यको अत्यन्त उल्टी होती हो तो उसको हलकासा जुलाब करावे २४॥

उल्टी करते २ जीभ भीतर चली गयी हो उसकी चिकित्सा।

**वमनांतःप्रविष्टायां जिह्वायां कवलग्रहः।**
**स्निग्धाम्ललवणैर्हृद्यैर्घृतक्षीररसैर्हितः ॥ २५ ॥**
**फलान्यम्लानि खादेयुस्तस्य चान्येऽग्रतो नराः।**

---

१ मोहारकी मक्खीके काटनेसे जैसे चकत्ते देहमें हो जाते हैं उसी प्रकारके चकत्ते उठ

अर्थ-अत्यन्त उलटी करते २ यदि मनुष्यकी जीभ भीतर धँस गई हो तो मनको प्रसन्नताकारक खट्टे चिकने मीठे नमकीन पदार्थोंका रस घी दूध मुँहमें धारण करे तथा उस रोगीके सामने दूसरा मनुष्य नींबू अथवा नारंगीको चूस २ कर खावे तो मनुष्यकी जीभ ठिकानेपर आकर प्रकृति स्वच्छ हो ॥ २५ ॥

उलटी करते २ जीभ बाहर निकल पडी हो तो उसका उपाय ।

**निःसृतां तु तिल-द्राक्षा-कल्कैर्लिप्त्वा प्रवेशयेत् ॥ २६ ॥**

अर्थ-मनुष्यकी जीभ उलटी करते २ यदि बाहर निकल आई हो तो उसको तिल और दाख इनका कल्क करके उसकी जीभपर वैद्य लेप करके जीभको भीतर प्रविष्ट करे ॥ २६ ॥

वमनसे नेत्रोंमे विकार होनेका उपचार ।

**व्यावृत्तेऽक्ष्णि घृताभ्यक्ते पीडयेच्च शनैः शनैः ।**

अर्थ-जिस मनुष्यके उलटी करते २ नेत्र फटेसे होगये हों उसके नेत्रोंमें हलके हाथसे घी लगाके ठिकानेपर करे ।

उलटी करते २ ठोडी रह गई हो उसका उपचार ।

**हनुमोक्षे स्मृतः स्वेदो नस्यं च श्लेष्मवातनुत् ॥ २७ ॥**

अर्थ-मनुष्यकी उलटी करते २ ठोडी रह जावे तो उसके अंगोंका पसीना निकाले तथा कफवायुनाशक औषध नाकमें डाले तो ठोडीका स्तम्भ दूर होवे ॥ २७ ॥

उलटी करते २ रुधिर गिरने लगे उसका उपाय ।

**रक्तपित्तविधानेन रक्तच्छर्दिमुपाचरेत् ।**

अर्थ-मनुष्यको अत्यन्त उलटी होनेसे अन्तमें रुधिर गिरने लगे तो जो रक्तपित्त रोगपर उपाय कहे हैं उन उपायोंको करके रुधिरकी उलटीको शांत करे ।

अत्यन्त वमन होनेसे अधिक तृषा लगनेका यत्न ।

**धात्री-रसांजनोशीर-लाजा-चंदन-वारिभिः ॥ २८ ॥**
**मंथं कृत्वा पाययेच्च सघृतक्षौद्रशर्करम् ।**
**शाम्यंत्यनेन तृष्णाद्याः पीडाश्छर्दिसमुद्भवाः ॥२९॥**

अर्थ-१ आवले २ रसोत[1] ३ खस ४ शालि चावलोंकी खील ५ लालचन्दन और ६ नेत्रबाला इन छः औषधोंका मन्थ[2] करके उसमे घी सहत और मिश्री डालके पीवे तो वमनके कारण जो तृषादिक उपद्रव होवे हैं वे दूर होते ॥ २८ ॥ २९ ॥

---

१ दारुहल्दीका काढा करके उसके समान बकरीका दूध उसमें मिलायके औटावे, जब खोवा होजावे तब सुखायके चूर्ण कर लेवे। इसको रसोत वा रसांजन कहते हैं।

२ ऑवले आदि छः औषधोंको एक पल ले जवकूट करके४ पल जल हाँडीमें डाल औषध मिलायके मथ डाले फिर नितारके पानी छान लेवे, इसको मन्थ कहते हैं।

उत्तम वमन होनेके लक्षण।

**हृत्कण्ठशिरसां शुद्धिं दीप्ताग्नित्वं च लाघवम्।**
**कफपित्तविनाशश्च सम्यग्वांतस्य चेष्टितम् ॥ ३० ॥**

अर्थ–जो प्राणी उत्तम प्रकारकी उलटी करता है उसके लक्षण कहते हैं कि, हृदय, कंठ और मस्तक इनमें जो कफादिक दोष हैं उनको दूरकर उनकी शुद्धि होवे। अग्नि प्रदीप्त हो, अंग हलके हों तथा कफदोष और पित्तदोष ये दोनों दूर होवें ॥ ३० ॥

**ततोऽपराह्ने दीप्ताग्निं मुद्ग-षष्टिक-शालिभिः।**
**हृद्यैश्च जांगलरसैः कृत्वा यूपं च भोजयेत् ॥ ३१ ॥**

अर्थ–जब मनुष्य भले प्रकार वमन कर चुके तब तीसरे प्रहर अग्नि प्रदीप्त होने-पर मूंग और सॉठी चावल मनको प्रियकर्त्ता ऐसे ऐसे वनके हरिणादिकोंके मांसका रस और यूषे बनाके उनके साथ भोजन करे ॥ ३१ ॥

उत्तम वमनका फल।

**तन्द्रानिद्रास्यदौर्गंध्यं कण्डूं च ग्रहणीं विषम्।**
**सुवांतस्य न पीडायै भवंत्येते कदाचन ॥ ३२ ॥**

अर्थ–जिस मनुष्यने उत्तम प्रकार वमन किया है उसके तंद्रा निद्रा मुखकी दुर्गंधि खाज संग्रहणीरोग और विषदोष ये उपद्रव कदाचित् भी नही होते ॥ ३२ ॥

**अजीर्णं शीतपानीयं व्यायामं मैथुनं तथा।**
**स्नेहाभ्यङ्गं प्रकोपं च दिनैकं वर्जयेत्सुधीः ॥ ३३ ॥**

**इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायामुत्तरखण्डे वमनविधिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥**

अर्थ–अजीर्णकर्त्ता (भारी) पदार्थ, शीतल पानी, दंड कसरत, मैथुन, देहमें तेलकी मालिश करना तथा क्रोध करना ये सब कर्म जिस दिन वमनकारी औषध लेवे उस दिन त्याग देने चाहिये ॥ ३३ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतभाव-प्रकाशिकाभाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

१ जो धान साठ दिनमें पक आते है उन चावलोको सांठी चावल कहते है।

२ मूंग और सांठी चावल १ पल ले जल १ प्रस्थ डालके औटावे जब औटके पेयाके समान होजावे तो उसको यूष कहते है। इसी प्रकार हरिणादिकोके मांसमें जल डालके यूष बनावे, इसको मांसरस कहते है।

# अथ चतुर्थोऽध्यायः ४.

वमनके पश्चात् विरेचन।

स्निग्धस्विन्नस्य वांतस्य दद्यात्सम्यग्विरेचनम्।
अवांतस्य त्वधःस्रस्तो ग्रहणीं छादयेत्कफः॥ १॥
मन्दाग्निं गौरवं कुर्याज्जनयेद्वा प्रवाहिकाम्।
अथवा पाचनैरामं बलासं च विपाचयेत्॥ २॥

अर्थ–प्रथम मनुष्यको स्निग्ध करे अर्थात् पूर्वोक्त विधिसे स्नेहपान करावे, फिर उसके देहसे पसीने निकाले, पश्चात् वांति ( उलटी ) करावे। जब भले प्रकार वमन कर चुके तब उत्तम प्रकारसे विरेचन देवे। इसका कारण यह है विना वमन कराये दस्त करावे तो उसके अधोभागमें गया हुआ कफ वह ग्रहणी ( छठवी पित्तधरा तथा अग्निधरा कला ) का आच्छादन करता है कि जिससे मन्दाग्नि गौरव ( देहमें भारीपना ) प्रवाहिका ये रोग उत्पन्न होते हैं। अथवा अधोगत कफ और आमको सोंठ एरण्डमूलादिक करके पचावे॥ १॥ २॥

दस्तकी दूसरी विधि।

स्निग्धस्य स्नेहनैः कार्यं स्वेदैः स्विन्नस्य रेचनम्।

अर्थ–घृत दुग्धादिक स्नेहद्रव्यों करके स्निग्ध मनुष्यको और पिंडेष्टकादि करके जिसकी देहका पसीना निकाला गया हो उसे दस्त कराने चाहिये।

दस्तोंका सामान्य काल।

शरदृतौ वसन्ते च देहशुद्धौ विरेचयेत्॥ ३॥
अन्यदात्ययिके काले शोधनं शीलयेद्बुधः।

अर्थ–शरद् ऋतुमें तथा वसन्तऋतुमें मनुष्योंकी शरीरशुद्धिके लिये जुलाब देवे तो

१ वमनके पश्चात् दस्त कैसे देवे ऐसी शंका होनेसे भेड चरक सुश्रुत और वाग्भट इत्यादि ग्रन्थोंका अभिप्राय है कि, वमन देकर छः दिन व्यतीत होनेपर पश्चात् तीन दिन स्निग्ध करे फिर तीन दिन देहसे पसीने निकाले। फिर तीन दिन हलका भोजन (खिचडी आदि) देकर सोलहवे दिन जुलाबकारक औषध देवे। यह ग्रन्थकारका अभिप्राय है इस लिये श्लोकमें सम्यक्पद धरा है। २ मिट्टीका गोला ईंट आदि। ३ चक्रागत वर्षास्वपि विरेको विधेयः। ४ शरद् ऋतु क्वार कार्त्तिकके दिन। ५ वसन्त ऋतु चैत्र वैशाखके दिन।

देहकी शुद्धि होकर देह उत्तम हो। तथा उक्त कालके सिवाय दूसरे कालमें यदि रोग उत्पन्न हो तो उस कालमें भी वैद्य रोगीका विचार करके दस्तकारी औषध देवे ॥ ३ ॥

विरेचनयोग्य रोगी।

पित्ते विरेचनं दद्यादामोद्भूते गदे तथा ॥ ४ ॥
उदरे च तथाऽऽध्माने कोष्ठाशुद्धौ विशेषतः।

अर्थ—पित्तविकार आमवात उदर[1]रोग अफरा और बद्धकोष्ठ इन रोगोंमें वैद्य विशेष करके विरेचन देवे ॥ ४ ॥

दोष दूर करनेमें विरेचनकी उत्कृष्टता।

दोषाः कदाचित् कुप्यंति जिता लंघनपाचनैः ॥५॥
ये तु संशोधनैः शुद्धा न तेषां पुनरुद्भवः।

अर्थ—वातादिक दोष लंघन और पाचन करनेपर शमन होकर कदाचित् फिर भी कुपित होजाते हैं परन्तु जो संशोधन( वमनविरेचनादि )द्वारा शुद्ध हुए हैं उनका फिर उद्भव ( उत्पत्ति ) नहीं होता ॥ ५ ॥

दस्त कराने योग्य रोगी।

जीर्णज्वरी गरव्याप्तो वातरक्ती भगन्दरी ॥ ६ ॥
अर्शःपांडूदरग्रंथिहृद्रोगारुचिपीडिताः।
योनिरोगप्रमेहार्ता गुल्म-प्लीहव्रणार्दिताः ॥ ७ ॥
विद्रधिच्छर्दि-विस्फोट-विषूची-कुष्ठ-संयुताः।
कर्ण-नासा-शिरो-वक्त्र-गुद-मेढ्रामयान्विताः ॥ ८ ॥
यकृच्छोथाक्षिरोगार्ताः कृमिक्षारानिलार्दिताः।
शूलिनो मूत्रघातार्ता विरेकार्हा नरा मताः ॥ ९ ॥

अर्थ—जीर्णज्वर सिंगिया आदि विषदोष वातरक्त भगंदर बवासीर पांडुरोग उदररोग गांठ हृदयरोग अरुचि प्रमेह योनिरोग गोला प्लीहा व्रण विद्रधि वमन विस्फोटक विषूचिका कोढ कर्णरोग नासारोग मस्तकरोग मुखरोग गुदाके रोग लिंगेन्द्रियके ( उपदंशादि रोग ) यकृत् सूजन नेत्ररोग कृमिरोग सोमल तथा क्षारजन्य विकार वादीके रोग शूलरोग तथा मूत्राघातरोग इन रोगोंसे यदि प्राणी अत्यन्त व्याप्त होवे तो उसको विरेचन ( दस्त करानेकी औषधि ) देवे ॥ ६–९ ॥

---

१ उदररोगीको दस्त करावे यह प्रथम कह आये हैं परन्तु विशेष करके देना, इस वास्ते फिर उदररोगको कहा है।

दस्त करानेमें अयोग्य ।

बालवृद्धावतिस्निग्धः क्षतक्षीणो भयान्वितः ।
श्रांतस्तृषार्तः स्थूलश्च गर्भिणी च नवज्वरी ॥१०॥
नवप्रसूता नारी च मन्दाग्निश्च मदात्ययी ।
शल्यार्दितश्च रूक्षश्च न विरेच्या विजानता ॥११॥

अर्थ—बालक, वृद्ध, अतिस्निग्ध, उरःक्षत करके क्षीण, भय करके पीडित, थका हुआ, प्यासा, स्थूल पुरुष, गर्भिणी, नवज्वर करके पीडित, नवप्रसूता स्त्री, मन्दाग्नि, मदात्यय रोग करके पीडित, शैल्य करके पीडित और रूक्ष इतने मनुष्योंको विद्वान् वैद्य दस्त न करावे ॥ १० ॥ ११ ॥

दस्तोंमें मृदु, मध्य और क्रूर कोष्ठ ।

बहुपित्तो मृदुः प्रोक्तो बहुश्लेष्मा च मध्यमः ।
बहुवातः क्रूरकोष्ठो दुर्विरेच्यः स कथ्यते ॥१२॥
मृद्वी मात्रा मृदौ कोष्ठे मध्यकोष्ठे च मध्यमा ।
क्रूरे तीक्ष्णा मता तज्ज्ञैर्मृदुमध्यमतीक्ष्णकैः ॥१३॥

अर्थ—जिस मनुष्यका कोठा अत्यन्त पित्तकरके व्याप्त होवे उसे मृदुकोष्ठ जानना, एवं जिसके कोठेमें अत्यन्त कफ हो उसे मध्यम कोष्ठ एवं जिसके कोठेमें अत्यन्त वादी है उसे क्रूर कोष्ठ जानना । जिस मनुष्यका क्रूर कोष्ठ है ऐसे मनुष्यको दस्तकारी औषध देनेसे शीघ्र दस्त नही होते । जिस प्राणीका मृदु कोष्ठ है उसको मृदु औषधकी मध्यम मात्रा देवे । तथा जिस प्राणीका अत्यन्त क्रूर कोष्ठ है उसको औषधकी तीक्ष्ण मात्रा देनी चाहिये ॥ १२ ॥ १३ ॥

मृदुमध्यमादि कोष्ठोंमें मृदुमध्यादिक औषध ।

मृदुर्द्राक्षा पयश्चंचुतैलैरपि विरिच्यते ।
मध्यमस्त्रिवृता तिक्ता राजवृक्षैर्विरिच्यते ॥१४॥
क्रूरः स्नुक्पयसा हेमक्षीरीदंतीफलादिभिः ।

अर्थ—जिनका मृदु ( नरम ) कोठा है उनको दाख, दूध और अरंडीका तेल इनसे ही दस्त हो सकते है । मध्यम कोष्ठवालेको निशोथ, कुटकी और अमलतासका गूदा

---

१ काँच अथवा नाखन अथवा बाल काँटा इत्यादिक शरीरमें रहनेसे पीडित जो मनुष्य हो उसको शल्यार्दित जानना ।

इनसे दस्त हो सकते हैं। तथा क्रूर कोठेवालेको थूहरका दूध तथा चोक जमालगोटेके बीज आदिशब्दसे इन्द्रायनकी जड इत्यादिक देनेसे रेचन होता है ॥ १४ ॥

उत्तमादिभेद करके दस्तोंके प्रमाण।

**मात्रोत्तमा विरेकस्य त्रिंशद्वेगैः कफांतिका ॥ १५ ॥**
**वेगैर्विंशतिभिर्मध्या हीनोक्ता दशवेगिका।**

अर्थ-तीस बार दस्त होकर अन्तमें कफ (आम) गिरे तो उसे उत्तम मात्रा जाननी। और बीस वेग होकर कफ गिरने लगे तो उसे मध्यम मात्रा जाननी। तथा दश वेगके अन्तमें कफ गिरनेसे हीन मात्रा जाननी। वेगनाम दस्तोंका है ॥ १५ ॥

दस्त होनेमें कषायादिकी मात्राका प्रमाण।

**द्विपलं श्रेष्ठमाख्यातं मध्यमं च पलं भवेत् ॥ १६ ॥**
**पलार्धं च कषायाणां कनीयस्तु विरेचनम्।**

अर्थ-दो पल प्रमाण कषाय (काढा) देनेसे जो दस्त होवें तो उत्तम जानना। एक पल प्रमाण काढा देनेसे दस्त हो तो मध्यम जानना। एवं अर्ध पलके प्रमाण काढेसे दस्त हो तो कनिष्ठ जानना चाहिये ॥ १६ ॥

दस्त होनेमें कल्कादिकोंके प्रमाण।

**कल्कमोदकचूर्णानां कर्षं मध्वाज्यलेहतः ॥ १७ ॥**
**कर्षद्वयं पलं वापि वयोरोगाद्यपेक्षया।**

अर्थ-कल्क, मोदक और चूर्ण ये प्रत्येक कर्ष प्रमाण लेकर सहत और घीमें मिलाकर दस्त होनेके लिये देना चाहिये। अथवा अवस्था और रोगका तारतम्य देखके दो कर्ष अथवा एक पल देवे ॥ १७ ॥

दोषोंके अनुकूल रेचन।

**पित्तोत्तरे त्रिवृच्चूर्णं द्राक्षाक्वाथादिभिः पिबेत् ॥ १८ ॥**
**त्रिफलाक्वाथगोमूत्रैः पिबेद्व्योषं कफार्दितः।**
**त्रिवृत्सैन्धवशुण्ठीनां चूर्णमम्लैः पिबेन्नरः ॥ १९ ॥**
**वातार्दितो विरेकाय जांगलानां रसेन वा।**

अर्थ-पित्तके आधिक्यमे निसोथका चूर्ण करके दाखके काढेमें मिलाके देवे। आदि शब्दसे गुलकंद, गुलाबके फूल और सौंफ इत्यादिके काढेमें देवे। कफका प्रकोप होनेसे त्रिफलेका काढा और गोमूत्र इन दोनोंको एकत्र करके उसमें त्रिकुटा (सोंठ, मिरच, पीपल) का चूर्ण मिलाके देवे। यदि मनुष्य वादीसे पीडित हो तो

उनको दस्त करानेके वास्ते निसोथ, सैंधानमक और सोंठ इनका चूर्ण करके इमली या नीबूके रसमें देवे। अथवा जंगली जीवोंके मांसरसमें देवे तो दस्त होवे ॥१८॥१९॥

अन्य औषधोंसे दस्तोंका विधान।

एरण्डतैलं त्रिफलाक्वाथेन द्विगुणेन च ॥ २० ॥
युक्तं पीत्वा पयोभिर्वा न चिरेण विरिच्यते।

अर्थ-अंडीके तेलसे दुगुना त्रिफलेका काढा कर उसमें अंडीका तेल डाल देवे, अथवा अंडीका तेल दूधमें मिलाके देवे तो तत्काल दस्त हो जाते हैं ॥ २० ॥

ऋतुभेदकरके दस्त।

त्रिवृता कौटबीजं च पिप्पली विश्वभेषजम् ॥ २१ ॥
समृद्वीकारसः क्षौद्रं वर्षाकाले विरेचनम्।

अर्थ-निसोथ, इन्द्रजौ, पीपल, सोंठ, दाखोंका रस और सहत ये औषध दस्त होनेके वास्ते वर्षाकालमे देना चाहिये ॥ २१ ॥

शरदृतुमें दस्त।

त्रिवृद्दुरालभा मुस्ता शर्करा द्वि॒ऽयचन्दनम् ॥ २२ ॥
द्राक्षांबुना सयष्टीकं शीतलं च घनात्यये।

अर्थ-निसोथ, धमासा, नागरमोथा, मिसरी, उत्तम सफेदचन्दन और मुलहटी इन सब औषधोंका चूर्ण कर दाखके पानीमें मिलाके शरद् ऋतुमें देवे तो दस्त होवे। यह दस्तकी औषधि शीतल है ॥ २२ ॥

हेमन्तऋतुमें दस्त।

त्रिवृता चित्रकं पाठा ह्यजाजी सरला वचा ॥ २३ ॥
हेमक्षीरी च हेमन्ते चूर्णमुष्णांबुना पिबेत्।

अर्थ-निसोथ, चीता, पाढा, जीरा, देवदारु, वच और चोक इनका चूर्ण कर गरम जलमें मिलाके हेमन्तऋतुमे देवे तो दस्त होवे ॥ २३ ॥

शिशिर वा वसंत ऋतुमें दस्त।

पिप्पली नागरं सिंधुं श्यामात्रिवृतया सह ॥ २४ ॥
लिहेत्क्षौद्रेण शिशिरे वसन्ते च विरेचनम्।

---

१ हरिण शशा आदिके मांसको पानीमें औटावे। जब सीजके पेयाके समान होजावे तब उतार ले, इसको 'मांसरस' कहते है। २ उदीच्येति पाठे तु नेत्रवालाख्या ग्राह्या।

अर्थ-पीपल, सोंठ, सैंधानमक और काली निसोथ इन औषधोंका चूर्ण कर सहतमें मिलाकर शिशिर तथा वसन्त ऋतुमें चाटे तो दस्त हो। कोई श्यामा विधारेको भी कहते हैं ॥ २४ ॥

ग्रीष्मऋतुमें दस्त।

त्रिवृता शर्करातुल्या ग्रीष्मकाले विरेचनम् ॥ २५ ॥

अर्थ-निसोतका चूर्ण करके उसमें मिश्री मिलाकर दस्त होनेके वास्ते ग्रीष्म ऋतु (गरमियों) में देना चाहिये ॥ २५ ॥

सब ऋतुओंमें दस्त।

त्रिवृतां दन्ति-हपुषां सप्तलां कटुरोहिणीम्।
स्वर्णक्षीरीं च संचूर्ण्य गोमूत्रे भावयेत् त्र्यहम्।
एष सर्वर्तुको योगः स्निग्धानां मलदोषहा ॥ २६ ॥

अर्थ-निसोथ दन्ती हाऊबेर सातला कुटकी चोक इनका चूर्ण कर गोमूत्रमें ३ दिन भावना देकर हर समय स्निग्धमनुष्यको विरेचनार्थ देना चाहिये ॥ २६ ॥

अभयामोदक।

अभया मरिचं शुंठी विडंगामलकानि च। पिप्पली पिप्पलीमूलं त्वक्पत्रं मुस्तमेव च ॥ २७ ॥ एतानि समभागानि दंती च त्रिगुणा भवेत्। त्रिवृदष्टगुणा ज्ञेया षड्गुणा चात्र शर्करा ॥२८॥ मधुना मोदकं कृत्वा कर्षमात्रप्रमाणतः। एकैकं भक्षयेत्प्रातः शीतं चानु पिबेज्जलम् ॥ २९ ॥ तावद्विरिच्यते जन्तुर्यावदुष्णं न सेवते ॥३०॥ पानाहारविहारेषु भवेन्नियंत्रणं सदा। विषमज्वरमन्दाग्निपांडु--कासभगन्दरम् ॥ ३१ ॥ दुर्नाम कुष्ठगुल्मार्शो-गलगण्ड-व्रणोदरान्। विदाहप्लीहमेहांश्च यक्ष्माणं नयनामयम् ॥ ३२ ॥ वातरोगं तथाध्मानं मूत्रकृच्छ्राणि चाश्मरीम्। पृष्ठपार्श्वोरुजघनजङ्घोदररुजं जयेत् ॥३३॥ सततं शीलनादेष पलितानि विनाशयेत्। अभयामोदका ह्येते रसायनवराः स्मृताः ॥ ३४ ॥

अर्थ-१हरड २ कालीमिरच३ सोंठ४ वायविडंग ५ आँवले ६ पीपल७पीपरामूल ८ दालचीनी ९ पत्रज १० नागरमोथा ये दश औषध समान भाग लेवे। तथा दन्ती

तीन भाग निशोथ आठ भाग तथा खाँड छः भाग इस प्रकार भाग लेकर सबका चूर्ण कर सहतमें मिलाकर एक एक कर्षके मोदक ( लड्डू ) बनावे । इनमेंसे १ मोदक प्रातःकाल दस्त होनेके वास्ते भक्षण करे और ऊपरसे थोडा शीतल जल पीवे। फिर जबतक दस्त होते रहें तबतक गरम पदार्थका सेवन न करे तथा पान और आहार एवं विहार ( श्रमादिक ) इनमें सर्वकाल नियमित रहे तो विषमज्वर, मन्दाग्नि पांडुरोग, खाँसी, भगन्दर, कुष्ठ, गोला, बवासीर, गलगण्ड, भ्रम, उदररोग, विदाह, प्लीह, प्रमेह, राजयक्ष्मा, नेत्ररोग, वादीके रोग, पेटका फूलना, मूत्रकृच्छ्र, पथरी रोग, पीठ, पसली, कमर, जाँघ, पिंडरी और उदर इनमें पीडाका होना इत्यादि सर्व रोग दूर होवें। इस मोदकको अभयादिमोदक कहते हैं । इस अभयादिमोदकका निरन्तर सेवन करनेसे पलित ( सफेद बालोंका होजाना ) दूर हो अर्थात् सफेद बाल काले हो जावे तथा यह मोदक उत्तम रसायन है ॥ २७–३४ ॥

दस्तोंको सहायकर्ता उपचार ।

**पीत्वा विरेचनं शीतजलैः संसिच्य चक्षुषी ।**
**सुगन्धि किंचिदाघ्राय तांबूलं शीलयेन्नरः ॥ ३५ ॥**

अर्थ–मनुष्यको दस्तकी औषध देकर पश्चात् उस प्राणीके नेत्रमें शीतल जलके छीटे देवे और अतर पुष्प आदि सुगन्धित वस्तु सुँघावे । तथा पानका बीडा बनाके खावे। ये योग करनेसे उत्तम प्रकारके दस्त होते हैं ॥ ३५ ॥

दस्त होनेपर किस प्रकार रहना चाहिये ।

**निर्वातस्थो न वेगांश्च धारयेन्न स्वपेत्तथा ।**
**शीताम्बु न स्पृशेत् क्वापि कोष्णनीरं पिबेन्मुहुः ॥३६॥**

अर्थ–दस्त होनेके उपरान्त हवामें न बैठे, अधोवायु मल मूत्र इत्यादिकोंके वेग ( हाजत ) को न रोके, सोवे नहीं, शीतल जलको छूवे नही तथा दस्तोंमे गरम जल वारम्वार पिया करे तो उत्तम जुलाब होवे ( परन्तु अभयादिमोदकपर गरम जल न पीवे ) ॥ ३६ ॥

दस्तमे जो पदार्थ निकलते हैं ।

**बलासौषध-पित्तानि वायुर्वांते यथा व्रजेत् ।**
**रेकात्तथा मलं पित्तं भेषजं च कफो व्रजेत् ॥३७॥**

अर्थ–वमन ( ओकारी ) की औषध पीनेसे कफ और पी हुई औषध, पित्त और वादी ये पदार्थ जैसे वमनके होनेसे बाहर निकलते हैं उसी प्रकार दस्तकारी औषध पीनेसे मल, पित्त, पी हुई औषध और कफ ये पदार्थ दस्तके साथ गुदाके मार्ग होकर बाहर निकलते है ॥ ३७ ॥

उत्तम दस्त न होनेसे उपद्रव।

दुर्विरक्तस्य नाभेस्तु स्तब्धत्वं कुक्षिशूलता।
पुरीषवातसंगश्च कण्डूमण्डलगौरवम् ॥ ३८ ॥
विदाहोऽरुचिराध्मानं भ्रमश्छर्दिश्च जायते।

अर्थ–दस्त उत्तम न होनेसे नाभिमें स्तब्धता, पसलियोंमें शूल, मल और अधोवायुकी अप्रवृत्ति, शरीरमें खुजली तथा चकत्ते ये उत्पन्न हो और अंगका भारीपना, दाह, अरुचि, पेट फूलना, भ्रम तथा वमन ये उपद्रव होते हैं ॥ ३८ ॥

उत्तम जुलाब न होनेपर उपचार।

तं पुनः पाचनैः स्नेहैः पक्त्वा संस्नेह्य रेचयेत् ॥ ३९ ॥
तेनास्योपद्रवा यांति दीप्तोऽग्निर्लघुता भवेत्।

अर्थ–जिस मनुष्यको उत्तम दस्त न हुए हो उसको आरग्वधादिक्राथका पाचन देकर आमको पचावे फिर उसको स्नेहपान करावे अर्थात् घी पिलाके उसके कोठेको स्निग्ध (चिकना) करके फिर जुललाब देवे तो उसके सम्पूर्ण उपद्रव दूर होकर जठराग्नि प्रदीप्त हो और देह हलकी होवे ॥ ३९ ॥

अत्यन्त दस्त होनेसे उपद्रव।

विरेकस्यातिरोगेन मूर्च्छा भ्रंशो गुदस्य च ॥ ४० ॥
शूलं कफातियोगः स्यान्मांसधावनसंनिभम्।
मेदोनिभं जलाभासं रक्तं चापि विरिच्यते ॥ ४१ ॥

अर्थ–मनुष्यको अत्यन्त दस्त होनेसे मूर्च्छा, गुदामें पीडा, शूल, कफका अत्यन्त गिरना, मांसके धोवनके जलसमान, मेदके समान तथा पानीके समान गुदाके रास्तेसे रुधिर गिरे ये उपद्रव होते हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अत्यन्तदस्तजन्य उपद्रवोंका यत्न।

तस्य शीतांबुभिः सिक्तं शरीरं तंदुलांबुभिः।
मधुमिश्रैस्तथा शीतैः कारयेद्वमनं मृदु ॥ ४२ ॥

अर्थ–अत्यन्त दस्त होनेसे मनुष्यके देहपर शीतल जलको छिडके, उसी प्रकार शीतल चावलोंके धोवनमें सहत मिलाके पीनेको देवे अथवा हलकी वमन करावे ॥ ४२ ॥

दस्त बन्द करनेकी ओषधि ।

**सहकारत्वचः कल्को दध्ना सौवीरकेण वा ।**
**पिष्टो नाभिप्रलेपेन हंत्यतीसारमुल्बणम् ॥ ४३ ॥**

अर्थ--आमकी छालको गौके दहीमें अथवा सौवीरमें पीसके कल्क करे, उस कल्कको नाभिके ऊपर लेप करे तो दस्त होते हुए बन्द होवें ॥ ४३ ॥

दस्त रोकनेके यत्न ।

**अजाक्षीरं पिबेद्वापि वैष्किरं हारिणं तथा ।**
**शालिभिः षष्टिकैः स्वल्पं मसूरैर्वापि भोजयेत् ॥ ४४ ॥**
**शीतैः संग्राहिभिर्द्रव्यैः कुर्यात्संग्रहणं भिषक् ।**

अर्थ--दस्त बन्द होनेके वास्ते बकरीका दूध पीवे अथवा विष्किर पक्षियोंका मांस-रस तथा हरिणके मांसका रस सांठीके चावलोंके साथ अथवा मसूरके साथ खावे । और विलायती अनार, आदिशब्दसे शीतल और ग्राहक ऐसे पदार्थोंका सेवन करे तो दस्तोंका होना बन्द होजावे ॥ ४४ ॥

उत्तम दस्त होनेके लक्षण ।

**लाघवे मनसस्तुष्टयामनुलोमे गतेऽनिले ।**
**सुविरिक्तं नरं ज्ञात्वा पाचनं पाययेन्निशि ॥ ४५ ॥**

अर्थ--जिस प्राणीका देह दस्त होनेसे हलका होगया हो, चित्तमें प्रसन्नता तथा वायुका स्वस्थानमें गमन इतने लक्षण होनेसे उस मनुष्यको उत्तम जुलाब हुआ जानना । इसको रात्रिके समय पाचन[2] ओषधि देनी चाहिये ॥ ४५ ॥

विरेचन करनेके गुण ।

**इन्द्रियाणां बलं बुद्धेः प्रसादो वह्निदीप्तता ।**
**धातुस्थैर्यं वयःस्थैर्यं भवेद्रेचनसेवनात् ॥ ४६ ॥**

---

१ सौवीर करनेकी विधि मध्यखण्डमें सन्धान और आसव बनानेके प्रकरणमे कह आये है, परन्तु टीकाकर्त्ताओंने दस्त बन्द करनेको सौवीर करके काँजी लेना ऐसा कहा है । २ अरण्डकी जड, सोंठ और धनियां इन तीन औषधोंका काढा करके पाचनार्थ देवे ।

अर्थ—जुलाब लेनेसे इन्द्रियोंमें बल आवे, बुद्धि प्रसन्न रहे, जठराग्नि प्रदीप्त होय, एवं धातु और अवस्था इनमे स्थिरता हो ॥ ४६ ॥

दस्तमें वर्जित पदार्थ ।

**प्रवातसेवा शीतांबु स्नेहाभ्यङ्गमजीर्णताम् ।**
**व्यायाममैथुनं चैव न सेवेत विरेचितः ॥ ४७ ॥**

अर्थ—दस्त होनेके बाद अत्यन्त पवन नहीं खानी चाहिये, शीतल जल, तेलकी मालिश, अजीर्ण, परिश्रम और मैथुन इनका सेवन न करे ॥ ४७ ॥

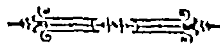
**शालिषष्टिकमुद्गाद्यैर्यवागूं भोजयेत् कृताम् ।**
**जांगलैर्विष्किराणां वा रसैः शाल्योदनं हितम् ॥ ४८ ॥**

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे विरेचनविधिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अर्थ—दस्त होनेके पश्चात् पथ्यमें सांठीके चावल और मूंग आदि धान्योंकी यवागूं करके सेवन करे तथा जंगली हरिणादि जीवोंके मांसका रस अथवा विष्किर पक्षी और मुरगा इत्यादिकोंके मांसका रस इसके साथ चावलोंका भात खाना चाहिये ॥ ४८ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृत-भावप्रकाशिकाभाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

# अथ पञ्चमोऽध्यायः ५.



वस्तिकी विधि ।

**वस्तिर्द्विधानुवासाख्यो निरूहश्च ततः परम् ।**
**वस्तिभिर्दीयते यस्मात्तस्माद्वस्तिरिति स्मृतः ॥ १ ॥**
**यः स्नेहैर्दीयते स स्यादनुवासननामकः ।**
**कषायक्षीरतैलैर्यो निरूहः स निगद्यते ॥ २ ॥**

१ चावल मूग इत्यादि धान्यमेसे जो अपनी प्रकृतिको हित हो उसको छः गुने जलमें औटाके पतली लेईसी करे, उसको 'यवागू' कहते है।२ हरिणादि जंगली जीवोंके मांसको पानीमे सिजाके पेयाके समान पतली रक्खे, उसको ' मांसरस ' कहते है। ३ यस्माद्वस्तिभिश्चर्मपुटकैर्दीयते तस्माद्वस्तिः ।

अर्थ--अण्डकोशादि करके जो गुदामे पिचकारी मारते हैं उस प्रयोगको वस्ति कहते हैं। वह वस्ति अनुवासन और निरूह इन भेदों करके दो प्रकारकी है । जिनमें घी और तेल इत्यादिक स्नेह करके जो पिचकारी मारते हैं उसको अनुवासन वस्ति कहते हैं और काढा दूध तेल इनको एकत्र करके जो पिचकारी मारते हैं उसको निरूह-वस्ति कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

अनुवासन वस्ति ।

**तत्रानुवासनाख्यो हि वस्तिर्यः सोऽत्र कथ्यते ।**
**पूर्वमेव ततो वस्तिनिरूहाख्यो भविष्यति ॥ ३ ॥**
**निरूहादुत्तरं चैव वस्तिः स्यादुत्तराभिधः ।**
**अनुवासनभेदैश्च मात्रावस्तिरुदीरितः ॥ ४ ॥**
**पलद्वयं तस्य मात्रा तस्मादर्धापि वा भवेत् ।**

अर्थ--अनुवासन और निरूह इन दोनों वस्तियोंमें प्रथम अनुवासन नामक वस्तिको कहकर फिर निरूहवस्ति तथा उत्तरवस्तिको कहेंगे । तथा उस अनुवासनवस्तिका भेद मात्रावस्ति है, उस मात्रा वस्तिके स्नेहादिककी मात्रा दो अथवा एक पलकी जाननी । इस प्रकार वस्तिके चार भेद हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

अनुवासनवस्तिके योग्य रोगी ।

**अनुवास्यस्तु रूक्षः स्यात्तीक्ष्णाग्निः केवलानिली ॥ ५ ॥**

अर्थ–रूक्ष कहिये स्नेहपानरहित और प्रदीप्त है अग्नि जिसकी तथा केवल वातरोगी इस प्रकारके मनुष्य अनुवासनवस्तिके योग्य जानने चाहिये ॥ ५ ॥

अनुवासनके अयोग्य ।

**नानुवास्यस्तु कुष्ठी स्यान्मेही स्थूलस्तथोदरी ।**
**अस्थाप्या नानुवास्याः स्युरजीर्णोन्मादतृड्युताः ॥ ६ ॥**
**शोक-मूर्च्छाऽरुचि-भय-श्वास-कास-क्षयातुराः ।**

अर्थ–कुष्ठी, प्रमेही, स्थूल, उदरी अर्थात् उदररोगी ये अनुवासनके योग्य नहीं हैं । अजीर्ण उन्माद प्यास शोक मूर्च्छा अरुचि भय श्वास खांसी और क्षय इन रोगों करके पीडित मनुष्य निरूहवस्तिके योग्य है । उनकी अनुवासनवस्तिमें योजना न करे ॥ ६ ॥

वस्तिका मुख बनानेकी सुवर्णादिकी नली।

नेत्रं कार्यं सुवर्णादिधातुभिर्वृक्षवेणुभिः ॥ ७ ॥
नलैर्दन्तैर्विषाणाग्रैर्मणिभिर्वा विधीयते ।

अर्थ-नेत्र अर्थात् गुदामें पिचकारी मारनेकी नली वह सुवर्णादि धातु वा नरसल हाथीदांत सींगके अग्रभाग बिल्लौर अथवा सूर्यकान्तादि मणिकी बनाना चाहिये ॥ ७॥

रोगीकी अवस्थानुसार नलीका प्रमाण।

एकवर्षात्तु षड्वर्षं यावन्मानं षडङ्गुलम् ॥ ८ ॥
ततो द्वादशकं यावन्मानं स्यादष्टसंगुलम् ।
ततः परं द्वादशभिरंगुलैर्नेत्रदीर्घता ॥ ९ ॥

अर्थ-वस्तिकी नली एक वर्षसे लेकर छः वर्ष पर्यन्त छः अंगुल लंबी तथा छः वर्षसे लेकर बारह वर्ष पर्यन्त आठ अंगुलकी नली बनवावे एवं बारह वर्षसे उपरान्त नली बारह अंगुलकी लंबी बनानी चाहिये ॥ ८ ॥ ९ ॥

नलीके छिद्रका प्रमाण।

मुद्गच्छिद्रं कलायाभं छिद्रं कोलास्थिसन्निभम् ।
यथासंख्यं भवेन्नेत्रं श्लक्ष्णं गोपुच्छसन्निभम् ॥ १० ॥
आतुरांगुष्ठमानेन मूलं स्थूलं विधीयते ।
कनिष्ठिकापरीणाहमग्रे च गुटिकामुखम् ॥ ११ ॥
तन्मूले कर्णिके द्वे च कार्ये भागाच्चतुर्थकात् ।
योजयेत्तत्र वस्तिं च बन्धद्वय-विधानतः ॥ १२ ॥

अर्थ-छः अंगुलवाली नलीका छिद्र ( छेद ) मूंगके दानेके प्रमाण करे और जो आठ अंगुलकी नली है उसमें मटरके समान छिद्र करे। बारह अंगुलवाली नलीमें बेरकी गुठलीके समान छिद्र करना चाहिये। इस क्रम करके नलीके छिद्र करने चाहिये। वह नली चिकनी होकर गौकी पुच्छके समान अर्थात् ऊपर नीचेसे छोटी और बीचमें मोटी बनावे। तथा उस नलीका मूल रोगीके अँगूठेके प्रमाण मोटा करना चाहिये और अग्रभागमें कनिष्ठिका ( छोटी उँगली ) के प्रमाण मोटी होकर उसका मुख गोल करना चाहिये। उस नलीके तीन भाग त्यागके चतुर्थ भागकी जडमें दो कर्णिका कमलपत्रके समान करके हरि-

णादिकोंके अंडकी वस्ति उस जगह लगाके उन कर्णिकाओंसे उस वस्तिको बाँधके संधि मिला देवे ॥ १०-१२ ॥

वस्ति किसके अण्डकी होनी चाहिये ।

मृगाजसूकरगवां महिषस्यापि वा भवेत् ।
मूत्रकोशस्य वस्तिस्तु तदलाभेन चर्मजः ॥ १३ ॥
कषायरक्तः सुमृदुर्वस्तिः स्निग्धो दृढो हितः ।

अर्थ-हरिण, बकरा, सूकर, बैल अथवा भैंसा इनके अंडकी वस्ति बनानी चाहिये। यदि इनके अण्डकोश न मिलें तो हरिणादिकोंके चमडेकी बनावे । और वह वस्ति बबूल इत्यादिकके छालके काढेमें रँगी हुई होकर नरम चिकनी तथा दृढ होनी चाहिये ॥ १३ ॥

व्रणवस्तिका प्रमाण ।

व्रणवस्तेस्तु नेत्रं स्याच्छ्लक्ष्णमष्टाङ्गुलोन्मितम् ॥ १४ ॥
मुद्गच्छिद्रं गृध्रपक्षनलिकापरिणाहि च ।

अर्थ-व्रणविषयमें जो नली लगाई जाती है उसकी नली आठ अंगुल प्रमाण लंबी चिकनी तथा उसका छिद्र मूँगके समान तथा गीधके पाँखकी जितनी नली होती है इतनी मोटी हो, इस प्रकार व्रणवस्तिकी नली जाननी चाहिये ॥ १४ ॥

वस्तिके गुण ।

शरीरोपचयं वर्णं बलमारोग्यमायुषः ।
कुरुते परिवृद्धिं च वस्तिः सम्यगुपासितः ॥ १५ ॥

अर्थ-वस्तिको उत्तम प्रकारसे सेवन करनेसे शरीरकी वृद्धि कांति बल आरोग्य तथा आयुष्यकी वृद्धि ये गुण उत्पन्न होते हैं ॥ १५ ॥

वस्तिके सेवनका काल ।

दिवसान्ते वसन्ते च स्नेहवस्तिः प्रदीयते ॥ १६ ॥
ग्रीष्म-वर्षा-शरत्काले रात्रौ स्यादनुवासनम् । ।
न चातिस्निग्धमशनं भोजयित्वानुवासयेत् ॥ १७ ॥
मदं मूर्च्छां च जनयेद्द्विधा स्नेहः प्रयोजितः ।
रूक्षं भुक्तवतोऽत्यन्तं बलं वर्णं च हीयते ॥ १८

अर्थ-वसंत ऋतुमें स्नेहवस्ति सायंकालमें देवे, ग्रीष्म ऋतु और वर्षाऋतु शरद् ऋतु इनमें रात्रिके समय देवे । रोगीको अत्यन्त स्निग्ध भोजन कराके अनुवासन

वस्तिका प्रयोग न करे यदि करे तो मद मूर्च्छा ये उत्पन्न होती है । एवं अत्यन्त स्न भोजन कराके यदि वस्तिकर्म करे तो बल तथा कांति इनकी हानि होती है १६-१८

वस्तिमें हीनमात्रा अतिमात्राका फल ।

**हीनमात्रावुभौ वस्ती नातिकार्यकरौ स्मृतौ ।**
**अतिमात्रौ तथाऽऽनाहक्लमातीसारकारकौ ॥ १९ ॥**

अर्थ—अनुवासनवस्ति तथा निरूहणवस्ति इनमें अल्पमात्रा होनेसे उनके द्वारा अत्यन्त कार्य नहीं होता अर्थात् रोग भले प्रकार दूर नहीं होता और यदि अनुवासन और निरूहकी अतिमात्रा हो जावे तो आनाह, ग्लानि और अतिसार ये रोग उत्पन्न होते हैं ॥ १९ ॥

उत्तमादि मात्रा ।

**उत्तमस्य पलैः षड्भिर्मध्यमस्य पलैस्त्रिभिः ।**
**पलाद्यर्धेन हीनस्य युक्ता मात्राऽनुवासने ॥ २० ॥**

अर्थ—उत्तम बलवाले प्राणियोंको अनुवासनवस्तिमें छः पलकी मात्रा, मध्यम-बली जो मनुष्य हैं उनकी तीन पल और हीनबल जो मनुष्य है उनकी मात्रा १॥ पलकी जाननी चाहिये ॥ २० ॥

स्नेहादिकमें सैंधवादिकका मान ।

**शताह्वासैन्धवाभ्यां च देयं स्नेहे च चूर्णकम् ।**
**तन्मात्रोत्तममध्यांत्याः षट्चतुर्द्वयमापकैः ॥ २१ ॥**

अर्थ—सौंफ और सैंधानमक इनका चूर्ण अनुवासनवस्तिमें देनेकी मात्रा छः मासे उत्तम है और चार मासेकी मध्यम और दो मासेकी कनिष्ठ मात्रा जाननी । इस प्रकार मात्राका क्रम जानना ॥ २१ ॥

दस्त देनेके पश्चात् अनुवासन वस्ति देनेका प्रकार ।

**विरेचनात्सप्तरात्रे गते जातबलाय च ।**
**भुक्तान्नायानुवास्याय वस्तिर्देयोऽनुवासनः ॥ २२ ॥**

अर्थ—मनुष्यको दस्त कराके जब सात दिन व्यतीत होजावें और देहमें पुरुषार्थ आजावे तब उसको भोजन कराके अनुवासन नामक वस्तिके योग्य प्राणीको अनुवासन वस्ति देवे ॥ २२ ॥

वस्ति देनेकी विधि ।

**अथानुवास्यं स्वभ्यक्तमुष्णांबुस्वेदितं शनैः । भोजयित्वा यथाशास्त्रं कृतचंक्रमणं ततः ॥ २३ ॥ उत्सृष्टानिलविण्मूत्रं**

**योजयेत्स्नेहवस्तिना । सुप्तस्य वामपार्श्वेन वामजंघाप्रसारिणः ॥ २४ ॥ कुंचितापरजंघस्य नेत्रं स्निग्धगुदे न्यसेत् । बद्धा वस्तिमुखं सूत्रैर्वामहस्तेन धारयेत ॥ २५ ॥ पीडयेद्दक्षिणेनैव मध्यवेगेन धीरधीः । जृम्भाकासक्षयादींश्च वस्तिकाले न कारयेत् ॥ २६ ॥**

अर्थ–अनुवासनवस्तिके योग्य मनुष्यके देहमें तेल लगाकर गरमजलसे देहसे हलके पसीने निकालकर उसको यथाशास्त्र भोजन कराकर फिर उसको इधर उधर फिराके तथा मल मूत्रकी इच्छा हो तो उससे निवृत्त करके, यदि अधोवायु त्यागनेकी इच्छा हो तो उसको त्याग कराके वस्तिकर्म करे । उसको बांई करवट सुलाके बॉयां पैर पसरवा देवे । और दहने पैरको सकोडके फिर गुदाको स्निग्ध कर वस्तिके मुखपर डोरेसे बांध उस नलीको गुदाके ऊपर धरे तथा कुशल वैद्य उस नलीको बांयें हाथमें रखके दहिने हाथसे मध्यम वेग करके उसमें पिचकारी देवे अर्थात् पिचकारी मारे तथा वस्तिके समय जंभाई खांसना तथा छींकना आदि ये रोगीको नहीं करने चाहिये ॥ २३–२६ ॥

पिचकारी मारनेमें काल ।

**त्रिंशन्मात्रामितः कालः प्रोक्तो वस्तेस्तु पीडने ।**
**ततः प्रणिहितः स्नेह उत्तानो वाक्छतं भवेत् ॥ २७ ॥**

अर्थ–पिचकारी मारनेमें तीस मात्रा पर्यंत काल जानना । फिर स्नेह भीतर पहुँचनेपर १०० अंक जितनी देरमें बोले जावे इतनी देरतक उस रोगीको चित्त लेटे रहने देवे । मात्राका प्रमाण आगेके श्लोकमे लिखा है ॥ २७ ॥

कितनी कालकी मात्रा होती है ।

**जानुमण्डलमावेष्ट्य कुर्याच्छोटिकया युतम् ।**
**एकमात्रा भवेदेषा सर्वत्रैष विनिश्चयः ॥ २८ ॥**

अर्थ–घुटनेपर हाथ फिराकर चुटकी बजावे इतने कालकी एक मात्रा जाननी । ऐसा निश्चय सर्वत्र जानना ॥ २८ ॥

पिचकारी मारनेके अनन्तर क्रिया ।

**प्रसारितैः सर्वगात्रैर्यथा वीर्य प्रसर्पति । ताडयत्तलयोरेनं त्रीन्वारांश्च शनैः शनैः ॥ २९ ॥ स्फिजोश्चैवं ततः श्रोणीं**

---

१ चावलकी पतली पेया । २ घी लगाके ।

शय्यां चैवोत्क्षिपेत्ततः। जाते विधाने तु ततः कुर्यान्निद्रां यथासुखम् ॥ ३० ॥

अर्थ–पिचकारी मारनेपर रोगीके हाथ पैर संपूर्ण अंग ढीले छोडके रखै करै, ऐसा करनेसे रसादिधातु अपने २ स्थानपर जाती हैं। तथा रोगीके हाथ पैरोंके तलमें तीन वार हलकी २ ताली मारे। उसी प्रकार कूलेमें तथा कटिके पश्चात भागमें तीन वार ताली मारके उस रोगीको पलँगपर बैठा देवे। इस प्रकारकी विधि होनेके पश्चात् रोगीको स्वस्थतापूर्वक यथासुख शयन करावे ॥ २९ ॥ ३० ॥

उत्तमवस्तिकर्मके गुण।

सानिलः सपुरीपश्च स्नेहः प्रत्येति यस्य तु।
उपद्रवं विना शीघ्रं स सम्यगनुवासितः ॥ ३१ ॥

अर्थ–गुदाके भीतर गया हुआ तेल वायु और मलके साथ मिलकर उपद्रवरहित तत्काल बाहर निकले तो उस मनुष्यको वस्तिकर्म उत्तम हुआ जानना चाहिये ॥ ३१॥

स्नेहका विकार दूर होनेमें यत्न।

जीर्णान्नमथ सायाह्ने स्नेहे प्रत्यागते पुनः। लघ्वन्नं भोजयेत् कामं दीप्ताग्निस्तु नरो यदि ॥ ३२ ॥ अनुवासिताय देयं स्यादितरेऽह्नि सुखोदकम्। धान्यशुण्ठीकपायो वा स्नेहव्यापत्तिनाशनम् ॥ ३३ ॥

अर्थ–गुदाके द्वारा स्नेह निःशेष बाहर आजानेसे उस मनुष्यकी अग्नि यदि प्रदीप्त होवे तो उसको सायंकालमें पुराने अन्न नित्यके आहारकी अपेक्षा न्यून भोजनको देवे और अनुवासित मनुष्यको दूसरे दिन सुखोदक दे अर्थात् गरम जल पीनेको देवे अथवा धनिया और सोंठ इनका काढा करके दे तो स्नेहका विकार दूर होवे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

वातादिकमें पिचकारी मारनेका प्रमाण।

अनेन विधिना षड्वा सप्त चाष्टौ नवापि वा।
विधेया वस्तयस्तेषामन्ते चैव निरूहणम् ॥ ३४ ॥

अर्थ–पूर्वोक्त विधि करके वातादिक दोपोंमें छः वार सात वार आठ वार अथवा नौ वार पिचकारी मारे। फिर उस पिचकारी मारनेके पश्चात् निरूहणवस्तिकी योजना करे ॥ ३४ ॥

१ उपद्रवोऽत्र उषः चोषादिः। उषः प्रादेशिको दाहः चोषो वेदनाविशेषः पिपासेत्यपरे ॥
२ एक वर्षके पुराने चावल अथवा साठी चावलोंका भात पथ्यमें देवे।

वस्तिके क्रमसे गुण ।

**दत्तस्तु प्रथमो वस्तिः स्नेहयेद्वस्तिवंक्षणैः।सम्यग्दत्तो द्वितीयस्तु मूर्धस्थमनिलं जयेत्॥३५॥बलं वर्णं च जनयेत्तृतीयस्तु प्रयोजितः। चतुर्थपञ्चमौ दत्तौ स्नेहयेतां रसासृजी ॥३६॥ षष्ठो मांसं स्नेहयति सप्तमो मेद एव च। अष्टमो नवमश्चापि मज्जानं च यथाक्रमम् ॥३७॥ एवं शुक्रगतान्दोषान् द्विगुणः साधु साधयेत् । अष्टादशाष्टदशकान्वस्तीनां यो निषेवते ॥ ३८ ॥ स कुञ्जरबलोऽप्यश्वं जयेत्तुल्योऽमरप्रभः ।**

अथ-प्रथम पिचकारी मारनेसे वह वस्ति और वंक्षण अर्थात् अंडोंकी सन्धिद्वारा शरीरमें स्नेहन करे अर्थात् धातु बढावे । दूसरी पिचकारी देनेसे मस्तककी वायु दूर हो । तीसरी पिचकारी मारनेसे शरीरमें बल और कांति आवे । चौथी और पांचवी पिचकारी मारनेसे रस और रुधिर इनकी वृद्धि होवे । छठी और सातवी पिचकारी मारनेसे मांस और मेदामें चिकनाई आवे और आठवीं और नौवी पिचकारी मारनेसे मज्जा तथा श्लोकमें जो चकार है उस करके शुक्र धातुमें स्निग्धता हो । इस प्रकार अठारह पिचकारी देनेसे शुक्रधातुगत जो दोष उनका नाश हो एवं जो प्राणी छत्तीस पिचकारी सेवन करता है उसमें हाथीके समान बल आकर वेगमें घोडेको जीतता है तथा देवताके समान कांतिवाला होता है ॥ ३५-३८ ॥

अनुवासनवस्ति तथा निरूहणवस्ति ये किसको देवे ।

**रूक्षाय बहुवाताय स्नेहवस्तिर्दिनेदिने ॥३९॥ दद्याद्वैद्यस्तथाऽन्येषामन्यां बाधामपाहरेत् । स्नेहोऽल्पमात्रो रूक्षाणां दीर्घकालमनत्ययः ॥ ४० ॥ तथा निरूहः स्निग्धानामल्पमात्रः प्रशस्यते ।**

अर्थ-रूक्ष होकर जो अत्यन्त वादी करके पीडित हो उसको वैद्य प्रतिदिन ( नित्य ) स्नेह वस्ति देवे, दूसरोको अर्थात् स्थूलादिक मनुष्योको निरूहवास्ति नित्यप्रति देवे तो वादीका रोग दूर हो । रूक्ष पुरुषके स्नेहकी हलकी पिचकारी मारनी चाहिये और इस क्रियाको निरन्तर करना ठीक है और स्निग्ध मनुष्यके निरूहण वस्ति थोडी देवे ॥ ३९ ॥ ४० ॥

केवल तैल गुदाके बाहर आवे उसका यत्न ।

**अथवा यस्य तत्कालं स्नेहो निर्याति केवलः ॥ ४१ ॥**

तस्यान्योऽल्पतरो देयो न हि स्निग्धस्य तिष्ठति।

अर्थ-स्निग्ध मनुष्यके गुदाके द्वारा पिचकारी मारनेके उपरान्त तत्काल ही स्नेह बाहर निकले है ठहरे नहीं है इस कारण स्नेहवस्ति देकर तत्काल निरूहवस्ति देवे। इस प्रकार पलट कर दोनों प्रकारकी वस्ति देवे ॥ ४१ ॥

तैल बाहर न निकले उसके उपद्रव और यत्न।

अशुद्धस्य मलोन्मिश्रः स्नेहो नैति यदा पुनः ॥ ४२ ॥
तदा शैथिल्यमाध्मानं शूलं श्वासश्च जायते।
पक्वाशये गुरुत्वं च तत्र दद्यान्निरूहणम् ॥ ४३ ॥
तीक्ष्णं तीक्ष्णौषधियुता फलवर्तिर्हिता तथा।
यथानुलोमनं वायुर्मलं स्नेहश्च जायते ॥ ४४ ॥
तथा विरेचनं दद्यात्तीक्ष्णं नस्यं च शस्यते।

अर्थ-वमन विरेचन इत्यादिक करके जिस मनुष्यकी शुद्धि नहीं की उसकी गुदाके द्वारा यदि मलमिश्रित स्नेह बाहर नहीं आया होवे तो शरीरका शिथिलपना, पेटका फूलना, शूल, श्वास और पक्वाशयमें भारीपना ये उपद्रव होते हैं। इनके दूर करनेकी तीक्ष्ण निरूहणवस्ति देवे। इस प्रकार तीक्ष्ण औषधों करके मिली फलवर्त्ती जिससे वायु अधोगामी होकर मलमिश्रित स्नेह गुदाके द्वारा बाहर आवे इस प्रकार देवे। तथा तीक्ष्ण जुलाब तथा नस्य देनी चाहिये ॥ ४२-४४ ॥

स्नेहवस्ति जिसको उपद्रव न करे उसका विधान।

यस्य नोपद्रवं कुर्यात्स्नेहवस्तिरनिस्सृतः ॥ ४५ ॥
सर्वोऽल्पो वाऽऽवृतो रौक्ष्यादुपेक्ष्यः स विजानता।

अर्थ-जिस मनुष्यके स्नेहकी पिचकारी गुदामें मारनेके पश्चात् गुदाका सम्पूर्ण भाग आवृत अर्थात् व्याप्त होकर रहनेसे अथवा मनुष्यके रूक्षताके कारण गुदाके एक देशमें व्याप्त होकर रहनेसे शूलादिक उपद्रव नहीं करे उसको बहुतकाल पर्यन्त रहने देवे ॥ ४५ ॥

अहोरात्रमें भी जिसके तैल बाहर न निकले उसका यत्न।

अनायातं त्वहोरात्रे स्नेहं संशोधनैर्हरेत् ॥ ४६ ॥
स्नेहवस्तावनायाते नान्यः स्नेहो विधीयते।

अर्थ-जो स्नेह दिनरात्रिमें भी बाहर न आवे उसको जुलाब देकर बाहर निकाले

वस्तिके क्रमसे गुण ।

**दत्तस्तु प्रथमो वस्तिः स्नेहयेद्वस्तिवंक्षणैः। सम्यग्दत्तो द्वितीयस्तु मूर्धस्थमनिलं जयेत्॥ ३५॥ बलं वर्णं च जनयेत्तृतीयस्तु प्रयोजितः। चतुर्थपञ्चमौ दत्तौ स्नेहयेतां रसासृजी ॥३६॥ षष्ठो मांसं स्नेहयति सप्तमो मेद एव च। अष्टमो नवमश्चापि मज्जानं च यथाक्रमम् ॥३७॥ एवं शुक्रगतान्दोषान् द्विगुणः साधु साधयेत् । अष्टादशाष्टदशकान्वस्तीनां यो निषेवते ॥ ३८ ॥ स कुञ्जरबलोऽप्यश्वं जयेत्तुल्योऽमरप्रभः ।**

अर्थ-प्रथम पिचकारी मारनेसे वह वस्ति और वंक्षण अर्थात् अंडोकी सन्धिद्वारा शरीरमे स्नेहन करे अर्थात् धातु बढावे । दूसरी पिचकारी देनेसे मस्तककी वायु दूर हो । तीसरी पिचकारी मारनेसे शरीरमें बल और कांति आवे । चौथी और पांचवीं पिचकारी मारनेसे रस और रुधिर इनकी वृद्धि होवे । छठी और सातवी पिचकारी मारनेसे मांस और मेदामें चिकनाई आवे और आठवीं और नौवी पिचकारी मारनेसे मज्जा तथा श्लोकमें जो चकार है उस करके शुक्र धातुमे स्निग्धता हो । इस प्रकार अठारह पिचकारी देनेसे शुक्रधातुगत जो दोष उनका नाश हो एवं जो प्राणी छत्तीस पिचकारी सेवन करता है उसमें हाथीके समान बल आकर वेगमें घोडेको जीतता है तथा देवताके समान कांतिवाला होता है ॥ ३५-३८ ॥

अनुवासनवस्ति तथा निरूहणवस्ति ये किसको देवे ।

**रूक्षाय बहुवाताय स्नेहवस्तिर्दिनेदिने ॥३९॥ दद्याद्वैद्यस्तथाऽन्येषामन्यां बाधामपाहरेत् । स्नेहोऽल्पमात्रो रूक्षाणां दीर्घकालमनत्ययः ॥ ४० ॥ तथा निरूहः स्निग्धानामल्पमात्रः प्रशस्यते ।**

अर्थ-रूक्ष होकर जो अत्यन्त वादी करके पीडित हो उसको वैद्य प्रतिदिन ( नित्य ) स्नेह वस्ति देवे, दूसरोको अर्थात् स्थूलादिक मनुष्योंको निरूहवस्ति नित्यप्रति देवे तो वादीका रोग दूर हो । रूक्ष पुरुषके स्नेहकी हलकी पिचकारी मारनी चाहिये और इस क्रियाको निरन्तर करना ठीक है और स्निग्ध मनुष्यके निरूहण वस्ति थोडी देवे ॥ ३९ ॥ ४० ॥

केवल तैल गुदाके बाहर आवे उसका यत्न ।

**अथवा यस्य तत्कालं स्नेहो निर्याति केवलः ॥ ४१ ॥**

**तस्यान्योऽल्पतरो देयो न हि स्निग्धस्य तिष्ठति ।**

अर्थ-स्निग्ध मनुष्यके गुदाके द्वारा पिचकारी मारनेके उपरान्त तत्काल ही स्नेह बाहर निकले है ठहरे नहीं है इस कारण स्नेहवस्ति देकर तत्काल निरूहवस्ति देवे । इस प्रकार पलट कर दोनो प्रकारकी वस्ति देवे ॥ ४१ ॥

तैल बाहर न निकले उसके उपद्रव और यत्न ।

**अशुद्धस्य मलोन्मिश्रः स्नेहो नैति यदा पुनः ॥ ४२ ॥**
**तदा शैथिल्यमाध्मानं शूलं श्वासश्च जायते ।**
**पक्काशये गुरुत्वं च तत्र दद्यान्निरूहणम् ॥ ४३ ॥**
**तीक्ष्णं तीक्ष्णौषधियुता फलवर्तिर्हिता तथा ।**
**यथानुलोमनं वायुर्मलं स्नेहश्च जायते ॥ ४४ ॥**
**तथा विरेचनं दद्यात्तीक्ष्णं नस्यं च शस्यते ।**

अर्थ-वमन विरेचन इत्यादिक करके जिस मनुष्यकी शुद्धि नहीं की उसकी गुदाके द्वारा यदि मलमिश्रित स्नेह बाहर नहीं आया होवे तो शरीरका शिथिलपना, पेटका फूलना, शूल, श्वास और पक्वाशयमें भारीपना ये उपद्रव होते हैं । इनके दूर करनेकी तीक्ष्ण निरूहणवस्ति देवे । इस प्रकार तीक्ष्ण ओषधी करके मिली फलवर्त्ती जिससे वायु अधोगामी होकर मलमिश्रित स्नेह गुदाके द्वारा बाहर आवे इस प्रकार देवे । तथा तीक्ष्ण जुलाब तथा नस्य देनी चाहिये ॥ ४२-४४ ॥

स्नेहवस्ति जिसको उपद्रव न करे उसका विधान ।

**यस्य नोपद्रवं कुर्यात्स्नेहवस्तिरनिस्सृतः ॥ ४५ ॥**
**सर्वोऽल्पो वाऽऽवृतो रौक्ष्यादुपेक्ष्यः स विजानता ।**

अर्थ-जिस मनुष्यके स्नेहकी पिचकारी गुदामें मारनेके पश्चात् गुदाका सम्पूर्ण भाग आवृत अर्थात् व्याप्त होकर रहनेसे अथवा मनुष्यके रूक्षताके कारण गुदाके एक देशमें व्याप्त होकर रहनेसे शूलादिक उपद्रव नहीं करें उसको बहुतकाल पर्यन्त रहने देवे ॥ ४५ ॥

अहोरात्रमें भी जिसके तैल बाहर न निकले उसका यत्न ।

**अनायातं त्वहोरात्रे स्नेहं संशोधनैर्हरेत् ॥ ४६ ॥**
**स्नेहवस्तावनायाते नान्यः स्नेहो विधीयते ।**

अर्थ-जो स्नेह दिनरात्रिमें भी बाहर न आवे उसको जुलाब देकर बाहर निकाले

स्नेहकी पिचकारी मारनेसे स्नेह बाहर न आवे तो उसके दो वार स्नेहकी पिचकारी नहीं देनी चाहिये ॥ ४६ ॥

**कुष्ठक्रमुककल्कं तु पाययेच्चाम्लसंयुतम् ॥ ४७ ॥**
**औष्ण्यात्तैक्ष्ण्याच्च सात्म्याच्च वस्तिः सोऽस्यानुलोमयेत् ।**
**गोमूत्रेण त्रिवृत्पथ्याकल्कं मात्रानुलोमनम् ॥ ४८ ॥**

अर्थ-उसे कुष्ठ क्रमुक इमली आदि पिलानेसे अनुलोमन होजाता है। अथवा गोमूत्रके साथ निसोथ या हरडके कल्कका प्रयोग हित है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

अनुवासन तैल।

**गुडूच्येरंडपूतीकभार्ङ्गी वृषकरोहिषम् ।**
**शतावरी सहचरं काकनासा पलोन्मितम् ॥ ४९ ॥**
**यव-माषातसी-कोल-कुलित्थान्प्रसृतोन्मितान् ।**
**चतुर्द्रोणांभसा पक्त्वा द्रोणशेषेण तेन च ॥ ५० ॥**
**पचेत्तैलाढके पेष्यैर्जीवनीयैः पलोन्मितैः ।**
**अनुवासनमेतद्धि सर्ववातविकारनुत् ॥ ५१ ॥**

अर्थ-१ गिलोय २ अरण्डकी जड ३ करंजकी छाल ४ भारंगी ५ अडूसा ६ रोहिषतृण ७ शतावर ८ पियावासा और ९ काकनासा ( कौआटोडी ) ये नौ औषध एक एक पल[1] प्रमाण लेवे। १ जौ २ उडद ३ अलसी ४ बेरकी गुठली तथा ५ कुलथी ये पांच औषध दो दो पल लेवे। इन सब औषधोंको जवकूट करके उसमें जल ४ द्रोण डालके औटावे। जब एक द्रोण मात्र जल शेष रहे तब उतारके छान ले। फिर इसमे तिल्लीका तेल एक आढक डालके तथा जीवनीयगणकी औषध एक एक पल प्रमाण लेके बारीक चूर्ण करके उस तेलमें डालके फिर औटावे। जब काढा जलकर तेल-मात्र शेष रहे तब उतारके तेलको किसी पात्रमें भरके धर रक्खे। इसको अनुवासन तेल कहते हैं यह तेल संपूर्ण वादीके रोगोंको दूर करता है ॥ ४९-५१ ॥

अनुवासनवस्तिके विपरीत होनेसे जो रोग होवें उनकी चिकित्सा।

**षट्सप्ततिर्व्यापदस्तु जायन्ते वस्तिकर्मणः ।**
**दूषितात्समुदायेन ताश्चिकित्स्यास्तु सुश्रुतात् ॥ ५२ ॥**

अर्थ-वस्तिकर्ममें दोषरूप कुछ भी विपरीतता होनेसे छिहत्तर प्रकारके रोग उत्पन्न होते है, उनकी चिकित्सा सुश्रुत ग्रन्थमें कही है उस क्रमसे करनी चाहिये ॥ ५२ ॥

---

१ पल और द्रोण आदिका मान प्रथमखण्डके परिभाषाप्रकरणमें है।

वस्तिकर्ममें पथ्य ।

पानाहारविहारश्च परिहारश्च कृत्स्नशः ।
स्नेहपानसमाः कार्या नात्र कार्या विचारणा ॥ ५३ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे स्नेहविधिः पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अर्थ-अन्न पान और विहारादिक इनके आचरण जैसे स्नेहपान प्रकरणमें कहे हैं उसी प्रकार संपूर्ण कार्य इस स्नेहवस्तिमें करे इसमें विचार न करे ॥ ५३ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे वैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतभाव-प्रकाशिकाभाषाटीकायां स्नेहविधिर्नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

---

# अथ षष्ठोऽध्यायः ६.

निरूहवस्तीका विधान ।

निरूहवस्तिर्बहुधा भिद्यते कारणान्तरैः ।
तैरेव तस्य नामानि कृतानि मुनिपुङ्गवैः ॥ १ ॥

अर्थ-निरूहवस्ति कारणभेद करके अनेक प्रकारकी होती है और जैसे २ कारणोंके नाम हैं उसी २ प्रकारके उसके नाम होते हैं । उदाहरण जैसे-उत्क्लेशनवस्ति, दोषहरवस्ति, दोषशमनवस्ति इत्यादिक ॥ १ ॥

निरूहवस्तीका दूसरा नाम ।

निरूहस्यापरं नाम प्रोक्तमास्थापनं बुधैः ।
स्वस्थानस्थापनाद्दोषधातूनां स्थापनं मतम् ॥ २ ॥

अर्थ-निरूहवस्तीका दूसरा नाम आस्थापन जानना । दोष तथा रसादिक धातु इनको अपने स्थानपर बसाती हैं इसीसे इसको आस्थापन कहते हैं । वातादिक दोष अथवा रोग इनको दूर करती है इसीसे इसको निरूह कहते हैं ॥ २ ॥

निरूहवस्तीमें काढे आदिका प्रमाण ।

निरूहस्य प्रमाणं तु प्रस्थः पादोत्तरं मतम् ।
मध्यमं प्रस्थमुद्दिष्टं हीनस्य कुडवास्त्रयः ॥ ३ ॥

अर्थ-निरूहवस्ती देनेमें कषायादिकोंका प्रमाण सवा प्रस्थ उत्तम, एक प्रस्थ मध्यम और तीन कुडव कनिष्ठ जानना चाहिये ॥ ३ ॥

निरूहवस्तीमें अयोग्य मनुष्य।

**अतिस्निग्धोत्क्लिष्टदोषौ क्षतोरस्कः कृशस्तथा।**
**आध्मानच्छर्दिहिक्कार्शःकासश्वासप्रपीडितः ॥ ४ ॥**
**गुदशोफातिसारार्तो विषूची-कुष्ठसंयुतः।**
**गर्भिणी मधुमेही च नास्थाप्यश्च जलोदरी ॥ ५ ॥**

अर्थ-अत्यंत स्निग्ध, ऊर्ध्वगामी हैं दोष जिसके वह और उरःक्षत करके पीडित, कृश, पेटका फूलना, उलटी, हिचकी, बवासीर, खाँसी, श्वास इन करके पीडित, गुदामे पीडा, सूजन, अतिसार, विषूचिका और कुष्ठ इन करके पीडित, गर्भिणी स्त्री, मधुप्रमेहवाला, जलंधरवाला इतने रोगी आस्थापन ( निरूहवस्ती ) के योग्य नहीं हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

निरूहवस्तीमें योग्य प्राणी।

**वातव्याधावुदावर्ते वातसृग्विषमज्वरे। मूर्च्छातृष्णोदराना-हमूत्रकृच्छ्राश्मरीषु च ॥६॥ वृद्धासृग्धरमंदाग्निप्रमेहेषु निरू-हणम्। शूलेऽम्लपित्ते हृद्रोगे योजयेद्विधिवद्बुधः ॥ ७ ॥**

अर्थ-वातरोग, उदावर्त्तरोग, वातरक्त, विषमज्वर, मूर्छा, प्यास, उदर, आनाह, रोग, मूत्रकृच्छ्र, पथरी रोग, बहुत दिनका रक्तप्रदर, मन्दाग्नि, प्रमेह, शूलरोग, अम्लपित्त तथा हृद्रोग ये रोग निरूहवस्तीके योग्य जानने चाहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥

निरूहवस्तीके देनेका प्रकार।

**उत्सृष्टानिलविण्मूत्रं स्निग्धस्विन्नमभोजितम्। मध्याह्ने गृह-मध्ये च यथायोग्यं निरूहयेत् ॥ ८ ॥ स्नेहवस्तिविधानेन बुधः कुर्यान्निरूहणम्। जाते निरूहे च ततो भवेदुत्कटका-सनः ॥९॥ तिष्ठन्मुहूर्तमात्रं च निरूहगमनेच्छया। अना-यातं मुहूर्ते तु निरूहं शोधनैर्हरेत् ॥ १० ॥**

अर्थ-जो मलमूत्रादिक त्याग चुका हो, स्निग्ध, जिसका पसीना निकाल चुका हो, जिसने भोजन न किया हो ऐसे मनुष्यको दुपहरके समय घरके बीच योग्यता विचार स्नेहवस्ति विधानके अनुसार निरूहणवस्ती देवे। और निरूहणवस्तीके कर्म

१ जलोदरके सिवाय दूसरे उदररोगमें निरूहवस्ती देवे।

होनेके अनन्तर वह निरूह बाहर आनेके लिये एक मुहूर्त (दो घडी) पर्यन्त घुटने ऊंचेकर बैठा रक्खे। यदि एक मुहूर्तमें भी निरूह बाहर नहीं निकले तो उसको शोधन करके बाहर निकालनेका यत्न करे ॥ ८-१० ॥

निरूह बाहर न आनेपर उसके शोधनकी औषधि।

**निरूहैरेव मतिमान् क्षारमूत्राम्लसैन्धवैः।**

अर्थ-निरूहवस्ती बाहर न निकलनेपर जवाखार गोमूत्र नींबूका रस अथवा जम्भीरीका रस और सैंधानमक इन चार औषधियोंको एकत्र करके गुदामें फिर निरूहवस्ती देवे तो निरूह बाहर निकले ॥

उत्तम निरूहवस्ती होनेके लक्षण।

**यस्य क्रमेण गच्छन्ति विट्पित्तकफवायवः ॥ ११ ॥**
**लाघवं चोपजायेत सुनिरूहं तमादिशेत्।**

अर्थ-जिस मनुष्यको निरूहवस्ती दी है उसका मल पित्त कफ और वायु ये क्रम करके गुदाके रास्ते बाहर आकर शरीरमें हलकापन आनेसे निरूहवस्तीका क्रम उत्तम हुआ जानना ॥ ११ ॥

जिसको निरूहवस्ती उत्तम न हुई हो उसके लक्षण।

**यस्य स्याद्वस्तिरल्पाल्पवेगो हीनमलानिलः ॥ १२ ॥**
**मूत्रार्तिजाड्यारुचिमान् दुर्निरूहं तमादिशेत्।**

अर्थ-निरूहवस्ती दी हो और उस वस्तीके बाहर आनेका वेग अल्प होवे इसीसे मल और वायु ये जितने बाहर आने चाहिये उतने नहीं आवें और मूत्रके स्थानपर पीडा, शरीरका भारी होना तथा अरुचि इतने लक्षण करके युक्त मनुष्यको निरूह वस्ती उत्तम नहीं हुई ऐसा जानना चाहिये ॥ १२ ॥

उत्तम निरूहवस्ती तथा स्नेहवस्तीके लक्षण।

**विविक्तता मनस्तुष्टिः स्निग्धता व्याधिनिग्रहः ॥ १३ ॥**
**आस्थापनस्नेहवस्त्योः सम्यग्दाने तु लक्षणम्।**
**अनेन विधिना युंज्यान्निरूहं वस्तिदानवित् ॥ १४ ॥**

अर्थ-रोगीके देहमें हलकापन, मनकी प्रसन्नता, चिकनापन तथा रोगका नाश ये उत्तम आस्थापन तथा स्नेहनवस्तीके लक्षण जानने। इसी विधिसे वस्तीकर्मके जाननेवाला वैद्य निरूहवस्ती देवे ॥ १३ ॥ १४ ॥

निरूहवस्ती कितनी वार देवे उसका प्रकार ।

**द्वितीयं वा तृतीयं वा चतुर्थं वा यथोचितम् । सस्नेह एकः पवने पित्ते द्वौ पयसा सह ॥१५॥ कषायकटुरूक्षाद्याः कफे कोष्णास्त्रयो मताः । पित्तश्लेष्मानिलाविष्टे क्षीरयूषरसैः क्रमात् ॥१६॥ निरूहं योजयित्वा च ततस्तदनुवासयेत् ।**

अर्थ–दो बार तीन वार अथवा चार वार जैसा दोष हो उसके अनुसार वैद्य निरूहवस्ति देवे । वादीके रोगमें स्नेहयुक्त वस्ति एक वार देवे, पित्तरोग हो तो दुग्धयुक्त निरूहवस्ति दो वार देवे । तथा कफरोग हो तो कषाय[1] कटु[2] और रूक्ष[3] इत्यादि पदार्थ एकत्र कर कुछ गरम करके तीन वार निरूहवस्ती देवे अर्थात् इन औषधोंकी तीन वार पिचकारी मारे अथवा पित्त और कफ वादी इन करके पीडित मनुष्य हो तो दूध, यूष[4] और मांसरस[5] इनकी क्रम करके निरूहवस्ति देवे, फिर अनुवासन वस्ति दे अर्थात् स्नेहकी पिचकारी मारे ॥ १५ ॥ १६ ॥

सुकुमार आदि मनुष्योंको निरूहवस्ति देना ।

**सुकुमारस्य वृद्धस्य बालस्य च मृदुर्हितः ॥ १७ ॥**
**वस्तिस्तीक्ष्णः प्रयुक्तस्तु तेषां हन्याद्बलायुषी ।**

अर्थ–सुकुमार ( नाजुक ) मनुष्य वृद्ध और बालक इनके हलकी पिचकारी मारे तथा इनके तीक्ष्ण वस्ति देनेसे इनके बलका और आयुका नाश होता है इसीसे सुकुमार आदिको तीक्ष्ण वस्ति न देवे ॥ १७ ॥

आदि, मध्य और अन्तमें वस्तिका देना ।

**दद्यादुत्क्लेशनं पूर्वं मध्ये दोषहरं ततः ॥ १८ ॥**
**पश्चात्संशमनीयं च दद्याद्वस्तिं विचक्षणः ।**

अर्थ–प्रथम दोषोको उत्क्लेशित करनेवाली ओषधियोंकी वस्ति देवे तथा मध्यमें दोषनाशक औषधोंकी वस्ति दे और अन्तमे संशमनीय अर्थात् अपने२ स्वस्थानमे दोष बैठ जावे ऐसी वस्ति दे अर्थात् ऐसी औषधोंकी पिचकारी मारे ॥ १८ ॥

---

१ हरड आमले इत्यादिक कषाय पदार्थ जानने । २ सोंठ मिरच आदि कटु पदार्थ जानने । ३ कुलथी जौ आदि रूक्ष पदार्थ इनका काढा करके वस्ती देवे । ४ वमनाध्यायमें वमन करनेके पश्चात् पथ्य कहा है–उस जगह टिप्पणीमें यूष कल्क, बनानेकी विधि लिखी है सो जाननी । ५ विरेचनाध्यायमें पथ्य कहा है उसी स्थानपर टिप्पणीमें मांसरसकी विधि कही है ।

उत्क्लेशन वस्ति।

एरंडबीजं मधुकं पिप्पली सैन्धवं वचा ॥ १९ ॥
हपुषाफलकल्कश्च वस्तिरुत्क्लेशनः स्मृतः ।

अर्थ–१ अरंडीके बीज २ महुआके फल ३ पीपल ४ सेंधानमक ५ वच और ६ हाऊबेरके पत्ते और मैनफल ये औषध समान भाग ले कूटके कल्क करे. फिर दोषोंको उत्क्लेशित करनेके लिये यह उत्क्लेशन वस्ति देवे ॥ १९ ॥

दोषहर वस्ति।

शताह्वा मधुकं बिल्वं कौटजं फलमेव च ॥ २० ॥
सकांजिकः सगोमूत्रो वस्तिर्दोषहरः स्मृतः ।

अर्थ–१ सौंवा २ मुलहटी ३ बेलगिरी और ४ इन्द्रजौ ये चार औषध समान भाग लेकर कांजीमें बारीक पीसकर और इसमें गोमूत्र मिलाकर गुदामें पिचकारी मारे तो वातादिक दोषोंका शमन होवे। इसको दोषहर वस्ति कहते हैं ॥ २० ॥

शोधनवस्ति।

शोधनद्रव्यनिक्वाथैस्तत्कल्कैः स्नेहसैन्धवैः ॥ २१ ॥
युक्त्या खजेन मथिता वस्तयः शोधनाः स्मृताः ।

अर्थ–निशोथादिक शोधन द्रव्योंके काढे करके और उन्हीं शोधनद्रव्योंका कल्क करे तथा सैंधानमक उस काढेमें मिलाकर युक्तिसे मथानीद्वारा मथ लेवे, फिर दोषोंके शोधन करनेको इसकी वस्ति देवे ॥ २१ ॥

दोषशमनवस्ति।

प्रियंगुर्मधुको मुस्ता तथैव च रसांजनम् ॥ २२ ॥
सक्षीरः शस्यते वस्तिर्दोषाणां शमने स्मृतः ।

अर्थ–१ फूलप्रियंगु २ महुआके फल ३ नागरमोथा और ४ रसौत इन चार औषधोंको समान भाग लेकर दूधमें बारीक पीस दोष शमन होनेके अर्थ वस्ति देवे अर्थात् पिचकारी मारे ॥ २२ ॥

लेखनवस्ति।

त्रिफलाक्वाथ-गोमूत्र-क्षौद्र-क्षारसमायुताः ॥ २३ ॥
ऊषकादिप्रतीवापैर्वस्तयो लेखनाः स्मृताः ।

अर्थ–त्रिफलेके काढेमें गोमूत्र, सहत और जवाखार मिलावे तथा ऊषकादिक गणकी औषधोंका चूर्ण मिलाके वस्ति देनेको लेखन ( कहिये मेदोरोगादिकोंका जो क्रशीकरण ) वस्ति कहते हैं ॥ २३ ॥

---

१ ऊषकादि सैंधव शीलाजतु काशीसद्वयहिंगूनि त्रिकटुश्चेति । २ मेदोरोगादिकृशीकरणात्।

बृंहणवस्ति ।

**बृंहणद्रव्यनिक्वाथः कल्कैर्मधुरकैर्युतः ॥ २४ ॥**
**सर्पिर्मांसरसोपेता वस्तयो बृंहणा मताः ।**

अर्थ--मूसली गोखरू और कौंचके बीज इत्यादिक बृंहण अर्थात् धातुवर्धक द्रव्यों-का काढा कर उसमें महुवेके पत्ते दाख और अनार इत्यादिक मधुर द्रव्योंका कल्क घी और मांसरस इन सबको डालके बृंहण होनेके वास्ते वस्ति देवे ॥ २४ ॥

पिच्छिल वस्ति ।

**बदर्यैरावती-शेलु-शालमली-धन्वनागराः ॥ २५ ॥**
**क्षीरसिद्धाः क्षौद्रयुक्ता नाम्ना पिच्छिलसंज्ञिताः ।**
**अजोरभ्रैणरुधिरैर्युक्ता देया विचक्षणैः ॥ २६ ॥**
**मात्रा पिच्छिलवस्तीनां पलैर्द्वादशभिर्मता ।**

अर्थ--१बेरकी छाल २नारंगी ३गोंदीकी छाल ४सेमरकी छाल ५धमासा और ६ सोंठ ये छः औषध समान भाग लेके दूधमें पीस उसमें बकरा मेंढा और हरिण इनका रुधिर मिलाके कुशल वैद्य दोष पहले होनेके वास्ते इसकी वस्ति देवे । इस वस्तिको पिच्छिलवस्ति कहते हैं । इस वस्तीकी मात्राका प्रमाण बारह पल है ॥ २५ ॥२६॥

निरूहणवस्ति ।

**दत्त्वादौ सैन्धवस्याक्षं मधुना प्रसृतिद्वयम् ॥२७॥ विनिर्मथ्य ततो दद्यात्स्नेहस्य प्रसृतिद्वयम् । एकीभूते ततः स्नेहे कल्कस्य प्रसृतिं क्षिपेत् ॥२८॥ संमूर्च्छिते कषाये तु चतुः-प्रसृतिसंमितम् । क्षिस्वा विमथ्य दद्याच्च निरूहं कुशलो भिषक् ॥ २९ ॥ वाते चतुष्पलं क्षौद्रं दद्यात्स्नेहस्य षट्-पलम् । पित्ते चतुःपलं क्षौद्रं स्नेहस्य च पलत्रयम् ॥ ३० ॥ कफे षट्पलिकं क्षौद्रं स्नेहस्यैव चतुष्पलम् ।**

अर्थ--प्रथम सेंधानमक एक कर्ष प्रमाण तथा सहत दो प्रसृति अर्थात् चार पल इन दोनोंको एकत्र मर्दन करे । फिर उसमें घी अथवा तैल छः पल डालके एकत्र

---

१ आढमल्लेन तु ऐरावती नागवल्लेति व्याख्यातम् ।

मिला दे। तब उस कल्ककी जो ओषधि कही हैं उनका कल्क करके उस पूर्वोक्त स्नेहमें मिलावे अथवा उस कल्ककी जो औषध औटाके काढा कर उस स्नेहमें मिलावे। कुशल वैद्य इसकी निरूहवस्ति देवे अर्थात् गुदामें पिचकारी मारे। इसे निरूहवस्ति-की साधारण विधि जाननी। विशेष विधि यदि वादीका रोग होवे तो चार पल सहत और स्नेह छः पल लेके एकत्र कर वस्ति देवे। पित्तरोग हो तो सहत ४ पल और स्नेह ३ पल ले एकत्र कर वस्ति देवे। तथा कफ रोग हो तो सहत छः पल तथा स्नेह चार पल इनको एकत्र करके वस्ति देवे॥ २७–३०॥

मधुतैलक वस्ति।

**एरण्डक्काथतुल्यांशं मधु तैलं पलाष्टकम्॥३१॥ शतपुष्पा-पलार्द्धेन सैन्धवार्धेन संयुतम्। मधुतैलकसंज्ञोऽयं वस्तिः खजविलोडितः॥ ३२॥ मेदोगुल्मकृमिप्लीहमलोदावर्तना-शनः। बलवर्णकरश्चैव वृष्यो बृंहणदीपनः॥ ३३॥**

अर्थ–अण्डकी जडका काढा ८ पल और सहत तथा तेल ये चार २ पल एवं सौंफ और सैंधानमक आधे २ पल ले, सबको एकत्र कर मथानीसे मथ लेवे, इसको मधुतैलक वस्ति कहते हैं। यह वस्ति देनेसे मेदोरोग, गुल्मरोग, कृमिरोग, प्लीहा, मल और उदावर्त्त वायु इनका नाश हो। तथा यह बल कांति स्त्रीविषयप्रीति तथा धातुओंकी वृद्धि इनको देती है और अग्निको प्रदीप्त करती है॥ ३१–३३॥

दीपनवस्ति।

**क्षौद्राज्यक्षीरतैलानां प्रसृतिः प्रसृतिर्भवेत्।**
**हपुषा सैन्धवाक्षांशौ वस्तिः स्याद्दीपनः परः॥ ३४॥**

अर्थ–सहत, घी और दूध ये दो दो पल लेवे, हाऊबेर और सैंधानमक ये दोनो औषध कर्षमात्र ले बारीक पीसके उसे सहत, घी और दूधमें भिगोके जठराग्नि प्रदीप्त होनेके अर्थ वस्ति देवे॥ ३४॥

युक्तरथ वस्ति।

**एरंडमूलनिःक्वाथो मधुतैलं ससैन्धवम्।**
**एष युक्तरथो वस्तिः सवचापिप्पलीफलः॥ ३५॥**

अर्थ–अरण्डकी जडका काढा करके उसमें सहत और तेल डाले। तथा सैंधान-मक वच पीपल और मैनफल ये चार औषध समान भाग लेकर चूर्ण करे। उनको

पूर्वोक्त काढेमें मिला गुदामें पिचकारी देवे । इसको युक्तरथ वस्ति कहते हैं, यह वस्ति सर्व रोगोंपर हित है ॥ ३५ ॥

सिद्धवस्ति ।

पञ्चमूलस्य निःक्वाथस्तैलं मागधिका मधु ।
ससैन्धवः समधुकः सिद्धवस्तिरिति स्मृतः ॥ ३६ ॥

अर्थ-बृहत्पञ्चमूलका काढा कर तेल पीपलका चूर्ण सहद सैंधानमक महुआकी लकडीके भीतरका गाभा अथवा मुलहटी ये सब उस काढेमें डालके वस्ति देवे । इसको सिद्धवस्ति कहते हैं । इसे सर्व रोगोंपर देवे ॥ ३६ ॥

वस्तिकर्ममें पथ्यापथ्य ।

स्नानमुष्णोदकैः कुर्याद्दिवास्वप्नमजीर्णताम् ।
वर्जयेदपरं सर्वमाचरेत्स्नेहवस्तिवत् ॥ ३७ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायामुत्तरखंडे चिकित्सास्थाने निरूहणवस्तिविधिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अर्थ-वस्तिकर्म किये हुए मनुष्यको गरम जलसे स्नान करावे, दिनमें सोने न दे अजीर्ण न होने देवे और आचरण स्नेह वस्तिके समान करे यह पथ्य है ॥ ३७ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतभावप्रकाशिका-भाषाटीकायां निरूहणवस्तिविधिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

# अथ सप्तमोऽध्यायः ७.



उत्तरवस्तिका क्रम ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि वस्तिमुत्तरसंज्ञितम् । द्वादशांगुलकं नेत्रं मध्ये च कृतकर्णिकम् ॥ १ ॥ मालतीपुष्पवृन्ताभं छिद्रं सर्षपनिर्गमम् ।

अर्थ-अब इसके उपरान्त उत्तरवस्तिका प्रमाण कहता हूं-बारह अंगुल लंबी नली हो उस नलीका मध्यभाग कमलपत्रकी कर्णिकाके समान होना चाहिये । और

वह नली मालतीके फूलके डंठरके समान मोटी हो, उसके छिद्रमें एक सरसों चली जावे इतना बडा होना चाहिये ॥ १ ॥

उत्तरवस्तिकी योजना करे कर ।

पञ्चविंशतिवर्षाणामधो मात्रा द्विकार्षिकी ॥ २ ॥
तदूर्ध्वं पलमानं च स्नेहस्योक्ता विचक्षणैः ।

अर्थ-मनुष्यकी अवस्था पच्चीस वर्ष होनेपर्यन्त विचक्षण वैद्य वस्तिमें स्नेहकी मात्रा दो कर्ष योजना करे । पच्चीस वर्षके पश्चात् १ पल देवे ॥ २ ॥

उत्तरवस्तिकी योजनाका प्रकार ।

अथास्थापनशुद्धस्य तृप्तस्य स्नानभोजनैः ॥ ३ ॥ स्थितस्य जानुमात्रेण पीठे त्विष्टशलाकया । स्निग्धया मेढ्रमार्गं च ततो नेत्रं नियोजयेत् ॥ ४ ॥ शनैः शनैर्घृताभ्यक्तं मेढ्ररन्ध्रेऽङ्गुलानि षट् । ततोऽवपीडयेद्वस्तिं शनैर्नेत्रं च निर्हरेत् ॥ ५ ॥
ततः प्रत्यागते स्नेहे स्नेहवस्तिक्रमो हितः ।

अर्थ-जो आस्थापन कहिये निरूहणवस्ति करके शुद्ध हुआ तथा स्नान और भोजन करके तृप्त हुआ है ऐसे मनुष्यको आसनपर घुटनोंके बल बिठाकर यथायोग्य सचिक्कण सलाई देवे । उस नलीपर घी लगाकर शिश्नमार्गमें योजना करके वस्तिका पीडन करे अर्थात् पिचकारी मारे, फिर उस नलीको धीरे २ बाहर निकाल लेवे । फिर उस स्नेहके बाहर आनेसे उत्तम वस्तिकर्म होता है । इस प्रकार स्नेहवस्तिका क्रम जानना चाहिये ॥ ३-५ ॥

स्त्रियोंके वस्ति देनेकी विधि ।

स्त्रीणां कनिष्ठिकास्थूलं नेत्रं कुर्याद्दशांगुलम् ॥ ६ ॥
मुद्गप्रवेशं योज्यं च योन्यंतश्चतुरंगुलम् ।
द्व्यंगुलं मूत्रमार्गे च सूक्ष्मं नेत्रं नियोजयेत् ॥ ७ ॥

अर्थ-स्त्रियोंके वस्ती देनेके वास्ते नेत्र कहिये वरतीकी नली छोटी उँगलीके बराबर मोटी हो, वह दश अंगुलकी लंबी तथा जिसमें मूँग चला जावे इतना छिद्र होना चाहिये । उस नलीको योनिके भीतर चार अंगुल प्रवेश करके फिर पिचकारी मारे । स्त्रियोंके मूत्रमार्गमें बहुत बारीक नली लगाके उस नलीके दो अंगुल मूत्रमार्गमें प्रवेश करके पिचकारी मारे ॥ ६ ॥ ७ ॥

बालकोंके वस्ति देनेका प्रमाण ।

मूत्रकृच्छ्रविकारेषु बालानां त्वेकमंगुलम् ।
शनैर्निष्कंपमाधेयं सूक्ष्मनेत्रं विचक्षणैः ॥ ८ ॥

अर्थ—बालकोंके मूत्रकृच्छ्रविकार होनेसे वैद्य निष्कंप अर्थात् हाथ न हिले इस प्रकारसे बारीक नलीकी योजना करके धीरे २ उस नलीको शिश्नके भीतर १ अंगुल प्रमाण प्रवेश करके पिचकारी मारे ॥ ८ ॥

स्त्रियोंके तथा बालकोंके वस्ति देनेके स्नेहकी मात्रा ।

योनिमार्गेषु नारीणां स्नेहमात्रा द्विपालिकी ।
मूत्रमार्गे पलोन्माना बालानां च द्विकार्षिकी ॥ ९ ॥
उत्तानायै स्त्रियै दद्यादूर्ध्वजान्वे विचक्षणः ।
अप्रत्यागच्छति भिषग्वस्तावुत्तरसंज्ञके ॥ १० ॥

अर्थ—स्त्रियोंके योनिमार्गमे वस्ति देनेमें स्नेहमात्रा अर्थात् स्नेहका प्रमाण दो पलका जानना, स्त्रियोंके मूत्रमार्गमें स्नेहमात्रा एक पलकी जाननी । बालकोंके दो कर्ष प्रमाण जाननी । उत्तरसंज्ञक वस्तिमें कुशल वैद्य उस स्त्रीको सीधी बैठाकर उसके घुटने ऊपरकोधर पिचकारी मारे, यदि स्नेह बाहर न आवे तो आगे लिखी विधि करे ॥ ९ ॥ १० ॥

शोधनद्रव्यकरके वस्तिका विधान ।

भूयो वस्तिं निदध्याच्च संयुक्तैः शोधनैर्गुणैः ।
फलवर्तिं निदध्याद्वा योनिमार्गे दृढां भिषक् ॥ ११ ॥
सूत्रैर्विनिर्मितां स्निग्धां शोधनद्रव्यसंयुताम् ।
दह्यमाने तथा वस्तौ दद्याद्वस्तिं विचक्षणः ॥ १२ ॥
क्षीरवृक्षकषायेण पयसा शीतलेन च ।
वस्तिः शुक्ररुजः पुंसां स्त्रीणामार्तवजा रुजः ।
हन्यादुत्तरवस्तिस्तु नोचितो मेहिनां क्वचित् ॥ १३ ॥

---

१ केचित् मेहशब्देन मधुमेहमित्याहुः ।

अर्थ-फिर शोधन द्रव्य ( एरंडादि तैलसमुदाय ) की योनिमार्गमें पिचकारी मारे अथवा एरंडबीजादिक जो औषधि हैं उनकी करडी बत्ती बनाके अथवा सूतकी बत्ती करके उस बत्तीमें अंडी आदि औषध लपेटकर योनिमें योजना करे। वस्तिमें दाह होनेसे गूलर बड ( आदि शब्दसे क्षीरवृक्ष ) उसका काढा करके वस्ति देवे अथवा शीतल दूधकी वस्ति देवे तो वस्तिस्थान शुद्ध होवे। यह वस्ति शुक्रधातु संबंधी जो पीडा होती है उसको तथा स्त्रियोंके रजोदर्शनसंबंधी जो पीडा होती हैं उसको दूर करती है तथा जिन मनुष्योंके प्रमेह है उनको उत्तरवस्तिसे कदाचित् लाभ नहीं होता ॥ ११-१३ ॥

वस्तिकर्मके उत्तम होनेके लक्षण।

**सम्यग्दत्तस्य लिंगानि व्यापदः क्रम एव च।**
**वस्तेरुत्तरसंज्ञस्य शमनं स्नेहवस्तिना ॥ १४ ॥**

अर्थ-उत्तरसंज्ञक वस्ति उत्तम होनेके लक्षण और दोष और उनकी शांति स्नेह-वस्तिके समान जाननी चाहिये ॥ १४ ॥

गुदामें फलवर्तीकी योजना।

**घृताभ्यक्ते गुदे क्षेप्या श्लक्ष्णा स्वांगुष्ठसंनिभा।**
**मलप्रवर्तिनी वर्तिः फलवर्तिश्च सा स्मृता ॥ १५ ॥**

**इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे सप्तमोऽध्यायः॥ ७ ॥**

अर्थ-गुदामें घी लगायके रोगीके अँगूठेके बराबर उत्तम करडी बत्ती करके एरंड बीजादिक रेचक औषधोंका उस बत्तीपर लेप करके दस्त होनेके वास्ते उसको गुदामें प्रवेश करे इसको फलवर्त्ती कहते हैं ॥ १५ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृत-भावप्रकाशिकाभाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

# अथ अष्टमोऽध्यायः ८.

नस्यविधि।

**नस्यं तत्कथ्यते धीरैर्नासाग्राह्यं यदौषधम्।**
**नावनं नस्यकर्मेति तस्य नामद्वयं मतम् ॥ १ ॥**

अर्थ-नाकमें डालनेकी औषधोको नस्य कहते हैं। उस नस्यके नावन और नस्यकर्म ऐसे दो नाम हैं ॥ १ ॥

बालकोंके वस्ति देनेका प्रमाण ।

मूत्रकृच्छ्रविकारेषु बालानां त्वेकमंगुलम् ।
शनैर्निष्कंपमाधेयं सूक्ष्मनेत्रं विचक्षणैः ॥ ८ ॥

अर्थ-बालकोंके मूत्रकृच्छ्रविकार होनेसे वैद्य निष्कंप अर्थात् हाथ न हिले इस प्रकारसे बारीक नलीकी योजना करके धीरे २ उस नलीको शिश्नके भीतर १ अंगुल प्रमाण प्रवेश करके पिचकारी मारे ॥ ८ ॥

स्त्रियोंके तथा बालकोंके वस्ति देनेके स्नेहकी मात्रा ।

योनिमार्गेषु नारीणां स्नेहमात्रा द्विपालिकी ।
मूत्रमार्गे पलोन्माना बालानां च द्विकार्षिकी ॥ ९ ॥
उत्तानायै स्त्रियै दद्यादूर्ध्वजान्वे विचक्षणः ।
अप्रत्यागच्छति भिषग्वस्तावुत्तरसंज्ञके ॥ १० ॥

अर्थ-स्त्रियोंके योनिमार्गमें वस्ति देनेमें स्नेहमात्रा अर्थात् स्नेहका प्रमाण दो पलका जानना, स्त्रियोंके मूत्रमार्गमें स्नेहमात्रा एक पलकी जाननी । बालकोंके दो कर्ष प्रमाण जाननी । उत्तरसंज्ञक वस्तिमें कुशल वैद्य उस स्त्रीको सीधी बैठाकर उसके घुटने ऊपरकोधर पिचकारी मारे, यदि स्नेह बाहर न आवे तो आगे लिखी विधि करे ॥ ९ ॥ १० ॥

शोधनद्रव्यकरके वस्तिका विधान ।

भूयो वस्तिं निदध्याच्च संयुक्तैः शोधनैर्गुणैः ।
फलवर्तिं निदध्याद्वा योनिमार्गे दृढां भिषक् ॥ ११ ॥
सूत्रैर्विनिर्मितां स्निग्धां शोधनद्रव्यसंयुताम् ।
दह्यमाने तथा वस्तौ दद्याद्वस्तिं विचक्षणः ॥ १२ ॥
क्षीरवृक्षकषायेण पयसा शीतलेन च ।
वस्तिः शुक्ररुजः पुंसां स्त्रीणामार्तवजा रुजः ।
हन्यादुत्तरवस्तिस्तु नोचितो मेहिनां[1] क्वचित् ॥ १३ ॥

---

१ केचित् मेहशब्देन मधुमेहमित्याहुः ।

अर्थ-फिर शोधन द्रव्य ( एरंडादि तैलसमुदाय ) की योनिमार्गमें पिचकारी मारे अथवा एरंडबीजादिक जो औषधि हैं उनकी करडी बत्ती बनाके अथवा सूतकी बत्ती करके उस बत्तीमें अंडी आदि औषध लपेटकर योनिमें योजना करे। वस्तिमें दाह होनेसे गूलर बड ( आदि शब्दसे क्षीरवृक्ष ) उनका काढा करके वस्ति देवे अथवा शीतल दूधकी वस्ति देवे तो वस्तिस्थान शुद्ध होवे। यह वस्ति शुक्रधातु संबंधी जो पीडा होती है उसको तथा स्त्रियोंके रजोदर्शनसंबंधी जो पीडा होती है उसको दूर करती है तथा जिन मनुष्योंके प्रमेह है उनको उत्तरवस्तिसे कदाचित् लाभ नहीं होता ॥ ११-१३ ॥

वस्तिकर्मके उत्तम होनेके लक्षण ।

**सम्यग्दत्तस्य लिंगानि व्यापदः क्रम एव च ।**
**वस्तेरुत्तरसंज्ञस्य शमनं स्नेहवस्तिना ॥ १४ ॥**

अर्थ-उत्तरसंज्ञक वस्ति उत्तम होनेके लक्षण और दोष और उनकी शांति स्नेह-वस्तिके समान जाननी चाहिये ॥ १४ ॥

गुदामें फलवर्तीकी योजना ।

**घृताभ्यक्ते गुदे क्षेप्या श्लक्ष्णा स्वांगुष्टसंनिभा ।**
**मलप्रवर्तिनी वर्तिः फलवर्तिश्च सा स्मृता ॥ १५ ॥**

**इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥**

अर्थ-गुदामें घी लगायके रोगीके अँगूठेके बराबर उत्तम करडी बत्ती करके एरंड बीजादिक रेचक औषधोंका उस बत्तीपर लेप करके दस्त होनेके वास्ते उसको गुदामें प्रवेश करे इसको फलवर्त्ती कहते हैं ॥ १५ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृत-भावप्रकाशिकाभाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

---

# अथ अष्टमोऽध्यायः ८.

नस्यविधि ।

**नस्यं तत्कथ्यते धीरैर्नासाग्राह्यं यदौषधम् ।**
**नावनं नस्यकर्मेति तस्य नामद्वयं मतम् ॥ १ ॥**

अर्थ-नाकमें डालनेकी औषधोंको नस्य कहते हैं। उस नस्यके नावन और नस्यकर्म ऐसे दो नाम हैं ॥ १ ॥

नस्यके भेद।

**नस्यभेदो द्विधा प्रोक्तो रेचनं स्नेहनं तथा ।**
**रेचनं कर्षणं प्रोक्तं स्नेहनं बृंहणं मतम् ॥ २ ॥**

अर्थ-इस नस्यके भेद दो हैं-एक रेचक और एक स्नेहन। तिनमें रेचन नस्य वातादि दोषोंको छेदन करता है और जो स्नेहन है वह धातुवृद्धि करता है ॥ २ ॥

नस्यका काल।

**कफपित्तानिलध्वंसे पूर्वमध्यापराह्णके ।**
**दिनस्य गृह्यते नस्यं रात्रावप्युत्कटे गदे ॥ ३ ॥**

अर्थ-कफके नाश करनेको नस्य प्रातःकाल देवे पित्तके नाश करनेको दो प्रहर दिन चढे नस्य देवे तथा वायुको नाश करनेको सायंकालमें नस्य देना। यदि रोग अत्यंत प्रबलताके साथ होवे तो रात्रिके समय नस्य देवे ॥ ३ ॥

नस्यका निषेध।

**नस्यं त्यजेद्भोजनांते दुर्दिने चापतर्पणे। तथा नवप्रतिश्यायी गर्भिणी गरदूषितः ॥४॥ अजीर्णी दत्तवस्तिश्च पित्तस्नेहोदकासवः ॥ क्रुद्धः शोकाभिभूतश्च तृषार्तो वृद्धबालकौ ॥५॥ वेगावरोधी स्नातश्च स्नातुकामश्च वर्जयेत् ।**

अर्थ-भोजन करनेके पश्चात् नस्य न लेवे। जिस दिन आकाश बद्दलोंसे घिरा होवे उस दिन नस्य न ले। लंघन करके जिसको नवीन पीनसका रोग होवे, गर्भिणी स्त्री, विषदोष करके और अजीर्ण करके पीडित मनुष्य, जिसके वस्तिप्रयोग किया हो, घी तेल इत्यादि स्नेह जल और मद्य इनका सेवन करनेवाला मनुष्य, क्रोध, शोक, तथा तृषासे पीडित, वृद्ध, बालक, वात मूत्र और मल इनका निरोध करनेवाला मनुष्य, स्नान किया हुआ अथवा जिसको स्नान करना है वह इतने मनुष्योंको नस्य नहीं देना चाहिये ॥ ४ ॥ ५ ॥

नस्यकर्ममें योग्यायोग्य रोगी।

**अष्टवर्षस्य बालस्य नस्यकर्म समाचरेत् ।**
**अशीतिवर्षादूर्ध्वं च नावनं नैव दीयते ॥ ६ ॥**

अर्थ-आठ वर्षके बालकके नस्य कर्म करे और अस्सीवर्षके उपरान्त अवस्थावाले मनुष्यके नस्यकर्म नहीं करना ॥ ६ ॥

**[illegible]रेचनं नस्यं ग्राह्यं तैलैः सुतीक्ष्णकैः ।**
**[illegible]णभेषजसिद्धैर्वा स्नेहैः क्वाथै रसैस्तथा ॥ ७ ॥**

१ वाग्भटेन त्रैविध्यमुक्तम्। रविगुप्तादौ पंचभेदाः। काश्मीरास्तु षट्प्रकारं पठन्ति तेऽप्यत्रैवान्तर्भावनीयाः।

अर्थ–विरेचन नस्य, अजमायन, राई आदिका तीक्ष्ण तेल काढके देना चाहिये। अथवा तीक्ष्ण ओषधोंकेही साथ तेल सिद्ध करके अथवा तीक्ष्ण औषधोंका क्वाथ करके अथवा रसमें स्नेह सिद्ध करके नस्य देवे ॥ ७ ॥

रेचक नस्यका प्रमाण।

**नासिकारन्ध्रयोरष्टौ षट् चत्वारश्च बिंदवः ॥ ८ ॥**
**प्रत्येकं रेचने योज्या मुख्यमध्यांत्यमात्रया।**

अर्थ–रेचनमें नाकके दोनों छिद्रों ( नथनों ) में औषधकी आठ बिंदु डालना उत्तम मात्रा है, छः बिंदु ( बूँद ) डालना मध्यम मात्रा जानना। और चार बिंदु डालना कनिष्ठ मात्रा कही जाती है ॥ ८ ॥

नस्यकर्ममें औषधका प्रमाण।

**नस्यकर्मणि दातव्यं शाणैकं तीक्ष्णमौषधम् ॥ ९ ॥ हिंगु स्याद्यवमात्रं तु माषैकं सैन्धवं स्मृतम्। क्षीरं चैवाष्टशाणं स्यात् पानीयं च त्रिकार्षिकम् ॥ १० ॥ कार्षिकं मधुरं द्रव्यं नस्यकर्मणि योजयेत्।**

अर्थ–नस्यकर्ममें तीक्ष्ण औषध हो तो एक शाण डाले। हींग एक यवप्रमाण, सेंधानमक २ मासे, दूध आठ शाण, जल तीन कर्ष, तथा खांड अनार इत्यादिक मधुर द्रव्य हों वे प्रत्येक एक कर्ष प्रमाण डालने चाहिये। इस प्रकार औषधोंकी योजना करे ॥ ९ ॥ १० ॥

विरेचन नस्यके दूसरे दो भेद।

**अवपीडः प्रधमनं द्वौ भेदावपरौ स्मृतौ ॥ ११ ॥**
**शिरोविरेचनस्थाने तौ तु देयौ यथायथम् ॥**

अर्थ–उस विरेचन नस्यके दो भेद हैं। एक अवपीड तथा एक प्रधमन। इन दोनोंकी मस्तकके रेचन करनेमें योजना करे ॥ ११ ॥

अवपीडन और प्रधमनके लक्षण।

**कल्कीकृतादौषधाद्यः पीडितो निःसृतो रसः ॥ १२ ॥**
**सोऽवपीडः समुद्दिष्टस्तीक्ष्णद्रव्यसमुद्भवः।**
**षडङ्गुला द्विवक्त्रा या नाडी चूर्णं तया धमेत् ॥१३॥**
**तीक्ष्णं कोलमितं वक्त्रवातैः प्रधमनं हि तत्।**

अर्थ–तीक्ष्ण[1] औषधको पीसके कल्क करके निचोड लेवे उस निचुडे हुए रसको अवपीड कहते हैं, छः अंगुल लंबी और दो मुखकी नली बनाकर उसमें तीक्ष्णचूर्ण १ कोल डालके मुखकी पवनसे नाकमें फूंक देवे। इसको प्रधमनसंज्ञक नस्य कहते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

१ सोंठ मिरच वच इत्यादिक तीक्ष्ण औषधोंको जलमें पीसे।

रेचन और स्नेहनयोग्य प्राणी।

**ऊर्ध्वजत्रुगते रोगे कफजे स्वरसंक्षये॥ १४ ॥ अरोचके प्रतिश्याये शिरःशूले च पीनसे। शोफापस्मारकुष्ठेषु नस्यं वैरेचनं हितम्॥ १५ ॥ भीरुस्त्रीकृशबालानां नस्यं स्नेहेन दीयते।**

अर्थ–ऊर्ध्वजत्रुगत रोग, कफसंबंधी स्वरका क्षय, अरुचि, प्रतिश्याय,मस्तकशूल, पीनस, सूजन, अपस्मार और कुष्ठ इन रोगोंमें रेचक नस्य हितकारी जानना, डरा हुआ मनुष्य, स्त्री, कृश और बालक इनको स्नेहयुक्त नस्य देवे॥ १४ ॥ १५ ॥

अवपीडननस्ययोग्य प्राणी।

**गलरोगे सन्निपाते निद्रायां विषमज्वरे॥ १६ ॥**
**मनोविकारे कृमिषु युज्यते चावपीडनम्।**

अर्थ–गलरोग, सन्निपात, अत्यन्त निद्रा, विषमज्वर, मनके विकार और कृमिरोग इनमें अवपीडन नस्य देना चाहिये॥ १६ ॥

प्रधमननस्य योग्य प्राणी।

**अत्यन्तोत्कटदोषेषु विसंज्ञेषु च दीयते॥ १७ ॥**
**चूर्णं प्रधमनं धीरैस्तद्धि तीक्ष्णतरं यतः।**

अर्थ–अत्यन्त उत्कट दोष(मूर्छा अपस्मारादिक तथा संज्ञा नष्ट हुई हो ऐसे संन्यासादिक रोग) इनमें अत्यन्त तीक्ष्ण ऐसी प्रधमन चूर्ण नस्य देना चाहिये॥ १७ ॥

रेचक संज्ञक नस्य।

**नस्यं स्याद्गुडशुण्ठीभ्यां पिप्पल्या सैन्धवेन च॥ १८ ॥**
**जलपिष्टेन तेनाक्षिकर्णनासाशिरोगदाः।**
**हनुमन्यागलोद्भूता नश्यंति भुजपृष्ठजाः॥ १९ ॥**

अर्थ–सोंठको गरम जलमें औटाकर उसमें गुड मिलाके नासिकामें डाले। तथा पीपल और सैंधानमक इनको गरम जलमें औटाकर नस्य देवे अर्थात् नाकमें डाले तो नेत्र कान नाक मस्तक ठोडी गर्दन भुजा ( हाथ ) और पीठ इनकी पीडाको दूर करे॥ १८ ॥ १९ ॥

रेचन नस्यका दूसरा प्रकार।

**मधूकसारकृष्णाभ्यां वचामरिचसैन्धवैः।**
**नस्यं कोष्णजले पिष्टं दद्यात्संज्ञाप्रबोधनम्॥ २० ॥**
**अपस्मारे तथोन्मादे सन्निपातेऽपतन्त्रके।**

अर्थ–महुआकी लकडीके भीतरका भाग पीपल वच काली मिरच और सैंधानमक इन सब औषधोंको गरम जलमें पीस नस्य देवे तो मृगी उन्माद सन्निपात और अपतन्त्रक वायु इनसे नष्ट हुई चेष्टा दूर होके मनुष्य सावधान होजाता है॥ २० ॥

रेचननस्यका तीसरा प्रकार।

**सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्षपा कुष्ठमेव च ॥ २१ ॥**
**बस्तमूत्रेण पिष्टानि नस्यं तन्द्रानिवारणम्।**

अर्थ—सैंधानमक सफेद मिरच सफेदसरसों और कूट ये औषध बकरेके मूत्रमें पीस नस्य देवे तो तंद्रा (और पूर्वोक्त अपस्मारादिक रोग) दूर होवे ॥ २१ ॥

प्रधमनसंज्ञक नस्य।

**रोहीतमत्स्यपित्तेन भावितं सैन्धवं वचा ॥ २२ ॥**
**मरिचं पिप्पली शुण्ठी कंकोलं लशुनं पुरम्।**
**कट्फलं चेति तच्चूर्णं देयं प्रधमनं बुधैः ॥ २३ ॥**

अर्थ—सैंधानमक वच काली मिरच पीपल सोंठ कंकोल लहसुन गूगल और कायफर इनका चूर्ण कर रोहूमछलीके पित्तेकी इस चूर्णमें पुट देवे। जब सूख जावे तब पूर्वोक्त प्रधमननलीमें इस चूर्णको भरके नस्य देवे तो पूर्वोक्त तंद्रादिक दोष दूर होवें। इस चूर्णको प्रधमन कहते हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥

बृंहणनस्यकी कल्पना।

**अथ बृंहणनस्यस्य कल्पना कथ्यतेऽधुना। मर्शश्च प्रतिमर्शश्च द्वौ भेदौ स्नेहने मतौ ॥२४॥ मर्शस्य तर्पणी मात्रा मुख्या शाणैः स्मृताऽष्टभिः। मध्यमा च चतुःशाणैर्हीना शाणमिता स्मृता ॥२५॥ एकैकस्मिंस्तु मात्रेयं देया नासापुटे बुधैः। मर्शस्य द्वित्रिवेलं वा वीक्ष्य दोषबलाबलम् ॥ २६ ॥ एकांतरं द्व्यन्तरं वा नस्यं दद्याद्विचक्षणः। त्र्यहं पंचाहमथवा सप्ताहं वा सुयंत्रितम् ॥ २७ ॥**

अर्थ—बृंहण (धातुको बढानेवाली) नस्यकी कल्पना कहता हूं—बृंहणके नस्यके दो भेद हैं मर्श प्रतिमर्श, ये स्नेहन विषयमें[1] लेनी चाहिये। मर्शनस्यकी तर्पणी[2] मात्रा आठ शाणकी मुख्य होती है। चार शाणकी मध्यम तथा एक शाणकी हीन मात्रा जाननी चाहिये। उस मात्राको दोषोंका बलाबल विचार कर देवे। मनुष्यको वस्त्रादिकसे लपेटके एक एक पुडिया नाकमें दो अथवा तीन वार एक दिन बीचमें देकर अथवा दो दिन तीन दिनको बीच देकर, पांचवें दिन अथवा सातवें दिन नस्य देवे ॥ २४–२७ ॥

नस्य अधिक होनेका यत्न।

**मर्शोऽशिरोविरेके च व्यापदो विविधाः स्मृताः॥ दोषोत्क्लेशात्**

१ धातुके बढानेके विषयमें। २ धात्वादिको तृप्ति करनेवाली मात्राको तर्पणी कहते हैं।

क्षयाच्चैव विज्ञेयास्ता यथाक्रमम् ॥ २८ ॥ दोषोत्क्लेशनिमित्तासु युंज्याद्वमनशोधनम् । अथ क्षयनिमित्तासु यथास्वं बृंहणं मतम् ॥ २९ ॥

अर्थ-मर्शनस्यकी मात्रा धात्वादिकोंकी तृप्ति करनेवाली है. उसको आधिक्य होकर दोषोंका कोप होनेसे तथा मस्तकके विरेचन विषयमें विरेचनसंज्ञक नस्यकी मात्राके आधिक्यके कारण मस्तकमेंसे मेदादिकोंकेक्षय होनेसे अनेक प्रकारकी पीडा होती है । तिनमें जिस दोषके उत्क्लेश निमित्त पीडा हो उसके दूर करनेको वमनकर्ता अथवा दस्त करनेवाली औषध देवे और क्षय निमित्तवाली पीडाको दूर करनेके लिये बृंहण औषध नाकमें अथवा पेटमें प्रयोग करे ॥ २८ ॥ २९ ॥

बृंहणनस्ययोग्य प्राणी ।

शिरोनासाक्षिरोगेषु सूर्यावर्तार्द्धभेदके ॥ दन्तरोगे बले हीने मन्याबाह्वंसजे गदे ॥ ३० ॥ मुखशोषे कर्णनादे वातपित्तगदे तथा ॥ अकालपलिते चैव केशश्मश्रुप्रपातने ॥ ३१ ॥ युज्यते बृंहणं नस्यं स्नेहैर्वा मधुरद्रवैः ।

अर्थ-मस्तकरोग, नासारोग, नेत्ररोग, सूर्यावर्त्त रोग, अर्धावभेदक ( आधाशीशी), दांतोंका रोग, दुर्बल मनुष्यकी गर्दन, कंधा और बाहु इनमें जो पीडा होती है वह, मुखशोष, कर्णनादरोग, वातपित्तसंबंधी विकार, विना समय मनुष्यके सफेद बालोंके होनेको पलित रोग कहते हैं वह तथा मस्तकके बाल और डाढी मूछोके बाल झडकर गिर पडे वह इंद्रलुप्त रोग, इन सर्व रोगोंमें घृत आदि स्निग्ध पदार्थ तथा खाँड आदि मधुर पदार्थ इन करके बृंहण नस्यकी योजना करे ॥ ३० ॥ ३१ ॥

बृंहण नस्य ।

सशर्करं पयःपिष्टं भृष्टमाज्येन कुंकुमम् ॥ ३२ ॥ नस्यप्रयोगतो हन्याद्वातरक्तभवा रुजः । भूशंखाक्षिशिरःकर्णसूर्यावर्तार्धभेदकान् ॥ ३३ ॥ नस्यं स्याद्बुतैलेन तथा नारायणेन वा ॥ माषादिना वापि सर्पिस्तत्तद्भेषजसाधितैः ॥ ३४ ॥ तैलं कफे स्याद्वाते च केवले पवने वसा । दद्यान्नस्यं सदा पित्ते सर्पिर्मज्जानमेव च ॥ ३५ ॥

अर्थ-दूधमें खाँड डालके नस्य देवे । अथवा घीमें केशर डालके नस्य दे या केशर और खाँडको दूधमें घिसकर घीमें पका नस्य दे । इससे वातरक्तकी पीडा दूर हो अंडीके तेल करके अथवा नारायण तेल करके अथवा माषादि तेल करके

अथवा उन २ औषधों करके सिद्ध किये हुए घृतकी नस्य देनेसे भ्रकुटी शंख(कनपटी) नेत्र मस्तक कान इनके संबंधी रोग, तथा सूर्यावर्त्तरोग और आधाशीशी ये रोग दूर होवें । कफरोगपर तेलकी नस्य दे, वातरोगपर वसा ( चरबी ) की नस्य देवे । और केवल पित्तरोगपर घी और मज्जा इनकी नस्य देनी चाहिये ॥ ३२-३५ ॥

पक्षाघातादिकरोगोंपर नस्य ।

माषात्मगुप्तारास्नाभिर्बलारुबुकरोहिषैः ।
कृतोऽश्वगन्धया क्वाथो हिंगु-सैन्धवसंयुतः ॥ ३६ ॥
कोष्णनस्यप्रयोगेण पक्षाघातं सकंपनम् ।
जयेदर्दितवातं च मन्यास्तंभापबाहुकौ ॥ ३७ ॥

अर्थ-१ उडद २ कौंचके बीज ३ रास्ना ४ गंगेरनकी जड ५ अरंडकी जड ६ रोहिष तृण और ७ असगंध इन सात औषधोंका काढा करके उसमें भुनी हुई हींग और सैंधानमक डालकर उस गरम २ जलकी नस्य देवे तो कंपसहित पक्षाघातवायु, अर्दित ( लकवा ), वायु, गरदनकी नसका जकडना और अपबाहुक ये सर्व दूर हों ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

प्रतिमर्शनस्यकी दो बिन्दुरूप मात्रा ।

प्रतिमर्शस्य मात्रा तु द्विद्विबिंदुमिता मता ।
प्रत्येकशो नयनयोः स्नेहेनेति विनिश्चितम् ॥ ३८ ॥

अर्थ-घृत आदिशब्दसे जो स्निग्ध पदार्थ है उनके दो दो बिन्दु एक एक नयनमें डालते हैं उसे प्रतिमर्शनस्यकी दो बिन्दुरूप मात्रा जाननी चाहिये ॥ ३८ ॥

बिन्दुसंज्ञक मात्रा ।

स्नेहे ग्रन्थिद्वयं यावन्निमग्ना चोद्धृता ततः ।
तर्जनीयं स्रवेद्बिन्दुं सा मात्रा बिंदुसंज्ञिता ॥ ३९ ॥
एवंविधैर्बिंदुसंज्ञैरष्टभिः शाण उच्यते ।
स देयो मर्शनस्ये तु प्रतिमर्शो द्विबिंदुकः ॥ ४० ॥

अर्थ-घृत तेल ( आदिशब्दसे जो स्निग्ध पदार्थ ) उनमें दो पेरुआ डूबे इस प्रकार तर्जनी उँगलीको डुबोके बाहर निकाले उस पेरुएसे जो बिन्दु टपके उसको बिंदुमात्रा कहते हैं । इस प्रकार बिंदुसंज्ञक आठ मात्राओंका एक शाण होता है । वह एक शाण मात्रा मर्शनस्यमें देवे और प्रतिमर्शनस्यमें दो बिंदु मात्र देनी चाहिये ॥ ३९॥४० ॥

प्रतिमर्शनस्यके समय ।

समयाः प्रतिमर्शस्य बुधैः प्रोक्ताश्चतुर्दश । प्रभाते दंतकाष्ठान्ते गृहान्निर्गमने तथा ॥ ४१ ॥ व्यायामाध्वव्यवायांते

विण्मूत्रांतेऽञ्जने कृते । कवलांते भोजनांते दिवास्वप्नोत्थिते तथा ॥४२॥ वमनांते तथा सायं प्रतिमर्शः प्रयुज्यते ।

अर्थ-प्रतिमर्शनस्यके समय चौदह हैं, १ प्रातःकाल २ मुख धोनेपर ३ घरसे बाहर निकलते समय ४ परिश्रमके अंतमें ५ मार्ग चलकर आनेपर ६ मैथुनके अंतमें ७ मलत्यागके अंतमें ८ मूत्रत्यागके अंतमें ९ नेत्रोंमें अंजन आंजनेके पश्चात् उठकर १० ग्रासके अंतमें ११ भोजनके अन्तमें १२ दिनमें सोनेके पश्चात् उठकर १३ वमनके अंतमें और १४ सायंकालमें । इतने समयोंमें प्रतिमर्श नस्य देनी चाहिये ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

प्रतिमर्शनस्य करके तृप्तके लक्षण ।

ईषदुच्छिङ्कनात्स्नेहो यदा वक्त्रं प्रपद्यते ॥ ४३ ॥
नस्ये निषिक्तं तं विद्यात्प्रतिमर्शप्रमाणतः ।
उच्छिन्दन्न पिबेच्चैतन्निष्ठीवेन्मुखमागतम् ॥ ४४ ॥

अर्थ-नस्य देनेपर अल्प छींक आकर उस स्नेहके मुखमें उतरनेसे वह मनुष्य प्रतिमर्शनस्य करके तृप्त हुआ ऐसा जानना । वह मनुष्य मुखमें उतरे हुए स्नेहको निगले नहीं किन्तु खखारके द्वारा बाहर थूक देवे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

प्रतिमर्शके योग्य रोगी ।

क्षीणे तृष्णास्यशोषार्ते बाले वृद्धे च युज्यते ।
प्रतिमर्शेन शाम्यंति रोगाश्चैवोर्ध्वजत्रुजाः ॥ ४५ ॥
वलीपलितनाशश्च बलमिन्द्रियजं भवेत् ।

अर्थ-धातुक्षीण मनुष्य तथा तृष्णा करके तथा मुखशोष करके पीडित मनुष्य बाल और वृद्ध इनको प्रतिमर्शसंज्ञक नस्य देवे। ऊर्ध्वजत्रुके रोग अर्थात् गरदनके ऊपरके रोग तथा त्वचाकी शिथिलता एवं अकालमें बालोका सफेद होना अर्थात् पलितरोग ये सम्पूर्ण रोग प्रतिमर्शनस्य करके दूर होते हैं तथा चक्षुरादि इन्द्रियोंमें बल आता है ॥ ४५ ॥

पलित होनेमें नस्य ।

बिभीतनिम्बगम्भारी शिवाशेलुश्च काकिनी ॥ ४६ ॥
एकैकं तैलनस्येन पलितं नश्यति ध्रुवम् ।

अर्थ-बहेडा नीमकी छाल कंभारी हरड गोंदी और कौआटोडी इनके बीजोंके भीतरकी मज्जाका तेल पृथक् २ निकालके एक एककी पृथक् २ नस्य दे तो मनुष्यके अकालमे जो सफेद बाल होजाते है सो तरुणावस्थाके समान काले हो जावें ॥ ४६ ॥

नस्यकी विधि ।

अथ नस्यविधिं वक्ष्ये नस्यग्रहणहेतवे ॥४७॥ देशे वातरजोमुक्ते कृतदंतनिघर्षणम् । विशुद्धं धूमपानेन स्विन्नभालं गलं

तथा ॥ ४८ ॥ उत्तानशायिनं किञ्चित्प्रलंबशिरसं नरम् । आस्ताणहस्तपादं च वस्त्राच्छादितलोचनम् ॥४९॥ समुन्नमितनासाग्र वैद्यो नस्येन योजयेत् । कोष्णमच्छिन्नधारं च हेमताराादिशुक्तिभिः ॥ ५० ॥ शुक्त्या वा यन्त्रयुक्त्या वा प्लोतैर्वा नस्यमाचरेत् ।

अर्थ—नस्य देनेमें नस्यकी विधि कहते हैं—जिस स्थानमें पवन तथा धूली न हो उसमें मनुष्यको दांतन और धूमपान कराके कपाल और गलेको शुद्ध कर पसीने युक्त करे फिर चित्त लेटाके मस्तकको कुछ थोडा लंबा कर हाथ पैरोंको लंबे पसार कपडेसे नेत्रोंको ढक देवे । फिर वैद्य इस प्राणीकी नाकको कुछ ऊँची करके उसमें नस्यकी औषधको गरम २ सुहाती धार एकसी लगातार डाले । परन्तु वह नस्य सोनेके पात्रमें अथवा चांदीके पात्रमें करके गेरे अथवा सीप और कोडी अथवा फोहे ( कपडेके टुकडे ) इत्यादि करके नाकमें डाले ॥ ४७–५० ॥

नस्यके पश्चात् नियम ।

नस्येष्वासिच्यमानेषु शिरो नैव प्रकम्पयेत् ॥ ५१ ॥ न कुप्येन्न प्रभाषेत नोच्छिन्देन्न हसेत्तथा । एतैर्हि विहितः स्नेहो नैवान्तः सम्प्रपद्यते ॥५२॥ ततः कासप्रतिश्यायशिरोऽक्षिगदसंभवः ।

अर्थ—मनुष्य नस्य लेनेके समय मस्तकको न हिलावे, क्रोध न करे, किसीसे बोले नहीं, छींके नहीं और हँसे नहीं । यदि इस प्रकार आचरण करे तो वह स्नेह मस्तकके भीतर अच्छी तरह नहीं जाता, तथा उससे खांसी पीनस मस्तक तथा नेत्र इनमें पीडा इत्यादि उपद्रव होते हैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

नस्य सन्धारणका प्रकार ।

शृङ्गाटकमभिप्लाव्य स्थापयेन्न गिलेद्द्रवम् ॥५३॥ पञ्चसप्त दशैव स्युर्मात्रा नस्यस्य धारणे । उपविश्याथ निष्ठीवेन्नासावक्त्रगतं द्रवम् ॥५४॥ वामदक्षिणपार्श्वाभ्यां निष्ठीवेत्संमुखे न हि ।

अर्थ—मनुष्यको नस्य देकर शृङ्गाटक कहिये नासावंशकी पुट भ्रूमध्य देशमें चतुष्पद है उस जगह उस नस्य करके भिगोकर उस नस्यको रख देवे । उसका कारण पांच मात्रा[1] सात मात्रा अथवा दश मात्रा कालपर्यंत करे पश्चात् बैठकर नाकसे मुखमें उतरे हुए द्रव्यको खखारकर बांई तरफ अथवा दहनी तरफ थूक देवे सम्मुख न थूकना चाहिये ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

१ अनुवासन वस्तिके अध्यायमें मात्राका प्रमाण लिखा है उससे जान लेना ।

नस्यकर्ममें त्याज्य कर्म ।

**नस्ये नीते मनस्तापं रजः क्रोधं च संत्यजेत् ॥ ५५ ॥**
**शयीत निद्रां त्यक्त्वा च उत्तानो वाक्छतं नरः ।**
**तथा वैरेचनस्यान्ते धूमो वा कवलोऽहितः ॥ ५६ ॥**

अर्थ-नस्यकर्म होनेके पश्चात् मनको संताप न आने देवे, जहां धूल उडती हो वहांपर बैठे नहीं, क्रोध न करे, जिस प्रकार नींद न आवे इस प्रकारसे सौ वाक् पर्यंत सीधा ( चित ) लेटे विरेचन नस्यके अन्तमें धूम और ग्रास नहीं देना चाहिये ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

नस्यमें शुद्धादिक भेद ।

**नस्ये त्रीण्युपदिष्टानि लक्षणानि समासतः ।**
**शुद्धिहीनातियोगानि विशेषाच्छास्त्रचिन्तकैः ॥ ५७ ॥**

अर्थ-नस्यमें शुद्धिलक्षण हीनयोग लक्षण और अतियोग लक्षण ये तीन लक्षण विशेष करके शास्त्रज्ञ वैद्योंने कहे हैं वह वक्ष्यमाण संक्षेप करके कहता हूं ॥ ५७ ॥

उत्तम शुद्धिके लक्षण ।

**लाघवं मनसः शुद्धिः स्रोतसां व्याधिसंक्षयः ।**
**चित्तेन्द्रियप्रसादश्च शिरसः शुद्धिलक्षणम् ॥ ५८ ॥**

अर्थ-नस्य करके मस्तककी उत्तम शुद्धि होनेसे शरीर हलका मन्यानाडीकी शुद्धि मुख नाक कान और गुदा इत्यादि स्रोतों ( बाहरके छिद्रों ) का शोधन हो शिरोरोगादिक दूर हों अन्तःकरण तथा चक्षुरादि इन्द्रियें ये प्रसन्न रहैं ॥ ५८ ॥

हीन शुद्धिके लक्षण ।

**कण्डूपदेहो गुरुता स्रोतसां कफसंस्रवः ।**
**मूर्ध्नि हीनविशुद्धे तु लक्षणं परिकीर्तितम् ॥ ५९ ॥**

अर्थ-नस्य करके मस्तककी अल्प शुद्धि होनेसे देहमें खुजली चले तथा देहका चिकट जाना ये लक्षण हों । एवं स्रोत ( मुखनासिका आदि बाहर मार्ग ) से कफका स्राव हो ॥ ५९ ॥

अतिशुद्धिके लक्षण ।

**मस्तुलुंगागमो वातवृद्धिरिन्द्रियविभ्रमः ।**
**शून्यता शिरसश्चापि मूर्ध्नि गाढं विरेचिते ॥ ६० ॥**

अर्थ-नस्यद्वारा मस्तककी अत्यन्त शुद्धि होनेसे मस्तुलुंग ( मस्तकके भीतरका मगज ) का नासिका आदिके द्वारा स्राव होने लगे, वायुकी वृद्धि हो, इन्द्रियोंको विभ्रम हो तथा मस्तकमें शून्यता हो ॥ ६० ॥

हीन शुद्ध्यादिकोंमें चिकित्सा।

**हीनातिशुद्धे शिरसि कफवातघ्नमाचरेत्।**
**सम्यग्विशुद्धे शिरसि सर्पिर्नस्ये निपचयेत् ॥६१॥**

अर्थ–नस्य करके मस्तककी अल्प शुद्धि तथा अत्यंत शुद्धि होनेसे कफवातनाशक नस्य देवे। तथा उत्तम शुद्धि होनेसे उसकी नाकमें घृतकी नस्य देनी चाहिये ॥६१॥

अति स्निग्धके लक्षण।

**कफप्रसेकः शिरसो गुरुतेन्द्रियविभ्रमः।**
**लक्षणं तदतिस्निग्धं रूक्षं तत्र प्रदापयेत् ॥ ६२ ॥**

अर्थ–नस्य करके मनुष्यका मस्तक अत्यन्त स्निग्ध होनेसे कफ मिला थाग निकले मस्तकमें भारीपन और इन्द्रियोंमें भ्रांति ये लक्षण होते हैं। इसमें रूक्षपदार्थकी नस्य देनी ठीक है ॥ ६२ ॥

नस्यमें पथ्य।

**भोजयेच्चानभिष्यंदि नस्याचारिकमादिशेत्।**

अर्थ–अभिष्यन्दी पदार्थ कहिये भैंसका दही आदिशब्दसे कफकारक पदार्थ ये भक्षण न करे। तथा नस्यमें जैसे शिष्टजन आचरण करते हैं उसी प्रकार इस नस्य लेनेवाले रोगीको आचरण करने चाहिये।

पञ्च कर्मकी संख्या।

**वमनं रेचनं नस्यं निरूहमनुवासनम्।**
**एतानि पञ्चकर्माणि कथितानि मुनीश्वरैः ॥ ६३ ॥**

**इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायामुत्तरखण्डे स्नेहविधिर्नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥**

अर्थ–१ वमन २ रेचन ३ नस्य ४ निरूहवस्ती और ५ अनुवासनवस्ति इन पांचोंको पंचकर्म ऐसा कहते हैं ॥ ६३ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरप्रणीतायां संहितायामुत्तरखंडे श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसाद-कृतभावप्रकाशिकाभाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

---

१ उक्तं च वाग्भटे–उष्णोदकोपचारी स्याद् ब्रह्मचारिक्षपाशयः।न वेगरोधी व्यायामक्रोधशोकहिमातपान्। प्रवातपानयानाध्वभाष्यात्मासनसंस्थितिः। नीचात्युच्चोपधानाहः स्वप्नधूमरजांसि च ॥

# अथ नवमोध्यायः ९.



धूमपान विधि।

धूमस्तु षड्विधः प्रोक्तः शमनो बृंहणस्तथा।
रेचनः कासहा चैव वामनो व्रणधूपनः ॥ १ ॥

अर्थ-धूम छः प्रकारका है। १ शमन २ बृंहण ३ रेचन ४ कासहा ५ वामन और ६ व्रणधूपन इस प्रकार छः प्रकारके धूमपानके प्रकार जानने चाहिये ॥ १ ॥

शमनादि धूमोंके पर्याय।

शमनस्य तु पर्यायौ मध्यः प्रायोगिकस्तथा।
बृंहणस्यापि पर्यायौ स्नेहनो मृदुरेव च ॥ २ ॥
रेचनस्यापि पर्यायौ शोधनस्तीक्ष्ण एव च।

अर्थ-शमन धूमके पर्यायशब्द मध्य और प्रायोगिक ऐसे दो जानने। बृंहण धूमके पर्याय शब्द स्नेहन और मृदु जानने। तथा रेचनधूमके पर्यायशब्द शोधन और तीक्ष्ण जानने ॥ २ ॥

धूमसेवन अयोग्य प्राणी।

अधूमार्हाश्च खल्वेते श्रांतो भीरुश्च दुःखितः ॥ ३ ॥
दत्तवस्तिर्विरिक्तश्च रात्रौ जागरितस्तथा।
पिपासितश्च दाहार्तस्तालुशोषी तथोदरी ॥ ४ ॥
शिरोऽभितापी तिमिरी छर्द्याध्मानप्रपीडितः।
क्षतोरस्कः प्रमेहार्तः पाण्डुरोगी च गर्भिणी ॥ ५ ॥
रूक्षः क्षीणोऽभ्यवहृतक्षीरक्षौद्रघृतासवः।
भुक्तान्नदधिमत्स्यश्च बालो वृद्धः कृशस्तथा ॥ ६ ॥
अकाले चातिपीतश्च धूमः कुर्यादुपद्रवान्।

अर्थ-थका हुआ, डरनेवाला, दुःखकरके पीडित, जिसके वस्ति प्रयोग किया है, जिसका कोठा दस्तों करके खाली हो, रात्रिमें जागरण करनेवाला, तृषा करके पीडित तथा दाह करके पीडित, तालुशोषी, उदरी, शिरोऽभिताप करके पीडित, तिमिर, तथा वमन आध्मान (बादीसे पेट फूलता है वह रोग) उरःक्षत प्रमेह और पांडुरोग इन करके पीडित, गर्भिणी स्त्री, रूक्ष, क्षीण, दूध, सहत, घी, आसव (मद्य) और अन्न दही

१ चरके वाग्भटे च त्रैविध्यमुक्तम्।

तथा मछली इनको जो खा चुका हो बालक वृद्ध और दुर्बल मनुष्य इतने प्राणी धूमपानमें अयोग्य जानने। अर्थात् इन सबको धूमपान करना वर्जित है एवम् अकालमें और अत्यन्त धूमपान करनेसे उपद्रव होते है ॥ ३-६ ॥

धूमपानके उपद्रवोंमे क्या देवे सो कहते है।

**तत्रेष्टं सर्पिषः पानं नावनाञ्जनतर्पणम् ॥ ७ ॥**
**सर्पिरिक्षुरसं द्राक्षां पयो वा शर्करांबु वा।**
**मधुराम्लौ रसौ वापि शमनाय प्रदापयेत् ॥८॥**

अर्थ-धूमपानके उपद्रव होनेसे उस मनुष्यको घी पीनेको देवे। नाकमें नस्य दे, नेत्रोंमें अञ्जन लगावे, तथा तर्पण (देहमें तृप्तिकारी द्राक्षादिखण्ड) दे। घी ईखका रस दाख दूध सरवत और खांड और जल अथवा मधुर और खट्टे पदार्थ ये भक्षण करनेको देवे जिनसे धूमसम्बन्धी उपद्रव दूर हों ॥ ७ ॥ ८ ॥

धूमपानका समय और गुण।

**धूमश्च द्वादशाद्वर्षाद् गृह्यतेऽशीतिकान्न च।**
**काशश्वासप्रतिश्यायान् मन्याहनुशिरोरुजः ॥ ९ ॥**
**वातश्लेष्मविकारांश्च हन्याद्धूमः सुयोजितः।**

अर्थ-धूमपान बारह वर्षकी अवस्थासे लेकर अस्सी वर्षकी अवस्था पर्यन्त करे पश्चात् नहीं करना चाहिये। तथा उस धूमकी योजना उत्तम होनेसे श्वास खांसी पीनस गरदन ठोडी और मस्तक इनकी पीडा और वातकफसम्बन्धी विकार संपूर्ण दूर हो जाते हैं ॥ ९ ॥

धूमप्रयोगसे प्रकृति कैसी होती है।

**धूमोपयोगात्पुरुषः प्रसन्नेन्द्रियवाङ्मनाः ॥ १० ॥**
**दृढकेशद्विजश्मश्रुः सुगन्धवदनो भवेत्।**

अर्थ-धूमका उपयोग होनेसे मनुष्य चक्षुरादि इन्द्रिय वाणी और अन्तःकरण इन करके प्रसन्न रहे और केश दांत और श्मश्रु (मूँछ) तथा दाढी इनमे बल आवे और मुख सुगन्धित होता है ॥ १० ॥

धूममें नलीका विचार।

**धूमनाडी भवेत्तत्र त्रिखण्डा च त्रिपर्विका ॥ ११ ॥ कनिष्ठिकापरीणाहा राजमाषागमान्तरा। धूमनाडी भवेद्दीर्घा शमने रोगिणोऽङ्गुलैः ॥ १२ ॥ चत्वारिंशन्मितैस्तद्वद्द्वात्रिंशद्भिर्मृदौ स्मृता। तीक्ष्णे चतुर्विंशतिभिः कासघ्ने षोडशोन्मितैः ॥१३॥ दशाङ्गुलैर्वामनीये तथा स्याद्व्रणनाडिका। कलायमण्डलस्थूला कुलित्थागमरंध्रिका ॥ १४ ॥**

अर्थ–धूमसेवनमें नली तीन खण्ड और तीन गांठों करके युक्त तथा कनिष्ठिका ऊँगलीके बराबर मोटी तथा उसके छिद्रमें चौराका दाना भीतर चला जावे ऐसी हो। इसी प्रकारकी धूमसेवनकी नली रोगीको चालीस अंगुल लंबी लेनी चाहिये। मृदुसंज्ञक धूमके सेवनमें बत्तीस अंगुलकी लंबी ले, तीक्ष्णसंज्ञक धूमके सेवनमें दश अंगुलकी, काससंज्ञक धूमसेवनमें सोलह अंगुलकी, वामनार्थे संज्ञक धूमके सेवनमें दश अंगुलकी लंबी नली लेनी, इसी प्रकार व्रणके धूनी देनको नली दश अंगुलकी लंबी होनी चाहिये। तथा वह नली मटरके प्रमाण मोटी तथा उसका छिद्र कुलथीका दाना भीतर चला जाय इतना बारीक करे इस प्रकारकी नली व्रणकी धूनीको वैद्य लेवे॥ ११–१४॥

धूमपानके अर्थ ईषिकाविधान।

अथेषिकां प्रलिंपेच्च सुश्लक्ष्णां द्वादशांगुलाम्। धूमद्रवस्य कल्केन लेपश्चाष्टांगुलः स्मृतः॥१५॥ कल्कं कर्षमितं लिप्त्वा छायाशुष्कं च कारयेत्। ईषिकामपनीयाथ स्नेहाक्तां वर्तिमादरात्॥ १६॥ अंगारैर्दीपितां कृत्वा धृत्वा नेत्रस्य रंध्रके। वदनेन पिबेद्धूमं वदनेनैव संत्यजेत्॥१७॥नासिकाभ्यां ततः पीत्वा मुखेनैव वमेत्सुधीः।शरावसंपुटे क्षिप्त्वा कल्कमङ्गारदीपितम्॥१८॥ छिद्रे नेत्रं सुवेश्याथ व्रणं तेनैव धूपयेत्।

अर्थ–ईषिका( नैडी )बारह अंगुल लंबी लेवे और जो धूमसेवनकी औषधियां है उनका कल्क करके उस कल्कको एक कर्ष लेकर उस ईषिका अर्थात् नैडी पर आठ अंगुल पर्यन्त लेप करे। फिर उसको सुखाके सूखनेपर ईषिकाको अलग निकाल लेवे। फिर उस कल्कके छिद्रमे दूसरी स्नेहयुक्त बत्तीको रख उसके ऊपर अंगार रख जलायके नलीके छिद्रमे धरे। पश्चात् उस नली करके मुखसे धूएँको खीचकर मुखद्वाराही त्याग देवे। फिर नाकके रास्तेसे धूएँको खाचके मुखके द्वारा छोडे। तथा शरावसंपुटके ऊपरकी तरफ छिद्र कर उसमे अंगारे रखके उनके ऊपर व्रणकी धूनीकी औषधोका कल्क किया हुआ डालके उस शरावेके छिद्रपर नलीके छिद्रको रखके व्रणमे धूनी देवे॥ १५-१८॥

कौनसी औषधका कल्क कौनसे धूपमे देवे।

एलादिकल्कं शमने स्निग्धं सर्जरसं मृदौ॥१९॥रेचने तीक्ष्णकल्कं च कासघ्नं क्षुद्रिकोपणम्। वामने स्नायुचर्माद्यं दद्याद्धूमस्य पानकम्॥२०॥ व्रणे निम्बवचाद्यं च धूमनं संप्रचक्षते।

---

१ वमन होनेके वास्ते जो धूम हो उसको वामनीय धूम कहते है।

अर्थ–शमनसंज्ञक धूममें एलादिके औषधोंका गण है उसका कल्क करके देवे । मृदुसंज्ञक धूममें स्निग्ध ( घृतादिक स्नेह ) पदार्थोंमें शिलारस डालके कल्क करके देवे । रेचकसंज्ञक धूममें तीक्ष्ण औषधि ( सरसों राई इत्यादिकों ) का कल्क करके देवे । कासघ्नधूममें कटेरी, काली मिरच इत्यादि औषधोंका कल्क कर देवे । वामनधूममें ( वमन लानेवाले धूममें ) स्नायु और चर्मादिके इनका कल्क करके धूमपानार्थ देवे तथा व्रणमें नीम और वचका धूमपान करावे ॥ १९ ॥ २० ॥

वालकग्रहनाशन धूनी ।

अन्येपि धूमा गेहेषु कर्तव्या रोगशान्तये ॥२१॥ स यथा ॥ मायूरपिच्छं निम्बस्य पत्राणि बृहतीफलम् । मरिचं हिंगु मांसी च बीजं कर्पाससम्भवम् ॥ २२ ॥ छागरोमाहिनिर्मोकं विष्टा बैडालिकी तथा । गजदन्तश्च तच्चूर्णं किञ्चिद् घृतविमिश्रितम् २३॥ गेहेषु धूपनं दत्तं सर्वान् वालग्रहाञ्जयेत् । पिशाचान्राक्षसाञ्जित्वा सर्वज्वरहरं भवेत् ॥ २४ ॥

अर्थ–वालग्रह दूर होनेको दूसरे प्रकारका धूम होता है तिसमेंसे मयूरपिच्छादि धूनी कहते हैं–१ मोरकी चंद्रिका २ नीमके पत्ते ३ कटेरीका फल ४ मिरच ५ हींग ६ जटामांसी ७ कपासके बिनौले ८ बकरेके वाल ९ सांपकी कांचली १० बिल्लीकी विष्ठा ११ हाथीका दांत इन ग्यारह औषधोंका चूर्ण कर उसमें थोडासा घी मिलाके इस चूर्णकी घरमें धूनी देवे तो सम्पूर्ण वालग्रह, पिशाच और राक्षस इनके सर्व उपद्रव तथा सम्पूर्ण ज्वर दूर हों ॥ २१–२४ ॥

धूमपानमें परिहार ।

परिहारस्तु धूमेषु कार्यो रेचननस्यवत् ।
नेत्राणि धातुजान्याहुर्नलवंशादिजान्यपि ॥ २५ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायामुत्तरखंडे धूमविधिर्नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

---

१ वाग्भट ग्रन्थमें एलादिक गण है उसकी औषधि ये हैं १ इलायची २ बडी इलायची ३ शिलारस ४ कूठ ५ गन्धप्रियंगु ६ जटामांसी ७ नेत्रवाला ८ रोहिषतृण ९ कपूरी ( शाकविशेष ) १० किरमानी अजवायन ११ मोटी दालचीनी १२ तमालपत्र १३ तगर १४ ग्रथिपार्णिकाभेद दूर्वा १५ जाईका रस १६ नखद्रव्य १७ व्याघ्रनख १८ देवदारु १९ अगर २० विशेष धूप २१ केशर २२ कौंचकी जड २३ गूगल २४ राल २५ कुन्दरू और २६ नागचम्पा । २ हरिणादिकोंके स्नायु नाडी और चर्म आदिशब्दसे खुरे सींग हड्डी इत्यादि जानने ।

अर्थ-रेचकसंज्ञक नस्यके रोगोंके परिहार विषयमें जो उपाय कहा है सो इस धूम्रपानमें करना चाहिये । नलीका मुख सुवर्णादि धातुका अथवा नरसल अथवा बांस इत्यादिकोंका करना चाहिये ॥ १९ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृत-भावप्रकाशिकाभाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

---

# अथ दशमोऽध्यायः १०.



गण्डूष और कवल तथा प्रतिसारणकी विधि ।

**चतुर्विधः स्याद्गण्डूषः स्नैहिकः शमनस्तथा ।**
**शोधनो रोपणश्चैव कवलश्चापि तद्विधः ॥ १ ॥**

अर्थ-गण्डूष[1] चार प्रकारका है १ स्नैहिक २ शमन ३ शोधन और ४ रोपण उसी प्रकार कवल[2]भी इन्हीं भेदों करके चार प्रकारका है ॥ १ ॥

स्नैहिकादिक गण्डूषोंकी दोषभेद करके योजना ।

**स्निग्धोष्णैः स्नैहिको वाते स्वादुशीतैः प्रसादनः । पित्ते कट्वम्ललवणैरुष्णैः संशोधनः कफे ॥ २ ॥ कषायतिक्तमधुरैः कदुष्णो रोपणव्रणे । चतुःप्रकारो गण्डूषः कवलश्चापि कीर्तितः ॥ ३ ॥**

अर्थ-स्निग्ध और उष्ण इन पदार्थों करके जो कुरला ( कुल्ला ) करना उसे स्नैहिक गण्डूष जानना यह वायुरोगमें करे । मधुर और शीतल पदार्थों करके प्रसादन कहिये शमनगण्डूष जानना यह पित्तरोगमें देवे । तीक्ष्ण खट्टे खारे उष्ण इन पदार्थोंकरके शोधन गंडूष जानना यह कफरोगमें योजना करे । कषैले कडुए और मधुर इन पदार्थों करके रोपण गण्डूष जानना । यह गरम २ व्रणपर योजना करे । इसी प्रकार कवल भी चार प्रकारका जानना ॥ २ ॥ ३ ॥

गण्डूष और कवलमें भेद ।

**असंचारी मुखे पूर्णे गंडूषः कवलश्चरः ।**
**तत्र द्रव्येण गंडूषः कल्केन कवलः स्मृतः ॥ ४ ॥**

---

१ गंडूष कहिये द्रवपदार्थ करके कुल्ले करनेका प्रचार । २ कवल कहिये पदार्थको मुखमें गेरके चबानेका प्रकार ।

अर्थ–काढे आदि जो द्रव पदार्थ हैं उनसे मुखको भरके जैसेका तैसा ही रहने देवे । फिर थोडी देरके बाद मुखसे निकाल देनेको गंडूष ( कुल्ला ) कहते है । एवं कल्का-दिक पदार्थको मुखमें इधर उधर फिराके मुखमें रखनेको कवल कहते हैं ॥ ४ ॥

गण्डूष और कवलकी औषधोंका प्रमाण ।

दद्याद्द्रवेषु चूर्णं च गंडूषे कोलमात्रकम् ।
कर्षप्रमाणः कल्कश्च दीयते कवलो बुधैः ॥ ५ ॥

अर्थ–गंडूषमें काढे आदि द्रव द्रव्यमें चूर्ण एक कोल डाले तथा कवलमें १ कर्ष प्रमाण कल्ककी योजना करे ॥ ५ ॥

कौनसी अवस्थामें और कितने कुल्ले करे ।

धार्यन्ते पञ्चमाद्वर्षाद्गंडूषकवलादयः ।
गण्डूषान् सुस्थितः कुर्यात्स्विन्नभालगलादिकः ॥
मनुष्यस्त्रींस्तथा पंच सप्त वा दोषनाशनात् ॥ ६ ॥

अर्थ–पांच वर्षके पश्चात् अर्थात् पांच वर्षकी आयुके पीछे गंडूष और कवल ग्रहण करने चाहिये । मनुष्य स्वस्थचित्त होके बैठे । फिर रोग दूर होनेको कपाल गला तथा आदि शब्दसे मुख इनमें थोडा पसीना आनेपर्यन्त तीन पांच अथवा सात गंडूष करे । अथवा दोष दूर होने पर्यंत करे ॥ ६ ॥

गण्डूषधारणमें दूसरा प्रमाण ।

कफपूर्णास्यता यावच्छेदो दोषस्य वा भवेत् ।
नेत्रघ्राणस्रुतिर्यावत्तावद्गंडूषधारणम् ॥ ७ ॥

अर्थ–कफसे मुख पूर्ण हो जावे तबतक अथवा दोषोंका छेदन होनेपर्यंत, अथवा नेत्र नाक इनमें स्राव छूटने पर्यंत गंडूष धारण करे ॥ ७ ॥

वादीके रोगमें स्नैहिकगंडूष ।

तिलकल्कोदकं क्षीरं स्नेहो वा स्नैहिके हितः ॥ ८ ॥

अर्थ–तिलोंका कल्क और जल तथा दूध और तेल आदि चिकने पदार्थ इनकी स्नैहिक गंडूषमें योजना करनी चाहिये ॥ ८ ॥

पित्तरोगमें शमनसंज्ञक गंडूष ।

तिला नीलोत्पलं सर्पिः शर्करा क्षीरमेव च ।
सक्षौद्रो हनुवक्त्रस्थो गण्डूषो दाहनाशनः ॥ ९ ॥

अर्थ–तिल नीलाकमल घी खांड और दूध ये सब पदार्थ एकत्र कर इसमें सहत डालके कुल्ले करे तो पित्तसंबंधी ठोडी और मुख इनमें जो दाह हो सो दूर हो जावे ॥ ९ ॥

व्रणादिरोगोंमें मधुगंडूष ।

**वैशद्यं जनयत्यास्ये संदधाति मुखव्रणान् ।**
**दाहतृष्णाप्रशमनं मधुगण्डूषधारणम् ॥ १० ॥**

अर्थ–सहतको जलमें मिलाके कुल्ले करे तो मुखके घाव और छाले तथा दाह और तृषा ये रोग दूर होकर मुखमें स्वच्छता आती है ॥ १० ॥

विषादिकोंपर गंडूष ।

**विषक्षाराग्निदग्धे च सर्पिर्धार्यं पयोऽथवा ।**

अर्थ–विषदोष, क्षारादिजन्य विकार, अग्निदाहजन्य विकार इनमें घी अथवा दूधके कुल्ले करे ।

दांतोंके हिलने पर गण्डूष ।

**तैलसैन्धवगण्डूषो दन्तचाले प्रशस्यते ॥ ११ ॥**

अर्थ–तिलोंका तेल और सेंधानमक इनको एकत्र करके कुल्ले करे तो हिलते हुए दांत जमकर मजबूत होवें ॥ ११ ॥

मुखशोषपर गण्डूष ।

**शोषं मुखस्य वैरस्यं गण्डूषः कांजिको जयेत् ।**

अर्थ–मुखशोष तथा मुखकी विरसता इनमें कांजीके कुल्ले करे तो मुखशोष और विरसता दूर हो ।

कफपर गण्डूष ।

**सिंधुत्रिकटुराजीभिरार्द्रकेण कफे हितः ॥ १२ ॥**

अर्थ–सेंधानमक और त्रिकुटा ( सोंठ, मिरच और पीपल ) तथा राई इनका चूर्ण कर अदरखके रसमें मिलाके कुरले करे तो कफका दोष दूर होवे ॥ १२ ॥

कफ और रक्तपित्तपर गण्डूष ।

**त्रिफलामधुगण्डूषः कफासृक्पित्तनाशनः ।**

अर्थ–त्रिफलाके चूर्णको सहतमें मिलाकर कुल्ले करनेसे कफ और रक्तपित्त दूर हो जाते हैं ।

मुखपाक ( छाले ) पर गण्डूष ।

**दार्वी गुडूची त्रिफला द्राक्षा जात्याश्च पल्लवः ॥१३॥ यवासश्चेति तत्क्वाथः षष्ठांशः क्षौद्रसंयुतः । शीतो मुखे धृतो हन्यान्मुखपाकं त्रिदोषजम् ॥ १४ ॥**

अर्थ–दारुहलदी, गिलोय, त्रिफला, दाख, चमेलीके पत्ते और जवासा ये सब औषध समान भाग लेकर काढा करे। इस काढेका छठा भाग सहत मिलाके उस काढेको शीतल करके कुल्लेकरे तो त्रिदोषजन्य मुखपाक ( मुखके छाले ) दूर होजावे ॥ १३ ॥ १४ ॥

गण्डूषके सदृश प्रतिसारण और कवल।

यस्यौषधस्य गंडूषस्तस्यैव प्रतिसारणम्।
कवलश्चापि तस्यैव ज्ञेयोऽत्र कुशलैर्नरैः ॥ १५ ॥

अर्थ-जिस औषधका गण्डूष उसी औषधका प्रतिसारण (मञ्जन) जानना तथा उसी औषधका कवल भी कुशल वैद्य जाने ॥ १५ ॥

कवलका प्रकार।

केशरं मातुलुङ्गस्य सैन्धवव्योषसंयुतम्।
हन्यात्कवलतो जाड्यमरुचिं कफवातजाम् ॥ १६ ॥

अर्थ-बिजोरेकी केशर सैंधानमक और त्रिकुटा(सोंठ मिरच पीपल) ये औषध एकत्र कर इनका कवल करनेसे मुखकी जडता तथा कफवातजन्य अरुचि ये दूर हों ॥ १६ ॥

प्रतिसारणके भेद।

कल्कोऽवलेहश्चूर्णं च त्रिविधं प्रतिसारणम्।
अङ्गुल्यग्रगृहीतं च यथास्वं मुखरोगिणाम् ॥ १७ ॥

अर्थ-कल्क, अवलेह और चूर्ण इन भेदोंसे प्रतिसारण तीन प्रकारका है। उसको मुखरोगी मनुष्यके जैसा दोष हो उसीके अनुसार उंगलीके आगेके पोरुएमें भरके जीभको तथा संपूर्ण मुखमें लगावे ॥ १७ ॥

प्रतिसारण चूर्ण।

कुष्ठं दार्वी समंगा च पाठा तिक्ता च पीतिका।
तेजनी मुस्तलोध्रं च चूर्णं स्यात्प्रतिसारणम् ॥ १८ ॥
रक्तस्रुतिं दंतपीडां शोथं दाहं च नाशयेत्।

अर्थ-१ कूठ २ दारुहलदी ३ लजालू ४ पाढ ५ कुटकी ६ मंजीठ ७ हल्दी ८ नागरमोथा और ९ लोध इन नौ औषधोंका चूर्ण करके जीभपर तथा संपूर्ण मुखमें उंगलीके पोरुएसे रगडे तो दांतोंके मसूढोंसे रुधिरका गिरना, दांतोंमें पीडाका होना, सूजन, दाह ये रोग दूर हों। इस चूर्णको प्रतिसारण अर्थात् मंजन कहते हैं ॥ १८ ॥

गण्डूषादिके हीनयोगादि होनेके लक्षण।

हीनयोगात्कफोत्क्लेशो रसाज्ञानारुची तथा ॥
अतियोगान्मुखे पाकः शोषस्तृष्णा क्लमो भवेत्।

अर्थ-गण्डूषादिकोंका हीनयोग (अल्पयोग) होनेसे कफका आधिक्य होता है। मधुरादिपदार्थोंसे रसका ज्ञान नही रहता और अन्नादिकोंपर अरुचि होती है गंडूषादिकोंका अत्यन्त योग होनेसे मुखपाक अर्थात् मुखमे छाले होजावें तथा शोष, प्यास और ग्लानि ये लक्षण होते हैं ॥ १९ ॥

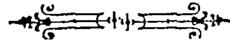
शुद्धगंडूषके लक्षण ।

व्याधेरपचयस्तुष्टिर्वैशद्यं वक्त्रलाघवम् ।
इन्द्रियाणां प्रसादश्च गंडूषे शुद्धिलक्षणम् ॥ २० ॥
इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे गंडूषादिविधिर्नाम
दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अर्थ–गण्डूषादिकोंका उत्तम योग होनेसे व्याधिका नाश, अन्तःकरणमें सन्तोष, मुखमें निर्मलपन हलकापन रसनादिक इन्द्रियोंमें प्रसन्नता ये लक्षण होते हैं ॥ २० ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृत-
भावप्रकाशिकाभाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

## अथैकादशोऽध्यायः ११.



लेपकी विधि ।

आलेपस्य च नामानि लिप्तो लेपश्च लेपनम् । दोषघ्नो विषहा वर्ण्यो मुखलेपस्त्रिधा मतः ॥ १ ॥ त्रिप्रमाणश्चतुर्भागस्त्रिभागार्धांगुलोन्नतः । आर्द्रो व्याधिहरः स स्याच्छुष्को दूषयतिच्छविम् ॥ २ ॥

अर्थ–लिप्त, लेप और लेपन ये तीन नाम लेपके हैं उसीको आलेप कहते हैं । वह लेप दोषघ्न विषघ्न वर्ण्य इन भेदों करके मुखलेप तीन प्रकारका है । उस लेपके प्रमाण तीन हैं, जैसे एक अंगुल ऊँचेको दोषघ्न जानना, पौन अंगुलके प्रमाण ऊँचे लेपको विषघ्न जानना और जो आधे अंगुल ऊंचा होवे उसे वर्ण्य जानना, ऐसे तीन प्रमाण जानने । जो आर्द्र ( गीला ) लेप है उसे रोमहरणकर्त्ता जानना, जो शुष्क ( करडा ) लेप है उसे शरीरकी कांतिको दूषित करनेवाला जानना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

दोषघ्न लेप ।

पुनर्नवां दारुशुण्ठीं सिद्धार्थं शिग्रुमेव च ।
पिष्ट्वा चैवारनालेन प्रलेपः सर्वशोथहा ॥ ३ ॥

अर्थ–१ पुनर्नवा ( सांठ ) २ देवदारु ३ सोंठ ४ सफेद सरसों और ५ सहंजनेकी

१ सूजन खुजली इत्यादि रोगोंको दूरकर्ता जानना । २ भिलावे बच्छनाग इत्यादिकोंके विषको दूर करनेवाला । ३ मुख और त्वचाको कांति देनेवाला ।

छाल ये पांच औषध समान भाग लेकर कांजीमें पीस सूजनपर लेप करे तो नवप्रकारकी सूजन दूर हो ॥ ३ ॥

दाहशांतिका लेप।

**विभीतफलमज्जाक्तलेपो दाहार्तिनाशनः।**

अर्थ–बहेडेके भीतरकी गिरीको बारीक पीस देहमें लेप करे तो दाहसंबन्धी पीडा दूर हो।

दशांग लेप।

**शिरीषं मधुयष्टी च तगरं रक्तचन्दनम् ॥ ४ ॥ एला मांसी निशायुग्मं कुष्ठं बालकमेव च। इति संचूर्ण्य लेपोऽयं पञ्चमांशघृतप्लुतः ॥ ५ ॥ जलेन क्रियते सुज्ञैर्दशांग इति संज्ञितः। विसर्पान्विषविस्फोटाञ्छोथदुष्टव्रणाञ्जयेत् ॥६॥**

अर्थ–१ सिरसकी छाल २ मुलहटी ३ तगर ४ लालचंदन ५ इलायची ६ जटामांसी ७ हल्दी ८ दारुहल्दी ९ कूट और १० नेत्रवाला इन दश औषधोंको समान भाग ले बारीक पीस चूर्ण करे, फिर जलमें सानके रोगके स्थानपर लेप करे तो विसर्परोग, विषदोष, विस्फोट, सूजन, दुष्टव्रण ये सर्व रोग दूर हो। इस लेपको दशांगलेप कहते हैं ॥ ४–६ ॥

विषघ्न लेप।

**अजादुग्धतिलैर्लेपो नवनीतेन संयुतः।**
**शोथमारुष्करं हन्ति लेपो वा कृष्णमृत्तिकैः ॥ ७ ॥**

अर्थ–बकरीके दूधमें तिलोंको पीसके उसमें मक्खन मिलाकर लेप करे। अथवा काली मिट्टी और तिल इन दोनोंको पीस इसमें मक्खन मिलाकर लेप करे तो भिलावेकी सूजन दूर होवे ॥ ७ ॥

दूसरा प्रकार।

**लाङ्गल्यतिविषालाबू जालिनी बीजमूलकः।**
**लेपो धान्यांबुसंपिष्टः कीटविस्फोटनाशनः ॥ ८ ॥**

अर्थ–१ कलियारी २ अतीस ३ कडुई तूंबीके बीज ४ कडुई तोरईके बीज ५ मूलीके बीज इन पांच औषधोंको समान भाग लेकर धान्यांबु ( कांजी ) में पीसके कीटविशेषके दंशपर लेप करे तथा विस्फोटक रोगपर लेप करे तो ये विकार दूर हों ॥ ८ ॥

मुखकांतिकारक लेप।

**रक्तचन्दनमञ्जिष्ठा लोध्रकुष्ठप्रियङ्गवः।**
**वटांकुरा मसूराश्च व्यंगघ्ना मुखकांतिदाः ॥ ९ ॥**

अर्थ–१ लालचन्दन २ मँजीठ ३ लोध ४ कूठ ५ फूलप्रियंगु ६ बडके अंकुर

७ मसूर ये सात औषध समभाग लेकर पानीमें पीस लेप करे तो झाईं रोग दूर हो और यह लेप मुखपर कांति करता है ॥ ९ ॥

दूसरा प्रकार ।

**मातुलुंगजटा सर्पिः शिलागोशकृतो रसः ।**
**मुखकांतिकरो लेपः पिटिकाव्यंगकासजित् ॥ १० ॥**

अर्थ-बिजोरेकी जड घी मनशिल और गौके गोबरका रस ये ४ औषध एकत्र पीसकर मुखपर लेप करे तो यह लेप मुखपर कांति करे और मुँहासे, व्यंग और नीलिका ये रोग दूर हों ॥ १० ॥

मुँहाँसे नाशक लेप ।

**लोध्रधान्यवचालेपस्तारुण्यपिटिकापहः।तद्वद्गोरोचनायुक्तं मरिचं मुखलेपनात् ॥११॥ सिद्धार्थकवचालोध्रसैन्धवैश्च प्रलेपनम् ।**

अर्थ-लोध, धनियां और वच ये तीन औषध समान भाग लेकर जलमें पीस लेप करे । अथवा गोरोचन और कालीमिरच इन दोनोंको जलसे बारीक पीसके लेप करे । अथवा सफेद सरसों वच लोध और सैन्धानमक इन चार औषधोंको जलसे बारीक पीसके लेप करे । इस प्रकार ये तीन प्रकारके लेप मुखके मुँहाँसे दूर करने वास्ते जानने चाहिये ॥ ११ ॥

व्यंगरोगपर लेप ।

**व्यंगेषु चार्जुनत्वग्वा मंजिष्ठा वा समाक्षिकः ॥ १२ ॥**
**लेपः सनवनीतो वा श्वेताश्वखुरजा मषी ।**

अर्थ-कोहवृक्षकी छालका चूर्ण अथवा मंजीठका चूर्ण अथवा सफेद घोडेके खुरसंबंधी हाडकी राख ये तीन औषध पृथक् २ सहत और मक्खनमें मिलाके पृथक् २ लेप करे तो व्यंग रोग दूर होवे ॥ १२ ॥

मुखकी झाईपर लेप ।

**अर्कक्षीरहरिद्राभ्यां मर्दयित्वा विलेपनात् ॥ १३ ॥**
**मुखकार्ष्ण्यं शमं याति चिरकालोद्भवं ध्रुवम् ।**

अर्थ-आकके दूधमें हल्दीको पीस लेप करे तो मुखकी बहुत दिनकी काली ( झाईं ) दूर होवे ॥ १३ ॥

मुँहाँसे आदिपर लेप ।

**वटस्य पांडुपत्राणि मालती रक्तचंदनम् ॥ १४ ॥**
**कुष्ठं कालीयकं लोध्रमेभिर्लेपं प्रयोजयेत् ।**
**तारुण्यपिटिका-व्यंगनीलिकादि-विनाशनम् ॥ १५ ॥**

अर्थ-बडके पीले पत्ते, चमेली, लालचंदन, कूठ, दारुहल्दी और लोध इन सब

औषधोंको एकत्र पीस लेप करे तो जवानीके मुहांसे और व्यंग नीलिकादिक रोग दूर होवे ॥ १४ ॥ १५ ॥

अरुंषिकारोगपर लेप।

**पुराणमथ पिण्याकं पुरीषं कुक्कुटस्य च।**
**मूत्रपिष्टः प्रलेपोऽयं शीघ्रं हन्यादरुंषिकाम् ॥ १६ ॥**

अर्थ–तिलोंकी पुरानी खल और मुरगेकी बीट इन दोनोंको गोमूत्रमें पीस लेप करे तो अरुंषिका दूर होवे ॥ १६ ॥

दूसरा प्रकार।

**खदिरारिष्टजंबूनां त्वग्भिर्वा मूत्रसंयुतैः।**
**कुटजत्वक्सैन्धवं वा लेपो हन्यादरुंषिकाम् ॥ १७ ॥**

अर्थ–खैर, नीम और जामुन इन तीनोंकी छालका चूर्ण करके गोमूत्रमें पीस लेप करे अथवा कुडेकी छाल और सेंधानमक ये दो औषध गोमूत्रमें पीस लेप करे तो अरुंषिका रोग दूर होवे ॥ १७ ॥

दारुणरोगपर लेप।

**प्रियालबीजमधुककुष्ठमाषैः ससैन्धवैः।**
**कार्यो दारुणके मूर्ध्नि प्रलेपो मधुसंयुतः ॥ १८ ॥**

अर्थ–१ चिरोंजी २ मुलहटी ३ कूठ ४ उडद और ५ सैन्धानमक ये पांच औषध समान ले बारीक पीस सहतमें मिलायके मस्तकमें दारुण ( कहिये दारुणरोग ) दूर होनेके वास्ते लेप करे ॥ १८ ॥

दूसरी विधि।

**दुग्धेन खाखसं बीजं प्रलेपाद्दारुणं जयेत्।आम्रबीजस्य चूर्णं तु शिवाचूर्णं समं द्वयम्। दुग्धपिष्टः प्रलेपोऽयं दारुणं हंति दारुणम् ॥ १९ ॥**

अर्थ–खसखसको दूधमें पीस मस्तकपर लेप करे तथा आमकी गुठलीकी गिरी और छोटी हरड इन दोनोंका समान भाग चूर्ण ले दूधमें पीस लेप करे तो घोर दुर्धर दारुण रोग दूर होवे ॥ १९ ॥

इन्द्रलुप्तपर लेप।

**रसस्तिक्तपटोलस्य पत्राणां तद्विलेपनात्।**
**इन्द्रलुप्तं शमं याति त्रिभिरेव दिनैर्ध्रुवम् ॥ २० ॥**

अर्थ–कडवे पटोलके पत्तोंका रस निकालकर उसका तीन दिन लेप करे तो इन्द्रलुप्त रोग निश्चय दूर होवे ॥ २० ॥

दूसरी विधि।

**इन्द्रलुप्तापहो लेपो मधुना बृहतीरसः।**
**गुञ्जामूलफलं वापि भल्लातकरसोऽपि वा ॥ २१ ॥**

अर्थ-कटेरीका रस निकाल उसमें सहत मिलाके लेप करे अथवा घूंघचीकी जडका अथवा घूंघची (चिरमिठी) के रसको सहतमें मिलाके लेप करे। अथवा भिलावेके पत्तोंका रस निकाल उसमें सहत मिला लेप करे तो इन्द्रलुप्तरोग दूर हो ॥ २१ ॥

केशवृद्धिपर लेप।

**गोक्षुरस्तिलपुष्पाणि तुल्ये च मधुसर्पिषी।**
**शिरःप्रलेपनं तेन केशसंवर्धनं परम् ॥ २२ ॥**

अर्थ-गोखरू तिलके फूल इन दोनोंको समान भाग लेके चूर्ण करे। और सहत तथा घी ये दोनो बराबर लेके इसमें चूर्णको सानके मस्तकपर लेप करे तो केश बढ़ें ॥ २२ ॥

केश जमानेवाला लेप।

**हस्तिदंतमषीं कृत्वा छागीदुग्धं रसाञ्जनम्।**
**रोमाण्यनेन जायंते लेपात्पाणितलेष्वपि ॥ २३ ॥**

अर्थ-हाथीके दांतको जलाके उसकी राख कर लेवे यह राख और रसोत इन दोनोंको बकरीके दूधमें पीस जिस स्थानके बाल उडगये हों उस जगह लेप करे तो बाल पैदा हों। यह लेप हाथोंकी हथेलीपर करनेसे हथेलीमें भी बाल अवश्य ऊगें ॥ २३ ॥

इन्द्रलुप्तरोगपर लेप।

**यष्टीन्दीवरमृद्वीका तैलाज्यक्षीरलेपनैः।**
**इन्द्रलुप्तः शमं याति केशाः स्युः सघना दृढाः ॥ २४ ॥**

अर्थ-मुलहटी, कमल और दाख इन तीन औषधोंको तिलोंका तेल, गौका दूध और घी इनमें पीसके लेप करे तो इन्द्रलुप्तरोग दूर हो तथा बाल दृढ और सघन होवें ॥ २४ ॥

केश आनेपर दूसरा लेप।

**चतुष्पदानां त्वग्रोमनखशृंगास्थिभस्मभिः।**
**तैलेन सह लेपोऽयं रोमसंजननः परः ॥ २५ ॥**

अर्थ-बकरी आदि चौपाये जीवोंकी त्वचा ( चाम ) बाल नख सींग और हाड इनकी भस्म कर तिलके तेल मिलाके लेप करे तो यह लेप नवीन केश ( बाल ) आनेमें अत्यंत उत्तम है ॥ २५ ॥

केश काले करनेका लेप।

**इन्द्रवारुणिकाबीजतैलेनाभ्यङ्गमाचरेत्।**
**प्रत्यहं तेन कालाभ्रसन्निभाः कुन्तला ह्यलम् ॥ २६ ॥**

अर्थ-इन्द्रायनके बीजोंका तेल पातालयंत्र करके निकालके फिर इसको सफेद बालोंपर नित्य लेप करे तो बाल अत्यंत काले होवें ॥ २६ ॥

दूसरी विधि।

अयोरजो भृङ्गराजस्त्रिफला कृष्णमृत्तिका।
स्थितमिक्षुरसे मासं लेपनात्पलितं जयेत् ॥ २७ ॥

अर्थ-१लोहका चूर्ण २भांगरा ३ त्रिफला (हरड बहेडा आंवला) ६ कालीमिट्टी ये छः औषध समान भाग ले चूर्ण कर ईखके रसमें डालके एक महीने पर्यंत धरा रहने दे। फिर अकालमें जो सफेद बाल हुए हो उनपर यह लेप करे तो काले बाल होवें ॥ २७ ॥

तीसरा प्रकार।

धात्रीफलत्रयं पथ्ये द्वे तथैकं विभीतकम् ॥२८॥ पञ्चाम्रमज्जा लोहस्य कर्षैकं च प्रदीयते। पिष्ट्वा लोहमये भांडे स्थापयेदुषितं निशि ॥ २९ ॥ लेपोऽयं हंति न चिरादकालपलितं महत्।

अर्थ-आमले तीन, हरड दो, बहेडेका फल एक, आमकी गुठलीके भीतरकी मिंगी पांच, लोहचूर्ण एक कर्ष इन संपूर्ण औषधोंको लोहकी कडाहीमें बारीक पीस सब रात्रि उसी प्रकार धरी रहने दे। दूसरे दिन लेप करे तो जिस मनुष्यके थोडी अवस्थामें सफेद बाल होगये होवें इस लेपसे तत्काल काले होजाते हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥

चतुर्थ प्रकार।

त्रिफला नीलिकापत्रं लोहं भृङ्गरजः समम्।
अजामूत्रेण संपिष्टं लेपात्कृष्णीकरं स्मृतम् ॥ ३० ॥

अर्थ-त्रिफला और नीलके पत्ते तथा लोहका चूर्ण एवं भांगरा इन सब औषधोंको समान भाग लेके बकरीके मूत्रसे पीस लेप करे तो यह लेप सफेद बालोंको काले करनेमें परमोत्तम है ॥ ३० ॥

पांचवां प्रकार।

त्रिफला लोहचूर्णं च दाडिमीत्वग्बिसं तथा ॥३१॥ प्रत्येकं पंचपलिकं चूर्णं कुर्याद्विचक्षणः। भृङ्गराजरसस्यापि प्रस्थषट्कं प्रदापयेत् ॥३२॥ क्षिप्त्वा लोहमये पात्रे भूमिमध्ये निधापयेत्। मासमेकं ततः कुर्याच्छागीदुग्धेन लेपनम् ॥३३॥ कूर्चे शिरसि रात्रौ च संवेष्ट्यैरण्डपत्रकैः। स्वपेत्प्रातस्ततः कुर्यात् स्नानं तेन च जायते ॥३४॥ पलितस्य विनाशश्च त्रिभिर्लेपैर्न संशयः।

अर्थ-त्रिफला, लोहका चूरा, अनारकी छाल और कमलका कंद ये प्रत्येक पांच २ पल लेवे । सबको बारीक पीस चूर्ण करे फिर छः प्रस्थ भांगरेका रस निकालके एक लोहेकी कडाहीमें भरके और पूर्वोक्त त्रिफला आदिका चूर्ण डालके एक महीने पर्यंत जमीनमें गाड देवे । पश्चात् बाहर निकाल इसमें बकरीका दूध मिलाके मस्तकमें रात्रिके समय लेप करे और उस लेपपर अंडके पत्ते बांधके सो जावे । प्रातःकाल उठके स्नान करे, इस प्रकार तीन लेप करे तो जिस मनुष्यके युवावस्थामे सफेद बाल होगये हों वे निश्चय बहुत जल्दी काले होजाते हैं ॥ ३१-३४ ॥

केशनाशक प्रयोग ।

**शङ्खचूर्णस्य भागौ द्वौ हरितालं च भागिकम् ॥३५॥ मनःशिला चार्धभागा स्वर्जिका चैकभागिका । लेपोऽयं वारिपिष्टस्तु केशानुत्पाट्य दीयते ॥ ३६ ॥ अनया लेपयुक्त्या च सप्तवेलं प्रयुक्तया । निर्मूलकेशस्थानं स्यात्क्षपणस्य शिरो यथा ॥ ३७ ॥**

अर्थ-शंखचूर्ण दोभाग हरताल एक भाग मनशील आधा भाग सज्जीखार एक भाग इन सबको जलमें पीसके जिस जगहके बाल निर्मूल करने हों उस जगह उस्तरेसे बालोंको दूर करके इस औषधका लेप करे । इस प्रकार युक्तिसे सात लेप करे तो बालोंके आनेका स्थान निर्मूल होवे अर्थात् फिर उस जगह बाल नहीं आवे । और केशस्थान ढुंडेरे साधु ( पूज ) के शिरके समान होजाता है ॥ ३५-३७ ॥

दूसरी विधि ।

**तालकं शाणयुग्मं स्यात्षट्शाणं शंखचूर्णकम् । द्विशाणिकं पलाशस्य क्षारं दत्त्वा प्रमर्दयेत् ॥ ३८ ॥ कदलीदंडतोयेन रविपत्ररसेन वा । अस्यापि सप्तभिर्लेपैर्लोम्नां शातनमुत्तमम् ॥ ३९ ॥**

अर्थ-हरताल २ शाण और शंखका चूर्ण छः शाण तथा पलाश ( ढाक ) का खार २ शाण इन सब औषधोको केलाके दंडके रसमें अथवा आकके पत्तोंके रसमें खरल कर केश दूर करनेकी जगह सात वार लेप करे । यह लेप केश दूर करनेके विषयमे परमोत्तम है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

सफेद कोढ दूर होनेका औषध ।

**सुवर्णपुष्पीकासीसं विडंगानि मनःशिला ।**
**रोचनासैन्धवं चैव लेपनाच्छ्वित्रनाशनम् ॥ ४० ॥**

अर्थ-१पीली चमेली २ हीराकसीस ३ वायविडंग ४ मनशिल ५ गोरोचन ६ सैंधा-

१ स्वर्णशब्दवाच्यो विटपविशेषः तदभावे वृहद्धका ग्राह्या अपरे च स्थूलकं गृह्णन्ति ।

नमक ये छः औषध समान भाग ले गोमूत्रसे पीस लेप करे तो श्वित्रकुष्ठ ( सफेद कोढ ) दूर हो ॥ ४० ॥

दूसरी विधि।

वायस्येडगजाकुष्ठकृष्णाभिर्गुटिका कृता।
वस्तमूत्रेण संपिष्टा प्रलेपाच्छ्वित्रनाशिनी ॥ ४१ ॥
तालकं शाणमात्रं स्याच्चतुःशाणा च वाकुची।
गोमूत्रपिष्टं तच्चूर्णं लेपनाच्छ्वित्रनाशनम् ॥ ४२ ॥

अर्थ-१ काकतुंडी २ पमारके बीज ३ कूठ ४ पीपल ये चार औषध समान भाग लेकर बकरेके मूत्रसे पीसके लेप करे तो श्वित्रकुष्ठ दूर होवे। हडताल ४ मासे बावची १६ मासे गोमूत्रसे पीस लेप करे तो श्वेतकुष्ठ दूर हो ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

तीसरी विधि।

बाकुची वेतसो लाक्षा काकोदुम्बरिकाकणा। रसांजनमयश्चूर्णं तिलाः कृष्णास्तदेकतः ॥ ४३ ॥ चूर्णयित्वा गवां पित्तैः पिष्ट्वा च गुटिका कृता। अस्याः प्रलेपाच्छ्वित्राणि प्रणश्यंत्यतिवेगतः ॥ ४४ ॥

अर्थ-१ बावची २ अमलवेत ३ लाख ४ कठूमर ५ पीपल ६ सुरमा ७ लोहका चूर्ण ८ काले तिल ये आठ औषध समान भाग लेकर चूर्ण करे। फिर गौके पित्तसे इन सब औषधोंको खरल करके गोली करे। फिर लेप करे इस लेपके प्रभावसे श्वित्रकुष्ठ बहुत जल्दी दूर होवे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

सिध्मपर लेपन।

धात्री सर्जरसश्चैव यवक्षारश्च चूर्णितैः।
सौवीरेण प्रलेपोऽयं प्रयोज्यः सिध्मनाशने ॥ ४५ ॥

अर्थ-१ आंवले २ राल ३ जवाखार इन तीन औषधोंको सौवीरमें[1] अथवा कांजीमें पीसके सिध्म ( बनरफ ) रोग दूर करनेको प्रयुक्त करे ॥ ४५ ॥

दूसरा प्रकार।

दार्वी मूलकबीजानि तालकं सुरदारु च। तांबूलपत्रं सर्वाणि कार्षिकाणि पृथक्पृथक् ॥४६॥ शंखचूर्णं शाणमात्रं सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत्। लेपोऽयं वारिणा पिष्टः सिध्मानां नाशनः परः ॥४७॥

अर्थ-१ दारुहल्दी २ मूलीके बीज ३ हरताल ४ देवदारु ५ नागरवेलके पान

---

१ सौवीर बनानेकी विधि मध्यमखण्डमें सन्धानप्रकरणमें लिखी है।

ये पांच औषध एक एक कर्ष तथा शंखका चूर्ण १ शाण ले। इन सब औषधोंका चूर्ण करके जलसे पीसके लेप करे तो विभूत रोग दूर हो ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

नेत्ररोगपर लेप।

**हरीतकी सैन्धवं च गैरिकं च रसाञ्जनम्।**
**बिडालको जले पिष्टः सर्वनेत्रामयापहः ॥ ४८ ॥**

अर्थ-१ हरड २ सैंधानमक ३ गेरू और ४ रसोत ये चार औषध समान भाग ले जलसे पीसके बिडालक अर्थात् नेत्रोंके बाहर लेप करे। इसको बिडालक कहते हैं। इस लेप करके नेत्रके सर्व विकार दूर होवें ॥ ४८ ॥

दूसरी विधि।

**रसाञ्जनं व्योषयुतं संपिष्टं वटकीकृतम्।**
**कण्डूपाकान्वितां हंति लेपादंजननामिकाम् ॥ ४९ ॥**

अर्थ-१ रसांजन, व्योष( २ सोंठ ३ मिरच ४ पीपल ) ये चार औषध समान भाग लेकर पानीसे पीस गोली करे। इसको जलमें घिसके खुजलीयुक्त तथा पाकयुक्त अंजननामिका ( गुहांजनी ) गुहेरी जो नेत्रोंके कोए पर होती हैं उसके दूर करनेको लगावे तो गुहेरी दूर हो ॥ ४९ ॥

खुजली आदिपर लेप।

**प्रपुन्नाटस्य बीजानि बाकुची सर्षपास्तिलाः।**
**कुष्ठं निशाद्वयं मुस्तं पिष्ट्वा तक्रेण चैकतः ॥ ५० ॥**
**प्रलेपादस्य नश्यंति कंडूदद्रुविचर्चिकाः।**

अर्थ-१ पनवाढके बीज २ बावची ३ सरसों ४ तील ५ कूठ ६ हल्दी ७ दारुहल्दी ८ नागरमोथा ये आठ औषध समान भाग ले चूर्ण करे। छाछमें पीसके इसका लेप करे तो खुजली दाद और विचर्चिका (पैरोंका फटना) ये रोग दूर होवे ॥ ५० ॥

दाद खुजली आदिपर लेप।

**हेमक्षीरी विडङ्गानि दरदं गन्धकस्तथा ॥५१॥ दद्रुघ्नः कुष्ठसिन्दूरं सर्वाण्येकत्र मर्दयेत्। धत्तूरनिम्बतांबूलीपत्राणां स्वरसैः पृथक् ॥५२॥ अस्य प्रलेपमात्रेण पामादद्रूविचर्चिकाः। कण्डूश्च रसकश्चैव प्रशमं याति वेगतः ॥ ५३ ॥**

अर्थ-१ चोक २ वायविडंग ३ शिग्रफ ४ गन्धक ५ पनवाढके बीज ६ कूठ ७ सिंदूर ये सात औषध समान भाग लेकर धतूरेके पत्ते तथा नीमके पत्ते और नागरवेलके पत्तोंका रस इनमें पृथक् २ खरल कर एक एकका लेप करे तो खाज दाद और विचर्चिका कंडू और रकस ( मखी खाज ) रोग ( कुष्ठरोगका भेद ) संपूर्ण दूर होवे ॥ ५१-५३ ॥

दूसरा प्रकार ।

**दूर्वाऽभया सैन्धवं च चक्रमर्दः कुठेरकः ।**
**एभिस्तक्रयुतो लेपः कंडूदद्रूविनाशकः ॥ ५४ ॥**
**दूर्वानिशायुतो लेपः कण्डू-पामाविनाशनः ।**
**क्रिमिदद्रुहरश्चैव शीतपित्तापहः स्मृतः ॥ ५५ ॥**

अर्थ–१दूब२छोटी हरड ३सेंधानमक ४ पनवाढके बीज ५ वनतुलसी ये पांच औषध समान भाग ले छाछमें पीस लेप करे तो खुजली और दाद ये दूर हो। दूब और हल्दी पीसकर लेप करनेसे खाज पामा दाद शीतपित्त और क्रिमि दूर हो ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

रक्तपित्तादिकोंपर लेप ।

**चन्दनोशीरयष्ट्याह्वाबलाव्याघ्रनखोत्पलैः ।**
**क्षीरपिष्टैः प्रलेपः स्याद्रक्तपित्तशिरोरुजि ॥ ५६ ॥**

अर्थ–१लालचन्दन२खस३मुलहटी४गंगेरनकी जड ५वघनखी६कमल ये छः औषध समान भाग ले दूधमें पीस लेप करे तो रक्तपित्तसंबंधी मस्तकपीडा दूर हो ॥ ५६ ॥

उदर्दरोगपर लेप ।

**सिद्धार्थरजनीकुष्ठप्रपुन्नाटतिलैः सह ।**
**कटुतैलेन संमिश्रमुदर्दघ्नं प्रलेपनम् ॥ ५७ ॥**

अर्थ–१ सफेद सरसों २ हल्दी ३ कूठ ४ पमारके बीज ५ तिल इन पांच औषधोंको समान भाग ले बारीक चूर्ण करके सरसोंके तेलमें मिलाके लेप करे तो शीतपित्तका भेद उदर्द रोग जो है वह दूर हो ॥ ५७ ॥

वातविसर्परोगपर लेप ।

**रास्ना नीलोत्पलं दारु चंदनं मधुकं बला ।**
**घृतक्षीरयुतो लेपो वातवीसर्पनाशनः ॥ ५८ ॥**

अर्थ–१ रास्ना २ नीलाकमल ३ देवदारु ४ लालचन्दन ५ मुलहटी ६ गंगेरनकी जड ये छः औषध समान भाग लेकर बारीक चूर्ण कर दूधमें अथवा घीमें पीसकर लेप करे तो वातविसर्प रोग दूर हो ॥ ५८ ॥

पित्तविसर्परोगपर लेप ।

**मृणालं चंदनं लोध्रमुशीरं कमलोत्पलम् ।**
**सारिवामलकं पथ्या लेपः पित्तविसर्पनुत् ॥ ५९ ॥**

अर्थ–१ कमलका डँठरा २ लालचंदन ३ लोध्र ४ खस ५ कमल ६ छोटा कमल ७ सारिवा ८ आंवले ९ छोटी हरड ये औषध समान भाग ले पानीसे पीस लेप करे तो पित्तविसर्प दूर हो ॥ ५९ ॥

कफविसर्पपर लेप ।

त्रिफलापद्मकोशीरसमंगा करवीरकम् ।
नलमूलमनंता च लेपः श्लेष्मविसर्पहा ॥ ६० ॥

अर्थ-त्रिफला ( १ हरड २ बहेडा ३ आंवला ) ४ पद्माख ५ खस ६ धायके फूल ७ कनेर ८ नरसलकी जड ९ धमासा ये नौ औषध समान भाग ले जलसे पीस लेप करे तो कफविसर्प दूर हो ॥ ६० ॥

पित्तवातरक्तपर लेप ।

मूर्वा नीलोत्पलं पद्मं शिरीषकुसुमैः सह ।
प्रलेपः पित्तवातास्रे शतधौतघृतप्लुतः ॥ ६१ ॥

अर्थ-१ मूर्वा २ नीला कमल ३ पद्माख और ४ सिरसका फूल ये चार औषध समान भाग लेकर चूर्ण करे तथा सौ वार धुले हुए घीमें इस चूर्णको मिलाके लेप करे तो पित्तवातरक्त दूर होवे ॥ ६१ ॥

नाकसे रुधिर गिरनेपर लेप ।

आमलं घृतभृष्टं तु पिष्टं कांजिकवारिभिः ।
जयेन्मूर्ध्नि प्रलेपेन रक्तं नासिकया स्रुतम् ॥ ६२ ॥

अर्थ-आंवलेको घीमे भून कांजीमे पीस मस्तकपर लेप करे तो नाकसे जो रुधिर गिरता है वह दूर होवे ॥ ६२ ॥

वातकी मस्तकपीडापर लेप ।

कुष्ठमेरंडतैलेन लेपात्कांजिकपेषितम् ।
शिरोर्तिं वातजां हन्यात्पुष्पं वा मुचुकुन्दजम् ॥ ६३ ॥

अर्थ-कूठ अथवा मुचुकुन्दके फूलोंको कांजीमे पीस उसमे अरण्डीका तेल मिलाके वातसंबन्धी मस्तकपीडा दूर होनेको लेप करे ॥ ६३ ॥

दूसरा प्रकार ।

देवदारुनतं कुष्ठं नलदं[१] विश्वभेषजम् ।
सकाञ्जिकः स्नेहयुक्तो लेपोवातशिरोऽर्तिनुत् ॥ ६४ ॥

अर्थ-१ देवदारु २ तगर ३ कूठ ४ नेत्रवाला और ५ सोठ ये पांच औषध समान भाग ले कांजीमे पीस उसमे अरंडीका तेल मिलाके लेप करे तो वातसंबन्धी मस्तकपीडा दूर होवे ॥ ६४ ॥

---

१ नलदं मासी उशीरमिति केचित् ।

पित्तशिरोरोगपर लेप।

धात्रीकसेरुह्रीबेरपद्मपद्मकचन्दनैः। दूर्वोशीरनलानां च
कुर्यात्प्रलेपनम्॥शिरोऽर्तिं पित्तजां हन्याद्रक्तपित्तरुजं तथा

अर्थ-१आँवला २ केसर ३ नेत्रवाला ४ कमल ५ पद्माख ६ रक्तचंदन
जड ८ खस और ९ नरसलकी जड इन नौ औषधोंको जलमें पीसके लेप
पित्तसंबन्धी मस्तकपीडा दूर होवे ॥ ६५ ॥

कफसम्बन्धी मस्तकपीडापर लेप।

हरेणुनतशैलेयमुस्तैलागरुदारुभिः।
मांसीरास्नारुबूकैश्च कोष्णो लेपः कफार्तिनुत् ॥ ६६

अर्थ-१ रेणुका २ तगर ३ पत्थरका फूल ४ नागरमोथा ५ इलायची ६ अग
दारु ८ जटामांसी ९ रास्ना १० अंडकी जड ये दश औषध समान भाग
जलमें पीसके कफसंबन्धी मस्तकपीडापर लेप करे तो अच्छी हो ॥ ६६ ॥

दूसरा प्रकार।

शुण्ठीकुष्ठप्रपुन्नाटदेवकाष्ठैः सरोहिषैः।
मूत्रपिष्टैः सुखोष्णश्च लेपः श्लेष्मशिरोऽर्तिनुत् ॥ ६

अर्थ-१ सोंठ २ कूठ ३पनवाडके बीज४देवदारु ५ रोहिषतृण ये पांच औ
भाग ले गोमूत्रमें पीस सुखोष्ण लेप करे तो कफसंबन्धी मस्तकपीडा दूर ह

सूर्यावर्त्त तथा अर्धभेदकपर लेप।

सारिवाकुष्ठमधुकं वचाकृष्णोत्पलैस्तथा।
लेपः सकाञ्जिकस्नेहः सूर्यावर्तार्धभेदयोः ॥ ६८ ॥

अर्थ-१ सारिवा २ कूठ ३ मुलहटी ४ वच ५ पीपल तथा ६ नीला क
औषध समान भाग लेकर कॉजीमें पीस उसमें अंडीका तेल मिलाके ले
सूर्यावर्त्त रोग, आधासीसी ये रोग दूर हों ॥ ६८ ॥

कनपटी अनंतवात तथा सर्वशिरोरोगोंपर लेप।

वरी नीलोत्पलं दूर्वा तिलाः कृष्णाः पुनर्नवा।
शंखकेऽनन्तवाते च लेपः सर्वशिरोऽर्तिजित् ॥ ६९

अर्थ-१ शतावार २ नीला कमल ३ दूब ४ काले तिल और ५ पुनर्नव
औषध समान भाग लेकर पानीमें पीस लेप करे तो कनपटीकी पीडा, अनं
सर्व मस्तकके रोग दूर हों ॥ ६९ ॥

दूसरा प्रकार।

अथ [illegible]

**द्वौ तस्य कथितौ भेदौ प्रलेपाख्यप्रदेहकौ ॥ ७० ॥**

अर्थ-इसके अनंतर बुद्धिमानोंको मान्य ऐसे दूसरे लेपकी विधि हैं तिसमें एक प्रलेपाख्य और दूसरी प्रदेहक इस प्रकार दो भेद जानने ॥ ७० ॥

उन दोनों लेपोंके उच्चत्वमें प्रमाण ।

**चर्मार्द्रं माहिषं यद्वत्प्रोन्नतं समितिस्तयोः ॥**
**शीतस्तनु विशोषी च प्रलेपः परिकीर्तितः ।**
**आर्द्रो घनस्तथोष्णः स्यात्प्रदेहः श्लेष्मवातहा ॥ ७१ ॥**

अर्थ-वे प्रलेपक और प्रदेहक ये दो लेप भैंसकी गीली चाम जितनी मोटी होती है इतने मोटे होने चाहिये । तथा उसके गुण कहते हैं कि शीतवीर्य तथा तनु अर्थात् सूक्ष्मरूप स्रोतसों ( छिद्रों ) में प्रवेश करनेवाले तथा दोषको रोधन कर्ता ऐसा प्रलेपक जानना । आर्द्र ( द्रवयुक्त ) और सघन तथा उष्ण कफवायुको दूर करनेवाला ऐसा प्रदेहक लेप जानना चाहिये ॥ ७१ ॥

दोनो प्रकारके लेप किस जगह देने ।

**रोमाभिमुखमादेयौ प्रलेपाख्यप्रदेहकौ ।**
**वीर्यं सम्यग्विशत्याशु रोमकूपैः शिरामुखैः ॥ ७२ ॥**

अर्थ-प्रलेपाख्य और प्रदेहक ये दोनों लेप रोम सन्मुख करके देवे अर्थात सब रोमोंको खडे करके लेप करे । इसका यह कारण है कि शिरारूप जो रोमरंध्र उनके द्वारा उस लेपका वीर्य उत्तम प्रकारसे शरीरमें प्रवेश करता है ॥ ७२ ॥

साधारण लेपविषयमें निषेध ।

**न रात्रौ लेपनं कुर्याच्छुष्यमाणं न धारयेत् ।**
**शुष्यमाणमुपेक्षेत प्रदेहं पीडनं प्रति ॥ ७३ ॥**

अर्थ-रात्रिमें लेप न करे । उस लेपके सूखनेपर उसको धारण न करे । कारण यह है कि लेप सूखनेपर उसको लगा रहनेसे देहको अत्यंत पीडा होती है और पीडनार्थ प्रदेहके सूखनेकी अपेक्षा उपयुक्त है ॥ ७३ ॥

रात्रिमें निषेधका हेतु ।

**तमसा पिहितो ह्यूष्मा रोमकूपमुखे स्थितः ।**
**विना लेपेन निर्याति रात्रौ नो लेपयेत्ततः ॥ ७४ ॥**

अर्थ-रात्रिमें अन्धकार करके शरीरसंबन्धी ऊष्मा आच्छादित हो रोमरंध्रमुखोंमें आकर रहती है और विना लेपके वह बाहर निकलती है इसीसे रात्रिमें लेप न करे ॥ ७४ ॥

रात्रिमें प्रलेपादिकोंकी विधि तथा योग्य प्राणी।

**रात्रावपि प्रलेपादिविधिः कार्यो विचक्षणैः।**
**अपाकिशोथे गम्भीरे रक्तश्लेष्मसमुद्भवे॥ ७५॥**

अर्थ—जिस सूजनका पाक नहीं हुआ हो उसपर तथा गंभीरसंज्ञक जो व्रण उसमें एवं रक्तकफसे उत्पन्न जो सूजन उसमे बुद्धिमान् वैद्य रात्रिमे भी लेपादिकोंकी विधि करे॥ ७५॥

व्रण दूर होनेपर लेप।

**आदौ शोथहरो लेपो द्वितीयो रक्तसेचनः। तृतीयश्चोपनाहः स्याच्चतुर्थः पाटनक्रमः॥७६॥ पञ्चमः शोधनो भूयात्षष्ठो रोपण इष्यते। सप्तमो वर्णकरणो व्रणस्यैते क्रमा मताः॥ ७७॥**

अर्थ—प्रथम व्रण संबन्धी जो सूजन होती है उसके दूर करनेको लेप करे। दूसरा लेप व्रणमे जो रुधिर जमा रहता है वह पिघल जावे ऐसा लेप करे। तीसरा लेप उपनाह कहिये पसीने निकालनेका प्रयोग है। चौथा लेप व्रण फूटे ऐसा करे। पांचवाँ लेप राध आदिका शोधन हो ऐसा करे। छठा लेप रोपण कहिये व्रण भर आवे ऐसा करे। सातवां लेप व्रणके स्थानपर कांति आवे ऐसा करे। इस प्रकार व्रण अच्छा होनेके विषयमे सात क्रम जानने। वे औषध आगे कहते हैं॥ ७६॥ ७७॥

व्रणसम्बन्धी वायुकी सूजनपर लेप।

**बीजपूरजटामांसी देवदारु महौषधम्।**
**रास्नाग्निमन्थो लेपोऽयं वातशोथविनाशनः॥ ७८॥**

अर्थ—१ बिजोरेकी जड २ जटामांसी ३ देवदारु ४ सोठ ५ रास्ना ६ अरणीकी जड ये छः औषध समान भाग लेकर पानीमें पीस व्रणसंबन्धी जो वादीकी सूजन है उसके दूर करनेको लेप करे॥ ७८॥

पित्तकी सूजनपर लेप।

**मधुकं चंदनं मूर्वा नलमूलं च पद्मकम्।**
**उशीरं बालकं पद्मं पित्तशोथे प्रलेपनम्॥ ७९॥**

अर्थ—१ मुलहठी २ लालचंदन ३ मूर्वा ४ नरसलकी जड ५ पद्माख ६ खस ७ नेत्रवाला ८ कमल ये आठ औषधि समान भाग ले जलसे पीस व्रणसंबन्धी पित्तकी सूजनपर लेप करे॥ ७९॥

कफजन्य व्रणकी सूजनपर लेप।

**कृष्णा पुराणपिण्याकं शिग्रुत्वक्सिकता शिवा।**
**मूत्रपिष्टः सुखोष्णोऽयं प्रदेहः श्लेष्मशोथहृत्॥ ८०॥**

अर्थ-१ पीपल २ पुरानी खल ३ सहँजनेकी छाल ४ खांड और ५ हरडे ये पांच औषध समान भाग ले गोमूत्रमें पीसके थोडा गरम करके कफसंबंधी सूजन दूर करनेको यह प्रदेह संज्ञक लेप करे ॥ ८० ॥

आगंतुक सूजन तथा रक्तजन्य सूजनपर लेप।

द्वे निशे चन्दने द्वे च शिवा दूर्वा पुनर्नवा । उशीरं पद्मकं लोध्रं गैरिकं च रसाञ्जनम् ॥८१॥ आगंतुके रक्तजे च शोथे कुर्यात्प्रलेपनम् ॥ ८२ ॥

अर्थ-१ हल्दी २ दारुहल्दी ३ चंदन ४ लालचंदन ५ हरड ६ दूब ७ पुनर्नवा ( सांठ ) ८ खस ९ पद्माख १० लोध ११ गेरू १२ रसोत ये बारह औषध समान भाग ले जलमें बारीक पीस आगंतुक तथा रक्तजन्य सूजन दूर होनेके वास्ते लेप करे ॥ ८१॥८२ ॥

व्रण पकनेका लेप।

शणमूलकशिग्रूणां फलानि तिलसर्षपाः ।
सक्तवः[1] किण्वमतसी[2] प्रदेहः पाचनः स्मृतः ॥ ८३ ॥

अर्थ-१ सनके बीज २ मूलीके बीज ३ सहँजनेके बीज ४ तिल ५ सरसों ६ जौके सत्तू ७ लोहकी कीटी ८ अलसीके बीज ये आठ औषध समान भाग ले व्रण पकनेको यह प्रदेहसंज्ञक लेप करे ॥ ८३ ॥

पके व्रण फोडनेका लेप।

दन्तीचित्रकमूलत्वक्स्नुह्यर्कपयसी गुडः ।
भल्लातकश्च कासीसं सैन्धवं दारणे स्मृतः ॥ ८४ ॥

अर्थ-१ दंतीकी जड २ चीतेकी छाल ३ थूहरका दूध ४ आकका दूध ५ गुड ६ भिलावे ७ हीराकसीस ८ सैंधानमक इन आठ औषधोंमेंसे छः औषधोंका चूर्ण करके उसको थूहरके दूध और आकके दूधमें मिलाके पकेहुए व्रणपर लगावे तो वह फूटजावे ॥ ८४ ॥

दूसरा प्रकार।

चिरबिल्वोऽग्निको दंती चित्रको हयमारकः ।
कपोतकंकगृध्राणां मलं लेपेन दारणम् ॥ ८५ ॥

अर्थ-१ करंजेके बीज २ कलहारी ३ भिलावे ४ दंतीकी जड ५ चीतेकी छाल ६ कनेरकी जड इन छः औषधोंका चूर्ण करे। फिर कपोत ( कबूतर वा पिंडुकिया ) कंक ( सफेद चील्ह ) और गीध इन तीनोंकी बीठ समान भाग लेकर उस चूर्णमें मिलाके पके हुए फोडेपर लेप करे तो वह फोडा तत्काल फूट जावे ॥ ८५ ॥

तीसरा प्रकार।

सर्जिका यावशूकाढ्याः क्षारा लेपेन दारणाः ।

---

१ 'सवचः' इति पाठोऽपि। २ किण्वं सुराबीजम्।

हेमक्षीर्यास्तथा लेपो व्रणे परमदारणः ॥ ८६ ॥

अर्थ–सज्जीखार और जवाखार इनका लेप फोडा फोडनेको करे। उसी प्रकार हेमक्षीरा ( चोक ) का लेप फोडेके फोडनेको उत्तम कहा है ॥ ८६ ॥

व्रणशोधन लेप।

तिल–सैन्धव-यष्ट्याह्व-निम्बपत्र-निशायुगैः।
त्रिवृद्घृतयुतैः पिष्टैः प्रलेपो व्रणशोधनः ॥ ८७ ॥

अर्थ–१तिल २ सैन्धानमक ३ मुलहठी ४ नीमके पत्ते ५ हल्दी ६ दारुहल्दी ७ निसोथ ये सात औषध समान भाग ले बारीक चूर्ण कर घीमें सानके लेप करे तो व्रणका शोधन होवे ॥ ८७ ॥

व्रणके शोधन और रोपणविषयक लेप।

निंबपत्रघृतक्षौद्रदार्वीमधुकसंयुतः।
तिलैश्च सह संयुक्तो लेपः शोधनरोपणः ॥ ८८ ॥

अर्थ–१ नीमके पत्ते २ घी ३ सहत ४ मुलहठी ५ तिल इन पांच औषधोंमेंसे तीन औषधोंका चूर्ण करके उसमें घी सहत मिलाके व्रणका शोधन और रोपण करनेके वास्ते लेप करे ॥ ८८ ॥

व्रणसम्बन्धी कृमि दूर करनेपर लेप।

करंजारिष्टनिर्गुंडीलेपो हन्याद्व्रणक्रिमीन्।
लशुनस्याथ वा लेपो हिंगुनिंबभवोऽथवा ॥ ८९ ॥

अर्थ–१ करंज २ नीम ३ निर्गुंडी इन तीन औषधोंके पत्तोंको पीस व्रणसंबंधी कृमि दूर होनेको लेप करे। अथवा केवल लहसनका लेप करे अथवा हींग और नीमके पत्ते दोनोंको एकत्र पीसके लेप करे ॥ ८९ ॥

व्रणके शोधन और रोपणपर दूसरा लेप।

निंबपत्रं तिला दंती त्रिवृत्सैन्धवमाक्षिकम्।
दुष्टव्रणप्रशमनो लेपः शोधनरोपणः ॥ ९० ॥

अर्थ–१ नीमके पत्ते २ तिल ३ दंती ४ निशोथ ५ सेंधानमक ये पांच औषध समान भाग ले बारीक चूण कर सहतमें सानके दुष्ट व्रणके शमन होने और शोधन तथा रोपण कहिये भरनेके वास्ते लेप करे ॥ ९० ॥

उदरशूलमें नाभिपर लेप।

मदनस्य फलं तिक्तां पिष्ट्वा कांजिकवारिणा ॥
कोष्णं कुर्यान्नाभिलेपं शूलशांतिर्भवेत्ततः ॥ ९१ ॥

अर्थ-१ मैनफल २ कुटकी इन दोनों औषधोंको समान भाग ले कांजीसे पीस कुछ गरम करके नाभीपर लेप करे तो पेटका शूल ( दर्द ) दूर हो ॥ ९१ ॥

वातविद्रधिपर लेप।

शिग्रुशेफालिकैरंडयवगोधूममुद्गकैः।
सुखोष्णो बहुलो लेपः प्रयोज्यो वातविद्रधौ ॥ ९२ ॥

अर्थ-१ सहँजनेकी छाल २ निर्गुंडीके पत्ते ३ अरंडकी जड ४ जौ ५ गेहूँ ६ मूँग ये छः औषध समान भाग लेकर पानीमें पीस वातविद्राधि रोग दूर होनेके वास्ते सहन हो ऐसा गरम करके गाढा लेप लगावे ॥ ९२ ॥

पित्तविद्रधिपर लेप।

पैत्तिके सर्पिषा लाजमधुकैः शर्करान्वितैः।
प्रलिम्पेत्क्षीरपिष्टैर्वा पयस्योशीरचंदनैः ॥ ९३ ॥

अर्थ-शालि चावलकी खील, मुलहठी इन दोनोका चूर्ण और खांड इन दोनोको घीमे सानके लेप करे। अथवा पयस्या(क्षीरकाकोली ) उसके अभावमें असगंध खस और लाल चंदन ये तीन औषध दूधमें पीसके लेप करे तो पित्तविद्राधि दूर हो ॥ ९३ ॥

कफविद्रधिपर लेप।

इष्टका सिकता लोहकिट्टं गोशकृता सह।
सुखोष्णश्च प्रदेहोऽयं मूत्रैः स्याच्छ्लेष्मविद्रधौ ॥ ९४ ॥

अर्थ-१ ईट २ वालूरेत ३ लोहकी कीट ४ गौका गोबर ये चार औषध समान भाग लेकर गोमूत्रमें पीसकर वह प्रदेहसंज्ञक लेप कफविद्रधिपर करे तो कफकी विद्रधि दूर हो ॥ ९४ ॥

आगन्तुकविद्रधिपर लेप।

रक्तचंदनमंजिष्ठानिशामधुकगैरिकैः।
क्षीरेण विद्रधौ लेपो रक्तागंतुनिमित्तजे ॥ ९५ ॥

अर्थ-१लालचन्दन २मँजीठ ३हल्दी ४मुलहठी ५गेरू ये पांच औषध समान भाग ले दूधमे पीस अभिघातनिमित्त करके दुष्ट हुए रुधिरसे उत्पन्न विद्रधिपर लेप करे ॥९५॥

वातगलगण्डपर लेप।

निचुलः शिग्रुबीजानि दशमूलमथापि वा।
प्रदेहो वातगण्डेषु सुखोष्णः संप्रदीयते ॥ ९६ ॥

अर्थ-१ जलवेतस २ सहँजनके बीज इन दोनोंको जलसे पीस वात गलगंड दूर होनेके वास्ते यह प्रदेहसंज्ञक लेप सहन होवे ऐसा थोडा गरम करके करे। अथवा दशमूलको पीसके लेप करे ॥ ९६ ॥

कफके गलगण्डपर लेप ।

देवदारु विशाला च कफगण्डे प्रदेहकः ॥ ९७ ॥

अर्थ-१ देवदारु २ इन्द्रायणकी जड इन दोनों औषधोंको जलमें पीस कफ-गलगण्ड दूर होनेको यह प्रदेहसंज्ञक लेप करे ॥ ९७ ॥

अपचीरोगपर लेप ।

सर्षपारिष्टपत्राणि दग्ध्वा भल्लातकैः सह ।
छागमूत्रेण संपिष्टमपचीघ्नं प्रलेपनम् ॥ ९८ ॥

अर्थ--१ सरसों २ नीमके पत्ते ३ भिलावे ये तीन औषध समान भाग लेके जला डाले । जब राख होजावे तब इस राखको बकरेके मूत्रमें सानकर अपचीरोग जो गण्डमालाका भेद है उसके दूर करनेको लेप करे ॥ ९८ ॥

गण्डमाला, अर्बुद तथा गलगण्डपर लेप ।

सर्षपाः शिवबीजानि शणबीजातसीयवान् ।
मूलकस्य च बीजानि तक्रेणाम्लेन पेषयेत् ॥ ९९ ॥
गण्डमालार्बुदं गंडं लेपेनानेन शाम्यति ।

अर्थ--१ सरसों २ सहँजनेके बीज ३ सनके बीज ४ अलसीके बीज ५ जो ६ मूलीके बीज ये छः औषध समान भाग लेकर खट्टी छाछमें पीस गंडमाला, अर्बुद और गलगंड ये रोग दूर करनेको लेप करे ॥ ९९ ॥

अपबाहुकवातरोगपर लेप ।

तक्षयित्वा क्षुरेणाङ्गं केवलानिलपीडितम् ॥ १०० ॥
तत्र प्रदेहं दद्याच्च पिष्टं गुञ्जाफलैः कृतम् ।
तेनापबाहुजा पीडा विश्वाची गृध्रसी तथा ॥ १०१ ॥
अन्यापि वातजा पीडा प्रशमं याति वेगतः ।

अर्थ-केवल वादीसे पीडित मनुष्यके अंगमें, जिस जगह वादीका कोप होवे उस स्थानको छूरेसे मूंड बाल दूर करके उस स्थानपर घुंघचीको जलमें पीसके लेप करे तो अपबाहुक वायु, विश्वाची वायु ( जो भुजामें होती है ) तथा गृध्रसी वायु (जंघा-रोग ) विशेष वायु दूर हों तथा और प्रकारके वायुसम्बन्धी रोग इस लेपकरके तत्काल दूर हो ॥ १०० ॥ १०१ ॥

श्लीपदरोगपर लेप ।

धत्तूरैरण्डनिर्गुण्डीवर्षाभूशिग्रुसर्षपैः ॥ १०२ ॥
प्रलेपः श्लीपदं हन्ति चिरोत्थमपि दारुणम् ।

अर्थ-१ धतूरेके पत्ते २ अण्डके पत्ते ३ निर्गुंडीके पत्ते ४ पुनर्नवा जडसहित ५ सहॅजनेकी छाल ६ सरसों इन औषधोंको पीस बहुत दिनका तथा दारुण श्लीपद रोग दूर होनेके वास्ते यह लेप करे ॥ १०२ ॥

कुरण्डरोगपर लेप ।

**अजाजी हपुषा कुष्ठमेरण्डबदरान्वितम् ॥ १०३ ॥**
**कांजिकेन तु संपिष्टं कुरण्डघ्नं प्रलेपनम् ।**

अर्थ-१ जीरा २ हाऊबेर ३ कूठ ४ अण्डकी जड ५ बेरकी छाल इन पांच औषधोंको समान भाग लेकर कॉजीमें पीस कुरंड ( अंडवृद्धि ) रोग दूर होनेके लिये यह लेप करना चाहिये ॥ १०३ ॥

उपदंशरोगपर लेप ।

**करवीरस्य मूलेन परिपिष्टेन वारिणा ॥ १०४ ॥**
**असाध्यापि जरत्याशु लिङ्गोत्था रुक् प्रलेपनात् ।**

अर्थ-कनेरकी जडको जलमें पीसके लेप करे तो लिंगमे जो उपदंशसंबन्धी पीडा वह असाध्य भी तत्काल दूर होवे ॥ १०४ ॥

उपदंशपर दूसरा लेप ।

**दहेत्कटाहे त्रिफलां सा मसी मधुसंयुता ॥ १०५ ॥**
**उपदंशे प्रलेपोयं सद्यो रोपयति व्रणम् ।**

अर्थ-त्रिफलेको कडाहीमें जलाके उसकी राख सहतमें मिलाके लेप करे तो लिङ्गमें जो उपदंशसंबन्धी व्रण होते हैं उनका तत्काल रोपण हो अर्थात् वह घाव तत्काल भर जावे ॥ १०५ ॥

उपदंशपर तीसरा लेप ।

**रसांजनं शिरीषेण पथ्यया च समन्वितम् ॥ १०६ ॥**
**सक्षौद्रं लेपनं योज्यमुपदंशगदापहम् ।**

अर्थ-१रसोंत २ सिरसकी छाल ३ हरड ये तीन औषध समान भाग चूर्ण कर सहतमें मिलाके लिंगपर लेप करे तो उपदंशसंबन्धी जो लिंगमें घाव आदि उपद्रव होते हैं ये तत्काल नष्ट हो ॥ १०६ ॥

अग्निदग्धपर लेप ।

**अग्निदग्धे तुगाक्षीरी प्लक्षचन्दनगैरिकैः ॥ १०७ ॥**
**सामृतैः सर्पिषा स्निग्धैरालेपं कारयेद्भिषक् ।**
**तन्दुलीयकषायैर्वा घृतमिश्रैः प्रलेपयेत् ॥ १०८ ॥**

अर्थ-१ वंशलोचन २ पिलखन ३ लाल चंदन ४ गेरू ५ गिलोय इन पांच औषधोंको समान भाग लेके चूर्ण करे। फिर घीमें मिला जिस मनुष्यकी देह अग्निसे जल गई हो उस पर लेप करे। अथवा चौलाईका काढा करके उसमें घी डालके उसका लेप करे ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

दूसरा लेप।

**यवान्न दग्ध्वा मसी कार्या तैलेन युतया तया।**
**दद्यात्सर्वाग्निदग्धेषु प्रलेपो व्रणरोपणः ॥ १०९ ॥**

अर्थ-जवोंको जलाकर राख करके तिलके तेलमें मिलाकर मनुष्यके देहपर अग्निसे जले हुए स्थानपर लेप करे तो जलनेसे जो घाव हुआ हो वह भरके शरीर जैसेका तैसा हो जावे। अग्निका जलना प्लुष्टादि भेदसे चार प्रकारका है सो माधवनिदानसे जान लेना चाहिये ॥ १०९ ॥

योनि कठोर करनेका लेप।

**पलाशोदुम्बरफलैस्तिलतैलसमन्वितैः।**
**मधुना योनिमालिंपेद्गाढीकरणमुत्तमम् ॥ ११० ॥**

अर्थ-१ पलास (ढाक) के फल २ गूलरके फल इन दोनोंका चूर्ण कर तिलके तेलमें मिलाके तथा उसमें सहत मिलाके योनिमें लेप करे तो शिथिल हुई भी योनि इस लेपसे कठोर अर्थात् तंग होजावे ॥ ११० ॥

दूसरा लेप।

**माकन्दफलसंयुक्तमधुकर्पूरलेपनात्।**
**गतेऽपि यौवने स्त्रीणां योनिर्गाढातिजायते ॥ १११ ॥**

अर्थ-आमकी मज्जा तथा कपूर इन दोनोंका चूर्ण कर सहतमें मिला योनिमें लेप करे तो वृद्धा (बुड्ढी) स्त्रीकी भी योनि सुकडके अत्यंत तंग होजावे ॥ १११ ॥

लिंग और स्तनादिककी वृद्धि करनेका लेप।

**मरीचं सैन्धवं कृष्णा तगरं बृहतीफलम्। अपामार्गस्तिलाः कुष्ठं यवा माषाश्च सर्षपाः ॥११२॥ अश्वगन्धा च तच्चूर्णं मधुना सह योजयेत्। अस्य सन्ततलेपेन मर्दनाच्च प्रजायते ॥ ११३ ॥ लिङ्गवृद्धिः स्तनोत्सेधः संहतिर्भुजकर्णयोः।**

अर्थ-१ कालीमिरच २ सैंधानमक ३ पीपल ४ तगर ५ कटेरीके फल ६ औंगाके बीज ७ काले तिल ८ कूठ ९ जौ १० उडद ११ सरसों १२ असगंध ये बारह औषध समान भाग लेकर चूर्ण कर सहतमें मिला लिंगपर निरन्तर अर्थात् नित्य प्रति

लेप कर मर्दन करे तो लिंग मोटा हो। इसी प्रकार स्त्रियोंके स्तनोंपर करे तथा भुजा और कर्ण ( कान ) पर लेप कर मर्दन करे तो इनकी वृद्धि होवे ॥ ११२॥११३ ॥

लिंगवृद्धिपर दूसरा लेप।

सिताऽश्वगंधा सिन्धूत्थं छागक्षीरैर्घृतं पचेत् ॥ ११४ ॥
तल्लेपान्मर्दनाल्लिङ्गवृद्धिः सञ्जायते परा ।

अर्थ-सफेद फूलकी असगंध और सैंधानमक ये दोनों औषध बारीक करके इस चूर्णसे चौगुना घी और घीसे चौगुना भेडका दूध ले सबको एकत्र करके चूल्हेपर चढाकर नीचे अग्नि जलावे। जब सब वस्तु जलकर केवल घीमात्र शेष रहे तब इस घीको लिंगपर लेप करके मर्दन करे तो लिंग स्थूल होवे ॥ ११४ ॥

योनिद्रावणकारी लेप।

इन्द्रवारुणिकापत्ररसैः सूतं विमर्दयेत् ॥ ११५ ॥
रक्तस्य करवीरस्य काष्ठेन च मुहुर्मुहुः ।
तल्लिप्तलिंगसंयोगाद्योनिद्रावोऽभिजायते ॥ ११६ ॥

अर्थ-इन्द्रायणके पत्तोंका रस निकालके उस रसमें पारा मिलाके लाल फूलके कनेरकी लकडीसे उसको खरल करे अर्थात् घोटे। इस प्रकार वारंवार अर्थात् जब जब रस सूख जावे तब २ और रस डालके पारेको घोटे। इस प्रकार पांच सात बार घोटके लिंगपर लेप करे। पश्चात् शिश्न और योनिका संयोग होते ही पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रीका वीर्य तत्काल पतन हो स्त्री हतवीर्य हो ॥ ११५ ॥ ११६ ॥

दुर्गंध दूर करनेका लेप।

तांबूलपत्रचूर्णं तु चूर्णं कुष्ठशिवाभवम् ।
वारिणा लेपनं कुर्याद्गात्रदौर्गंध्यनाशनम् ॥ ११७ ॥

अर्थ-१ पान २ कूठ ३ हरड इन तीनोंका चूर्ण कर जलमें मिलाके शरीरमें लेप करे तो देहसंबन्धी दुर्गंध दूर होवे ॥ ११७ ॥

दूसरा लेप।

कुलित्थसक्तवः कुष्ठं मांसी चन्दनजं रजः ॥
सक्तवश्चणकस्यैव त्वक्चैवैकत्र कारयेत् ॥ ११८ ॥
स्वेददौर्गंध्यनाशश्च जायतेऽस्यावधूलनात् ।

अर्थ-१ कुलथीका सत्तू २ कूठ ३ जटामांसी ४ सफेद चन्दन ५ चनेका भुना हुआ चून इन सबका चूर्ण करके शरीरमें इस चूर्णका अवधूलन ( मालिश ) करे तो देहमें पसीनोंका आना और देहकी दुर्गंध दूर होवे ॥ ११८ ॥

वशीकरण लेप।

**वचा सौवर्चलं कुष्ठं रजन्यो मरिचानि च।**
**एतल्लेपप्रभावेण वशीकरणमुत्तमम् ॥ ११९ ॥**

अर्थ-१ वच २ संचरनमक ३ कूठ ४ हल्दी ५ दारुहल्दी ६ काली मिरच ये छः औषध समान भाग ले, जलसे पीस शरीरमें लेप करे। यह लेप वशीकरणकर्त्ता उत्तम प्रयोग है ॥ ११९ ॥

मस्तकमें तेल धारण करनेके चार प्रकार।

**अभ्यङ्गः परिषेकश्च पिचुर्वस्तिरिति क्रमात्।**
**मूर्धतैलं चतुर्धा स्याद्बलवच्च यथोत्तरम् ॥ १२० ॥**

अर्थ-अभ्यंग कहिये मस्तकमें तेलका मर्दन और परिषेक कहिये मस्तकमें तेलको चुपडना तथा पिचु कहिये रुईके फोहेको अथवा कपडेके टुकडेको तेलमें भिगोके मस्तकपर धारण करना। और वस्ति कहिये चमडेकी वस्ति बनाके मस्तकपर तेल धारण करनेका प्रयोग। वह आगेके श्लोकमें कहा है इस प्रकार मूर्ध तैलके (मस्तकमें तेल धारण करनेके) चार भेद हैं सो क्रमसे एककी अपेक्षा दूसरा बलवान् है ॥ १२० ॥

शिरोवस्तिकी विधि।

**त्रयोऽभ्यङ्गादयः पूर्वे प्रसिद्धाः सर्वतः स्मृताः।**
**शिरोवस्तिविधिश्चात्र प्रोच्यते सुज्ञसंमतः ॥ १२१ ॥**

अर्थ-पिछले श्लोकमें कहे हुए अभ्यंग परिषेकादिक तीन प्रकार सर्वत्र स्थलोंमें प्रसिद्ध हैं तथा शिरोवस्तिकी विधि नही कही इसवास्ते बुद्धिमानोको मान्य ऐसी शिरोवस्तिकी विधि कहता हूं ॥ १२१ ॥

शिरोवस्तिका प्रकार।

**शिरोवस्तिश्चर्मणः स्याद्द्विमुखो द्वादशांगुलः ॥ १२२ ॥**
**शिरःप्रमाणं तं बद्ध्वा मस्तके माषपिष्टकैः।**
**सन्धिरोधं विधायादौ स्नेहैः कोष्णैः प्रपूरयेत् ॥ १२३ ॥**

अर्थ-मस्तकपर धारण करनेकी जो वस्ति उसको शिरोवस्ति कहते हैं। वह हरिणादिकोंके चमडेकी बनावे। उसका आकार बारह अंगुल ऊंची टोपीके समान बनाके दो मुख बनावे। तिसमें नीचेका मुख मस्तकपर आजावे ऐसा करे और ऊपरका मुख छोटा करना चाहिये। उस टोपीको मनुष्यको पहनाके नीचे जो छिद्र रहते हैं उसके चारों तरफ उडदके चूनको जलमें सानके सन्धियोंको बन्द कर देवे। पश्चात् स्नेह सहन हो ऐसा थोडा गरम करके वस्तिके ऊपरके भागपर भर देवे ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

शिरोवस्तिधारणमें प्रमाण।

**तावद्धार्यस्तु यावत्स्यान्नासानेत्रमुखस्रुतिः।**

वेदनोपशमो वापि मात्राणां वा सहस्रकम् ॥ १२४ ॥

अर्थ–नाक, नेत्र और मुख इनमें जबतक स्राव न हो तबतक अथवा मस्तकसंबंधी पीडा दूर हो तबतक अथवा वस्तिके अध्यायमे अनुवासनवस्तिकी मात्राका कालप्रमाण१०००एक हजार मात्रा पूर्ण होनेपर्यंत मस्तकपर वस्तिको धारण करे ॥ १२४ ॥

शिरोवस्तिधारणमें काल ।

विना भोजनमेवात्र शिरोवस्तिः प्रशस्यते ।
प्रयोज्यस्तु शिरोवस्तिः पञ्चसप्ताहमेव वा ॥ १२५ ॥

अर्थ–विना भोजन किये हुए मनुष्यको शिरोवस्ति करना उत्तम है और यह शिरोवस्ति पांचवें दिन अथवा सातवें दिन करनी चाहिये ॥ १२५ ॥

शिरोवस्तिके कर्म होनेके उपरांत क्रिया ।

विमोच्य शिरसो वस्तिं गृह्णीयाच्च समंततः ।
ऊर्ध्वकायं ततः कोष्णनीरैः स्नानं समाचरेत् ॥ १२६ ॥

अर्थ–मस्तकपर धारण की हुई वस्तिको चारों तरफसे एकसाथ उतार देना चाहिये, ऐसा न करे कि कही तो वस्ति लगी हुई है और कहींसे उखाडी हुई । जब वस्तिको उखाड चुके तब ऊर्ध्वकाय ( मस्तकपर ) सुहाता २ गरम जल डालके स्नान करे ॥ १२६ ॥

शिरोवस्ति देनेसे रोग दूर हो उनका कथन ।

अनेन दुर्जया रोगा वातजा यान्ति संक्षयम् ।
शिरःकंपादयस्तेन सर्वकालेषु युज्यते ॥ १२७ ॥

अर्थ–दुर्जय ( दूर करनेको अशक्य ) ऐसे शिरःकंपादिक जो वादीके रोग हैं वे इस वस्तिके देनेसे दूर होते हैं । इसवास्ते इनसे इस वस्तिकी सर्व कालमें योजना करनी चाहिये ॥ १२७ ॥

कानमें औषध डालनेकी विधि ।

स्वेदयेत्कर्णदेशं तु किञ्चिन्नुः पार्श्वशायिनः ।
मूत्रैः स्नेहै रसैः कोष्णैस्ततः कर्णं प्रपूरयेत् ॥ १२८ ॥

अर्थ–मनुष्यको कुछ करवटकी तरफ सुलाके कानके चारों तरफ पसीने युक्त करके पश्चात् गोमूत्रादिक तथा औषधोंका रस सहन हो इस प्रकार थोडा २ गरम करके कानमे डाले ॥ १२८ ॥

कानमे औषध डालके कितनी देर ठहरे ।

कर्णं तु पूरितं रक्षेच्छतं पञ्चशतानि वा ।
सहस्रं वापि मात्राणां श्रोत्रकण्ठशिरोगदे ॥ १२९ ॥

अर्थ-कर्णरोग, कण्ठरोग और मस्तकरोग ये दूर होनेके लिये कानमें जो औषध डाली हो वह सौ मात्रा अथवा पांच सौ मात्रा अथवा एक हजार मात्रा होवे तावत्काल पर्यंत कानमें रक्खे, मात्राका लक्षण आगेके श्लोकमें कहते हैं ॥ १२९ ॥

मात्राका प्रमाण।

**स्वजानुनः करावर्तं कुर्याच्छोटिकया युतम्।**
**एषा मात्रा भवेदेका सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥ १३० ॥**

अर्थ-अपने गोडेके चारों तरफ हाथको फेरके चुटकी बजावे इतने कालकी एक मात्रा होती है ऐसा निश्चय सर्वत्र है ॥ १३० ॥

रसादिक तथा तैलादिक इनका कानमें डालनेका काल।

**रसाद्यैः पूरणं कर्णे भोजनात्प्राक्प्रशस्यते।**
**तैलाद्यैः पूरणं कर्णे भास्करेऽस्तमुपागते ॥ १३१ ॥**

अर्थ-रसादिक जो औषध कानमें डालनी हो तो भोजन करनेके पूर्व डाले तथा तैलादिक जो औषध कानमें डाले वह दिन छिपनेके पश्चात् रात्रिमें डाले ॥ १३१ ॥

कर्णशूलपर औषध।

**पीतार्कपत्रमाज्येन लिप्तमग्नौ प्रतापयेत्।**
**तद्रसः श्रवणे क्षिप्तः कर्णशूलहरः परः ॥ १३२ ॥**

अर्थ-आकके पके हुए पत्तेमें घी लगाकर अग्निपर तपाकर उसका रस निकालके कानमें डाले तो कर्णशूल दूर हो ॥ १३२ ॥

कर्णशूलपर मूत्रप्रयोग।

**कर्णशूलातुरे कोष्णं बस्तमूत्रं ससैन्धवम्।**
**निक्षिपेत्तेन शाम्यन्ति शूलपाकादिका रुजः ॥ १३३ ॥**

अर्थ-बकरेके मूत्रमें सैन्धानमक डालके कुछ थोडा गरम कर कानमें डाले तो कर्णशूल और व्रणसंबन्धी पाकादिक उपद्रव दूर हों ॥ १३३ ॥

कर्णशूलपर तीसरा प्रयोग।

**शृङ्गवेरं च मधुकं मधु सैन्धवमामलम्। तिलपर्णीरसस्तैलं टंकणं निंबुकद्रवम् ॥ १३४ ॥ कदुष्णं कर्णयोर्देयमेतद्वा वेदनापहम्।**

अर्थ-१ अदरखका रस २ मुलहठी ३ सहत ४ सैंधानमक ५ आंवले ६ तिलपर्णीका रस ७ सरसोंका तेल ८ सुहागा ९ नीमका रस ये नौ औषध एकत्र कर कुछ गरम करके कानमें डाले तो कर्णसंबंधी पीडा दूर हो ॥ १३४ ॥

कर्णशूलपर चतुर्थ प्रयोग ।

**कपित्थमातुलुंगाम्लशृंगवेररसैः शुभैः ॥ १३५ ॥**
**सुखोष्णैः पूरयेत्कर्णं कर्णशूलोपशान्तये ।**

अर्थ-१ कैथके फलका रस २ बिजोरेका रस ३ अमलवेतका रस ४ अदरखका रस ये चार रस एकत्र कर कुछ २ गरम कर कर्णशूल दूर होनेके वास्ते कानमें डाले ॥ १३५ ॥

कर्णशूलपर पांचवां प्रयोग ।

**अर्काङ्कुरानम्लपिष्टांस्तैलाक्ताँल्लवणान्वितान् ॥ १३६ ॥**
**संनिदध्यात्स्नुहीकांडे कोरिते तच्छदावृते ।**
**पुटपाकक्रमं कृत्वा रसैस्तच्च प्रपूरयेत् ॥ १३७ ॥**
**सुखोष्णैस्तेन शाम्यन्ति कर्णपीडाः सुदारुणाः ।**

अर्थ-आकके अंकुर अर्थात् आगेकी कोमल २ पत्ती इनको नीबूके रसमें खरल कर उसमें थोडासा तिलका तेल और सैंधानमक डाल गोला बनावे । फिर थूहरकी गीली लकडीको भीतरसे पोली करके उसमे उस गोलेको रखके उसके चारों तरफ थूहरके पत्ते लपेटके बांध देवे, फिर उसके ऊपर गीली मिट्टी लपेटके पुटपाककी विधिसे उस औषधका पाक हो ऐसी हलकी अग्नि देवे, पश्चात् उस गोलेको बाहर निकालके पत्ते वगैरहको दूर करे । फिर उस थूहरको लकडी सहित निचोडके बाहर निकालके पत्ते वगैरहको दूर करे उस थूहरको लकडी सहित निचोडके रस निकाल लेवे । अग्निपर सुखोष्ण करके कानमें डाले तो कानमें जो बडी भारी दारुण पीडा होती हो वह दूर हो ॥ १३६ ॥ १३७ ॥

कर्णशूलपर दीपिका तैल ।

**महतः पञ्चमूलस्य काण्डान्यष्टाङ्गुलानि तु ॥ १३८ ॥**
**क्षौमेणावेष्ट्य संसिच्य तैलेनापीडयेत्ततः ।**
**यत्तैलं च्यवते तेभ्यः सुखोष्णं तेन पूरयेत् ॥ १३९ ॥**
**ज्ञेयं तद्दीपिकातैलं सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ।**
**एवं स्याद्दीपिकातैलं कुष्ठे देवतरौ तथा ॥ १४० ॥**

अर्थ-बडा पंचमूल अर्थात् बेल आदि पांच औषधोंका जड आठ २ अंगुलकी ले उनको रेशमी वस्त्रमें अथवा कपडेमे लपेट तेलमें भिगोकर अग्निसे जलावे । तथा उन जडोंको सीधी रक्खे कि जिससे तेल टपककर नीचे गिरे । उस तेलको कुछ थोडासा गरम करके कानमे डाले तो कानकी पीडा अर्थात् कानमें टीस मारना तत्काल दूर हो ।

---

१ अमलवेतके अभावमे चनेका खार अथवा चूकेका रस डालना चाहिये ।
२ पुटपाककी विधि मध्यखण्डमें स्वरसके पश्चात् कही है सो देख लेना ।

इसको दीपिकातैल कहते हैं। इसी प्रकार कूठ अथवा देवदारुका तेल निकालके कानमें डाले तो कर्णशूल दूर होवे ॥ १३८-१४० ॥

कर्णशूलपर स्योनाक तैल।

**तैलं स्योनाकमूलेन मन्देऽग्नौ परिपाचितम्।**
**हरेदाशु त्रिदोषोत्थं कर्णशूलं प्रपूरणात् ॥ १४१ ॥**

अर्थ--टेंटूकी जडको पीस कल्क करे तथा उस कल्कका चौगुना तिलका तेल लेकर दोनोंको एकत्र करे तथा उस तेलके पाक होनेके वास्ते उसमें कल्कका चौगुना जल डालके चूल्हेपर रखके मन्द २ आंचसे परिपक्क करे जब जल आदि सब जलके केवल तेलमात्र रहे तब उतारके तेलको छान किसी उत्तम शीशी आदि पात्रमें भरके रख देवे। इसको कानमें डाले तो त्रिदोषजन्य कर्णशूल दूर होवे ॥ १४१ ॥

कर्णनादपर तैल।

**कल्कक्काथेन यष्ट्याह्व-काकोली-माष-धान्यकैः।**
**सूकरस्य वसां पक्त्वा कर्णनादार्तिहारिणी ॥ १४२ ॥**

अर्थ-१ मुलहठी २ काकोलीके अभावमें असगंध ३ उडद ४ धनियां इन चार औषधोंका काढा करके उसमें इन्ही औषधोंका कल्क करके डाल देवे। तथा सूअरकी वसा अर्थात् मांसका स्नेह उस काढेमें डालके चूल्हेपर चढाकर अग्नि देकर स्नेहमात्र शेष रहे तबतक पाक करे। फिर इसको कानमें डाले तो कर्णनाद (कानोंमें शब्द हुआ करे सो) दूर हो ॥ १४२ ॥

कर्णनादादिकोंपर तैल।

**सर्जिका मूलकं शुष्कं हिंगु कृष्णा-समन्वितम्।**
**शतपुष्पा च तैस्तैलं पक्वं सूक्तं चतुर्गुणम् ॥ १४३ ॥**
**प्रणादं शूलबाधिर्यं स्रावं कर्णस्य नाशयेत्।**

अर्थ-१ सज्जीखार २ सूखी मूली ३ हींग ४ पीपल ५ सौंफ ये पांच औषध समान भाग ले पीस कल्क करे। उस कल्कका चौगुना तिलका तेल लेकर उस कल्कमें मिलावे तथा उस कल्कका चौगुना सूक्त (सिरका) लेकर तेलमें मिलावे। फिर इस तेलके पात्रको चूल्हेपर चढाकर नीचे अग्नि जलावे। जब तेलका पाक होचुके तब उतारके तेलको छानके किसी उत्तम पात्रमें भरके धर रक्खे। इस तेलको कानमें डाले तो कर्णप्रणाद कर्णशूल बहिरापना तथा कानमें पूय (राध) आदिका स्राव ये रोग दूर हो ॥ १४३ ॥

बहरेपनपर अपामार्गक्षारतैल।

**अपामार्गक्षारजले तत्क्षारं कल्कितं क्षिपेत् ॥ १४४ ॥**
**तेन पक्वं जयेत्तैलं बाधिर्यं कर्णनादकम्।**

कर्णशूलपर चतुर्थ प्रयोग ।

कपित्थमातुलुंगाम्लशृंगवेररसैः शुभैः ॥ १३५ ॥
सुखोष्णैः पूरयेत्कर्णं कर्णशूलोपशान्तये ।

अर्थ–१ कैथके फलका रस २ बिजोरेका रस ३ अमलवेतका रस ४ अदरखका रस ये चार रस एकत्र कर कुछ २ गरम कर कर्णशूल दूर होनेके वास्ते कानमें डाले ॥ १३५ ॥

कर्णशूलपर पांचवां प्रयोग ।

अर्काङ्कुरानम्लपिष्टांस्तैलाक्ताँल्लवणान्वितान् ॥ १३६ ॥
संनिदध्यात्स्नुहीकांडे कोरिते तच्छदावृते ।
पुटपाकक्रमं कृत्वा रसैस्तच्च प्रपूरयेत् ॥ १३७ ॥
सुखोष्णैस्तेन शाम्यन्ति कर्णपीडाः सुदारुणाः ।

अर्थ–आकके अंकुर अर्थात् आगेकी कोमल २ पत्ती इनको नीबूके रसमें खरल कर उसमें थोडासा तिलका तेल और सैंधानमक डाल गोला बनावे । फिर थूहरकी गीली लकडीको भीतरसे पोली करके उसमें उस गोलेको रखके उसके चारों तरफ थूहरके पत्ते लपेटके बांध देवे, फिर उसके ऊपर गीली मिट्टी लपेटके पुटपाककी विधिसे उस औषधका पाक हो ऐसी हलकी अग्नि देवे, पश्चात् उस गोलेको बाहर निकालके पत्ते वगैरहको दूर करे । फिर उस थूहरको लकडी सहित निचोडके बाहर निकालके पत्ते वगैरहको दूर करे उस थूहरको लकडी सहित निचोडके रस निकाल लेवे । अग्निपर सुखोष्ण करके कानमें डाले तो कानमें जो बडी भारी दारुण पीडा होती हो वह दूर हो ॥ १३६ ॥ १३७ ॥

कर्णशूलपर दीपिका तैल ।

महतः पञ्चमूलस्य काण्डान्यष्टाङ्गुलानि तु ॥ १३८ ॥
क्षौमेणावेष्ट्य संसिच्य तैलेनापीडयेत्ततः ।
यत्तैलं च्यवते तेभ्यः सुखोष्णं तेन पूरयेत् ॥ १३९ ॥
ज्ञेयं तद्दीपिकातैलं सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ।
एवं स्याद्दीपिकातैलं कुष्ठे देवतरौ तथा ॥ १४० ॥

अर्थ–बडा पंचमूल अर्थात् बेल आदि पांच औषधोंका जड आठ २ अंगुलकी ले उनको रेशमी वस्त्रमें अथवा कपडेमे लपेट तेलमे भिगोकर अग्निसे जलावे । तथा उन जडोंको सीधी रक्खे कि जिससे तेल टपककर नीचे गिरे । उस तेलको कुछ थोडासा गरम करके कानमे डाले तो कानकी पीडा अर्थात् कानमें टीस मारना तत्काल दूर हो ।

---

१ अमलवेतके अभावमे चनेका खार अथवा चूकेका रस डालना चाहिये ।
२ पुटपाककी विधि मध्यखण्डमें स्वरसके पश्चात् कही है सो देख लेना ।

इसको दीपिकातैल कहते हैं। इसी प्रकार कूठ अथवा देवदारुका तेल निकालके कानमें डाले तो कर्णशूल दूर होवे ॥ १३८-१४० ॥

कर्णशूलपर स्योनाक तैल।

**तैलं स्योनाकमूलेन मन्देऽग्नौ परिपाचितम्।**
**हरेदाशु त्रिदोषोत्थं कर्णशूलं प्रपूरणात् ॥ १४१ ॥**

अर्थ-टेंटूकी जडको पीस कल्क करे तथा उस कल्कका चौगुना तिलका तेल लेकर दोनोंको एकत्र करे तथा उस तेलके पाक होनेके वास्ते उसमें कल्कका चौगुना जल डालके चूल्हेपर रखके मन्द २ आंचसे परिपक्व करे जब जल आदि सब जलके केवल तेलमात्र रहे तब उतारके तेलको छान किसी उत्तम शीशी आदि पात्रमें भरके रख देवे। इसको कानमें डाले तो त्रिदोषजन्य कर्णशूल दूर होवे ॥ १४१ ॥

कर्णनादपर तैल।

**कल्ककाथेन यष्टयाह्व-काकोली-माप-धान्यकैः।**
**सूकरस्य वसां पक्त्वा कर्णनादार्तिहारिणी ॥ १४२ ॥**

अर्थ-१ मुलहठी २ काकोलीके अभावमें असगंध ३ उडद ४ धनियां इन चार औषधोंका काढा करके उसमें इन्ही औषधोंका कल्क करके डाल देवे। तथा सुअरकी वसा अर्थात् मांसका स्नेह उस काढेमें डालके चूल्हेपर चढाकर अग्नि देकर स्नेहमात्र शेष रहे तबतक पाक करे। फिर इसको कानमें डाले तो कर्णनाद (कानोंमें शब्द हुआ करे सो) दूर हो ॥ १४२ ॥

कर्णनादादिकोंपर तैल।

**सर्जिका मूलकं शुष्कं हिंगु कृष्णा-समन्वितम्।**
**शतपुष्पा च तैस्तैलं पक्वं सूक्तं चतुर्गुणम् ॥ १४३ ॥**
**प्रणादं शूलबाधिर्यं स्रावं कर्णस्य नाशयेत्।**

अर्थ-१ सज्जीखार २ सूखी मूली ३ हींग ४ पीपल ५ सौंफ ये पांच औषध समान भाग ले पीस कल्क करे। उस कल्कका चौगुना तिलका तेल लेकर उस कल्कमें मिलावे तथा उस कल्कका चौगुना सूक्त (सिरका) लेकर तेलमें मिलावे। फिर इस तेलके पात्रको चूल्हेपर चढाकर नीचे अग्नि जलावे। जब तेलका पाक होचुके तब उतारके तेलको छानके किसी उत्तम पात्रमें भरके धर रक्खे। इस तेलको कानमें डाले तो कर्णप्रणाद कर्णशूल बहिरापना तथा कानमें पूय (राध) आदिका स्राव ये रोग दूर हों ॥ १४३ ॥

बहरेपनपर अपामार्गक्षारतैल।

**अपामार्गक्षारजले तत्क्षारं कल्कितं क्षिपेत् ॥ १४४ ॥**
**तेन पक्वं जयेत्तैलं बाधिर्यं कर्णनादकम्।**

अर्थ-ओंगाकी राख कर किसी मिट्टीके पात्रमें धर उसमें उस राखसे चौगुना जल डालके रात्रिको चार प्रहर धरा रहने दे। प्रातःकाल ऊपरके पानीको लोहेकी कडाहीमें निकाल उसमें उस जलसे चौथाई तिलका तेल डाले। फिर चूल्हेपर चढाके मंद २ अग्निसे पाक करे। जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके पात्रमें धर रक्खे। इस तेलको कानमें डाले तो कानका बहिरापन तथा कर्णनाद दूर हो ॥ १४४ ॥

कर्णनाडीपर शंबूकतैल ।

शम्बूकस्य तु मांसेन पचेत्तैलं तु सार्षपम् ॥ १४५ ॥
तस्य पूरणमात्रेण कर्णनाडी प्रशाम्यति ।

अर्थ-शंबूक छोटा शंख अथवा सीपी उसका मांस और उस मांससे चौगुना सरसोंका तेल लेवे। उस तेलमें मांस डालके पकावे, जब पक्क होजावे तब मांसको निकालके दूर करे और इस तेलको कानमें डाले तो कर्णनाडी ( कर्णसंबंधीफोडा ) दूर हो ॥ १४५ ॥

कणस्रावपर औषध ।

चूर्णं पञ्चकषायाणां कपित्थरसमेव च ॥ १४६ ॥
कर्णस्रावे प्रशंसंति पूरणं मधुना सह ।

अर्थ-पंचकषाय कहिये पंचकषायसंज्ञक पांच औषध ( जिनके नाम आगेके श्लोकमे कहे हैं ) उनका चूर्ण करे। फिर कैथके रसमें इस चूर्णको और थोडा सहत डालके राध आदि स्राव दूर करनेको कानमें डाले ॥ १४६ ॥

पंचकषायसंज्ञक वृक्षोंके नाम ।

तिन्दुकान्यभया लोध्रः समंगा चामलक्यपि ॥ १४७ ॥
ज्ञेयाः पञ्चकषायास्तु कर्मण्यस्मिन्भिषग्वरैः ।

अर्थ-१ तेंदू २ हरड ३ लोध ४ मंजीठ ५ आंवला ये कर्णस्राव दूर होनेके वास्ते पंचकषायसंज्ञक वृक्ष जानने। इनके फल लेने। यह विचार प्रथमखण्डके परिभाषा अध्यायमे कह आये हैं ॥ १४७ ॥

कर्णस्रावपर औषध ।

सर्जिकाचूर्णसंयुक्तं बीजपूररसं क्षिपेत् ।
कर्णस्रावरुजो दाहाः प्रणश्यंति न संशयः ॥ १४८ ॥

अर्थ--सज्जीखारके चूर्णको बिजोरेके रसमें मिलायके कानमें डाले तो कर्णस्राव-संबन्धी पीडा और दाह ये निश्चय करके दूर हों ॥ १४८ ॥

कानसे राध बहे उसपर औषध ।

आम्रजंबूप्रवालानि मधूकस्य वटस्य च ।
एभिः संसाधितं तैलं पूतिकर्णोपशांतिकृत् ॥ १४९ ॥

अर्थ-आम जामुन महुआ और बड इन चारोंके कोमल पत्तोंको पीस कल्क करके उसमे तिलोंका तेल, उस कल्कका चौगुना डालके अग्निपर पाक करे। पश्चात् यह तेल कानमेंसे जो राध बहती है उसके दूर होनेके लिये कानमें डाले ॥ १४९ ॥

कर्णके कीडे दूर होनेपर तेल।

पूरणं हरितालेन गवां मूत्रयुतेन च।
अथवा सार्षपं तैलं कर्णकीटहरं परम् ॥ १५० ॥

अर्थ-हरतालको गोमूत्रमें औटाके कानमें डाले अथवा सरसोंका तेल कानमें डाले तो कानके कीडेको हरण करता है ॥ १५० ॥

कानका कीडा दूर होनेका दूसरा प्रयोग।

स्वरसं शिग्रुमूलस्य सूर्यावर्तरसं तथा ॥ १५१ ॥
त्र्यूषणं चूर्णितं चैव कपिकच्छूरसं तथा।
कृत्वैकत्र क्षिपेत्कर्णे कर्णकीटहरं परम् ॥ १५२ ॥

अर्थ--सहँजनेकी छालका रस, हुलहुलका रस, त्र्यूषण ( सोंठ मिरच पीपल ) और कौंचकी जडका रस ये सब रस एकत्र करके उसमे पूर्वोक्त त्रिकुटेका रस मिलाके कानके कीडे दूर करनेको कानमें डाले ॥ १५१ ॥ १५२ ॥

तीसरा प्रयोग।

सद्यो मद्यं निहन्त्याशु कर्णकीटं सुदारुणम्।
सद्यो हिंगु निहन्त्याशु कर्णकीटं सुदारुणम् ॥ १५३ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायामुत्तरखण्डे चिकित्सास्थाने लेपविधिवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अर्थ-हींग और मद्य इन दोनोंमेंसे कोईसी एक वस्तु कानमें डाले तो कानके कीडे मरजावे ॥ १५३ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखंडे श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसाद-कृतभावप्रकाशिकाभाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अर्थ-ओंगाकी राख कर किसी मिट्टीके पात्रमें धर उसमें उस राखसे चौगुना जल डालके रात्रिको चार प्रहर धरा रहने दे। प्रातःकाल ऊपरके पानीको लोहेकी कडाहीमें निकाल उसमें उस जलसे चौथाई तिलका तेल डाले। फिर चूल्हेपर चढाके मंद २ अग्निसे पाक करे। जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके पात्रमें धर रक्खे। इस तेलको कानमें डाले तो कानका बहिरापन तथा कर्णनाद दूर हो ॥ १४४ ॥

कर्णनाडीपर शंबूकतैल ।

शम्बूकस्य तु मांसेन पचेत्तैलं तु सार्षपम् ॥ १४५ ॥
तस्य पूरणमात्रेण कर्णनाडी प्रशाम्यति ।

अर्थ-शंबूक छोटा शंख अथवा सीपी उसका मांस और उस मांससे चौगुना सरसोका तेल लेवे। उस तेलमें मांस डालके पकावे, जब पक्क होजावे तब मांसको निकालके दूर करे और इस तेलको कानमें डाले तो कर्णनाडी ( कर्णसंबंधीफोडा ) दूर हो ॥ १४५ ॥

कणस्रावपर औषध ।

चूर्णं पञ्चकषायाणां कपित्थरसमेव च ॥ १४६ ॥
कर्णस्रावे प्रशंसंति पूरणं मधुना सह ।

अर्थ-पंचकषाय कहिये पंचकषायसंज्ञक पांच औषध ( जिनके नाम आगेके श्लोकमें कहे हैं ) उनका चूर्ण करे। फिर कैथके रसमें इस चूर्णको और थोडा सहत डालके राध आदि स्राव दूर करनेको कानमें डाले ॥ १४६ ॥

पंचकषायसंज्ञक वृक्षोके नाम ।

तिन्दुकान्यभया लोध्रः समंगा चामलक्यपि ॥ १४७ ॥
ज्ञेयाः पञ्चकषायास्तु कर्मण्यस्मिन्भिषग्वरैः ।

अर्थ-१ तेदू २ हरड ३ लोध ४ मंजीठ ५ आंवला ये कर्णस्राव दूर होनेके वास्ते पंचकषायसंज्ञक वृक्ष जानने। इनके फल लेने। यह विचार प्रथमखण्डके परिभाषा अध्यायमे कह आये हैं ॥ १४७ ॥

कर्णस्रावपर औषध ।

सर्जिकाचूर्णसंयुक्तं बीजपूररसं क्षिपेत् ।
कर्णस्रावरुजो दाहाः प्रणश्यंति न संशयः ॥ १४८ ॥

अर्थ-सज्जीखारके चूर्णको विजोरेके रसमें मिलायके कानमे डाले तो कर्णस्राव-संबन्धी पीडा और दाह ये निश्चय करके दूर हों ॥ १४८ ॥

कानसे राध बहे उसपर औषध ।

आम्रजंबूप्रवालानि मधूकस्य वटस्य च ।
एभिः संसाधितं तैलं पूतिकर्णोपशांतिकृत् ॥ १४९ ॥

अर्थ–आम जामुन महुआ और बड इन चारोंके कोमल पत्तोंको पीस कल्क करके उसमें तिलोंका तेल, उस कल्कका चौगुना डालके अग्निपर पाक करे। पश्चात् यह तेल कानमेंसे जो राध बहती है उसके दूर होनेके लिये कानमें डाले ॥ १४९ ॥

कर्णके कीडे दूर होनेपर तैल।

पूरणं हरितालेन गवां मूत्रयुतेन च।
अथवा सार्षपं तैलं कर्णकीटहरं परम् ॥ १५० ॥

अर्थ–हरतालको गोमूत्रमें औटाके कानमें डाले अथवा सरसोंका तेल कानमें डाले तो कानके कीडेको हरण करता है ॥ १५० ॥

कानका कीडा दूर होनेका दूसरा प्रयोग।

स्वरसं शिग्रुमूलस्य सूर्यावर्तरसं तथा ॥ १५१ ॥
त्र्यूषणं चूर्णितं चैव कपिकच्छूरसं तथा।
कृत्वैकत्र क्षिपेत्कर्णे कर्णकीटहरं परम् ॥ १५२ ॥

अर्थ--सहँजनेकी छालका रस, हुलहुलका रस, त्र्यूषण ( सोंठ मिरच पीपल ) और कौंचकी जडका रस ये सब रस एकत्र करके उसमें पूर्वोक्त त्रिकुटेका रस मिलाके कानके कीडे दूर करनेको कानमें डाले ॥ १५१ ॥ १५२ ॥

तीसरा प्रयोग।

सद्यो मद्यं निहन्त्याशु कर्णकीटं सुदारुणम्।
सद्यो हिंगु निहन्त्याशु कर्णकीटं सुदारुणम् ॥ १५३ ॥

**इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायामुत्तरखण्डे चिकित्सास्थाने लेपविधिवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥**

अर्थ–हींग और मद्य इन दोनोंमेंसे कोईसी एक वस्तु कानमें डाले तो कानके कीडे मरजावें ॥ १५३ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखंडे श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसाद-कृतभावप्रकाशिकाभाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

# अथ द्वादशोऽध्यायः १२.



रक्तस्रावकी विधि ।

**शोणितं स्रावयेज्जन्तोरामयं प्रसमीक्ष्य च ।**
**प्रस्थं[1] प्रस्थार्धकं वापि प्रस्थार्धार्धमथापि वा ॥ १ ॥**

अर्थ-मनुष्यके देहमे रुधिरजन्य कुष्ठादिक रोगोंको देखके रक्तस्राव करे अर्थात् देहसे रुधिर निकाले उसका प्रमाण १ प्रस्थ अथवा अर्धप्रस्थ अथवा १ कुडव जानना चाहिये ॥ १ ॥

रक्तस्रावका सामान्यकाल ।

**शरत्काले स्वभावेन कुर्याद्रक्तस्रुतिं नरः ।**
**त्वग्दोषग्रन्थिशोथाद्या न स्यू रक्तस्रुतेर्यतः ॥ २ ॥**

अर्थ-देहसे रुधिर काढनेसे त्वचासंबन्धी दोष व्रणादिक गाँठ और सूजन इत्यादिक रोग दूर होते हैं । इसीसे शरत्कालमें स्वभाव करके मनुष्योका रुधिरस्राव करे अर्थात् फस्त खोले ॥ २ ॥

रक्तका स्वरूप ।

**मधुरं वर्णतो रक्तमशीतोष्णं तथा गुरु ।**
**शोणितं स्निग्धविस्रं स्याद्विदाहश्चास्य पित्तवत् ॥ ३ ॥**

अर्थ-रुधिर, रस करके मीठा है, वर्ण करके लाल और गुणों करके अशीतोष्ण कहिये मन्दोष्ण भारी चिकना तथा आमगंधि है । तथा उस रुधिरकी दाहशक्ति पित्तके समान है। इस प्रकार रुधिरके रस, वर्ण और गुण आदि जानने ॥ ३ ॥

रुधिरमे पृथिव्यादिभूतोंके गुण ।

**विस्रता द्रवता रागश्चलनं[2] विलयस्तथा[3] ।**
**भूम्यादिपञ्चभूतानामेते रक्तगुणाः स्मृताः ॥ ४ ॥**

अर्थ-विस्रता ( आमगंधता ) यह पृथ्वीका गुण है, द्रवता अर्थात् पतलापन जलका गुण है, ( लाली ) अग्निका गुण है, चलन वायुका गुण और लीनता आकाशका गुण है। इस प्रकार पृथिव्यादि पांच भूतोंके पांच गुण रुधिरमें हैं ॥ ४ ॥

---

१ तन्त्रान्तरे प्रस्थे प्रस्थद्वयं च रक्तस्रावप्रमाणमुक्तम्, परं समयज्ञेन ग्रन्थकर्त्रा यदुक्तं तदेव वरम् ।

२ चलनं नैकत्रस्थितिशीलत्वम् । ३ विलय इति विलयनम् । एके लघुतेति पठन्ति ।

दुष्टरुधिरके लक्षण।

**रक्ते दुष्टे वेदना स्यात् पाको दाहश्च जायते।**
**रक्तमण्डलता कण्डूः शोथश्च पिटिकोद्गमः॥ ५॥**

अर्थ-मनुष्यका रुधिर दुष्ट होनेसे शरीरमें पीडा हो, अंग पकेके समान होकर दाह हो तथा देहमें रुधिरके चकत्ते खुजली सूजन और फुन्सी हों॥ ५॥

रुधिरवृद्धिके लक्षण।

**वृद्धे रक्तांगनेत्रत्वं शिराणां पूरणं तथा।**
**गात्राणां गौरवं निद्रा मदो दाहश्च जायते॥ ६॥**

अर्थ-रुधिरके बढनेसे शरीर और नेत्र ये लाल रंगके हों, धमन्यादि नाडी पूरित होवें, अर्थात् फूल आवें। तथा देहका भारी होना, निद्रा, मद ये उपद्रव होते हैं॥६॥

क्षीणरुधिरके लक्षण।

**क्षीणेऽम्लमधुराकांक्षा मूर्च्छा च त्वचि रूक्षता।**
**शैथिल्यं च शिराणां स्याद्वातादुन्मार्गगामिता॥ ७॥**

अर्थ-मनुष्यका रुधिर क्षीण होनेसे खटाई और मिष्टपदार्थोंके भोजनकी इच्छा हो, मूर्च्छा आवे, त्वचाका रूखापन, नाडियोंमें शिथिलता तथा वायु ऊर्ध्वमार्ग होकर गमन करती है॥ ७॥

वादीसे दूषित रुधिरके लक्षण।

**अरुणं फेनिलं रूक्षं परुषं तनु शीघ्रगम्।**
**अस्कंदि सूचिनिस्तोदं रक्तं स्याद्वातदूषितम्॥ ८॥**

अर्थ-वादीसे रुधिरके दूषित होनेसे वह लाल रंगका, झागके समान, रूक्ष, खर्दरा और हलका, शीघ्र गमन कर्त्ता और पतला होता है। तथा सुईके चुभोनेके समान पीडा होती है॥ ८॥

पित्तदूषितरुधिरके लक्षण।

**पित्तेन पीतं हरितं नीलं श्यावं च विस्रकम्।**
**अस्कन्द्युष्णं मक्षिकाणां पिपीलीनामविष्टकम्॥ ९॥**

अर्थ-पित्त करके रुधिरके दूषित होनेसे उसका रंग पीले रंगका हरे रंगका नीले रंगका अथवा श्याम रंगका होता है। वह आमगंधी उष्ण और चंचल होता है तथा उसको चेंटी और मक्खी नहीं खाती॥ ९॥

कफदूषितरुधिरके लक्षण।

**शीतं च बहुलं स्निग्धं गैरिकोदकसन्निभम्।**

मांसपेशीप्रभं स्कंदि मंदगं कफदूषितम् ॥ १० ॥

अर्थ-कफसे दूषित हुआ रुधिर स्पर्श करनेसे अत्यन्त शीतल होता है, स्निग्ध होकर गेरूके समान रंगवाला होता है, तथा मांसपेशी कहिये मांसके छोटे २ टुकडोंके समान हो, स्कंदि कहिये घन तथा मन्दगमन करनेवाला होता है ॥ १० ॥

द्विदोष तथा त्रिदोषसे दूषित रुधिरके लक्षण ।

द्विदोषदुष्टसंसृष्टं त्रिदुष्टं पूतिगन्धकम् ।
सर्वलक्षणसंयुक्तं कांजिकाभं च जायते ॥ ११ ॥

अर्थ--दो दोषोंसे दूषित हुआ रुधिर दोनों दोषोंके लक्षण करके युक्त होता है। एवं त्रिदोषसे दूषित हुए रुधिरमें सडी हुई वास आवे और वह तीनों दोषके लक्षण करके युक्त होकर काँजीके समान होता है ॥ ११ ॥

विषदूषितरुधिरके लक्षण ।

विषदुष्टं भवेच्छ्यावं नासिकोन्मार्गगं तथा ।
विस्रं कांजिकसङ्काशं सर्वकुष्ठकरं बहु ॥ १२ ॥

अर्थ--विषसे दूषित हुआ रुधिर काले रंगका होता है। ऊपरके मार्ग होकर, नासिकासे गिरता है, आमगंधी होकर काँजीके समान दीखता है तथा अतिशय करके यह दूषित रुधिर संपूर्ण कुष्ठोंको उत्पन्न करता है ॥ १२ ॥

शुद्धरुधिरके लक्षण ।

इन्द्रगोपप्रभं ज्ञेयं प्रकृतिस्थमसंहतम् ।

अर्थ--जिस रुधिरमे कोईसा विकार नहीं हो अर्थात् शुद्ध रुधिर जो अपनी प्रकृतिपर है वह इन्द्रगोप ( बीरबहूटी इस नामका कीडा लाल रंगका जो वर्षाऋतुमें होता है ) उसके समान रंगवाला और पतला होता है ।

रुधिरस्रावयोग्य रोग ।

शोथे दाहेऽङ्गपाके च रक्तवर्णेऽसृजः स्रुतौ ॥ १३ ॥ वातरक्ते तथा कुष्ठे सपीडे दुर्जयेऽनिले । पाणिरोगे श्लीपदे च विषदुष्टे च शोणिते ॥१४॥ ग्रन्थ्यर्बुदापचीक्षुद्ररोगरक्ताधिमंथिषु । विदारीस्तनरोगेषु गात्राणां सादगौरवे ॥१५॥ रक्ताभिष्यंदतंद्रायां पूतिघ्राणस्य देहके । यकृत्प्लीहविसर्पेषु विद्रधौ पिटिकोद्गमे ॥१६॥ कर्णौष्ठघ्राणवक्त्राणां पाके दाहे शिरोरुजि । उपदंशे रक्तपित्ते रक्तस्रावः प्रशस्यते ॥ १७ ॥

अर्थ-दाह सूजन तथा जिसके अंगका पाक तथा शरीर लाल रंगका हो ऐसा मनुष्य तथा जिसकी नासिका द्वारा रुधिर गिरा करे, वातरक्त कोढ तथा पीडायुक्त हो, जीतनेमें अशक्य ऐसा वादीका रोग, हाथोंका रोग, श्लीपदरोग तथा विषसे दूषित रुधिर, ग्रंथिरोग, अर्बुद, गंडमालाका भेद अपची रोग,क्षुद्ररोग, रक्ताधिमंथ (नेत्रोंका रोग), विदारीरोग, स्तनरोग, अंगोंकी शिथिलता, तथा शरीरका भारी होना, रक्ताभिष्यंद, तन्द्रा, दुर्गंधयुक्त है नाक मुख और देह जिसके,यकृत्(जिगर) प्लीहा, विसर्प, विद्रधि तथा अंगोंपर फुन्सीका होना, कान और होंठ नाक तथा मुख इनका पाक, दाह, मस्तकपीडा, उपदंश, रक्तपित्त ये विकार जिन मनुष्योंके देहमें हों उनका रुधिर वैद्यको निकालना चाहिये।ये रुधिर काढनेके योग्य हैं॥१३-१७

रुधिर निकालनेके प्रकार।

**एषु रोगेषु शृंगैर्वा जलौकालाबुकैरपि।**
**अथवापि शिरामोक्षैः कुर्याद्रक्तस्रुतिं नरः॥ १८॥**

अर्थ-पूर्वोक्त रोगोंमें वैद्य सींगी जोंक तूंबी अथवा फस्त खोलकर रुधिर निकाले१८

फस्त खोलनेके अयोग्य रोगी।

**न कुर्वीत शिरामोक्षं कृशस्यातिव्यवायिनः।क्लीबस्य भीरोर्गर्भिण्याः सूतिकापाण्डुरोगिणः॥ १९॥ पञ्चकर्मविशुद्धस्य पीतस्नेहस्य चार्शसाम्।सर्वाङ्गशोथयुक्तानामुदरश्वासकासिनाम्॥२०॥छर्द्यतीसारयुक्तानामतिस्विन्नतनोरपि।ऊनषोडशवर्षस्य गतसप्ततिकस्य च॥२१॥ आघातस्रुतरक्तस्य शिरामोक्षो न शस्यते। एषां चात्यायिके योगे जलौकाभिस्तु निर्हरेत्॥२२॥तथा च विषयुक्तानां शिरामोक्षोऽपि शस्यते।**

अर्थ-कृश (दुबला हुआ) मनुष्य, स्त्रीका संग करनेमें अत्यन्त आसक्त, नपुंसक, डरपोक, गर्भिणी स्त्री, प्रसूता स्त्री, पाण्डुरोगी, वमनादि पञ्च कर्म करके शुद्ध हुआ मनुष्य, जिसने स्नेह पान किया हो, बवासीररोगी, जिसका सर्वांग सूज गया हो, उदर रोग, श्वास, खाँसी, वमन और अतिसार इत्यादि रोगोंसे पीडित, तथा जिसके अंगोंका पसीना निकाला हो, जिस मनुष्यकी अवस्था सोलह वर्षसे न्यून (कम) हो तथा जिसकी सत्तर वर्षसे ऊपर अवस्था (उमर) होगई हो, चोट लगनेसे नासिकादिद्वारा रुधिर गिरता हो ऐसा मनुष्य, इन सब रोगियोंकी फस्त नहीं खोलनी। यदि रुधिर निकालनाही ठीक समझा जावे तो जोंक लगाके रुधिर निकाले। कादाचित् ये रोगी विषप्रयोगसे व्याप्त होवें तो उनकी फस्त खोलकरही रुधिर निकाले॥ १९-२२॥

---

१ अंग पके फोडेके समान होता है। २ ये कर्णादिक पकेके समान होकर प्रतीत हों।

वातादिकसे दूषितरक्तके निकालनेका प्रकार।

**गोशृङ्गेण जलौकाभिरलाबुभिरपि त्रिधा॥२३॥ वातपित्तक-फैर्दुष्टं शोणितं स्रावयेद्बुधः। द्विदोषाभ्यां तु संसृष्टं त्रिदोषैरपि दूषितम्॥२४॥शोणितं स्रावयेद्युक्त्या शिरामोक्षैः पदैस्तथा।**

अर्थ-वादीसे दूषित हुआ जो रुधिर उसको गौके सींगसे अर्थात् सींगी लगाके निकाले। पित्तसे दूषित रुधिरको जोंक लगाके निकाले।कफसे दूषित रुधिरको तूंबी लगाके निकाले। और जो दो दोषो करके अथवा तीन दोषों करके दूषित रुधिर उसको युक्तिपूर्वक फस्त खोलके अथवा पछनेसे निकालना चाहिये ॥ २३॥२४

सींगी आदिका रुधिरग्रहणमें प्रमाण।

**गृह्णाति शोणितं शृङ्गं दशांगुलमितं बलात् ॥ २५ ॥**
**जलौका हस्तमात्रं च तुंबी च द्वादशांगुलम् ।**
**पदमंगुलमात्रेण शिरा सर्वांगशोधिनी ॥ २६ ॥**

अर्थ-सींगी लगानेसे सिंगी अपने बलसे दश अंगुलके रुधिरको खींच लेती है, जोंक लगानेसे एक हाथके रुधिरको खींचे, तुंबी बारह अंगुलका, उस्तरा एक अंगुलके रुधिरको खींचके निकाले। एवं फस्त खोलनेसे संपूर्ण अंगका शोधन होता है ॥ २५ ॥ २६ ॥

जिसके अंगसे रुधिर नहीं निकले उसका कारण।

**शीते निरन्ने मूर्च्छार्तितन्द्राभीतिमदश्रमैः ।**
**युतानां न स्रवेद्रक्तं तथा विण्मूत्रसंगिनाम् ॥ २७ ॥**

अर्थ-शीतकालमें जिस मनुष्यने उपवास किया हो, मूर्च्छा तंद्रा भयभीत मद और श्रम इन करके युक्त हो मल और मूत्र, ये जिसने भले प्रकार न किये हों उन मनुष्योंके देहसे रुधिर नहीं निकलता ॥ २७ ॥

रुधिर न निकलनेमें औषध।

**अप्रवर्तिनि रक्ते च कुष्ठचित्रकसैन्धवैः ।**
**मर्दयेद्व्रणवक्त्रं च तेन सम्यक् प्रवर्तते ॥ २८ ॥**

अर्थ-फस्त देनेसे यदि रुधिर बाहर न आवे तो कूठ, चित्रक और सैन्धानमक इन तीन औषधोंका चूर्ण करके व्रणके मुखपर चुपडे तो रुधिर उत्तम प्रकारसे निकलने लगे ॥ २८ ॥

रुधिर निकालनेमें काल।

**तस्मान्न शीते नात्युष्णे न स्विन्ने नातितापिते ।**

अर्थ-शीतकाल तथा अत्यन्त गरमी न हो ऐसे समयमें मनुष्यके अंगका पसीना बिना निकाले और शरीर अत्यन्त तृप्त होनेपर जौकी यवागू पीकर तृप्त हुए मनुष्यका वैद्य रुधिर निकाले ॥ २९ ॥

अत्यन्त रुधिर निकलनेमें कारण।

अतिस्विन्नस्योष्णकाले तथैवातिशिराव्यधात्।
अतिप्रवर्तते रक्तं तत्र कुर्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ ३० ॥

अर्थ-मनुष्यके अंगका अत्यन्त पसीना निकालकर गरमीकी ऋतुमें रुधिर निकालनेसे तथा फस्त खोलते समय अधिक नसके कट जानेसे देहसे रुधिर अधिक निकलता है, उसके बन्द करनेका यत्न आगेके श्लोकमें कहा है ॥ ३० ॥

अत्यन्त रुधिर निकलनेपर उपाय।

अतिप्रवृत्ते रक्ते च लोध्रं सर्जरसांजनैः। यवगोधूमचूर्णैर्वा धवधन्वनगैरिकैः॥३१॥ सर्पनिर्मोकचूर्णैर्वा भस्मना क्षौमवस्त्रयोः। मुखं व्रणस्य बद्ध्वा च शीतैश्चोपचरेद्व्रणम्॥३२॥ विध्येदूर्ध्वं शिरां तां वा दहेत्क्षारेण वाग्निना। व्रणं कषायः संधत्ते रक्तं स्कन्दयते हिमम् ॥ ३३ ॥ व्रणास्यं पाचयेत् क्षारो दाहः संकोचयेच्छिराम्।

अर्थ-नसमेंसे रुधिर अत्यंत निकलने लगे तो उसके बन्द करनेको लोध, राल और रसोत इन तीनोंका चूर्ण अथवा जौ और गेहूं इनका चून अथवा धामिन जवासा और गेरू इन तीनोंका चूर्ण अथवा सांपकी कांचलीका चूर्ण अथवा रेशम और कपडेकी राख इन सब औषधोंमें जो समयपर मिल जावे उसको उस घावके मुखपर भरके दाब देवे। फिर उस व्रणपर चन्दनादिक शीतल लेपादिक उपचार करे तो रुधिर अत्यन्त निकलना बंद होवे। यदि इतने उपाय करनेपर भी रुधिर बन्द न हो तो उस नसके ऊपर फिर शस्त्रसे फस्त खोले। अथवा उस व्रणके मुखको अग्निसे दाग देवे। इत्यादि उपायोंकरके रुधिर बन्द होता है इसमें हेतु कहते हैं, कि कषाय ( लोध्रादिक चूर्ण ) व्रणके मुखको पकडता है और शीतोपचार करके रुधिर थमता है। क्षार करके व्रणका पाचन होता है तथा अग्न्यादि दाह करके शिरा ( नस ) का संकोच होता है ॥ ३१-३३ ॥

दाग देनेसे जो रोग दूर हों उनके नाम।

वामांडशोथे दक्षस्य परस्यांगुष्ठमूलजाम् ॥३४॥ दहेच्छिरां व्यत्यये तु वामांगुष्ठशिरां दहेत्। शिरादाहप्रभावेण शुष्कशोथः प्रशाम्यति ॥३५॥ विपूच्यां पाददाहेन जायतेऽग्नेः प्रदीपनम्॥संकुचन्ति यतस्तेन रसश्लेष्मवहाः शिराः ॥३६॥

यदा वृद्धिर्यकृत्प्लीह्नोः शिशोः सञ्जायतेऽसृजः । तदा तत्स्थानदाहेन संकुचत्यसृजः शिराः ॥ ३७ ॥

अर्थ-मनुष्यके बायें तरफके अण्डकोशपर सूजन हो तो दहने हाथके अँगूठेकी जडमें शिराको दाग देवे और अण्डकोशपर सूजन हो तो बायें हाथके अंगूठेकी जडमें दाग देवे तो अण्डकोशकी सूजन दूर होवे । विषूचिका होनेसे लोहकी पत्ती अथवा कडछीको तपाकर पैरोंके तलुवोंको तपावे, ऐसा करनेसे रसवाहिनी शिरा तथा कफवाहिनी शिरा, संकोच होकर अग्नि प्रदीप्त तथा विषूचिका (हैजा) दूर होती है। जिस समय बालकके पेटमें दाहिने तरफ यकृत् (कलेजा) और बाईं तरफ प्लीहा इनकी वृद्धि हो तो उस कालमें उस जगह पर दाग देवे तो यकृत् और प्लीहा ये सुकड जाते हैं ॥ ३४-३७ ॥

दुष्टरुधिर निकालनेपर जो अवशिष्ट रहे उसके गुण ।

रक्तदुष्टेऽवशिष्टेऽपि व्याधिर्नैव प्रकुप्यति । अतः स्राव्यं सावशेषं रक्ते नातिक्रमो हितः ॥ ३८ ॥ आंध्यमाक्षेपकं तृष्णां तिमिरं शिरसो रुजम् । पक्षाघातं श्वासकासौ हिक्कां दाहं च पाण्डुताम् ॥ ३९ ॥ कुरुते विस्रुतं रक्तं मरणं वा करोति च ।

अर्थ-शरीरसे दुष्ट रुधिर निकलकर थोडा अवशिष्ट रहनेसे रोगोंका प्रकोप नहीं होता इसीसे जब २ रुधिर निकाले तब २ थोडासा अवशिष्ट छोड देवे तो हितकारी होता है; संपूर्ण रुधिर निकलनेसे अन्धापन, आक्षेपवायु, प्यास, तिमिर, मस्तकपीडा, पक्षाघातवायु, श्वास, खाँसी, हिचकी, दाह और पांडुरोग ये उपद्रव होते हैं तथा मनुष्य मरणावस्थाको पहुँच जाता है । इसी वास्ते सम्पूर्ण रुधिर नहीं निकालना चाहिये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

रुधिरसे देहकी उत्पत्ति आदिका प्रकार ।

देहस्योत्पत्तिरसृजा देहस्तेनैव धार्यते ॥ ४० ॥
विना तेन व्रजेज्जीवो रक्षेद्रक्तमतो बुधः ।

अर्थ-रुधिरसे देहकी उत्पत्ति है तथा रुधिरहीसे देहका धारण होता है और रुधिरके विना जीव रहता ही नहीं है अतः बुद्धिमान् वैद्य रुधिरका रक्षण करे ॥ ४० ॥

रुधिर निकालनेपर दोष कुपित होनेका उपाय ।

शीतोपचारैः कुपिते स्रुतरक्तस्य मारुते ॥ ४१ ॥
कोष्णेन सर्पिषा शोथं सव्यथं परिषेचयेत् ।

अर्थ-रुधिर काढनेपर व्रणस्थानमें पित्तका प्रकोप होनेसे चन्दनादिक शीतल उपचार करे, वादीका प्रकोप होनेसे यदि उस व्रणके स्थानमें पीडायुक्त सूजन हो जावे तो उस स्थानमें थोडे घीको गरम करके लगावे ॥ ४१ ॥

रुधिर निकलनेपर पथ्य।

**क्षीणस्यैणशशोरभ्रहरिणच्छागमांसजः ॥ ४२ ॥**
**रसः समुचितः पाने क्षीरं वा पष्टिका हिताः।**

अर्थ–शरीरसे रुधिर काढनेसे जो मनुष्य क्षीण होगया हो उसको हरिण ससा मेढा काला हरिण तथा बकरा इनके मांसका रस सिद्ध करके पिलावे तथा सांठी चावलोंको गौके दूधमें डालके खीर करके भोजन करना अथवा गौका दूध पिलावे, सांठी चावलका भात खानेको दे। इस प्रकार ये पदार्थ सेवन करना हितकारी होता है॥४२॥

उत्तम प्रकारसे रुधिर निकालनेके लक्षण।

**पीडाशांतिर्लघुत्वं च व्याधेरुद्रेकसंक्षयः ॥ ४३ ॥**
**मनःस्वास्थ्यं भवेच्चिह्नं सम्यग्विस्राविते ऽसृजि।**

अर्थ--पीडाका नाश, देहमें हलकापन, रोगोंके उत्कर्षका भले प्रकार नाश, मनमें प्रसन्नता ये लक्षण उत्तम प्रकार रुधिर निकालनेसे होते हैं ॥ ४३ ॥

रुधिर निकलनेपर वर्जित वस्तु।

**व्यायाममैथुनक्रोध-शीतस्नान-प्रवातकान् ॥ ४४ ॥**
**एकाशनं[1] दिवानिद्रा क्षाराम्लकटुभोजनम्।**
**शोकं वादमजीर्णं च त्यजेदाबलदर्शनात् ॥ ४५ ॥**

**इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायामुत्तरखण्डे चिकित्सास्थाने रक्तमोक्षणविधिवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२ ॥**

अर्थ--परिश्रम, मैथुन, क्रोध, शीतल जलसे स्नान करना, बहुत हवा खाना, एकही धान्यका भोजन करना, दिनमें सोना, जवाखारादि खारे खट्टे तथा चरपरे पदार्थ भक्षण करना, शोक और वाद करना तथा बहुभोजनजन्य अजीर्ण इस प्रकार ये सर्व कारण शरीरमें जबतक पुरुषार्थ न आवे तबतक त्याग देने चाहिये ॥ ४४॥४५ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृत-भावप्रकाशिकाभाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

---

# अथ त्रयोदशोऽध्यायः १३.



नेत्र अच्छे होनेके वास्ते उपचार।

**सेक आश्चोतनं पिण्डी बिडालस्तर्पणं तथा।**
**पुटपाकोऽञ्जनं चैभिः[2] कल्कैर्नेत्रमुपाचरेत् ॥ १ ॥**

---

१ एकाशनम् एकभोजनम्। २ चकारात् शस्त्रकर्माण्यत्र बोद्धव्यमिति केचिदाहुः।

अर्थ-१ सेक २ आश्चोतन ३ पिंडी ४ बिडाल ५ तर्पण ६ पुटपाक और ७ अञ्जन ये सात प्रकार नेत्ररोगमें कहे हैं इनका कल्क करके जिस रीतिसे नेत्ररोगपर उपचार करना कहा है उसी प्रकार करे ॥ १ ॥

सेकके लक्षण ।

**सेकस्तु सूक्ष्मधाराभिः सर्वस्मिन्नयने हितः ।**
**मीलिताक्षस्य मर्त्यस्य प्रदेयश्चतुरंगुलम् ॥ २ ॥**

अर्थ-मनुष्यके नेत्र बन्द कराके दूध घी रस इत्यादिकोंकी संपूर्ण नेत्रपर चार अंगुलके अंतरसे धार डालनेको सेक कहते हैं ॥ २ ॥

उस सेकके स्नेहनादिभेदकरके तीन प्रकार ।

**स चापि स्नेहनो वाते रक्ते पित्ते च रोपणः ।**
**लेखनश्च कफे कार्यस्तस्य मात्राधुनोच्यते ॥ ३ ॥**

अर्थ-वातरोग होनेसे स्नेहन करे। रक्तपित्तका कोप होनेसे रोपण सेक करे तथा कफरोग होनेसे लेखन सेककी योजना करे। अब उसकी मात्रा कहते हैं ॥ ३ ॥

सेककी मात्रा ।

**षड्वाक्छतैः स्नेहनेषु चतुर्भिश्चैव रोपणे ।**
**वाक्छतैश्च त्रिभिः कार्यः सेको लेखनकर्मणि ॥ ४ ॥**

अर्थ-स्नेहनकर्ममें छःसौ अंक होने पर्यंत नेत्रोंपर जिस औषधकी कही है उसकी धार दे। रोपण कर्म हो तो चार सौ अंक तक धार डाले तथा लेखनकर्म होनेसे तीन सौ अंक हों तबतक धार डालनी चाहिये ॥ ४ ॥

सेक करनेका काल ।

**कार्यस्तु दिवसे सेको रात्रौ चात्ययिके गदे ।**

अर्थ-नेत्रोंपर सेक करना हो तो दिनमें करे। यदि रोगकी आधिक्यता होवे तो रात्रिके समय करे।

वाताभिष्यंदरोगपर ।

**एरण्डत्वक्पत्रमूलैः शृतमाजं पयो हितम् ।**
**सुखोष्णं सेचनं नेत्रे वाताभिष्यंदनाशनम् ॥ ५ ॥**

---

१ दूध घी इत्यादिक स्नेहन द्रव्यो करके नेत्रोपर धार देना। २ लोध मुलहठी त्रिफला इत्यादिक जो औषध है उनको दूधमे अथवा पानीमे पीस नेत्रोपर धार देवे। ३सोंठ मिरच इत्यादिक औषधोंको जलमे पीसके अथवा काढा करके नेत्रोंपर धार देवे।

अर्थ-अरंडकी छाल पत्ते और जड ये संपूर्ण बकरीके दूधमें औटावे पश्चात् सुखोष्ण करके गरम२ की धार वाताभिष्यंदरोग दूर होनके वास्ते नेत्रोंपर देनी चाहिये ॥५॥

वाताभिष्यदंपर दूसरा सेक।

**परिषेको हितो नेत्रे पयः कोष्णं ससैन्धवम्।**
**रजनीदारुसिद्धं वा सैन्धवेन समन्वितम् ॥ ६ ॥**
**वाताभिष्यंदशमनं हितं मारुतपर्यये।**
**शुष्काक्षिपके च हितमिदं सेचनकं तथा ॥ ७ ॥**

अर्थ-बकरीके दूधमें सैन्धानमक डाल गरम करके सहन हो ऐसी गरम २ दूधकी धार नेत्रोंपर दे। अथवा हल्दी देवदारु और सैन्धानमक इनका चूर्ण कर उसको दूधमें डालके गरम २ नेत्रोंपर धार डाले तो वाताभिष्यंद रोग वातविपर्यय तथा शुष्काक्षिपाक ये रोग दूर हों ॥ ६ ॥ ७ ॥

रक्तपित्त तथा अभिघातपर सेक।

**शाबरं मधुकं तुल्यं घृतभृष्टं सुचूर्णितम्।**
**छागक्षीरं घृतं सेकात्पित्तरक्ताभिघातजित् ॥ ८ ॥**

अर्थ-लोध और मुलहठी ये दोनों औषध समान भाग ले घीमें भून चूर्ण करके बकरीके दूधमें डाल नेत्रोंपर सेक करे। अर्थात् उस दूधकी गरम २ नेत्रोंपर धार देवे तो पित्तविकार, रुधिरविकार और अभिघातजन्य विकार दूर होवें ॥ ८ ॥

रक्ताभिष्यन्दपर सेक।

**त्रिफलालोध्रयष्टीभिः शर्कराभद्रमुस्तकैः।**
**पिष्टैः शीतांबुना सेको रक्ताभिष्यन्दनाशनः ॥ ९ ॥**

अर्थ-त्रिफला ( हरड, बहेडा, ऑवला ) लोध मुलहठी खाँड और नागरमोथेका भेद भद्रमोथा ये सब औषध समान भाग ले शीतल जलमें पीस उस पानीका नेत्रोंपर सेक करे तो रक्ताभिष्यंदरोग दूर हो। रक्ताभिष्यंद अर्थात् जिसके नेत्र रुधिरविकारसे दूखें ॥ ९ ॥

रक्ताभिष्यन्दपर दूसरा सेक।

**लाक्षा--मधुक-मञ्जिष्ठा-लोध्र-कालानुसारिवा।**
**पुण्डरीकयुतः सेको रक्ताभिष्यन्दनाशनः ॥ १० ॥**

अर्थ--१ लाख २ मुलहठी ३ मजीठ ४ लोध ५ सारिवा ६ सफेद कमल इन छः औषधोंको जलमे पीसके उस पानीकी नेत्रोंपर धार डाले तो रक्ताभिष्यंदरोग दूर होवे ॥ १० ॥

नेत्रशूलनाशक सेक।

**श्वेतलोध्रं घृते भृष्टं चूर्णितं पटविस्रुतम।**

उष्णांबुना विमृदितं सेकाच्छूलघ्नमम्बके ॥ ११ ॥

अर्थ—सफेद लोधको घृतमें भूनके चूर्ण कर लेवे फिर उसको कपडछान करके गरम जलसे पीस उस जलकी नेत्रोपर धार डाले तो नेत्रोंकी पीडा दूर होवे ॥११॥

आश्चोतनके लक्षण ।

अथ ह्याश्चोतनं कार्यं निशायां न कथंचन ॥ १२ ॥
उन्मीलितेऽक्ष्णि दृङ्मध्ये बिंदुभिर्द्व्यंगुलाद्धितम् ।

अर्थ--मनुष्यके नेत्रोंको उघाड नेत्रोंमें दो अंगुलके अंतरसे दूध काढा इत्यादिकी बूंद डालना, इसको आश्चोतन कहते हैं । यह आश्चोतन कर्म रात्रिमें कदापि न करे ॥ १२ ॥

लेखनादि आश्चोतनमें कितनी बिन्दु डाले उसका प्रमाण ।

बिंदवोऽष्टौ लेखनेषु स्नेहने दश बिन्दवः ॥ १३ ॥
रोपणे द्वादश प्रोक्तास्ते शीते कोष्णरूपिणः ।
उष्णे च शीतरूपाः स्युः सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥ १४ ॥

अर्थ—लेखनकर्म हो तो नेत्रमें आठ बूंद डाले । स्नेहकर्ममें दश बिंदु, रोपणकर्ममें बारह बिंदु डाले । वे बिंदु शीतकाल हो तो मंदोष्ण करके डाले और गरमीकी ऋतु हो तो शीतल डाले यह सर्वत्र निश्चय है ॥ १३ ॥ १४ ॥

वातादिकोंमें देनेकी योजना ।

वाते तिक्तं तथा स्निग्धं पित्ते मधुरशीतलम् ।
तिक्तोष्णरूक्षं च कफे क्रमादाश्चोतनं हितम् ॥ १५ ॥

अर्थ—वातरोगमें कटु और स्निग्ध ऐसा आश्चोतन करे, पित्तरोग हो तो मधुर तथा शीतल ऐसा करे, कफरोग हो तो कटु और उष्ण तथा रूक्ष ऐसा आश्चोतन करे । इस प्रकार आश्चोतन योजना करनेसे हितकारी होता है ॥ १५ ॥

आश्चोतनकी मात्राके लक्षण ।

आश्चोतनानां सर्वेषां मात्रा स्याद्वाक्छतं हितम् ।
निमेषोन्मेषणं पुंसामंगुल्योश्छोटिकाथ वा ॥ १६ ॥
गुर्वक्षरोच्चारणं वा वाङ्मात्रेयं स्मृता बुधैः ।

अर्थ—मनुष्यके नेत्रोंका निमेषोन्मेष कहिये पलकोंका खुलना मूँदना अथवा चुटकी बजाना, गुरु कहिये दीर्घ अक्षरका उच्चारण करना अर्थात् एक अंक बोलना इतने कालको एक वाङ्मात्रा कहते हैं । ऐसी सौ वाङ्मात्रा संपूर्ण आश्चोतन कर्मोंमे हितकारी होती है ॥ १६ ॥

---

१ अथ धाराभिधानोऽपि स्वेद. पोट्टलकेन बद्ध्वा कर्तव्यः इति सम्प्रदायः ।

वाताभिष्यन्दपर आश्चोतन ।

बिल्वादिपंचमूलेन बृहत्यरंडशिग्रुभिः ॥ १७ ॥
क्काथ आश्चोतने कोष्णो वाताभिष्यन्दनाशनः ।

अर्थ-बिल्वादि पांच औषधोंकी जड कटेरी अरण्डकी जड तथा सहँजनेकी छाल इन सब औषधोंका काढा करके उसको सुहाता २ गरम करके नेत्रोंमें बूंद डाले तो वातभिष्यंदरोग दूर होवे ॥ १७ ॥

वातजन्य तथा रक्तपित्तजन्य अभिष्यन्दपर आश्चोतन ।

अम्बुपिष्टैर्निंबपत्रैस्त्वजं लोध्रस्य लेपयेत् ॥ १८ ॥
प्रताप्य वह्निना पिष्ट्वा तद्रसो नेत्रपूरणात ।
वातोत्थं रक्तपित्तोत्थमभिष्यन्दं विनाशयेत् ॥ १९ ॥

अर्थ-नीमके पत्तोंको जलमें पीसके लोधकी छालपर लेप कर देवे । फिर उस छालको अग्निपर तपाके पीस लेवे । फिर उसका रस निकालके नेत्रोंमें बूंद डाले तो वातजन्य तथा रक्तपित्तजन्य जो अभिष्यन्द होता है वह दूर होवे ॥ १८॥१९ ॥

सर्वप्रकारके अभिष्यन्दोंपर आश्चोतन ।

त्रिफलाश्चोतनं नेत्रे सर्वाभिष्यन्दनाशनम् ।

अर्थ--त्रिफलाके काढेकी गरम २ बूंद नेत्रोंमें डाले तो सर्व प्रकारके अभिष्यन्दरोग दूर हों ।

रक्तपित्तादिजन्य अभिष्यन्दोंपर आश्चोतन ।

स्त्रीस्तन्याश्चोतनं नेत्रे रक्तपित्तानिलार्तिजित् ॥ २० ॥
क्षीरसर्पिर्घृतं वापि वातरक्तरुजं जयेत् ।

अर्थ--स्त्रीके दूधके बूँद नेत्रोंमें डाले तो रक्तपित्त तथा वादीसे होनेवाली पीडा दूर होवे। उसी प्रकार दूध, मलाई अथवा घी इनकी बिन्दु नेत्रोंमे छोडे तो वात-रक्तसंबन्धी पीडा दूर होवे ॥ २० ॥

पिण्डीके लक्षण ।

पिण्डी कवलिका प्रोक्ता बध्यते पट्टवस्त्रकैः ॥ २१ ॥
नेत्राभिष्यन्दयोग्या सा व्रणेष्वपि निबध्यते ।

अर्थ--औषधको पीस टिकिया बनाकर नेत्रोंपर रखके रेशमी कपडेकी पट्टीसे बांधे, इसको पिंडी अथवा कवलिका इस प्रकार कहते हैं। यह पिंडी नेत्राभिष्यन्द रोगपर हितकारी है तथा व्रणपर भी इसको बाँधते हैं ॥ २१ ॥

कफाभिष्यन्दपर शिरोविरेचन ।

अभिष्यन्देऽधिमन्थे च सञ्जाते श्लेष्मसम्भवे ॥ २२ ॥
स्निग्धस्विन्नोत्तमांगस्य शिरस्तीक्ष्णैर्विरेचयेत् ।

उष्णांबुना विमृदितं सेकाच्छूलघ्नमम्बके ॥ ११ ॥

अर्थ-सफेद लोधको घृतमें भूनके चूर्ण कर लेवे फिर उसको कपडछान करके गरम जलसे पीस उस जलकी नेत्रोंपर धार डाले तो नेत्रोंकी पीडा दूर होवे ॥११॥

आश्चोतनके लक्षण ।

अथ ह्याश्चोतनं कार्यं निशायां न कथंचन ॥ १२ ॥
उन्मीलितेऽक्षिण दृङ्मध्ये बिंदुभिर्द्व्यंगुलाद्धितम् ।

अर्थ--मनुष्यके नेत्रोंको उघाड नेत्रोंमें दो अंगुलके अंतरसे दूध काढा इत्यादिकी बूंद डालना, इसको आश्चोतन कहते हैं । यह आश्चोतन कर्म रात्रिमें कदापि न करे ॥ १२ ॥

लेखनादि आश्चोतनमें कितनी बिन्दु डाले उसका प्रमाण ।

बिंदवोऽष्टौ लेखनेषु स्नेहने दश बिन्दवः ॥ १३ ॥
रोपणे द्वादश प्रोक्तास्ते शीते कोष्णरूपिणः ।
उष्णे च शीतरूपाः स्युः सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥ १४ ॥

अर्थ-लेखनकर्म हो तो नेत्रमें आठ बूंद डाले । स्नेहकर्ममें दश बिंदु, रोपणकर्ममें बारह बिंदु डाले । वे बिंदु शीतकाल हो तो मंदोष्ण करके डाले और गरमीकी ऋतु हो ते। शीतल डाले यह सर्वत्र निश्चय है ॥ १३ ॥ १४ ॥

वातादिकोंमें देनेकी योजना ।

वाते तिक्तं तथा स्निग्धं पित्ते मधुरशीतलम् ।
तिक्तोष्णरूक्षं च कफे क्रमादाश्चोतनं हितम् ॥ १५ ॥

अर्थ-वातरोगमें कटु और स्निग्ध ऐसा आश्चोतन करे, पित्तरोग हो तो मधुर तथा शीतल ऐसा करे, कफरोग हो तो कटु और उष्ण तथा रूक्ष ऐसा आश्चोतन करे । इस प्रकार आश्चोतन योजना करनेसे हितकारी होता है ॥ १५ ॥

आश्चोतनकी मात्राके लक्षण ।

आश्चोतनानां सर्वेषां मात्रा स्याद्वाक्छतं हितम् ।
निमेषोन्मेषणं पुंसामंगुल्योश्छोटिकाथ वा ॥ १६ ॥
गुर्वक्षरोच्चारणं वा वाङ्मात्रेयं स्मृता बुधैः ।

अर्थ--मनुष्यके नेत्रोंका निमेषोन्मेष कहिये पलकोंका खुलना मूँदना अथवा चुटकी बजाना, गुरु कहिये दीर्घ अक्षरका उच्चारण करना अर्थात् एक अंक बोलना इतने कालको एक वाङ्मात्रा कहते हैं। ऐसी सौ वाङ्मात्रा संपूर्ण आश्चोतन कर्मोंमें हितकारी होती है ॥ १६ ॥

---

१ अथ धाराभिधानोऽपि स्वेद. पोट्टलकेन बद्ध्वा कर्तव्यः इति सम्प्रदायः ।

वाताभिष्यन्दपर आश्चोतन।

बिल्वादिपंचमूलेन बृहत्यरंडशिग्रुभिः ॥ १७ ॥
क्वाथ आश्चोतने कोष्णो वाताभिष्यन्दनाशनः।

अर्थ–बिल्वादि पांच औषधोंकी जड कटेरी अरण्डकी जड तथा सहँजनेकी छाल इन सब औषधोंका काढा करके उसको सुहाता २ गरम करके नेत्रोंमें बूंद डाले तो वातभिष्यंदरोग दूर होवे ॥ १७ ॥

वातजन्य तथा रक्तपित्तजन्य अभिष्यन्दपर आश्चोतन।

अम्बुपिष्टैर्निंबपत्रैस्त्वजं लोध्रस्य लेपयेत् ॥ १८ ॥
प्रताप्य वह्निना पिष्ट्वा तद्रसो नेत्रपूरणात्।
वातोत्थं रक्तपित्तोत्थमभिष्यन्दं विनाशयेत् ॥ १९ ॥

अर्थ–नीमके पत्तोंको जलमें पीसके लोधकी छालपर लेप कर देवे। फिर उस छालको अग्निपर तपाके पीस लेवे। फिर उसका रस निकालके नेत्रोंमें बूंद डाले तो वातजन्य तथा रक्तपित्तजन्य जो अभिष्यन्द होता है वह दूर होवे ॥ १८॥१९ ॥

सर्वप्रकारके अभिष्यन्दोंपर आश्चोतन।

त्रिफलाश्चोतनं नेत्रे सर्वाभिष्यन्दनाशनम्।

अर्थ–त्रिफलाके काढेकी गरम २ बूंद नेत्रोंमें डाले तो सर्व प्रकारके अभिष्यन्दरोग दूर हों।

रक्तपित्तादिजन्य अभिष्यन्दोंपर आश्चोतन।

स्त्रीस्तन्याश्चोतनं नेत्रे रक्तपित्तानिलार्तिजित् ॥ २० ॥
क्षीरसर्पिर्घृतं वापि वातरक्तरुजं जयेत्।

अर्थ–स्त्रीके दूधके बूँद नेत्रोंमें डाले तो रक्तपित्त तथा वादीसे होनेवाली पीडा दूर होवे। उसी प्रकार दूध, मलाई अथवा घी इनकी बिन्दु नेत्रोंमें छोडे तो वात-रक्तसंबन्धी पीडा दूर होवे ॥ २० ॥

पिण्डीके लक्षण।

पिण्डी कवलिका प्रोक्ता बध्यते पट्टवस्त्रकैः ॥ २१ ॥
नेत्राभिष्यन्दयोग्या सा व्रणेष्वपि निबध्यते।

अर्थ–औषधको पीस टिकिया बनाकर नेत्रोंपर रखके रेशमी कपडेकी पट्टीसे बाँधे, इसको पिंडी अथवा कवलिका इस प्रकार कहते हैं। यह पिंडी नेत्राभिष्यन्द रोगपर हितकारी है तथा व्रणपर भी इसको बाँधते हैं ॥ २१ ॥

कफाभिष्यन्दपर शिरोविरेचन।

अभिष्यन्देऽधिमन्थे च सञ्जाते श्लेष्मसम्भवे ॥ २२ ॥
स्निग्धस्विन्नोत्तमांगस्य शिरस्तीक्ष्णैर्विरेचयेत्।

अर्थ--कफसंबन्धी अभिष्यन्द तथा अधिमन्थ ये रोग जिस मनुष्यके होवें उसके मस्तकमें तेल मलकर स्निग्ध करे अर्थात् मस्तकके पसीने निकाले। फिर मस्तकके शोधन होनेके वास्ते तीक्ष्ण औषधकी नाकमें नस्य देवे ॥ २२ ॥

अधिमन्थरोगपर दूसरा उपचार ।

**अधिमन्थेषु सर्वेषु ललाटे वेधयेच्छिराम् ॥ २३ ॥**
**अशान्ते सर्वथा मन्थे भ्रुवोस्तु परिदाहयेत् ।**

अर्थ--संपूर्ण अधिमन्थोंमें ललाटस्थ शिरा अर्थात् मस्तककी फस्त खोलके रुधिर निकाले तो सर्व प्रकारके अधिमन्थ शान्त होवें । यदि इस प्रकार करनेपर भी रोगशांति न होवे तो भ्रुकुटीमें दाग देवे ॥ २३ ॥

अभिष्यन्दमें क्रिया ।

**अभिष्यन्देषु सर्वेषु बध्नीयात्पिण्डिकां बुधः ॥ २४ ॥**
**वाताभिष्यन्दशान्त्यर्थं स्निग्धोष्णा पिण्डिका भवेत् ।**

अर्थ--संपूर्ण अभिष्यन्द रोगोंमें नेत्रोंपर जो औषध कही है उसकी टिकिया करके बाँधे और वाताभिष्यन्द शमन होनेको स्निग्ध ( चिकनी ) और गरम ऐसी टिकिया बाँधे ॥ २४ ॥

वाताभिष्यन्दपर तथा पित्ताभिष्यन्दपर पिंडी ।

**एरण्डपत्रमूलत्वङ्‌निर्मिता वातनाशिनी ॥ २५ ॥**
**पित्ताभिष्यन्दनाशाय धात्रीपिण्डी सुखावहा ।**

अर्थ--अरण्डके पत्तेपर जड और छाल इन सबको पीसके टिकिया बनावे । इस टिकियाको वाताभिष्यन्द नाश करनेको नेत्रोंपर बाँधे । तथा पित्ताभिष्यन्द दूर करनेको आँवलोंको पीस टिकिया बनाके नेत्रोंपर बाँधे ॥ २५ ॥

पित्ताभिष्यन्दपर दूसरी पिंडी ।

**महानिम्बफलोद्भूता पिण्डी पित्तविनाशिनी ॥ २६ ॥**

अर्थ--बकायनके फलोंका पीस टिकिया बनाकर पित्ताभिष्यन्द नाश करनेको नेत्रोंपर बाँधे ॥ २६ ॥

कफाभिष्यन्दपर पिण्डी ।

**शिग्रुपत्रकृता पिण्डी श्लेष्माभिष्यन्दनाशिनी ।**

अर्थ-सहँजनेके पत्तोंको पीस टिकिया बनाकर कफाभिष्यन्द नाश करनेको नेत्रोंपर बाँधे ।

कफपित्ताभिष्यन्दपर पिण्डी ।

**निम्बपत्रकृता पिण्डी श्लेष्मपित्तहरा भवेत् ॥ २७ ॥**
**त्रिफलापिण्डिका प्रोक्ता नाशने श्लेष्मपित्तयोः ।**

अर्थ--कफपित्ताभिष्यंद दूर करनेको नीमके पत्ते पीस टिकिया बनाय नेत्रोंपर बाँधे अथवा त्रिफलाको पीस टिकिया बनाके नेत्रोंपर बाँधे तो कफपित्ताभिष्यंद रोग दूर हो ॥ २७ ॥

रक्ताभिष्यन्दपर पिंडी।

**पिष्ट्वा कांजिकतोयेन घृतभृष्टा च पिण्डिका ॥ २८ ॥**
**लोध्रस्य हरति क्षिप्रमभिष्यन्दमसृग्दरम्।**

अर्थ--लोधको काँजीमें पीस घीमें भूनके टिकिया बनावे। इसको नेत्रोंपर बाँधे तो रक्ताभिष्यंद नेत्ररोग दूर हो ॥ २८ ॥

सूजन खुजली इत्यादिकोंपर पिण्डी।

**शुण्ठीनिम्बदलैः पिण्डी सुखोष्णा स्वल्पसैन्धवा ॥ २९ ॥**
**धार्या चक्षुषि संयोगाच्छोथकण्डूव्यथापहा।**

अर्थ--सोंठ और नीमके पत्ते इनको एकत्र पीस उसमें थोडासा सैंधानमक डालके टिकिया बनावे। इसको सूजन और खुजली दूर होनेके वास्ते कुछ गरम करके नेत्रोंपर बाँधे ॥ २९ ॥

बिडालकके लक्षण।

**बिडालको बहिर्लेपो नेत्रपक्ष्मविवर्जितः ॥ ३० ॥**
**तस्य मात्रा परिज्ञेया मुखलेपविधानवत्।**

अर्थ-नेत्रोंको छोड पलकोंके बाहरके अंगमें नेत्रोंके चारों तरफ लेप करनेको बिडालक कहते हैं। इसके लेपकी मात्रा मुखलेपके विधानमें कही है उसी प्रकार जाननी ३०

सर्वनेत्ररोगोंपर लेप।

**यष्टी[1]गैरिकसिन्धूत्थदार्वी[2]तार्क्ष्यैः समांशकैः ॥ ३१ ॥**
**जलपिष्टैर्बहिर्लेपः सर्वनेत्रामयापहः।**

अर्थ--१ मुलहठी २ गेरू ३ सैंधानमक ४ दारुहल्दी ५ रसौंत इन सबको समान भाग ले पानीमे पीस नेत्रोंके बाहरके भागमें चारों तरफ लेप करे तो सर्व अभिष्यंद रोग दूर हों ॥ ३१ ॥

सर्वनेत्ररोगपर दूसरा लेप।

**रसांजनेन वा लेपः पथ्याविश्वदलै[3]रपि ॥ ३२ ॥**
**कुमारिकाग्निपत्रैर्वा दाडिमीपल्लवैरपि।**

१ एके यष्टीस्थाने पथ्यां पठन्ति। २ तदभावे दारुहरिद्रा द्विगुणा ग्राह्या तद्रूपत्वात्।
२ एतयोर्दलानि पत्राणि अथवा दलस्थाने जलँपातः। तत्र जं[illegible]

वचाहरिद्राविश्वैर्वा तथा नागरगैरिकैः ॥ ३३ ॥

अर्थ-रसोंतको जलमें पीस लेप करे अथवा हरड सोंठ और पत्रज ये तीन औषध जलमें पीसके लेप करे। अथवा घीगुवार और चीतेके पत्ते ये दो औषध जलमें पीसके लेप करे। अथवा अनारकी पत्तियोंको पीसके लेप करे। अथवा वच हल्दी और सोंठ ये तीन औषध जलमें पीसके लेप करे। उसी प्रकार सोंठ और गेरू ये दो औषध जलमें पीसके लेप करे। ये छः प्रकारके लेप नेत्रके बाहरके भागमें चारों-तरफ करनेसे सर्व प्रकारके नेत्ररोग दूर होवें ॥ ३२-३३ ॥

सर्वनेत्ररोगोंपर तीसरा लेप ।

दग्ध्वाग्नौ सैन्धवं लोध्रं मधूच्छिष्टयुते घृते ।
पिष्टमंजनलेपाभ्यां सद्यो नेत्ररुजापहम् ॥ ३४ ॥

अर्थ-सैंधानमक और लोध इन दोनों औषधोंको अग्निमें जलाके मोम और घीमें सान लेवे, फिर खुब बारीक करके नेत्रोंमें अञ्जन करे और बाहरके भागमें उन औषधोंका लेप करे तो नेत्रसंबंधी पीडा तत्काल दूर होवे॥ ३४ ॥

चौथा लेप ।

लोहस्य पात्रे संघृष्टो रसो निंबुफलोद्भवः ।
किञ्चिद्घनो बहिर्लेपान्नेत्रबाधां व्यपोहति ॥ ३५ ॥

अर्थ-लोहेके पात्रमें नींबूके रसको घोटे। जब कुछ गाढा होजावे तब नेत्रोंके बाहरके भागमें लेप करे तो नेत्रसंवन्धी पीडा दूर हो ॥ ३५ ॥

अर्मरोगपर लेप ।

संचूर्ण्य मरिचं केशराजस्वरसमर्दनात् ।
लेपनादर्मणां नाशं करोत्येष प्रयोगराट् ॥ ३६ ॥

अर्थ-काली मिरचोंको भांगरेके रसमें पीसके नेत्रोंपर लेप करे तो शुक्लार्म तथा अधिमांसार्म इत्यादिक नेत्ररोगोंमें जो अर्मरोग हैं वह दूर होवें ॥ ३६ ॥

अञ्जननामिका फुन्सीपर लेप ।

स्विन्नां भित्त्वा विनिष्पीड्य भिन्नामञ्जननामिकाम् ।
शिलैलानतसिन्धूत्थैः सक्षौद्रैः प्रतिसारयेत् ॥ ३७ ॥

अर्थ-नेत्रके कोयोंमें जो अंजननामिका फुन्सी होतीहै उसको स्वेदयुक्त करके अर्थात् वफारेसे पसीने निकालके फोड डाले और चारों तरफसे दाबके मल निकाल डाले। फिर मनशिल इलायची तगर और सैंधानमक इन चार पदार्थोंका चूर्ण कर सहतमें मिलाकर फुन्सीमें प्रतिसारण करे अर्थात् उस औषधको उस फुन्सीके ऊपर चुपडे तो अंजननामिका फुन्सी ( गुहेरी ) दूर होवे ॥ ३७ ॥

नेत्ररोगपर तर्पण ।

**अथ तर्पणकं वच्मि नेत्रतृप्तिकरं परम् । यद्रूक्षं परिशुष्कं च नेत्रं कुटिलमाविलम् ॥ ३८ ॥ शीर्णपक्ष्म शिरोत्पातकृच्छ्रोन्मीलनसंयुतम् । तिमिरार्जुनशुक्राद्यैरभिष्यन्दाधिमन्थकैः ॥३९॥ शुक्राक्षिपाकशोथाभ्यां युक्तं वातविपर्ययैः । तन्नेत्रं तर्पणे योज्यं नेत्रकर्मविशारदैः ॥ ४० ॥**

अर्थ-नेत्रोंको तृप्त करता ऐसा तर्पण कहता हूं । जिस नेत्रोंमें रूक्षता शुष्कता था कोपन तथा गदलाहट होवे ऐसे प्रकारके नेत्ररोग तथा जिसमें पलकोंके बाल ताते रहे हों, शिरोत्पातक, कृच्छ्रोन्मीलन, तिमिर, अर्जुन, शुक्र ( फूला, ) अभिष्यंद, अधिमन्थ, शुक्राक्षिपाक, सूजन, वातविपर्यय इतने रोगों करके व्याप्त जो नेत्र उनमें वैद्य तर्पण करे अर्थात् नेत्रोंकी तृप्तिकारी औषध उनमें डाले॥३८-४०॥

तर्पण अयोग्य प्राणी ।

**दुर्दिनात्युष्णशीतेषु चिन्तायासभ्रमेषु च ।**
**अशांतोपद्रवे चाक्ष्णि तर्पणं न प्रशस्यते ॥ ४१ ॥**

अर्थ-दुर्दिन ( मेघाच्छादित दिवस ) अत्यंत गरमी और शीतकाल होनेसे शरीरमें चिन्ता परिश्रम और भ्रम ये उपद्रव होनेसे तथा नेत्रसंबंधी शूलादिक उपद्रव शान्त न होनेसे यह तर्पण मात्राकी योजना न करे ॥ ४१ ॥

तर्पणका विधान ।

**वातातपरजोहीने देशे चोत्तानशायिनः । आधारौ माषचूर्णेन क्लिन्नेन परिमण्डलौ ॥ ४२ ॥ समौ दृढावसंबाधौ कर्तव्यौ नेत्रकोशयोः । पूरयेद् घृतमण्डेन विलीनेन सुखोदकैः ॥४३॥ अथवा शतधौतेन सर्पिषा क्षीरजेन वा । निमग्नान्याक्षिपक्ष्माणि यावत्स्युस्तावदेव हि ॥ ४४ ॥ पूरयेन्मीलिते नेत्रे तत उन्मीलयेच्छनैः ।**

अर्थ-पवन गरमी तथा धूल ये जिस जगह न होवें उस स्थानमें मनुष्यको चित्त लिटाके नेत्रकोशमें अर्थात् नेत्रके चारों ओर भीगे हुए उडदोंके चूनका दृढ तथा उत्तम गोल और समान मंडल बनावे । फिर नेत्रोंको बन्द करके उस मण्डलमें पतला घी भर देवे । अथवा मंड ( पिछु-मांड ) अथवा सुखोष्णजल अथवा सौ बार

१ कथमुन्मीलयेत्तदाह चरकः-"ततो वस्त्रेण पीतेन नीलेन हरितेन वा । पत्रैराच्छाद्य तपने ततः पश्येद्यथासुखम् "

धुला हुआ घी अथवा दूध ये पदार्थ जहांतक नेत्रोंके पलक न डूबें वहांतक भरे अर्थात् तबतक पतली २ धार डाल, फिर धीरे २ नेत्रोंको खोले ॥ ४२-४४ ॥

तर्पणमात्राका प्रमाण ।

धारयेद्वर्त्मरोगेषु वाङ्मात्राणां शतं बुधः ॥ ४५ ॥ स्वच्छे कफे संधिरोगे मात्रापञ्चशतं हितम्‌॥शुक्के च षट्शतं कृष्ण-रोगे सप्तशतं मतम् ॥४६॥ दृष्टिरोगेष्वष्टशतमधिमंथे सह-स्रकम् ॥ सहस्रं वातरोगेषु धार्यमेवं हि तर्पणम् ॥ ४७ ॥

अर्थ-नेत्रसंबन्धी पलकोंके रोगमें सौ वाङ्मात्रा होनेपर्यंत तर्पणरूप नेत्रोंमें धारण करे, केवल कफरोग हो तो नेत्रोंके संधिगत रोग होनेसे पांच सौ मात्रा धारण करे, नेत्रोंके सफेद भागमें रोग होनेसे छः सौ मात्रा, काली पुतलीमें रोग होनेसे सात सौ मात्रा, दृष्टिरोग होनेसे आठ सौ, मात्रा, अधिमन्थरोग होनेसे एक हजार मात्रा, तथा वातरोग होनेसे एक हजार मात्रा तर्पणरूप औषधको धारण करे । इस प्रकार मात्राका प्रमाण जानना ॥ ४५-४७ ॥

तर्पणद्वारा कफकी अधिकता होनेमें उपाय ।

स्विन्नेन यवपिष्टेन स्नेहवीर्येरितं ततः ।
यथास्वं धूमपानेन कफमस्य विशोधयेत् ॥ ४८ ॥

अर्थ--तर्पणके स्नेह वीर्य करके उत्पन्न हुए कफको दूर करनेके लिये जौ भिगोकर हुक्केमें धरके पीवे । इस प्रकार कफको शोधन करना चाहिये ॥ ४८ ॥

तर्पणप्रयोग कितने दिन करे उसकी मर्यादा ।

एकाहं वा त्र्यहं वापि पञ्चाहं चेष्यते परम् ।

अर्थ-नेत्रोंमें तर्पणप्रयोग करना हो तो एक दिन अथवा तीन दिन अथवा पांच दिन पर्यन्त करे । यह उत्कृष्ट प्रमाण जानना ।

तर्पणकी तृप्तिके लक्षण ।

तर्पणे तृप्तिलिङ्गानि नेत्रस्येमानि भावयेत् ॥ ४९ ॥
सुखस्वप्नावबोधत्वं वैशद्यं वर्णपाटवम् ।
निवृत्तिर्व्याधिशांतिश्च क्रियालाघवमेव च ॥ ५० ॥

अर्थ-सुखपूर्वक निद्राका आना और यथेष्ट जागना, नेत्रोकी कांति उत्तम हो, दृष्टि ( नजर ) स्वच्छ ( साफ ) हो, रोगोका नाश और क्रियालाघव ( नेत्रोंका खुलना मूँदनारूप क्रियाका हलकापन ) हो । ये लक्षण तर्पण करके नेत्र तृप्त होनेसे होते हैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥

तर्पण अधिक होनेके लक्षण ।

अथ साश्रु गुरु स्निग्धं नेत्रं स्यादतितर्पितम् ।

अर्थ—अति तर्पण करके नेत्र अत्यंत तृप्त होनेसे जल आवे, नेत्रोंका भारीपन तथा चिकनाहट होती है ।

हीनतर्पणके लक्षण ।

**रूक्षमस्राविलं रुग्णं नेत्रं स्याद्धीनतर्पितम् ॥ ५१ ॥**

अर्थ—हीन तर्पण करके नेत्र तृप्त होनेसे तेजरहित हों, लाल रंगके हों, दूखें तथा रोगों करके व्याप्त हों ॥ ५१ ॥

तर्पण करके नेत्र अतिस्निग्ध तथा हीनस्निग्ध होनेमें यत्न ।

**रूक्षस्निग्धोपचाराभ्यामेतयोः स्यात्प्रतिक्रिया ।**

अर्थ—तर्पण करके अतिस्निग्ध नेत्रको रूक्ष उपायों करके अच्छा करे । हीनस्निग्ध नेत्रोंकी स्निग्धोपचारों करके चिकित्सा करे अर्थात् रूक्षोंको चिकने पदार्थों करके और चिकनोंको रूक्ष पदार्थों करके अच्छा करना चाहिये ।

पुटपाक ।

**अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि पुटपाकस्य साधनम्॥५२॥द्वौ बिल्वमात्रौ मांसस्य पिंडौ स्निग्धौ सुपेषितौ । द्रव्याणां बिल्वमात्रं तु द्रवाणां कुडवो मतः ॥५३॥ तदेकस्थं समालोड्य पत्रैः सुपरिवेष्टितम् ॥ पुटपाकेन तत्पक्त्वा गृह्णीयात्तद्रसं बुधः ॥ ५४ ॥ तर्पणोक्तविधानेन यथावदुपचारयेत् ।**

अर्थ—इसके उपरांत पुटपाक साधनकी क्रिया कहते हैं—हरिणादिकोंका मांस दो बिल्व लेकर उसको घृतादिक स्नेहपदार्थके साथ मिलाके बारीक पीसे, सूखी औषध जो कही है वह एक बिल्व ले । तथा दूध जल इत्यादिक द्रवपदार्थ एक कुडव ले ये सब वस्तु उस मांसमें मिलायके उस मांसका गोला बनावे । फिर जामुन अथवा आम इत्यादिकोंके पत्तोंको उस मांसके गोलेके चारों तरफ लपेटके उसपर मिट्टीका लेप करे । पश्चात् पुटपाककी विधिसे उस गोलेको अग्निमें सिद्ध करे, फिर उसकी मिट्टी और पत्तोको दूर करके उस गोलेको निचोडके रस निकाल लेवे और तर्पणकी विधिके अनुसार इस रसको नेत्रोंमें डाले ( बिल्व नाम पलका है ) मध्यखण्डमे स्वरसाध्यायमें पुटपाककी विधि कही है ॥ ५२--५४ ॥

पुटपाकसम्बन्धी रस नेत्रोंमें डालनेका विधान ।

**दृष्टिमध्ये निषेच्यः स्यान्नित्यमुत्तानशायिनः ।**
**स्नेहनो लेखनश्चैव रोपणश्चेति स त्रिधा ॥ ५५ ॥**

---

१ अस्रैर्नेत्रजलैराविलं कलुषीकृतम् ।

धुला हुआ घी अथवा दूध ये पदार्थ जहांतक नेत्रोंके पलक न डूबें वहांतक भरे अर्थात् तबतक पतली २ धार डाल, फिर धीरे २ नेत्रोंको खोले ॥ ४२-४४ ॥

तर्पणमात्राका प्रमाण ।

**धारयेद्वर्त्मरोगेषु वाङ्मात्राणां शतं बुधः ॥ ४५ ॥ स्वच्छे कफे संधिरोगे मात्रापञ्चशतं हितम्।शुक्के च षट्शतं कृष्ण-रोगे सप्तशतं मतम् ॥४६॥ दृष्टिरोगेष्वष्टशतमधिमंथे सह-स्रकम् ॥ सहस्रं वातरोगेषु धार्यमेवं हि तर्पणम् ॥ ४७ ॥**

अर्थ-नेत्रसंबन्धी पलकोंके रोगमें सौ वाङ्मात्रा होनेपर्यंत तर्पणरूप नेत्रोंमें धारण करे, केवल कफरोग हो तो नेत्रोंके संधिगत रोग होनेसे पांच सौ मात्रा धारण करे, नेत्रोंके सफेद भागमें रोग होनेसे छः सौ मात्रा, काली पुतलीमें रोग होनेसे सात सौ मात्रा, दृष्टिरोग होनेसे आठ सौ, मात्रा, अधिमन्थरोग होनेसे एक हजार मात्रा, तथा वातरोग होनेसे एक हजार मात्रा तर्पणरूप औषधको धारण करे । इस प्रकार मात्राका प्रमाण जानना ॥ ४५-४७ ॥

तर्पणद्वारा कफकी अधिकता होनेमें उपाय ।

**स्विन्नेन यवपिष्टेन स्नेहवीर्येरितं ततः ।**
**यथास्वं धूमपानेन कफमस्य विशोधयेत् ॥ ४८ ॥**

अर्थ--तर्पणके स्नेह वीर्य करके उत्पन्न हुए कफको दूर करनेके लिये जौ भिगोकर हुक्केमें धरके पीवे । इस प्रकार कफको शोधन करना चाहिये ॥ ४८ ॥

तर्पणप्रयोग कितने दिन करे उसकी मर्यादा ।

**एकाहं वा त्र्यहं वापि पञ्चाहं चेष्यते परम् ।**

अर्थ-नेत्रोंमें तर्पणप्रयोग करना हो तो एक दिन अथवा तीन दिन अथवा पांच दिन पर्यन्त करे । यह उत्कृष्ट प्रमाण जानना ।

तर्पणकी तृप्तिके लक्षण ।

**तर्पणे तृप्तिलिङ्गानि नेत्रस्येमानि भावयेत् ॥ ४९ ॥**
**सुखस्वप्नावबोधत्वं वैशद्यं वर्णपाटवम् ।**
**निवृत्तिर्व्याधिशांतिश्च क्रियालाघवमेव च ॥ ५० ॥**

अर्थ-सुखपूर्वक निद्राका आना और यथेष्ट जागना, नेत्रोकी कांति उत्तम हो, दृष्टि ( नजर ) स्वच्छ ( साफ ) हो, रोगोका नाश और क्रियालाघव ( नेत्रोंका खुलना मूँदनारूप क्रियाका हलकापन ) हो । ये लक्षण तर्पण करके नेत्र तृप्त होनेसे होते हैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥

तर्पण अधिक होनेके लक्षण ।

**अथ साश्रु गुरु स्निग्धं नेत्रं स्यादतितर्पितम् ।**

अर्थ—अति तर्पण करके नेत्र अत्यंत तृप्त होनेसे जल आवे, नेत्रोंका भारीपन तथा चिकनाहट होती है।

हीनतर्पणके लक्षण।

रूक्षमस्राविलं रुग्णं नेत्रं स्याद्धीनतर्पितम् ॥ ५१ ॥

अर्थ—हीन तर्पण करके नेत्र तृप्त होनेसे तेजरहित हों, लाल रंगके हों, रूखे तथा रोगों करके व्याप्त हों ॥ ५१ ॥

तर्पण करके नेत्र अतिस्निग्ध तथा हीनस्निग्ध होनेमें यत्न।

रूक्षस्निग्धोपचाराभ्यामेतयोः स्यात्प्रतिक्रिया।

अर्थ—तर्पण करके अतिस्निग्ध नेत्रको रूक्ष उपायों करके अच्छा करे। हीनस्निग्ध नेत्रोंकी स्निग्धोपचारों करके चिकित्सा करे अर्थात् रूखोंको चिकने पदार्थों करके और चिकनोंको रूक्ष पदार्थों करके अच्छा करना चाहिये।

पुटपाक।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि पुटपाकस्य साधनम्॥५२॥द्वौ बिल्व-मात्रौ मांसस्य पिंडौ स्निग्धौ सुपेषितौ। द्रव्याणां बिल्वमात्रं तु द्रवाणां कुडवो मतः॥५३॥ तदेकस्थं समालोड्य पत्रैः सुपरिवेष्टितम् ॥ पुटपाकेन तत्पक्त्वा गृह्णीयात्तद्रसं बुधः ॥ ५४ ॥ तर्पणोक्तविधानेन यथावदुपचारयेत्।

अर्थ—इसके उपरांत पुटपाक साधनकी क्रिया कहते हैं—हरिणादिकोंका मांस दो बिल्व लेकर उसको घृतादिक स्नेहपदार्थके साथ मिलाके बारीक पीसे, सवी औषध जो कही है वह एक बिल्व ले। तथा दूध जल इत्यादिक द्रवपदार्थ एक कुडव ले ये सब वस्तु उस मांसमें मिलायके उस मांसका गोला बनावे। फिर जामुन अथवा आम इत्यादिकोंके पत्तोंको उस मांसके गोलेके चारों तरफ लपेटके उसपर मिट्टीका लेप करे। पश्चात् पुटपाककी विधिसे उस गोलेको अग्निमें सिद्ध करे, फिर उसकी मिट्टी और पत्तोंको दूर करके उस गोलेको निचोडके रस निकाल लेवे और तर्पणकी विधिके अनुसार इस रसको नेत्रोंमें डाले ( बिल्व नाम पलका है ) मध्यखण्डमें स्वरसाध्यायमें पुटपाककी विधि कही है ॥ ५२--५४ ॥

पुटपाकसम्बन्धी रस नेत्रोंमें डालनेका विधान।

दृष्टिमध्ये निषेच्यः स्यान्नित्यमुत्तानशायिनः।
स्नेहनो लेखनश्चैव रोपणश्चेति स त्रिधा ॥ ५५ ॥

---

१ अस्रैर्नेत्रजलैराविलं कलुषीकृतम्।

धुला हुआ घी अथवा दूध ये पदार्थ जहांतक नेत्रोंके पलक न डूबें वहांतक भरे अर्थात् तबतक पतली २ धार डाल, फिर धीरे २ नेत्रोंको खोले ॥ ४२-४४ ॥

तर्पणमात्राका प्रमाण ।

**धारयेद्वर्त्मरोगेषु वाङ्मात्राणां शतं बुधः ॥ ४५ ॥ स्वच्छे कफे संधिरोगे मात्रापञ्चशतं हितम् ॥ शुक्के च षट्शतं कृष्णरोगे सप्तशतं मतम् ॥४६॥ दृष्टिरोगेष्वष्टशतमधिमंथे सहस्रकम् ॥ सहस्रं वातरोगेषु धार्यमेवं हि तर्पणम् ॥ ४७ ॥**

अर्थ-नेत्रसंबन्धी पलकोंके रोगमें सौ वाङ्मात्रा होनेपर्यंत तर्पणरूप नेत्रोंमें धारण करे, केवल कफरोग हो तो नेत्रोके संधिगत रोग होनेसे पांच सौ मात्रा धारण करे, नेत्रोंके सफेद भागमे रोग होनेसे छः सौ मात्रा, काली पुतलीमें रोग होनेसे सात सौ मात्रा, दृष्टिरोग होनेसे आठ सौ, मात्रा, अधिमन्थरोग होनेसे एक हजार मात्रा, तथा वातरोग होनेसे एक हजार मात्रा तर्पणरूप औषधको धारण करे। इस प्रकार मात्राका प्रमाण जानना ॥ ४५-४७ ॥

तर्पणद्वारा कफकी अधिकता होनेमें उपाय ।

**स्विन्नेन यवपिष्टेन स्नेहवीर्येरितं ततः ।**
**यथास्वं धूमपानेन कफमस्य विशोधयेत् ॥ ४८ ॥**

अर्थ--तर्पणके स्नेह वीर्य करके उत्पन्न हुए कफको दूर करनेके लिये जौ भिगोकर हुक्केमें धरके पीवे। इस प्रकार कफको शोधन करना चाहिये ॥ ४८ ॥

तर्पणप्रयोग कितने दिन करे उसकी मर्यादा ।

**एकाहं वा त्र्यहं वापि पञ्चाहं चेष्यते परम् ।**

अर्थ-नेत्रोंमें तर्पणप्रयोग करना हो तो एक दिन अथवा तीन दिन अथवा पांच दिन पर्यन्त करे। यह उत्कृष्ट प्रमाण जानना ।

तर्पणकी तृप्तिके लक्षण ।

**तर्पणे तृप्तिलिङ्गानि नेत्रस्येमानि भावयेत् ॥ ४९ ॥**
**सुखस्वप्नावबोधत्वं वैशद्यं वर्णपाटवम् ।**
**निवृत्तिर्व्याधिशांतिश्च क्रियालाघवमेव च ॥ ५० ॥**

अर्थ-सुखपूर्वक निद्राका आना और यथेष्ट जागना, नेत्रोकी कांति उत्तम हो, दृष्टि ( नजर ) स्वच्छ ( साफ ) हो, रोगोका नाश और क्रियालाघव ( नेत्रोंका खुलना मूँदनारूप क्रियाका हलकापन ) हो। ये लक्षण तर्पण करके नेत्र तृप्त होनेसे होते हैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥

तर्पण अधिक होनेके लक्षण ।

**अथ साश्रु गुरु स्निग्धं नेत्रं स्यादतितर्पितम् ।**

अर्थ–अति तर्पण करके नेत्र अत्यंत तृप्त होनेसे जल आवे, नेत्रोंमें भारीपन तथा चिकनाहट होती है ।

हीनतर्पणके लक्षण ।

**रूक्षमस्राविलं रुग्णं नेत्रं स्याद्धीनतर्पितम् ॥ ५१ ॥**

अर्थ–हीन तर्पण करके नेत्र तृप्त होनेसे तेजरहित हों, रूखे मैलके हों, दुखें तथा रोगों करके व्याप्त हों ॥ ५१ ॥

तर्पण करके नेत्र अतिस्निग्ध तथा हीनस्निग्ध होनेसे यत्न ।

**रूक्षस्निग्धोपचाराभ्यामेतयोः स्यात्प्रतिक्रिया ।**

अर्थ–तर्पण करके अतिस्निग्ध नेत्रको रूक्ष उपायों करके अच्छा करे । हीनस्निग्ध नेत्रोंकी स्निग्धोपचारों करके चिकित्सा करे अर्थात् रूखोंको चिकने पदार्थों करके और चिकनोंको रूक्ष पदार्थों करके अच्छा करना चाहिये ।

पुटपाक ।

**अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि पुटपाकस्य साधनम्॥५२॥द्वौ बिल्वमात्रौ मांसस्य पिंडौ स्निग्धौ सुपेषितौ । द्रव्याणां बिल्वमात्रं तु द्रवाणां कुडवो मतः ॥५३॥ तदेकस्थं समालोड्य पत्रैः सुपरिवेष्टितम् ॥ पुटपाकेन तत्पक्त्वा गृह्णीयात्तद्रसं बुधः ॥ ५४ ॥ तर्पणोक्तविधानेन यथावदुपचारयेत् ।**

अर्थ–इसके उपरांत पुटपाक साधनकी क्रिया कहते है–हरिणादिकोंका मांस दो बिल्व लेकर उसको घृतादिक स्नेहपदार्थके साथ मिलाके बारीक पीसे, सब्बी औषध जो कही है वह एक बिल्व ले । तथा दूध जल इत्यादिक द्रवपदार्थ एक कुडव ले ये सब वस्तु उस मांसमें मिलायके उस मांसका गोला बनावे । फिर जामुन अथवा आम इत्यादिकोंके पत्तोंको उस मांसके गोलेके चारों तरफ लपेटके उसपर मिट्टीका लेप करे । पश्चात् पुटपाककी विधिसे उस गोलेको अग्निमें सिद्ध करे, फिर उसकी मिट्टी और पत्तोंको दूर करके उस गोलेको निचोडके रस निकाल लेवे और तर्पणकी विधिके अनुसार इस रसको नेत्रोंमें डाले ( बिल्व नाम पलका है ) मध्यखण्डमें स्वरसाध्यायमें पुटपाककी विधि कही है ॥ ५२–५४ ॥

पुटपाकसम्बन्धी रस नेत्रोंमे डालनेका विधान ।

**दृष्टिमध्ये निषेच्यः स्यान्नित्यमुत्तानशायिनः ।**
**स्नेहनो लेखनश्चैव रोपणश्चेति स त्रिधा ॥ ५५ ॥**

---

१ अस्रैर्नेत्रजलैराविलं कलुषीकृतम् ।

अर्थ–वह पुटपाकसम्बन्धी रस स्नेहन, लेखन और रोपण इन भेदों करके तीन प्रकारका है । उस मनुष्यको चित्त लिटाके नेत्रोंमें दृष्टिके मध्यभागमें नित्य डालना चाहिये ॥ ५५ ॥

स्नेहादि भेदकरके पुटपाककी योजना ।

हितः स्निग्धोऽतिरूक्षस्य स्निग्धस्यापि हि लेखनः ।
दृष्टेर्बलार्थमितरः पित्तासृग्व्रणवातनुत् ॥ ५६ ॥

अर्थ–रूक्षनेत्रोंमें स्निग्ध पुटपाक और स्निग्ध नेत्रोंमे लेखन पुटपाककी योजना करे तथा दृष्टिमें बल आनेके लिये इतर कहिये रोपण पुटपाककी योजना करे । वह पुटपाक नेत्रसम्बन्धी दुष्ट हुए रुधिर व्रण और वायु इनको दूर करे । इनकी पृथक्२ योजना आगेके श्लोकोंमें कही है ॥ ५६ ॥

स्नेहनपुटपाक ।

सर्पिर्मांसवसामज्जामेदःस्वाद्वौषधैः कृतः ।
स्नेहनः पुटपाकस्तु धार्यो द्वे वाक्छते दृशोः ॥ ५७ ॥

अर्थ–घी हरिणादिकोंका मांस वसा मज्जा और मेदा ये सब घीमे मिलाके पीसे । तथा स्वादु औषध कहिये काकोल्यादिगणकी औषधोका चूर्ण करके उस मांसादिकमे मिलाके गोला करे । उस गोलेके चारों तरफ जामुन आंब इत्यादिकोंके पत्ते लपेट उसपर मिट्टी लगाके पुटपाककी विधिसे अग्नि देवे । पश्चात् उस गोलेको बाहर निकाल मिट्टी और पत्तोंको दूर करके रस निचोड लेवे । इस रसको नेत्रोंमें डाले और जबतक दो सौ मात्रा होवे तबतक इसको धारण करे । इसको स्नेहनपुटपाक कहते हैं ॥ ५७ ॥

लेखनपुटपाक ।

जाङ्गलानां यकृन्मांसैर्लेखनद्रव्यसंयुतैः ॥ ५८ ॥
कृष्णलोहरजस्ताम्रशंखविद्रुमसिंधुजैः ।
समुद्रफेनकासीसस्रोतोजदधिमस्तुभिः ॥ ५९ ॥
लेखनो वाक्छतं धार्यस्तस्य तावद्विधारणम् ।

अर्थ–हरिणादिकोके कलेजेका मांस लोहचूर्ण तांबेका चूर्ण शंख मूँगा सैंधानमक समुद्रफेन हीराकसीस सुरमा तथा बकरीके दहीका तोड ये नौ लेखन द्रव्य जानने ।

---

१ तर्पण और पुटपाक दोनोमे नेत्रोके चारो तरफ उडदके आटेका घरासा बना करके रस डालते है परन्तु तर्पणरूप औषध नेत्र मूँदके ऊपर गेरते है और पुटपाकसम्बन्धी रस नेत्रोंको खोलकर नेत्रोके बीचमें डाला जाता है केवल इतना ही भेद है ।

इनका चूर्ण करके उसी मांसमें मिला दे तथा उसमें दहीका तोड ( दहीका जल ) मिलाके गोला करे । और इसको पुटपाककी विधि ( जो पूर्व कह आये हैं उसी प्रकार ) से सिद्ध करे । पश्चात् उसको बाहर निकाल निचोडकर रस निकाल लेवे । इसको नेत्रोंमें डालके सौ वाङ्मात्रा होने पर्यंत धारण करे । इसको लेखन पुटपाक कहते हैं ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

रोपण पुटपाक ।

स्तन्यजांगलमध्वाज्य-तिक्तद्रव्यपाचितः ॥ ६० ॥
लेखनात्त्रिगुणो धार्यः पुटपाकस्तु रोपणः ।
वितरेत्तर्पणोक्तां तु क्रियां व्यापत्तिदर्शने ॥ ६१ ॥

अर्थ—स्त्रीके स्तनका दूध हरिणादिकोंका मांस मधु घी और कडवी इन संपूर्ण औषधोंको पूर्वोक्त हरिणादिकके मांसमें मिलाके गोला बनावे । तथा इसको पुट-पाककी विधिसे परिपक्व करके बाहर निकाल पत्ते मिट्टी दूर करके रस निचोड लेवे । इसको नेत्रोंमें डालके तीन सौ वाङ्मात्रा होनेपर्यंत धारण करे । इसको रोपणपुट-पाक कहते हैं । यदि पुटपाकके अधिक अथवा न्यून होनेसे नेत्रोंमें भारीपना तथा निस्तेजता इत्यादिक उपद्रव होवें तो तर्पणमें जैसी क्रिया लिखी है उसी प्रकार उस पुटपाकके हीनाधिक्य होनेमें करनी चाहिये ॥ ६० ॥ ६१ ॥

संपक्वदोष होनेसे अञ्जन तथा साधारण अञ्जनका विधान ।

अथ संपक्वदोषस्य प्राप्तमञ्जनमाचरेत् । हेमन्ते शिशिरे चैव मध्याह्नेऽञ्जनमिष्यते ॥ ६२ ॥ पूर्वाह्णे चापराह्णे च ग्रीष्मे शरदि चेष्यते । वर्षासु नाभ्रे नात्युष्णे वसंते च सदैव हि ॥ ६३ ॥

अर्थ—दोषोंका परिपाक[1] होनेपर अर्थात् पांच दिनके पश्चात् अंजनादिक करे । तथा अंजनकी साधारण विधि कहते हैं कि, हेमन्तऋतु ( मार्गशीर्ष और पौष ) तथा शिशिरऋतु ( माघ फाल्गुन ) इनमें मध्याह्नकालमें ( दो प्रहर दिन चढनेपर ) नेत्रोंमें अंजन करे । ग्रीष्मऋतु ( ज्येष्ठ आषाढ ) और शरदृतु ( आश्विन कार्त्तिक ) इनमें दो प्रहर दिन चढनेके पूर्व और तीसरे प्रहरमें अंजन करे । वर्षाऋतु ( श्रावण भाद्रपद ) और बादलोंके होनेपर तथा अत्यन्त गरमीमें न अंजन करे । एवं वसंत ऋतुमें सर्वकाल अंजन करना चाहिये ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

---

१ जिस प्राणीके नेत्र जिस दिन दूखनेको आवें उस दिनसे लेकर पांच दिनके पश्चात् दोष परिपक्व होते है ।

अर्थ--वह पुटपाकसम्बन्धी रस स्नेहन, लेखन और रोपण इन भेदों करके तीन प्रकारका है। उस मनुष्यको चित्त लिटाके नेत्रोंमें दृष्टिके मध्यभागमें नित्य डालना चाहिये ॥ ५५ ॥

स्नेहादि भेदकरके पुटपाककी योजना ।

हितः स्निग्धोऽतिरूक्षस्य स्निग्धस्यापि हि लेखनः ।
दृष्टेर्बलार्थमितरः पित्तासृग्व्रणवातनुत् ॥ ५६ ॥

अर्थ--रूक्षनेत्रोंमें स्निग्ध पुटपाक और स्निग्ध नेत्रोंमें लेखन पुटपाककी योजना करे तथा दृष्टिमे बल आनेके लिये इतर कहिये रोपण पुटपाककी योजना करे। वह पुटपाक नेत्रसम्बन्धी दुष्ट हुए रुधिर व्रण और वायु इनको दूर करे। इनकी पृथक्२ योजना आगेके श्लोकोमे कही है ॥ ५६ ॥

स्नेहनपुटपाक ।

सर्पिर्मांसवसामज्जामेदःस्वाद्वौषधैः कृतः ।
स्नेहनः पुटपाकस्तु धार्यो द्वे वाक्छते दृशोः ॥ ५७ ॥

अर्थ--घी हरिणादिकोंका मांस वसा मज्जा और मेदा ये सब घीमे मिलाके पीसे। तथा स्वादु औषध कहिये काकोल्यादिगणकी औषधोंका चूर्ण करके उस मांसादिकमे मिलाके गोला करे। उस गोलेके चारों तरफ जामुन आंब इत्यादिकोंके पत्ते लपेट उसपर मिट्टी लगाके पुटपाककी विधिसे अग्नि देवे। पश्चात् उस गोलेको बाहर निकाल मिट्टी और पत्तोंको दूर करके रस निचोड लेवे। इस रसको नेत्रोंमें डाले और जबतक दो सौ मात्रा होवे तबतक इसको धारण करे। इसको स्नेहनपुटपाक कहते है ॥ ५७ ॥

लेखनपुटपाक ।

जाङ्गलानां यकृन्मांसैर्लेखनद्रव्यसंयुतैः ॥ ५८ ॥
कृष्णलोहरजस्ताम्रशंखविद्रुमसिंधुजैः ।
समुद्रफेनकासीसस्रोतोजदधिमस्तुभिः ॥ ५९ ॥
लेखनो वाक्छतं धार्यस्तस्य तावद्विधारणम् ।

अर्थ--हरिणादिकोंके कलेजेका मांस लोहचूर्ण तांबेका चूर्ण शंख मूँगा सैधानमक समुद्रफेन हीराकसीस सुरमा तथा बकरीके दहीका तोड ये नौ लेखन द्रव्य जानने।

---

१ तर्पण और पुटपाक दोनोमे नेत्रोंके चारो तरफ उडदके आटेका घरासा बना करके रस डालते है परन्तु तर्पणरूप औषध नेत्र मूँदके ऊपर गेरते है और पुटपाकसम्बन्धी रस नेत्रोको खोलकर नेत्रोंके बीचमें डाला जाता है केवल इतना ही भेद है।

इनका चूर्ण करके उसी मांसमें मिला दे तथा उसमें दहीका तोड ( दहीका जल ) मिलाके गोला करे। और इसको पुटपाककी विधि ( जो पूर्व कह आये हैं उसी प्रकार ) से सिद्ध करे। पश्चात् उसको बाहर निकाल निचोडकर रस निकाल लेवे। इसको नेत्रोंमें डालके सौ वाङ्मात्रा होने पर्यन्त धारण करे। इसको लेखन पुटपाक कहते हैं ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

रोपण पुटपाक।

स्तन्यजांगलमध्वाज्य-तिक्तकद्रव्यपाचितः ॥ ६० ॥
लेखनात्त्रिगुणो धार्यः पुटपाकस्तु रोपणः।
वितरेत्तर्पणोक्तां तु क्रियां व्यापत्तिदर्शने ॥ ६१ ॥

अर्थ—स्त्रीके स्तनका दूध हरिणादिकोंका मांस सहत घी और कुटकी इन संपूर्ण औषधोंको पूर्वोक्त हरिणादिकके मांसमें मिलाके गोला बनावे। तथा इसको पुटपाककी विधिसे परिपक्व करके बाहर निकाल पत्ते मिट्टी दूर करके रस निचोड लेवे। इसको नेत्रोंमें डालके तीन सौ वाङ्मात्रा होनेपर्यंत धारण करे। इसको रोपणपुटपाक कहते हैं। यदि पुटपाकके अधिक अथवा न्यून होनेसे नेत्रोंमें भारीपना तथा निस्तेजता इत्यादिक उपद्रव होवें तो तर्पणमें जैसी क्रिया लिखी है उसी प्रकार इस पुटपाकके हीनाधिक्य होनेमें करनी चाहिये ॥ ६० ॥ ६१ ॥

संपक्वदोष होनेसे अञ्जन तथा साधारण अञ्जनका विधान।

अथ संपक्वदोपस्य प्राप्तमञ्जनमाचरेत्। हेमन्ते शिशिरे चैव मध्याह्नेऽञ्जनमिष्यते ॥ ६२ ॥ पूर्वाह्णे चापराह्णे च ग्रीष्मे शरदि चेष्यते। वर्षासु नाभ्रे नात्युष्णे वसंते च सदैव हि ॥ ६३ ॥

अर्थ—दोषोंका परिपाक[1] होनेपर अर्थात् पांच दिनके पश्चात् अंजनादिक करे। तथा अंजनकी साधारण विधि कहते हैं कि, हेमन्तऋतु ( मार्गशीर्ष और पौष ) तथा शिशिरऋतु ( माघ फाल्गुन ) इनमें मध्याह्नकालमें ( दो प्रहर दिन चढनेपर ) नेत्रोंमें अंजन करे। ग्रीष्मऋतु ( ज्येष्ठ आषाढ ) और शरदृऋतु (आश्विन कार्तिक) इनमें दो प्रहर दिन चढनेके पूर्व और तीसरे प्रहरमें अंजन करे। वर्षाऋतु ( श्रावण भाद्रपद ) और बादलोंके होनेपर तथा अत्यन्त गरमीमें न अंजन करे। वसंत ऋतुमें सर्वकाल अंजन करना चाहिये ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

---

१ जिस प्राणीके नेत्र जिस दिन दूखनेको आवें उस दिनसे लेकर पांच दिनमें परिपक्व होते है।

अंजनके भेद ।

**लेखनं रोपणं चैव तथा तत्स्नेहनांजनम् । लेखनं क्षारतीक्ष्णाम्लरसैरञ्जनमिष्यते ॥ ६४ ॥ कषायतिक्तरसयुक्सस्नेहं रोपणं मतम् । मधुरस्नेहसम्पन्नमञ्जनं च प्रसादनम् ॥६५॥**

अर्थ-लेखन रोपण और स्नेहन इन भेदों करके अंजन तीन प्रकारका है । उनमें खारी तीक्ष्ण और खट्टा ये रस जिस अंजनमें हैं वह लेखन अंजन कहाता है । कषाय ( कषैला ) तिक्त, ( कडुआ ) इन दो रसों करके युक्त जो अंजन स्नेहयुक्त हो उसे रोपणांजन जानना । मधुररस करके युक्त और स्नेहयुक्त जो हो उस अंजनको प्रसादन ( स्नेहनांजन ) जानना चाहिये ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

गुटिकादिभेदकरके अञ्जनके तीन भेद ।

**गुटिका-रस-चूर्णानि त्रिविधान्यञ्जनानि च ।**
**कुर्याच्छलाकयाऽङ्गुल्या हीनानि च यथोत्तरम् ॥ ६६ ॥**

अर्थ-गुटिका ( गोली ) तथा रसरूप ( द्रवपदार्थ युक्त ) अञ्जन एवं चूर्ण इस प्रकारसे अंजन तीन प्रकारके जानने । गुटिकाकी अपेक्षा ( बनिस्वत् ) रस गुणोंमें न्यून है तथा रसाञ्जनकी अपेक्षा चूर्णांजन गुणोंमें न्यून है, इस प्रकार उत्तरोत्तर गुणोंमें हलके हैं । तथा उन अञ्जनोंको शलाका ( सलाई ) करके अथवा उँगलियोंसे नेत्रोंमें लगावे ॥ ६६ ॥

अञ्जनविषयमें अयोग्य ।

**श्रान्ते प्ररुदिते भीते पीतमद्ये नवज्वरे ।**
**अजीर्णे वेगघाते च नाञ्जनं सम्प्रचक्षते ॥ ६७ ॥**

अर्थ-श्रमसे थका हुआ, रुदन करनेवाला, डरपोक, मद्यपान करनेवाला, नवीन ज्वरवाला और अजीर्ण होनेवाला, मूत्रादिकोंका अवरोध करनेवाला ऐसे मनुष्यको अञ्जन नहीं करना चाहिये ॥ ६७ ॥

अञ्जनवर्तीका प्रमाण ।

**हरेणुमात्रां कुर्वीत वर्तिं तीक्ष्णाञ्जने भिषक् ।**
**प्रमाणं मध्यमेऽध्यर्धां द्विगुणं तु मृदौ भवेत् ॥ ६८ ॥**

अर्थ-तीक्ष्ण अञ्जन ( जो नेत्रोंको अत्यंत पीडा करे ) की हरेणु ( मटर ) के समान लम्बी बत्ती बनावे । उसी प्रकार मध्यम अञ्जनमें हरेणुके डेढ बीजके

बराबर लंबी गोली बनावे और मृदु अञ्जनमें मटरके दो बीजोंकी बराबर गोली बत्तीके आकार करे ॥ ६८ ॥

अञ्जनमें रसका प्रमाण।

रसक्रिया तूत्तमा स्यात्त्रिविडङ्गमिता हिता।
मध्यमा द्विविडङ्गा स्याद्धीना त्वेकविडङ्गका ॥ ६९ ॥

अर्थ–रसक्रिया ( द्रवरूप अञ्जनकी मात्रा ) तीन वायविडङ्गके समान नेत्रोंमें डालनेसे उत्तम रसक्रिया जाननी। दो वायविडङ्गके समान मात्रा नेत्रोंमें डालनेसे मध्यम रसक्रिया जाननी। एक वायविडङ्गके प्रमाणकी मात्रा हीनरसक्रिया अर्थात कनिष्ठ जाननी ॥ ६९ ॥

विरेचन अञ्जनमें चूर्णका प्रमाण।

वैरेचनिकचूर्णं तु द्विशलाकं विधीयते।
मृदौ तु त्रिशलाकं स्याच्चतस्रः स्नैहिकेऽञ्जने ॥ ७० ॥

अर्थ–वैरेचनिकचूर्ण ( जिस चूर्णसे नेत्रोंमे अधिक जल गिरे ) उसको द्विशलाक अर्थात् सलाईको दो वार चूर्णमें डालके दो वार नेत्रोंमें फेरके निकाल लेवे, मृदु अञ्जनमें औषधोंके चूर्णमें तीन वार सलाईको डुबोके तीन वार नेत्रोंमें फेरके निकाल ले। घी आदि जो चिकने पदार्थ हैं उनसे मिले हुए अञ्जनोंमें सलाईको चार वार डुबोके चार वार नेत्रोंमे फेरके निकाल लेना चाहिये ॥ ७० ॥

सलाईका प्रमाण और वह किसकी बनावे।

मुखयोः कुण्ठिता श्लक्ष्णा शलाकाऽष्टांगुलोन्मिता।
अश्मजा धातुजा वा स्यात् कलायपरिमण्डला ॥ ७१ ॥

अर्थ–पाषाण ( पत्थर ) की अथवा सुवर्णादि धातुओंकी ऐसी सलाई आठ अंगुलकी करके उसका मुख गोल करे परन्तु बारीक न करे। तथा वह मटरके दानेके समान सुन्दर गोल होनी चाहिये ॥ ७१ ॥

लेखनादिकोंमें सलाईका प्रमाण।

ताम्रलोहाश्मसञ्जाता शलाका लेखने मता।
सुवर्णरजतोद्भूता शलाका स्नेहने मता ॥ ७२ ॥
अङ्गुली च मृदुत्वेन कथिता रोपणे बुधैः।

अर्थ-लेखन अञ्जनमें तांबेकी अथवा लोहेकी अथवा पत्थरकी सलाईकी योजना करे । स्नेहन अञ्जनमें सोनेकी अथवा रूपे ( चांदी ) की सलाईकी योजना करे तथा उँगलीमें नम्रता है इसी वास्ते रोपण अञ्जनमें उँगलीकी योजना करे अर्थात् उँगलीहीसे लगावे ॥ ७२ ॥

कौनसे समय तथा कौनसे भागमें अञ्जन करे ।

**सायं प्रातश्चाञ्जनं स्यात्तत्सदा नैव कारयेत् ॥ ७३ ॥**
**नातिशीतोष्णवाताभ्रवेलायां संप्रशस्यते ।**
**कृष्णभागादधः कुर्यादपाङ्गं यावदञ्जनम् ॥ ७४ ॥**

अर्थ-सायंकाल और प्रातःकाल अञ्जन करे, सर्वकाल अञ्जन न करे । अत्यंत शीतकाल, अत्यंत उष्णकाल, वायु ( अत्यंत हवा ) चलनेके समय और जिस समय बद्दल होवे उस समय अञ्जन न करे । नेत्रके काले भागके नीचेके पलकमें अञ्जन करना चाहिये ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

चन्द्रोदयावर्ती ।

**शङ्खनाभिर्विभीतस्य मज्जा पथ्या मनःशिला । पिप्पली मरिचं कुष्ठं वचा चेति समांशकम् ॥ ७५ ॥ छागीक्षीरेण संपिष्य वर्तिं कुर्याद्यवोन्मिताम् । हरेणुमात्रां संघृष्य जलैः कुर्यादथाञ्जनम् ॥७६॥ तिमिरं मांसवृद्धिं च काचं पटलमर्बुदम् । रात्र्यंध्यं वार्षिकं पुष्पं वर्तिश्चन्द्रोदया जयेत् ॥७७॥**

अर्थ-१ शंखकी नाभी २ बहेडेके फलके भीतरकी गिरी ३ हरड ४ मनशिल ५ पीपल ६ कालीमिरच ७ कूठ और ८ वच ये आठ औषध समान भाग ले बकरीके दूधमें बारीक पीस जौके समान गोली बत्तीके सदृश लंबी बनावे । इसको चन्द्रोदयावर्ती कहते हैं । पश्चात् एक गोलीको रेणुकाके बीजके समान जलमें घिसके नेत्रोंमें अञ्जन करे तो तिमिर, मांसवृद्धि, काचाबिंदु, पटलगतरोग, अर्बुद, रतोंध तथा एकवर्षका फूला ये सब रोग दूर हो ॥ ७५-७७ ॥

फूलआदिपर बत्ती ।

**पलाशपुष्पस्वरसैर्बहुशः परिभाविता ।**
**करंजबीजवर्तिस्तु शुक्रादीन्छस्त्रवल्लिखेत् ॥ ७८ ॥**

अर्थ-करञ्जके बीजोंका चूर्ण करके पलाशके फूलोंके रसकी अनेक भावना अर्थात् पुट देकर बहुत बारीक खरल कर बत्तीके समान लंबी गोली बनावे । फिर

उस गोलीको जलमें घिसके नेत्रोंमें आंजे तो शुक्र ( फूला ) आदिशब्द करके मांस वृद्धि इत्यादिक शस्त्रसे काटनेके समान दूर होवें ॥ ७८ ॥

दूसरा प्रकार ।

समुद्रफेन-सिन्धूत्थ-शंखदक्षांडवल्कलैः ।
शिग्रुबीजयुतैर्वर्तिः शुक्रादीन्छस्त्रवल्लिखेत् ॥ ७९ ॥

अर्थ-१ समुद्रफेन २ सेंधानमक ३ शंख ४ मुरगेके अण्डेके ऊपरका वक्कल ५ सहँजनेके बीज ये पांच औषध समान भाग ले जलमें पीस बत्तीके समान गोली करके नेत्रोंमें अंजन करे तो फूला इत्यादिक रोग शस्त्रसे काटनेके समान दूर हों ॥ ७९ ॥

लेखनीदन्तवर्ती ।

दन्तैर्दंतिवराहोष्ट्रगोहयाजखरोद्भवैः ॥
शंखमुक्तांभोधिफेनयुतैः सर्वैर्विचूर्णितैः ॥ ८० ॥
दंतवर्तिः कृता श्लक्ष्णा शुक्राणां नाशिनी परा ।

अर्थ-हाथी सूअर ऊँट बैल घोडा बकरा और गधा इनके दांत तथा शंख मोती और समुद्रफेन इन सबका चूर्ण करके पानीमें पीसके बत्तीके सदृश गोली बनावे । इस गोलीको दन्तवर्ती कहते हैं । इसको जलमें घिसके नेत्रोंमें अञ्जन करे तो फूला दूर हो ॥ ८० ॥

तंद्रा दूर होनेको लेखनीवर्ती ।

नीलोत्पलं शिग्रुबीजं नागकेशरकं तथा ॥ ८१ ॥
एतत्कल्कैः कृता वर्तिरतितन्द्रां विनाशयेत् ।

अर्थ-नीला कमल, सहँजनेके बीज तथा नागकेशर ये तीन पदार्थ समान भाग ले जलमें खरल करके लंबी गोली बनावे । इसको जलमें घिसके नेत्रोंमें आंजे तो तन्द्रा दूर हो ॥ ८१ ॥

रोपणीकुसुमिकावर्ती ।

तिलपुष्पाण्यशीतिः स्युः षष्टिसंख्याः[1] कणाकणाः ॥ ८२ ॥
जातीसुमानि पंचासन्मरिचानि च षोडश । सूक्ष्मं पिष्ट्वा जले वर्तिः कृता कुसुमिकाभिधा ॥ ८३ ॥ तिमिरार्जुनशु-

१ षष्टिःपिप्पलितण्डुलाःइत्यपि पाठः।अन्ये तु षष्टिसंख्याकणाःस्मृताःइति पठंति,तदयुक्तम्।

क्राणां नाशिनी मांसवृद्धिहृत् । एतस्याश्चांजने मात्रा प्रोक्ता सार्धहरेणुका ॥ ८४ ॥

अर्थ-तिलके फूल ८० पीपलके भीतरके दाने ६० चमेलीके फूल ५० तथा कालीमिरच १६ इन सबको एकत्र कर जलसे पीसके गोली बनावे। इसको कुसुमिकावर्ती कहते हैं। यह गोली हरेणुकाके डेढ १॥ बीजके बराबर जलमें पीसके नेत्रोंमें अञ्जन करे तो तिमिर अर्जुन फूला और मांसवृद्धि ये रोग दूर होवें ॥ ८२-८४ ॥

रतोंध दूर करनेकी बत्ती ।

रसांजनं हरिद्रे द्वे मालतीनिंबपल्लवाः ।
गोशकृद्रससंयुक्ता वर्तिर्नक्तांध्यनाशिनी ॥ ८५ ॥

अर्थ-१ रसोत २ हल्दी ३ दारुहल्दी ४ चमेलीके पत्ते ५ नीमके पत्ते इन पांच औषधोंको समान भाग ले गौके गोबरके रसमें बारीक पीसके गोली बनावे। इसको जलसे घिसके लगावे तो रतोंधा दूर हो ॥ ८५ ॥

नेत्रस्रावपर स्नेहनीवर्ती ।

धात्र्यक्षपथ्याबीजानि ह्येकद्वित्रिगुणानि च । पिष्ट्वा वर्तिं जलैः कुर्यादंजनं द्विहरेणुकम्॥८६॥नेत्रस्रावंहरत्याशुवातरक्तरुजं तथा।

अर्थ-आंवलेके भीतरका बीज १ भाग बहेडेके फलका बीज २ भाग हरडके भीतरका बीज ३ भाग इन सब बीजोंको एकत्र करके जलमें बारीक पीस लंबी गोली करे पश्चात् उस गोलीमेसे दो हरेणुकाके बीज समान जलमें घिसके नेत्रोंमें आंजे तो नेत्रोंसे जलका बहना तत्काल दूर हो तथा वातरक्तसंबंधी पीडा दूर हो ॥ ८६ ॥

रसक्रिया ।

तुत्थमाक्षिकसिन्धूत्थं सिताशंखमनःशिलाः ॥ ८७ ॥ गैरिकोदधिफेनौ च मरिचं चेति चूर्णयेत् । संयोज्यं मधुना कुर्यादंजनार्थं रसक्रियाम् ॥ ८८ ॥ वर्त्मरोगार्मतिमिरकाचशुक्रहरां पराम् ।

अर्थ-१नीलाथोथा २ स्वर्णमाक्षिक ३ सैन्धानमक ४ मिश्री ५ शंख ६ मनशिल ७ गेरू ८ समुद्रफेन और ९ काली मिरच ये नौ औषध समान भाग ले बारीक चूर्ण कर सहतमे मिलाकर नेत्रोंमें अञ्जन करे तो पलकोंके रोग अर्म रोग तिमिर काचबिन्दु और फूला ये रोग दूर हो ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

फूला दूर करनेकी रसक्रिया ।

**वटक्षीरेण संयुक्तो मुख्यः कर्पूरजः कणः ।**
**क्षिप्रमञ्जनतो हंति कुसुमं च द्विमासिकम् ॥ ८९ ॥**

अर्थ–बडके दूधमें कपूरको घिस नेत्रोंमें अञ्जन करनेसे दो महीनोंका फूला शीघ्र दूर होवे ॥ ८९ ॥

अतिनिद्रानाशक लवनी रसक्रिया ।

**क्षौद्राश्वलालासंघृष्टैर्मरिचैर्नेत्रमञ्जयेत् ।**
**अतिनिद्रा शमं याति तमः सूर्योदये यथा ॥ ९० ॥**

अर्थ–सहत और घोडेकी लार इन दोनोंमें काली मिरच पीसके जिसको अत्यंत निद्रा आती हो, उसके नेत्रोंमें लगावे तो जैसे सूर्यके उदय होनेसे अन्धकार नष्ट होता है उसी प्रकार इस गोलीके अञ्जन करनेसे निद्रा तत्काल दूर होवे ॥ ९० ॥

तन्द्रानाशक रसक्रिया ।

**जातीपुष्पं प्रवालं च मरिचं कटुकी वचा ।**
**सैन्धवं वस्तमूत्रेण पिष्टं तन्द्राघ्नमञ्जनम ॥ ९१ ॥**

अर्थ–चमेलीके फूल चमेलीके अंकुर व काली मिरच कुटकी वच और सेंधानमक ये औषध समान भाग ले बकरेके मूत्रमें सबको बारीक पीस नेत्रोंमें अञ्जन करे तो तन्द्रा दूर हो ॥ ९१ ॥

सन्निपातपर रसक्रिया ।

**शिरीषबीजं गोमूत्रे कृष्णा-मरिच-सैन्धवैः ।**
**अञ्जनं स्यात्प्रबोधाय सरसोन-शिला-वचैः ॥ ९२ ॥**

अर्थ–१ सिरसके बीज २ पीपल ३ काली मिरच ४ सैन्धानमक ५ लहसन ६ मनशिल और ७ वच ये सात औषध समान ले गोमूत्रमें पीसके जो मनुष्य सन्नि-पातमे बेहोश पडा हो उसके नेत्रोंमें अञ्जन करे तो उसको तत्काल होश होजावे ९२

दाहादिकोंपर रसक्रिया ।

**दार्वी पटोलं मधुकं सनिंबं पद्मकोत्पलम् ॥ ९३ ॥ सपौण्डरीकं चैतानि पचेत्तोये चतुर्गुणे । विपाच्य पादशेषं तु शृतं नीत्वा पुनः पचेत् ॥ ९४ ॥ शीते तस्मिन्मधुसितां दद्यात्पादांशकां नरः । रसक्रियैषा दाहाश्रुरक्तरोगरुजो हरेत् ॥ ९५ ॥**

अर्थ-१ दारुहल्दी २ पटोलपत्र ३ मुलहठी ४ नीमकी छाल ५ पद्माख ६ कमल ७ सफेद कमल ये सात पदार्थ समान भाग लेकर जौकुटकर उसमें सब औषधोसे चौगुना जल डालके औटावे। जब चतुर्थांश शेष रहे तब उतारले। फिर उसको छानके फिर औटावे। जब गाढा होनेपर आवे तो उस अवलेहसे चौथाई सहत और मिश्री मिलाकर नेत्रोंमें अञ्जन करे तो दाह स्राव रुधिरके विकारसे नेत्रोंका लालरंग होना ये सर्व रोग दूर होवें ॥ ९३-९५ ॥

नेत्रोंके पलकोंको बाल आनेको तथा खुजली
आदिपर रोपणीरसक्रिया ।

**रसाञ्जनं सर्जरसो जातीपुष्पं मनःशिला । समुद्रफेनो लवणं गैरिकं मरिचानि च ॥ ९६ ॥ एतत्समांशं मधुना पिष्ट्वा प्रक्लिन्नवर्त्मनि । अञ्जनं क्लेदकंडूघ्नं पक्ष्मणां च प्ररोहणम् ॥९७॥**

अर्थ-१ रसोंत २ राल ३ चमेलीके फूल ४ मनशिल ५ समुद्रफेन ६ सैंधानमक ७ गेरू और ८ काली मिरच इन आठ औषधोंका चूर्ण कर सहतमे मिलाकर नेत्रोंमे अञ्जन करे तो पलकोंके रोगोंमें उत्क्लिष्ट जो वर्त्म रोग है वह तथा नेत्रोंका मैलयुक्त होना एवं खुजली ये रोग दूर होवें तथा पलकोंके झडे हुए बाल फिर पैदा हों ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

तिमिरपर रसक्रिया ।

**गुडूचीस्वरसः कर्षः क्षौद्रं स्यान्माषकोन्मितम् । सैन्धवं क्षौद्रतुल्यं स्यात्सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥ ९८ ॥ अञ्जयेन्नयनं तेन पिल्लार्मतिमिरं जयेत् । काचं कण्डूं लिङ्गनाशं शुक्लकृष्णगतान् गदान् ॥ ९९ ॥**

अर्थ-गिलोयका स्वरस एककर्ष निकालके उसमें सहत और सैन्धानमक एक एक मासा मिलाके अच्छी रीतिसे खरल करे। फिर नेत्रोंमें अञ्जन करे तो पिल्लार्म तिमिर, काचबिंदु, खुजली, लिङ्गनाश तथा नेत्रोंके सफेद भागमे और काले भागमें होनेवाले ये सब रोग दूर हो ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

अञ्जनमें पुनर्नवाका योग ।

**दुग्धेन कण्डूं क्षौद्रेण नेत्रस्रावं च सर्पिषा ।**
**पुष्पं तैलेन तिमिरं कांजिकेन निशांधताम् ॥ १०० ॥**
**पुनर्नवा जयेदाशु भास्करस्तिमिरं यथा ।**

अर्थ–पुनर्नवा ( सांठी ) को दूधमें घिसके नेत्रोंमें अञ्जन करनेसे नेत्रोंकी खुजली दूर हो। सहतमें घिसके लगावे तो नेत्रोंसे जलका बहना दूर हो। घीमें घिसके लगावे तो फूला दूर होवे। तेलमें घिसके लगावे तो तिमिर रोग नष्ट हो। कांजीमें घिसके लगावे तो रतोंधा दूर हो। इस विषयमें दृष्टांत है कि जैसे सूर्यनारायण अन्धकारका तत्काल नाश करते हैं उसी प्रकार पुनर्नवा अनुपानके भेद करके सर्व रोगोंको दूर करती है॥ १०० ॥

नेत्रस्रावपर रोपणीरसक्रिया।

बब्बूलदलनिष्क्राथो लेहीभूतस्तदंजनात् ॥ १०१ ॥
नेत्रस्रावं जयत्येष मधुयुक्तो न संशयः।

अर्थ–बबूलके पत्तोंके काढेको गाढा होने पर्यंत औटावे। फिर इसमें थोडासा सहत डालके नेत्रोंमें अंजन करे तो यह नेत्रोंसे जलके बहनेको निश्चय दूर करे॥ १०१ ॥

दूसरा प्रकार।

हिज्जुलस्य फलं घृष्ट्वा पानीये नित्यमंजनम् ॥ १०२ ॥
चक्षुःस्रावोपशांत्यर्थं कार्यमेतन्महौषधम्।

अर्थ–हिज्जुलके फलको पानीमें घिसके नित्य अंजन करे तो नेत्रोंसे जल गिरनेको दूर करे ॥ १०२ ॥

नेत्र स्वच्छ होनेको स्नेहनीरसक्रिया।

कतकस्य फलं घृष्ट्वा मधुना नेत्रमंजयेत् ॥ १०३ ॥
ईषत्कर्पूरसहितं स्मृतं नेत्रप्रसादनम्।

अर्थ–निर्मलीके फलको सहतमें घिसके उसमें थोडासा कपूर मिलाके नेत्र प्रसन्न होनेके वास्ते अंजन करे ॥ १०३ ॥

शिरोत्पातरोगपर अंजन।

सर्पिः क्षौद्रं चाञ्जनं स्याच्छिरोत्पातस्य शातने ॥१०४॥

अर्थ–घी और सहत दोनोंको एकत्र कर नेत्रोंमें अंजन करे तो नेत्ररोगमे जो शिरोत्पात रोग है वह दूर हो ॥ १०४ ॥

अन्धापन दूर होनेकी रसक्रिया।

कृष्णसर्पवसा शंखः कतकाफलमंजनम्।
रसक्रियेयमचिरादंधानां दर्शनप्रदा ॥ १०५ ॥

अर्थ-काले सर्प ( काले सांप ) की वसा कहिये मांसस्नेह शंख और निर्मलीके बीज इन तीनोंको एकत्र खरल कर नेत्रोंमें अंजन करे तो मनुष्यको बहुत जल्दी दीखने लगे ॥ १०५ ॥

लेखनचूर्णांजन।

दक्षाण्डत्वक्छिलाकाचैः शङ्खचन्दनगैरिकैः।
द्रव्यैरंजनयोगोऽयं पुष्पार्मादिविलेखनः॥ १०६॥

अर्थ-१ मुरगेके अण्डेके छिल्के २ मनशिल ३ सफेद कांच ४ शंख ५ लाल चंदन और ६ सुवर्णगैरिक अर्थात् नम्र जातका गेरू ये छः पदार्थ समान भाग ले बारीक पीसके चूर्ण करे। फिर इसको नेत्रोंमें अंजन करे तो फूला और मांसार्मादिक रोग दूर हों॥ १०६॥

रतोंध दूर होनेको लेखनचूर्ण।

कणाच्छागयकृन्मध्ये पक्त्वा तद्रसपेषिता।
अचिराद्धंति नक्तांध्यं तद्वत्सक्षौद्रमूषणम्॥ १०७॥

अर्थ-बकरेके कलेजेके मांसमें पीपल रखके अंगारोंपर पाक करे। पश्चात् उस मांसके रस तथा पीपल इन दोनोंको पीसके अंजन करे तो रतोंधा दूर हो। शहद और काली मिर्चका अंजन भी रतोंधेको दूर करता है॥ १०७॥

खुजली आदिपर लेखनचूर्णांजन।

शाणार्धं मरिचं द्वौ च पिप्पल्यर्णवफेनयोः।
शाणार्धं सैन्धवं शाणा नवसौवीरकांजनात॥ १०८॥
पिष्टं सुसूक्ष्मं चित्रायां चूर्णांजनमिदं शुभम्।
कण्डूकाचकफार्तानां मलानां च विशोधनम्॥ १०९॥

अर्थ-कालीमिरच अर्ध शाण, पीपल और समुद्रफेन ये दोनों दो दो शाण ले। सैन्धानमक अर्ध शाण तथा सुरमा नौ शाण इन सब औषधोंको जिस दिन चित्रा नक्षत्र हो उस दिन अत्यन्त बारीक पीस चूर्ण करे। फिर इस चूर्णका नेत्रोंमें अंजन करे तो खुजली तथा काचबिंदु ये दूर हों। कफ करके पीडित नेत्रोंके मलोंका शोधन हो॥ १०८॥ १०९॥

सर्वनेत्ररोगोंपर मृदुचूर्णांजन।

शिलायां रसकं पिष्ट्वा सम्यगाप्लाव्य वारिणा। गृह्णीयात्तज्जलं सर्वं त्यजेच्चूर्णमधोगतम्॥ ११०॥ शुष्कं च तज्जलं सर्वं पर्पटी-

सन्निभं भवेत्। विचूर्ण्य भावयेत्सम्यक् त्रिवलं त्रिफला-रसैः ॥ १११ ॥ कर्पूरस्य रजस्तत्र दशमांशेन निक्षिपेत्। अंजयेन्नयने तेन सर्वदोषहरं हितम् ॥ ११२ ॥ सर्वरोगहरं चूर्णं चक्षुषोः सुखकारि च।

अर्थ—खपरियाको पत्थरके खरलमें उत्तम रीतिसे खरल करके काजल समान बारीक चूर्ण करे। पश्चात् उस चूर्णको जलमें डालके मिला देवे, फिर उस जलको नितारके दूसरे पात्रमें निकाल लेवे और उस पात्रमें जो नीचे खपरियाके बडे २ टुकडे रह गये हो उनको दूर पटक देवे। फिर उस नितारे हुए पानीको दूसरे पात्रमें करके सुखा ले। इस प्रकार करनेसे उस खपरियाके चूर्णकी पपडी जम जावेगी, उसको निकालके चूर्ण करे। उस चूर्णको त्रिफलेके काढेकी तीन भावना देवे। पश्चात् उस चूर्णका दशवां भाग भीमसेनी कपूर मिलाके नेत्रोंमें अंजन करे तो सर्व दोष तथा सर्व रोग दूर होकर नेत्रोंको सुख हो ॥ ११०–११२ ॥

सर्वनेत्ररोगोंपर सौवीरांजन।

अग्नितप्तं च सौवीरं निषिञ्चेत्त्रिफलारसैः ॥११३॥ सप्तवेलं तथा स्तन्यैः स्त्रीणां सिक्तं विचूर्णितम्। अंजयेन्नयने तेन प्रत्यहं चक्षुषोर्हितम् ॥ ११४ ॥ सर्वानक्षिविकारांस्तु हन्या-देतन्न संशयः।

अर्थ—सुरमेको अग्निमें तपाके उसपर त्रिफलेके काढेको छिडक देवे। जब शीतल होजावे तब फिर अग्निमें तपावे और त्रिफलेका काढा छिडकके शीतल करे। इस प्रकार सात बार करे तथा इसी प्रकार सात वार स्त्रीका दूध छिडकके शीतल करे। फिर इसको बहुत बारीक पीस सलाईसे अञ्जन करे तो यह अञ्जन नेत्रोंको बहुत हितकारी होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

शीशेकी सलाई बनानेकी विधि।

त्रिफलाभृङ्गशुण्ठीनां रसैस्तद्वच्च सर्पिषा ॥ ११५ ॥
गोमूत्रमध्वजाक्षीरैः सिक्तो नागः प्रतापितः।
तच्छलाका हरत्येव सर्वान्नेत्रभवान्गदान् ॥ ११६ ॥

अर्थ—त्रिफलेका काढा भांगरेका रस, सोंठका रस, सोंठका काढा, घी, गोमूत्र, सहत और बकरीका दूध इन एक एकमें सात २ बार शीशेको बुझावे। फिर उस

शीशेकी सलाई बनावे । इस सलाईको नेत्रोंमें फेरा करे तो सम्पूर्ण नेत्रके रोग दूर होवें ॥ ११५ ॥ ११६ ॥

प्रत्यंजन करनेकी विधि ।

गतदोषमपेताश्रु संपश्यन् सम्यगंभसि ।
प्रक्षाल्याक्षि यथादोषं कार्यं प्रत्यंजनं ततः ॥ ११७ ॥

अर्थ—उस शीशेकी सलाईको नेत्रोंमें फेरनेसे दोष दूर हो, नेत्रोंसे पानी निकल जानेके पश्चात् रोगी क्षणमात्र शीतल जलको देखे, फिर उसके नेत्र जलसे धोके नेत्रोंमें प्रत्यंजन करे । वह प्रत्यंजन आगे इसी ग्रन्थमें लिखा है ॥ ११७ ॥

सदोष नेत्र होनेसे निषेध ।

नवाऽनिर्गतदोषेऽक्ष्णि धावनं संप्रयोजयेत् ।
प्रत्यंजनं तीक्ष्णतप्ते नेत्रे चूर्णः प्रसादनः ॥ ११८ ॥

अर्थ—नेत्रोंसे जबतक दोष निःशेष न निकले तबतक नेत्रोंको जलसे नहीं धोवे तथा तीक्ष्ण अञ्जन करके नेत्र सन्तप्त होनेसे उसमे प्रत्यंजन चूर्ण लगावे । वह आगेके श्लोकमें कहा है अथवा प्रसादन चूर्ण नेत्रोंमें लगावे ॥ ११८ ॥

नयनामृताञ्जन प्रत्यंजनचूर्ण ।

शुद्धे नागे द्रुते तुल्यं शुद्धं सूतं विनिक्षिपेत् ।
कृष्णांजनं तयोस्तुल्यं सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ ११९ ॥
दशमांशेन कर्पूरं तस्मिंश्चूर्णे प्रदापयेत् ।
एतत्प्रत्यञ्जनं नेत्रगदजिन्नयनामृतम् ॥ १२० ॥

अर्थ—शीशेको शुद्ध[1] करके अग्निपर पतला करे । उसके समभाग शुद्ध किया हुआ पारा लेकर उस तपे हुए शीशेमे मिला देवे । पश्चात् इन दोनोंका समान भाग सुरमा लेकर दोनोंमे मिला दे । फिर सबका चूर्ण करके उस चूर्णका दशवां हिस्सा भीमसेनी कपूर उस चूर्णमे मिलावे । इसको प्रत्यंजन चूर्ण कहते हैं । इस करके संपूर्ण नेत्ररोग दूर होते हैं तथा यह चूर्ण नेत्रोंको अमृतके समान गुण करता है ॥ ११९ ॥ १२० ॥

सर्वविषपर अञ्जन ।

जयपालस्य मज्जां च भावयेन्निंबुकद्रवैः ।
एकविंशतिवेलं तत्तो वर्तिं प्रकल्पयेत् ॥ १२१ ॥

---

१ सुवर्णादि धातुवोंका शोधन मध्यखंडमें लिखा है, उसी जगह शीशेका शोधन है सो जानना वा शीशेकी सलाई बनानेमे जिस प्रकार शुद्धि लिखी है उसी प्रकार करनी चाहिये।

मनुष्यलालया घृष्ट्वा ततो नेत्रे तयांजयेत् ।
सर्पदष्टविषं जित्वा सञ्जीवयति मानवम् ॥ १२२ ॥

अर्थ–जमालगोटेके भीतरकी मज्जा अर्थात् बीजोंके भीतरका बीज उसको नींबूके रसकी इक्कीस पुट देवे, बारीक पीस लंबी गोली बनावे. पश्चात् उसको मनुष्यकी लारमें घिसके नेत्रोंमें अञ्जन करे तो सर्पके काटनेसे जो विषबाधा हो वह दूर होकर मनुष्य सावधान हो जाता है ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

हाथोंकी हथेलीसे नेत्र पोछनेके गुण ।

भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्यदि दीयते ।
जाता रोगा विनश्यंति तिमिराणि तथैव च ॥ १२३ ॥

अर्थ–भोजन करनेके पश्चात् हाथोंको धोकर गीले हाथोंकी दोनो हथेली आपसमें घिसके नेत्रोमे लगावे तो उत्पन्न हुए रोग तथा तिमिर रोग दूर होवें ॥ १२३ ॥

शीतांबुपूरितमुखः प्रतिवासरं यः कालत्रयेण नयनद्वितयं जलेन । आसिंचति ध्रुवमसौ न कदाचिदक्षिरोगव्यथाविधुरतां भजते मनुष्यः ॥ १२४ ॥

अर्थ–प्रतिदिन दिनमे तीन वार शीतल जलसे मुखको भरके शीतल जलसे नेत्रोंको तीन बार छिडके तो अति दुःख देनेवाली नेत्ररोगसंबन्धी पीडा कभी नहीं होती ॥ १२४ ॥

ग्रन्थको समूलत्वसूचनापूर्वक स्वाभिमान परिहार ।

आयुर्वेदसमुद्रस्य गूढार्थमणिसंचयम् ।
ज्ञात्वा कैश्चिद्बुधैस्तैस्तु कृता विविधसंहिताः ॥ १२५ ॥
किंचिदथ ततो नीत्वा कृतेयं संहिता मया ।
कृपाकटाक्षविक्षेपमस्यां कुर्वंतु साधवः ॥ १२६ ॥

अर्थ–समुद्रके समान ( दुरवगाह ) आयुर्वेद सम्बन्धी जो मणिके समान गूढार्थ उनके समुदायोंको उत्तम प्रकारसे जानकर अग्निवेश चरकादिक मुनीश्वरोंने अनेक प्रकारकी जो संहिताएं की हैं उन सब संहिताओंका कुछ २ सारांश लेकर यह शार्ङ्गधरसंहिता की है । इसपर महात्माजन कृपा करके अवलोकन करें ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

---

१ शर्यातिं च सुकन्यां च च्यवनं शक्रमश्विनौ। भोजनान्ते स्मरेन्नित्यं चक्षुस्तस्य न हीयते॥

ग्रन्थ पढनेका फल ।

**विविधगदार्तिदरिद्रनाशनं या हरिरमणीव करोति योगरत्नैः ।**
**विलसतु शार्ङ्गधरसंहिता सा कविहृदयेषु सरोजनिर्मलेषु १२७॥**

अर्थ-योग कहिये काढे, चूर्ण गुटिका, अवलेह इत्यादिक, ये ही हुए रत्न इन करके अनेक प्रकारके ज्वरादिक जो रोग तत्संबन्धी पीडारूप जो दरिद्र उसको दूर करनेवाली ऐसी यह शार्ङ्गधरसंहिता कमलके समान निर्मल कविके हृदयमें शोभित होवे । इस विषयमें दृष्टान्त है कि, जैसे लक्ष्मी अनेक प्रकारके रत्नों करके अपने आश्रित ( भक्तजनों ) के दरिद्रको दूर करती है वैसे ही यह संहिता भी समझनी चाहिये ॥ १२७ ॥

सहेतुक इस ग्रन्थकी पढनेकी आज्ञा ।

**अल्पायुषामल्पधियामिदानीं कृतं समस्तश्रुतिपाठशक्तिः ।**
**तदत्र युक्तं प्रतिबीजमात्रमभ्यस्यतामात्महितप्रयत्नात् ॥१२८॥**

**इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायामुत्तरखंडे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥**

**इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डः परिपूर्णः ॥**

अर्थ-कलियुगमें प्रायः मनुष्य अल्पायुषी तथा अल्पबुद्धिवाले हैं इसीसे ( लोग सब आयुर्वेद पढनेमें समर्थ नहीं हैं अतएव ) इस युगमें सम्पूर्ण पठन योग्य, आत्माको हितकारी, सारांशरूप ऐसा यह तन्त्र बनाया है, उसका बडे प्रयत्न करके अभ्यास करें ॥ १२८ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे वैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतभाव-प्रकाशिकाभाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

---

# ॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
बम्बई.

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
कल्याण-बम्बई.